


‘प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक सत की बानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥’

प्रथम संस्करण— १९७७ ई०

पृष्ठसंख्या—१८×२२÷८=६९०

मूल्य— ५०·०० रुपया

मुद्रक

वाणी प्रेस

‘प्रभाकर निलयम्’, ४०५/१२८, चोपटियां रोड, लखनऊ–२२६००३



कन्नड साहित्याकाश में

शरच्चन्द्र के तुल्य प्रकाशमान ११वीं शती के

अभिनव पम्प नागचन्द्र की

पुण्य स्मृति में, उनके अमर ग्रन्थ

'रामचन्द्र-चरित-पुराणम्' का यह सानुवाद

लिप्यन्तरण

सादर समर्पित॥

[signature]

मुख्यन्यासी सभापति

भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३

# विषय-सूची



## आवरण चित्र-परिचय

सीताहरण। जैन मान्यता के अनुसार रावण संत के वेश में आकर सीता का हरण नहीं करता। वह राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में, पुष्पकविमान में अपने स्वरूप में आकर सीता का बलात् हरण करता है। जटायु सीता का पोष्य है, साथ ही रहता है। रावण का विरोध करने पर उसके आघात से हत होता है।

# भूमिका

भारत एक महान् देश है। प्राचीनकाल से इसमें स्थानीय विभेदों के होते हुए भी सांस्कृतिक गंगा की अविच्छिन्न धारा सभी अंचलों को आप्लावित करती हुई आज तक बहती जा रही है। विदेशी शासकों के कुचक्रों ने कभी भाषा-भेद को बढ़ाया तो कभी जाति-भेद को; और कभी आञ्चलिक विभेदों को हवा दी। स्वतंत्र होने पर देश में एकता की लहर आई और पार्थक्य-भावना से छुटकारा पाने तथा सभी अञ्चलों को एकात्म करने की प्रबल उत्कण्ठा सारे देश के मानस में जाग्रत हुई।

इस भावना को परिपुष्ट करने के लिए यह आवश्यक था कि भाषा के स्तर पर सभी भारतीय भाषाओं में सहयोग हो और वे एक-दूसरे को समझते हुए, एक दूसरे का श्रेष्ठ अंश लेकर अपने साहित्य-भंडार को समृद्ध करें। संस्कृत भाषा का देश भर में एक गौरवपूर्ण स्थान रहा है और सभी भारतीय भाषाओं के विकास को संस्कृत ने आधार प्रदान किया है। इससे शब्द-भण्डार की दृष्टि से सभी भारतीय भाषाएं एक दूसरे के काफी निकट हैं। हाँ, लिपि-भेद के कारण इस निकटता को अनुभव कर पाना कठिन है। इस दृष्टि से यह आवश्यक था कि सभी भारतीय भाषाओं का सत्साहित्य उस लिपि में जिसे देश की अधिकांश जनता प्रयोग करती हो, लाया जाए; तभी इस अवरोधक तत्व को समाप्त किया जा सकता है। भारतीय संविधान ने राष्ट्र के कार्य-व्यापार के लिए नागरी लिपि को इसीलिए अंगीकार किया था क्योंकि उसके प्रयोग-कर्ताओं की संख्या सर्वाधिक है।



भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ ने इस महत् कार्य को उठाया है। वह भारतीय भाषाओं के सत्साहित्य को हिन्दी में अनूदित करने तथा मूल पाठ

का नागरी लिप्यंतरण करने का प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में यह एक उत्तम प्रयास है। लिपि का आवरण हटते ही भारतीय भाषाएँ एक दूसरे के कितना समीप हैं, यह इस ट्रस्ट के प्रयासों से स्पष्ट हो जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक ११वीं सदी में कन्नड भाषा में अभिनव पम्प नागचन्द्र द्वारा रचित एक अति प्रसिद्ध महाकाव्य है जिसका नाम है "रामचन्द्र चरित पुराणम्"। इसका कथानक मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम से सम्बन्धित होने पर भी, जैन मान्यता का अनुवर्त्ती है और प्रचलित राम कथा से कुछ भिन्न है। फिर भी उत्तर भारत की जनता के लिए यह जानकारी की वस्तु अवश्य है।

जैन मान्यता के अनुसार प्रत्येक कल्प में वासुदेव, अनुवासुदेव और प्रतिवासुदेव किन्ही नामों से जन्म लेते रहते है और इस प्रकार 'जैन धर्म' व्यवस्थित होता रहता है। कृष्ण वासुदेव है, उनके बड़े भाई [बलभद्र] अनुवासुदेव और जरासंध प्रतिवासुदेव है। इसी प्रकार लक्ष्मण वासुदेव हैं, बड़े भाई राम अनुवासुदेव और रावण प्रतिवासुदेव है। वासुदेव लक्ष्मण रावण-संहारक है और राम (अनुवासुदेव) प्रेरक है। इस प्रकार यह महाकाव्य जैनगुरु-परम्परा से प्राप्त काव्य है। अभिनव पम्प से सदियों पूर्व, जैन परम्परा के रामायण-ग्रंथ 'पउम चरिउ' आदि उपलब्ध है।

हम जैन मान्यताओं को अंगीकार करें या न करें, यह अलग बात है। फिर भी नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के माध्यम से, देश की सभी मान्यताएँ और सारे दृष्टिकोण राष्ट्र के सम्मुख आएँ, यह राष्ट्रभाषा के लिए नितांत संगत और पुनीत कार्य है। इस ग्रंथ के माध्यम से कन्नड भाषा का ललित स्वरूप भी नागरी जामे मे दर्शनीय है।

भुवन वाणी ट्रस्ट की, नाना भाषाओं के लोकप्रिय सद्ग्रन्थों को हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिपि में प्रकाशित करने की योजना, भारतीय भाषा-जगत् को एक सूत्र में पिरोने का स्तुत्य प्रयत्न है। बिना कटुता और स्पर्द्धा के, सभी भाषाओं का समान अभ्युदय, प्रचार और प्रसार सामयिक है। भाषाई सेतुबन्ध का यह विपुल कार्य सारे राष्ट्र को एक भावात्मक सूत्र में गूँथनेवाला है। राष्ट्रभाषा तथा सभी क्षेत्रीय भाषाओं को समान रूप से उत्तरोत्तर फलने-फूलने का मार्ग है। इस वाणी-यज्ञ का सर्वत्र स्वागत होना वाञ्छनीय है।

नई दिल्ली,
२० जनवरी १९७७

कमलापति त्रिपाठी
(रेलमंत्री, भारत सरकार)

# परिशिष्ट - विशेष

पाँच वर्ष में प्रकाशन—सन् १९७२ ई० की बात है कि ब्रिटिश उप-उच्चायुक्त कार्यालय (बंबई) के प्रेस सम्पर्क अधिकारी डॉ० वी० बी० पुत्रन एम० ए० पीएच्० डी० ने भुवन वाणी ट्रस्ट के भाषाई सेतुबन्ध कार्य के अन्तर्गत कन्नड भाषा के ११वीं शती के अभिनव पम्प नागचन्द्र विरचित 'रामचंद्र चरित पुराणम्' का हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण का भार सम्हाला था। यह रामायण ग्रन्थ भारत में बहुप्रचलित रामकथा से भिन्न और जैनमान्यता के अनुसार एक अद्भुत ग्रन्थ है। भगवान् की कृपा से आज पाँच वर्ष बाद इस ग्रन्थरत्न का प्रकाशन समाप्त हुआ। प्रकाशन के आरंभकाल में 'प्रकाशकीय', 'अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार का परिचय', तथा 'अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार का वक्तव्य', पाठकों की जानकारी के लिए पृष्ठ १७-२० पर प्रस्तुत किया गया था। किन्तु आज पाँच वर्ष बाद प्रकाशन-समाप्ति पर, यह महसूस हुआ कि ग्रन्थ की प्राचीन कन्नड-भाषा काव्य की अलौकिकता, कथा-वैचित्र्य, और इस मध्यावधि में उत्पन्न अनेक नई जानकारियों को पाठकों के समक्ष न लाने पर बात अधूरी रह जायगी। फलतः यह 'परिशिष्ट-विशेष' और अनुवादक डॉ० पुत्रन द्वारा विषय-प्रवेश पृष्ठ ७-१६ पर प्रस्तुत किया जा रहा है। १७-२० के चार पृष्ठों की सामग्री को भी इन्हीं परिशिष्टों में समाहित कर, कई तथ्यों की पुनरावृत्ति से बचा जा सकता था, किन्तु उस अवस्था में न केवल ये चार पृष्ठ वरन् शुरू का पूरा फ़ार्म फिर से छापने पर ट्रस्ट को कागज-मुद्रण आदि की क्षति पहुँचती। अतः पाठकों से नम्र निवेदन है कि पुनरावृत्ति के दोष को क्षमा करते हुए चारों वक्तव्यों से यथासुलभ मनोरञ्जन और ज्ञानार्जन का लाभ उठाएँ।

विषय-वस्तु—भुवन वाणी ट्रस्ट के माध्यम से नागरी लिपि का मञ्च, विना किसी भेदभाव के प्रत्येक भाषा और मान्यता के लिए खुला है। भुवन की भाषाओं का सत्साहित्य नागरी लिपि में उद्भूत होकर अखिल भूतल की सामग्री बने; ज्ञानमात्र अविभाज्य रूप से सबको सुलभ हो और सबकी समान सम्पत्ति हो, यह ट्रस्ट का सर्वोपरि उद्देश्य है। प्रस्तुत 'रामचन्द्र चरित पुराणम्' में भलेही मान्यता की दृष्टि से पार्थक्य हो, किन्तु इतिहास और भूगोल के शोधछात्रों के लिए प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। पूछ-पंख-बहुशीश-भुजा के अलौकिक रूपों के स्थान पर, मानव-रूपों में यक्ष, राक्षस, विद्याधर, नर और वानरध्वज वंशों का उल्लेख सहज मानव-बुद्धि को सन्तोष प्रदान करता है। कथानक नवीन और अतीव मनोरंजक है।

मुद्रण-सम्बन्ध में—दक्षिण परम्परा की शैली के अनुसार ग्रन्थ के अनेक छन्दों में प्रत्येक पंक्ति का द्वितीय अक्षर एक दूसरे के समान और नीचे आता है। ऐसी दशा में छन्द की सारी पंक्तियाँ पृथक् मुद्रित होना चाहिये था।

किन्तु वे पंक्तियाँ वहुत छोटी और पृष्ठ के कागज का आकार वड़ा—इस कारण ऊपर नीचे चार पंक्तियों का मुद्रण अशोभन होता और कागज की भी व्यर्थ क्षति होती। सुतरां वीच में स्टार देकर दो पंक्तियों को एक ही सतर में छापना उपयुक्त समझा गया। स्टार के दोनो ओर की पंक्तियों को ऊपर नीचे समझना चाहिये; तव द्वितीयाक्षर की समानता का अलङ्कार प्रत्यक्ष होगा।

अन्य बातें—पृष्ठ १८ के अन्तिम अनुवन्ध में व्यक्त किया गया है कि यह ग्रन्थ कन्नड लिपि में भी अव उपलव्ध नहीं है। हर्ष और सौभाग्य की बात है कि नागरी संस्करण प्रकाशन होते-होते, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से प्रस्तुत ग्रन्थ का कन्नड लिपि में सानुवाद संस्करण प्रकाशित हो चुका है। पृष्ठ १७ पंक्ति २ और पृष्ठ १९ पंक्ति ४ में क्रमशः 'अजस्त्र' को 'अजस्त्र' और डॉ० गजानन नरसिंह साठे, इस प्रकार संशोधित कर लेना चाहिये।

भूमिका—माननीय रेल मंत्री, भारत सरकार, पं० कमलापति त्रिपाठी जी ने इस ग्रन्थ पर भूमिका लिखने की कृपा की है। उनके इस अनुग्रह ने ट्रस्ट के कार्य और ग्रन्थ को गरिमा प्रदान की है।

आभार-प्रदर्शन—ट्रस्ट को, कई उदार सदाशयों, विद्वानों, एवं उत्तर प्रदेश शासन से प्राप्त सहायता से वड़ा सहारा मिलता रहा है। अन्य भाषाई ग्रन्थों के साथ, कन्नड 'रामचंद्र चरित पुराणम्' भी अपनी सहज गति से प्रकाशित हो रहा था। सौभाग्य से केन्द्रीय उपशिक्षा मंत्री माननीय श्री डी० पी० यादव, भारत सरकार के राष्ट्रभाषा सलाहकार वहुभाषा-मर्मज्ञ श्री रमाप्रसन्न नायक और शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय के शिक्षानिदेशक श्री सनत्कुमार चतुर्वेदी जी की अनुकम्पा हुई। इसके परिणाम स्वरूप ग्रन्थ परिपूर्णता को प्राप्त हुआ। हम उनके अतिशय अनुग्रहीत हैं। हम विश्वास के साथ निवेदन करते हैं कि भुवन वाणी ट्रस्ट की भाषाई सेतुकरण की विशाल और अद्वितीय योजना उत्तरोत्तर फलवती होकर शासन और जनता को संतुष्ट करती रहेगी।

अन्त में, हम ग्रन्थ के सफल अनुवादक और लिप्यन्तरणकार डॉ० वी० बी० पुत्रन और उनके सहयोगी श्री रामचंद्र उच्चिल के प्रति आभारप्रदर्शन करते हैं। उन्होंने जिस उत्सर्ग की भावना और तन्मयता से कार्य को सम्पन्न किया वह अत्यन्त सराहनीय है। ४५ वर्षीय डॉ० पुत्रन निस्सन्देह अति कर्मठ और प्रतिभासम्पन्न साहित्य-सेवी हैं। पृष्ठ ९-१६ और पृष्ठ ६६९-६८२ पर क्रमशः विद्वत्तापूर्ण विषय-प्रवेश और विषयानुक्रमणिका अवलोकनीय हैं।

लखनऊ
२५ मार्च, १९७७

**नन्दकुमार अवस्थी**
मुख्यन्यासी सभापति, भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ–३

# विषय-प्रवेश

'नागचन्द्र' कन्नड-साहित्याकाश में अभिनव पम्प के नाम से प्रसिद्ध है। इसका 'रामचन्द्रचरित पुराण' 'पम्प रामायण' के नाम से प्रचलित है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त इसने 'मल्लिनाथ पुराण' की भी रचना की थी। हमारा सम्बन्ध केवल प्रथम कृति से है। कवि ने अपनी कृति में अपने माता-पिता, कुल-गोत्र, स्थान-मान, दरबार-काल किसी का भी उल्लेख नहीं किया, लेकिन अपने गुरु बालचन्द्र (१/१६-१८) और मेघचन्द्र (१/१९-२०) की प्रशंसा में लिखी गयी पंक्तियाँ मिलती हैं। इस कवि ने अपने पूर्व-कवियों की स्तुति-प्रशंसा की है और परवर्ती कवियों ने इसे गौरव की दृष्टि से देखकर अपनी कृतियों में उल्लेख किया है। भारती कर्णपूर, कविता मनोहर, साहित्य विद्याधर, साहित्य-सर्वज्ञ आदि अनेक उपाधियों से वह विभूषित था। इससे स्पष्ट होता है कि नागचन्द्र अवश्य ही एक उच्चकोटि का कवि और कलोपासक था।



डॉ० वी० वी० पुत्रन्

कवि के काल के विषय में विद्वानों में मतभेद रहा है और आज भी भिन्नाभिप्राय देखने में आता है। उन विद्वानों के अभिमत के सार के रूप में इतना कहा जा सकता है कि नागचन्द्र १२वीं शती के मध्य तक प्रकाश में आ चुका था। अतः ११वीं शती के उत्तर भाग और १२वीं शती के मध्य तक इसका समय माना जा सकता है।

नागचन्द्र की कृति 'रामचन्द्रचरित पुराण' (पम्प रामायण) पर मुख्यतः विमलसूरिकृत प्राकृत काव्य 'पउम चरिउ' (१ली शती), रविषेण-कृत संस्कृत काव्य 'महापुराण' (७वीं शती), और चाउंडरायकृत कन्नड काव्य 'चाउंडराय पुराण' (१०वीं शती) का प्रभाव पड़ा है। इनके अतिरिक्त अपने काव्य के प्रथम आश्वास (१-४०) में कवि ने कहा है कि विपुलाचल के वीरजिन पार्श्व में गणाग्रणी गौतम ने जो कहानी मगधाधिपति

को सुनायी थी, उसी का वर्णन किया है। इससे लगता है कि कथावस्तु उसे गुरुपरम्परा से मिली है। जैन धर्म के अनुसार कवि ने अपने काव्य में 'त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र' के सातवें पर्व के वासुदेव (लक्ष्मण), प्रति-वासुदेव (रावण) और अनुवासुदेव बलभद्र (राम) के चरित्रों को चित्रित किया है। यही कारण है कि यह एक महाकाव्य होते हुए भी जैन पुराण (रामचन्द्र-चरित पुराण) माना गया।

नागचन्द्र की यह कृति कन्नड जैन रामायण परम्परा को प्रस्तुत करने-वाला प्रथम उपलब्ध महाकाव्य है। इससे पूर्व जैन परम्परानुसार रचित ग्रन्थों में रामायण की समग्र कथा यथावत् नहीं आ पायी। नागचन्द्र के पश्चात् भी कोई ऐसा समग्र ग्रन्थ प्रस्तुत न कर सका। विद्वानों ने नागचन्द्र की इस कृति की कथावस्तु में दक्षिण भारत के मुख्य तीन राज्यों की कहानी देखी है—(१) राक्षसों का राज्य जो लंका में था, (२) कपि-ध्वज राज्य, किष्किन्धा जिसकी राजधानी थी, और (३) विद्याधर राज्य, जिसकी राजधानी थी रथनूपुर चक्रवालपुर। जैनों की धारणा है कि इस काव्य की कथावस्तु बीसवें तीर्थंकर सुव्रत के जीवनकाल में घटित है।

नागचन्द्र का राम, शलाका पुरुषों में आठवाँ बलभद्र है; विष्णु का अवतार नहीं बल्कि मनुष्य है। यही कारण है कि सीता के वियोग में बिलखता है, आठ हज़ार युवतियों से विवाह कर लेता है (१५-६१ ग); बन्धु-प्रेम के ममतावश लक्ष्मण के शव को अपने सीने से लिपटाये छः महीनों तक घूमता है। राम के जीवन में अनेक मनोविकारों को अवसर मिलता है लेकिन पात्र उदात्त, सत्कर्मी एवं सुशील होने के कारण उसी जन्म में मोक्ष पाता है।

यहाँ का लक्ष्मण शलाका पुरुषों में आठवाँ नारायण या वासुदेव है। वह अद्भुत शक्तियों का भण्डार है। कृति भर में शत्रुओं को मौत के घाट उतारने, या शरण देने का कार्य उसी का है, राम प्रेरणा मात्र है। इसके साथ कई अद्भुत घटनाएँ घटती हैं। युद्धभूमि में ही कई सन्दर्भों में अठारह हज़ार युवतियों से विवाह होते हैं (१५-६१): कुछ तो शाप से मुक्त होने के लिए, तो कुछ प्राप्त वरदान के कारण। वासुदेव होने के कारण प्रतिवासुदेव (रावण) का वध भी इसी के हाथों होता है। कर्मबन्धनों से जकड़े जाने और काम-क्रोध की चरम सीमा पर पहुँचने के कारण लक्ष्मण अन्त में नरक को प्राप्त होता है।

'पम्प रामायण' का रावण (आठवाँ प्रतिवासुदेव) एक उदात्त पात्र है। वह शरणागत-रक्षक है, और किसी का वध नहीं करता, जैन मुनियों के प्रति श्रद्धानत है, परांगना-विरतिव्रतधारी, हिंसा-विरोधी तथा पाप-विरत है। सीताहरण के पश्चात् उसे अपने आप पर घृणा होती है।

अन्त में रावण ने सीता के प्रति जो व्यवहार किया, इससे यह प्रतीत होता है कि वह सीता को बहन समझने लगा था। वीर होने के नाते राम-लक्ष्मण को हराकर उन्हें सीता के चरणों में डालकर उन सबको मान-सम्मान के साथ बिदा करना चाहता था लेकिन दैवेच्छा कुछ और थी। यहाँ का रावण जितनी सहानुभूति प्राप्त कर पाया है, उतना और कोई नहीं। राम-लक्ष्मण के पात्र भी उसके सम्मुख कुछ फीके-से लगते हैं।

यहाँ की सीता वाल्मीकि रामायण की सीता के समान पतिव्रता-शिरोमणि होने के साथ-साथ जिनागम-कोविदा और कैवल्य-विरक्ता भी है। उसे अपने क्षत्रिय होने का अभिमान भी है। रावण और मन्दोदरी को यथासमय फटकारने में नहीं हिचकती।

भरत, नारद और मन्दोदरी जैसे पात्र पतितों के रूप में प्रस्तुत किये गये है। राम-लक्ष्मण की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा से भरत जल उठता है। जब राम को राज्यसिंहासन सौंपने की बात आती है, वह विरागी बनने की धमकी देता है। इससे, पुत्र को बचा लेने के उद्देश्य से कैकेयी दशरथ से राज्य माँग लेती है। अन्त में अपने किये पर वह अवश्य पछताता है और राम-लक्ष्मण को वनवास से लिवा लाने का असफल प्रयत्न भी करता है। वैदिक साहित्य का दिव्य-ज्ञानी, महामुनि, भक्त नारद नागचन्द्र की इस कृति में कलह-प्रिय, विवेक-विकल और कामुक के रूप में चित्रित है।

यहाँ का हनुमान बालब्रह्मचारी नहीं, वह गृहस्थाश्रम का अनुभवी है; वह चिरंजीवी भी नहीं—नियतकाल जीवी है।

इसके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण और जैन रामायण की कथावस्तु में निम्नलिखित अन्तर उल्लेखनीय हैं—

(१) दशरथ की चार पत्नियाँ हैं—अपराजिता, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रभा, जो क्रमशः राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की माताएँ हैं।

(२) मन्थरा, ऊर्मिला, परशुराम, विश्वामित्र आदि पात्रों का उल्लेख नहीं है।

(३) पुत्र-कामेष्टि यज्ञ और राम के अश्वमेध-यज्ञ की बात नहीं है।

(४) राम-लक्ष्मण सीता-स्वयंवर में नहीं जाते बल्कि जनक के आग्रह पर भीलों को दण्डित करने जाते हैं। खचरपति इन्दुगति अपने वज्रावर्त, सागरावर्त नामक धनुषों को जनक के पास मिथिला भिजवा देता है। उनमें मे प्रथम को झुकाकर राम सीता को हासिल करता है और द्वितीय को झुकाकर लक्ष्मण चन्द्रधर की दो कन्याओं को पत्नी के रूप में पाता है।

(५) सीता का एक बड़ा भाई भी है—प्रभामण्डल। खचरपति इन्दुगति के राजमहल में उसका पालन-पोषण होता है। अनजाने में, नारद के कुतन्त्र के कारण, बहन सीता पर ही मोहित होता है।

(६) दशरथ पुत्रशोक से नहीं मरता अपितु भरत के राज्याभिषेक के पश्चात् जैनदीक्षा लेकर मोक्ष पाता है।

(७) मारीच मृग के रूप में आकर राम को धोखा नहीं देता इस कार्य को रावण के वशवर्तिनी अवलोकनी विद्या करती है।

(८) सुग्रीव की छोटी बहन श्रीप्रभा रावण से विवाहित है।

(९) हनुमान भी रावण का मित्र एवं सम्बन्धी था—रावण की छोटी बहन चन्द्रनखी (सूर्पनखा) की कन्या अनंगपुष्पा से हनुमान का विवाह हुआ था और रावण द्वारा दिये गये कर्णकुंडलपुर का वह राजा था। सीता-हरण मित्र को शत्रु में बदलता है।

(१०) परित्यक्त सीता वाल्मीकि आश्रम में न जाकर वज्रजंघ नामक धर्मी राजा के महल में आश्रय लेती है। अन्त में व्रतों का पालन-कर, उग्र तपस्या करके अच्युत (सोलह स्वर्गों में श्रेष्ठ) स्वर्ग का इन्द्रपद पाती है।

(११) देवताओं की चालबाजी लक्ष्मण की मृत्यु का कारण है और लक्ष्मण के मृत शरीर को राम अपने सीने से लगाये छः महीने घूमता रहता है। राम अन्त में जैन दीक्षा पाकर शाश्वत मुक्ति को प्राप्त होता है।

(१२) रावण आदि राक्षस नहीं, भीम राक्षस नामक राजवंश के हैं। रावण के दस सिर नहीं; नौ मुख के एक दर्पण में रावण का मुख प्रतिबिंबित होने के कारण दशमुख कहलाया।

(१३) वाली-वध की घटना नहीं।

(१४) वाली-सुग्रीव आदि वानर (कपि) नहीं, कपिध्वज खेचर वंशज है।

(१५) सेतुबन्धन नहीं; आकाशगामिनी विद्या से राम-सेना समुद्र पार करती है।

(१६) हनुमान विद्याबल से ही लंकादहन करता है।

(१७) विभीषण यह जानकर कि जानकी के कारण रावण की मृत्यु दाशरथी के हाथों होनेवाली है, जनक और दशरथ को मार डालने का प्रयत्न करता है।

इसी तरह के अनेक छोटे-छोटे अन्तर गिनाये जा सकते हैं।

कवि नागचन्द्र ने अपनी कृति को विभिन्न छन्दों से सजाया है। इसमें कुल २३४३ पद्य हैं जो कन्द (१४९१), चम्पकमाला (२८१) मत्तेभविक्रीडिता (२३८), उत्पलमाला (१७९), महास्रग्धरा (७९), शार्दूलविक्रीडितं (४०), स्रग्धरा (९), पृथ्वी (७), द्रुतविलंबित (३) मालिनी (३), मंदाक्रांत (२) स्वागत (२), हरिणी (२), अक्कर, उत्साह, तरळ, नवनलिन, मत्तकोकिल, मल्लिकामाला, रथोद्धत, ललित छन्दों में हैं। ये विभिन्न छन्द वास्तव में विद्वान कवि की योग्यता के प्रतीक हैं।

नागचन्द्र अपनी शैली के लिए प्रसिद्ध है। अर्थगौरव, अर्थ की सरसता—उसकी शैली का मुख्य गुण है। इसके उदाहरण काव्य में आदि से अन्त तक मिलते हैं। वक्रता या आडम्बर को यहाँ स्थान नहीं, अलंकार की भरमार नहीं, प्रत्युत निराभरण सहज सौन्दर्य को स्थान मिला है। इसी आधार से विद्वानों ने, समालोचकों ने नागचन्द्र के अर्थगौरव को 'वाणीमणिमय मुकुर' कहा तथा उसकी शैली में गागर में सागर भरने की शक्ति को भी परखा है। वर्णन-चित्ताकर्षक; सहृदय पाठक उसमें मृदुल, लालित्य, माधुर्य का आनन्दानुभव करते हैं। वह स्वर-मन्त्र सिद्ध है।

नागचन्द्र ने पांडित्य-प्रदर्शन का प्रयत्न नहीं किया। शब्दालंकारों में अनुप्रास मिलते हैं; यमक को स्थान मिला है लेकिन गौण। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, स्वभावोक्ति, अर्थांतरन्यास, दृष्टान्त आदि अधिक हैं और श्लेष आदि कम। ऐसे ग्रन्थ कन्नड में अपूर्व हैं। पद, अर्थ, भाव, रस, मानव हृदयानुभव, औदार्य, सीता और रावण का उदात्त चित्र; और सबसे बढ़कर धर्म-दृष्टि, न्यूनाधिक-विहीन संस्कृत और कन्नड का पद विन्यास; सरल, गम्भीर, नाटकीय शैली, वृत्त और कन्नड वचन (शैली विशेष) की समानता आदि दृष्टव्य है। पूरा काव्य चम्पू शैली में है।

शांतरस 'रामचन्द्रचरित पुराण' का प्रधान रस है; अन्य रस उसके अंग बनकर आये हैं। इसी को दृष्टि में रखकर कहा गया है—"रामायण में जिस मानुष्य लोकजीवन की क्रांति को चित्रित करना चाहिए था, वह उतना सुन्दर न हो पाया। यहाँ जीवन मानो शांतरस के कोहरे से आच्छादित हुआ है।"

इसका मुख्य कारण है जैनदर्शन। काव्य भर में—दशरथ की अयोध्या में, जनक की मिथिला में, सुग्रीव की किष्किन्धा में, रावण की लंका में, राम-लक्ष्मण के प्रवास स्थानों में—जिनगृहों को, जिनधर्म श्रवण को, जिनवंदनों को, —जिनदीक्ष-प्रसंगों को स्थान मिला है। सर्वत्र विद्याधरों, विद्याशक्तियों, चारणों, भट्टारकों, भवबद्ध वैरियों के दर्शन होते हैं। रामायण की इस काव्यकथा को जैन वातावरण ने पूर्णतः समेट लिया है।

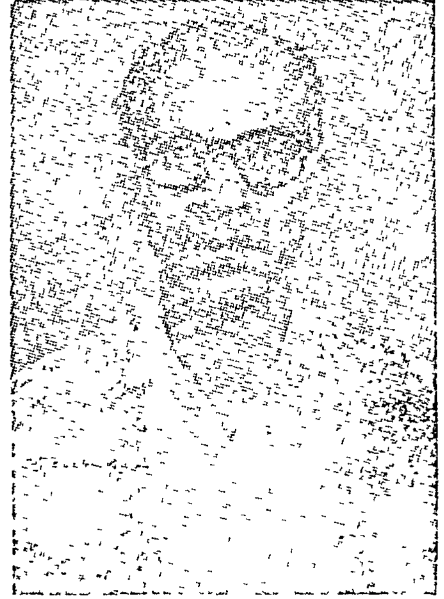
काव्य में समस्त अष्टादश वर्णन व्यक्त हुए हैं। विद्वानों का कहना है कि आज तक कन्नड में उपलब्ध अत्युत्तम काव्यों में अभिनव पंप नागचन्द्र कृत 'रामचन्द्रचरित पुराण' (पम्प रामायण) एक है।

अन्त में, विज्ञ पाठकों की दृष्टि में एक स्पष्टीकरण लाना आवश्यक है। आज से छ: वर्ष पूर्व, भुवन वाणी ट्रस्ट के भाषाई सेतुकरण के पुण्यकार्य में योगदान देने के लिए निमंत्रण प्राप्त हुआ। कन्नड भाषा के प्राचीन ग्रन्थ अभिनव पम्प विरचित 'रामचन्द्र चरित पुराणम्' के हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण का कार्य हाथ में लिया। धीरे-धीरे प्रकाशन भी आरम्भ हुआ। ग्रण्थ सम्पूर्ण होने के पूर्व ही ट्रस्ट के मुखपत्र 'वाणी सरोवर' त्रैमासिक में भी एक-एक फ़ार्म धारावाहिक रूप में दिया जाने लगा। इस स्थिति में यह आवश्यक समझा गया कि ग्रन्थ के सम्बन्ध में कुछ परिचयात्मक विवरण दिया जाय। ट्रस्ट के मुख्यन्यासी सभापति श्री नन्दकुमार अवस्थी के अनुरोध पर वह विवरण मैंने भेजा और वह ग्रन्थ के पृष्ठ १७-२० पर मुद्रित है।

किन्तु आज छ: वर्ष बाद, ग्रन्थ की समाप्ति पर, एक नवगठित वक्तव्य देने की आवश्यकता प्रतीत हुई। ९-१६ पृष्ठ पर प्रस्तुत विषय-प्रवेश शीर्षक वक्तव्य में रामायण की जैनपराम्परा, कन्नड साहित्य, ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार, ऐसी अनेक बातों पर प्रकाश डालने के साथ-साथ, भारत की रामायण सम्बन्धी प्रचलित परम्परा और जैन परम्परा के इतिहास में तुलनात्मक अन्तर की तालिका दी जा रही है। इस विशेश परिस्थिति में दो वक्तव्यों में कुछ तथ्यों की पुनरावृत्ति होना स्वाभाविक है। आशा है इस दोष को उदार पाठक अन्यथा न मानेंगे।

एक प्रमुख बात यह है कि जब मैंने 'पम्प रामायण' के अनुवाद कार्य की जिम्मेदारी ली, उसके पश्चात् कार्य में हाथ डालने पर यह अनुभव किया कि मेरा कन्नड का अनुभव अनुवाद के लिए पर्याप्त नहीं है। इस विचार से इसे सुगम बनाने की दृष्टि से, बम्बई में रहनेवाले सभी कन्नड-प्राध्यापकों एवं विद्वानों को एक-एक कर याद किया जो इस कार्य में मेरी मदद कर सके। अंतत: श्री रामचंद्र उच्चिल जी ही ऐसे योग्य कन्नड-विद्वान् मिले जिन्होंने मेरी ज़िम्मेदारी में सहभागी बनकर मुझे अनुग्रहीत किया। 'पम्प रामायण' (११-१२वीं शती की) प्राचीन कृति है और वह प्राचीन कन्नड में है। इसे समझना-समझाना उतना सरल नहीं। मैं यहाँ तक मानता हूँ कि अगर श्री उच्चिल इस कार्य में मेरी मदद न करते तो मैं इसे पूरा न कर पाता। इस दृष्टि से मैं उनका चिर-ऋणी हूँ।

श्री रामचंद्र उच्चिल का जन्म दक्षिण कर्नाटक के मंगलूर तालूक के सोमेश्बर उच्चिल में दि० ६-११-१९२१ को हुआ। मद्रास विश्वविद्यालय से 'कन्नड विद्वान्' में उत्तीर्ण होने के बाद १९४७-५० तक बम्बई के 'नुडि' कन्नड साप्ताहिक के उपसम्पादक रहे। श्री उच्चिल अब भी पत्रकारिता में रुचि रखते हैं और उनके लगभग १५० लेख प्रकाशित हो चुके हैं। कन्नड के प्राचीन काव्य और यक्षगान के प्रति उनकी विशेष रुचि रही है। कन्नड की पत्रिकाओं में खेल-क्रीडा-जगत में एक नया मोड़ देने और क्रीडा-जगत में पारिभाषिक शब्दों का निर्माण करने का उनको सर्वप्रथम श्रेय है। नाटक-समीक्षा, व्यंग्य-लेख, विडंवना के प्रति उनकी आसक्ति, कन्नड के प्रसिद्ध कवि मुद्दण की कृतियों का गहरा अध्ययन करके उनमें निहित विशिष्टताओं पर प्रकाश डालना, उनके उल्लेखनीय कार्य हैं। वे लगभग तीस साल से रात्रिशाला में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।



**श्री रामचंद्र उच्चिल**

डॉ० वासु० बी० पुत्रन

(एम० ए० पीएच्० डी०)

## कन्नड - देवनागरी वर्णमाला

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ಅ अ | ಆ आ | ಇ इ | ಈ ई | ಉ उ |
| क | का | कि | की | कु |
| ಊ ऊ | ಋ ऋ | ೠ ॠ | ಎ ऎ | ಏ ए |
| कू | कृ | कॄ | कॆ | के |
| ಐ ऐ | ಒ ऒ | ಓ ओ | ಔ औ | ಅಂ अं |
| कै | कॊ | को | कौ | कं |
| | | ಅಃ अः | | |
| | | कः | | |
| ಕ क | ಖ ख | ಗ ग | ಘ घ | ಙ ङ |
| ಚ च | ಛ छ | ಜ ज | ಝ झ | ಞ ञ |
| ಟ ट | ಠ ठ | ಡ ड | ಢ ढ | ಣ ण |
| ತ त | ಥ थ | ದ द | ಧ ध | ನ न |
| ಪ प | ಫ फ | ಬ ब | ಭ भ | ಮ म |
| ಯ य | ರ र | ಲ ल | ವ व | ಶ श |
| ಷ ष | ಸ स | ಹ ह | ಕ್ಷ क्ष | ಳ ळ |

**लिप्यन्तरण—**

प्रस्तुत कन्नड-नागरी वर्णमाला चार्ट में कन्नड-अक्षरों और उनके नागरी बदल के रूप दिये हुए हैं। पृष्ठ २० पर इस संदर्भ में एकार और ओकार के दक्षिणी लिपिओं में प्रचलित ह्रस्व और दीर्घ दोनों रूप क्रमशः ॆ, ॊ; े, ो, इस प्रकार निर्दिष्ट किये गये हैं। किन्तु ग्रन्थ के ३२ पृष्ठ तक छापने के बाद ट्रस्ट ने ह्रस्व मात्राओं को अधिक सुकर और सुन्दर बनाने के लिए ॆ, ॊ रूप दिया। पृष्ठ ३३ के बाद से 'रामचन्द चरित पुराणम्' में इन्हीं ॆ, ॊ मात्राओं का उपयोग हुआ हैं।

—नन्दकुमार अवस्थी

(अभिनव पम्प) नागचन्द्र-विरचित

# पम्प रामायण

## ( रामचन्द्र-चरित पुराणं )

अनुवादक तथा लिप्यन्तरणकार

डॉ० वी० वी० पुत्तन, एम. ए. पीएच्. डी.

## प्रकाशकीय

वाल्मीकि, अध्यात्म, आनन्द आदि संस्कृत रामायण-ग्रंथों के अलावा, भारत की प्राय: सभी क्षेत्रीय भाषाओं में रामचरित-काव्यों की अजस्त्र धारा बहती रही है। तुलसी के 'रामचरितमानस' का क्षेत्र तो सारा देश है, किंतु अन्य भारतीय भाषाओं में शायद ही कोई भाषा ऐसी बची हो जिसमें रामचरित्र पर श्रेष्ठ काव्य की रचना न हुई हो। एशिया के अनेक दूसरे देशों में भी रामकथा, काव्य अथवा नाटक के रूप में वर्त्तमान है। यह भी ज्ञातव्य है कि राम और सीता की जन्मभूमि—अयोध्या और मिथिला से गौरवान्वित उत्तर भारत की भाषाओं की अपेक्षा दक्षिण भारत की भाषाओं में रामायण ग्रन्थों की रचना पहले हुई। दक्षिण के रामायण ग्रंथ, अधिक प्राचीन तथा काव्य की उत्कृष्टता एवं भक्ति रस में सरावोर है।

उल्लेखनीय है कि राम-कथा पर पुरातन-काल से वौद्ध और जैन परम्पराएँ भी मौजूद हैं। जैन परम्परा का राम-साहित्य अति विशद है। उसके अनुसार प्रत्येक कल्प में नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव होते रहते हैं। राम, लक्ष्मण और रावण प्रस्तुत कल्प के क्रमश: आठवें बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव हैं। वासुदेव का प्रतिवासुदेव सदैव विरोध करता है और वासुदेव के चक्र से मारा जाता है। अस्तु इसी जैन परम्परा में ११ वीं शताव्दी में अभिनव पम्प नागचन्द्र ने कन्नड़ भाषा में 'पम्प रामायण' की रचना की। 'पम्प रामायण' अथवा 'रामचन्द्र-चरित पुराण' के रचयिता नागचन्द्र ने एकमात्र लोक-कल्याण के लिए इस अपूर्व महाकाव्य को समर्पित करते हुए अपने कुल, गोत्र आदि का विरद-वखान न करके भारतीय ऋषियों के पद-चिह्नों का समुचित अनुकरण किया है।

सुना है, यह 'कन्नड़ रामायण' आज से लगभग ५०-६० वर्ष पूर्व एक बार प्रकाशित हुई थी, जो अब दुष्प्राप्य है। विद्वान् अनुवादक, जिनका परिचय आगे दिया जा रहा है, के सुझाव पर ऐसे अनुपम ग्रंथ को सारे भारत की जनता के सामने रखना पुनीत कर्त्तव्य मानकर 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने समग्र ग्रंथ के हिन्दी अनुवाद सहित देवनागरी-लिप्यन्तरण के प्रकाशन की योजना बनाई। ऐसे विशिष्ट कार्य के लिए उपयुक्त विद्वान् की तलाश थी। हर विद्वान् के वश की बात न थी। ग्रंथ की प्राचीनता, जैन धर्म की मान्यताएँ और उसके विशिष्ट सन्दर्भ, कन्नड़ भाषा का देवनागरी लिपि में पठन योग्य लिप्यन्तरण, भाषा तथा भाव—दोनों की रक्षा करनेवाला अनुवाद, कन्नड़ तथा हिन्दी दोनों भाषाओं पर पर्याप्त अधिकार—इन सब से युक्त पण्डित-प्रवर की आवश्यकता थी। सौभाग्य से डॉ० वी० वी० पुन्नन, एम० ए०, पीएच्० डी०, बम्बई से सम्पर्क स्थापित हुआ। आप ही ने इस महान् ग्रंथ का सुझाव भी दिया।

## अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार का परिचय

डॉ० पुन्नन का जन्म लगभग ४० वर्ष पूर्व दक्षिण कर्नाटक स्थित 'इन्ना' ग्राम के एक गरीब परिवार मे हुआ। मातृभाषा कन्नड़। गाँव में ही प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त, बम्बई मे रात्रिपाठशाला आदि में जीविकोपार्जन करते हुए हिन्दी और सस्कृत में एम. ए., 'कन्नड़ और हिन्दी के राम-काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर पीएच्. डी., राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-वर्धा से 'राष्ट्रभाषा रत्न', हिन्दी साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग से 'साहित्यरत्न' आदि उपाधियों से विभूषित हुए। महाराष्ट्र सरकार द्वारा 'बी-एड.' के समकक्ष 'सीनियर हिन्दी शिक्षक सनद' की डिग्री भी उनको प्रदान हुई। उनका जीवन अध्यापन और राष्ट्रभाषा की अनवरत सेवा में लगता रहा। उनके हिन्दी से कन्नड़ और कन्नड़ से हिन्दी में अनेक अनुवाद प्रकाश में आये हैं। दोनों भाषाओं में मौलिक लेख 'धर्मयुग' आदि प्रतिष्ठित पत्रों में प्रकाशित होते रहते है। आजकल ब्रिटिश उप उच्चायुक्त कार्यालय (बम्बई) मे प्रेस सम्पर्क अधिकारी के पद को विभूषित कर रहे है।

पाठक विचार करें कि ४० वर्षीय नवयुवक डॉ० पुन्नन का अध्यवसाय, अध्ययन और राष्ट्रभाषा के प्रति उनकी अनवरत सेवाएँ कितनी प्रचुर और आजकल के नवोदित विद्वानों के लिए कितनी अनुकरणीय हैं। सौभाग्य है कि ऐसे कर्मठ और प्रकाण्ड विद्वान् के द्वारा अभिनव पम्प नागचन्द्र प्रणीत कन्नड़ साहित्य की निधि 'पम्प रामायण' का हिन्दी अनुवाद सहित देवनागरी लिप्यन्तरण 'भुवन वाणी ट्रस्ट' द्वारा स्प्रतुत हो रहा है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि यह ग्रंथ अब कन्नड़ भाषा में भी प्राप्य नही है। अतः यह देवनागरी संस्करण कन्नड़ प्रदेश एवं समस्त राष्ट्र में उदित होकर, न केवल साहित्यिक और भावनात्मक वरन् 'साहित्य के इतिहास' और 'रामायण पर जैन परम्परा

के दृष्टिकोण' की दृष्टि से भी जाज्वल्यमान होगा। एतदर्थ हम विद्वान् लिप्यन्तरणकार एवं अनुवादक के अनुगृहीत हैं।

अन्त में एक वात और उल्लेखनीय है। 'वाणीसरोवर' की विद्वत्-परिषद के माननीय सदस्य प्रा० नरसिंह गजानन साठे के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन न करना कर्तव्य से विमुखता होगी। श्री साठे महोदय 'भुवन वाणी ट्रस्ट' के लिए श्रीधर-कृत मराठी रामायण राम-विजय तथा गिरधर कृत गुजराती रामायण का अनुवाद और लिप्यन्तरण करने के साथ ही, सदैव ट्रस्ट के अन्य भाषाई कार्यक्रमों की योजना में भी सहायक रहते हैं। 'पम्प रामायण' के विद्वान् अनुवादक डॉ० वी. बी. पुन्नन से ट्रस्ट का सम्पर्क भी उन्हीं के द्वारा हुआ है। हम उनके भी आभारी है।

—सम्पादक

# अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार का वक्तव्य

## नागचन्द्र (सन् १०७५-११००) कृत

## पम्प रामायण (रामचन्द्र-चरित पुराण)

नागचन्द्र कन्नड साहित्याकाश में 'अभिनव पम्प' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कवि ने अपनी कृति में अपने माता-पिता, कुल-गोत्र, स्थान-मान, दरबार-काल किसी का भी उल्लेख नहीं किया। लेकिन अपने गुरु बालचन्द्र और मेघचन्द्र यति की प्रशंसा में लिखी गई उनकी पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इस कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों की स्तुति की है और परवर्ती कवियों ने इनको गौरव की दृष्टि से देखकर अपनी कृतियों में इनका उल्लेख किया है। अतः नागचन्द्र को उच्च कोटि के कवियों में मानने में किसी तरह की हिचकिचाहट नही होनी चाहिए। कवि के काल को लेकर आज भी विद्वानों में भिन्नाभिप्राय हैं। लेकिन संक्षेप में कहना चाहिए कि ११ वी शती के उत्तर भाग और १२ वीं शती के पूर्वार्द्ध तक यह नक्षत्र प्रकाश में आया होगा।

'पम्प रामायण' पर मुख्यतः विमलसूरि कृत प्राकृत काव्य 'परमचरिउ' (१ली शती), रविषेण कृत संस्कृत काव्य 'महापुराण' (७ वीं शती), और चाउण्डराय कृत कन्नड काव्य 'चाउण्डराय पुराण' (१० वी शती) का प्रभाव पड़ा है। लेकिन नागचन्द्र ने किसी का भी पूर्णतः अनुसरण नही किया। जैन धर्म के अनुसार कवि ने अपने काव्य में 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र' के सातवे पर्व के वासुदेव (लक्ष्मण), प्रतिवासुदेव

(रावण) और वलभद्र (राम) के चरित्रों को चित्रित किया है। यही कारण है कि एक महाकाव्य होते हुए भी जैन पुराण—'रामचंद्र-चरित-पुराण' कहलाया।

यह कृति कन्नड़ में जैन रामायण परम्परा को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करनेवाला प्रथम महाकाव्य है। उसके बाद भी ऐसा समग्र काव्य उपलब्ध नहीं हुआ। नागचन्द्र ने इस कृति को विभिन्न छंदों से सजाया है। इसमे कुल २३४३ पद्य है। अर्थ-गौरव अर्थात अर्थ की सरलता कवि की शैली का प्रधान गुण है। शात रस इस काव्य का मुख्य रस है। कृति मे पाण्डित्य-प्रदर्शन का प्रयत्न नहीं हुआ हैं।

## लिप्यन्तरण

१. कन्नड़ की वर्णमाला देवनागरी वर्णमाला के समान है। केवल मराठी में प्रयुक्त 'ळ' कन्नड़ में अधिक है।

२. दक्षिण की कुछ भाषाओं में सन्धि वाले शब्दों के खण्डों को पृथक् लिखने में दोष नही माना जाता। जैसे 'गोपालमेव' को 'गोपाल मेव' भी लिखने की परिपाटी है। छंद की एक पक्ति के अंत में 'सं' तो दूसरी पंक्ति के आरंभ मे 'सार'—यों 'संसार' की पूर्ति अनुचित नही। उत्तर भारत के विद्वान् इसको दोष न मानें। प्रत्येक भाषा की अपनी कुछ शैली होती है।

३. अन्य दक्षिणी भाषाओं के समान कन्नड़ में भी 'ए' और 'ओ' के उच्चारण ह्रस्व और दीर्घ—दो प्रकार के होते है। लिप्यन्तरण में ए और ओ की ह्रस्व मात्राओं को क्रमशः ॆ और ॊ, तथा दीर्घ मात्राओं को क्रमशः े और ो लिखा गया है।

४. ॆ और ॊ के साथ अनुस्वार होने पर ॆं और ॊं के व्यवहार में मुद्रण की कठिनाई है। इस लिए अनुस्वार के वाद आनेवाले व्यञ्जन के वर्ग के पञ्चम अक्षर का अर्द्धाक्षर अनुस्वार के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है। जैसे 'नॆणॆयॆंबुदॆ' के स्थान पर 'नॆणॆयम्बुदॆ', 'संस्तवमॊंदॆ' के स्थान पर 'संस्तवमॊन्दॆ', आदि।

—(डॉ) वी. वी. पुत्तन

(अभिनव पम्प) नागचन्द्र-विरचित

# पम्प रामायण

# (रामचन्द्रचरित पुराणं)

प्रथमाश्वासं

श्रीकेळी निलयं निजांघ्रिकमलं विद्यानटी नाट्य वे-
दीकल्प मुख चंद्रबिंबमखिलेंद्रोत्तंस माणिक्य दी-
पाकीर्णं हरिपीठ पाश्वमॅनिथं पूजार्हनार्हत्य ल-
क्ष्मीकांतं मुनिसुव्रतं नमगॅ माळ्किष्टार्थं संसिद्धियं ।। १ ।।
एनसंतानमॅन्टुं किडॅ निजगुणमॅन्टुं मॉगदोरॅ मॅय्यिं-
देनानुं कुंदॅ लोकाग्रदॉळिरॅ सहजानंद चैतन्य रूपं
ज्ञानं ज्ञेय प्रमाणं पसरिसॅ गणनातीतरागिर्द मुक्ति-
श्रीनाथर् सिद्धरात्यंतिकसुख पदवीसिद्धियं माळ्के नम्मॉळ् ।। २ ।।
मनमं कट्टि गुणंगळिं तुळिदु पंचाचारदिं पंचबा-
णन बाहाबलमं समग्रतर शिष्यानुग्रह प्रौढवे-
त्तनवद्यर् दयॅगॅय्वरक्कॅ दयॅयिं भव्याळिगुद्यत्तपो-
धन विद्याधनदिं महामहिमॅवॅत्ताचार्यराचारमं ।। ३ ।।

---

आश्वास—१

जिनके चरणकमल लक्ष्मी का क्रीडांगण एवं सरस्वती की नाट्य-वेदिका हैं, जिनका मुख-चन्द्रबिम्ब समस्त इन्द्रों के शिराभरण के माणिक्यों की प्रभा से प्रशोभित है, जो सिंहपीठ पर विराजमान हैं तथा पूजनीय एवं अर्हन्तों में मोक्ष-लक्ष्मीकान्त (के समान) हैं, वैसे मुनिसुव्रत हमें इष्टार्थ सिद्धि प्रदान करें। १ मुक्ति श्रीनाथ एवं सिद्ध हमारे पाप-समूह को नाश करके, गुणों को फैलाकर सहजानन्द, चैत्यस्वरूप ज्ञान-ज्ञेय-प्रमाणों को बिखेरकर हमें पदवी प्रदान करें। २ पंचाचार से अपने मन को संयम में रखकर, कामदेव के प्रताप का निग्रह करके, शिष्य-कोटि पर अनुग्रह

पात्रीभूत विनेय संततिगॆ सम्यग्दर्शन ज्ञान चा-
रित्रंगळ् निजमप्पनंत सुखमं रागादिगळ् जन्म मृ-
त्यु त्रासंगळनीवुवॆन्दु सदसद्भेदंगळं पेळ्विवर्-
सूत्र प्रायरजेयरीगॆमगुपाध्यर् सुखोपायमं ॥ ४ ॥
तपमं शीलमनप्पुकेय्दु करणग्रामंगळं गॆल्दु चि-
त्तपदैकातिथिमाडि शांतरसमं कारुण्यमं ताळ्दि त-
त्त्वपरिज्ञानमनप्रमत्तचरित प्रस्थानमं सार्द सा-
धुपदंगळ् नमगीगॆ साधुपदमं कैवल्य मांगल्यमं ॥ ५ ॥
परब्रह्म शरीरपुष्टि जनतांतर्दृष्टि कैवल्यभो-
ध रमा मौक्तिकहारयष्टि कवितावली सुधावृष्टि स-
र्व रसोत्पाद नवीनसृष्टि बुध हर्षाकृष्टि सर्वांग सुं-
दरि विद्यानटि नाटकंनलिगे मत्काव्यस्थली रंगदॊळ् ॥ ६ ॥
अनघरनुबद्ध केवल- * रॆनिसिद गौतम सुधर्म जंजूगणभृ-
द्विनुतरॆमगीगॆ शाश्वत * धनमॆनिसिद विश्रुत श्रुताराधनमं ॥ ७ ॥
श्रुतकेवलि विष्णुव्रति * पति चरणं नंदि परममुनि पदमपरा-
जित पादं गोवर्धन * यति क्रमं भद्रबाहु चरणं शरणं ॥ ८ ॥

---

दिखाकर, दोषवर्जित हो महामहिमापूर्ण पूर्वाचार्य भवतों के प्रति दया दिखावें। ३ श्रद्धा-भक्ति में परिपूर्ण, शिष्यों को सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, अनंत सुख, जन्म-मरण के सत्यासत्य भेदों को स्पष्ट अवगत कराने वाले अजेय गुरु हमें सुखोपाय बताने का अनुग्रह करें। ४ तप और सद्शील का आलिंगन करके, त्रिकरणों को जीतकर, समस्त जीवराशि के प्रति दया दिखाकर शांत रस प्रकट करके (प्रवाहित कर), तत्वपरिज्ञान से शुद्ध-चारित्र कहलानेवाले जिन-मुनियों के चरण-कमल हमें सज्जनता एवं मोक्षमांगल्य प्रदान करें। ५ सर्वांगसुन्दरी, सरस्वती नटी परब्रह्म की शरीरपुष्टि से, जनता की अंत:दृष्टि पाकर मुक्तिकान्ता की मोतीमाला की शोभा के साथ, काव्यलता द्वारा बहा दी जानेवाली अमृत वृष्टि से सर्व रसों के निर्माणकर्ता नवीनता के साथ विद्वानों को आह्लाद प्रदान करते हुए मेरे काव्य-मंच पर नृत्य करें। ६ निष्पाप एवं केवलज्ञानी कहलाने वाले गौतम, सुधर्म आदि हमें वह शास्त्र-ज्ञान प्रदान करने की कृपा करें जो शाश्वत तथा श्रेष्ठ है। ७ श्रुतकेवली, विष्णुव्रति-पति, नंदी, अपराजित भद्रबाहु मुनियों के पादपद्मों में हम शरणागत है। ८ दशपूर्वधर और एकादशांगधारी कहलानेवाले मुनियों के नख-प्रकाश हमें दर्शन-शुद्धि

दशपूर्वधररूमेका ❀ दशांगधारिगळुमॅनिप मुनिपद नख दी-
प्ति शरच्चंद्रिके दर्शन ❀ विशुद्धियं माडुगघतमो विघटनमं ॥ ९ ॥
भूतबलि पुष्पदंत ❀ यातर जिनसेन वीरसेन मुनींद्र
ख्यातर समंतभद्र ❀ख्यातर पदपांसु किडिसुगघपांसुगळं ॥ १० ॥
कवि परमेष्टिगळ गुण ❀ स्तवनंगळ् पूज्यपाद यतिपतिय गुण-
स्तवनंगळॉमॅ नालगॅ- ❀ गॅ वंद मानवन वाङ्मलं निंदपुदे ॥ ११ ॥
चतुरंगुल चारण ऋ- ❀ द्धि तमगे समनिसिदुदॅनिप तपदुन्नतियिं
श्रुतदिं भूमंडल वि- ❀ श्रुतरॅनिसिदरल्तॅ कुंडुकुंदाचार्यर् ॥ १२ ॥
अकळंकचंद्र वाक्चं- ❀ द्रिकॅयिं धवळिसॅ दिगंबरश्री भव्य
प्रकर चकोरं नलिदुदु ❀ मुकुळितवाय्तन्यवादि वदनांभोजं ॥ १३ ॥
चारू चरित्र तीर्थजलदिदघकर्दममं कळल्चि सं-
सार समुद्रमं तृणपयः करणदिंदिळिकॅय्दु दिव्य भा-
पारस पूर्णमं श्रुतपयोदियनीसिद वर्धमान भ-
ट्टारकरं वचसुरभि चंदन चर्चॅगळिंदमर्चिपॅ ॥ १४ ॥
विमल श्रौतं कैव- ❀ ल्यमॅम्ब संकल्पमिनितॅ नेर्गिरियं वि-
श्वमनरिव महिमॅयिं व-❀ र्धमान जिनपतिगॅ वर्धमान मुनींद्रं ॥ १५ ॥
पुरिदंतादुवु पूविनंबु विनिविल् निस्सारमादत्तु सी-
करिवोदत्तु मृणाळतंतु रचित ज्यालेखॅ मीनध्वजं

प्रदान करके अज्ञान-राशि को नाश करें। ९ प्रख्यात भूतबलि, पुष्पदन्त, जिनसेन, वीरसेन, समंतभद्र आदि की चरण-धूलि हमारी पाप-धूलि को निर्नाम कर दे। १० उस मनुष्य में, जिसने कविपरमेष्ठि, पूज्यपाद यति-श्रेष्ठ का गुणकीर्तन किया है, क्या वाग्दोष टिक सकता है? ११ 'चतुरंगुल चारण ऋद्धि' कहलानेवाली उन्नत तपस्या से श्री कुंदकुंदाचार्यजी संसार में प्रसिद्ध हुए। १२ दिगंबर श्री का वाक्चातुर्य अकलंकित चंद्र की वाक्चंद्रिका के समान प्रकाशित होने पर भक्त कहलानेवाले, चकोर पक्षी की तरह नाच उठे और विरोध-वादियों के मुखकमल बंद हो गये। १३ अपने निर्मल चारित्र रूपी तीर्थजल से पाप-कीचड़ को धोकर, संसार-समुद्र को तृण से भी तुच्छ समझकर, दिव्य भाषाओं के रस-समुद्र में तैरनेवाले वर्धमान भट्टारक की अर्चना, वाक्‌रूपी पुष्पचंदन से करता हूँ। १४ अपने जीवन में जैनदर्शन को ही कैवल्य समझकर उसके माध्यम से विश्व-दर्शन कर लेने की महिमा से पूर्ण वर्धमान मुनिवर वर्धमान तीर्थंकर के समान हुए। १५ योगीश्वर वालचन्द्र मुनिनाथ की ज्ञान-नेत्राग्नि से पुष्पबाण

कोरगित्तंगद कंतु सीद करियंतादं तपोराज्य त-
त्पर योगीश्वर बालचंद्र मुनिनाथ ज्ञाननेत्राग्निर्यि ॥ १६ ॥
अरविंद स्मेमास्यं तिळिपॅ हृदय संशुद्धियं मानसं शां-
त रसधीनं समाधानमनरिप तपॅस्तप्तमुत्तप्प कार्त-
स्वर शाखा लीलॅयं पालिसॅ तनु नयनं काळ्पुरंमाडॅ कारू-
ण्य रस स्रोतंगळिं लोकमनॅरिगिसिदं बालचंद्रव्रतींद्रं ॥ १७ ॥
प्रचुर कलान्वितरकुटिल- * रचंचलर् शुद्धपक्षवृत्तर् दोषा-
पचय प्रकाशरॅनॅ बा- * लचंद्रदेव प्रभावमेनच्चरियो ॥ १८ ॥
मूवत्तारूं गुणदिं * भावनजंकट्टि पट्टवॅळॅदर् वृषदिं
भाविपोडॅ मेघचंद्र * त्रैविद्यरदॅत्तो शांतरसमं तळॅदर ॥ १९ ॥
मुनिनाथं दशधर्मधारि दृढषट्त्रिंशद्गुणं दिव्य बा-
ण निधानं निनगिक्षुचापमळिनी ज्यासूत्रमोरॉन्दॅ पू-
विन बाणंगळवय्दॅ हीननधिकंगाक्षेपमं माळ्पुदा-
व नयं दर्पक मेघचंद्र मुनियॉळ् माण् निन्नदोदर्पमं ॥ २० ॥
अभिनव गणधररॅनॅ दि- * व्य भाषॅयं ताळ्दि कुमतमं तूळ्दिरं
शुभकीर्ति देवरं सक- * ल भुवनजन पूज्यपादरॅन्नदरॉळरे ॥ २१ ॥

---

झुलस-सा गया। इक्ष-धनुष व्यर्थ हुआ। मृणालदंड से निर्मित प्रत्यंच टूट गया। चिन्ता को प्राप्त मीनध्वज कामदेव जलकर कोयले-सा काला पड़ गया। १६ खिले कमल-सी मुस्कराहट हृदय-शुद्धि को, शांतरस में लीन मन तसल्ली को (सांत्वना को), तपे सुवर्ण-सी तपस्या से तपा शरीर उज्ज्वल कांति को तथा ज्ञान-गंभीर हो बहने वाले झरने के समान नेत्र करुण रस के प्रवाह को प्रकट करने के लिए, बालचन्द्र व्रतीन्द्रजी ने समस्त जगत् को ही जीत लिया है। १७ अठारह कलाओं से परिपूर्ण अचंचल शुक्लपक्ष की शुभ्र चाँदनी के समान चमकनेवाले बालचंद्रदेव का प्रभाव चकित कर देनेवाला है। १८ अपने छत्तीस गुणों से काम को (अपने) नियंत्रण में रखकर, उसको सिंहासन (अधिकार) से वंचित करके, धर्म की विजय कराकर, त्रैविद्या परिणत मेघचंद्र मुनिवरजी शांत रस की मूर्ति बने। १९ हे कामचक्रेश्वर, तुम्हारे पास एक (ही) धनुष है, वह भी ईख का; उसका प्रत्यंच कमलदंड है, पुष्प ही (तुम्हारा) बाण है, जबकि मेघचंद्र-मुनिनाथजी दशधर्मधारी एवं छत्तीस दृढ गुणों से परिपूर्ण है। उन जैसे बलशाली से अपना पौरुष दिखाना तुम छोड़ दो। २० अभिनव गणधर के नाम से सुपरिचित, दिव्य भाषा में कुमति को हवा में उड़ा देने में समर्थ शुभकीर्तिदेव को पूज्यपाद न कहनेवाला इस संसार में क्या कोई है? २१

मदनन दर्पमं किडिसि माण्दरॅ तम्म तपः प्रभावदिं
मदयुतरप्प वादिगळ दर्पमनोवददिर्पि तत्सभा-
सदरभिवर्णिपंतु तपदिं श्रुतदिं भुवनसिद्धिगा
स्पदरॅनिसिर्दरॅन्बॅनरियॅं पॉगळल् शुभकीर्तिदेवरं ॥ २२ ॥
कोडिडॅ वासुपूज्यमुनियॉळ् मरूळादपॅ चित्तजन्म नीं-
नोड निजाप्त वर्गदळवं मलयानिलनस्थिरं रण-
क्रीडॅगॅ निल्वने परभृतं निनगप्पनॅ युद्धदॉळ् बिगु-
र्तोडदॅ माण्बने मृगधरं मधुपं प्रथनक्कॅ योग्यने ॥ २३ ॥
आवॉम्वादि कथात्रय प्रवणदॉळ् विद्वज्जनं मॅच्चॅ वि-
द्यावष्टंभमनप्पुकॅयदु परवादि क्षोणिभृत्पक्षमं
देवेंद्रं कडिदंददिंदॅ कडिदं स्याद्बाद विद्यास्र्यदिं
त्रैविद्यश्रुतकीर्ति दिव्यमुनिवोळ् विख्यातियं ताळ्दिदं ॥ २४ ॥
श्रुतकीर्ति त्रैविद्य * व्रति राघवपांडवीयमं विबुध चम-
त्कृतियॅनिसि गतप्रत्या * गतदिं पेळ्दमलकीर्तियं प्रकटिसिदं ॥ २५ ॥
गणधररं श्रुतदॉळ चा- * रण ऋषियरनमल चरितदॉळ् योगिजना
ग्रणिगॅणॅयॅन्नदॅ मिक्कर- * नॅणॅयॅम्बुदॅ वीरणंदि सैद्धांतिकरॉळ् ॥ २६ ॥

---

अपने तपके प्रभाव से कामदेव के दबदबे को दबाकर, वाद-विवाद में प्रतिवादियों के अभिमान को मिटाकर, सभासदों से प्रशंसित होकर, शास्त्र-ज्ञान से विश्वप्रसिद्धि पानेवाले को शुभकीर्तिदेव कहने के अतिरिक्त और किसी तरह से (उनकी) प्रशंसा करना मैं नहीं जानता। २२ हे काम-देव, वासुपूज्य मुनि से होड़ लेने की इच्छा मत रखो। वह शक्ति तुममें नहीं है। तुम्हारे मित्रवर्ग में मलयानिल अस्थिर है। अन्यों से पोषित कोयल युद्ध में ठहर कैसे पायेगा? भौंरे कहीं युद्ध करते है? मृगधरचंद्र समर-भूमि को पीठ दिखाकर क्या भागे विना रहेगा? २३ वादों में पाण्डित्य दिखाकर, विद्वज्जनों से प्रशंसित होकर, जिस तरह देवेन्द्र ने गिरिशिखरों को अपने वज्रायुध से काटा था उसी तरह अपने विद्यावल रूपी शस्त्र से प्रतिवादियों के आक्षेपों को काटनेवाले त्रिविद्या-पारंगत श्रुतकीर्ति मुनि के समान प्रख्याति किसने पाई है? २४ त्रिविद्याव्रती श्रुतकीर्तिमुनिवर्या-जी ने चमत्कृतिपूर्ण उत्कृष्ट रामायण महाभारतों की रचना करके विद्वानों से प्रशंसित होकर श्रेष्ठ (परम) कीर्ति पाई है। २५ जिनदर्शन में गणधरों को, पवित्र चारित्र में चारण ऋषियों को वीरणंदि सैद्धातिक से तुलना न करके क्या सामान्यों से (तुलना) कर सकते हैं? २६ स्वसामर्थ्य से हरि हर ब्रह्म को पराजित करनेवाले कामदेव की अपनी तपज्वाला से

हरिहर हिरण्यगर्भर * नुरवर्णयिं गॅल्द कामनं दीप्र तपो-
भरदिंदुरिपिदरॅनॆं बि- * त्तरिसदरार् वीरणंदि सैद्धांतिकरं ॥ २७ ॥
उपदेशगॅय्दु काव्यच्छलदिनखिल धर्मगळं लोकमं ध-
र्मपथ प्रस्थानदॊळ् योजिसि परम पुराणंगळं पेळ्दु कल्पां-
त परीतख्यातियं ताळ्दिद परम कविज्येष्ठरादर तदीयां-
घ्रिपयोजंगळ् मदीयाशय मणिभवनक्ककॅं पुष्पोपहारं ॥ २८ ॥
मृदुपद वंधमं बगॆय भावद मॅयसिरियं रसप्रवा-
हद नॅलॆवॅर्चनिबरिदु भाविसि भाविसि मॅच्चि मॅच्चि पॉ-
ण्मिद पुलकंगळिं नयनदॊळ् करेगण्मिद हर्षवाष्पव-
र्षदिननुरागमं पडॅव सज्जन संस्तवमॊन्दॆ सालदे ॥ २९ ॥
वाराशिय मणिगणमं * क्रूर कुळीरक्कॆ सुगिदु सांयात्रिकनें
तारने कृतिवेरल् वगे * दारने सत्कवि निसर्ग दुर्जन भयदिं ॥ ३० ॥
विकसित चंपकक्कॅरगि बंडुणलॊल्लद चंचरीक ना-
सिकमन शेषमं बॆळगॆ तिग्मकरं दॅसॆगाणदिर्प कौ-
शिकनयनंगळं सुकवि काव्यमनालिसि कायव दुर्जन
प्रकरद कर्ण कोटरमनेकॆयॊ माडिदनब्जविष्टरं ॥ ३१ ॥
पडॆदं रजोधिकं विधि * पॅडॆवणियं फणियनमृत रसमं विषमं
कडलं सुरियं मळॆयं * सिडिलं पडॆदंतॆ सुजनरं दुर्जनरं ॥ ३२ ॥

---

वीरणंदि सैद्धांतिकों ने जन्म दिया तो उनकी प्रशंसा कौन नहीं करेगा? २७ काव्यहेतु से समस्त धर्मों का उपदेश करके, जग को सद्धर्मपथ पर चलाकर, श्रेष्ठ पुराणों की रचना कर, कल्पांतर-कीर्ति पानेवाले पूर्ववर्ती प्रवर कवियों के चरणकमल मेरे इच्छारूपी रत्नभवन के पुष्पाहार बने। २८ मृदु पद-रचना को, भावना के सौदर्य को और रस-प्रवाह के प्राचुर्य को पूर्णतः समझकर, पसंद करके उससे उत्पन्न रोमांचन के आनंदाश्रु को वहानेवाले सहृदय-वृंद की पसंद ही मेरे लिए पर्याप्त नही होगी? २९ जिस तरह जहाज का व्यापारी क्रूर जल-प्राणियों से डरकर समुद्रतल में रहनेवाली रत्नराशि लाये विना नही रहता, उसी तरह सत्कवि जग के दुर्जनों से डर कर काव्य-रचना किए बिना नहीं रह सकता। ३० ब्रह्म ने खिले चम्पक पुष्पों में झुककर मकरंद को न चूसनेवाले भ्रमरों को नाक, सूर्य के चमकते समय (उसे) न देखनेवाले उल्लुओं को आँखें और सुकवियों के काव्यों को न सुननेवाले दुर्जनो को कान न जाने क्यों दिये? ३१ ब्रह्म ने, जिसमें रजोगुण अधिक है, जिस तरह रात और सूर्य, अमृत और विष, समुद्र

रसमं भावमनर्थमं रचनॆयं काव्यज्ञरारय्दु भा-
विसि नांदीपद नायकाभ्युदय पर्यतंबरं कूडॆ शो-
धिसि नोळ्की रघुवंशराम कृतियॊळ् पत्तॆण्टु पद्यंगळं
पॊसॆवॆ - यत्नदिनाद्यरद्यतनरेकारादॊडं पेळरे ॥ ३३ ॥
रागद्वेष निबंधमप्प कृतियं निर्बंधदिं बंधमिं
बागर्थं पोसतागॆ पेळ्दखिलमं रागाविलंमाळ्प वि-
द्यागर्वग्रह पीडितर् स्वपरवाधाहेतुवं दुस्तरो-
द्योग क्लेशिनरागि बित्ति बॆळॆवंतक्कुं विषोद्यानमं ॥ ३४ ॥
पॊगळ्दु महात्मरूज्ज्वलमॆनिप्प गुणंगळनुज्ज्वल प्रसि-
द्धिगॆ पॊलनागदुज्जलिसिद प्रतिम प्रतिभा प्रभावदिं
पॊगळ्दु दुरात्मरं मॊगदॊळिर्दुगुळं पॊरगिक्कलाद ना-
लगॆयवनॆत्तु नालगॆयॊळोदिदवं कृतिये कृतार्थने ॥ ३५ ॥
भेदिसॆ भानु भानु तमसं तरिसंदु पदार्थमं परि-
च्छेदिसि काण्ववोल् जनविलोचनप्रतिम प्रभावर-
प्पादि कवीश्वरर नडॆद पद्धतियिं तनगर्थ शुद्धिवे-
त्तादॊरॆयंगमें नडॆवुद्रच्चरिये कविराज वीथियॊळ् ॥ ३६ ॥
नायकनन्यनागॆ कृति विश्रुतमागदुदात्त राघवं
नायकनागॆ विश्रुतमॆनिप्पुदु विस्मयकारियल्तु का-

---

और हवा, वर्षा और गणगर्जन का साथ-साथ निर्माण किया है, उसी तरह सज्जनों एवं दुर्जनों की एक साथ सृष्टि की है। ३२ इस रघुवंश की रामकथा में नान्दी पद से नायकाभ्युदय तक रचित आठ-दस पद्यों में रस, भाव, अर्थ को काव्यज्ञ परखें। ३३ कवि अपने विद्यागर्व के कारण, रागद्वेष से दोषपूर्ण कृति को हृदयंगम ढंग से नक हकर उसमें बाधक बनता है, तो वह स्वयं में एवं औरों में विष के उद्यान का निर्माण करता है, और कुछ नहीं। ३४ महात्माओं की उज्ज्वल प्रसिद्धि के कारणीभूत गुणों का वर्णन करके उनकी अप्रतिम प्रतिभा की प्रशंसा किए बिना, दुर्जनों के मुँह की थूकी हुई जूठन की तरह, कृति निर्माण करनेवाला कवि और उसकी कृति क्या कृतार्थ हो सकती है? ३५ सूर्य अंधकार चीर देता है तो लोगों को हर वस्तु स्पष्ट दिखाई देती है। उसी तरह अप्रतिभ प्रतिभावान पूर्ववर्ती कवियों के राजमार्ग में कदम बढ़ाकर कृतकृत्य होना मेरे लिए क्या असाध्य (कार्य) है? ३६ कथा-नायक साधारण हो तो कृति प्रख्यात नहीं हो सकती। उदात्त राघव

लायसर्दि विनिर्मिसिद कंठिकँ कांचनमालॅयंतुपा-
देयमॅनिक्कुमे विपममॉप्पदॉडावुमॉप्पलाकुमे ॥ ३७ ॥
विगताष्टादश दोपरप्प जिनरूं ज्ञानर्धि सम्पन्नर-
प्प गणाधीश्वररूं क्रमंबिडदॆं मुन्नं पेळ्दुदं श्राव्य का-
व्यगुण ख्याति निमित्तमल्लदॆं शुभध्यानार्थियँ पेळलां
बगॅदंदॆं रघुवंश रामकथे पेळ्वंतन्य सामान्यमे ॥ ३८ ॥
रवि मारिट्टळॆंदं विमत्तळमनाशा सीमॅयं दांटुव-
न्नॆवरं तन्न करंगळिदॆनॅ पॅरंगॆ मॉग्गॆ मुन्नं गण-
प्रवरर् गौतमरादियागॅ मुनिमुख्यर पेळ्दरॅन्ददु मा-
नवरॅम्मॉन्दिगरार्परे रचियिसल् रामान्वय ख्यातियं ॥ ३९ ॥
विपुलाचलदॉळ् वीर जि- ❋ न पार्श्वदॉळ् गौतमं गणग्रणि मगधा-
धिपनरियॅ नॅरॅयॆ पेळ्दुद- ❋नपूर्वमॅनॆ रामकथॅयनभिवर्णिसुवॆं ॥ ४० ॥
जगमं युगमं मन्वा- ❋ दिगळं कालस्वरूपमं जिनरं च-
त्किगळं हलधर कृष्णा- ❋दिगळं श्रीरामचरितदॉळ् वर्णिसुवॆं ॥ ४१ ॥
अदॆन्तॆनॆ—
कडॆदोरित्तिल्लॆनिप्पागसद नडुवॆ वायुत्रयं सुत्तॆ पेळार्
पडॆवन्नर तन्ननॆम्वग्गलिकॆवडॆदधस्तिर्यगूर्ध्व त्रिभेदं

---

जिसका नायक है उस कृति का लोकप्रसिद्ध होने में आश्चर्य ही क्या? काले लोहे से निर्मित कंठमाला क्या सुवर्ण-माला सी योग्य (बन सकती) है? कथावस्तु योग्य न हो तो और कोई योग्य कैसे हो सकता है? ३७ इस श्रव्यकाव्य को, जिसे क्रम से अठारह दोषवर्जित तीर्थंकरों एवं ज्ञान-सम्पन्न गणाधीश्वरों ने कहा था, उसके गुणख्याति निमित्त तथा शुभध्यानार्थ, मैंने भी कहने की इच्छा की है। रघुवंश-राम-कथा कहना क्या कोई सामान्य कार्य है? ३८ अपनी किरणों को दिगंत तक फैलाकर सूर्य आकाश को नापता है। (उसी तरह) जिस रामकथा को गणधर गौतम आदि ने कहा है, उसका वर्णन करना, हम जैसे (सामान्य) मानव के लिए क्या साध्य-कार्य है? ३९ विपुलाचल में वीर जिनों के पार्श्व में गौतम मुनि ने गणाग्रणी मगधाधिप को जो रामकथा सुनाई थी, उसी को मैं (अब) अपूर्व रीति से कह रहा हूँ (रच रहा हूँ)। ४० इस रामचरित में लोकाकारों का, युगों का, मन्वादियों का, कालस्वरूप का, जिनों का, चक्रवर्तियों का, बलदेव-वासुदेव का वर्णन किया गया है। ४१ अनंत आकाश के बीच में वायुत्रय से घिरे रहने पर, उसके बीच में षड्द्रव्यों से

बडॅदारूं द्रव्यदिं मॅय्वडॅदखिल जगं रज्जुवीरेलरूढ़ं
बडॅदत्ताप्तं जिनं केवल विपुल तुलाकोटियिं तूगे तन्नं ।। ४२ ।।
अनतिशयमादुदा त्रि- ❋ भुवन लक्ष्मिगॅ मध्यमॅनिसॅ मध्यम लोकं
जनहृदयहारि गंभी- ❋ र नाभिमंडलमिदॅनिसि जंबूद्वीपं ।। ४३ ।।

आ जंबूद्वीपद नट्टनडुवॅ—

मुट्टिदुदु मॉदल दिवमं ❋ मॅट्टिदुदॅरडनॅय वज्रॅयं मेखलॅयिं
दिट्टिगॅ पॉलनादुदु पॉ- ❋ बॅट्टं जिनजन्मसवन मणिमयपट्टं ।। ४४ ।।
आक्षोणीधर वल्लभ ❋ दक्षिण दिङमुखदॉळॅसॅदु शशिखंडदवो-
लीक्षण सुखमयमिर्पुदु ❋ दक्षिण भरत त्रिखंडदार्यखिंडं ।। ४५ ।।

अल्लि वर्तिसुवुत्सर्पणावसर्पण युगस्वरूप निरूपण विवक्षॅयिं मुख्य व्यवहार नयदॉळुभयात्मकमॅनिप्प कालस्वरूपमॅन्तॅनॆ—

जीवाजीव द्रव्य प- ❋ रावर्तन हेतु वर्तना लक्षण स-
द्भावं नित्यममूर्त ❋ केवल गम्यं सदानुमेयं कालं ।। ४६ ।।
धारा हतिर्यिं खंडिस ❋ दारं जिननाथनुळियलुळिदरनेका-
कारं लोकाकारदॉ- ❋ ळोरगमॅनिप्प कालचक्रममोघं ।। ४७ ।।
व्यवहार काल भेदम- ❋ नवरिवरॅत्तरिवराप्तरल्लर् जिनपुं-
गवरल्लदणुवनणु दां- ❋ टुव पॉळ्तं समयमॅन्दु पेळ्वनावं ।। ४८ ।।

---

भरा अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक, इस अहंकार से कि हमें कौन पा सकता है, चौदह रज्जु लंबे होकर फैले हैं । जिन ने मानो तराजू में तौलते इन (तीनों) लोकों को पकड़ा है । ४२ मध्यलोक में उसके नाभि-मंडल-सा जंबुद्वीप है । ४३ जंबुद्वीप के बीच में हिमवत्पर्वत है जहाँ जिनों का जन्माभिषेक होता है । ४४ हिमवत्पर्वत के दक्षिण में देखनेवालों की आँखों में चंद्र-सा ठंडक पहुँचानेवाला आर्यखंड सुशोभित है । ४५ काल अमूर्त है, केवल अनुमान से ही उसका अंदाज लगाया जा सकता है । यह काल जो केवल केवलियों के लिए गम्य है, परिवर्तन गुणों से युक्त द्रव्यों के जीव-अजीवों के रहने में (अस्तित्व में) निमित्त बना हुआ है । ४६ खड्ग की धार से किसी को न काटकर जिननाम को छोड़ शेष सभी को अपने में समा लेनेवाला यह कालचक्र बड़ा ही अमोघ है । ४७ काल में 'व्यवहार', 'निश्चय' नामक प्रकार है । 'समय' उसे कहते हैं जिस अवधि में एक परमाणु लोकाकाश में मंदगति से अर्ध कालाणु को पार करता है ।

समय समूहमसंख्या- ＊ तमादॉडावळियॅनिक्कुभावळि संख्या
तमॅनिप्पुदादॉडुच्छ्वा- ＊ समॅनिक्कुं स्तोकमक्कुमेलुच्छ्वासं ॥ ४९ ॥

स्तोकं नॅरॅदेळागॅ ल- ＊ वाकालं मूवत्तॅण्टुवरॅयॅनिप लवा-
नीकं . नाळिकॅ तन्ना- ＊ ळीकाल युगं मुहूर्तमॅनॅ वर्तिमुगुं ॥ ५० ॥

समयं कुंदॅ मुहूर्तदॉ- ＊ ळमोघमंतर्मुहूर्तमक्कुं मूव-
त्तु मुहूर्तमागॅ दिवसं ＊ क्रमदिं पदिनैदु दिवसमादॉडॅ पक्षं ॥ ५१ ॥

मासं पक्षद्वितयं ＊ मासद्वयमॉन्दॅ ऋतु ऋतुत्रयमयन
न्यासमयन द्वयं जिन ＊ शासनदॉळ् वर्पमय्दु वर्पदॉळॅ युगं ॥ ५२ ॥

एरडु युगं दशवर्ष ＊ तरतरदिंदितु दशगुणं पॅर्चुत्तुं
बरॅ पॅर्चुव कालकला ＊ परिसंखॅयनावनरिवनातने देवं ॥ ५३ ॥

तवुतारवु निन्नॅगळुं ＊ सवॅयवु नाळॅगळुमदरिनिळॅ नॅरॅयदु लॅ-
क्कमिडल शब्दं नॅरॅयवु- ＊ पवणिसलॅनॆं कंडरारॉ कालद पवणं ॥ ५४ ॥

अवसर्पणदॉळ् काल- ＊ व्यवस्थॅ पड्विधमॅ निक्कुमुत्सर्पणदं-
तॅवॉललिल मॉदल कालं ＊ प्रवर्तिकुं सुपमसुपमवॅम्बी पॅसरिं ॥ ५५ ॥

---

इस प्रकार को जिन-पुंगवों के अतिरिक्त सामान्य जन समझ नही सकते । ४८ अगणित 'समय' का समूह 'आवलि' कहलाता है । अनेक समयावलियों से एक उच्छ्वास बनता है और सात उच्छ्वासों का एक 'स्तोक' । ४९ सात स्तोकों से एक 'लव', साढ़े अड़तीस लवों से एक 'गळिगे' और दो लवों से एक 'मुहूर्त', बनता है । ५० तीस मुहूर्तो से एक दिन और पंद्रह दिनों का एक 'पक्ष' बनता है । ५१ दो पक्षों से एक महीना, दो महीनों की एक ऋतु, तीन ऋतुओं से एक 'आयन', दो आयनों से एक वर्ष और पाँच वर्षो का एक 'युग' बनता है । ५२ दो युग 'दशवर्ष' कहलाता है । इन दशवर्षो से आगे दसगुना करते हुए गिनकर जो कालगणना को जान सकता है वही भगवान है । ५३ कालगणना में गत काल फिर नहीं आ सकते । आनेवाले कल समाप्त नहीं हो सकते । इनको गिनने में शब्द पर्याप्त नहीं होते । काल की गहराई को कौन देख पाया है ? ५४ अवसर्पिणी काल में काल-व्यवस्था छः तरह की रहती हैं । उत्सर्पिणी काल की तरह वह वहाँ सुषम-सुषम कहलाता है । ५५ दूसरे सुषमकाल के बाद तीसरा सुषम दुष्षमकाल प्रवर्तित (प्रारंभ) होता है । चौथा दुष्पम

एरडनॆंथ सुषम कालद ※ पॉरॆयॉळ् मूरनॆय शुषमादुष्षमकालं
चरियिसुगुं नाल्कनॆंयदु ※ परिविडियिंदप्पुदल्तॆं दुष्षमसुषमं ।। ५६ ।।

अनुसंधानं - गिडदै - ※ दनॆंयदु दुष्षममॆंनिप्प कालं बळिका
रनॆंयदतिदुष्षमं व- ※ र्तनमिती तॆरनॆं रहटघटिका न्यायं ।। ५७ ।।

तनुभोगायुष्यं - गळ ※ मनुष्यरॉळ पॆर्चुवडॆंगुमुत्सर्पणदॉळ्
तनुभोगायुष्यं - गळ ※ मनुष्यरॉळ् कुंदुवडॆंगुमवसर्पणदॉळ् ।। ५८ ।।

एरडु युगमॉन्दॆं कल्पं ※ निरंतरं शुक्ल कृष्ण पक्षंगळवोल्
परिवर्तिसुगुं तत्क- ※ ल्पराजिगारय्वॉडिल्ल मॉदलुं तुदियुं।। ५९ ।।

इंतनंतानंत कल्प परिवर्तनमप्पुकॆंय्द आर्यखंडदवसर्पणद मोदलकाल—

दॉळ्—

सुरभूजं ज्योतिरंगं बॆंळगॆं तमद मातिल्ल चंदार्करूं
मैगॆंरॆंद्रिर्पर् तोरवारूं ऋतु पगलिरूळॆंम्बी विभेदंगळिल्ला

---

सुषम कहलाता है। ५६ क्रम में पाँचवाँ दुष्षम काल कहलाता है। छठा अतिदुष्षम काल है। इस तरह रहॅट के घटों के समान काल उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी (काल) वदलते हैं। ५७ उत्सर्पिणी काल के मनुष्यों में देह, भोग, आयु आदि वर्धित होते हैं। अवसर्पिणी काल के मनुष्यों में वे घटते हैं। ५८ दो युग, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की तरह, कल्प बनते हैं। गहराई से विचार करने पर उसका न आदि है और न अंत। ५९

इस तरह अनंतानंत कल्प-परिवर्ती होकर आर्यखंड में अवसर्पिणी के प्रथम (प्रारम्भ) काल में—

कल्पवृक्ष के प्रकाशित होने पर अंधकार मिट गया। सूर्यचंद्र अदृश्य हुए। एक साथ छः ऋतुएँ दिखाई पड़ीं। रात-दिन का (कोई) भेद नहीं रहा। प्रजा-राजा का कोई अंतर नहीं रहा। मनुष्य की चिन्ता, वुढ़ापा, आकांक्षाएँ न रहकर अचानक सुषमसुपम काल फैला हुआ है। ६० इस (ऐसे) काल में समुचित वोलचाल एवं अतिशय रूप कला

ळरसॅम्बी पंबलिल्लाजॅवरॅं मनुजरॅल्ल जरांतकमिल्ला-
तुरमिल्लाश्चर्यभूतं सुषमसुषम काल स्वभाव प्रभावं ॥ ६० ॥

दंपतिगळॆ पुट्टुवरा- * र्गं पॉल्लमॅं पुट्टदनतिशय रूपकला
संपन्नरॅनिसि सुरगति- *यं पडॅदर् कडॅयॉळुचित भापावेपर ॥ ६१ ॥

अपमृत्यु विरहितं मू- * रॅं पळितमायुष्यमुद्दमरूसासिर वि-
ल्लपसारित मलमूत्रा- *दि परीषह दोषमपघनं दंपतिया ॥ ६२ ॥

त्रिदिनदनितु कालक्कॉमॅ संसार सौख्य
प्रदमिदॅनिप दिव्याहारमं भोजनांगं
बदरफल समानाकारमं कॉट्टुदं कॉ-
ड़ुदर बलविलासंबॅत्तु युग्मंगळिर्कु ॥ ६३ ॥

सिरिय मॉगरसद पॉस मै * सिरियॅनिकुं पूगॉळंगळा नॅलननितुं
सुरचापद बॅळसिन हर *वरियॅनिकुं पंचरत्नरूचिवल्लरियिं ॥ ६४ ॥

चतुरंगुलमॅनिसिद तरू- * ण तृण ग्रासदॉळॆ तणिदु तिळिनीरं पी-
दॅतनुक्रीडा रत मृग- *ततिगळ् दम्पतिगळल्लि नलियुत्तिर्कु ॥ ६५ ॥

कुसुम स्रग्वसनान्न पान विविधातोद्य प्रकाश प्रदी-
प सुधासद्म विचित्र भाजन विभूषानीकमं कॉट्टु सं-
तसमं माडॆ दशांग कल्पतरूगळ स्वर्गक्कॅ संसार सा-
र सुखक्कग्गळमॅन्नदा प्रथमकाल श्रीयनेवण्णिपॆं ॥ ६६ ॥

---

से पूर्ण दम्पति जन्म लेते है। अंत में वे सुरगति पाते हैं। ६१ ये दम्पति अपमृत्यु नहीं पाते और उनकी आयु तीन 'पळित' (जैनों के समय का हिसाब) है। इन्हें मल-मूत्र, शीतोष्ण के द्वंद्व नहीं रहते। ६२ ये दम्पति तीन दिन में एक वार संसार-सुख के अनुकूल रहनेवाले वदरी फल जैसे (समान) दिव्य आहार का सेवन करके वल विलास पाकर जीते हैं। ६३ वहाँ के पुष्पवन लक्ष्मी के श्रीमुख की नयी कांति वनकर आये वहाँ की धरती झूमती हु पुष्पलताओं से कामदेव के धनुष का प्रकाश फैलानेवाला क्षेत्र बनकर सुशोभित हुई। ६४ घास के अंकुरों से भूख मिटाकर, तालाब का स्वच्छ पानी पीकर, शरीर से शरीर मिलाकर खेलनेवाले मृगदम्पती वहाँ नाचा करते हैं। ६५ पुष्पमालाओं को वस्त्र के रूप में, विविध वाद्यों को अन्नपान के रूप में, प्रकाश-प्रदीपों को भूषण के रूप में देकर संतोष प्रदान करने वाले दस तरह के कल्पवृक्ष इस काल में रहते हैं, तो यह कहना गलत नहीं होगा कि यह संसार-सुख स्वर्ग (-सुख) से वढ़कर है। ६६

अंताकालमुत्तमभोग भूमिस्थितिं नाल्कु कोटि कोटि सागरोपममनुक्रमदिं कुंदुत्तुं वंदनंतरं सुषममेंवेरडनेय कालद मध्यमभोग भूमिस्थितियोळ्—

तनु नाल्सासिर विल्निडि-
देंनिक्कुमायुष्यमेरडु पळितोपममं
दिन मनुजरक्ष फलदनि-
तेंनिप रसायनमनेरडु दिवसक्कुण्बर् ॥ ६७ ॥

मत्तमाकालं मूरु कोटि कोटि सागरोपमं कळिदिंबळियं सुषमदुष्षममेंब मूरनेय कनिष्टभोग भूमिस्थितियादुदंदिन मिथुनंगळ्—

अळविय लेंक्कं तम्मोळ्
पळितोपमागे देहमिर्छासिर विल्
बळेंये सुधासारमना-
मळकफल प्रतिममं दिनांतरमुण्बर् ॥ ६८ ॥

मत्तमा जघन्य भोगभूमिप्रवर्तनमेरडु कोटि कोटि सागरोपमद कडेय पळितोपदेंटनय भागमुळिय बळियं कुलधरावतारमक्कुमेंदंतेने—

अज्ञानत्रय रहितर्
त्रिज्ञान धरर् विदेहदिं बंदधिक
प्रज्ञर पुट्टुवरी नेंल-
नाज्ञमुद्रितमेनल् चतुर्दश मनुगळ् ॥ ६९ ॥

---

इस तरह उस काल के उत्तमभूमिस्थिति से चार करोड़ कोटि सागर वर्षो के बीत कर घट जाने के पश्चात् सुषम नामक द्वितीयकाल के मध्यम भोगस्थिति में मनुष्यों का शरीर चार हजार धनुष जितना लंवा था और आयुष्य दो पळित जितना हुआ। वे दो दिनों में अक्षफल (वहेड़ा) जितना आहार लेते थे। ६७ इस तरह तीन करोड़ कोटि सागर वर्षो के वीतने के वाद यह काल विषम दुष्षम नामक तीसरी कनिष्टभोग-भूमि-स्थिति को प्राप्त हुआ। तब के मनुष्यों की आयु एक पळित थी। उनका शरीर दो हजार धनुष जितना लंवा था और वे एक आँवले जितने आहार का सेवन करते थे। ६८ यह काल दो करोड़ कोटि सागर वर्षो का था। एक पळित का १/८ वाँ अंश शेष रहा तो कुलधरों का अवतार इस तरह हुआ मानो अज्ञानरहित हो त्रिज्ञानधरों ने एवं अधिक प्रज्ञधारी चौदह मनुओं ने इस भूमि को अपने आज्ञावश में मानकर जन्म लिया हो। ६९ उनमें प्रतिमुनि ज्येष्ठ (वड़ा)

अल्लि मॊदल कुलधरं प्रतिश्रुतियॆंबं—
बलवर्पं कालपुरुषन
कलधौत विशाल कर्णकुंडल युगमं
गॆलॆवंदु सूर्य शशि मं-
डलमासुरमागॆ गगनदॆरडुंकेलदॊळ् ॥ ७० ॥

अवं काणलॊडमंदिन युगळमुत्पात युगळमॊगॆदुदॆंदु भीतमप्पुदुं ज्योतिरंग तरू तेजोभंगदिं काणलादुविवु चंद्रादित्य विमानंगलॆंदु-मॊळविल्लिलदित्तलितॆ तोर्कुमिवकॆं बॆच्चदिरिमॆंदवर मनद संकॆयं कळॆदनातनि बळियमॆरडनॆय कुलधरं सन्मतियॆंबं—
किसुसंजॆ पर्वॆ मर्व-
विसॆ तारानिकरमॊगॆयॆ बॆल्कुत्तर् बॆ-
क्कसमुत्तर् भयरसदिं
दॆसॆगॆट्टर् कंडदृष्ट पूर्वमनार्यर् ॥ ७१ ॥

अंतु भयस्थरादन्नादार्यरं कंडु सूर्य किरणमस्तमय समयदॊळ् तप्त तपनीयमयमॆनिप्प निषद नगद नॆगॆद कॆंबॊळपिनॊळ् पळंचॆ रंजिसिद संजॆ परॆयॆ कविद कळ्तलॆयॊडनॆ ताराग्रह नक्षत्रं तलॆदोरूगुमिल्लिलदित्तलहोरात्र भेदमक्कुमॆंदवर मनोविषादमं कळॆदनातनि बळियं मूरनॆय कुलधरं क्षेमंकरनॆंबं सिंह शरभ सार्दूल

---

था।—उसके जीवनकाल में परिभ्रमण करने वाले कालपुरुष के सोने चाँदी से निर्मित कर्णकुंडलों का प्रकाश सूर्यचंद्र-मंडलों के तेज को फीका करता हुआ आकाश के दोनों ओर व्याप्त हुआ। ७० उसे देखकर लोग भयभीत हुए। कुलधर ने यह कहकर लोगों को सांत्वना दी कि ये सूर्य चंद्र है और ये अब हमेशा दिखाई देते रहेंगे। द्वितीय कुलधर का नाम था सम्मति। उसके काल में सूर्यास्त के पश्चात् फैले अंधकार को एवं नक्षत्रों को चमकते देखकर लोग आश्चर्य चकित तथा भयभीत हुए। ७१ इस तरह भयभीत आर्यो को देखकर उसने यह कहकर उनकी घबराहट को दूर किया कि—"अस्तमान के समय सूर्य-किरणें तपे हुए सोने के समान दिखाई देनेवाले निपद (निषध) पर्वत पर गिरती हैं और उनकी आभा से काँपने पर संध्या समाप्त होकर अंधकार फैल जाता है और नक्षत्र दिखाई देते है। अब से रात और दिन का भेद हो जायगा।" सम्मति के बाद तृतीय कुलधर का नाम था क्षेमंकर। क्षेमंकर के समय

व्याळ मृग मिथुनंगळ् कालस्वभावदिं ऋजु स्वभावमं पत्तुविट्टु विषम स्वभावमनप्पुकॆय्वुदुं—

विपरीतमाद मृगकुल-
दुपद्रवं निमगॆ दंड पाशादिगळि-
दपहरिसुगुमॆंदार्य-
गॆुपदेशंगॆय्दु कळॆदनवरॆदॆ बळिलं ॥ ७२ ॥

आतनिं बळियं नाल्कनॆय कुलधरं क्षेमंधरनॆंबनंधकारमप्पुदुं प्रजॆगुपद्रवमं क्षुद्र पशुमृग युगंगळॊडरिसॆ—

रविरश्मिगळिं पुट्टिसि
रविकांतोपल कृशानुवं कोळ्मिगमं
दिवसदवसान समयदॊ-
ळवनंजिसुवॊंदुपायमं प्रजॆगित्तं ॥ ७३ ॥

आतनिं बळियमय्दनॆय कुलधरं सीमांकरनॆंबं कल्पतरु-गळल्पफलदंगळाग भोगभूमिजर तमतमगॆ नॆरॆयवॆंब संकल्पदिं—

ओवॊर्वर सुर तरुगळ
नोरॊर्वरिवॆम्म वॆंबुदुं पूर्व स्वी-
कार व्यवस्थॆ निलॆ सा-
धारण सीमाविवादमं बारिसिदं ॥ ७४ ॥

आतनिं बळियमारनॆय कुलधरं सीमंधरनॆंबं—

---

सिंह, शरभ, शार्दूल, सर्प, मृग आदि जो अब तक ऋजु (सरल) स्वभाव के थे जब क्रूर बनने लगे तो—उनके उत्पात के निवारण के निमित्त लोगों को दंडपाशों का उपयोग बनाकर उनके दुःख को दूर किया। ७२ चतुर्थ मनु क्षेमंधर के शासनकाल में क्षुद्रमृगों ने रात के समय प्रजा को सताना शुरू किया तो—सूर्य-किरणों से सूर्यकान्त शिलाओं का निर्माण करके, उन्हें रगड़कर अग्नि उत्पन्न करने का उपाय बनाया। ७३ सीमांकर पाँचवां कुलधर हुआ। उसने भोग-भूमि के लोगों की माँग को उस काल में अल्प फल देनेवाले कल्पतरु पूरा नहीं कर सकते—यह सोचकर तथा यह कहकर सीमाविवाद का निवारण किया कि कल्पतरु सबका है और इसे लेकर 'हमारा-तुम्हारा' का कोई झगड़ा नहीं होना चाहिए। ७४ छठा कुलधर हुआ सीमंधर। उसने संकुचित प्रवृत्ति की (अपनी) प्रजा के बीच में कल्पवृक्षों को लेकर आपस में होने वाले झगड़े को समाप्त कर

कलुषांधर् सुरतरु सं-
कुलमेम्मवु तम्मवेंदु तम्मोळगार्यर्
तलेयोत्तिकुट्टि पोय्वव-
रलवरिकेयोळाद तोटियं तोळगिसिदं ॥ ७५ ॥

आतनिं बळियमेळनेय कुलधरं विमलवाहननेंवं—
अडिदळिर्गे धरावलयं
कडुवेट्टित्तागे नडेयलरियदे मनुजर्-
सेडेये हयादिगळिंदं
नडेयिसिदं कलिसि वाहनारोहणमं ॥ ७६ ॥

आतनिं बळियमेंटनेय कुलधरं चक्षुष्मनेंबनंदिन मिथुनंगळ्
सुतमुख विलोकनदिनति कुतूहलमनप्पुकेय्वुदुं—
युगळंगळ्पुट्टे सींतागुळिसि पितृयुगं सत्तु सग्गंगळोळ् पु-
ट्टुगुमिल्लि मुन्नमित्तल् कतिपय दिनदिं मक्कळं नोडि सावे-
य्दुगुमीगळ् कर्मभूमि स्थित मोगसिदुदिं बालकालोकदिंदु-
ब्बेगमिल्लेंदितु कालस्थितियनवर्गति व्यक्तमप्पंतु पेळ्दं ॥ ७७ ॥

आतनिं बळियमोंबत्तनेय कुलधरं यशस्वियेंबं—
अवरिवरेन्नदे मुन्ना-
र्यवेसर् पेसरागे बेरेवेरंदिन मा-
नवर्गे पेसरिट्टु नाम
व्यवस्थेयं पडेदु मनुगळोळ् पेसर्वडेदं ॥ ७८ ॥

---

दिया। ७५ सातवें कुलधर का नाम विमलवाहन था। उसने कठोर भूमि पर पग रखकर चलने से डरने वाले प्रजाजनों को घोड़ों पर चढ़कर प्रयाण करने की कला सिखाई। ७६ आठवे कुलधर का नाम था चक्षुष्म। अपने शासन काल में दम्पतियों को अपनी संतान के प्रति कुतूहली बनते देखकर उसने—"बच्चों के जन्म लेने पर शुरू शुरू में माता पिताओं के आलस्य के कारण उनके स्वर्ग में जन्म लेने वाली कर्मभूमिस्थिति उत्पन्न होती है। बाद में इस तरह की मनोव्यथा की गुंजाइश नहीं रहती," यह कहकर कालस्थिति बताई। ७७ नवम मनु हुआ यशस्वी।—वह अपने समकालीन लोगों में किसी तरह का भेदभाव न दिखाकर योग्य नाम देकर, नाम व्यवस्था करके, कुलधरों में प्रसिद्ध हुआ। ७८ दसवें कुलधर का नाम था अभिनवचंद्र।—उसने आकाश में चमकने वाले चाँद

आतनिं बळियं पत्तनेय कुलधरनभिचंद्रनेंबना कालदोळ्—

उडुपतियुमनुडु गणमुम
नेडेयुडुगदे तोरि तोरि किरुगूसुगळं
नुडिगलिसिदं तोदल्नुडि
पडेविनेगं पितृयुगक्के कर्णामृतमं ॥ ७९ ॥

आतनिं बळियं पन्नोंदनेय कुलधरं चंद्राभनेंबं—

इननं शीतांशुवं मंजिन मुगिल पोर्दपि जनं काणदाकं
पनमं कैकोळ्वुदुं बेळ्ळने बेळगलोडं तोरुगुंकर्मभू व-
र्तनमत्यासन्नमेंदा स्थितियनरूपि संतैसि संताप बिच्छे-
दनमं तंदं यशचंद्रिकेगे नेरेयदेंबन्नमाशांतराळं ॥ ८० ॥

आतनिं बळियं पन्नेरडनेय कुलधरं मरुद्देवनेंबं—

सरि सुरिये मिंचु मिल्लिसे
सुरचापं नेगेये बेडगुगोंडवरं सं-
वरिसि घनाघन समय
स्वरूपमं तिळिपि कळेदनवरूम्मळमं ॥ ८१ ॥

आतनिं बळियं पदिमूरनेय कुलधरं प्रसेनजित्तेंबना कालदोळ् दरियुमळ्दरियुं कुरियुं कुत्तुरुं बेट्टमुं घट्टमुमुपनदियुमुपसमुद्रमुं पुट्टि सलिलसंघातदिनपमृत्यु पुट्टे मानसरसह्य शोकानल दंदह्यमान मानसरागे—

---

और तारों को वच्चों को निरंतर दिखाकर, (उन्हें) तोतली बोली सिखाते हुए मानों माता-पिताओं को कर्णामृत प्रदान किया। ७९ चंद्राभ ग्यारहवाँ कुलधर हुआ।—वादल और कोहरे से घिर जाने के कारण सूर्यचंद्र दिखाई न पड़े तो लोग भयभीत हुए। और जव वे (वादल और कोहरा) हट गये तो लोगों को आश्चर्य हुआ। चंद्राभ ने यह कहकर उनके संताप को दूर किया कि "अव कर्म भूमिस्थिति आ गई है"। ८० वारहवें कुलधर का नाम मरुद्देव था। वर्षा होने पर, विजली चमकने पर, (आकाश में) कामधनुष (इन्द्रधनुष) दिखाई देने पर आश्चर्य-चकित होने वाले लोगों को वर्षा ऋतु का स्वरूप तथा लक्षण वताकर उनके दुःख का निवारण किया। ८१ तेरहवाँ मनु था प्रसेनजित्त। वर्षाऋतु में छोटे-वड़े प्रवाहों से, गड्ढे, नाले, टीले, घाट, उपनदी, उप-समुद्रों की जलराशि से होने वाली अपमृत्यु की असह्य शोक-ज्वाला से पीड़ित लोगों को—प्रसेनजित्त ने समझाया कि जिस तरह तेल के समाप्त

तवे तैलं दीपं नं- ※ दुवंते गळियिसे निषेकमरिवर् मुन्नं
पवन प्रहारदिं तै- ※ लवुळ्ळोडं नंदुवंते पोंदुवरीगळ् ॥ ८२ ॥

बडिकोळे कायुं पण्णु
तोडबे परिदुदिर्व माळ्कॆयि किरिविरियर्
मड़िवरनुक्रमदिं सा-
वोडरिसदोडरिसुवुदल्ते कदळीघातं ॥ ८३ ॥

उदयिसि नड़ुवगलप्पुदु
मुदितोदितनागि सूर्यनस्तमिसुववोल्
उदयिसि जोवनमं तळॆ-
दोदविद मुप्पिनोळॆ कळिवरिल्लि वळियं ॥ ८४ ॥

एंदु कालस्वरूप निरूपणगॆय्दवर शोक प्रत्यनीकमनदर्पिदं ई पेळ्द कुलधर संकुलक्कॆ—
ओंदु पळितद दशांशदो- ※ ळोंदंशं मोदल मनुगॆ पदिमूवरोळं
पिंदणवर्गळ दशांशदो- ※ ळोंदंशं मुंदणवर्गॆ परमायुष्यं ॥ ८५ ॥
सासिरमॆंटूनूरु श- ※ रासनमोर्वगॆ पंचशत हीनं वा-
णासनमिवर्गुळिद- ※ गोसरिकुं क्रमदिनुद्धमिर्पत्तैविल् ॥ ८६ ॥

---

हो जाने पर दीप बुझ जाता है उसी तरह (आयु समाप्त होने पर) लोग मरते हैं, यह स्वाभाविक है। लेकिन जिस तरह तेल भरा रहने पर भी, तूफान आ जाने पर, दिया बुझ जाता है। उसी तरह आकाश में भी लोगों का मरना आश्चर्यजनक नहीं है। ८२ कच्चे-पक्के फलों से लदे पेड़ की शाखाओं पर डंडों से मारे तो पहले पके फल और बाद में कच्चे फल गिरते हैं। उसी अनुक्रम से लोग मरते हैं। देखो कदली-वृक्ष फलों की गोद देकर ही मरता (सूख जाता) है। ८३ पहले सूर्योदय होता है, बाद में मध्याह्न। अंततः संतोषचित्त हो जिस प्रकार सूर्य अस्त होता है इसी तरह भविष्य में जन्म लेकर, बाल्य, यौवन बिताकर बुढ़ापे में लोग मरेंगे। ८४ इस तरह कालस्वरूप को सविस्तार समझा कर उसने लोगों के शोकरूपी शत्रु का निवारण किया। प्रथम मनु की आयु 'पळित' के १/१० अंश 'प्रमाण' रही; तत्पश्चात् के मनुओं का आयु-प्रमाण क्रमशः प्रथम कुलधर की आयु का १/१० अंश जितना घटता जाता है। ८५ प्रथम कुलधर का देहप्रमाण है एक हजार आठ सौ धनुष लंबा। द्वितीय मनु का देहप्रमाण प्रथम मनु से पाँच सौ धनुष कम। तृतीय कुलधर का देहप्रमाण आठ सौ धनुष। तत्पश्चात् के कुलधरों

मनु चंद्राभं पांडुर ※ तनुवे यशस्वि प्रसेनजिच्चक्षुष्मर्
वनज दळच्छविगळ् कां-※ चन रोचिष्णुगळे मिक्क कुलधररेल्लं ॥८७॥

मंतणमेनादिय म-※ न्वंतरदोळशीतिभागि पल्यदोळाम-
न्वंतर दशमांशं म-※ न्वंतरमक्कुं प्रसेनजित्पर्यंरं ॥ ८८ ॥

क्रमदय्वरिंदे हा दं-※ डमय्वरुं मनुगळिंदे हामादंडं
समनिसे हामा धिग्भं-※ डमय्वरिंदाय्तु भरतनिं तनुदंडं ॥ ८९ ॥

तदनंतरं पदिनाल्कनेम कुलधरं नाभिराजनेंबं पंचविंश-त्युत्तर पंचशत शरासनोत्सेधनुं पूर्वकोटि परमायुष्यनुमेनिसि—

मुन्निन जन्मद सुकृतमे
सन्निदमाय्तेने मति श्रुतावधिबोधं
तन्नोडने पुट्टे पुट्टिद-
नेन्नाभि यशस्सनाभियो कुलधररोळ् ॥ ९० ॥

ओरोंदं कुडुगुं दशांग सुरभूजं बेळ्पुदं भूतल-।
क्कारेनं पडेदंतु जीविसुवरेंबी कर्मभू वर्तन ॥
प्रारंभोचित जीवनोपकरणोपायंगळं तोरि को-
ट्टारातीय मनुप्रधानरनुदात्तं नाभि कीळ्माडिदं ॥ ९१ ॥

---

को देहप्रमाण क्रमशः पचीस धनुष घटता जाता है और चौदहवें मनु का देहप्रमाण पाँच सौ पचीस धनुष रह जाता है। ८६ चंद्राभ कुलधर पांडर वर्ण का है। यशस्वी, प्रसेनजित्त और चक्षुष्म का वर्ण कमलदल के समान था। अन्य कुलधर काँचन रंग के थे। ८७ प्रथम मन्वंतर की अवधि है एक 'पळित' का १/९ वाँ अंश। तत्पश्चात् प्रसेनजित्त मनु तक के मन्वंतर की अवधि क्रमशः प्रथम मन्वंतर के १/१० अंश जितनी घटती है। ८८ क्रमशः पांच राजाओं से हादंड व्यवस्था, पांच मनुओं से हामादंड व्यवस्था, शेष पांचों से हामाधिदंड व्यवस्था और भरत से तनुदंड व्यवस्था शुरू हुई। ८९ उसके वाद चौदहवें कुलधर नाभिराज का जन्म हुआ। उसका देहप्रमाण था पाँच सौ पचीस धनुष। वह पूर्व ☸ करोड़ परमायुष्यमान था।—मानो पूर्व जन्म का पुण्य ही उदित हुआ हो, इस प्रकार अवधिज्ञानी के रूप में जन्मा नाभिराज कुलधरों में प्रसिद्ध हुआ। ९० नाभिराज ने यह समझकर कि कल्पवृक्ष से मिलने वाले अल्प

☸ पूर्व = जैन मतानुसार एक कालविशेष जो सात नील, पाँच खरव, साठ अरव वर्ष का होता है।

मोदलिगनवनीश्वररोळ् * पदिनाल्कनेयं मनुप्रधानरोळेंबो- ॥
ळ्पुदितोदितमेने महिमा-* स्पदनादं नाभिनाभिखंडन कुशलं ॥ ९२ ॥

भुवन जन जीवनोपा- * य वृत्तियं तोरिकोट्टु कृत्त कृपिकर्मं ॥
व्यवहृतियिं कृतयुगमें- *व विकल्पमनादिकालदोळ् पुट्टिसिदं ॥९३॥

पिंडि पिळिदिक्षुरसमं * कोंडुपयोगिसुवुपायमं तोर्पुद्दुमा ॥
दंडधर वंशमवनी * मंडममीक्ष्वाकुवंशमेनिसित्तिळेयोळ् ॥९४॥

नयनं नीलसरोजमं सेणसुगुं वृक्षःस्थळं वज्रवे-
दिय नाळ्पिसुगुं मुखं कमलमं कीळ्माड्डुगुं कैगळा-
नेय कैयं नखमिंदुवं नगुगुमूनम्माड्डुगुं जानु वा-
ळेयं कंभंगळनेंदोडेवोगळ्वेनो भानाभियं नाभियं ॥ ९५ ॥

मरुदेवियें तक्कळ् ना-
भिराजल्लभे येनल्के वल्लभनेनिसल्
मरुदेविगे तक्कं ना-
भिराजननुरूपरिन्नरार् दंपतिगळ् ॥ ९६ ॥

---

आहार भूतल के लोगों की माँग को पूरा करने में असमर्थ हैं, कर्मभूमि के लोगों को जीवनोपार्जन के विभिन्न उपाय वताकर अब तक के समस्त कुलधरों में सर्वश्रेष्ठ कहलाया। ९१ राजाओं में सर्वप्रथम और मनु-प्रधानों में चौदवे माने जाने वाले नाभिराज ने, जन्म लेने वाले बच्चों की लंवी नाभि को काटने का उपक्रम प्रारंभ करवाया और महिमावान कहलाया। ९२ संसार के लोगों के जीवनोपाय-निमित्त कृषि संबंधी जानकारी देकर, अपने जीवन काल को कृतयुग नाम देकर उसे अन्वर्य (सार्थक) वना दिया। ९३ ईख को निचोड़ कर (पेर कर) रस निकाल कर उपयोग करने का तरीका लोगों को वताने के कारण उस वंश का नाम इक्ष्वाकुवंश पड़ा। यम ही इस (वंश) का मूल पुरुष था। ९४ जिसकी आँखें नीलकमल से होड़ ले रही थीं, छाती वज्रवेदी से टकरा रही थी, मुख कमल को भी नीचा दिखा रहा था, हाथ हाथी की सूँड को लजा देते थे, नख की तुलना में चाँद भी फीका प्रतीत होता था, जाँघें कदलीदंड को लज्जित कर देती थीं, ऐसे नाभिराज के स्वरूप-सौन्दर्य का वर्णन कैसे किया जा सकता है? ९५ मरुदेवी ही नाभिराज की पत्नी बनने योग्य थी। उसके पति बनने की योग्यता नाभिराज में थी। फिर उन जैसे रूपवान दम्पति और कौन होंगे? ९६ देवताओं की स्त्रियाँ ही (मरुदेवी की) परिचारिकाएँ थीं, नतमस्तक हो देवेंद्र ही पूजा करता था।

परिचारिकेयर् सुरसुं-
दरियर् पोडवट्टु पूजिपं पुरूहुतं
पुरदेवनें पेर्मगनेनें
मरुदेविय महिमें वण्णिसल्बंपुदे ॥ ९७ ॥
अवतंसं तन्नगुण
स्तवनं धरेगेनिसि नाभिराजं धरणी
युवतिगे मरुदेविये दल्
सवतियेनल् सुखदिनरसुगेय्युत्तिर्द ॥ ९८ ॥

अंतिर्पुदुं—
मरुदेविगे पुट्टिदपं * पुरुदेवं बंदु दिवदिनेंबवधियिना
पुरूहूतनरिदयोध्या- * पुरमं नाडाडियल्लदंतिरे पडेदं ॥ ९९ ॥
नाडोळ् कौशलदेशमोंदे पुरदोळ् साकेतमोंदीक्षण
क्रीडावासमेनल् पुरंदरनलंपिं नाभिराजंगवं
माडिट्टं करुविट्टु मन्मयनें बण्णंगेय्दनंदंदोडा-
नाडं बीडुमनोंदे नालगेयोळिन्नेवण्णिपं बण्णिपं ॥ १०० ॥
बीडु सुकृतक्के चेल्वि * गाडुंबोलनाश्रमं सुखक्कनें पेरतें
नाडाडिय नाडल्लदु * नाडोळगुत्कृष्टमल्ते कौशलदेशं ॥ १०१ ॥
पर्वतसानु सर्वमणियिं पळु सर्वफलद्रुमंगळिं-
दुर्वरे सर्वसस्यदोंदविं तरु गुल्म लता वनस्थलं

---

वृषभदेव जिसके ज्येष्ठ पुत्र हैं, ऐसी मरुदेवी की महिमा का वर्णन करना असंभव है। ९७ गुण-श्रवण ही मानो उसका कर्णाभरण था। मरुदेवी उस (नाभिराज) की भूमि की मानों सौत थी। वह सुख से राज्य करता था। ९८ देवेंद्र ने अवधिज्ञान से यह जानकर कि मरुदेवी के गर्भ से पुरुदेव जन्म लेगा उसने (देवेंद्र ने) अयोध्या नगर को सजाया। ९९ देशों में केवल कौशल देश और नगरों में साकेतपुर ही श्रेष्ठ है। यह सोचकर देवेंद्र ने आनन्द से नाभिराज के लिए मन्मथ द्वारा उनका निर्माण करा दिया। तव उस देश और नगर का वर्णन एक जीभ वाला व्यक्ति कैसे कर सकता है? १०० वह देश जो सुकृतियों का निवास स्थान, सौंदर्य का क्रीडास्थल, सुखों का आश्रय स्थान है, सामान्य देश नहीं है—देशों में कौशल देश ही सर्वश्रेष्ठ देश है। १०१ पर्वत अनेक तरह के रत्नों से, अरण्य फल-भरे पेड़ों से, भूमि सस्य-समृद्धि से, वन के पेड़-पौधे-लताएँ सर्वऋतुओं के प्रभाव से, समस्त लोग

सर्व ऋतु प्रवेशदिनशेषजनं परिपूर्ण लक्ष्मियिं
सर्वगुणगळिंदेसेये सर्वसुखावहमा महीतलं ॥ १०२ ॥
आमर्द मुंदिडे मंदहासमलर्गण् बेळ्दिंगळं वीरे तो-
ळ मोदलगेय्दे पोदळ्दि पेर्मोलेगोडंगळ् सूसे लावण्य तो-
यमनालोकनमार्लदिं मरेदु पांथश्रेणि नीरळ्केयं
श्रममं तीरमेयं प्रपागनेयरं कण्णावुदादेशदोळ् ॥ १०३ ॥
तीविद तिळिगोळदिं पो-
न्दावरेगोळदिंदरल्द नेय्दिलगोळदिं-
दावलगोळदिं चेल्व-
गावासमेनिप्पुवोप्पुवा नाडूगळ् ॥ १०४ ॥
कलकंठक्कतनुगे चा-
पलतारोहण विकारवळिगाम्र कुजा-
वलिगे मधुविकृति मानव-
कुलक्के कनसिनोळमिनिविल्ला नाडोळ् ॥ १०५ ॥
समरत संजनित परि-
श्रममं दंपतिगे कळेदु मगुल्दुं रतिरा-
गमनिरदोदविपुदु नवो-
द्गम परिमळविषयमेनिप विषयसमीरं ॥ १०६ ॥

---

सर्व-सम्पत्ति एवं गुणों से युक्त होकर समस्त सुखों का उपभोग करते थे। इस प्रकार कौशल देश शोभा देने लगा। १०२ वहाँ, राही राह में जलदान करने वाली स्त्रियों के मंदहास में अमृत को और स्पुटित नेत्रों में चाँदनी को देखकर, बाहुमूल तक व्याप्त उनके कलश तुल्य कुचों का अवलोकन करके, अपनी प्यास तथा थकावट को भूलकर उनकी रूपराशि को पीने में ही लीन हो जाते थे। १०३ जहाँ देखें वहाँ शुद्ध पानी के तालाबों से, लाल कमलों के सरोवरों से, उस देश के गाँव सौंदर्य के निवास स्थान बनकर सुशोभित थे। १०४ असह्य रूप केवल कोयलों तक, चपलता की उड़ान का विकार केवल भ्रमरों तक, ऋतुवती की विकृति केवल आम्रवृक्षों तक ही सीमित थी—मानव कुल में, स्वप्न में भी, वे (अवगुण) नहीं थे। १०५ दम्पतियों द्वारा समान रूप से अनुभूत रतिकेलि की थकावट को दूर करने वाली (घटाने वाली) सुगंध को, वहाँ बहने वाली मंद हवा अपने साथ ले आती और पुनः रतिक्रड़ा में प्रवृत्त करा देती थी। १०६ इस तरह जब विषम सुख रूपी मणिमय दर्पण

आ विषय विलासिनिगे मणिमय मुकुरमेनिसि—
कण्णेवेयिक्कदारु ऋतुवुं बनमं सिरि केय्वोलंगळं
कण्णेवेयिक्कदल्लि पथिकर् गिळिसोवबलाजनंगळं
कण्णेवेयिक्कदीक्षिसे पुरं सुरलोकमनेके रिक्कटं
कण्णेवेयिक्कदेंदु नगुगुं निजरत्नगृहांशु जालदिं ॥ १०७ ॥

आ पुरदुपवनदोळसमशर किशोरकेसरि गजरि गर्जिसद कृतक गिरिगळिल्ल, मनोजराज विजयकेतन सफर संचारमिल्लद सरोवरगळिल्ल, रतिपतिय पूगणेय दोणेगेदरद पूदोटमिल्ल, कुसुमसर कोपशिखियनुघमुरिपद तण्गाळियिल्ल, रतिय लावण्य रसप्रवाहदिं पल्लविसद चूतवनमिल्ल, कामराग रसमं काळ्पुरं माडदशोकवनमिल्ल, कंदर्प दंदशूकमावरिसद चंदन नंदनंगळिल्ल, मनोजराज नीराजन दीपकलिकेयं बेळगद चंपकवनमिल्ल, पंचबाण कृपाण पट्टदोडने कोनेय बिण्पिं तोनेदु तूगद पूगवनमिल्ल, मदनमोहांधकारमं केदरद तमाल वनमिल्ल, रतिय मधुपान गोष्ठिय सुवर्णचषकमनव कणिसद कर्णिकारमिल्ल, मकरध्वज विजय-लक्ष्मि नलिदु नर्तिसद दवनद मंदवनद वेदिकेगळिल्ल मधुमहादेवि

के समान अपलक छः ऋतुएं वहाँ के वनों को, ऐश्वर्यलक्ष्मी खेतबाड़ियों को, राही जन में जलदान करने वाली अवलाओं को देखते है, तब रत्न-भवनों की कांति स्वर्गलोक की सम्पत्ति को लजा देती हैं। १०७ उस नगर के उपवन में ऐसा कोई कृतक (बनावटी) पर्वत नहीं जहाँ मन्मथ नामक सिंहशिशु न गरजा हो; ऐसा कोई तालाव नहीं जहाँ कामदेव की विजय-ध्वज में रहने वाली मछली का संचार न हो; ऐसी पुष्पवाटिका नहीं जहाँ के पुष्प कामदेव के पुष्पबाणों के तरकश में प्रवेश न पावें; ऐसा समीर नहीं जो पुष्पबाण की अग्निज्वाला को प्रज्वलित न कर दे; ऐसा कोई आम्रवृक्ष नहीं जो रतिदेवी के लावण्य-प्रवाह से अंकुरित न हो; ऐसा कोई अशोकवन नहीं जो कामक्रीडा-रस को वन का प्रवाह न बना दे; चंदन का ऐसा कोई बाग नहीं जहाँ कन्दर्प नामक साँप का संचार न हो; चम्पा का ऐसा कोई बगीचा नहीं जहाँ कामदेव का दीप प्रकाशित न हो; सुपारी का ऐसा कोई बाग नहीं जो कामदेव के खड्ग की मूठ के साथ हर्ष के भार से झूम न उठे; तमाल का ऐसा कोई वन नहीं जहाँ मद (काम) का मोहांधकार न फैला हो; टीले पर खिलने वाला ऐसा कोई वनकमल नहीं जो रतिक्रीडा-मधुपान-गोष्टी की सुवर्ण-थाली को नीचा न दिखा दे; वन की ऐसी कोई वेदिका नहीं जहाँ

पट्टंगट्टद माधविगळिल्ल, कंतुदंति विसटंवरियदेलायन वीदिगळिल्ल, मदन जगद्वशीकरण तिलकमेंनिसद तिलकवनमिल्ल, मनोभव विजयमं निराकुळं माडद वकुळमनमिल्ल, चित्तजन कीर्तिलतेय बित्तु मोदलेंनिसद विकच विचकिल वल्लरिगळिल्ल, पुष्पशर वशीकरणमंत्रमं पदं गुट्टद कोगिलेगळिल्ल, स्मरन बिरूदिनंकमालेयनोददरगिळिगळिल्ल, अंतःकरण समुद्भवचाप टंकृत मनलंकरिसद मधुकरंगळिल्ल, जलदेवतेगे कलकूजनमनुपदेशं-गेय्यद सारसंगळिल्ल, मन्मथंगे पथिकरं पिसुण्वेळिद पारावतंगळिल्ल, दर्पकन दर्पावलेपमनुद्दीपनंमाडद रथांगमिथुनगळिल्ल, वनदेवतेगे पीलिदळेयनेत्तद सोगेनमिल्गळिल्ल। अदल्लदेयुं—

पौरवनंगळोळ् कुसुम सौरभ सार समीर मंद सं-
चारमे पांथळ्ळेदेयनार्दिसुवंगज वाणमोक्ष हुं-
कारमे बंडनुंडु ननेगोंबुगळि मोरेदेळ्वि भृंगझं-
कारमे माळ्पुदार बगेगं मदनोत्सव हर्षभारमं ॥ १०८ ॥

कामदेव की विजयलक्ष्मी ने नृत्य न किया हो; ऐसी कोई माधवी-लता नही जो मधु नामक महादेवी का झूला न वनी हो; इलायची-वन का ऐसा कोई मार्ग नहीं जहाँ से होकर कामदेव रूपी हाथी स्वच्छंद न घूमा हो; तिलक-वृक्ष का ऐसा कोई वन नहीं जिसे कामजगत् ने अपने वश में न किया हो; वकुल का ऐसा कोई वन नहीं जिस पर कामदेव ने अपनी विजय को सार्थक न किया हो; ऐसी कोई मोगरा-लता नहीं जिसमें कामचक्रेश्वर की कीर्तिलता का बीज प्रथमबार न कहलाया हो; (मोगरा-लताओं पर अपनी कीर्तिलता का बीज सर्वप्रथम कामदेव ने ही बोये); ऐसी कोई कोयल नही जिसने कामदेव का वशीकरणमंत्र न गाया हो ऐसा कोई तोता नही जिसने मदन की उपाधि-माला न पढ़ी हो; ऐसा कोई भ्रमर नहीं जिसने कामदेव के धनुष की झनकार को अलंकृत न किया हो; ऐसा कोई हंस नहीं जिसने जलदेवता को कलकल-रव का उपदेश न दिया हो; राहियों से मन्मथ की शिकायत न करने वाले तोते नहीं; कामदेव की उद्दंडता को बढ़ाने में सहायक न बनने वाले चक्रवाक-युग्म नहीं; वनदेवता के लिए अपने परों का छत्र न उठानेवाले कोयल नहीं है। इसके अतिरिक्त—पुर वनों में फूल की सुगंधि को लेकर चलने वाली हवा, पथिकों की छाती को कँपा देने वाले कामदेव के धनुप की टंकार, फूलों के मधु को चूसकर उड़ने वाले भ्रमरों की झनकार आदि, सबके मन में कामोत्सव का आनंद उत्पन्न करते हैं। १०८ आम,

सहकाराशोक रंभा तिलक वकुळ पुन्नाण कर्पूरवल्ली
गृहदोळ् बालप्रवाळास्तरण दरदळन्मल्लिकातल्प शोभा
वहदोळ् मेय्वेर्चे नाना वनविहग रवं तम्म संभोगकेळी
कुहरण्यापारदिदुर्पुदु पुरवनदोळ वारनारीकदंबं ॥ १०९ ॥

पदेपं बीरुगुमापुरोपवनदोळ् पेण्दुंविर्विडि करं-
गिद नेय्दिळ्गोळनंर्चेविडर्नोळकोंडंभोजषंडं तळि-
र्पुदिदेलावनवोड्डुगोंड कदळीकांडं तरंगोंड चू-
तद साल चंदनवीधि संपगेय जोंपं माधवी मंडपं ॥ ११० ॥

वनज वनराजि कूज-
द्वनविहगविराजि पुर बहि:पुर केळी
वनदोदवु रतिय पोंसजौ-
वनदोदवेने नेरेये पोगळलावं नेरेवं ॥ १११ ॥

बेर्विडिदु काय्त पलसेळ
नीर्वनलं करेव तेंगु पोंबाळेगळि
सोर्वडकेय ससि बेळगं
पेर्वेलेवळ्ळिगळे सोगयिकुं पुरवनदोळ् ॥ ११२ ॥

अंतु कंतुगज विहारवीधियुं सुकृत सुरभि संचार क्षेत्रमुं

अशोक, रंभा, तिलक, बकुल, अवनिजात कर्पूर लताओं के मंडपों में अधखिले मोगरा, तल्प में विचरण करने वाले नानापक्षी-समूहों के कल-कल-निनाद के बढ़ने पर पुरवन की वारांगणाओं का समूह अपने विलास-व्यापार में लीन था। १०९ भ्रमरियों के समूह से काला हुआ कमलों का सरोवर, हंसों के समूह से युक्त कमलों का समूह, अंकुरित इलायची वन, कतार में खड़े कदली के वृक्ष, पल्लवित आम्रवृक्ष, चंदन के वृक्ष, चंपा के गुच्छे, माधवी-मंडप आदि दर्शकों को आनंद प्रदान करते थे। ११० कमलरस पीकर उड़ने वाले भ्रमर, अपने कलरव से नगर के भीतर और वाहर सुस्वर विखेरने वाले पक्षियों में नवयौवन जगाते हैं। इन सवका गुणगान करने में कौन समर्थ है? १११ पकने के लिए तैयार कटहल और श्रीफलजल का प्रवाह वहाने वाले नारियलों का नीर, सुवर्ण के समान रंग वाले पत्तों सहित झूमते हुए सुपारी के पेड़ और कांति फैलाने वाली ताम्बूललता पुरवन में सुशोभित थीं। ११२ इस तरह यह नगर कामदेव के मदमाते हाथी का विचरण-मार्ग, कामधेनु का संचार-क्षेत्र,

नेत्रापुत्रिका प्रसाधन सदनमुं लक्ष्मीलीलालास्य मांगल्यरंगमुमेनिप
पुर वहि:पुरदिंदॊळगॆ—
बडबानलगॆ सॆडॆदि- * गडलॆ सरण्वॊक्कुदमरशैलमनॆंवी
पडॆमातं निर्गादिगॆ * पडॆयुत्तुं पॊन्नकोटॆय वळसिर्कुं ॥ ११३ ॥
चॆंबॊन्न कोटॆ परिवे- * षंबॆत्तॊळनेसरंतॆ नीर्गादिगॆयं
तुंबिद नीर्वूगळ पल- * वुं बण्णदिनार् कण्णुमुं सॆरॆगॆय्युं ॥ ११४ ॥
मंदर कंदरमॆंबी * संदॆगदिं मीरि सूतनं कीरि निज
स्यंदनमं कोटॆगॆ भर- * दिंदॆरॆगुं कर्चि कीरनिनन हयंगळ् ॥ ११५ ॥
मुगिलट्टळॆगळ कॆलदं
बुगंडियिं नुसुळ्दु नडॆव दिनकरन हयं
गगनाध्व खेदमं पर-
यिगॆगळ तण्णॆळर तीटदिं तॊलगिसुगुं ॥ ११६ ॥
अंतलंघ्यमुमभ्रंकष विविधाट्टालकमुमॆनिप कनक प्राकारदिं—
दॊळगॆ—
बरॆद विचित्रपत्रनिचयं निजलोचन चंद्रिकापरं
परॆ नडॆनट्टु सोर्व शशिकांतद कॆर्गळ नीर्वॊनिल्गळि
परॆयॆ कनल्दु कण्गॆ किसुगण्चि हरिन्मणिभित्तिभागदॊळ्
पुरवनिनाजनं बरॆयुतिर्पुदभंगुर पत्रभंगमं ॥ ११७ ॥

---

आँखों की पुतलियों का अलंकार-गृह एवं लक्ष्मी की नृत्यरंग-भूमि बना था। इस नगर के वाह्य प्रदेश में—स्थित जलाशय इस बात को सत्य बना रहा था मानो दावानल से भयभीत क्षीरसागर देवगिरि की शरण में आया है। ११३ सुवर्णमय किला, वेश धारण किए हुए सूर्य के समान, जलाशय में सुशोभित रंग-बिरंगे फूलों से, किसी को भी आकर्षित कर सकता था। ११४ इस संदेह से कि यह मंद पर्वत है या जलाशय है, सूर्यदेव के रथ के घोड़े सारथी की पर्वाह न करके रथ को तेजी से किले के पास खींचते थे। ११५ वादलों की पंक्तियों के पानी के छिद्रों से छन कर संचार करने वाले सूर्य के रथ के घोड़ों की आकाश-प्रयाण की थकावट को ध्वजों की ठंडी हवा दूर करती थी। ११६ नगर की स्त्रियाँ अपने द्वारा चंद्रकांत शिलाओं की भित्तियों पर लिखित—विचित्र चित्र समूह को, अपनी दृष्टि उस पर टिकने के कारण पिघल कर उस जल प्रवाह में तैरते हुए देखकर कर कुपित होकर नीलमणि की भित्तयों पर पुन: शाश्वत चित्र लिखने लगीं। ११७ अपनी हथेली की लालिमा से

ओदविद तम्म कंदळद कंपुगळि गिळि पद्मराग र-
त्नद गिळियंते तम्म नयनांचल चंद्रिकॅयिं नवेंदुका-
न्तद गिळियंते कौतुकमनाक्षणदोळ कुडे नोडि नोडि मा-
यद गिळियेंदे पंजरदोळिक्कुवरोदिसलंजि मुग्धेयर् ॥ ११८ ॥

तुंगकुचकुंभयुगवंगजगजं मोगवडंगळेदुदेनिसे विगतांचलमपांगं
मीगेळसुविंदुकिरणंगळेने कर्णयुगळंगळवतंस मणियं बळसे घर्मो-
दंगळिरे नोसलोळेळदिगळमर्दिन पनिय पांगनोळकोंडु
नळितोळ्नलिदुनीळ्-
त्तगभव पाशमेने पिंगदरेवुदु घट्टियं गडणदिं गडणदिं
गट्टिवळ्तियरतंडं ॥ ११९ ॥

नरुसुग्गं मालेगं सूळरिदेरगुविनं तुंबिगळ् नोडिदेर्म-
य्मरेवन्नं बाहुमूलं पोगरनुगुर्विनं कण्मलर् बळिळ्मिंचं
करेवन्नं मालेवूवं नेगपि सोगयिकुं नीररोळ् पुष्पचापं
गुरियेसं तोरलंबं पोदेगेदरिदवोल् पुष्पलावीकदंबं ॥ १२० ॥

सुरपन वज्रमुं हरिय कौस्तुभमुं हरनिंदुलेखेयुं
वरुणन मुत्तिनेक्कसरमुं गरुडांगद पच्चेयुं पणी-

---

तोतों को लाल रंग के पद्मराग रत्न के तोतों के समान एवं अपनी कनखी (कटाक्ष) के प्रकाश से चंद्रकांत शिला को तोतों के समान बना दिया तो स्त्रियों ने चकित होकर उन्हें माया के तोते समझ कर, बात सिखाने में हिचक कर, उन तोतों को तुरन्त पिंजरे में बंद कर दिया। ११८ कामदेव के मदमस्त हाथी के समान रहने वाले कुचकलश मुख के साथ आँखमिचौनी करते थे, कनखी (कटाक्ष) पानी में रहने वाली मछलियों को घेरने वाली चंद्रकिरणों के समान और कान, कर्णाभरण के रत्नों को घेरे थे, और पसीने की बूँदें अमृत-बिंदु के समान माथे पर सुशोभित थीं, ऐसे में अपनी कोमल सुन्दर बाहों को डुला-डुलाकर स्त्रियाँ वहाँ चन्दन घिस रही थीं। ११९ पुष्पमाला की सुगंधी की ओर जिस तरह भौंरे आकर्षित होते हैं (लपकते हैं) उसी तरह उनकी बाहों का सौंदर्य देखने वाले अपनी सुधबुध खो देते थे; उनकी आँखों की चमक लघुविजली को बुलाती सी प्रतीत होती थी और पुष्पमाला को उठाकर फुलवाड़ी इस तरह सुशोभित दिखाई दे रही थी मानो कामचक्रेश्वर विरहियों पर अपने पुष्पबाणों का निशाना लगा रहा हो। १२० यहाँ के रत्नों की दुकानें इन्द्र के वज्र, विष्णु के कौस्तुभाभरण, महेश्वर की

श्वर फणरत्नमुं बेलेगे बिण्णिदुवल्लमेनिप्प पेंपिनि-
देरडनेयब्धिरन्नवसरं गेलेवंदुदु रोहणाद्रियं ॥ १२१ ॥

वनजं पंकांकितं गोवळितिय मोलेयोत्तिगे पक्काय्तु गोव-
र्धन वक्षोभागमौर्वज्वलन बहुल धूमाकुलं पाल मुन्नी-
रनपायस्थानमेंदा पुरवरद वणिग्वाट हर्म्यगळोळ् मु-
न्निन संचारस्वभावं परिपडे पर्देपि लक्ष्मीनिश्चिंतमिर्पळ् ॥ १२२ ॥

दिविज विमानं माडद-
विवु माडिदुवेंब भेदमल्लदे चेल्विं
नवरत्न रचनेयिं भे-
दविल्ल तत्पुरद भवनमेनितनितरोळं ॥ १२३ ॥

इरूळुं पगलुं पुरदोळ्
बेरसिर्पुवु पद्मरागगृहदेळविसिलिं
हरिनीलगृहद तमदु-
ब्बरदिं शशिकांतगृहद चंद्रातपदिं ॥ १२४ ॥

शिल्पि गड कल्पपतिसं-
कल्पं रत्नोपलं दळं गड शोभा

---

चंद्रकला, वरुण के मोती की एकावली माला, गरुड़ के रत्न और महाशेष की मस्तक-मणि से भी बढ़कर है। वे (दुकानें) द्वितीय समुद्र के समान मेरुपर्वत को भी नीचा दिखाती हैं। १२१ लक्ष्मी यह सोचकर कि कीचड़-लेपन (स्पर्श) से कमल कलंकित हुआ; गोवर्धन के सीने पर ग्वालिन के स्तनों का स्पर्श हुआ; क्षीरसागर बड़वानल से उठे धुवें से भरा होने के कारण (क्षीरसागर) खतरनाक है, वह (लक्ष्मी) पहले के अपने संचारी (चंचल) स्वाभाव को त्यागकर उस नगर की दूकानों के मार्गो में निश्चित (स्थिर रूप से) निवास करने लगी। १२२ देव-विमान अन्यों से निर्मित नहीं हैं; बस इतना ही अन्तर है कि यहाँ के घर मनुष्य से निर्मित है इसके अलावा नवरत्नों से निर्मित इस नगर के भवनों एवं देव-निर्मित विमानों में कोई अन्तर नहीं है। १२३ इस नगर में माणिक्य-भवन की मंद धूप से, इन्द्रनील रत्नगृह के अंधकार से, चंद्रकांतशिला-भवन की चाँदनी (प्रकाश) से, रात और दिन परस्पर मिश्रित हुए (घुलमिल गये) से दिखलाई देते थे। १२४ रत्न-मणियों से नगर निर्माण का संकल्प करने वाला कल्पपति नाभिराज ही स्वयं शिल्पी है, तो उस नगर को शोभा का निवासस्थान न कहने वाला मूर्ख कहलाएगा। १२५

तल्पमिदॆन्नदॆ वॆरॆ वि-
कल्पिसुवनॆ गांपनॆनिसुगुं करुमाडं ॥ १२५ ॥

नॆलॆमाडद पॊसदेसिय
नॆलॆ माडद कल्पसदनमॆय्ददणं कीळ्
नॆलॆयादुदिदर तॆरदिं
नॆलॆयादुदॆ सकलजनद कण्गं मनकं ॥ १२६ ॥

बाळतृणंगळॆंदॆळसुगुं पसुर्गॆळ्गळ कांतियं मृगी
जाळकमल्लि माणिकद कॆंबॊळपं विसिळॆंदु नट्टिरुळ्
मेळिसुगुं रथांगमॆरलिविकद मुत्तिन सूसकंगळं
बाळमृणाळमॆंदु कर्दुकल् बगॆगुं कलहंस पोतकं ॥ १२७ ॥

गिळि गिळिवॆण्गॆ चूतफलमं कलहंसिगॆ हंसनब्जकं
दळमनिभं करेणुगॆ लवंग दळंगळनीव चित्रमं
तळॆदु विलासमं मॆरॆव राणियवासद वळ्ळिमाडदु-
ज्वळ मणिभित्ति चॆल्वनॊळकॊंडॊळकॊंडुदपूर्व भित्तियं ॥ १२८ ॥

बॆरलं मिडियिप पुलकां-
कुरमं पुट्टिसुव नोडॆ तलॆदूगिप सुं-
दरमॆनिप कुसुरिवॆसदिं-
दरमनॆ माळ्पुदु मयंगमतिविस्मयमं ॥ १२९ ॥

---

वहाँ के महलों के विशिष्ट सौंदर्य के आगे स्वर्ग सौंदर्य भी मानो फीका-सा लगता था। महलों का सौंदर्य समस्त लोगों के मन और दृष्टि को तृप्त कर रहा था। १२६ हरे रत्न की कांति (प्रकाश) को हरी घास समझकर उसे चरने के लिए वहाँ के हरिण भ्रमित हुये; माणिक्य के प्रकाश को धूप समझ कर मध्यरात्रि के समय चक्रवाक दम्पति एक हुये; लटकते (झूलते) हुये मोती की मालाओं को कमलदंड समझकर हंस-शिशु चोंच मारने लगे। १२७ रनिवास की लता की दीवारें ऐसे सुन्दर चित्रों से सुशोभित थीं जिनमें तोता अपनी प्रेयसी को आम, हंस अपनी प्रियातमा को कमलकली, हाथी अपनी प्रिया को लवंग के दल देते दिखाई देते थे। १२८ दाँतों तले उँगली दबाने वाले, रोमांच जगाने वाले, दर्शकों का सिर हिलाने के लिये विवश कर देने वाले सुन्दर, महीन कारीगारी से पूर्ण राजप्रसाद यम को भी विस्मय करा देने में समर्थ थे। १२९ अनेकानेक चतुर्मुख (ब्रह्मा) अपने यहाँ आ जमे हैं,

नेरॆदिर्पर् चतुराननर् पलवरॆन्नॊळ् राजबाधापरं-
परॆयुं कंटकराजियुं रजमुमॆन्नॊळ् पॊर्दवॆन्नॊळ् निरं-
तरमॊप्प किडदॆंदु नाभिकमलावासं पुरं नाभिपं-
करूहक्कीवुदु नीलरत्नगृहकांति ध्वांतदिं दैन्यमं ॥ १३० ॥

अंततिशयवॆनिपयोध्यापुरदधिपति—

मनुचूडामणि नाभि नाभिसुतनादिब्रह्मना ब्रह्मनं-
दन नार्ग मिगिलादनादिभरतं षट्खंड भूनाथना
मनुजेंद्रात्मजनर्ककीर्ति नॆगळ्दं तद्वंशमत्यंत पा-
वनमत्युन्नतमाय्तु सद्गुण पताकावंशमॆंबन्नॆगं ॥ १३१ ॥

नॆलनं मर्यादॆयिं पालिसि नियमिसि वर्णाश्रमाचारमं दो—
ष लवं मॆय्व्रेचॆदंतिंद्रिय सुखदॊदवं तीर्चि सम्राज्य दोळ्मु-
न्नलिदर्ल्लिदत्तलात्यांतिक सुखपदमं यॆत्त राजाधिराजर्
पर्लरिंदिक्ष्वाकुवंशं कुलमदियवॊलाय्तुव्यवच्छिन्नरूपं ॥ १३२ ॥

मनुनाभि नरेंद्रनिनि- * त्तनुक्रमंगिडदॆ पॆर्चुवडॆदा वंशं
मुनिसुव्रत जिनपति वर* मनूनमादुत्तदात्त शाखाकीर्णं ॥ १३३ ॥

---

राजसगुण की परम्परा या बाधाएँ मुझमें नहीं है, मैं अपने व्यवहार में कभी गलती नहीं कर सकती, इस तरह अभिमान से सोचने वाली लक्ष्मी का निवासस्थान कहलाने वाला वह नगर अपने में स्थित नीलरत्न-गृहों की शोभा से निर्मित अंधकार से नाभिकमल (जो ब्रह्मा का जन्म स्थान कहलाता है) दीन (मुरझाया हुआ) प्रतीत हुआ। १३० इस तरह के अतिशयपूर्ण अयोध्या नगर के अधिपति—मनुचूड़ामणि नाभिराज का आदिब्रह्म (ऋषभदेव) पुरुदेव पुत्र है; उसी ऋषभदेव का पुत्र है श्रेष्ठ षट्खंड चक्रवर्ती भरत, जो समस्तों में श्रेष्ठ है; उसका बेटा अर्ककीर्ति। उससे वह वंश पावन एवं उन्नत होकर प्रसिद्ध हुआ। १३१ गौरव से अपने राज्य की देखभाल करते हुए, प्रजाजन (कभी) वर्णाश्रम धर्म का उल्लंघन न करें इसका ध्यान रखते हुए, इंद्रिय-सुखों का निर्दोष रूप से उपभोग करते हुए, भौतिक सुखो को क्षणिक मानकर, अध्यात्म सुखों को अत्यन्त महत्व देकर यशप्राप्त अनेकानेक राजाओं से इक्ष्वाकुवंश कुलनदी-सा शृंखलाबद्ध रूप से निरन्तर राज्य करता रहा। १३२ मुनिसुव्रत के अखंड तथा श्रेष्ठ बल से निरन्तर चलने वाले उस वंश में अप्रितम (वीर) विजयरथ प्रसिद्ध हुआ। उसकी पत्नी थी हेममालिनी। उसने (विजयरथ ने) विजय की इच्छा से राजाओं को हराकर भूमंडल को

क्षितिनाथं तन्मुनि सु- ※ व्रतनाथन कालदंदु तद्वंशदोळ-
प्रतिमं विजयरथं त- ※त्सति हेमलतांगि हेममालिनियेंबळ् ॥ १३४ ॥

विजिगीषुवृत्तियिं भू-
भजरं बेसकेयिसि कोंडु भूमंडलमं
भुजदंडदोळिरिसिदने-
नजय्यभुजबलनो विजयरथ नरनाथं ॥ १३५ ॥

आ नरेंद्रनं नंदनं—
जितरिपु सुरेंद्रमन्यु
क्षितिपति रिपुनृपकुलांगनाजनमन्यू-
द्गतबाष्प सलिलधारा
प्रतानदिं कीर्तिवल्लियं वेळेयिसिदं ॥ १३६ ॥

आ विशदकीर्तिगे कीर्तिश्रीयेंबळरसियागे—
अंदमदटलेये मनसिज ※ नंदमनळवळविगळेदु केसरियळवं
बेंदगुळे वज्रबाहु पु- ※ रंदररेंबिर्वरवर्गे नंदनरादर् ॥ १३७ ॥

कडिदु विपक्षमनिंद्रं ※ कडिदंते कुलाद्रिपक्षमं तोळ्वलमं
पडेदं परप्रतापं ※ पोडर्पुगिडुवंते वज्रबाहु कुमारं ॥ १३८ ॥

अपनी बाहुशक्ति के वश में रखा। उसकी वीरता वर्णनातीत है। मुनिसुव्रत के अनून (अखंड) वर-प्रसाद से मनुनाभि राजा से लेकर अचूक क्रमसे (शृखंलाबद्ध हो) अभिवृद्धि पाया हुआ वह वंश पेड की शाखाओं की तरह विशाल रूप से फैल गया। १३३ उस मुनि के जीवनकाल में उस वंश में विजयरथ नाम का अप्रतिम वीर प्रसिद्ध हुआ। उसकी पत्नी का नाम था हेममालिनी, जो हेमलता के समान थी। १३४ उस विजयरथ ने विजय की इच्छा से राजाओं को पराजित करके भूमंडल को अपनी बाहु-शक्ति के वश में रखा। उसकी अविजेय वीरता वर्णनातीत है। १३५ उस राजा के पुत्र—सुरेन्द्रमन्यु ने शत्रुओं को जीतकर उनकी पटरानियों की अश्रुधारा से अपनी कीर्तिलता को सींचा। १३६ कीर्तिश्री नाम की युवती सुरेन्द्रमन्यु की रानी बनी।—उस दम्पति के सौंदर्य में कामदेव को भी लज्जित कर देनेवाले, (वीरता में) सिंहराज के बल को भी नीचा दिखाने वाले दो पुत्र हुए—वज्रबाहु और पुरंदर। १३७ उनमें वज्रबाहु ने, जिस तरह देवेन्द्र ने कुलाद्रि शिखरों को काटा था, उसी तरह अपने बाहु[illegible] काटकर शत्रुप्रताप को कांतिहीन कर दिया

परपुरमनुरिपि देसॆगुरि ॐ वरिविनॆगं तन्न तेजमरिनृपवदनां-
बुरुहं करिकुवरिदिरॆ ॐ पुरंदरं नृपपुरंदरं पॊगळिसिदं ॥ १३९ ॥
मगनॊर्व तनगिर्वरं ॐ मगंगॆ सुतरागॆ मूरुकण्णॆनॆ मूरुं
जगमं तनगॆरगिसिदं ॐ त्रिगुणिसॆ तन्नॊळ्मनोरथं विजयरथं ॥१४०॥
विजयरथं धरित्रिगॆ मनोरथ सिद्धियनित्तु वक्त्रपं-
कज वरराजहंसवधु वाग्वधु रंजिसॆ तन्न कीर्ति दि-
ग्गज रदनक्कॆ कीर्तिमुखमागॆ जगज्जनकंठभूषणं
निजगुण नामवागिरॆ विराजिसिदं कवितामनोहरं ॥ १४१ ॥

इदु परम जिनसमय कुमुदिनी शरश्चंद्र बालचंद्र मुनींद्रचरण नख किरण चंद्रिका चकोर भारती कर्णपूर श्रीमदभिनवपंपवि-रचितमप्प रामचंद्रचरितपुराणदॊळ् पीठिका प्रकरणं प्रथमाश्वासं ॥

॥ पीठिका-प्रकरण प्रथमाश्वासम् समाप्तम् ॥

---

और पुरन्दर, वैरीपुर (शत्रुसमूह) को जलाकर उस ज्वाला को दिगंतों तक फैलाकर, उसकी (पुरन्दर की) शौर्यज्वाला से ऐसा प्रशंसित हुआ कि शत्रुराजाओ के मुखकमल काले पड़ गए। १३९ विजयरथ का एक पुत्र (सुरेन्द्रमन्यु) और उसके दो पुत्र (वज्रबाहु और पुरन्दर) मिलकर उसकी (विजयरथ की) मानो तीन आँखें हुई और अपने बाहुबल से उन्होंने (पुत्र, पौत्रों ने) तीनों लोकों को अपने शरणागत कर लिया तो उसके (विजयरथ के) मनोरथ पूर्ण हुए। १४० विजयरथ ने इस तरह अपने राज्य और प्रजाजनों को मनोरथ-सिद्धि प्रदान कर दी। उसके मुख कमल में वाग्देवी (सरस्वती) निवास करके सुशोभित हुई। उसकी कीर्त्ति रूपी [illegible]जों की दाढ़ के लिए कीर्त्ति स्वयं मुख बनी, कविता मनोहारी [illegible]जयरथ जग-जनता का कंठाभरण बनकर विराजित हुआ। १४१

कवि अभिनव पंप, जो परमजिनसमय और कमलों के लिए शरत्काल के चंद्र के समान माने जाने वाले बालचंद्र मुनींद्र के पदनखों के चंद्रप्रकाश से पवित्र एवं जो सरस्वती के कर्णाभरण के समान हैं, के रामचंद्रचरित पुराण का यह पीठिका प्रकरण—प्रथमाश्वास है।

॥ रामचन्द्र-चरित्र-पुराण का पीठिका-प्रकरण प्रथमाश्वास समाप्त ॥

द्वितीयाश्वासं

श्रीयं वितरणदोळ् वाक्-
श्रीयं राज्यव्यवृत्तियोळ् विमलयश ।
श्रीयं जिनप्रवचन
श्रेय दोळनिशयिसि नेगळ्दभिनवपम्पं ।। १ ।।

आ विजय नरनाथनोंदु दिवस वोड्डोलगंगोट्टिर्पुदुं—
सकलक्षत्रकिरीटताडित पदांभोजातनास्थान वे-
दिकेगुत्तानित चित्रवेत्रलतनोर्वं कार्यविज्ञापनो-
त्सुकंचित्तं धवलोत्तरीयवसनं लंबोदरं लंबकू-
र्चकलापं सितकंचुकं त्वरितदिं बंदं प्रतीहारकं ।। २ ।।

अंतु बंदु मोगसालेयोळमेय्यिक्कि मोगसुत्तिन दुगुलद भिन्नपद सेरगनधरपल्लवक्के तेगेदु, देव ! नागपुरदनाळ्विभवाहनन तनूभवनुदयसुंदरकुमार नरमनेय बागिलोळ्बदुं निंदिर्दिपनेंदु बिन्नविसे बरवेळेंबुदुं—
दिवदोळ् बेळ्दिंगळं बित्तरिसे तरळमुकतावनंसप्रभा प-
ल्लवमाकारं स्मराकारमनजनिसे पोक्क नृपावासमं वा-
सवसौंदर्य धरावल्लभसुभग सभालोकनाकर्षणं मा-
डे विशालोरस्स्थली निस्तुल चकचकित स्फारहारं कुमारं ।। ३ ।।

---

आश्वास—२

सम्पत्ति को दान के रूप में, वाक्सम्पत्ति को कृति के रूप में, कीर्ति-सम्पत्ति को जिनधर्म प्रसार में व्यय (व्यतीत) करके अभिनव पम्प (कवि) यशोभागी हुआ । १ एक दिन विजयरथ, जो समस्त क्षत्रियों के मुकुटों से वंद्य चरणकमल वाला था, अपने राजदरबार में बैठा था कि उसके दरबार में किसी के आगमन की सूचना देने के लिए उत्सुक एवं श्वेत वस्त्रधारी लंबोदर चारण (भाट) जल्दी आकर सम्मुख दिखाई पड़ा । २ ओढ़े हुए उत्तरीय के आंचल से होंठों को छिपाकर उसके यह कहने पर कि 'हे देव ! नागपुर के राजा इभवाहन के पुत्र उदयसुंदर प्रासाद के द्वार पर आपके दर्शन की प्रतीक्षा में खड़े हैं', विजयरथ ने आगंतुक को भीतर ले आने की आज्ञा दी—दिन में चाँदनी बिखेरने वाले सुन्दर मोतियों के शिरोभूपण से कामदेव को प्रतिबिंबित करने वाले

कतिपय परिजन परिवृत * नतिललिताकृति सितातपत्रद नेरलोळ् ॥
सित शतपत्रच्छायां * चित बाल मराल लीलेयं पालिसिदं ॥ ४ ॥

अंतु बंदु नृपसभासदनमं पोक्कु—

ओलगिसि वस्तुवाहन * मालेयनुत्तंस मणिमरीचिगळिं भू-
पालन चरणसरोज * क्कोलगिसिदनुदयसुंदरं तण्त्रिसिल्तं ॥ ५ ॥

अंतु विनतनादनंतरं सुरेंद्रमन्यु वज्रबाहु पुरंदरोळं विनय-
वृत्तियं मेरेदु समुचितासनदोळ् कुळ्ळिर्दु मुकुलितांजलि पुटनागि—

सकलक्षत्रपवित्र निन्नचरणांबोजात सेवासमु-
त्सुकनस्मत्पितृवेन्न तंगेयननंग श्रीनटी नाट्यवे-
दिकेयं तन्न मगळ् गुणोदेयननंगोन्मादेयं वज्रबा-
हु कुमारंगिभवाहनं मदुवेमाळ्पुत्साहदिंदट्टिदं ॥ ६ ॥

एंदु बिन्नविसे विजयरथ महीनाथनुदयसुंदरन मुखारविंदमं
नोडि—

कन्यके वज्रबाहुगनुरूपे गडं कुडुवं गडं जग
न्मान्यवेनिप्पुदात्तेनिभवाहनवल्लभनीतिदन्य सा-
मान्यमे नम्म कोळ्कोडेगे नवकेडेयं समकट्टि कोट्टनें
धन्यनो धात्रनेंदु नुडिदं प्रियमं विजयांगनाप्रियं ॥ ७ ॥

---

सुन्दर उदयसुन्दर ने दरबार में प्रवेश किया। उसके विशाल वक्षस्थल पर सुशोभित कंठाभरण ने सभासदों को अनायास आकर्षित किया। ३ थोड़े ही परिजनों के साथ आया हुआ राजकुमार अपने मोहक रूप के साथ श्वेत छत्र की छाया में चलते समय ऐसा प्रतीत होता था मानो श्वेत कमल के पत्तों की छाया में शिशुहंस चल रहा हो। ४ इस तरह राजा (विजयरथ) के दरबार में पहुँचकर उसने अपने साथ लाई गई वस्तु, वाहन, शिरोभूषण, मणिमाला आदि बहुमूल्य भेट राजा के चरण-कमलों में चढ़ाकर सिर नंवाया। ५ इस तरह सिर नंवाने के पश्चात् वह सुरेंद्रमन्यु, वज्रबाहु, पुरंदर आदि सबको मान सम्मान देकर उचित आसन पर बैठकर हाथ जोड़कर बोला—समस्त क्षत्रियों से सेवित आपके चरणकमलों की सेवा में उत्सुक मेरे पिताजी ने मेरी बहन गुणोदे, जो अनंगोन्मादसे पूर्ण है, को वज्रबाहु को देकर विवाह कराने की उत्सुकता से मुझे आपके पास भेजा है। ६ इतना निवेदन करने पर विजयरथ ने उदयसुन्दर के मुखकमल को देखकर कहा—वज्रबाहु के लिए अनुरूप कन्या है, यह सच है; देनेवाला जब जगत्मान्य उदात्त इभवाहन है तब यह

अधिराजं वदनांबुज ※ मधुवेंनिसिद मधुरवचनदिं तणिपे मनो-
मधुकरमनुदयसुंदर- ※ नदिकोत्सव रसतरंगिताराशयनादं ॥ ८ ॥

अंतातनं संतोषंबडिसि बिजयरथं विवाहमंगलोपकरण पुरस्सरमाशीर्निनदमोंदवे शुभदिन मुहूर्तदोळ्—
ओरन्नरेंनिप राजकु- ※ मारकरोंडनेरे वज्रबाहुकुमारं ।
वारणमनेरिदं दि- ※ ग्वारणमं दिक्कुमाररेरुव तेरदिं ॥ ९ ॥

पटुपटह शंक रुति दि- ※ क्तटमं तळ्पोय्ये गंडमंडलतटदोळ् ।
नटियिसे मणिकुंडल रुचि ※ पटलं नृपनणेदु नूंकिदं वारणमं ॥ १० ॥

एरडुंपक्कदे पण्णिदोजेविडियं कैगेय्दु बंदेरि चा-
मरमं कन्नेयरिक्के लोहखुरवाहं सुत्ति काल्गापिनोळ् ॥
बरे बंदं धवळातपत्रदडियोळ् काल्गोदु गंधांध सिं-
धुरमं मेय्गलि वज्रबाहुमहिपं वज्रायुधं बर्पवोल् ॥ ११ ॥

कोलकोलदोळ् राजसुतर् ※ कोलबर् वरे राजचिह्न पाळिध्वज सं-
कुलमुं भटकटकमुमा- ※ दलेयोळ्बरे वज्रबाहु पमणंबंदं ॥ १२ ॥

---

सामान्य विषय नहीं है। परस्पर स्थान-मान का ख्याल रखकर दान देने वाला दानी धन्य है। ७ जब इस प्रकार राजा ने अपने मुखकमल के मधु (मधुर वचनों) से सींचा तो उदयसुन्दर का मधुकर तुल्य मन अत्यन्त हर्षित हो आनंद-रस-तरंग में डूब गया। ८ इस तरह विजयरथ ने उसे खुश किया और शुभ दिन के शुभ मुहूर्त में विवाह मंगलोपकरण के साथ तथा आशीर्वाद के वचनों के साथ—वज्रवाहु अपने परिजनों के साथ हाथी पर उसी तरह सवार हुआ जिस तरह दिक्पाल दिग्गजों पर (सवार होते हैं)। ९ शंखनाद दिशाओं का आलिंगन करने लगा और हाथी के कुंभस्थलों में मणिकुण्डलों की कान्ति नृत्य करने लगी, इस प्रकार राजा हाथी पर सवार होकर आगे बढ़ने लगा। १० दोनों ओर से कतारों में खड़ी होकर कन्याएं क्रमसे चामर डुला रही थीं, पीछे से पैदल सेना और घुड़सवार सैनिक अंग-रक्षार्थ आ रहे थे। ऐसे में श्वेतछत्र की छाया में चलता हुआ पराक्रमशाली वज्रवाहु वज्रायुधधारी इन्द्र के समान आगे बढ़ा। ११ दोनों ओर से राजकुमार कतार से चल रहे थे और वज्रबाहु समस्त सेना के साथ प्रयाण करता हुआ आगे बढ़ता रहा। १२ इस

अंतु बरूत्तुं—

मुगिलं मुट्टिद रत्नकूटरुचियिं ज्योतिर्विमानंगळं
नगुवंतुदूगत निर्झरपल्लवर्नादें गंगासरित्पूरमं ॥
नगुवंतुन्नतिवेत्त कल्पतरु सानूद्यानदिं मेरुवं
नगुवंतोप्पुवुदं वसंतगिरियं कंडं महीमंडनं ॥ १३ ॥

आ वसंतगिरियोळेडेयाडुव विद्याधरवधूजनद सोर्मुडियिं सूसिद पूगेदगेय कुत्तुंगरिय तुरुंगलुमं, सिद्धकामिनियर कपोल-पत्नदिंमदनकेळि योळुदिर्द कत्तुरियुमं, कनककदळीदळद पत्नभंग-गळुमं, किंपुरुष दम्पतिगळ सुरतकोलाहलदिंदनंग संगीतक सदनमेंनिसुवेळलतेय जोंपंगळुमं, किन्नर नितंबिनियर् चेंबोन्न-शिलेय मेले विरचिसिद चेन्नेय्दिलेसळ पसेगळुमं, गंधर्वगणिके-यर बहुळपरिमळक्केळसि वळसुवेळदुंबिगळ नादक्के बेंचि विसुट कर्णपूर पारिजात स्तबकंगळुमं, ओरोंदेडेयोळ् किसुसंजेयं पसरिसुव किसुगल्ल कूटंगळुमं, ओरोंदेडेयोळंधकारमं केंदरुविंद्र-नीलदोड्डुगलगळुमं, अल्लिगल्लिगे निर्द्रवजलद्रुतियनोडरिसुव वैडूर्यशिखरंगळुमं, अत्तलित्तलेळवेळदिंगळं वित्तरिसुव चंद्रकांतद पासरेगळुमं, एल्लदेसेगं तण्बिसिलनवटियिसुव वज्रशिलातलंगळुमं,

---

तरह आते हुए, राजकुमार ने वसंतगिरि को देखा जो बादलों को छूनेवाली रत्नप्रभा से जगमगा रही थी, और जहाँ बहुत ऊँचाई से गिरनेवाली जलधारा से (मिलकर) गंगा नदी का प्रवाह बह रहा था, और आकाश से बातें करने वाले कल्पतरुओं के उद्यान-वन मेरुपर्वत का उपहास करते हुए सुशोभित थे। १३ उस वसंतगिरि में विचरण करने वाली विद्याधर स्त्रियों की दीर्घ केशराशि से गिरे हुए स्वर्णिम केवड़े के लघु किसलय के समूह को, सिद्धस्त्रियों के कपोलों से, रतिकेलि के समय झड़े हुए कस्तूरी लेप को, स्वर्णरंग की कदलियों से गिरे हुए पत्तों को, किंपुरुष दम्पतियों की कामक्रीडा से कामदेव के संगीतभवन कहलाने वाले लतामंडप को, किन्नर स्त्रियों द्वारा स्वर्णशिला पर रचित कमलों की चादर को, एवं गन्धर्व गणिकाओं द्वारा अपने शरीर के सुगन्ध को घेरने वाले भ्रमरों के झनकार से तितर-बितर होकर फेंके गये पारिजात के गुच्छों के कर्णाभरणों को, तथा कहीं-कहीं लघु संध्या फैलाने वाले काले पत्थरों के समूह को, और कहीं-कहीं लघु अंधकार फैलाने वाले नीलरत्नों की राशि को, जहाँ पानी न हो ऐसे स्थानों पर जलप्रपात की भ्रान्ति कराने वाले वैडूर्य्य शिखरों को,

बेरॆवेरॆ माणिकद पॊळपु मुट्टॆ किडियिड्डुव सूर्यकांतद शिलॆ-शळुमं, अतिकुतूहलदिं नोडुत्तॆ मुट्टिबर्प समयदॊळ् तॊट्टनॆ कट्टिदिरॊळ्—

मनमं मुट्टैसि-मध्यंदिनद बिसिलॆ बॆळ्दिंगळंतागॆ तन्नि
तनुवं बेकॆय्दु बाह्मेंद्रियमनुडुगि कैयिक्कि निर्वाण साम्रा-
ज्यं निवासकॊर्वनंतर्मुखनभिमुखनादित्यबिंबक्कॆ योगीं-
द्रनतंद्रं निर्निमेषं नगनिकट हृटद्रत्नकूटंबॊलिर्दं ॥ १४ ॥

मुगिदुवु करकमलंगळ् ❋ बगॆयिं मुंबरिदु मुनिमुखांबुजमं तुं-
बिगळंतॆ मुसुकिदुवु दि- ❋ ट्टिगळॆनभिनुतनॊ वज्रबाहुकुमारं ॥ १५ ॥

दारुण संसरण विषॊ- ❋ र्वीरुहमं कीळ्व बवसॆयिंदिर्दपनी-
धीरनॆनुत्तुं राजकु- ❋ मारकनामुनिय बगॆद बगॆयं बगॆदं ॥ १६ ॥

दिनमुखदर्शनदिं तॊ- ❋ ट्टनॆ कळ्तिलॆ पिंगुवंतॆ मुनिपति मुखद-
र्शनदिं चित्तद कळ्तिलॆ ❋ जनपतिगॊमॊदलॆ पिंगिपॊदत्तागळ् ॥ १७ ॥

अनय्य खड्गधारॆय
जेनॆय्यं नक्कुवंतॆ संसारसुख-
क्कानळिपॆ विषमलोभदिं
नेनस्संतानमॆन्ननेनळालिसदो ॥ १८ ॥

---

यत्र-तत्र लघु चाँदनी बिखेरने वाली चन्द्रकात शिला के आसनों (बेंच) को, हर जगह ठंडी धूप फैलाने वाली वज्रशिलाओं को, तथा विभिन्न माणिक्यों के प्रकाश के स्पर्श से चिनगारी उगलने वाली सूर्य-शिलाओं को अत्यन्त कुतूहल से निहारता हुआ आगे बढ़ रहा था कि अचानक देखा कि सामने—मानो दोपहर ही चाँदनी वन गई हो इस प्रकार एकाग्र-चित्त हो अपने शरीर को मन से अलग करके वाह्य इंद्रियों के कम्पन-स्पंदन को रोककर, निर्वाण साम्राज्य के लिए अकेले अधिकारी के समान अन्तर्मुखी होकर, सूर्यकिरणों की ओर मुँह किये हुये, आलस्य-रहित योगींद्र ऐसे दिखाई दिये मानों प्रकाशित वज्रों की राशि हो। १४ उन्हें देखकर वज्रबाहु के हाथ जुड़ गये। वह आगे बढ़ा। उसकी आँखों ने उस मुनिवर के मुखकमल को भ्रमरों के समान घेर लिया। १५ राजकुमार ने मन ही मन समझा कि यह योगींद्र संसार रूपी दारुण विषवृक्ष को उखाड़ देने की इच्छा रखता है। १६ जिस तरह सूर्य के दर्शन से अंधकार समाप्त हो जाता है उसी तरह मुनि के मुख-दर्शन से

एंदु तरिसंदु मनदेरकदिंदवलोकिसुत्तिर्पुदुमुदय सुंदरं वज्रबाहुकुमारन मुखारविंदमं नोडि—

भाव मुनींद्ररं बिडदे नोडिदपै मनमोंल्दोंडं तपः-
श्रीवधु कामिनीजनदवोल् निनगीवळे कूर्मे वस्त्रम्-
षावळियं कचावळियनीवधु गर्वद गाळु वस्त्रम्-
षावळियं कचावळियनित्तरनल्लदे पोंर्दलीवळे ।। १९ ।।

एंदु सरसमं नुडिदोंडरसनुदयसुंदरंगेंदनां तपमं कैकोंडोडे नीनेगे-य्वेयेने निन्नोंडनानुं तपमं कैकोळ्वेनेंबुदुं—

ओंडंबडिसि वाग्विडंबनदिनातनं बंधमं
पडल्वडिप बेगदिंदिरिदु वारणस्कंधदिं ।।
तोंडर्परिद वन्यवारणद माण्केयिंदेरिदं
तोंडर्पनिनिसानुवं बगेयदाकुभृत्सानुवं ।। २० ।।

आगळातन मनद तरिसलवं कंडुं—

नगे दिटमादोडे नाडेयु
मगिदु सुहृज्जनमुमुदयसुंदरनुं कै
मुगिदेरगे माण्बनल्लें
बगेयदिरिं पेरतनेंदु परिपडे नुडिदं ।। २१ ।।

---

राजकुमार के मन का अन्धकार दूर हुआ। १७ उसने सोचा कि संसार-सुख, जो खड्ग की धार से शहद को चाटने के समान है, उसे चाहने वाला मेरा मन मुझे संसार-दुःख में ढकेले बिना रहेगा! । १८ इस तरह सोचने वाले (विचारमग्न) वज्रबाहु के मुखकमल को उदयसुन्दर ने देखा और बोला—बंधु, मुनिवर को इस तरह अपलक देखने वाला तुम्हारा मन भले ही तपःश्री को अपना ले लेकिन क्या वह कामिनी की तरह तुम पर दया दिखाकर सुख देगी? वह अभिमान से भरी है और ऐसे लोगों पर ही संतुष्ट होती है जो अपनी समस्त सम्पत्ति, वस्त्र-आभूषण आदि को, तथा उनके मोह को त्याग देते हैं। १९ इस तरह विनोद की बात (सरस बात) करने पर वज्रबाहु ने उदयसुन्दर से पूछा—अगर मैं तपस्या को स्वीकार करूँ तो तुम क्या करोगे? उत्तर में उदयसुन्दर ने कहा तुम्हारे साथ मैं भी तपस्या करूँगा। वज्रबाहु ने उसे समझाकर, संसार-बन्धन से छुटकारा पाने की आतुरता से, तुरन्त हाथी की पीठ से उतर कर वसंतगिरि पर चढ़ने की बाधाओं की पर्वाह किये बिना बाधारहित हाथी की तरह उस (वसंतगिरि) पर चढ़ने लगा। २० उसके मन के निश्चय

ई मुनियुमनीमनमुम- * नीमैयुमनीमनुष्यगतियुमनांमु-
न्नेमानों पडेदेंळिली * सामग्रियोळप्पुकेय्वेनघविघनमं ॥ २२ ॥

ऎंदु मवद परिच्छेदमं नालगेगे तंदु परिजनमनोंडंबडिसि—

कर्विन बिल्लनिक्कि भयदिं मदनं परिदेरेपुत्तना-
पर्वतमं नरेंद्रसुतनेरि विराजितकेशपाशमं ॥
पर्विद मोहपाशदोडनोमों दलोळ् परिदिक्किदं जसं
पर्वुविनं जगत्रययमना मुनिमुख्यन पादपार्श्वदोळ् ॥ २३ ॥

अंतु वज्रबाहुकुमारं गुणसागरभट्टारकर चरणोपांतदोळ् तपश्चरण निरतनप्पुदुं—

ऎन्नोडवंदंतकनं * बेन्नट्टलोडर्चिदं जितात्मं सॆडेदं ॥
देन्न जसमळिगुमॆनगदे * बन्नं बन्नक्के बेरॆ कोडॆरडोळवे ॥ २४ ॥

ऎंदुदयसुंदरनुं परिच्छेदिसि तन्नोडने तपक्के तरिसंदिर्पत्तु मूवररसुमक्कळ् बेरसु तपोनिधियं सन्निधियोळ् जातरूपधरनप्पुदुं—

अग्रजनोळाद जिन दी-
क्षाग्रहणमननुजे केळ्दु तानु जिन दी-
क्षाग्रहयं पडेदळ् ल-
ब्धिग्रहणदिनोळ्पुवडॆवुदोंदच्चरियॆ ॥ २५ ॥

---

को समझकर उदयसुन्दर ने भी, इस बात की चिन्ता किये बिना ही कि दुनिया क्या कहेगी, संसार का मोह छोड़ने की ठानी। २१ (और सोचा) इस मन को, इस देह को तथा इस मानव-जन्म को प्राप्त करने वाला मैं शीघ्र ही उस मुनि से पाप-रहित गति प्राप्त कर लूँगा। २२ अपने मनके इस निर्णय को वाणी के द्वारा, परिजनों को बताकर उन्हें समझाया। वह अपने हाथ में धारण किये हये इक्ष धनुष को फेंक कर उसी तरह पर्वत पर चढ़ने लगा जिस तरह ईश्वर के भय से कामदेव अपने धनुष को फेंककर वल्मीक पर चढ़ गया था। अपनी केशराशि को और मोहपाश को फेंककर (त्याग कर) राजकुमार मुनिवर के चरण-कमलों के पास इस तरह पहुँच गया मानो कीत्ति जग में व्याप्त हो गई हो। २३ इस तरह वज्रबाहु कुमार गुणसागर भट्टारक के चरणकमलों के पास पहुँच कर तपस्या में लीन हुआ। उसने अपने साथ आये हुए यमराज का पीछा करने का निश्चय किया। उदयसुन्दर ने (भी) सोचा कि अगर मैं पीछे हटता हूँ तो जग में मेरी अपकीर्ति होती है। २४

अंतु गुणोदेयुं निर्भर तपोभरमं तळेदळित्तल् विजयरथमहिनायं तन्नमोम्मनप्प वज्रबाहुकुमारन तपःप्रपंचमं निळिदु—

मदुवेगे पोपुदेत्त गिरिकंदरदोळ् मुनियं मनस्वि क-
ट्टिदिरोळे काण्बुदेत्तदुवे कारणमागे कडंगि महोपा-
शद तोडरं बिर्दिचि देसेयं तुवरं निजकीर्तियं निमि-
र्चिदनेने वज्रबाहुव नेगळ्ते पोगळ्तेगळुंवमागदे ॥ २६ ॥

युवराजं नवयौवन * नवयवदिं दीक्षेगोड्डिदं तनुवनिदे-
नवचलनो कुमारं मो- * हविषाहिय कालकूट रदमं किळ्तं ॥ २७ ॥

किरुगूसु विपय सुखमं * तोरेदु तपंवट्टनिन्नेवरमरिपिदं
मरेदिर्दे नेंद्ु तंदं * तरिसरवं तन्न चित्तदोळ् विजयरथं ॥ २८ ॥

अंतु विजयरथनरेंद्र निजतनूजप्प सुरेंद्रमन्युवेरसु तन्न मोम्मनप्प पुरंदरंगे निजराज्यमनित्तु निवार्णघोषरेंब मुनिमुख्यर समीपदोळ् तपोराज्यदोळ् निंदनित्तला पुरंदरं सकलसाम्राज्यसुखसुधारसदिं तणिदु विषयवैशम्यतत्परं क्षेमंकरमुमुक्षुगळ समक्षदोळ् दीक्षेयं कैकोंडु निल्वुदुं—

---

इस विचार से उसने (उदयसुन्दर ने) अपने साथ आये हुये तेईस राजकुमारों के साथ गुणसागर भट्टारक से दीक्षा ली। अपने भाई द्वारा जिन-दीक्षा ग्रहण करने की सूचना पाकर वहन गुणोदया ने भी जिनदीक्षा ली। उपलब्धि को ग्रहण करके उच्च (वड़ा) वनने में आश्चर्य क्या है ? । २५ गुणोदया और वज्रबाहु द्वारा इस तरह जिनदीक्षा स्वीकार करने की खबर पाकर महाराज विजयरथ ने सोचा—कहाँ विवाह के लिए रवाना होना ! कहाँ पर्वत की तराई मे मुनिवर को देखना ! उसी कारण से कहाँ मोहपाश को तोड़ कर दीक्षा लेकर दिगत विश्रांत कीर्ति पाना ! वज्रवाहु का यह यश अतिशय प्रशंसा का आश्रय वने इसमें शंका क्या है ? । २६ नव यौवन से परिपूर्ण होते हुए भी युवराज ने अपने शरीर को तपस्या में लगा दिया। उसके मन की धारणा अचल है। इसीलिए विपधर सर्प के दाँत के समान मोह को उखाड़ कर फेंक सका है। २७ छोटे वच्चे ने विषय-सुख त्याग कर तप को अपनाया ! मैं मोह के कारण अब तक भूला रहा—ऐसा सोचकर विजयरथ ने भी (तप करने का) मन में निश्चय कर लिया। २८ इस तरह अपने पौत्र पुरंदर को राज्य सौंपकर विजयरथ ने अपने पुत्र सुरेन्द्रमन्यु के साथ निवार्ण-घोप नाम के मुनिवर से दीक्षा ली। तत्पश्चात् पुरन्दर ने वहुत समय तक

कीर्तिमुखदंतें कीलिसें
कीर्ति दिशादंतिदंतमं तदपत्यं
कीर्तिधरनेंबनरसं
कार्तस्वर कुधरदंतिरिकेयं तळेदं ॥ २९ ॥

आ कीर्तिधरनरेंद्रनोंदु दिवसं मणिमाडदमेलें मणिमयासन—
दोळाप्त परिजन परिवृतनोड्डोलगदोळिर्पुदुमासमयदोळ्—
इनमंडलमं स्वर्भा- ※ नु नुंगें कडुगदि कुंदगोंडिर्पुदुमा
जननाथनदुवें निर्वे- ※ ग निमित्तमेनल् विरागमं कैकोंडं ॥ ३० ॥

जगमं वेलगुव चंडा-
शुगमी स्थितिराहुविंदमादत्तेनलें-
नुगिबगिमाडदे कालो-
रगमस्मद्विधमनन्य राजन्यकमं ॥ ३१ ॥

अेंदु वैराग्य परिणतियिं चतुरुदधिवलय वलयित धरित्रियं
जरत्तृणमं बगेवंतें बगेये मंत्रिमंडल महासामंतरति चकितचित्तरागि—
परचक्रक्केडेमाडि भूवलयं भंडारमं बालवृ-
द्धरनीडाडि तपक्के पोपुदनयंभूपाल निन्नं पुरं-
दरनी राज्यभारक्के योचिसि तपोराज्यक्के मेय्दंदनं-
तिरें नीनाचरिसल्लदंदु धरें मात्स्यन्यायमेनागदे ॥ ३२ ॥

---

राज्य-सुखो की अमृतधारा का उपभोग करके, तृप्त होने के बाद विषय-वैराग्य से निरत क्षेमंकर मुमुक्षु के सम्मुख दीक्षा ग्रहण की। कीर्तिधर नाम के राजा की कीर्ति दिग्गजों की दंतपंक्ति के प्रकाश की तरह समस्त दिशाओं में फैली और पृथ्वी को सुवर्ण-पर्वत-सा बना दिया। २९ एक दिन कीर्तिधर राजप्रासाद के रत्नजडित (मणिमय) सिंहासन पर परिजनों से घिरा हुआ विराजमान था कि राहु द्वारा सूर्यमंडल को निगलने (सूर्य-ग्रहण) के कारण प्रकाश नष्ट हो गया। यह देखकर उसके मनमें वैराग्य जगा और वह विरागी बन गया। ३० अगर राहु के कारण सारी दुनिया को अपनी किरणों से प्रकाशित करने वाले सूर्य की यह स्थिति होती है तो क्या यह कालसर्प मेरा और अन्य राजाओं का (हमारी प्रगति का) नाश किये बिना रहेगा ? । ३१ इस तरह सोचकर, विराग भाव के कारण, अपने विशाल राज्य को तृणवत समझकर त्यागना चाहा तो मंत्री, सामंत आदि चकित हुए। उन्होंने समझाया कि इस तरह इस राज्य

अदरिनन्वय राज्यरक्षणार्थमात्मजनं पडेदु तपंडुवुदेंदु मंत्रिमंडल-मोंडंबडिसे कीर्तिधरनोडंबट्टु पलवुकाल मरमुगेय्युत्तिरला महीवल्लभन सहदेविवेंसर महादेविगे—

पीनकुचाननदोळ् क- ※ पाननदोळ् बेळ्पु तोरे तोरिदुदा चं
द्राननेगे गर्भचिह्नं ※ मानसदोळ् तोरे वेरे हर्षविषादं ॥ ३३ ॥

संतति राज्यरक्षणेगे पुट्टिदद सतसमु महीभुजं
संततिपुट्टे बिट्टुधरेयं तपदोळ् तरिसल्गुमेंब चिं
तांतरमुं मनक्केबरे माडिदाक्षणदोळ् नरेंद्रसी-
मंतिनि तद्विरुद्ध रस नाटक रंगमनंतरंगमं ॥ ३४ ॥

अंतार्के गूढगर्भदिं केलवानुं दिवसक्के बडवं निधानमं पडेदंते मगनं पडेदु पेररियदंते नडपुत्तिर्पुदुं—

भेदिसि सहदेविगे मग-
नादुदनोर्व धनार्थि मेच्चं पडेवों-
दादरदिनरियें भूपति-
गादुदु वर्गे तं.दुदीगळेंवनुरागं ॥ ३५ ॥

---

और भंडार को अन्यों को हथियाने का अवकाश देकर, एवं बाल-वृद्धों को त्यागकर तपस्या के लिए निकल पड़ना उचित नहीं है। पुरन्दर ने तुम्हें यह राज्य सौंपकर तपस्या ग्रहण की थी। अब अगर तुमने इसे यों ही त्याग दिया तो क्या अन्यायपूर्ण नहीं होगा? और तुम्हारे इस निर्णय को जगत् मत्स्यन्याय नहीं मानता रहेगा? । ३२ अतः वंश-परम्परा में उपलब्ध इस राज्य की रक्षा करने के लिए एक पुत्र-रत्न को पाने के पश्चात् तपस्या के लिए जावें—इस तरह समझाने पर कीर्तिधर ने प्रस्ताव को मान लिया और कई सालों तक राज्य करने के बाद उसकी पटरानी सहदेवी का चेहरा उज्ज्वल और कुचों का अग्रभाग काला हो गया, और गर्भ के सारे चिह्न दिखाई देने लगे। तब उस चंद्रमुखी के मन में आनन्द और विषाद एक साथ जाग उठे। ३३ वंशपरम्परा से प्राप्त राज्य की रक्षा के लिए संतान के जन्म लेने पर हर्षित होना स्वाभाविक है; लेकिन रानी को इस बात की चिन्ता हुई कि राजा राज्य त्यागकर तपस्या के लिए निकल जायेगा। अतः उसने गर्भवती होने की बात को गुप्त रखा। ३४ इस तरह कुछ समय बीतने के पश्चात् रानी ने पुत्र-रत्न को उसी तरह पाया जिस तरह किसी निर्धन को सोने का भंडार मिलता है। रानी ने इस बात को सबसे गुप्त रखा। लेकिन धन के लालच

मगनादं सहदेविगेंदोसगेंदंदातंगे चेंबोन्नरा-
शिगळं वस्त्रविलेपनाभरणमं साल्वेन्नगं कोट्टना
जगती वल्लभनेन्न पूण्के तुदिगेय्दित्तेंब संप्रीति कै-
मिगे संसार शरीर भोग परिनिर्वेगं तपः प्रीतिर्यि ॥ ३६ ॥

तोंट्टिल मगंगे पट्टं ❋ गट्टि जरतृण समानमेंने वसुमतियं
विट्टु जिनदीक्षेगोंडं ❋ मुट्टुविनं कीर्तिदेसेगळं कीर्तिधरं ॥ ३७ ॥

इत्त सुकौशलक्कोंडेयनागि सुकोशलनेंब नाममं
पेत्तु निरंतरोपचर्यदिं नवयौवननागि मीरिदु-
द्वृत्तरनिक्कि सुत्तण कडल्वरेगं नेलनं निमिर्चि भू-
पोत्तमनितु तन्न जसमं देसेयंतुतुवरं निर्मिचिदं ॥ ३८ ॥

चतुरुदधि मेखलालं- ❋ कृत वसुधादेविगज्जगापिनवर् दि-
क्तिगळेने सार्वभौमो- ❋ न्नतियं तळेदं सुकौशल क्षितिनाथं ॥ ३९ ॥

आ सुकौशलन जननियप्प सहदेवि सहचरी समन्विते मणिमाडद नेलेय मणिमयासनद मेले लीलेयिं कुळ्ळिर्पुदुमोंदुदिवसं—

ऊरडवियेंव बगेयं ❋ तारदतित्वरित मंदमेल्तेने गति बं-
दूरं यतिपति पोक्कं ❋ तारापतिमंते पडेदु नयनोत्सवमं ॥ ४० ॥

---

से एक सेवक ने रानी के पुत्र उत्पन्न होने की सूचना राजा को दे दी। तव राजा ने सोचा कि अव मेरी मनोकामना पूरी हुई। ३५ पुत्र उत्पन्न होने की सूचना देने वाले सेवक को राजा ने सुवर्ण, वस्त्रादि देकर तृप्त किया। मेरी मनोकामना पूर्ण हुई, इस बात से संतुष्ट होकर वह राजा अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के उद्देश्य से शरीरभोग की लालसा को त्याग कर तप के निमित्त राजमहल छोड़ने को तैयार हुआ। ३६ पालने में सोये हुये अपने वेटे को सिंहासन सौंपकर, अपने राज्य को जीर्ण तृणवत् समझकर कीर्तिधर ने जिन-दीक्षा लेकर अपनी कीर्ति को दशो दिशाओं में फैलाया। ३७ इधर राजकुमार सुकौशल बड़ा होकर सुकौशल देश का राजा बना। उसने अपने शत्रु राजाओं पर विजय प्राप्त करके चारों ओर के प्रदेशों को अपने राज्य में मिलाकर शासन करते हुए अपनी कीर्त्ति-पताका को दिगंत तक फैलाया। ३८ चार समुद्र जिसकी सीमा थी और दिक्पालक जिसके रक्षक थे, इस प्रकार की अलंकृत वसुधा को सार्व-भौम सुकौशल ने सुशोभित किया। ३९ एक दिन सुकौशल की माँ सहदेवी अपनी परिचारिकाओं के साथ महल के दुमंजले पर मणिजटित आसन पर बैठी हुई थी कि—गाँव, जंगल आदि की चिन्ता किये बिना

मुनियं कंडाक्षणदोळे
तनूभवं दीक्षेगोळ्गुमेंबावेशं
मनदोळिरे लोचनातिथि
यनतिथियं कंडु कलपमं कैकोंडळ् ॥ ४१ ॥

गुणहीनें धर्महानिय
नेनिसदे पापक्के मणियदुपवासद पा-
रणेयोळे पोळलिंदति दा-
रुणमति पोरमडिसि कळेदळा यतिपतियं ॥ ४२ ॥

पति मुन्नं तनगेंबिदं बगेदळिल्लिक्ष्वाकुवंशावनी-
पति लोक स्तुतनेंबुदं नेनेदळिल्लीगळ् तपोमार्ग वि-
श्रुतनेंबुन्नतियं विचारिसिदळिल्ला कांते दुर्मोहदिं
मतिगेट्टा यतियं परागविसि चर्याविघ्नमं माडिदळ् ॥ ४३ ॥

आगळदं कंडु सुकोशलन दादियप्प वसंतमाले कीर्तिधरनरेंद्र-
नप्पुदनरिदु—

अपमानमं सुकोशल * नृपाल जनकंगे पतिगे कीर्तिधर क्ष-
त्रपविन्नंगोडरिसिदळ् * विपरीतमिदेंदु नोंदु शोकंगेय्दळ् ॥ ४४ ॥

---

एक मुनिवर अत्यन्त शीघ्रता से नगर में प्रविष्ट हुआ और तारापति (चन्द्रमा) के समान आँखों को आनन्द देने लगा। ४० मुनि को देखते ही इस वात के डर से कि बेटा दीक्षा ले लेगा (नगर में आये हुए) मुनि के प्रति सहदेवी के मन में द्वेष जगा। ४१ उस गुणहीन रानी ने धर्म-हानि की परवाह किये विना तथा पाप से भी न डरकर, उपवास के पश्चात् अल्पाहार की प्रतीक्षा करने वाले मुनि को निर्दयता से नगर के वाहर निकलवा दिया। ४२ इस वात पर ध्यान दिए विना कि वह (मुनि) कभी अपना ही पति था, या इसकी चिन्ता किये विना कि वह कभी सूर्यवंश का जग-प्रसिद्ध राजा था और अब तपसिद्धि पा चुका है, संसार-मोह के कारण रानी ने उस अल्पाहार में वाधा डाली। ४३ सुकौशल की धाय वसंतमाला ने कीर्तिधर को पहचान लिया। अपनी मालकिन के व्यवहार से सुकौशल और कीर्तिधर दोनों का अपमान हुआ है और यह वड़ा बुरा हुआ, ऐसा सोचकर उसे (वसंतमाला को) दुःख हुआ। ४४

बसिरं मोदिकोंळुत्तुमळवि निजधात्रीवक्त्रमं नोडि बे-
वसमं निम्म मनक्के निर्भयदिनावं तंदनातंगे से-
रिसेनानेंदु सुकौशल क्षितिभुजं कट्टाग्रहैगेय्ये सू-
चिसिदळ् कांते वसंतमाले निजशोकोद्रेक वृत्तांतमं ॥ ४५ ॥

अदं नेरेये केळ्दु—

पसुगूसिगेनगित्तु राज्यपदमं निंदं तपोराज्यदोळ्
वसुधावल्लभना मुनीश्वरन पादोपांतमं पोर्दि सा-
धिसुवें निर्वृत्ति सौख्यमं विषयसौख्यमं मुख्यमल्तेंदु भा-
विसि बिट्टं सिरियं सुकौशलनदें वैराग्यसंपन्ननो ॥ ४६ ॥

मुनिभोजनविघ्नं म- * ज्जननियिनाय्तेन्न दूसरि तायगेनां-
मुनिवेनो मुनियप्पन्नेग * मनशनमेनगेंदु चित्तदोळ् तरिसंद ॥ ४७ ॥

अंतु परिच्छेदिसि—

धवलातपत्र वारण * विविध ध्वज चामरंगळं राज्यश्री-
गिवु तोडवेंदवनोल्लदे * भुवनेशं राजभवनमं पोरमट्टं ॥ ४८ ॥

अंतु पोरमट्टु पादमार्ग दिनुपवनमनेय्दि कीर्तिधर भट्टारकरंत्रिः प्रदक्षिणंगेय्दु दीक्षाप्रसादमेंदु वंदिसि कुल्लिर्पुदु-मागळखिल परिजनं संभ्रमंबेरसु बंदु—

---

अपने पेट पर मार-मारकर रोती हुई दासी का मुख देखकर सुकौशल के आग्रहपूर्वक यह पूछने पर कि तुम्हें किसने दुःख दिया है, वसंतमाला ने अपने दुःख का कारण सविस्तार (आदि से अन्त तक) कह सुनाया। ४५ उसे पूर्ण सुनकर—"पिता ने समस्त सुखों को त्याग कर, जब मैं बहुत छोटा बच्चा था, मुझे राज्य सौंपा था। उन्होंने इस राज्य-भोग को, विषय-सुख को त्याग कर मुनिवरों के चरणकमलों में बैठकर मोक्ष-सुख पाने की कामना की। वे कैसे महान् वैरागी थे ? । ४६ वैसे महान् वैरगी के उपवास के बाद के अल्पाहार में मेरी माता ने बाधा डाली। इसके लिए क्या मैं माता से कुपित हो जाऊँ ? नही।" उसने मन में निश्चय किया कि जब तक मैं दीक्षा ग्रहण नहीं करता तब तक मैं उपवास करूँगा। ४७ ऐसा निश्चय करके—यह कहकर कि श्वेतछत्र, हाथी, ध्वज, चामर आदि राजा के आभरण (अलंकरण) नहीं है, उन सबको त्यागकर राज्य से बाहर निकल पड़ा॥ ४८ इस तरह बाहर निकलकर, पैदल चलकर, नगर के बाहर स्थित उपवन में पहुँचकर, तीन बार कीर्तिधर भट्टाकर की

ॲमगिन्नार शरणेंदु मांडलिकरुं सामंतरुं मंत्रि व-
र्गमुमंतः पुरमुं विलासिनियरुं बाय्बिट्टु पुय्यल्चे शो-
कमिदेकीकॆय गर्भदर्भकणॆ निम्मं रक्षिसलसाल्गुमॆं-
दु महादेविगॆ चित्रमालॆगवरं भूपालनप्पैसिदं ॥ ४९ ॥

स्त्री बाल साध्यमिळॆ नि-
म्मी बाहाबलदिनादुदॆनगा तॆरदिं-
दी बालॆय गर्भदॊळि-
र्दा बालननरसुमाळ्पुदिदु निमगॆ बॆसं ॥ ५० ॥

ॲंदु परिजनंबॊडंबडिसि कीर्तिधर मुमुक्षुगळ समक्षदॊळ्
दीक्षॆयं कैकॊंडु—

श्रुतदग्गळिक्कॆ तपदु
न्नतिक्कॆ तन्नॊळॆ नॆगळ्तॆवॆत्तिरॆ भूवि-
श्रुतनॆनॆ सुकौशल व्रति
पति तपदिं श्रुतदिनारुमं गॆलॆवंदं ॥ ५१ ॥

अंतविश्रांततपः श्रीयनप्पुकॆय्दिर्पिनं—

---

प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया और करने के लिए दीक्षा प्रदान निवेदन किया। इतने में उसके परिजन वहाँ आ पहुँचे। मांडलिक, सामंत, मंत्रीवर्ग एवं अंत.पुर की स्त्रियाँ यह कहकर जोर-ज़ोर से विलाप करने लगीं कि अब हमारा क्या होगा? राजा ने उन सबों को समझाया कि इसके लिए दुःखी क्यों होते है? मेरी पत्नी के गर्भ में जो बच्चा है वही आप सब लोगों की रक्षा करेगा। यह कहकर महारानी को भी सांत्वना दी। ४९ उसने कहा, आप लोगो के बाहुबल के भरोसे पर स्त्री एवं बालक को शासन करने का अवसर मिला है। मेरी पत्नी के गर्भ से जन्म लेनेवाले बालक को आप सब लोग राजा का मान देकर राज्य चलावे। आप लोगों को यह मेरी आज्ञा है। ५० इस तरह परिजनों को समझाकर, कीर्तिधर यति के सम्मुख दीक्षा ग्रहण करके—धर्मकी अधिकता और तपस्या की प्रगति करते हुए जगत्-प्रसिद्ध सुकौशलपति ने अपने धर्म और तपस्या की महिमा से समस्त (संसार) को जीतने की शक्ति प्राप्त की। ५१ इस तरह (जब सुकौशलपति) अविश्रांत तपस्या कर रहा था तो कदंबवृक्ष में फूल खिल उठे, कुंद पुष्प के ध्वज उग आये, मोर नृत्य

कडवलर्दुवु मोल्लेय पू-
गुडि निमिर्दुवु सोर्गे केगिदुवु केदर्गे दे-
ळ्गुडिवोदुवु चादर्गेगळ्
कडंगि नुंगिदुवु तोखनियं कारोळ् ॥ ५२ ॥

आ घनसमय प्रवेशदोळ् तन्मुनियुगळं वृक्षमूलनियोगनिर्वर्तना-नंतरं योग्यकालावेक्षेयिं कांतारभिक्षेगे बरुतिरे—

कण्बरिगेट्टु दिव्यमुनिगित्तपमानदिनार्तरौद्रदिं
पेण्बुलियागि पुट्टी सहदेवि बरुतिरे कंडशंकितर्
कण्बोलदोळ् निवृत्तिपरिणाममोडंबडे धर्मशुक्लदोळ्
जाण्वडेदिक्कि कैयनुपसर्ग सहिष्णुगळिर्दरिर्वरुं ॥ ५३ ॥

तनुवं बेर्केय्दु तम्मि मुनिपतिगळनुपेक्षेयं ताळ्दि सन्या-
सनयुक्तचित्तदोळ् निश्चलमिरिसि जिनश्रीपदाब्जंगळं पं-
चनमस्कारंगळं नालगे जपियिसे गुंजद्गुहा रंजितं कां-
चनशैलद्वंद्वमिर्पंतिरे शुभचरितर् पूण्दुकैयिक्किनिंदर् ॥ ५४ ॥

अंतु निंद मुनियुगळमं कंडु कडु मुळिदु—

जडियुत्तुं बालमं कण्णुरियनुगुळे जिह्वानलं पेर्चे बाय्वि-
ट्टोडेवन्नं गर्जिसुत्तुं पवनजवदे मेल्वाय्दु पोय्दत्तु कैये-
रेडेयिं बायेरिवायिदोडने रुधिरमं कंडमुंसूसुवन्नं
सिडिलेंबाशंकेयं पेण्पुलि पडेदु मृगीरक्तसेवानुरक्त ॥ ५५ ॥

---

करने लगे, केतकी ने श्वेतध्वज फैलाया और चातक पक्षी उत्साह से वर्षा ऋतु के बूँदों को पान करने लगे। ५२ इस वर्षाऋतु के प्रारम्भ में दो मुनिवर अपने तप के स्थान से उठकर भिक्षा के निमित्त जंगल में आये तो—सहदेवी, जिसने मुनि का अपमान किया था, बाघिन बनकर अविवेकी की भाँति सामने आई। वे मुनि, जिनके मन में मोक्ष पाने की इच्छा थी, किसी तरह की बाधाओं से नहीं डरे। ५३ मुनिवरों ने अपने शरीर को प्राण से अलग किया और मोहरहित हो, मनमें सन्यास-धर्म के प्रति अविचल रहकर, जिन-चरणों एवं पंच-नमस्कारों को रटना (जपना) प्रारम्भ किया। उस समय वे ऐसे सुशोभित प्रतीत हो रहे थे मानो ध्वनि करते हुए खड़े दो सुवर्ण पर्वत हों। ५४ इस तरह खड़े दोनों मुनियों को देखकर, कुपित हो—पूँछ को पटकते हुए, आँखों से अग्नि बरसाते हुए, जीभ से अग्नि-ज्वाला को बढ़ाकर, भयंकर रूप से गरजकर,

अंतापुलि मुनींद्रयुगळद मेलॆ पाय्दुगिवगिमाळ्पुदुमा
महोपसर्गमं सैरिसि—
घातियुमनघातियुमं ※ घातिसि कीर्तिधर योगि मुक्तगॆ संदं
घातिक्षयदिं कैव- ※ ल्यातिशयंवॆत्त ना सुकौशल मुनिपं ॥ ५६ ॥

इत्त विचित्रमालॆगॆ तनूभवनागॆ हिरण्यगर्भनें-
दत्तु धरित्रिगर्भदॊळॆ वल्लभनागॆ समस्तराज्यसं-
पत्तिगॆ तत्सुतं बळॆदु चागद बीरद मॆ ्या र्मॆ दिशा-
भित्तियनॆंटनॆय्दॆ तॊरॆसुत्तिदनात्म यशोदुकूलदिं ॥ ५७ ॥

सरस बिसगर्भ गौरं ※ परॆयॆ जसं पुश्पुरक्कॆ गर्भस्रावं
दॊरॆकॊळॆ हिरण्यगर्भ ※ धरित्रियं हर्षगर्भमॆनॆ पालिसिदं ॥ ५८ ॥

तदपत्यं नहुष चतु- ※ रुदधिवरं वसुदॆयं निर्मिचि भुजाग-
र्वदगुर्वि माण्दनॆ चतु- ※ रुदधियॊळुदवासमिरिसिदं रिपुनृपरं ॥ ५९ ॥

ई सकल धरॆयनुग्रभु- ※ जासियॊळळवडिसि नहुषनग्रसुतं सं-
वासं रिपुदारकारं ※ दासेरकरॆनॆ पॊडर्पुगिडॆ नंडॆयिसिदं ॥ ६० ॥

तत्तनूभवं—

---

तीव्रगति से उनपर झपटकर, घावों से प्रवाहित रक्त को पीकर, । ५५ उस बाघिन ने उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर दिया। लेकिन वे (मुनिवर) उस पीड़ा को सहते रहे। उससे उत्पन्न संताप को सहन करते हुए कीर्तिधर योगी मुक्ति को प्राप्त हुए और सुकौशल कैवल्य पा गए। ५६ इधर विचित्रमाला ने हिरण्यगर्भ नाम के पुत्र को जन्म दिया। विशालभूमि का स्वामी बनकर उसने अपने त्याग और शौर्य से अपनी कीर्ति को दिगंत तक फैलाया। ५७ उसकी पराक्रम-गर्जना से शत्रुराजाओं की रानियों का गर्भपात हो जाता था। उसका राज्य 'हर्षगर्भ'-सा आनन्द से भरा था। ५८ उसके पुत्र नहुष ने चार समुद्र तक के राजाओं को जीतने के पश्चात् भी (चुप न बैठकर) अपने बाहुबल की विपुलता से शत्रु-राजाओं को पानी में डुबाकर रख दिया। ५९ नहुष के ज्येष्ठ पुत्र संवास ने अपने पिता के राज्य को खड्ग रूपी अपने भुज से संभाला और शत्रु-पुत्रों का गर्वभंग करके दासी-पुत्रों के समान बना दिया। ६० उस (संवास) का पुत्र सिंहरथ—शत्रुरूपी मदमाते हाथी के समूह का संहार कर, वीरश्री का अधिपति (यजमान) बनकर, अपने सिंहरथ नाम को सार्थक

संहरिसि रिपु मदद्विप
संहृतियं बीरासिरिगॆ वल्लभनादं
सिंह पराक्रमनॆंनिसिद
सिंहरय सार्वभौमविभव सनाथं ।। ६१ ।।

आ सिंहरथन—
ऒर्वनॆ धन्वियॆनल् सक-
लॊर्वरॆयं काद्दु तन्न बाणद मॊनॆयॊळ्
मार्वलमं तविसिदनॆंनॆ
दोर्वलमें ब्रह्मरथनॊळवितयमाय्तो ।। ६२ ।।

लतत्तनयं—
समर मुखदॊळ् विरोधि-
प्रमुखरनॆय्दिसॆ शिलीमुखं यम मुखमं
क्षमॆयं तळॆदं चापा-
गम चतुर चतुर्मुखं चतुर्मुखनॆंबं ।। ६३ ।।

भूमंडलमं तळॆदं * क्षेमास्पदमागॆ नाममहिमोन्नतियिं
हेमाचलमं मॆच्चं * हेमारथं श्रुतिमुखं चतुर्मुखतनयं ।। ६४ ।।

आ राजसुतं कीर्ति सु-
धारसदिं तण्पुवडॆदु परिपूर्णकला
धारं सकलेंदुरथं
वैरि मनोरथ रथांगमं विगटिसिदं ।। ६५ ।।

---

बनाकर सार्वभौम राजा हुआ। ६१ उस सिंहरथ के पुत्र ब्रह्मरथ ने अयोध्या के सिंहासन को अलंकृत (सुशोभित) किया। उसके सम्मुख शत्रु के रूप में जो भी खड़ा होता उसे अपने वाणों की नोक से पराजित कर यह सिद्ध कर दिया कि संसार भर में वह एक मात्र (अद्वितीय) धनुषधारी है। ६२ उसके पुत्र चतुर्मुख ने—युद्ध में यद्यपि शत्रु-प्रमुखों को वाणों की नोक से यमयातनाएँ दीं, तथापि उनपर दया (क्षमा) दिखा कर रक्षा भी की। ६३ चतुर्भुख के पुत्र हेमरथ ने ऐसा शासन किया कि सबका कल्याण (उद्धार) होने के साथ-साथ उसका अपना, नाम भी प्रसिद्ध हुआ। ६४ इसके वाद उसका पुत्र इन्द्ररथ राजा बना। उसने अपने शत्रुओं की मनोकामनाओं को वैसे ही मिटा दिया जैसे अमृत रस से ठंडक पहुँचाने वाला चन्द्र समस्त कलाओं के साथ उदय होकर चक्रवाक

आ महीभुजन तनूभव—
तेजं पुदुविल्लेनिसि वि-
राजिसे परराजमंडलं तन्नि नि-
स्तेजं बॆत्तिरॆ बॆळगिद-
नी जगमं भानुवॆंविनं भानुरथं ॥ ६६ ॥

मत्तं तदन्वयदॊळ् मय मांधातृ वीरसेन कमलबंधु वसंततिलक कुबेरदत्त•मृगारिवदमन द्विपरथ हिरण्यकशिपर्करथ दिलीप रघुवीर प्रमुखरॆनिवरानुमरसुगळनुक्रमदिं राज्यगेय्दु कॆलवरमरकामिनी कचग्रहणमं कॆलवरमृतलक्ष्मीपाणिग्रहणमं पडॆवुदुं—

धरणीप्राकारं वी- ※ र रसार्णव सेतु दानगुणभूषणदि-
क्करि धर्मरत्नरोहण ※ गिरींद्रमिक्ष्वाकु वंशमाय्तप्रतिमं ॥ ६७ ॥

आ वंशदॊळ् विनीतपुरमनळ्वननरण्यनॆंबरसनखिल राजकुलमणि मकुट मकरिकापत्र विचित्रचित्रित पादपीठं—

नॆनॆयिसुवं मान्य पुरा-
तन राज्यन्यकमनतुल बाहा बलदिं-
दनरण्यं कृतपुण्यं
मनुवंश वरेण्यनखिल भुवन शरण्यं ॥ ६८ ॥

---

पक्षियों के अलगाव (विरह) के लिए कारण बनता है। ६५ उसका पुत्र हुआ भानुरथ—जिस तरह सूर्य प्रकाश के कारण चन्द्रमण्डल निस्तेज हो जाता है, वैसे ही भानुरथ ने शत्रुराजाओं के पराक्रम को दबा दिया। ६६ तत्पश्चात् उस वंश में क्रमशः मय, मांधातृ, वीरसेन, कमल-वंधु, वसंततिलक, कुबेरदत्त, मृगारिदमन, द्विपरथ, हिरण्यकशिपु, अर्करथ, दिलीप, रघुवीर आदि प्रमुख राजाओं ने शासन किया। उनमें अनेकों ने जय-लक्ष्मी को प्राप्त किया तो औरों ने मोक्ष-लक्ष्मी को। अप्रतिम इक्ष्वाकु-वंश वीररस-रूपी समुद्रसेतु के लिए पृथ्वी का परकोटा (चहार-दीवारी) हो, दान-गुण-भूपण के लिए दिग्गज स्वरूप, धर्म-रूप रत्न के लिए रोहणगिरि बनकर चलता रहा। ६७ उस वंश में विनीतवन का शासक अनरण्य नाम का राजा हुआ जिसने समस्त शासकों के मुकुटमणि बनकर उनसे सेवा कराई—अपने शौर्य से अपने पूर्वजों का स्मरण कराते हुये, सारी पृथ्वी को अपने अधीन करके प्रसिद्ध हुआ। ६८ अनरण्य ने

अनरण्यनेंब पेसरं ॐ जनपतिदेशदोळरण्यमिल्लेने नाना
जनपदमं पडेदु जग- ॐ ज्जनं कुडल् पडेदनुंतें पडेदने पेसरं ।। ६९ ।।

न्यायार्जितवित्त ध- ॐ र्मायत्तमेनिप्प राजवृत्त तनगे-
कायत्तमागे धरेयं ॐ जीयेनिसिदनितुदात्त चरितरुमोळरे ।। ७० ।।

आ वसुधावल्लभन म-
नोवल्लभे रूपवति कलावति पृ-
थ्वीवधु धैर्यदोळं पृ-
थ्वीवनितेगे युवतिसवतियेने पेसर्वडेदळ् ।। ७१ ।।

कडुचल्लिव रतिगेग्गं
पडेदु विलासक्के देसिवडेद- वनिपनोळ्
पडेदु पिरियरसितनमं
पडेदळ तनयरननंतथ दशरथरं ।। ७२ ।।

आ पृथ्वीवधुमहादेवियोलखिल पृथ्वीवल्लभं धर्मार्थविरुद्ध-मागदंतु विषयसुखमननुभविसुत्तिर्दोंदु दिवसं—

भुवन स्तुत्यपदं सहस्रकिरणं स्वर्भानुविंदं परा-
भवमं पोर्दुववोल् सहस्रकिरणं महिष्मतीवल्लभं
बवरंगेय्दु दशासनंगे रंगदोळ् सोल्तेर्वादं क्षत्रपु-
त्रवरेण्यं जिनदीक्षेगोंडननरण्यं केळ्दना वार्तेयं ।। ७३ ।।

---

(अपने) शासनकाल में समस्त अरण्यों (जंगलों) का निर्वाण करके अपने नाम को सार्थक बनाकर प्रजाजनों की रक्षा की । ६९ प्रजाओं से न्याय-पूर्ण धन संग्रह करता हुआ अपने धर्मपूर्ण शासन से (उसने) यह सिद्ध कर दिया कि वह उदात्त चरित्र वाले शासकों में अद्वितीय है । ७० उसकी पत्नी कलावती अपने रूप और गुण के कारण ऐसी प्रसिद्ध हुई मानो वह अपने पति द्वारा शासित भूमि की सौत हो । ७१ रूप में रति को भी लजा देने वाली, (भोग) विलास में पति के अनुरूप (अनुकूल) सौदर्य-मयी ज्येष्ठरानी (कलावती) ने अनन्तरथ और दशरथ नामक दो पुत्रों को जन्म दिया । ७२ उसके (कलावती के) साथ अनरण्य संसार सुख का उपभोग इस तरह करता था (जिससे) जीवन-धर्म-कर्म के विरुद्ध न हो । ऐसे में एक दिन—उसने सुना कि विश्ववंद्य सूर्य राहु के उपद्रव से जिस तरह प्रकाशहीन हो जाता है वैसे ही रावण से युद्ध करते हुए माहिष्मती

अंतु केळ्दद्दुवे तनगे निर्वेगनिमित्तमागे—

केळेयं सहस्रकिरणं * तळेदं दीक्षेयनुपेक्षिसल् पदनल्ली
येळेयनपेक्षिसेनेंदा- * गळनंतरयंगे नुडिदनितननरण्यं ॥ ७४ ॥

पडेदें निन्नन्नं रक्षिसलखिल धराचक्रमं पुत्रनींवे-
ळ्गोंडेयं कैकोंळ् धराभारमनिळिपेनगेंदंगे दंतांशु जालं
कुडिमिंचं बीरे कैयं मुगिदु नुडिदनेमातोनिर्वामार्ग-
क्कोंडसल्वें निम्म चित्तक्केंडरिद नेलनं देव कैकोंळ्वनल्लें॥ ७५ ॥

एंदु तन्नोंडने तपंबडलोंडंबट्टु तरिसंदु नुडिवुदुमोंदुतिंगळ मगनप्प ददरथगे पट्टंगट्टि तानुमनंतरयनं अभयघोपभट्टारकर पादोपांतदोळ् तपंबट्टु—

अनरण्यं मुक्ति श्री * वनिता वरनादनंतनंतरयं चि-
त्तनिरोध दग्धकर्म- * धनभारननंत वीरकेवलियादं ॥ ७६ ॥

आ महामहिमेयोळ्—

---

नगरी के राजा सहस्रकिरण ने पराजित होने की व्यथा से जिनदीक्षा ग्रहण कर ली है। यह समाचार अनरण्य के वैराग्य का कारण वना—मित्र सहस्रकिरण ने जिनदीक्षा ग्रहण की, इस पर गौर किये विना उपेक्षा नहीं की जा सकती; इस पृथ्वी की मैं अपेक्षा नहीं कर सकता—इस तरह सोचकर उसने अपने पुत्र अनंतरथ से कहा। ७४ वेटे, मैंने तुम जैसे वीरपुत्र को पाया; इस भूमि पर तुम राज्य करो, श्वेत छत्र को स्वीकार करो; मैं अपने कंधे से राज्य के भार को उतार देता हूँ। इसे सुनकर चमकती विजली को स्मरण दिलाती हूई सी दन्तपंक्तियों का प्रकाश फैलाकर, हाथ जोड़कर अनन्तरथ ने भी "हे पिताजी, उस राज्य के भार को मैं कैसे वहन कर सकूँगा जो आपके लिए भारस्वरूप प्रतीत होता है? आपके साथ मैं भी दीक्षा लूँगा"। ७५ ऐसा कहते हुए जब (अनन्तरथ ने) पिता के साथ दीक्षा ग्रहण करने का निर्णय किया तो अनरण्य अपने एक वर्ष के पुत्र को सिंहासन सौंपकर, पुत्र (अनन्तरथ) के साथ अभयघोप भट्टारक के चरणों के पास तपस्या करने लगा। अनरण्य मुक्ति-वधू का वर बना। अनन्त-रथ चित्तनिरोध से अपने पाप-कर्मों को जलाकर अनन्यवीर्य केवली के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ७६ इन्द्र के उद्यान में पुष्पवर्षा होने लगी जिससे, इन्द्र के आगमन को जानकर संतुष्ट हुआ-सा वायु गंभीर (मन्द) गति से वह कर जयभेरी की सी ध्वनि करने लगा।

अमरेंद्रोध्यानदिं पूमळेकरेये सुरेंद्रागमं रागमं बी-
रे मरुद्गंभीर भेरीनिनदमोदवे निर्वाणकैवल्यमांग-
ल्य महोत्सव प्रमोदामरकलकलमानंदमं माडे रोमां-
चमनानंदाश्रुवं ताळ्दिदनमलयशं भारतीकर्णपूरं ॥ ७७ ॥

इदु परमजिनसमय कुमुदिनी शरच्चंद्र बालचंद्र मुनींद्र चरणनखकिरण चंद्रिकाचकोर भारतीकर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचित मप्प रामचंद्र चरित पुराण-दोळ् वंशवर्णनं--द्वितीयाश्वासं ।

॥ द्वितीययाश्वासम् समाप्तम् ॥

---

जब इस मोक्ष महोत्सव से सन्तुष्ट-चित्त होकर देवताओं ने आनन्द से कलकल ध्वनि की तो सरस्वती के कर्णाभरण के समान अभिनव पम्प (अत्यन्त) रोमांचित हुआ । ७७

जो परमजिनसमय और कमलों के लिए शरत्काल के चंद्र के समान माने जाने वाले वालचंद्र मुनींद्र के पदनख-रूपी चंद्र के प्रकाश से पवित्र है, एवं जो सरस्वती के कर्णाभरण के समान है; (ऐसे कवि अभिनव पंप) के 'रामचंद्र-चरित-पुराण' के वंश-वर्णन का यह द्वितीयाश्वास समाप्त हुआ ।

॥ द्वितीयाश्वास समाप्त ॥

## त्रितीयाश्वासं

श्रीवनिते वक्षदोळ् मु-
क्तावळियंतेसेये तोट्टिलोळ् पट्टित्त-
ल्भूवळयं भुजदोळ् शो-
भावहमेने पेंपुवेत्तनभिनव पंपं ॥ १ ॥

---

### आश्वास—३

लक्ष्मीदेवी विष्णु भगवान् वक्षस्थल पर मोती की माला के समान सुशोभित हो मानो पालने में सोयी थी । इधर अभिनवपंप (कवि) इस अभिमान से प्रसिद्ध हुआ मानो समस्त भूमंडल उसकी भुजाओं में छिपा है । १ वालसूर्य-सा जगको प्रकाशित करता हुआ, तथा वालचंद्र-सा सारे

ऍळ नेसरंतॆ जगमं
वॆळगिदनॆळदिंगळंतॆ सकल धरित्री
तळमनॆरगिसिदनॆळवॆयॊ-
ळिळॆ वण्णिसॆ दशरथं भगीरथ चरितं ॥ २ ॥

आ बंशजर गुणंगळ-
नावगमॊळकॊंडु तन्न विशदयशो मु-
क्तावळियं धरॆगित्तु ध-
रावल्लभनत्युदात्तनॆनॆ पॆसर्वडॆदं ॥ ३ ॥

चिरकालद कळिवूवें-
दिरदॆ विरिंचिय मुखारविंदमनुळिदा-
दरदिंदिर्दळ् सितमधु-
करवधु वाग्वधु नरेंद्र मुखसरसिजदॊळ् ॥ ४ ॥

जडधिथ रत्नंगळ्पॊं-
दॊडविनुपाश्रयदिनॆसॆवबोळ् दशरथ निं
जडजजन विद्यॆगळ् न्-
मॆडिसिदुवा ॰प्र विशेषमें केवलमे ॥ ५ ॥

अरुवत्तु नाल्कु विद्यॆम-
नरिदुं दशरथन चित्तमनुरागदि ने-

संसार को अपने पादकमलों पर नवाता हुआ, भगीरथ के समान चरित वाले दशरथ बचपन में सब लोगों से प्रशंसित हुआ। २ सूर्यवंश के राजाओं के गुणों को अपने में ग्रहणकर, मुक्त-कलाप सदृश अपनी सर्वस्तुत्य कीर्त्ति को संसार को प्रदानकर उसने उदात्त यश पाया। ३ सदा ब्रह्म के मुखारविंद में निवास करनेवाली, शुभ्रवसना मधुर वचनों की वाग्देवी नामक भ्रमरी उसे (ब्रह्म को) छोड़कर दशरथ के मुखकमल में निवास करने लगी। ४ समुद्र के तल में उत्पन्न होनेवाले रत्नों की शोभा जिस तरह कनकाभरणों के आश्रय (सम्पर्क) से बढ़ती है, उसी तरह दशरथ के आश्रय में ब्रह्म की विद्या सौगुनी बढ़ गई। यह इस बात की साक्षी है कि आश्रयदाताओं की महत्ता सामान्य नहीं होती। ५ चौसठ विद्याओं का ज्ञाता दशरथ का मन (किसी) मोह से विचलित नहीं हुआ। धर्म-शास्त्र के ज्ञाता का मन धर्म को त्यागकर अधर्म को कैसे अपना सकता

नॆरगिदुदॊ धर्मशास्त्र
 क्करिवुळ्ळ विकयॆमॊळ् मनं निरिसुगुमे ॥ ६ ॥

ओदिदॊडेनरगिळि क-
 ल्तोदुववोल् धर्मशास्त्रमं दशरथनं-
तोदि तिळिदवनिपति म-
 यर्दॆयॊळॆसगुवुदु धर्मपरनॆनॆ लोकं ॥ ७ ॥

कादळ् वर्णाश्रम ध-
 र्मादिगळं मीरदंतु नॆलनं नृपना-
ज्ञादेवतॆ वॆदिकॆ म-
 यर्दॆयॊळंभोनिधानमं निलिसुववोल् ॥ ८ ॥

मनमॆळदागॆ वैरिगॆ मनीषिजनं मनमीयॆ मानिनी
जनमभिमानमं मरॆयॆ भूभुवन स्तवनीयमादुदा-
तन बलगैयॊळिर्पं जयलक्ष्मिगमातन सॊल्लॊळिर्प वा-
ग्वनितॆगमा महीपतिगमप्रतिमं परिपूर्ण यौवनं ॥ ९ ॥

अंतु दशरथनरनाथं नवयौवनलक्ष्मियनप्पुकॆय्दु लावण्यलक्ष्मी विराजितॆयॆनिप्पपराजितॆयुं, मदनमोहन विद्यादेवतॆय मित्रॆयॆनिप्प सुमित्रॆयुं, कंतु संतापन दीप कळिका प्रभॆयॆनिप्प सुप्रभॆयुं, ओरॊमॆ पॆरुरदॊळिर्प सिरियं गाढालिंगनद नॆवदिं नॆलॆमॊलॆयॊळि-

---

है ? । ६ धर्मशास्त्र को तोते की तरह कंठस्थ करके रटने से क्या लाभ ? उसे जाननेवालों को चाहिए कि वे दशरथ की तरह उसका अध्ययन कर, समझकर, सम्मानपूर्वक पालन करे जिसे जग पसंद करे । ७ दशरथ की राजलक्ष्मी रूपी देवी ने वर्णाश्रम धर्म से आबद्ध उसके शासित राज्य की रक्षा उसी तरह की जिस तरह दिगंत बादलों को अपने वश में रखते हैं । ८ जब शत्रुओं का मन क्षुद्र हुआ (शत्रु पराजित हुए) प्रजाओं ने अपने आपको अर्पित किया और स्त्रियों ने अपने अभिमान को भुला दिया तब दशरथ के दाहिने हाथ की जयलक्ष्मी और उसके वचन में स्थित वाग्देवी को परिपूर्ण यौवन प्राप्त हुआ । ९ इस तरह उसने नवयौवन में, सौंदर्यलक्ष्मी की तरह सुशोभित अपराजिता, कामदेव की विद्यादेवी की मित्राणी सदृश रहनेवाली सुमित्रा, मनोज की दीपलक्ष्मी की प्रभा-सी सुशोभित सुप्रभा, इनको अपने वक्षस्थल पर धारण करनेवाली लक्ष्मी

ट्टोत्तुवंतेदॆ वत्तुगॆवेत्तु, कलभापित सुधाजलदिं सरस्वतिय कलावलेपमं कर्चि कळॆवंते मॊगवडॆदु, प्रणयकलहकेळियिं विजयश्रीयं जनिसुवंते तोळ्वॆरगनप्पुकॆय्दु, तनगॆ मनोनयन वल्लभॆयरॆनिसॆ—

कुलसतियरिं नृपं दा- * न लेखॆयिं दिगिभमृतकळॆयिं शशि मे-
खलॆयिं मंदरशैलं * विलासमं तळॆदुदॆनॆ वडंगं तळॆदं ॥ १० ॥

इवनॆंतु बॆरसि संजॆयॊ- * ळनुरागियॆनिप्पनंते नृपनानृपनं-
दनॆयरॊळनुरागदिनि- * दनवरतं तॊळगि वॆळगिदं सत्पथमं ॥ ११ ॥

नीरॊळगिर्दुं पॊर्ददु * नीरं नीरेजमॆंववोलवला श्रृं-
गार रस मग्ननागियु * मारळ वॆनॆ तळॆदनरसनिंद्रिय जयमं ॥ १२ ॥

कुळभूभ्रत्कूटदॊळ् माणिकदॆळविसिलॆंतॆंते दिवकुंभि कुंभ-
स्थळदॊळ्सिदूरमॆंतंतमरनदियॊळारक्त नीरेज पत्रा-
वळियॆंतंतब्धियॊळ्विद्रुम समुदयमॆंतंते पर्वित्तु रागा-
विळमप्पंतुर्वियॆल्लं दशरथ वसुधाधीश तेजप्रकाशं ॥ १३ ॥

खंडिसि वैरिवंशवनमं कडिदुद्युत शाखॆयं भुजा
दंड कृपाणदिं समरि कंटकमं समॆदातपत्रदिं

---

का आलिंगन कर मधुरध्वनि के अमृत से सरस्वती के मुख की मलिनता को धोदेनेवाले के समान मुख पाकर, प्रणय-कलह के खेल में मानो विजयश्री को पाकर, उन्हें अपने मन एवं नेत्रों की रानी बनाया। जिस तरह कुल वधुओं से राजा, दानगुणों से दिग्गज, अमृतकला से चंद्र तथा मेखला से मंदर पर्वत अनुरक्त (अनुरंजित) होता है, उसी तरह राजा दशरथ भी अपनी रानियों से सुशोभित हुए। १० दशरथ उसी प्रकार अपनी पत्नियों के साथ स्नेह से सन्मार्ग में निरत हो गये। जिस प्रकार सूर्य सध्यादेवी से मिलकर अनुराग सहित प्रकाशित होता है। ११ जल में रहकर भी जिस तरह कमल जल से अलग रहता है वैसे ही स्त्रियों के साथ शृंगार रस में निरत होते हुए भी दशरथ सदा जितेंद्रिय ही रहे। १२ कुलपर्वत (महेंद्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विंध्य और पारियात्र नामक सात पहाडों का समूह) के शिखर पर माणिक्य की लघु धूप-सा, दिग्गजों के कुंभस्थल के सिंदूर-सा, देवनदी (गंगा, सरस्वती और दृषद्वती नदी) के लालकमल पुष्पों-सा तथा समुद्र में स्थित वज्रों के समूह-सा दशरथ के तेज का प्रकाश संसार की समस्त दिशाओं में फैला। १३

चंडकर प्रतापमखिलोर्वरेगिल्लॆ तण्पुमाडिदं
दंडधरोत्तमं दशरथं सफलीकृत सन्मनोरथं ॥ १४ ॥

अनिमिष गायकर्दशरथ क्षितिनायकनंकमालॆयं
तनतनगोल्दु पाडुवॆडॆयोळ्पुळकं पॊरॆपॊण्मॆ सोल्तु कॆ-
ळ्वनिमिष नायकं तनगॆ चामरमिक्कुव देवकामिनी
जन मणिकंकण ध्वनिगॊनल्दवरं किसुगण्चि नोडुवं ॥ १५ ॥

नोडिरॆ किन्नरर्दशरथ क्षितिनाथन बीरदेळ्गॆयं-
पाडॆमरुळ्दु कॆळ्व पददॊळ्किविसार्दु जिनुंगॆ सौरभ-
क्काडुव तुंविगळ्विजनाथनवर्कॆ कनल्दु माणदी-
डाडुवना नमेरु कुसुमस्तवकंगळ कर्णपूरमं ॥ १६ ॥

वाळ विसिलिनन तेजम-
नॆळिसॆ नॆलनं पयोधिपर्यंतं बाय्-
कॆळिसि दशरथनॊळ्पं
पाळिसि सुखदिदंमरसुगॆय्युत्तिर्दं ॥ १७ ॥

आ निखिल राज किरीटकीलित हरिनील मदाळिमाला परिचुंबित चरणारविंदनॊंदु दिवसमाप्तपरिजनंबॆरसु करुमाडदॆरडनॆय

---

वांस के वनरूपी शत्रुसमूह को तलवाररूपी अपनी भुजाओं से काटकर, उसके दुरभिमान की शाखाओं को चूर्ण करके काँटों को मिटाकर (समाप्त कर) अपने श्वेतक्षत्र की छाया के नीचे अपने शासित राज्यों में मानो कभी धूप का ताप ही न रहा हो, इह प्रकार ठंढक पहुँचाकर दशरथ कृतार्थ हो गये। १४ देव-गायक दशरथ की विरुदावली गा रहे थे कि वाहर प्रस्फुटित रोमांचों से हारकर उसे सुनने में लीन देवराज (इंद्र) ने चामर से विजन करनेवाली देव-स्त्रियों के कंगन की आवाज से उत्पन्न ध्वनि से जागकर उन्हें किंचित क्रोध से देखा। १५ किन्नरों द्वारा दशरथ के शौर्य का गुणगान गाते समय, ध्यान से श्रवण करनेवाले इंद्र के कानों से टपकनेवाली (उसकी) सुगंध को घेरकर जव भ्रमर गुनगुनाने लगे तो इन्द्र उन्हें भगाने के उद्देश्य से कर्णाभरण के रूपमें अपने कानों में जो पुष्प-कलियाँ थीं उन्हें फेंकने लगे। १६ दशरथ के जीवन की शौर्योन्नति के सम्मुख सूर्यप्रकाश फीका प्रतीत होने लगा। उसने अपने राज्य की सीमा को समुद्र तक फैलाकर सुख पूर्वक शासन किया। १७ समस्त राजाओं के

नेलेय मोगसालेयोळिक्किद मणिमयासनमनलंकरिसि कर्णपूर पारिजातस्तबक परिमळक्केळसि बळसुवेळदुंबिय कळरवमनालिसुतिर्पुदुमा समयदोळ—

नयनोत्साहमनित्तु देहरुचियिंदैतंदनाकाश गं-
गेय नीर्मानिसदेंबिनं दशरथ क्षोणीशनास्थान भू-
मियना नीरदमार्गदिंदरिदु सन्मार्गक्के मैदारदं-
नयमं सारदनाव काळेगदोलं कण्णूरदं नारदं ॥ १८ ॥

बिससूत्रद कटिसूत्रं * पोसदुगुलद कोवणं कमंड़लु रारा-
जिसे दंडपाणि पोक्कं * किसुरळिपं पिसुण पसरिगं नृपसभेयं ॥ १९ ॥

अंता नारदं नभोमंडलदिं सभामंडलक्कवतरिसे—
इदिरेळ्दिच्छाकारम-
नुदात्तनेनित्तुमाण्दने कांचन पी-
ठदोळिरिसि मुकुळितांजलि
सदर्भ साक्षतमनर्घ्यपादनित्तं ॥ २० ॥

बंद् बरवावुदी बर- * विंदं चरितार्थनादेनानेल्लिदं
बंदिरेने नृपति नारद * नेंदं दशनांशु केदरे चंद्रातपमं ॥ २१ ॥

---

मुकुटों की रत्न-प्रभा पर मंडरानेवाले भ्रमरों के समूह से युक्त चरण-कमलों से सुशोभित दशरथ, अपने परिजनों के साथ राजप्रासाद के दूसरे खण्ड में, रत्नसिंहासन को अलंकृतकर, अपने कान में धारण किए हुए पारिजात-पुष्पों की मुगन्ध के लिए घेरकर गुनगुनाने वाले भ्रमरों के गुन्जन का आनंद ले रहे थे कि—देखनेवालों की आँखों को अपनी देहकाँति से आनंद प्रदान करते हुए, आकाशगंगा से उत्पन्न मानव के समान, आकाश-गंगा से उतरकर नारदमुनि, जिसने कभी सभ्य व्यवहार के प्रति ध्यान नहीं दिया, जिसने (जानते हुए भी) नीति की वात नहीं बतायी और जिसे युद्ध के प्रति आस्था न होते हुए भी दूसरों को आपस में लड़ाने में आनंद मिलता है, दशरथ के दरबार मे आया। १८ कमलदंड के जनेऊ, नये वस्त्र के कौपीन, कमंडल और योगदंड से सुशोभित कलहप्रिय, चुगलखोर, नारद राजदरबार में प्रविष्ट हुए। १९ जब इस तरह नारद आकाश मार्ग से सभागृह में आये तो—दशरथ अपने आसन से उठे और अतिथि-सत्कार के रूप में नारद को सुवर्णसिंहासन पर विठाकर, हाथ जोड़कर कुश का आसन और अर्घ्य देकर, सत्कार किया। २० आपके आगमन

आनी जंबूद्वीपद पूर्वविदेहद पुंडरीकिणीपुरद सीमंधर स्वामिगळ परिणिष्क्रमण कल्याण विभूतियं नोडि वंदेनेंदु सभेयं कण्सण्णेयिं तोलगिसि दशरथंगे कट्टीकांतदोळितेंदं—

लंकेगे पोगि शांति जिनभक्तियोळां स्मर दानदंति व-
ज्रांकुश दर्शन स्तवनदिं चरितार्थनेनादेनागि वी-
तांकुशनप्प रावणनोळं नेरेदीनुडिगेळ्दु नाडेयुं
शंकेयोळोंदि बंदेनरिपल्पेरतें निमगा प्रपंचमं ॥ २२ ॥

अदेंतेने विभीषणं सागरबुद्धि वेसर नैमित्तिकनं बरिसि रावणन मरणकारणमं बेसगोळ्वुदुं—

एनुं तोदळिल्लिदुवे शि-
लानिक्षिप्ताक्षरं विभीषण रणदोळ्
जानकिय दूसरि लं-
कानाथं दाशरथिय कैयोळ् मडिगुं ॥ २३ ॥

ऒने विभीषणं विषण्णनागि—

अरयलवरुत्पत्तिगे
कारणमेनिसिर्द जनकनं दशरथनं

---

का कारण क्या है ? आपके आने से मैं कृतार्थ हो गया हूँ। आप कहाँ से पधार रहे हैं ? —आदि पूछने पर नादर मंद-मंद मुस्कराये, तब उनकी दंतपंक्तियों का प्रकाश चाँदनी-सा चमका। नारद ने उत्तर में कहा—। २१
मैं उस जंबूद्वीप की पूर्वदिशा के अंतर्गत विदेह में स्थित पुंडरीकिणीपुर के सीमंधर स्वामीजी का परिनिष्क्रमण कार्य देख आया हूँ, ऐसा कहकर आँखों के इशारे से दरवार को विसर्जित किया और एकांत में दशरथ से बोले—मैं लंका गया और वहाँ शांतिजिन को स्मर, दान, दंति, वज्रांकुश आदि स्तवनों से पूजकर कृतार्थ हो गया हूँ। अजेय रावण से बात करते समय कुछ सूचनाएं पाकर, संदिग्ध चित्त हो, तुम्हें सुनाने आया हूँ। २२
वह यह कि विभीषण ने जव सागरबुद्धि नामक ज्योतिषी को बुलाकर रावण की मृत्यु के विषय में पूछा तो उसने कहा—'विभीषण, मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह असत्य नहीं, उसे शिलाक्षर समझो। जानकी के कारण ही राम के हाथों, रावण युद्ध में मारा जायगा। २३ इसे सुनकर विभीषण ने विषाद से सोचा कि अगर इसके लिए कारणीभूत जनक और

मारणमं पोंदिसुवें
　　कारण विघटनमें कार्यविघटनमल्ते ॥ २४ ॥

अेंदु तरिसंदु—

अेनगिदयुक्तमेंन्न बगें पापनिबंधनमेंवुदेंबिदं
नेंनेयदें तन्नसोदरनोंळ्प्प विपत्तिगणं विभीपणं
मनदोंळळल्दु निम्मनळियल्वगेंदंदनिदर्कें तक्कुदं
नेंनेंदिरिमानिदं तडेंयदिं जनकंगरिपल्कें पोदगें ॥ २५ ॥

अेंदु नारदं नीरदपथक्कें नेंगेंदु मिथिळेंयनैदि जनकंगमा स्वरुपमनरिपिपोपुदुमित्तल् दशरथना वार्तेयेंल्लमं समुद्र हृदयनेंब तन्न मंत्रिमुख्यंगरिपुवुदुमातनिदर्कें कालवंचनमें कार्यमेंदु निश्चयंगेंदु दशरथनं कळिपि चित्रकनुं तानुमल्लदें पेंररिरयदंतु करूविडिस लाक्षारसादिगळिं सप्तधातुगळं पडेंदु वर्णक्रमं गेंय्यें—

इदु भूपन रूपिदु ले-
　　प्पद रूपेंनलेंतुमरियलरिदेंनें वगेंगें-
ड्दु नडेंव नुडिव तेंरदिं
　　प्रदेशसौष्ठवमदें विचित्रमों चित्रं ॥ २६ ॥

---

दशरथ को ही रास्ते से हटा दिया जाय तो उचित होगा। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। २४ यह सोचे विना कि यह कार्य उसके लिए योग्य नहीं है, पापकार्य है, अपने भाई पर आनेवाली विपत्ति की चिंता करते हुए, उसने त[illegible] दोनों को मार डालने का निश्चय किया है। अतः इस आनेवाली [illegible]ि से वचने का कोई उपाय सोचिए। मैं जनक को सूचना देने जा रह[illegible]। २५ ऐसा कहकर नारद ने आकाशमार्ग द्वारा मिथि[illegible] प[illegible]र जनक को सारी बातें बताई। इधर दशरथ ने नारद द्वारा बताई गई बातें अपने मंत्री समुद्रहृदय को सुनाई तो उसने यह सोचकर कि इसके लिए कालवंचना ही एक मात्र उपाय है, दशरथ को देशांतर (परदेश) भेज दिया और अत्यन्त गुप्त रूप से लाक्षारस में सातों धातुओं को गलाकर दशरथ के रूप और रंग से मिलता-जुलता पुतला ढलवाया। (यह रहस्य केवल मंत्री और शिल्पी तक ही सीमित रहा।) वह प्रतिमा इतनी स्वाभाविक थी कि उसकी चाल और बोली आदि देखकर भी कहना कठिन था कि यह राजा नहीं है। २६

अंतु परविद्धमं प्रत्यक्षमं माडिद चित्रकन परिणतियं मनदेकोंडु लेप्पदरसनं करुमाडदेरडनेय नेलेयोळिरिसि परिजनमुं तानुमोलगिसुत्तिरे—

जनकन मंत्रियुमी क्रम * दिननुष्टिसि कळिपे जनकनुं दशरथनुं
दिनकरनुं हिमकरनुं * घनाघनांतरितरादरेने तलेगरेदर् ॥२७॥

अन्नेगमित्त विभीषणादेशदिं बंद तीक्ष्ण पुरुषर् पुरमंपोक्कु करुमाडमं पुगलपडेयदे तडेदिर्पुदुं—

अट्टिद जट्टिगर्तडेदुदर्के कनल्दु विभीषणं मुगि-
ल्वट्टेयिनट्टि तिब जवनंतिरयोध्येगे बंदु पोक्कु पों
बेट्टमेनिप्प पोन्नकरुमाडमनंदिरुळल्लि कंडु क-
ण्मुट्टिनोळिर्द लेप्पदरसं कोलवेळ्दनसार चेतनं ॥ २८ ॥

अंतु पेळ्वुदुं—

बेसनं विद्युद्विळसित * बेसर वियच्चर भटोत्तमं पडेदु जवं
मसगिदनेने कापिनव-* देसेगिडे पोक्किरिदु कोंदु तलेयं तंदं ॥२९॥

आ समयदोळ्—

परिजनद भूपनंतः
पुरदबळाजनद नेगेद हाहारवमे-

---

—इस तरह के असाध्यकार्य को भी संभव कर दिखानेवाले शिल्पी की कुशलता की मंत्री ने तारीफ की और राजा की प्रतिमा को राजमहल की द्वितीय मंजिल पर रखवाकर परिजनों के साथ स्वयं दरबार में विराजमान हुआ। उधर जनक के मंत्री ने भी राजा की प्रतिमा बनवाकर राजा को विदेश भेज दिया। इस तरह जनक और दशरथ बादल में छिपे सूर्य-चन्द्र की तरह सिर छिपाकर गुप्त जीवन बिताने लगे। २७ —तब विभीषण की आज्ञा पाकर आए हुए हत्यारे नगर में प्रविष्ट हुए, लेकिन राजमहल में घुसने में असमर्थ हुए। इसे जानकर—विभीषण कुपित हो यम (काल) की तरह अयोध्या में आकर रात के समय सुवर्ण-पर्वत के समान दिखाई देनेवाले राजमहल में घुसकर राजा की प्रतिमा को देखकर, परिचारकों को उसे मार डालने की आज्ञा दी। २८ —ऐसा कहने पर—आज्ञा पाया हुआ गन्धर्व क्रुद्ध होकर काल की तरह शत्रुओं पर टूट पड़ा। रक्षक भयभीत हो भाग गये तो वह गन्धर्व (दशरथ की) प्रतिमा का सिर काट लाया। २९ —उस समय, परिजनों एवं अन्तःपुर की स्त्रियों का हाहाकार सुनकर वह

य्तरे किविगे केळ्दु नलिदं
करुणारस रहितनावनाखचरनवोल् ॥ ३० ॥

कोललेंदु बंदु लेप्पद
तलेयं कोंडुय्दना विभीषणनारुं
कोललार्परे सायदरं
ललाटदोळ् विधिय वरेद लिपि जल लिपिये ॥ ३१ ॥

अंतवन तंद तलेयं कडलोळीडाडि जनकनुमनंतेमाडि मगुळे लंकेगे पोगि—

मनदोळ्तन्न नेगळ्तेयं नेनेदु कष्टंगेदेनानी दशा-
नननं कोल्ववनावनी कडलनावं दांटुवं लंकेगा-
वनो बर्पगड भूमि गोचरनिदं नैमित्तिकं पेळ्दोडा-
तन मातिंगविचारितं नेगळ्देनेंदुब्बेगमं ताळ्दिदं ॥ ३२ ॥

जिनगृहमं प्रायश्चि-*त्त निमित्तं निरतिशयमेनलमाडिसिदं
तनगे कषायोदयदिं *जनयिसे पोल्लमेयनोळ्ळिदं सैरिपने ॥ ३३ ॥

अन्नेगमित्त दशरथन जनकन परिजनं लेप्पदरसनप्पुदनरिदु संतोषबट्टिर्पुदु अत्त दशरथनुं जनकनुं रूप परावर्तनदिननेक देशंगळं नोडुवुदे तमगे बिनोदमागे तोळलुत्तुं बंदु—

---

राक्षस निर्मोही-सा तृप्त हुआ। ३० दशरथ को मारने के लिए जो विभीषण आया था, वह दशरथ की प्रतिमा का सिर काटकर ले गया। न मरनेवालों को कौन मार सकता है? भाग्य की लिखावट पानी पर लिखे गये अक्षर थोड़े ही है?। ३१ दशरथ के लाये हुये सिर को समुद्र में फेंककर तथा जनक के सिर के साथ भी वैसा ही व्यवहार करके, विभीषण लंका लौटा। और उसने मनमें अपनी कीर्ति को स्मरण कर, समझा कि उसने पापकर्म किया है। अब रावण को मारनेवाला कौन है? समुद्र पार करके लंका में कौन आयेगा? ज्योतिषी की बातों पर विचार किए बिना मैंने अनर्थ किया। ३२ जैन मंदिर में प्रायश्चित करवाया। पापकर्म घट जाने के पश्चात् उससे आनेवाली अपकीर्ति को सज्जन सह सकता है?। ३३ —इधर दशरथ और जनक के परिजन यह जानकर सतुष्ट हुए कि प्रतिमाओं के सिर काटे गये हैं, असली राजाओं के नही। उधर दशरथ और जनक वेष बदलकर अनेक देशों में यह सोचकर भ्रमण कर रहे थे कि उन देशों का भ्रमण करना विनोद की वात

सकलर्तुक मनदिं दी * घिकॆयिं पुष्करिणियिं सरोवरदिं कौ-
तुकमनवर्कडकौं- * तुक मंगलपुरमनुर्वेरा नूपुरमं ॥ ३४ ॥

मिसुगुव पॊन्नकोटॆ मुगिलं तुडुकुत्तिरॆ पॆंपुवॆत्तगळ्
बिसरुहमुळ्ळरल्दु सिरिकण्डॆरॆदंतिरॆ सुत्तलुं बनं
कुसुमशरंगॆ पॊच्चपॊस जौवनदंतिरॆ राजधानि क-
ण्गसदळमॊप्पि तोरिदुदु कौतुक मंगळमात्त मंगलं ॥ ३५ ॥

आ पुरद पॊरपॊळलनॆय्दॆवर्थागळ—

ललना रत्नदॊळं जय * ललना रत्नदॊळमप्प तोळ्वॆरगन ना
कुलमरिपुदंतॆ बलग * ण्वलगै कॆत्तिदुवु दशरथंगॊमॆदलॊळ् ॥ ३६ ॥

अंतॆय्दॆवर्पुदुमापुरद बहि:पुरोद्यान प्रदेशदॊळ कनक प्राकार कमनीयमुमंबर तळ चुंवि चंचद्ध्वजराजि विराजमानमुमनेक मणिभवन भासुरमुमॆनिसि जनमनोहरं स्वयंवरभूमि नयनाभि-राममादुदल्लि—

पळुकिन चौरवंडंगळ * कॆळगण चॆंबॊन्न मत्तवारणदॊळ क-
ण्गॊळिसिदरनेक देशं- * गळ राजतनूजरोळियिंदिकॆलदॊळ् ॥ ३७ ॥

आगळल्लि—

नयनाकर्षणविद्यै गंडुवरिजं कैकॊंडुदो गंडगा-
डियनीतंगॆ मनोजनॊप्पिसिदनो पॆळॆंबिनं बण्णिसल्

---

है। एक ही समय (एक साथ) समस्त ऋतुओं की शोभा से युक्त वनों से, एवं कूप, तालाब एवं सरोवरों से सुशोभित कौतुक मंगलपुर को देखकर दशरथ और जनक दोनों अत्यन्त चकित हुए। ३४ सुवर्ण का चमकता किला बादलों से बात कर रहा था। उसके प्राकार (चहारदीवारियाँ) खिले कमल-से सुंदर थे। आस पास के वन कामदेव को प्राप्त नवयौवन के समान थे। ऐसे में कोतुकमंगलपुर की राजधानी मंगलमय प्रतीत हुई। ३५ —उस नगर की बाह्यसीमा के पास आते समय दशरथ को एकाएक ललनाओं और जयश्री के भुजालिंगन के अनुभव के लक्षण, दाहिनी-बाँह और दाहिनी आँख के स्फुरण से, पूर्व सूचना के रूप में प्रतीत हुए। ३६ —इस तरह आए तो नगर का उद्यान प्रदेश आकाश को चूमती हुई पताकाओं, स्वर्ण-प्राकारों एवं अनेक रत्नभवनों के आलोक से जगमगाता, आँखों को आनन्द देनेवाला, सुन्दर स्वयंवर मंडप दिखाई पड़ा। चंद्रकाँत शिला के दालान के नीचे के चबूतरे में दोनों ओर अनेक देशों के राजकुमार विराजमान थे। ३७ —तब, आँखों को अनायास आकर्षित

बयसल्तक्क वेंडंगु कण्गोळिसे तन्न कंडणं कन्नया-
सेयना राजकुमारकर्तोरेविनं पोक्कं सभासद्ममं ॥ ३८ ॥

तोंडवुगळेंडुमादनितरिं तनगक्कुमें गाडि गाडि मे-
य्दोडवेंने मासि रूपुगरेंदिदों डमातन रूपिदोंदु क-
ण्दोडवेंने बेरिदोंदु वगॆगिक्किद टक्कॆने वश्यदोंदु त-
ण्जॊडरेंने नोळ्प नोटकर कण्गोळादुदु कण्णपापेवोल् ॥ ३९ ॥

अंतु दशरथं स्वयंवर सभासदनमं पोक्कु तानुं जनकनुमोंदु
कडेय पट्ट कांचनमंचोपांतदोळ् निंदु नोडुत्तुमिरे—

एरि मणिवेसॆद सिविगॆय
नेरिसि कुडुविल्लनोंडने वरे कंदर्प
नीरे मुगिल्वोरेयोळ् मे-
य्दोरुव शशिकळेय गाडियं गॆलेवंदळ् ॥ ४० ॥

युवतीरत्नद केलदोळ् ※ धवळ विलोचन मरीचि तिंगळ वेळगं
कवर्दु कोळे कुंचदडपद-※ डवकेय कन्नडिय कॆन्नेयर्कण्गेसॆदर् ॥ ४१ ॥

ऒळवेरॆ पोन्न पुत्तळिगे रत्नद दीविगॆ तन्न पुष्प को-
मळ तनु बेरे बीरे नयनोत्सवमं निजलोचनंगळु-

करनेवाली विद्या मानो पुरुषरूप धारणकर सम्मुख आ गई हो, जिसे कामदेव ने स्वयं पुरुष का मनोहर सौंदर्य प्रदान किया हो, इस प्रकार के वर्णनीय तथा रूपवान् दशरथ स्वयंवर-मडप में ऐसे प्रविष्ट हुए कि उन्हें देखकर ही राजकुमारों का समूह कन्या की आशा छोड़ बैठा। ३८ आभरण सुन्दर होने से कहीं शरीर का सौंदर्य बढ़ता है? सौंदर्य मानो शरीर का आभरण है, वेष बदला हुआ होने पर भी मानो वही एक मात्र सुन्दर है, एक जादू-सा, वशीकरण मत्र के एक प्रकार सा और आँखों को ठंढक पहुँचानेवाले एक प्रकाश सा, दशरथ का रूप दर्शकों को दिखाई पड़ा। ३९ —इस तरह दशरथ और जनक स्वयवर मंडप में प्रवेशकरके एक स्वर्ण-मंच के पक्ष में खड़े होकर देख रहे थे कि—रत्न-पालकी पर चढ़कर धनुष चढ़ाए हुए कामदेव की तरह, एक युवती आई। उसका सौंदर्य बादलों के बीच से छनछनकर आनेवाली चाँदनी से भी बढ़कर था। ४० उस युवती के बगल में चामर, तांबूल, पीकदानी लिए हुए परिचारिकाएँ थीं जिनकी आँखों की ज्योति शुभ्र ज्योत्स्ना के समान थी। ४१ बालचंद्र-सा, सुवर्ण-प्रतिमा-सा तथा रत्नदीपक-सा उसका कोमल शरीर दर्शकों के नेत्रों को उत्सव का आनंद प्रदान कर रहा था। उसकी आँखों में कमल-दल

तपळ दळ दाममं केदरे कण्गेसेदळ् नवरत्नमाळे कै-
दळदोळनंगपाशमेने कैके मनोजन बय्त बय्कवोल् ॥ ४२ ॥

आ समयदोळखिळ राजकुलदुभय विशुद्धियमनन्वय प्रसिद्धियुमनरिपि—

कंचुकि परिविडिर्यि नृप
संचयमं तोरे निंदुदिल्लवळ तटि-
त्संचल नयनयुगं निज-
दिं चळवोंदेडेयोळेंतुमें निदंपुदे ॥ ४३ ॥

आ नेरेदिर्द राजसुतरं परिदेय्दि बळल्दु विश्रम
स्थानमना महीभुजन मेय्सिरियं सेरेगेय्ये तत्सरो-
जाननेे तन्न लोल नयनोत्पलमाले नृपंगे मालेयं
तानोसेदिक्किदळ्निखिल राजकुलं मनमिक्कुवन्नेगं ॥ ४४ ॥

आ राजन्यकमिरे क- * न्यारत्नं रूपुगरेदोडं निजपुण्य
प्रेरणेयिं कैसार्द- * त्ता रघुवीरंगे पुण्यदोळ् पुरुडुंटे ॥ ४५ ॥

अेत्तिदुवातपत्रशत मिक्किदुवागळे हेमचामरं
मुत्तिन सेसेयं तळिदरंगनेयर् गगनांतराळमं

---

के हार को नीचा दिखानेवाला सौंदर्य था। ऐसी कैकेयी जब अपने हाथों में नवरत्न माला लिए आई तो ऐसी प्रतीत हुई मानो कामपाश को लिए कामदेव की इच्छा ही सम्मुख खड़ी है। ४२ —उस समय उपस्थित राजाओं की विरुदावली, वंशकीर्त्ति आदिका बखान कर—कंचुकी ने क्रमानुसार राजकुमारों की ओर इशारा किया तो उन सबको देखकर भी कैकेयी की दृष्टि कहीं नहीं रुकी। ४३ उपस्थित राजकुमारों को पारकर आने के फलस्वरूप थकी हुई आँखों को दशरथ के देहसौंदर्य ने आकर्षित किया तो उसने नील कमल-माला सदृय अपनी आँखों के साथ पुष्पहार को समस्त राजकुमारों के मन को मुरझाकर दशरथ के गले में डाल दिया। ४४ इतने राजकुमारों के होते हुए भी उसने वेषपरिवर्तित दशरथ के गले में ही स्वयंवर की माला पहनाई तो इससे यही सिद्ध हुआ कि भाग्य के साथ कोई स्पर्धा नहीं कर सकता। ४५ पुष्पमाला पड़ते ही दशरथ के सिर के ऊपर सौ छतरियाँ फैलाई गई। सोने के चामर से डुलाकर स्त्रियों ने अक्षत फेंके। उत्सव के बाजों (वाद्यों) का तुमुल घोष आकाश में छा गया। ब्राह्मणों के मुख से निकलकर मंगलमय मंत्रध्वनि गुंजरित

बयसल्तक्क बेडंगु कण्गोळिसे तन्नं कंडणं कन्नया-
सेयना राजकुमारकर्तोरेविनं पोक्कं सभासद्ममं ॥ ३८ ॥

तोडवुगळेड्डुमादनितरिं तनगक्कुमे गाडि गाडि मे-
य्दोडवेने मासि रूपुगरेदिदोंडमातन रूपिदोंदु क-
ण्दोडवेने बेरिदोंदु बगेगिक्किद टक्केने वश्यदोंदु त-
ण्जोडरेने नोळ्प नोटकर कण्गोळादुदु कण्णपापेवोल् ॥ ३९ ॥

अंतु दशरथं स्वयंवर सभासदनमं पोक्कु तानुं जनकनुमोंदु कडेय पट्ट कांचनमंचोपांतदोळ् निंदु नोडुत्तुमिरे—

एरि मणिवेसेद सिविगेय
नेरिसि कुडुविल्लनोडने वरे कंदर्प
नीरे मुगिल्वोरेयोळ् मे-
य्दोरुव शशिकळेय गाडियं गेलेवंदळ् ॥ ४० ॥

युवतीरत्नद केलदोळ् ❋ धवळ विलोचन मरीचि तिंगळ बेळगं
कवर्दु कोळे कुंचदडपद-❋ डवकेय कन्नडिय केन्नेयर्कण्गेसेदर् ॥ ४१ ॥

ओळवेरे पोन्न पुत्तळिगे रत्नद दीविगे तन्न पुष्प को-
मळ तनु बेरे बीरे नयनोत्सवमं निजलोचनंगळु-

---

करनेवाली विद्या मानो पुरुपरूप धारणकर सम्मुख आ गई हो, जिसे कामदेव ने स्वयं पुरुष का मनोहर सौंदर्य प्रदान किया हो, इस प्रकार के वर्णनीय तथा रूपवान् दशरथ स्वयवर-मंडप में ऐसे प्रविष्ट हुए कि उन्हें देखकर ही राजकुमारों का समूह कन्या की आशा छोड़ बैठा । ३८ आभरण सुन्दर होने से कही शरीर का सौदर्य बढ़ता है ? सौंदर्य मानो शरीर का आभरण है, वेप वदला हुआ होने पर भी मानो वही एक मात्र सुन्दर है, एक जादू-सा, वशीकरण मन्त्र के एक प्रकार सा और आँखों को ठंढक पहुँचानेवाले एक प्रकाश सा, दशरथ का रूप दर्शकों को दिखाई पड़ा । ३९ —इस तरह दशरथ और जनक स्वयवर मंडप में प्रवेशकरके एक स्वर्ण-मंच के पक्ष में खड़े होकर देख रहे थे कि—रत्न-पालकी पर चढ़कर धनुष चढ़ाए हुए कामदेव की तरह, एक युवती आई । उसका सौंदर्य बादलों के वीच से छनछनकर आनेवाली चाँदनी से भी बढ़कर था । ४० उस युवती के बगल में चामर, तांवूल, पीकदानी लिए हुए परिचारिकाएँ थीं जिनकी आँखों की ज्योति शुभ्र ज्योत्स्ना के समान थी । ४१ वालचंद्र-सा, सुवर्ण-प्रतिमा-सा तथा रत्नदीपक-सा उसका कोमल शरीर दर्शकों के नेत्रों को उत्सव का आनंद प्रदान कर रहा था । उसकी आँखों में कमल-दल

त्पळ दळ दाममं कॆदरॆ कण्गॆसॆदळ् नवरत्नमाळॆ कॆं-
दळदॊळनंगपाशमॆनॆ कैकॆ मनोजन बय्त बय्कॆवोल् ।। ४२ ।।

आ समयदॊळखिळ राजकुलदुभय विशुद्धियमनन्वय प्रसिद्धियुमनरिपि—

कंचुकि परिविडियिं नृप
संचयमं तोरॆ निदुदिल्लवळ तटि-
त्संचल नयनयुगं निज-
दिं चळवॊंदॆडॆयॊळॆंतुमें निदंपुदे ।। ४३ ।।

आ नॆरॆदिर्द राजसुतरं परिदॆय्दि बळल्दु विश्रम
स्थानमना महीभुजन मॆय्सिरियं सॆरॆगॆय्यॆ तत्सरो-
जाननॆ तन्न लोल नयनोत्पलमालॆ नृपंगॆ मालॆयं
तानॊसॆदिक्किदळ्निखिल राजकुलं मनमिक्कुवन्नॆगं ।। ४४ ।।

आ राजन्यकमिरॆ क- * न्यारत्नं रूपुगरॆदॊडं निजपुण्य
प्रेरणॆयिं कैसार्द- * त्ता रघुवीरंगॆ पुण्यदॊळ् पुरुडुंटे ।। ४५ ।।

ऎत्तिदुवातपत्रशत मिक्किदुवागळॆ हेमचामरं
मुत्तिन सेसॆयं तळिदरंगनॆयर् गगनांतराळमं

के हार को नीचा दिखानेवाला सौदर्य था। ऐसी कैकेयी जब अपने हाथों में नवरत्न माला लिए आई तो ऐसी प्रतीत हुई मानो कामपाश को लिए कामदेव की इच्छा ही सम्मुख खड़ी है। ४२ --उस समय उपस्थित राजाओं की विरुदावली, वंशकीर्त्ति आदिका बखान कर--कंचुकी ने क्रमानुसार राजकुमारों की ओर इशारा किया तो उन सबको देखकर भी कैकेयी की दृष्टि कहीं नहीं रुकी। ४३ उपस्थित राजकुमारों को पारकर आने के फलस्वरूप थकी हुई आँखों को दशरथ के देहसौंदर्य ने आकर्षित किया तो उसने नील कमल-माला सदृय अपनी आँखों के साथ पुष्पहार को समस्त राजकुमारों के मन को मुरझाकर दशरथ के गले में डाल दिया। ४४ इतने राजकुमारों के होते हुए भी उसने वेषपरिवर्तित दशरथ के गले में ही स्वयंवर की माला पहनाई तो इससे यही सिद्ध हुआ कि भाग्य के साथ कोई स्पर्धा नहीं कर सकता। ४५ पुष्पमाला पड़ते ही दशरथ के सिर के ऊपर सौ छतरियाँ फैलाई गई। सोने के चामर से डुलाकर स्त्रियों ने अक्षत फेंके। उत्सव के बाजों (वाद्यों) का तुमुल घोष आकाश में छा गया। ब्राह्मणों के मुख से निकलकर मंगलमय मंत्रध्वनि गुंजरित

मुत्तिदुदुन्सवानक रवं द्विजमंगळ मंत्र नादमु-
ण्मित्तिनितुं विभूति पतिगादुदु बालिकॆ सूडॆ मालॆयं ॥ ४६ ॥

अंतातंगॆ कन्नॆ कैसार्वुदुं—

बालिकॆ मुग्धॆ तक्कुदरियळ् पलरं पॆरिगिक्कि सूडिदळ्
मालॆयनाकॆयं कळॆदुकॊळ्वुदु देसिगनं तगळ्वुदी
कालविळंबमेवुदॆनुतुं रणवालकश समस्त भू
पालक बालकर् कदनकेळिगॆ मच्चरदिंदॊर्डचिदर् ॥ ४७ ॥

अनरण्य प्रियनंदनं दशरथं साकेतनाथं शरा-
सन विद्यागुरु वीरनॆंदरिदुदिल्लेकाकि सामान्यनॆं-
दनितुं राजसमाजमाजिगुरिदॆय्तंदत्तु नीरॊत्तु बॆ-
ळ्तनदिं कत्तरिवाणियं जडजनं कैगुत्तलॆळ्तिर्पवोल् ॥ ४८ ॥

अंतु रण पटह पटु निनदमॊदवॆ विळय जलधियंतॆ नॆलॆयिं
तळर्द राजकुलमं कंडु कैकॆय जनकं भयचकित चित्तनागि—

शुभमति पूडितंदु रथमं तडॆयल् पदनल्तु सामदिं
शुभमनॊडर्चॆलां नॆरॆवॆनॆरिसि कैकॊयनी वरूथमं
सभॆयनगल्दु पोपुदॆनॆ केळ्दिनिसं नसुनक्कु भूभुज
प्रभु नुडिदं मुखेंदुकिरणं निमिर्वतिरॆ दंतकांतिगळ् ॥ ४९ ॥

हुई । ४६ —इस तरह उसे कन्या मिली तो, यह (कन्या) नादान है, योग्य-अयोग्य को नहीं समझती । हम सबको न देखकर इसने इस सामान्य मनुष्य को माला पहनाई । इस कैकेयी को वश में लेकर उस (दशरथ) को भगा देने में देरी नहीं करनी चाहिए । ऐसा सोचकर युद्धप्रिय राजकुमार आपस में विचार विनिमय करके युद्ध के लिए तैयार हो गये । ४७ यह जाने बिना कि यह सामान्य मनुष्य-सा लगनेवाला व्यक्ति अनरण्य का प्रिय पुत्र दशरथ है जो धनुर्विद्या का गुरु होने के साथ वीर भी है, और यह सोचकर कि यह अकेला एवं अल्प शक्तिवाला है, राजकुमार उससे युद्ध करने के लिए उसी तरह तैयार हुए जैसे झोंकेमात्र से काटनेवाली ज़लधारा को मूर्ख अपनी वेवकूफी से छूने का प्रयत्न करते है । ४८ जब रणभेरी की ध्वनि सुनाई पड़ी तो प्रलयकाल के समुद्र के समान क्रुद्ध राजकुमारों को देखकर कैकेयी के पिता अत्यन्त भयभीत हुए । जब शुभमति मंत्री रथ को तैयारकर युद्ध के लिए उद्यत हुआ तो कैकेयी के पिता ने उसे रोककर कहा—"युद्ध से लाभ नहीं, मैं समझा-बुझाकर इनके

आने कलंकुवंते कोळनं बिडदाने कलंकुवें करु-
त्तीनेरेदांत राजकवनोंदिनिसं नडे नोळ्पुदेंदु पं-
चाननदंते गर्जिसि रघूद्वस्नेरि वरूथमं घन-
ज्ञानिनदं भंयगोळिसे जेवोडेदं निज चापदंडमं ।। ५० ।।

अतिशयमागे तन्न मुखचंद्रबलं मणिमेखलारवं
श्रुतिपथमं पळंचे जय डिंडिमनिस्वनदंते मेलुदु-
द्गत जयकेतुवं मिगे मनोरथ सारथी कैके बंदु भू-
पतियोडनेरिदळ् रघुमना रघुवीरन वीरलक्ष्मिवोल् ।। ५१ ।।

आगळकाल जलधरंगळंते निखिल नृपसुतर् सुत्तिमुत्ति शरवर्षमं करेये—

तागे सरल पाविन पल्
तागिदवोल् मूर्छेवोगे सारथी रथमं
बेगं चोदिसिदळ् वधु
रागरसं दशरथंगे नेलेवेर्चुववोल् ।। ५२ ।।

मीरदे कीरदे नेणं * तोरिददेसेगाकेगं हयक्कं चित्तं
बेरेल्लेने परिदुदु जव- * नेरिद रथमितिदेने रथं दशरथना ।। ५३ ।।

---

क्रोध को शांत करूँगा। तुम कैकेयी को इसमें बिठाकर सभा को त्याग दो"। इस बात को सुनकर दशरथ अपने मुखचंद्र की दन्तकांति को चमकाते हुए मंद मुस्कराकर बोले। ४९ आप देखते रहिए, मैं अकेले ही उसी तरह तहस-नहस करूँगा जिस तरह मदमाता हाथी सरोवर को मथ डालता है। इतना कहकर सिंहगर्जना करते हुए जब दशरथ ने रथ पर चढ़कर धनुष की प्रत्यंचा को ध्वनित किया तो उस ध्वनि से शत्रुओं के मन में भय उत्पन्न हो गया। ५० जिसका मुखचंद्र सेना के समान था, माणिमेखला की ध्वनि जयभेरी की ध्वनि के समान आकाश को स्पर्श करती थी, तथा शरीर से लिपटा हुआ कपड़ा विजय पताका के समान दिखाई देता था, ऐसी कैकेयी दशरथ के वांछित सारथी के समान और उसकी जयलक्ष्मी की तरह आकर रथ पर सवार हो गई। ५१ —तब राजकुमारों ने उसी तरह बाणों की वर्षा की जिस तरह अकाल के बादल बरसाते हैं। शरीर पर बाणों के लगने से, सर्पदंतक्षत (साँप के डसने) से मूर्छित-सा दशरथ मूर्छित हुआ। सारथी कैकेयी ने रथ को युद्ध-भूमि में तेज दौड़ाया। ५२ जब कैकेयी ने बागडोर हाथ में ली तो दशरथ

देसे मसुळ्वन्नेगं मसगि राजतनूभवरेच्च वाणमं
पोसमसेयंबिनिं कडिदु कळ्तलेयं वेदरट्टि कण्गगु-
र्विसुविन मंडलक्के परिवेषमदायतेने तीव्रतेजमं
पसरिसि कण्गे कुंडलित चापमगुर्विसिदं महीभुजं ॥ ५४ ॥

केलर वरूथमं केलर वाजिगळं केलरुग्रवाणमं
केलर किरीटमं केलर चापमनिर्कडि माडि तन्न दो-
र्बलद पोडर्पु जीयेनिसे मार्पडेमं कोललोल्दनिल्ल मे-
य्गलि रघुवीर नाथन शराशन विद्येगिदाव विस्मयं ॥ ५५ ॥

गरिर्यि सोर्चिदुदेने कें-
गरियंबेळवट्टे राजसुत संदोहं
गरि सोंकदे बेळ्ळेरलेगे
गरि मूडिद तेरदि नोडि पोदत्तागळ ॥ ५६ ॥

मृगराजंगगिदोड्डवानेगड्डपं कैकोंडु यूथादिपं
मगळ्दुं सिंहद मेले पाय्व तेरदिं हेमप्रभं राजसू-
नुगळं तन्नोडकूडिकोंडु करेदं ज्याघात मेघध्वनि-
स्थगिताशामुखनन्मुखांशु चपलावेगं शरासारमं ॥ ५७ ॥

---

का रथ कैकेयी और घोड़े की इच्छा के अनुसार शत्रुसेना पर यमराज के रथ की तरह दौड़ा। इतने में दशरथ मूर्छावस्था से जागा। ५३ राजकुमारों द्वारा शौर्य के साथ दिगंतों के छोरों तक छोड़े गए वाणों को दशरथ ने अपने नये तेज वाणों से काटकर अंधेरे को भगानेवाले सूर्य के तेज के समान विभिन्न दिशाओं में विखरे हुए राजाओं के साथ भयंकर युद्ध किया। ५४ किन्हीं के रथों को, तो किन्हीं के घोड़ों को; कइयों के वाणों को; तो कइयों के मुकुटों को; और अन्यों के धनुष को तोड़-तोड़कर अपने वाहुवल की क्षमता दिखाते हुए भी, शत्रुसेना को न मारकर वचा लिया। वलिष्ट दशरथ की धनुर्विद्या के लिए यह कोई आश्चर्य की वात नहीं है। ५५ तीव्रता से निकले हुए लाल परवाले वाणों के लगने से पहले ही राजकुमारों का समूह इस प्रकार भाग गया जैसे भयभीत हिरण भागते हैं। ५६ सिंह से भयभीत होकर भागते हुए हाथियों को देखकर जिस तरह उनका मुखिया (हाथी) पुनः सिंह पर आक्रमण करता है, उसी तरह हेमप्रभ नामक राजकुमार भागनेवालों को उकसाकर, और उन सवको अपने साथ लेकर घनगर्जना करते हुए विद्युत्शक्ति के वेग से दशरथ पर वाणप्रहार करने लगा। ५७

आ समयदोळ्—

इदु मायामयमोंद- * लिलदु कोट्यानुकोटि रथमेनल् वैरिवलं
बेदरे मनोजवदिं परि-* दुदु पूर्णमनोरथं रथं दशरथना ॥ ५८ ॥

अंतु परिदु नेरेद राजन्यकमं पळियंते पलायनशीलम्माडि हेमप्रभनं मुट्टेवंदु—

कडुकेय्दु गंडवातं * नुडिदिदिरादंते गंडनागेनुतुं कै
मुडगदे दशरथनेच्चं*सिडिलळ्गिडिगळवोलंवनंबट्टुविनं ॥ ५९ ॥

अंतिसुवुदुं—

उडियै पळयिगे वरूथं * कैडेये भुजादंड वज्रमय कोदंडं
कडिकंडमागे परिपडे * पोडर्पु हेमप्रभं हतप्रभनादं ॥ ६० ॥

आ समयदोळ् दशरथनभयघोषणेयोडने जयपताके नभमनळ्ळरियें बीरसेनेयोडने सोयंबर सेसेयनांतु पौरजनद मनदोडने कौतुकमंगळ पुरमं पुगुवागळ्—

ओडिसिदातनीतनिदिराद विरोधिगळं विलासदिं
रोडिसिदातनीतनससायुधनं तनगोल्दु मालेयं
सूडिसिदातनीतनवनीश्वर कन्येयनेंदु तोरि मा-
ताडिदुदोल्दु नोडिदुदु पौर वधूजनमादिराजनं ॥ ६१ ॥

---

उस समय—दशरथ का रथ उसके मनोरथ-सा शत्रुदल पर घुसा। शत्रुओं को लगा कि यह कोई जादू तो नही है ! करोड़ों-करोड़ों की संख्या में मानो रथ चल रहे हैं। वे भयभीत हुए। ५८ इस तरह घुसकर, राजकुमारों के समूह को भगाकर, हेमप्रभा के पास आकर वोला—जिस तरह शौर्य दिखाकर, पौरुष की बात करके, मेरा सम्मान किया है, उसी तरह मुझे जीतकर पुरुष बनो। ऐसा कहकर दशरथ ने अपने हाथों को विश्रांति दिये विना बिजली की चिनगारी के समान उस पर बाणों की वर्षा की। ५९ इस तरह वाण प्रहार करने पर—हेमप्रभा का ध्वज टूट गया। रथ उलट गया। उसकी बाहें एवं बज्रमय धनुष टूट गये तो हेमप्रभा प्रभाहीन हुआ। ६० —दशरथ ने अभय की घोषणा की जय-पताका लिये आकाश में गुंजरित कर देनेवाली वीरसेना के तुमुल-विजय-नारों के बीच स्वयंवर के अक्षत को धारण कर, पुरजनों के जयजयकारों के साथ कौतुकमंगलपुर में प्रवेश करते समय—सामने आये हुए शत्रुओं को अनायास हरा दिया। "इसी ने शत्रुओं का अपहास का कारण बनाया है, कामदेव की प्रसन्नता से, इसी ने राजकुमारी से स्वयंवर-माला प्राप्त कर ली थी" इस तरह सोचकर नगर की स्त्रियों ने प्रसन्नता से उसे देखा। ६१ —इस तरह नगर

अंतु पुरमं पॊक्करमनॆगॆ बिजयंगॆय्दुदुं दशरथमहीनाथनप्पुदनरिदु—

नोडिरॆ कन्नॆयं दशरथंगनुरूपॆयनीव सॆपु कै
गूडिदुदॆंदु तन्न विभवक्कनुरूपमॆनल्विवाहमं
माडिदनुत्सवक्कॆ पॊरगोर्वरुमिल्लॆनॆ कोट्टु संतसं
माडिदनारॊळं शुभमति क्षितिनाथनिदेनुदात्तनो ॥ ६२ ॥

आगळा विवाहानंतरं कैकॆवॆरसु दशरथनयोध्यॆगॆ जनकं मिथिळॆगॆ पोगि मुन्निनंतॆ सुखदिनरसुगॆय्युत्तिर्दरित्तल् दशरथ नरेंद्रनॊंदु दिवसं—

परिमित परिजन परिवृत ॥ नरसं बगॆ दरसि तेरनॆसगिद गॆलवं
तरवेळॆ वृद्धकंचुकि ॥ तरॆ बंदळ् कैकॆ बळसिवरॆ सहचरियर् ॥६३॥
तरळकटाक्ष मोहन ॥ शरमॆनॆ मेखलॆय पारिहार्यद मणिनू-
पुरद मधुरस्वनं मु- ॥ प्परिगूडिद मदनपाशमॆनॆ नडॆतंदळ् ॥६४॥

अंतु बंदु—

तनिसोंकु सोंकि सिंहा ॥ सनदॊळ् तन्नॊडनॆ कैकॆ कुळ्ळिरॆ पुळकं
तमगॆ तळॆदोरॆ दशरथ ॥ जनपति कैवंद कल्पतरुवं पोल्तं ॥६५॥

अनंतरमाकॆय मुखारविंदमनानंद विस्फारित विलोचननागि नोडि—

---

में प्रविष्ट हो, राजमहल में आने पर, यह समझकर कि वह दशरथ है—(और) अपनी रूपमती बेटी का विवाह दशरथ के साथ कराने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, ऐसा सोचकर, शुभमती ने अपने वैभव के अनुसार बड़ी धूमधाम से, असीम उत्साह से, मंगलकार्य सम्पन्न कराया। ६२ —उस समय के पश्चात् दशरथ कैकेयी के साथ अयोध्या में और जनक मिथिला लौटकर पहले की तरह ही सुख से शासन करने लगे। दशरथ ने एक दिन—सीमित परिजनों के साथ बैठकर, स्वयंवर के समय रण-विजय हासिल करा देनेवाली कैकेयी को बुला लाने के लिए कंचुकी को भेज दिया। कैकेयी सखियों के साथ सभा में आयी। ६३ उसकी तिरछी नज़र मानो सम्मोहन-वाण था; दुपट्टे की सुगंधी, कंकन और नूपुर की मधुरध्वनि, मानों तीन तागों में बुना कामदेव का पाश है। वह सभा में प्रविष्ट हुई। ६४ —इस तरह आकर, अंग का स्पर्श करके वह सिंहासन पर अपने साथ बैठी तो दशरथ को तुरंत रोमांच हुआ, और वह फलों से लदे कल्पवृक्ष के समान दिखाई पड़ा। ६५ —तत्पश्चात् आनंदभरे नेत्रों से उसके मुखारविंद

ईकें रथमेंसगें वैरि प * ताकिनियं गेल्देंनीकें गेय्दुपकृतिगा
नीकेंय वेडिदुदं नि- *व्याकुळमीयदोडें मेच्चु पोळ्ळारगिरदे ॥६६॥

अेंदु परिजनद मोगमं नोडि कैकेयं निन्न मेच्चिदुदं बेडिकों-
ळ्ळेंवुदुं—

अेनं बेडुवेनेंद- * ब्जानने बगें बेंदरें बगेगें वंदोडमेय नों-
ल्दानेरेंदागळे कुडिमें * दा नृपतिगें कैकें बैकेंगोट्टळ् मेच्चं ॥६७॥

अनंतरं निजप्रियन नियमदिनर्धासनदिनेंळ्दु पूमालेयुमनवनि-पतिय नयनकुवलय मालेयुमनांतु बळ्रिल्मुडि चेल्विगें मुडिगविदंतें सोंगयिसेंयुं, कोरलोळिक्किदेक्कसरद कैबट्टेय तोंगलनंग जंगमलतेय तळिर तोंगळंतें पोळेयेयुं, मेलुदर सेरंगनुरें सेरेगेय्दु पोरपोण्मुव पर-भागद शरीरकांति लावण्यरसद तंदलनगुंदलेमाडेयुं, घननितंबबिंबमं वळसिद नूलतोंगल मधुरध्वनि मनुज मकरध्वजन मनमनोंडनोंडने करेवंतडिगडिगें पोण्मेयुं, मनोजराजन नीराजन दीपकळिकेयंतें कैकें निजनिवासक्कें बिजयंगेय्वुदुं—

नेनेयिसें पूविनंबनपराजितें कण्गें सुमित्रें मैत्रियं
जनियिसें बीरें सुप्रभें तनुप्रभेयं गेळे कैकें कंतुरा-
जन जयलक्ष्मियं निजकुलांगनेयपें सवेंत्तें नाल्वरिं
जनपन राजलीलें गेलेवंदुदु मन्मथराज लीलेयं ॥ ६८ ॥

---

को निहारा। "इसके द्वारा सारथ्य करने के कारण मैं शत्रु-सेना को पराजित कर सका। इसके कार्यो के प्रति संतुष्ट होकर, उसकी कोई इच्छा (माँग) हो तो पूरी कर दूँगा। न दूँ तो प्रसन्न होने का कोई मूल्य नहीं है।" ६६ —ऐसा सोचकर, परिजनों का मुख देखकर, कैकेयी से कहा—'तुम्हें जो चाहिए माँग लो' कैकेयी यह न समझकर कि क्या माँगना चाहिए और डरकर वोली—"मैं अभी नहीं वता सकती, समय आने पर माँगूगी। तव मुझपर अनुग्रह करने की कृपा करें"। इस तरह उसकी उपेक्षा (माँग) अव्यक्त ही रह गयी। ६७ —तत्पश्चात् पति की आज्ञा पाकर, आसन से उठकर, उसके हाथ से पुष्पमाला और आँखों से नीलकमल-हार को स्वीकार कर, लटकती हुई सौदर्यवर्धक अपनी केशराशि से सुशोभित हुई; गले में धारण की हुई एकावली हार का रेशमी गुच्छ मानो कामदेव रूपी लता के अंकुरगुच्छ के समान चमका; दुपट्टा ओढ़ी हुई शोभा से देहकांति ने सौंदर्यरस को बढ़ाया; नितंब के भार से युक्त (उस रूपसी के) घुंघरू की मधुरध्वनि मानो कामदेव-रूपी दशरथ को निरंतर बुला

अंतु दशरथ महीनायनिष्ट विषयसुख संतुष्टनागिपुदुं—
अपराजिता महादे- ✻ वि पतिव्रतें शील गुण कळा परिणतिथिं
नृपन मनंबडेदुं ध- ✻ र्म पत्नियेंनें पडेदळग्रमहिषीपदमं ॥ ६९ ॥

अंता कांतें दशरथन मनोरथ जन्मभूमियेंनिसिर्दोंदुदिवसं—
ऋतुमति देवि रत्नद वितर्दिकेयोळ्नेलसिर्दु माधवी
लतेय बेंडंगुवेत्त सेळेयं पिडिदंगज मोहपाशमं
रति पिडिदंतें देसेवडेदळ् पडेवंतु मदालसंगळा
यत नयनंगळात्म रुचि मंजरियिं कुसुमोपहारमं ॥ ७० ॥

कमळाननेगें दरस्मित ✻ कुमुदाक्षिगें कर्णिकारकोमळेगें विचि
त्रमें पुष्पवतिगें नेत्र ✻ भ्रमराकर्षण विलासमेंनें सोगयिसिदळ् ॥७१॥

अनंतरं कौशल्यें चतुर्थस्नान मांगल्यमनप्पुकेय्दु—
मळयजदण्पु मल्लिगेय सोर्मुडि निप्पोंसतप्प मौक्तिकं-
गळ तोंडवुट्ट षट्टळिगें दंतमरीचिगळिं बेळर्त बा-
ग्पाळिकिन पेंणगें पासटियेंनिप्प विलासमनीयें पुष्पको-
मळें वधु कोंड वेळ्वसदनं सेरेगोंडुदनंगनाज्ञेयं ॥ ७२ ॥

---

रही थी; ऐसे में कैकेयी ने अपने निवासस्थान के लिए प्रस्थान किया। अपराजिता पुष्पवाण-सी दिखाई पड़ी, सुमित्रा ने उसकी (दशरथ की) आँखों में स्नेह जगाया, सुप्रभा ने अपनी देहप्रभा को प्रकटित किया, और कैकेयी ने कामदेव की जयलक्ष्मी को पराजित किया। इस तरह की अपनी चार रानियों से दशरथ ने संतोष पाया। ६८ —इस प्रकार विषयसुख से दशरथ संतुष्ट हुआ तो, अपराजिता, जो प्रतिव्रता थी, ने अपने शील, गुणों से राजा को प्रसन्न किया और पटरानी के आसन को पाया। ६९ इस तरह (अपराजिता) दशरथ के मन की अभिलाशाओं की जन्मभूमि वनी हुई थी कि एक दिन—ऋतुमती हुई। वह (अपराजिता) जव रत्नपीठ पर बैठकर माधवीलता के सुंदर पल्लव को पकड़कर खड़ी थी, तव कामदेव के मोहपाश को धारण करती हुई रति के समान दिखाई पड़ी, और उसके भार से झुकी हुई आँखें आत्म-प्रभा से प्राप्त पुष्पमाला सी सुशोभित हुई। ७० मुस्कराती हुई वह कमलमुखी, कुमुदाक्षी, पुष्पसदृश कोमलांगी पुष्पवती भ्रमर-सी आँखों से आर्कर्पित करती हुई ऐसा प्रतीत हुई मानो विलास-असाध्य हो। ७१ तत्पश्चात् कौशल्या ने चतुर्थस्नान करके—श्रीगंध-सुगंधित मोगरा पुष्पों से सुसज्जित हो, सुंदर घने लंबे वालों में नये मोती के आभरणों को धारणकर, शुभ्र हरी साड़ी पहनकर, दंतकान्ति से सुशोभित, वह (कौशल्या) स्फटिक से मिर्मित स्त्री के समान प्रशोभित हुई।

अंतु कैगेय्दु—

कडेगण्कामशरंगळं केदरे भृंगाकृष्टियं माडे सो-
मुंडि लावण्य रस प्रवाह भरमं तुंगस्तनं ताळे के-
सडिगळ्केसर पांसुवं केदरे बंदळ् दोर्लतांदोळनं
पडेवन्नं मणिपारिहार्य रवदिं कर्णामृतासारमं ।। ७३ ।।

शशिलेखे बंदु पुगवं- * ते शरद्थन कुट सदनमं लीलेयिना
शशिवदने बंदु पोक्कळ् * विशाल शशिकांत कांत शय्यागृहमं ।।७४।।

अंतु पोक्कु-

पळिकिन पळिवावुर्गेयिं * तोळगुव हंसोपधान कल्पित तल्प
स्थलदिं रंजिप रन्नद * सेलेमंचदमेले लीलेयिं कुळ्ळिर्दळ् ।।७५।।

आगळा गृहाधिदेवतेयधरमणियंते जलजलिसुव मणिकद सोडर्गुडिगळुं, इक्षुचाप शरमोक्ष हुंकारदंते शिलीमुख झंकार मुखरं-गळेनिसुवुपहार कुसुमंगळुं, स्मर गुरुशिष्यरंते सम्मोहन मंत्रमं पदं-गुट्टुव शुकशारिकेगळुं, संभोग रसतरंगिणिय तेरेयुलिपदंते मधुरमाद पारिवदुलिपंगळुं, मदनमोहन मूर्छेयं बीरुवंते दंतिदंतदिं कंडरिसिदं-चेविडंनेळिसि सुळिव बाल मराळंगळुं, कामकालोरग लेखेयंते निमिर्वे नीलमणिस्तंभदुन्मुख मयूखलेखेयं कदुंकुव दीवद नविलगळुं,

---

उसके द्वारा धारण किए हुए हर शुभ श्वेत प्रसाधन कामदेव की आज्ञा के वंधन थे। ७२ ऐसे में—उसके नेत्र कामदेव को छेड़ने लगे। लंबी सुंदर केशराशी भ्रमरों को आकर्षित करने लगी। उसके दोनों कुचों ने लावण्यरस-प्रवाह के वेग को धारण किया। अरुण कोमल चरण केसर-धूल को छेड़ने लगे। ऐसी कौशल्या अपने कोमल हाथों में पहने हुए कंगनों के हिलने से कर्णामृत ध्वनि करती हुई चली। ७३ शरत्काल के मेघाच्छादित राजमहल में जिस तरह चाँदनी प्रवेश करती है, उसी तरह कौशल्या चंद्रकांत-शिला से निर्मित अपने पति के विशाल शय्यागृह में प्रविष्ट हुई। ७४ प्रवेश करके—वह, जिसके स्फटिक पदत्राण चमक रहे थे, हंस-परों से निर्मित तकियों से सुशोभित रत्नशय्या पर बैठ गई। ७५ —तब गृहलक्ष्मी के अधरों पर सुशोभित रत्न-सदृश प्रकाशित दीप शिखाएँ, कामदेव के बाण-प्रहार के समय उत्पन्न ध्वनि के समान घेरे भ्रमरों की गुनगुनाहट के साथ सुशोभित पुष्पमालाएँ, अपने शिष्यों के साथ कामदेव द्वारा निर्मित सम्मोहन मंत्र के समान ध्वनि करनेवाले शुक-सारिका, संभोग-रस-प्रवाह की लहरों की ध्वनि के समान सुनाई देनेवाले कबूतरों के मधुरस्वर, कामकेली से मूर्छित करा देनेवाले, हस्तिदंत से रचित हंसों

पच्चेय जगलिय चेल्विगे कण्देरवियादंते तेरंबोळेव दीवद हरिणिगळ लोचन प्रतिबिंबंगळुं, चंद्रातपक्के तनिगंपादंते चंद्राकांतद चषकंगळोळ मगमगिसुव चंदनकर्दममु, मणिभाजनंगळोळ् कुसुमशर कृशानुविन पोगेयुमुरियुवेंबवते मेगे नेगेव मरिदुंबिय बंबलिदेसेव कुंकुम पंकमं, कंदर्प घटसर्पदंते धूपघटदि नोगेवगरुविनपोगेयु मति रमणीयमागे—

पळिकिन शुक्तिकेयोळ् क-
णगोळिसुव कत्तुरिय कर्दमं हिमकरमं
डलद करेयंते नयनो-
त्पलमनलर्चिदुदु सौध शय्यागृहदोळ् ॥ ७६ ॥

उगिबगि माडि धूपद कवल्वोगेयोळ् तनिगंपनुंडु त-
ण्णगे तणिदोय्यनोय्यनिदिरुं बळियुं नेगेमुत्तुमिर्प तुं-
बिगळरिपं मनक्के तरलार्तुवु तद्गृहदेवताजनं
सोगयिसुविंद्रनील मणियिं तिरिकल्गळनाडुवंतेवोल् ॥ ७७ ॥

अंतु सोगयिसुव सेज्जेवनेयाळपराजिता महादेवि सरोवरदोळिर्प जलदेवतेयंते विलासतल्पतळदोळिपुर्दुभागळुपचरित गर्भाधान

---

को भी नीचा दिखाते हुए चलनेवाले अल्पायु (छोटे) कोयल, काम नामक नाग के उठाए हुए नीलरत्न स्तंभों की कांति को लजा देनेवाले पाले हुए कोयल, रत्ननिर्मित बरामदे के सौंदर्य को नयी दीप्ति-उपलब्धि के समान चमकते हुए पालतू हिरणों की आँखों के प्रतिबिंब, चाँदनी में सुगंधित चंद्रकांत के पात्रों में महकता श्रीगंध, रत्नपात्रों में कामाग्निका धुवाँ, एवं गर्मी की तरह ऊपर मँडराते हुए भ्रमर-समूह, कामचक्रेश्वर के सर्पशिशु के समान धूप के घड़े से उठते हुए गंध का धुवाँ, आँखों को रमणीय दिखाई पड़ा तो—मोती के सीप में दिखाई देनेवाली कस्तूरी चंद्रमंडल की कालिमा (कालभाग) के समान दिखाई पड़ी और उत्पलपुष्प (नीलकमल) रूपी आँखें शय्यागृह में खिलीं। ७६ दीप से उठते हुए धुवें को चीरकर, उसकी सुगंधी को गृहणकर सुतृप्त, धीरे-धीरे इधर-उधर उड़ते हुए भ्रमर इंद्रनीलमणियों से 'पत्थर का खेल' खेलते—से प्रतीत होते थे। वे भ्रमर राजमहल के निवासियों को अपनी उपस्थिति जता रहे थे। ७७ —इस शोभायमान शय्यागृह में अपराजिता, सरोवर में निवास करनेवाली जलकन्या-सी, विस्तर पर वैठी थी कि दशरथ गर्भाधान-(सोलह संस्कारों में प्रथम संस्कार) विधियों को समाप्त करके वहाँ आया तो उसका अतिशय सुंदर रूप कामदेव से भी दुगुना सुंदर था। उसके धारण किए हुए

मंगलविधानं दशरथ महीनाथं निज निरतिशयरूपं दर्पकन रूपदर्प-मनदिर्पे भूषणमयूखलेखें चित्रभित्तिगे निर्वाणलेखेयेनिसे चरण नख किरणदिनुपहार कुसुमंगळं द्विगुणिसुत्तुमोळवुगुवुदुं—

मदनं जेवोडेगेय्दवोळ् कनककांची निस्वनं पोण्मे मे-
लुदनोट्टैसि कुचं कदक्कदिसे मुग्धालोकनं लज्जेयं
पदेपं मुंदिडे मेरेदप्पे निजलावण्यार्णवं भूभजं
गिदिरेळ्दळ् सति पुष्पचाप चतुरंगं मीरिमेलेल्ववोल् ॥ ७८ ॥

आगळरसनरसिय मनःकुमुदिनियं चतुरपरिहास वचन चंद्रिकेयिंदलर्चि-

मकरतमणि मुद्रिकेयिं- * नरेंद्रनंगनेय कोमळांगुलियनलं-
करिसुव नेवदिं मेल्लने- * बरे तेरेदुत्संग तल्पमं दयेगेय्दं ॥ ७९ ॥

अनंतरं—

ओरोर्वर तनिसोकिं * दोरोर्व मेय्योळोगेये रोमांचं श्रृं-
गार सुधारस वारिधि * तीर लताद्रमदोळोगेद कोनरेबिनेगं ॥८०॥

अंतु सूळ्गेवंदु निद्रावसर निमीलित लोचनेयागि—

दान द्विरदनमं पं- * चाननमं चंडभानुवं चंद्रमनं
मानिनि निशावसानदों- *ळी नाल्कुं शुभदमप्प कनसं कंडळ् ॥८१॥

आ समयदोळ् निजराजसदन सरसी सरोज रजमनाट्टिकोंडु

---

वस्त्र-आभूषणों की कांति देखनेवालों की आँखों में मुहर-सी लगा जाती थी। पादनखों की कांति में पहनी हुई पुष्पमालाएँ प्रतिबिंबित हो रही थीं कि वह शय्यागृह के भीतर गया। तब कामदेव मानो अपना धनुष उठाकर प्रत्यंचा को ध्वनित करता हो, कटि के आभरण स्पंदित हुए (हिले); सिरको अंचल से ढकते (घूंघट काढ़ते) समय कुच हिले, मुग्धध्वनि की आज्ञा एवं आशा को जगाने के लिए आतुरित हो, वह ऐसे उठ खड़ी हुई मानो सौंदर्यसागर ही उभर आया हो। ७८ —राजा दशरथ ने रानी के कुमुद पुष्परूपी मन को चाँदनी-रूपी अपनी चतुर एवं विनोदपूर्ण रसवार्त्ता से खिला दिया। हरे रत्न की अँगूठी से पत्नी की अंगुली को अलंकृत करने के वहाने से निकट बुलाकर, धीरे से अपनी गोद में (जाँघ पर) बिठा लिया। ७९ —तत्पश्चात्—परस्पर स्पर्श से उन्हें रोमांचन होने लगा तो वे दोनों ऐसे सुशोभित हुए मानो श्रृंगाररस के समुद्रतट पर स्थित लता पर अंकुर उग आए हों। ८० —इस तरह उनींदी आँखोंवाली अपराजिता ने—रात की अंतिम घड़ी में, हाथी, सिंह, सूर्य, चंद्र का

सुळिव सुप्रभात प्रभंजननुं, मदन मदकुंजरद मणियेरं मीरुव राजहंस कूजितमुं, दिनमुख दर्शनातुरनोयिं वर्प संध्यादेवतेय नूपुरनिनदमं नेनेयिसुव चंचरीकर्दिचरयुं, उदयनगनिकुंजमनेरुव रविय रथचक्र चीत्कारमं चल्लवाडुव रथांगरवमुं, नैदिलगोळद सोवगु सोप्पागे कमळिनिगे पुट्टिदट्टहासभनुदासीनं माळ्प कोळर्वक्किय कळकळध्वनियुमनुकूलमार्गे—

मंगळ पाठक रवमुं * मंगळगायिनिय गीतरवमुं परिच-
र्यगनेयर नूपुरद र * वंगळुमित्तुवु सुखप्रभोधमनागळ् ॥ ८२ ॥

अंतुप्पवडिसि—

व्यवहार मंगळाचा- * रवेल्लवं तीर्चि मुख्यमांगल्यमना
युवति जिनपूजेयं मा- * डि विचित्रमेनिप्प चित्रशालेगे बंदळ् ॥८३॥

अंतु बंदु मरकतमणिवेदिकेय नडुवण चेंबोन्न पट्टवणेयमेले रोहणनग नितंबदोळ्पोळेव रत्न शलाकेयंते निज शरीर कांति पसरिसे कुळ्ळिर्पुदुं, आगळुभयपार्श्वदोळं चामरग्राहिणियर्कळ् काश कणिशंगळिदेसेव शरल्लक्ष्मियं नेनेयिसे कुंचदडपद डवकेय कन्नडिय परिचारिकेयर् कुसुमशर वशीकरण मंत्राधिदेवतेय परिवार देवतेयरेनिसे—

मंगलस्वप्न देखा । ८१ —उस समय राजमहल के आसपास के सरोवर में खिले कमलों की सुगंधी को वहन करती हुई प्रात:पवन चलने लगी। राजहंसों का कूजन जो कामदेव के मदमाते हाथी की मणिघंटिकाओं की ध्वनि से भी मधुर था, सौदर्य-दर्शन हेतु आतुरित हो आनेवाली संध्यादेवी की नूपुरध्वनि को स्मरण दिला देनेवाला भ्रमरों का गुंजन और उदयपर्वत के शिखर पर चढ़ते हुए सूर्यरथ के चीत्कार की हँसी उड़ाता सा चक्रवाक पक्षियों का कलरव—ये सब सुनाई पड़े; और कमलों से भरे सरोवर का सौंदर्य मंद होने के कारण सुशोभित कमलों के अट्टहास को धिक्कारता-सा सारसपक्षियों का रव अनुकूल होने पर—प्रभातगीत गानेवाले पाठकों की कंठध्वनि ने, नायिकाओं की गीतध्वनि ने, और परिचारिकाओं के नूपुरों की ध्वनि ने अपराजिता को जगाया। ८२ वह प्रात:विधियों से निपटकर, अपने मांगल्य को पूजकर, जिन-पूजा करके चित्रशाला में आई। ८३ —वहाँ आकर नीलरत्नों से निर्मित मंच के बीचवाले सुवर्ण-आसन पर विराजमान हुई तो उसके शरीर की शोभा कनकपर्वत पर चमकती रत्नशलाका के समान दिखाई पड़ी। उसके दोनों पार्श्व से परिचारिकाएँ चवँर डुलाने लगीं तो वह हरी घासों और धान की वालियों से सुशोभित;

करकिसलय रुचियिंदं * परभागंबडेदु रागमं बीरुविनं
चरण मणिवलय मणि नू-*पुरमं नृपवधुगे तुडिसिदळ् मत्तोर्वळ् ॥८४॥
गेलेवंदुवलर्द कर्न-
य्दिल पूगळ चेल्वनीगळेने कन्नेगळा
दल्गेय्दिद चेनेय क-
ण्मलरोळ् काडिगेयनेच्चिदळ् मत्तोर्वळ् ॥ ८५ ॥
अंबुजद बंडनुण्बेळ * दुंबियनजनिसे मनोजगजगमनेय व-
क्त्रांबुजदोळ् मत्तोर्वळ् * बिंबाधरे मृगमदांबु तिलकमनिदूळ् ॥८६॥
तोळगुववतंस मुक्ता * फल रुचियोळ् कॆलद कन्नेयर नगेगण्गळ्
पोळेदुवु पोसवेळ्दिंगळ* बळसिगोळगाद चळ चकोरंगळवोल् ॥८७॥
ओदलेवोदशोकेयेरडळ्गुडिबाल तमाल षंडदोल्
मंदसमीरनिं पोळेववोळ् तळमुं नळितोळुमंदमं
मुंदिडॆ पिक्किपिक्कि पुडिगत्तुरियं तळिदळ्पॆरळ् लता
सुंदरि कामपाशदवोळिर्द लतांगिय केशपाशदोळ् ॥ ८८ ॥
अंतु कैगेय्दु मणिदर्पणमनवलोकिसुतिर्पुदुमा प्रस्तावदोळ्—
चित्रलय प्रगल्भ हयवल्गनदिं मणिकुंडलांशुगळ्
चित्रिसे गंडभित्तियनुरुस्थळ रंगदोळंगहारमं

---

शरत्काल की लक्ष्मी के समान, और श्रृंगारप्रसाधन-सामग्री ली हुई अन्य परिचारिकाएँ कामदेव के वशीकरणमंत्र की अधिष्ठात्री देवी (कुलदेवी) के परिवार के समान दिखाई पड़ीं। अंकुर-सदृश उसके हाथों पर परिचारिकाओं ने पदकंगन पहनाया तो उन (हाथों) की शोभा मानो विशिष्ठ प्रकाश पा गई। ८४ उसके सुंदर गाल मानो विकसित कमल के सौदर्य पर विजय पा गए हों। एक सेविका ने पलक पर काजल लगाया। ८५ और एक परिचारिका ने उसके मुखकमल पर कस्तूरी-तिलक लगाया तो वह (मुख) ऐसा लगा मानो कमल का मधु चूसनेवाले भ्रमरों को नीचा दिखा रहा हो। ८६ उसके जगमगाते कर्णाभरणों के मोतियों की कांति से आसपास की स्त्रियों के मुस्कराते नेत्र नवचंद्रिका से प्रभावित चकोर पक्षियों की तरह थे। ८७ अंकुरित अशोक, जिस तरह नये तिनिशवृक्षों के समूह में मंदमंद बहनेवाले पवन से चमकता है, उसी तरह उसके तलवे और बाहें चमकीं। अन्य एक सखी ने कामपाश सदृश उसकी केशराशि को सवाँर-सवाँर कर उस पर कस्तूरी का सिञ्चन किया। ८८ वह समस्त आभरणों से सजकर (बिभूषित होकर) दर्पण देख रही थी कि—उसके निवासस्थान पर दशरथ, जिसके रंगमंच-सदृश

सूसिसे तारहार रुचि मंजरिगळ् निजरूपमंगना
नेत्र विकासमं पडेयेपोक्कनिळाधिपना निवासमं ।। ८९ ।।

अंतु पोक्कु परिमित परिजनं दशरथ महीनायकनुच्चैश्श्रव-दिनिळिव निळिप नायकनंते वाहनदिनिळिदु बंदु निजसतियंगमं सोंकि कुळ्ळिर्पुदुं—

अरसि सुलिपल्ल पसरिप * मरीचि मनसिजन जसमिदेनलमर्दिन व-
त्सरि सुरिदपुदेमलवनी-*श्वरंगिरुळ् तन्न कंड कनसं पेळ्दळ् ।।९०।।

आगळवनीपति निजमनोवल्लभेय शुभस्वप्नदर्शनक्के हर्ष-चित्तनागि—

सततं दानि मदेभदिं सकल भूभृन्मस्तकन्यस्त पा-
दतळं केसरियिं प्रतापनिलयं तिग्मांशुविं सत्कला
चतुरं चंद्रनिनादपं निनगे नेत्रानंदनं नंदनं
सति नीनल्लदरिन्नवप्प कनसं काण्बंतु मुंनोंतरार ।। ९१ ।।

अंदु तत्फल स्वरूप निरूपणं माळ्पुदुं—

श्रुतिपथमं सार्तरे घन * रुति रागमनप्पुकेय्ववोल् सोगेनविल्
सुतलाभवार्तेयं के- * ळ्दु तनुदरि रागरस तरंगितेयादळ् ।।९२।।

---

वक्षस्थल पर अपराजिता द्वारा धारण किए हुए आभूषण की शोभा नक्षत्र की तरह उदय हुई थी, प्रविष्ट हुआ। ८९ —उच्चैःश्रवा (सफ़ेद रंग, खड़े कान और सातमुखवाला घोड़ा जो समुद्रमंथन में निकला था और इंद्र को दिया गया था) से उतरते हुए इंद्र के समान परिमित परिजनों के साथ वाहन से उतरकर आकर (वह दशरथ) अपनी पत्नी के शरीर को स्पर्श करके (पास) बैठ गया तो—उसकी (पत्नी की) दंतकांति कामदेव के यश के समान दिखाई पड़ी और उसने अमृत-वृष्टि का संतोष प्रदान-करनेवाले अपने शुभ स्वप्न के बारे में कह सुनाया। ९० —तब दशरथ रानी के मंगल-स्वप्न को सुन, संतुष्ट होकर बोला—सदा दानी होने के कारण गज, समस्त राजाओं के मस्तक पर अपना पैर रखनेवाला होने के कारण सिंह, समस्त कलाओं में कुशल होने के कारण चंद्र, तुझे स्वप्न में दिखाई पड़े। तेरे गर्भ से वैसा पुत्र जन्म लेकर नेत्रानंद प्रदान करेगा। तेरे समान ऐसा स्वप्न देखने का सौभाग्य और किसका है? ९१ —इस तरह स्वप्न के सुफल का निरूपण किया तो, पुत्रलाभ की बात सुनकर रानी उसी तरह अत्यंत संतुष्ट हुई जिस तरह बादलों के मँडराने की ध्वनि सुनकर मोर आनंदविभोर हो नाच उठते हैं। ९२ —तत्पश्चात् पत्नी के

अनंतरमवनिपति सतिगें समयोचित परिचार्यचतुरेयरं नियोजिसि बिजयंगय्वुदुं कतिपय दिवसंगळ् निरतिशय सुखस्वरूपंगळागि पोगें—

ऎळवसिरोळ् सतिय मोगं
बॆळर्तुदन्बर्थमाय्तु चंद्राननेयें-
दिळॆ पोगळ्व मातुनीळ्दुदु
ललिताळकमाळॆ सुय्गे सार्वळिगळवोल् ॥ ९३ ॥

मकरांक द्विपमद प- * ट्टिकॆयेंनिसि कपोलमूलमं मुट्टिदुवा
चकिताक्षिय हरिनीळा * ळकंगळानन सरोजिनी मधुपंगळ् ॥ ९४ ॥

तोरमोलॆगळ मोगंगळ् * राराजिसि कर्पुवेत्तु मोहन धूमो-
द्गारिगळं कांचन भृं-* गारिगळं पोल्तुवरसिगंदॆळबसिरोळ् ॥९५॥

बट्टिदुवॆनिप्प मोलॆगळ * तोट्टु करंगुवुदुमोडनॆ सर्वस्वमुमं
कोट्टु करंगिदरहितर् * कॆट्टुवु वळियोडनॆ वैरिवंशावळिगळ् ॥९६॥

उदरदोळिर्दं बालकनशेष कलानिधि तप्पदप्पन
ल्लदॊडोगॆदॊदॆ नाळदोळॆ हेमसरोजममळ्गळागिपु-
ट्टिदुबवरोळ् मदाळि नॆळसिर्दपुवॆतॆनॆ नीळ्दबासॆ बी-
गिदमोलॆ नीळचूचकमिवें बगॆगोंडुवो लोलनेत्रॆया ॥ ९७ ॥

---

लिए यथासमय के योग्य परिचारिकाओं को नियुक्ति करके, दशरथ वहाँ से रवाना हुआ, और कुछ दिन अत्यंत सुख से बीत गये। गर्भवती होने के कारण रानी का मुख सफ़ेद (गौरवर्ण) हो गया था, अतः उसे जग की चंद्रानना कहकर प्रशंसा करने में सार्थकता प्रतीत हो रही थी। उसकी सुंदर लंबी केशराशी उच्छ्वास पर मंडरानेवाले भ्रमरों के समान दिखाई दे रही थी। ९३ रानी की केशराशी, जो मन्मथ (कामदेव) के हाथी के मदजल के रेखाविन्यास-सी और इंद्रनीलमणि के वर्ण की थी, उसके गले को इस तरह ढक रही थी मानो मुखरूपी कमल को भ्रमरों ने घेर लिया हो। ९४ गर्भवती रानी के स्तनचूचुक (कुचों के अग्रभाग) काले होकर स्वर्णकलश से निकलते हुए धुवें के समान लगते थे। ९५ वृत्ताकार काले स्तनचूचुक को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो शत्रुराजाओं ने अपना सर्वस्व दशरथ को सौंपकर अपने मुखों को काला कर लिया है (कालिमा पोत ली है)। ९६ उसके गर्भ में स्थित बालक वास्तव में सकलकला-परिणत हो प्रसिद्ध होगा, इसे सूचित करती-सी रानी की नाभी स्वर्णकमल-सी सुशोभित हुई और रानी की सुंदर रोमावली, (भार से)

उदरदोळिर्दं तनूभव- * नुदारता गुणद पॆम्पॆयं पेळ्ववोला
सुदतिगॆ निरंतरं पा- * त्रदानमं माळ्प बयकॆपुट्टित्तागळ् ।। ९८ ।।
उभयश्रेणिय खचर * प्रभुगळ सिंहासनंगळोळ् कुळ्ळिरलं
भि गमनॆ बयसिदळ् सा- * र्वभौमनी तनयनॆंबुदं सूचिपवोल् ।।९९।।
पर भूपालद्वीपां- * तराळ केळीवनंगळं किळ्तु त-
त्पुरमनुरिपुवुदनीक्षिस*लरविंदाननॆगॆ बयकॆयाय्तॆळवसिरोळ् ।।१००।।
कुल कुधरमनेरि दिशा-* वलोकनं माडुवखिलकुलवाहिनियोळ्
जलकेळियनाडुव बय-*कॆ लता कोमलॆगॆ पुट्टिदत्तॆळवसिरोळ् ।।१०१।।
बसिर मगंगिल्लिवरं * वसुधातळमेक भोग्यमॆंदरिपुववोल्
वसुधॆय नाल्कुंकडॆयॆडॆ-* य सुरभि मृत्तिकॆयनर्तियिं सेविसुवळ् ।।१०२।।
अवमीश्वरनागळ् पुं-* सवनं मोदलाद सकलमांगल्य महो-
त्सवमं मॆरॆदं तणिव * न्नवित्तु वसुमतिगॆ वस्त्रभूषावळियं ।।१०३।।

अंतु नॆगळ्दि महोत्सवगंळोडनॆ गर्भमुं बंधुजन हर्षगर्भमुं परिपूर्णमागॆ—

मरकत रंगदोळ् रमणि तीविद गर्भद बिण्पिनिं नयं
वॆरसॆडॆयाडुवागळडियूडिद मॆल्लडिवज्जॆगळ् मनो-

---

उतरे हुए स्तन और पुष्ट स्तनचूचुक ऐसे सुशोभित थे जैसे जुड़े स्वर्णकमल पर बैठे हुए भ्रमर। ९७ गर्भ में रहनेवाले पुत्र के बढ़ते हुए औदार्य को सूचित करती-सी रानी के मन में सज्जनों को दान करने की आकांक्षा जाग्रत हुई। ९८ जन्म लेनेवाला पुत्र सार्वभौम होगा, इसे सूचित करती-सी रानी को दरबार के उन आसनों पर बैठने की इच्छा हुई जिनमें दो तरह के गंधर्व विराज़मान होते हैं। ९९ गर्भवती रानी ने अन्य राजाओं के उपवन की तरुलताओं को उखाड़कर, उन्हें जलाकर, उन्हें भस्मीभूत होते हुए देखना चाहा। १०० कुलपर्वतों (मलय, महेंद्र, सह्याद्रि जैसे सात पर्वतों का समूह) पर चढ़कर अष्टदिशाओं का अवलोकन करने, उन पर्वतों के तल पर स्थित नदियों में जलक्रीडा करने की इच्छा उस गर्भवती में जागी। १०१ अपने गर्भ से जन्मनेवाले पुत्र के शासनांतर्गत दिगंत की वसुधा आने वाली है इसकी सूचना देती-सी वह (रानी) पृथ्वी के चारो दिशाओं की मिट्टी का सेवन बड़े चाव से करती थी। १०२ राजा ने 'पुंसवन' आदि विधियाँ कराई और मांगल्यमहोत्सव में भूतल के लोगों को वस्त्राभरणों का इतना दान दिया कि वे सब तृप्त हुए। १०३ —इस तरह सम्पन्न उत्सवों के साथ-साथ रानी का गर्भ और बंधु-जनों का संतोष परिपूर्ण था। ऐसे में—नीलरत्न से सुशोभित मंच पर वह जब भरे

हरमेनेंसिर्दुवी सतिय गर्भदोळिर्दं तनूजनादपं
वरनेंनगेंदिळावधुगे पल्लविसित्तनुरागमेंबिनं ॥ १०४ ॥

हारमनिक्कि मिक्क कनकाभरणंगळ बिण्पनेनुमं
सैरिसदिर्पुदप्पुदे वलं कमकाद्रिय बिण्पनप्पोंडं
सैरिसदर्भकं बळेयें गर्भसरोजदोळा - विनीळ-
नीरेरुहनेत्रे तत्कनकमालद बिण्पनदेकें सैरिपळ् ॥ १०५ ॥

तनु तनुवाद गर्भिणिगें तत्समयोचित मंगळ प्रसा-
धनमेसेदत्तु कप्पुरद कंठिकें बण्णद सण्णमाळे तें-
गिन तिरुळोलें तावरेयनूलुडेनूल् सिरिकंडदण्पु मु-
त्तिन तिसरं मृणाळिकेय मुद्रिकें पूविन पिंडु गंकणं ॥ १०६ ॥

घनकुचें मेळदंगनेय मेळें मलंगि सरोजपत्र वी-
जनपवनं विकासमनोडर्चे मनक्कें सुधाप्रवाहमें-
बिनमेरडुं कॆलंविडिदु बजिप वाद्यदिनोजेवेत्त गा-
यनियर सीमनप्प रसगेयमनालिसुतिर्पळोमेयुं ॥ १०७ ॥

सोर्मुडिमालेयिं कदपुगळ् मलयोद्भव पत्रभंगदिं
पेर्मोळे हारदिंदेसेथें बंबलबाडिद रूपु गाडियं
नूर्मडिमाडे मेळदवळं सति निर्भर गर्भभारदिं
नेर्मि निमिर्चुवळ् पुरुळियोळ परिहास वचोविलासमं ॥ १०८ ॥

---

गर्भ के भार से धीरे-धीरे चलती, तो उसके चरणचिह्न से भूलक्ष्मी को इस बात की ख़ुशी हो रही थी कि इसका पुत्र मेरा स्वामी होगा। १०४ गले में हार पहन कर, शेष स्वर्णाभरणों के भार को न वहन करना ही उचित होगा ऐसा सोचकर, कनकाचल के भार को सहने की क्षमता रखनेवाले पुत्र को गर्भकमल में धारणकर वह सुशोभित हुई। १०५ सारा शरीर ही गर्भ बना था। ऐसे में समय के अनुसार रंगीन छोटा हार-सी मंगलमयी कंठी (माला), नारियल की गरी-सा कर्णाभरण, कमल-धागे की साड़ी, मोती की तीनलड़ी, कमलदंड की अँगूठी, फूल का कंकण आदि अलंकार जँचते थे। १०६ वह परिचारिणी के शरीर पर अपना शरीर टिकाकर (टेककर) कमल-पत्तों के विजन से डुलाई हुई हवा को (निज शिथिल) शरीर सौंप कर, दोनों ओर से बैठकर गाती हुई गायिकाओं के मधुरकंठ का रसास्वादन कर रही थी। १०७ पुष्पमाला-सी सुंदर केशराशि पत्रभंग (पत्रलेखा) जैसे गाल, हार से पुष्ट स्तन, इन सब को वहन करता हुआ शरीर उसके रूप का वर्द्धन कर रहा था। ऐसे में वह अपने गर्भभार

अंतु विविधविलासंगळिं दिवसंगळभिलसित फल प्रसवं-
गळागॆ सुख प्रसव समयदॊळ्—

उर्वरॆ मणिपर्वतमं ॐ शार्वरि परिपूर्ण चंद्रनं पडॆवंतं-
तर्वत्ति सर्वलक्षण ॐ सर्वगुणान्वितननॆनिप्प सुमनं पडॆदळ् ॥१०९॥

नीरजमादुदु मेदिनि ॐ नीरजमीतन चरित्रमॆंदरिपुववोल्
नीरच्छमादुदी वसु- ॐ धारमणं स्वच्छहृदयनॆंदरिपुववोल् ॥११०॥

उदयिसिद तनूजन ते-ॐ जदॊळॆनुं मलिनभावलांछन मिल्लॆं
बुदनारिपुवंतॆ पॊगॆयि-ॐ ल्लदॆ पॊण्मॆत्तग्नि दक्षिणावर्तमुखं ॥१११॥

ई तनयनॆ सकलोत्सव ॐ हेतु जगत्तापशमनवॆंदरिपुववोल्
शीतळ समीरनॆसगि- ॐ त्तानन जसदंतॆ विशदमाय्ताकाशं ॥११२॥

अॆळविसिलुं बॆळ्दिगु ॐ मॆळसिदुवॆनॆ रम्य हर्म्यशिखर स्थळियॊळ्
पॊळॆदुवु पॊंगळसंगळ ॐ पॊळॆपुं केतन दुकूल चेलांचलमुं ॥११३॥

अविरलमॆनॆ पूवलि पुदि-
दुवु गुडियुं तोरणंगळुं नळ्तुवु ब-
दृवणं बाजिसिदुवु वी-
धिवीधियॊळ् केरिकेरियॊळ् मनॆमनॆयॊळ् ॥११४॥

---

को सहती हुई, सखियों का आधार लेकर खड़ी होती हुई, उनके साथ परिहास-केलि कर रही थी। १०८ इस तरह विविध विलासों से दिन बिताते हुए सुख-प्रसव के समय—जिस तरह पृथ्वी मणिपर्वत को, और अंधकार चंद्र को पाता है, वैसे ही समस्त लक्षणों से परिपूर्ण, गुणसम्पन्न पुत्र को रानी ने जन्म दिया। १०९ इस बात को सूचित करता-सा कि उस बालक की और चक्रवर्ती दशरथ की कीर्ति कलंकरहित है, बालक के जन्म ने पृथ्वी को निर्मल (कलंकरहित) कर दिया। ११० दक्षिणाभिमुख जलती हुई धुवाँ-रहित अग्नि मानो इस बात की घोषणा कर रही थी कि बालक के तेज (पराक्रम) में तनिक भी मलिनता नहीं है। १११ शीतल मंद समीर यह संकेत देता हुआ बह रहा था, मानो यह बालक ही जग के आनंद का कारण बनेगा, और जग का ताप निवारण करेगा (कष्ट दूर करेगा)। ११२ स्वर्णकलश और ध्वजाओं के वस्त्रांचल ऐसे प्रकाशित हुए मानो सूर्यप्रकाश और चांदनी मनोहर अटारी पर एक साथ शोभा पा रहे हों। ११३ नगर की हर गाली के घरों-घरों में विकसित फूल बरसने लगे; ध्वज और तोरण (मंडप) सुशोभित हुए; मंगलवाद्य सुनाई पड़े। ११४ अनुराग की परम्परा-से रत्नतोरण सुशोभित हुए। सदा

रागद बळ्ळवळ्ळियेनॆ रन्नद तोरणमालॆ कूडॆ चॆ-
ल्वागिरॆ दानमेघ रुतियंतिरॆ मंगळ तूर्यनादमा-
शागज कर्णपूरमॆनॆ रागरसामृतवार्धि घोषवं-
तागिरॆ पुण्यपाठक रवं पॊसतादुदु राजमंदिरं ॥११५॥

देसॆ विलासमं पडॆयॆ गॊंदळवक्कणवागळा नृपा-
वासदॊळाडिदत्तॆसॆयॆ पाणितलं पडॆवंनॆ कुंकुम
स्थासकमं कुरुळ कॆदरुवंतॆ तमाल नव प्रमाळमं
कॆसडि पासुवंतॆ तळिरं नगॆगण्णुगुळ्वंतॆ नॆय्दलं ॥११६॥

उदयिपुदुं त्रिलोकतिलकं गृहदेवतॆयर् प्रसन्नवे-
षदिनॊसॆदाडुवंतॆ मणिभित्तिगळं मणिकुट्टिमंगळं
पुदिदु मनक्कॆ संतसमनित्तुवु नृत्यरसामृत प्रवा-
हदॊळवगाहमिर्द गणिकाप्रचय प्रतिबिंब लक्ष्मिगळ् ॥११७॥

आ प्रस्तावदॊळ दशरथमहीनाथं सुतमुख निरीक्षण भरदिं पारिजातं कोरकितमादंतॆ पुलकितशरीरनागि—

जिन पूजोत्सवमं सुरेंद्रनळवल्तॆंवन्नॆगं माडि बे-
ळ्पनितं बेळ्पवर्गित्तु कल्पकुजमं कीळ्माडि सन्मानभा-
जनरं सज्जनरं विचित्र वसन स्रग्भूषणालेपदिं
जनपं मन्नणॆमाडि तन्तनय जन्मोत्साहमं माडिदं ॥११८॥

---

जलदान करनेवाले मेघ की तरह ध्वनि होनेवाले मंगलवाद्यनिनाद दिग्गजों के कानों में कर्णाभरण-से प्रतीत हुए। संगीत रागरस अमृतसमुद्र-घोष के सदृश प्रतीत हुए, और चारणों की प्रशंसाओं से राजमहल सुशोभित हुआ। ११५ राजमंदिर में अभिनीत नृत्य-नाटक ने कलोन्नति से, हथेली को कुंकुम-केसर-पराग के समान, केशराशि, बिखरे हुए नेमी (रथद्रू) के अंकुर-समान, लाल-लाल चरणतल बिछाये हुए किसलय के सदृश, हँसी-युक्त आँखें कमल को उपजाती-सी सबको आनंदविभोर कर दिया। ११६ तीनों लोकों के लिए तिलक-तुल्य बालक के जन्म लेते समय जिस प्रसन्नवेष से नवग्रह संचार करते हैं, उसी तरह रत्न की दीवारों और फर्शों को घेरकर गणिकाओं के किए गए नृत्य ने लोगों को रसप्रवाह में बहा दिया। ११७ उस समय दशरथ महाराज ने बालक के मुखावलोकन की आतुरता से विकसित पारिजात पुष्प-सा रोमांचित हो—जिन-पूजा इस तरह से की कि देवेंद्र के लिए भी (वैसी पूजा करना) असाध्य हो। मांगनेवालों की अपेक्षित (मांगी हुई) वस्तुओं का दान इतना दिया कि कल्पवृक्ष को भी लजा

दिविन कुजंगळारवेंगळादुवु सिद्धरसं तटाकया-
दुवु सुरधेनु पिंडरियोंदेडेयोळ् नेरेदिर्दुवोंविनं-
भुवन जनक्के बांधव जनक्कखिलार्थि जनक्कें हर्षदिं-
दवखिरेन्नदित्तु मेरेदं जनपं सुत जातकर्ममं ॥११९॥

अंतु जातकर्मोत्सवमं माडि दशमदिनदोळ् पद्मालंकृत विशालवक्षस्थलनेप्पुदरिं पद्मनुं, सकल शुभ लक्षणाभिरामनप्पुदरिं रामचंद्रनुमेंदिवु मोदलागे पेरवुमन्वर्थनामंगळनिट्टु कतिपय दिनंगळोळ्—

रविकिरण सोंकदे हा-॥ स विलासंवडेद कमलमं नेनेयिसुगुं
नेवमिल्लद नगेयिंदो- ॥ प्पुवास्यमुत्तानशय्येयोळ् बालकना ॥१२०॥

निरपेक्षकमेनिसियुमें
परिदत्तलें परिव सुतनकण्वोळपिंदं
तेरेमसगिदुदरसिय मो-
ह रसं चंद्रिकेयिनमृत जलराशियवोल् ॥१२१॥

हरिनीलोपल विरचित॥ मरळेले बालकन निटिलदोळ् नयन मनो-
हरमादुदर्धचंद्रो- ॥दरदोळ् कण्गोळिसि तोर्प कर्पेविनेगं ॥१२२॥

---

दिया। मान्य व्यक्तियों को, सज्जनों को, विशिष्ट भूषण-आभरणों से सम्मानित कर, उसने अपने पुत्र का जन्मदिन मनाया। ११८ उसने जग के (समस्त) लोगों को, अपने सगे-संबधियों को, अन्यों को, किसी में भेदभाव किए बिना, दान देकर पुत्र का जातकर्म ऐसा करवाया, मानो कल्पवृक्ष के उद्यान लग गये हों; सिद्धिरस से तालाब भरगए हों, कामधेनु अपने समूह (टोली) को न छोड़कर एक जगह एकत्र हुई हों । ११९ इस तरह उत्सव मनाकर दसवें दिन (के अवसर पर), पद्मालंकृत विशाल वक्षस्थलवाला होने के कारण पद्मा और समस्त लक्षणों से मनोहर होने के कारण रामचद्र—इस तरह और भी अनेक अन्वर्थ (सार्थक) नाम रख दिए गए। कुछ दिनों के बाद—सूर्यरश्मि के स्पर्श के बिना खिलनेवाले कमलपुष्प को स्मरण दिलाता-सा अकारण हँसनेवाले मुख से सुशोभित बालक पालने में सोया (हुआ शोभायमान) था। १२० इस तरह सोये हुए बालक की आँखों की कांति (नेत्रप्रभा) को माँ ने जब देखा तो चंद्रोदय से वर्द्धित अमृतशिला की भाँति उसका हृदय वात्सल्य से उमड़ आया। १२१ इन्द्रनील रत्न से निर्मित 'अरळेले' (एक विशिष्ट आभूषण जो छोटे बच्चों के ललाट पर पहनाया जाता है) बच्चे के माथे पर उसी तरह सुशोभित हो रहा था जिस तरह अर्धचंद्र में दिखाई देने वाला कालापन। १२२

अरुणमणि कर्णभूषण *परीचि पसरिसिद रामचंद्र शरीरं
परिभविसिदुर्देळविसिला*वरिसिदि कमनीय पुंडरीक श्रीयं ॥१२३॥
अरसिय मनदोंल कॅंजडें* दोरेकोंळिसुवुदुचितमोडनें कज्जलरुचियोंळ्
पोरेद नयनोत्पलंगळ् *दोरेकोंळिपुदु चित्रमल्ते रागोत्सवमं ॥१२४॥
धात्रियोंळन्यर तेजो * मात्रमनां सलिसॅनेंब तॅरदिं पोय्यल्
धात्रियं कय्यि निमिर्व* क्षत्रशिश्वामणि मणिप्रदीपंकुरमं ॥१२५॥
किविगिनिर्देनिप्प वीणा
रवदोंळनादरमनुंटुमाडित्तु तनू-
भवन तळर्नडेयोंळ् पों-
ण्मुव मृदुपद कनक किंकिणी झणझणितं ॥१२६॥
श्रवणक्कर्थव्यक्तिय * नवटयिसदें नॅगळ्वि वश्यमंत्राक्षरदं-
तेवोंलॅल्लरुमं सोलिसि- * दुवु तोंदलंनुडिव रामचंद्रन नुडिगळ्॥१२७॥
तिळिगोंळदोंळगॅडेयाडुव*कळहंसन बालकेळि पुदुवेंनें मधुपा-
टळनेत्रं धवलांगं *पळिकिन कुट्टिमदमेलें दट्टडियिट्टं ॥१२८॥
नडॅगल्वंदु विण्पिं * कोंडे नॅगेदपुर्दुवियॅंदु पासुगि पलवुं
पॅडेयं शिशुनडॅवेडेयोंळ् * पडेदांतु सहस्रफणनॅनल् पॅसर्वडेदं ॥१२९॥

लाल रत्न के कर्णाभरण की कांति को प्रस्फुटित करनेवाला राम का शरीर बालसूर्य के ताप से थके पुंडरीक पुष्प (सफ़ेद कमल) की तरह था। १२३ रानी के मन के हर्षोत्सव से मुख का लाल होना सहज स्वाभाविक है, लेकिन काजल से काली हुई आँखों का प्यार से लाल होना आश्चर्य है न? । १२४ परिचारिका के (द्वारा) उठा लेने पर उसके हाथों से उछल-उछलकर क्षत्रियकुल-शिखामणि बालक रत्नदीप-शिखा पर इस तरह से मार रहा था कि वह शायद यह संकेत कर रहा था कि संसार के अन्य राजाओं के अहंकार को वह सहन नहीं करेगा। १२५ उस बालक द्वारा धारण की हुई पैंजनी का किंकिणी-स्वर माता-पिता के कानों में सदा मधुर वीणानाद के प्रति अनादर जगाता था। १२६ कानों से सुनते समय अर्थ पैदा न करनेवाली रामचंद्र की तुतली बातें वशीकरण-मंत्र-सा सबको मोहित कर देती थीं। १२७ शुद्ध जल के सरोवर में तैरते हुए कलहंस की बालक्रीडा ही मानो जोड़ी है, श्वेतवर्ण का रामचंद्र, स्फटिक के फ़र्श पर अटपट पग रखकर चल रहा रहा था। १२८ चलना सीखते समय, अलकें बिखेरकर, छाता लेकर चलने के कारण वासुकी (सर्प) की तरह सहस्रफन नाम पड़ा है। १२९ बालक की

मणियेरं चेंबोन्नुडे * मणियुलिगेले गेल्दनंगरूचियिंदैरा-
वणमं कुमार चूडा-* मणि लालाजलदोळं चतुर्दतदोळं ॥१३०॥
अमृतांशुपेंर्चे पेर्चुव * समुद्रमेंतंते रामचंद्रं दिवस
क्रमदिनभिवृद्धिवेत्ता * क्रमिसिदनति मुग्धभावमं शैशवमं ॥१३१॥

अंतु रामचंद्रनादिन्यनंते नित्योदयमनप्पुकेय्वुदुं—

बालत्वदोळमुदात्त गु-
णालयमेनिसिद तनूज मुखचंद्रमनं
लीलेयिनीक्षिसि दशरथ
नोलाडिदनधिक रागरसवारिधियोळ् ॥१३२॥

अंतु संतोषद परमपदमनेय्दिदर्पुदुमदल्लदेयुमा महीवल्लभन मोहवल्लरिगळे पूतुवेंबंते पुष्पवतिथरागि नाल्कुनीर्मिदु बेळ्वसनद पोसदेसे विलासंबडेये सूळ्गेवंदु शुभस्वप्न दर्शनानंतरं केलवु दिवसमिर्पिनं—

कुलदोदविंगी सनियरे * कुलदेवतेयर्कळेंब बगे पुट्टुविनं
तलेदोरे गर्भचिह्नं * तलेदोरिदुदवनिपतिगे रागोद्रेकं ॥१३३॥

आगळाकेगळ पसुवे सेवसिय बासे लावण्यनदिय शैवाललतेय लास्यमनपहास्यंगेय्येयुमाकेगळ करंगिद कुच चूचुकंगळिदेसेदु

---

पहनी हुई सुवर्ण-करधनी की घंटिका-ध्वनि घंटाघोष से भी अधिक थी; उसकी देहकांति के सम्मुख ऐरावत का धवलवर्ण फीका प्रतीत होता था। चार दाँतों से युक्त राम लार बहाता हुआ (दिन-दिन) बढ़ रहा था। १३० चंद्रोदय के कारण उमड़नेवाले समुद्र की तरह रामचद्र ने दिन-प्रतिदिन बढ़ते-हुए अपने शैशव को बिताया। १३१ इस तरह, नियमित रूप से उगनेवाले सूरज के समान वह बड़ा होता जा रहा था कि—बाल्यकाल में गुणों के भंडार-से पुत्र के मुखचंद्र को प्यार से निरखकर दशरथ वात्सल्य-सागर में तैरने लगे। १३२ इधर दशरथ संतोष की परमावधि का अनुभव कर रहे थे, और उधर उसकी मोहलता का पुष्प खिला-सा—अन्य तीनों रानियाँ पुष्पवती बनीं। चौथे दिन के स्नान के पश्चात् धवल (सफ़ेद) वस्त्रों से सजकर प्रसन्न होकर बारी-बारी से शुभ स्वप्न देखते हुए कुछ दिन बात जाने के पश्चात्—जब उनके गर्भधारण के चिह्न दिखाई पड़े और यह स्पष्ट हुआ कि ये रानियाँ कुलाभिवृद्धिके लिए कुलदेवियाँ है, तब उन पर दशरथ का मोह (प्यार) बढ़ गया। १३३ तब उनके हरे वर्ण की लहराती हुई रोमराजियाँ (रोमावली) सौंदर्य-सागर में तैरते हुए नीलरत्नों की लताओं के सौंदर्य का उपहास करने लगीं।

तोळमोर्दलि जक्कुलिसुव पेमोंले कनेय्दिलेसळं नलिदु कर्चुव जक्कवक्किय विलासमनिक्कि मेट्टियुमाकेगळ मुखरसदोळ्मूडि मुळ्काडुव कपोलयुगळं तिळिगोळदोळगण बिळिय तावरेयेसळं सरसवाडेयु माकेगळ पेरेनोसलं मेट्टि निमिर्द तोरगुरूळ तोंगलोळवेरे-यनंधकारमावरिसिदंते तोरेयुं, अनंतरमवर्गे पुंसवन् सीमंतोन्नय-नादिसकल मंगळमं दशरथनरनाथमाळ्पुदुमनुक्रमदिं शुभदिन-मुहूर्तदोळ सुमित्रे लक्ष्मणनं, कैके भरतनं, सुप्रभे शत्रुघ्ननं पडेवुदुं—

पसरिसे पूवलिगळ् बा- * जिसे बद्दवणंगळोडने मिळ्ळिसे गुडिगळ्
देसेबिद्दवाडे तरुणिय * रोसगेयमेलोसगेयादुदंदरमनेयोळ् ॥१३४॥

आ समयदोळ् दशरथं सुतमुखदर्शनोत्सुकं कतिपयाप्त परिजन परिव्रतं सुमित्रादेविय सूतिकासदनमं पोक्कु—

सिरिसिंहक्कभिषेकमं पडेवुदं रत्नाकरं सुत्तिदु-
र्वरेयं भासुरचक्रमं कनसिनोळ् पोंबेट्टवेरिर्दुदं
हरिणीनेत्रे सुमित्रे कंडुदरिनाळ्गुं बेळ्ळिवेट्टंबरं
भरतक्षेत्रमनेंदु कण् तणिविनं सौमित्रियं नोडिदं ॥१३५॥

बालार्क मरीचियेनल् * बालकन शरीरकांति पसरिसे हर्षो-
न्मीलनदिं दशरथ नर * पालक मुखकमळमें मनंगोळिसिदुदो ॥१३६॥

---

बाहुमूल से लेकर फैले हुए उनके स्तनों के काले अग्रभाग तो कमल के दल को काटनेवाले चक्रवाक की भंगिमा को भी मात कर रहे थे। उनके लावण्य (सौंदर्य) रसमें डूबते-तैरते (गोता खाते हुए) कपोल तो शुद्ध पानी के तालाब के श्वेतकमल-दल की दिल्लगी उड़ा रहे थे। अर्धचंद्राकृति के ललाट पर फैली हुई केशराशि, चंद्र पर आवृत्त रात के समान प्रतीत हो रही थी। दशरथ ने उनके लिए 'पुंसवन', 'सीमंत', 'उन्नयन' आदि सभी प्रकार की विधियाँ कराईं। शुभ दिन शुभ मुहूर्त में सुमित्रा से लक्ष्मण, कैकेयी से भरत और सुप्रभा से शत्रुघ्न ने जन्म लिया तो—बाजे बज उठे (बजाये गये), फूलों की वर्षा हुई; दिशा-दिशाओं में ध्वज लहराने लगे; राजमहल में सबके सब सजधज गए। १३४ —उस समय राजा दशरथ उत्सुक होकर परिजनों के साथ बच्चों को देखने के लिए सुमित्रा के सूतिका-गृह में प्रविष्ट हुए। हरिणीनेत्रा सुमित्रा ने स्वप्न में सिंह का अभिषेक होते हुए, समुद्र द्वारा आवृत्त समुद्र को तथा, चक्र एवं स्वर्ण पर्वतारोहण देखा, इससे प्रतीत हुआ कि यह बालक (लक्ष्मण) रजत पर्वत तक व्याप्त भरतखंड (भूमि) पर शासन करेगा। ऐसे (योग्य) पुत्र को दशरथ आँखें तृप्त होने तक देखते रहे। १३५ बालक की

अनंतर भरत शत्रुघ्नर जन्मोत्सव मंगळमनाचरिसि—

मनुवंशांबर भानु कल्पतरु कैवंदंतॆ रैवृष्टि प-
ळ्कनॆ कॊंडंतॆ सुरेंद्रधेनु करॆदंतार्तित्तु कूतित्तु स-
न्मनर्दिदित्तु सुहृज्जनं परिजनं विद्वज्जनं जीयॆनल्
तनयर् मूवर जातकर्ममुमनत्युत्साहर्दि माडिदं ॥१३७॥

अंतु दशरथमहीनाथं संतान समृद्धियिनतिप्रवर्धमानसुखाधीन मानसनागिर्पुदुं—

अवनीवल्लभ तनयर् * नव शशिकलॆयंतॆ पडॆदु नयनोत्सवमं
दिवसक्रमर्दिदं वृ- * द्धिवडॆदरमरावनीजदगॆयॆविनॆगं ॥१३८॥

नसुनगॆ कमळद सिरियं
नसुनगॆ जननियर लोचनभ्रमरंगळ्
मुसुरिदुवु मोहवल्लरि
पसरिसि पर्विदुदु सुतर लालाजलर्दि ॥१३९॥

तळरडि यिडुवत्तलॆ परि
दॆळसुव जनयिर दिट्टि मणिकुट्टिममं
बळसॆ पॊसतलर्दॆ नॆय्दि-लगॊळदाळगण
राजहंसनं नॆनॆयिसिदर् ॥१४०॥

---

शरीरकांति सूर्यप्रकाश के समान सुशोभित हुई तो दशरथ का मुखकमल हर्ष से खिल उठा। १३६ तत्पश्चात् भरत-शत्रुघ्न का जन्मोत्सव सम्पन्न कर—आकाश सदृश मनुवंश के लिए सूर्यरूपी दशरथ मानो कल्पवृक्ष ही फलित हुआ हो, मानो मूसलाधार सुवर्ण-वर्षा हुई हो, मानो कामधेनु ने ही दूध दिया हो; विद्वज्जनों को, परिजनों को, सुहृदमित्रों को बुलाकर, दान देकर, तृप्तकर, उत्साह और उल्लास से तीनों पुत्रों की जातकर्म-विधियाँ सम्पन्न कराई। १३७ इस तरह दशरथ महाराज संतान पाकर सुख-समृद्धि के साथ प्रसन्न चित्त थे कि—उनके बच्चे शुक्लपक्ष के चंद्र के समान दिन-प्रति-दिन बड़े होते हुए, देवताओं के प्रतिस्पर्द्धी के समान सुशोभित हुए। १३८ उनकी हँसी कमलसौंदर्य को लजा देती थी और माताओं की भ्रमररूपी आँखें (उन्हें देखकर) खिल जाती थीं। बच्चों के मुँह से बहते (टपकते) हुए लार-रस से मोह रूपी लता बढ़ने और फैलने लगी। १३९ बच्चों के कोमल पद जहाँ-जहाँ पड़ते वहाँ-वहाँ माताओं की सजग आँखे रत्नफ़र्श फैलाने लगी। तब वे ऐसे प्रतीत होते मानो सरोवर में अभी अभी खिले कमलों के साथ राजहंस विहार कर रहे हों। १४० कपास के पत्ते,

अरळॆलॆ मत्तिगाय पुलियुगुर् नवरत्नद कंकणंगळ्
गुरमुडॆनूल पॊन्न मणिकिंकिणि रन्नद घंटॆ नूपुरं
वर वलयंगळॆंब पलवंदद चंदद बालवंदमॊ-
प्पिरॆ पितृमातृगळ्गॆ पडॆदर् तनयर् नयनोत्सवंगळं ॥१४१॥

अंतु दशरथ महीनाथन साम्राज्यश्रीय मणिमयाभरणदंतॆ सॊगयिसुव सुतर बालकेळीदर्शनदिं सुमित्रॆय नयनपुत्रिकॆ नलिदु नर्तिसॆयुं, कैकॆय तनुलतिकॆ पुळक कळिकॆयं तळॆयॆयुं, सुप्रभॆय मनःप्रमोदमुदि तोदितमागॆयुं राम-लक्ष्मण भरत-शत्रुघ्नरनुक्रमदिं शैशवमनतिक्रमिसॆ—

वसुमतिवॆसरन्वर्थ
वसुधॆगॆनल करॆदु पॊन्न मळॆयं दान
व्यसनि दशरथनदॆं पॊस
यिसिदनो चौलोपनयन महिमोत्सवमं ॥१४२॥

परम प्रेमं जन्मां- ※ तरदिंदॊडवंदुदॆनिसि गॆंडॆबॆच्चवॊल-
च्छरियागॆ राम लक्ष्मी- ※ धररॊळमादत्तु भरतशत्रुघ्नरॊळं ॥१४३॥

अमळ्गळिवरॆंबिनं तम
गमळ्वॆसरमदॆसॆयॆ ताय तंदॆय चित्त-
कक्मर्दिन मळॆयं कळॆदर्
कुमारकर् मूर्तिगॊंड पुरुषार्थदवॊल् ॥१४४॥

---

कच्चे अंजीर और बाघ-नख के आकर के और रत्नजटित कंगन, अँगूठी, करधनी, सुवर्णमेखला (आभूषण) आदि बच्चों के लिए उचित अनेक आभरणों से सुसज्जित (सुशोभित) बालकों ने पिता-माताओं की आँखों को आनंदोत्सव प्रदान किया। १४१ इस तरह दशरथ साम्राज्य-वैभव के लिए रत्नाभरण सदृश सुशोभित अपने बच्चों की बाल-लीलाओं को देखते रहते। सुमित्रा की आँखों की पुतली (बाल-क्रीड़ाओं को देखकर) नाच उठती; कैकेयी की लतारूपी देह, रोमांचन-रूपी कलियों को खिला देती; सुप्रभा का मन आनंदविभोर हो जाता। इसी तरह राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का शैशव (इस प्रकार) बीता। दशरथ, दान-गुण ही जिसका व्यसन था, ने सोने की वर्षा वरसवाकर, सज्जनों को दान करके, यह सिद्ध कर दिया कि पृथ्वी के लिए वसुमती नाम अन्वर्थ (सार्थक, समुचित) है; और वड़े धूमधाम से अपने वच्चों का चौल-यज्ञोपवीत संस्कार करवाया। १४२ पुत्रों में राम और लक्ष्मीधर (लक्ष्मण), भरत और शत्रुघ्न जन्मांतरों के

सुरधेनु स्तनभारदंते पुरुषार्थं मूर्तिगोंडंते ना-
ल्बरुमोंदागिरे नंदनर दशरथं नाल्कुं समुद्रंवरं
धरेयं कूडे निर्मिचि नाल्देसेयोळं नाल्कुं जयस्तंभमं-
चरितार्थर् निलिसल् समर्थरिवरेंदुत्साहमं ताळ्दिदं ॥१४५॥

मत्तं निज तनूभवर निर्जित मनोजकारमुमं तिळमसूरिकादि शुभ व्यंजनरंजित प्रशस्तावयवंगळुमं, हल कुलिश शंक चक्र लांछनंगळप्प कर चरणंगळुमं नोडि सकल साम्राज्यश्रीयनप्पु-केय्दंते संतोषदंतनेय्दि—

सविववसरमिदु विद्या- ॐ युवतिय वदनारविंद मधुवेंदुत्तुं
विविध कळाचार्यरना- ॐ यंवर्यरं गुरु नियोगदोळ् योजिसिदं ॥१४६॥

शुभदिन मुहूर्तदोळ् पु-
ण्यभागिगळ् कलिसे गुरुगळोडवंदुदो पू-
र्व भवोपार्जित विद्या-
विभवमेनल् सकलशास्त्र परिणितरादर् ॥१४७॥

---

परम स्नेही की भाँति, दो देह होते हुए भी एक मन-सा, अन्योन्य (स्नेहबंधन में) आवद्ध हुए। १४३ वे जुड़वों की तरह अपने नामों को भी समुचित मानकर अपने माता-पिता के मन में अमृत की वर्षा करके ऐसे सुशोभित हुए, मानो चतुर्विध पुरुषार्थ ने ही मूर्तिरूप धारण कर लिया हो। १४४ वे चारों बालक कामधेनु के स्तन के भार की तरह, मूर्तिवान् पुरुषार्थ जैसे थे। (यह देखकर) दशरथ इस कल्पना से उत्साहित हुए कि ये चारों पुत्र चार समुद्रों तक व्याप्त भूमि को जीतकर चारों दिशाओं में अपने कीर्तिस्तंभ गाड़ने में समर्थ हैं। १४५ कामदेव को (सौंदर्य में) पराजित करनेवाले (अपने पुत्रों के) शरीर का आकार, उनके प्रशस्त अंगोपांगों को हल, कुलिश, शंख, चक्र से युक्त उनके हाथ-पैरों को देखकर दशरथ ऐसे प्रसन्न हुए मानो समस्त साम्राज्य-श्री को सीने से लगा लिया हो—इस विचार से कि विद्या-युवती के वदनारविंद-मधु का स्वाद लेने के लिए यह समय उपयुक्त है, (बच्चों को पढ़ाने के लिए दशरथ ने) विविध विद्याओं में पारंगत आचार्यों को नियुक्त किया। १४६ शुभमुहूर्त में पुण्यशील गुरुओं ने पढ़ाया, तो बालक सकल शास्त्रों में ऐसे परिणत हुए मानों पूर्वजन्म में अर्जित समस्त विद्यावैभव उनके साथ ही आया हो। १४७ राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—चारों की अध्ययन-रीति रोमांचन करा देनेवाली थी। उन्होंने चौंसठ विद्याओं को ऐसा (आसानी से और शीघ्र) सीख लिया कि अन्यों के मन (मत्सर से) जल उठे। १४८ ज्योति से

रोमांचमोंडरिसेयुं- ※ रामन लक्ष्मण भरत शत्रुघ्नर वि-
द्यामहिमें चतुष्षष्टिक-※ ला महितर मनदोळीश्र्येयं पुट्टिसुगुं ।।१४८।।

सोंडरं पोत्तिसिकोंडु पोगें सोंडरोळ् तेजं गुणाधिक्यदिं
कडुगोंवें पडेवंतें तम्म विशदप्रज्ञा गुणोत्कर्षदिं
पडेमानेनरूवत्तुनाल्कु कळेयुं तत्कोविदर् मेच्चें नू-
र्मडि मेलादुवु रामलक्ष्मणरोळें सत्सेवें सामान्यमे ।।१४९।।

कलितनमुं महाबलमुमुळ्ळन कय्दुवें कय्दु पंदें दु-
र्बलनेंनिसिर्दवं पिडिद कैदुवदेनर कैदुवेंबिनं
कलिसिद भार्गवात्मजरनोडिद तज्ञर मुय्वु नेत्तियं
गेलें सलें रामलक्ष्मणरदें नेरें कल्तरों कैदुवेल्लमं ।।१५०।।

मिगें वंदेल्लर बिल्ल बिन्नणद विण्पं रामनेसेंबिनं
मिगें तन्नेसुपमासमादुर्देनें राम कल्त बिल्बल्मेयं
पोगळल्वेळ्पुदें रामनोळ सदृशवेंबन्नं धनुर्विद्येयिं
जगमं मोच्चिसि चाप चापलतेयं कोंडाडिदं लक्ष्मणं ।।१५१।।

अंतवर् सकलशस्त्र शास्त्रविद्याविशारदरागि कुमार दशाति-
शयमनप्पुकेय्वुदुं—

---

(अन्य) ज्योति जलाते रहने से जिस तरह दीप में गुणाधिक्य होता है और उसका प्रकाश वढ़ता है, उसी तरह अपने में निहित प्रतिभा-विशेष से दशरथ के पुत्र समस्त विद्याओं में ऐसे पारंगत हुए कि गुरुजन (अतिशय) प्रसन्न हुए। १४९ जिनमें वीरत्व और शक्ति हो, उनके हाथों में रहनेवाला आयुध ही (वास्तव में) आयुध है; दुर्बलों द्वारा धारण किये हुए आयुधों का क्या महत्व? राम और लक्ष्मण के युद्ध-चातुर्य (युद्ध-कौशल) ने गुरुजनों और धनुर्विद्या-विशेषज्ञों को आश्चर्यचकित कर दिया। १५० कहाँ राम की तीरंदाज़ी की कला! और कहाँ अन्यों की तीरंदाज़ी की कला! राम इस कला में अद्वितीय रहा। उसकी धनुर्विद्या की कुशलता के लिए मानो वही एकमात्र उपमान हो, उसके लिए मानो स्वयं वही सदृश हो। राम की शरसंधान-कला से संतुष्ट होकर लक्ष्मण ने प्रशंसा की। १५१ इस तरह वे समस्त शास्त्रों में विशारद होकर कुमारावस्था को प्राप्त हुए तो—रघुराम का धवल शरीर इस तरह सुशोभित हुआ मानो वह चंद्रबिंब से निर्मित हुआ हो, या स्फटिक से उत्पन्न हुआ हो, या पुष्पों से निर्माण किया गया हो, अथवा चंद्रकांतमणि

हिमकर बिंबदिं कडेदुदो पळिकिं पडेदत्तो पूगळिं
समेदुदो चंद्रकांतमणियिं बेसकेय्दुदो मौक्तिकंगळिं
समनिसिदत्तो कोमलमृणाळिकेयिं परिपूर्णमाय्तो पे-
ळिमिदेने रंजिसित्तु राघुरामन पांडुरदेहमंडलं ॥१५२॥

उन्नत ललाट पट्टं- ❊ मन्निसदष्टमिय चंद्रनं नगेगण्गळ्
मुन्नडेविदुवु कमळम- ❊ निन्नेवण्णिपुदो रामनभिरामतेयं ॥१५३॥

तेरे करेगण्मिदिंगडल गाडियनेळिसे तोरमुत्तिनै-
सरद मरीचियिं सिरियं ताय्वने रामन पेरुरं मनो-
हरमेनिसित्तु वारवनिताजन वश्यविधान वेदियोळ्
दोरेयेनिसित्तु धैर्यगुण रोहण शैल शिलातलोपमं ॥१५४॥

ऒळिसिदुवु लक्ष्मणन वि- ❊ शाळ विलोचन युगंगळंग प्रभेयिं
मेळिसि नगेयंपाळिसि- ❊ काळिंदियोळलर्द पुंडरीक श्रीयं ॥१५५॥

हरिनील रत्नमं कं- ❊ डरिसिद कण्देरविगेय्दे जीवंबोय्दं-
तिरेतोर्प गंडगाडिगे- ❊ पुरुषोत्तमनेंदु कोंडु कोनेदुदु लोकं ॥१५६॥

मनमनलर्चिदत्तु पुरुषोत्तमनुच्च ललाट लेखे कृ-
ष्णन कुरुळोळि विष्णुविन पेरुरमायतिवेत्त वारिजा-
क्षन धवलेक्षणं पुरुषसिंहन सिंहकटीतटं जना-
र्दनन भुजंग भीम भुजमंबुजनाभन नाभिमंडलं ॥१५७॥

---

से निर्मित हो, या मोतियों से बना हो, या मृदुल कमलनालों से पूर्ण हुआ हो। १५२ उन्नत ललाट-पट्ट ने अष्टमी के चंद्रमा को लजा दिया और उसकी हँसी से युक्त आँखें कमलों के लिए मार्गदीप बनीं। ऐसे राम के अभिराम (मनोहर) रूप का वर्णन कैसे करे ? । १५३ राम के विशाल वक्षस्थल पर सुशोभित पाँच लड़ियों का हार अत्यधिक उभरे हुए समुद्र की लहरों का परिहास कर रहा था; उसका धैर्य-गुण कनकपर्वत के समान उन्नत था। सबके मन को मोहित (आकर्षित) करते हुए वह सुशोभित हुआ । १५४ लक्ष्मण के विशाल नेत्र शरीरकांति के साथ उभरकर यमुना में खिले पुण्डरीक पुष्प (श्वेतकमल) को उपहास (की दृष्टि) से देखने लगे। १५५ इंद्रनील रत्न को काटते समय उत्पन्न होनेवाले प्रकाश की तरह आँखे खोलने पर प्रकाश से परिपूर्ण दिखाई देनेवाले और पराक्रम से युक्त राम को संसार ने पुरुषोत्तम कहकर प्रशंसा की। १५६ उस पुरुषोत्तम का विशाल ललाट, कृष्ण की केशराशि, विष्णु का विशाल वक्ष, वारिजाक्ष की दृष्टि, पुरुषसिंह का मध्यभाग, जनार्दन की पुष्ट भुजाएँ,

पोळेये नखांशुमंडल फणामणि पंचपणासिताहिगळ्
बळेदपुतीटलेंदु दशकंठन विल्लुसिरं तदीय नि-
र्मळतर कीर्ति दुग्धरसपानमनेंविनेंगं पोदळ्दु को-
मळिकेयनाळ्दु नीळ्दु बगेगोंडुवु कृष्णन बाहुशाखेगळ् ।।१५८।।
हारमरीचियं मरकतच्छवियं गेले देहादीप्ति नी-
हारमरीचियं कुसुम सायकनं गेले गंडगाडि कं-
ठीरव नादमं जलधर ध्वनियं गेले बेरेबेरे गं-
भीरवं बलाच्युतरदेनेसेदिर्दरो रामलक्ष्मणर् ।। १५९ ।।
रणदोळ् रावणनं जवंगे पोसतिक्कल् तारशैलक्के तें-
कणदं कंकणदंते कैगेवरिसल् भूचक्रमं चक्रमं
रणदोळ साधिसलेंदु पुट्टिदवरें सामान्यरे राम ल-
क्ष्मणरप्राकृतविक्रमर् त्रिभुवन प्रख्यात कीर्तिध्वजर् ।।१६०।।

अंतु रामलक्ष्मण भरत शत्रुघ्नरेंब नाल्वर् तनूभवरूं नाल्कुं रत्न शिलास्तंभंगळंते रघुकुल समुद्धरण समर्थरागे दशरथं परिपूर्ण मनोरथनागि—

धनमं मर्यादेयिंदार्जिसि विषयसुखास्वादनं दोषनिष्पा-
दनमल्तेंबंते चित्तक्कोदलिसे पदेपं भारती हंसिवक्त्रा-

---

अंबुजनाभ का नाभि-मंडल आदि (सर्वोत्कृष्ट छबि) ने मन को प्रसन्न कर दिया। १५७ नख-कांति, रावण का बल शोषण कर लेने के निमित्त, पाँच फनवाले सर्प के शीशमणि के समान बढ़ रही थी। किर्ति की व्याप्ति के साथ ही उसकी लंबी बाहें बढ़ने (सुशोभित होने) लगीं। १५८ उसकी देहकांति, कंठाभरण की आभा एवं मरकत-मणि की शोभा से और चांदनी की कांति तथा कामदेव (के सौंदर्य) से (भी) बढ़कर थी। राम-लक्ष्मण के विभिन्न गंभीरस्वरों ने मिलकर सिंहगर्जन-सदृश पुरुष-स्वर और बादलों की गड़गड़ाहट को मानो पराजित किया। १५९ युद्ध में रावण को यमपुरी भेजने के उद्देश्य से, कैलास पर्वत को दक्षिणपर्वत से जोड़ने (मिलाने) के लिए, युद्ध में पृथ्वी और चक्ररत्न प्राप्त करने के निमित्त जन्मे हुए राम-लक्ष्मण अति पराक्रमी हैं; तीनों लोकों में प्रख्यात ये क्या सामान्य हैं ? । १६० इस तरह राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—चारों पुत्र चार रत्नस्तंभ सदृश रघुकुल का उद्धार करने में समर्थ हुए, तो दशरथ के अपने मन की साध पूरी हुई। मर्यादा से धन अर्जित कर, दोषरहित मार्ग से विषयोपभोगों को

ञ्जिनियोंळ् नानाविधं नर्तिसे हिमकर भास्वद्यशो वल्लिगालं
वनमंभोराशि वेला वनमेने नेगळिदं भारतीकर्णपूरं ॥१६१॥

इदु परमजिनसमय कुमुदिनी शरच्चंद्र बालचंद्र मनींद्र चरण-
नखकिरण चंद्रिकाचकोर भारतीकर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचित-
मप्प रामचंद्रचरितपुराणदोळ् कुमारोदयवर्णनं तृतीयाश्वासं ।

॥ तृतीयाश्वासम् समाप्तम् ॥

---

अपनाकर, सुख पाते हुए उस (दशरथ) की जिह्वा में सरस्वती अनेक तरह से नृत्य करती रही और अनेक काल तक दशरथ शासन करता रहा। १६१ यह कवि अभिनव पंप, जो परमजिन समय और कमलों के लिए शरत्काल के चंद्र के समान माने जानेवाले बालचंद्रमुनींद्र के पदनखों के चंद्रप्रकाश से पवित्र एवं जो सरस्वती के कर्णाभरणों के समान है, के 'रामचंद्र-चरित पुराण' का कुमारोदयवर्णन—तृतीयाश्वास है।

॥ तृतीयाश्वास समाप्त ॥

## चतुर्थाश्वासं

श्रीसुदति तन्नुरस्सर- * सी सदनदोळिर्दु पात्रदान विनोद
व्यासंगमनोदविसे सौ- * ख्यासीनं पेंपुवेत्तनभिनवपंपं ॥ १ ॥

अन्नेगमित्तल्—
मिथिळा पुराधिनाथं * प्रथितयाशं जनकनामहीभुजन मनो-
रथ भूमि विदेहिगदें * पृथु कुचयुगदोडने कोर्वुवडेददो मध्यं ॥२॥
शशिकांत मुकुरदंतिरे * शशिमुखि कदंपुगळ् बेळर्तुवु हरिनी-
ल शलाकेयंते बासेगे * विशेषमेने पसीरसित्तु कपोळवसिरोळ् ॥३॥

---

आश्वास—४

लक्ष्मी अपने सरोवररूपी हृदय में निवास करके योग्य व्यक्तियों को दान देने का आनंद प्रदान कर रही थी कि कवि अभिनव पंप प्रख्यात हुआ। १ इधर—मिथिला के राजा जनक की पटरानी विदेही गर्भवती होने के कारण लक्षणों के साथ सुशोभित हुई। २ चंद्रकांतशिला के मुकुर (अंकुर) के समान उसके गाल सफ़ेद हो रहे थे और चंद्रमुखी के पेट का निचला भाग इंद्रनीलरत्न-शलाका के समान काला दिखाई पड़ा। ३

वळिरेखें मसुळें गर्भ * बळेवुदुमोंडवळेदु सतिय मध्यं चेल्वं
तळेदुदु नयनानंदम- * नेळवेरें परिपूर्णमादोंड पुट्टिपवोल् ।। ४ ।।

आ समयदोळ्—

भव भद्ध वैरदिं का- * दु विदेहिय गर्भमं निशाचरनिर्दं
विविधोपसर्गमं पडे- * यवे मुळिसं पडेव मुळिव दुश्चरितंगळ् ।।५।।

आ विदेहिय गर्भमनानिशाचररदेंकारणदिं कादिर्दनेंदोडे चंद्र-पुरमनाळ्वं चंद्रध्वजनातनरसि मनस्विनियेंब ळाकेगे पुट्टिद चित्तोत्-सवेयेंब बालिकेयुगानृपन पुरोहितन मगनप्पकपिळनेंब वालकनुं—

ओंडनाडियुमोंडनोदियु * मोंडवळेदुं पलवुकालदिंदनुबंधं
गिडदोंडलेरडसुवोंदेने * गेडेवक्किगळंतें कूडिनलियुत्तिर्दर् ।। ६ ।।

अंतवरोरोर्वरं मेच्चि—

पर्देपिं चुंविसदुम्मळं बयसिदागळ्मन्मथक्रीडे कू-
डदळल् कळ्दोंड गूडुवंजिके मनक्कुद्वेगमं माडे नो-
डदे तायतंदेयगल्केयं मदन रागोन्माददिं मुदुंगा-
णदे मुग्धाशयरा विदग्धपुरमं पोक्किर्दरायिर्वरुं ।। ७ ।।

अनतिंद्रिय सुखमुं स्प- * र्शन सुखमोंदळोडंगिदत्तेने नृपनं-
दनेयुं द्विजनंदननुं * मनोज सुखरस विलीन मानसरिर्दर् ।।८।।

---

गर्भ जैसे-जैसे बढ़ता गया, पेट की परतें अदृश होने लगीं और कटि आँखों को मनोहर दिखाई पड़ी। ४ उस समय, जन्मान्तरों की शत्रुता के कारण, मानो दुश्चरित स्वयं कुछ नहीं कर सकते, एक राक्षस बड़ी सावधानी से उसके (विदेही के) गर्भ की प्रतीक्षा कर रहा था। ५ राक्षस विदेही के गर्भ की प्रतीक्षा इसलिए कर रहा था कि चंद्रपुर के शासक चंद्रध्वज की पत्नी मनस्विनी के गर्भ से उत्पन्न बेटी चित्तोत्सवा, राजपुरोहित का पुत्र कपिल के साथ—एक साथ खेलते, सीखते, अन्योन्य (परस्पर) होकर दो शरीर एक प्राण-सा, पक्षीयुग्म की तरह ज़ीवन बिताते हुए। ६ परस्पर पसंद करके प्यार से चुंबन न ले सकने की चिन्ता, चाहने पर रतिक्रीडा न कर सकने का दुःख और चोरी-छिपे मिलने का भय आदि मन में उद्वेग जगा रहे थे कि माता-पिता से अलग होने की परवाह किये बिना, काम-लालसा से व्याकुल हो, कुछ न जाननेवाले वे दोनों (नादान) विदग्धपुर पहुँचकर वहाँ रहने लगे। ७ इंद्रियसुख मानो केवल परस्पर स्पर्श-सुख में ही निहित है, राजकुमारी और ब्राह्मणपुत्र कामसुख में विलीन हुए थे। ८ ऐसे में एक दिन उस नगर (विदग्धपुर) के राजा

अंतिर्पुदुमोंदुदिवसं प्रतापसिंहन मगं तत्पुराधिपति—
कोंडेविडिदंते मंडळिसे मेले किरीटमरीचि सुत्तलुं
कडितलेयाळ कडंगिबरे मार्गमोंडंबडे राजमार्गदोळ्
नडेये हयं विळंविनदे कुंडळमंडितनें विळासमं
पडेदनो पद्मराग मणिकुंडल मंडित गंडमंडलं ॥ ९ ॥

अंतु बरुत्तुं—
शरदद चंद्रनं नगेमोगं नगे चंद्रमरीचिमालेयं
तरळ कटाक्षमाले गेले वंदु गृहणांगणदोळ् लता तनू-
दरिनडेनोडे कंतु नडे पूडिद पूगणेगेत्तु नाडे का-
तरतेयनप्पुकेय्ये बगे नोडिदनाकेयना कुमारकं ॥ १० ॥

अंतातं कण्सोल्तुनोडि दूदवियनट्टुदुं-
वगेमदे तन्नमुन्निनोलवं नेलेयिदोडगूडि वंदुदं
बगेयदे पारियं पसुगेयं गुणहानियनप्रसिद्धियं
बगेदळिदाव विस्मयमो नारिगे नच्चिन केय्दकैतवं ॥ ११ ॥

अंताकेयना कुमारं बरिसि तनगरसिमाडि कपिळनं मरुळ्माडि कळेवुदुमातनदुवे निर्वेगकारणमागे केलवुकालदिनार्यगुप्तरेंवाचार्यर समक्षदोळ् बाह्यतपोरूपमं तळेदु—

---

प्रतापसिंह का पुत्र (कुण्डलमण्डित)—घोड़े पर सवार होकर राजमार्ग में आते समय उसके मुकुट की कांति छत्री की छाया के समान दिखाई पड़ी और मंदगति से चलने के कारण कुण्डलमण्डित द्वारा पहनी हुई पद्मराग-मणि उसके गले में प्रकाशमान हो शोभा दे रही थी। ९ इस तरह आते हुए—उसके विहसित मुख ने मानो शरतकाल के चंद्र का अपहास्य किया। उसकी आँखों की कांति मानो चंद्रमंडल की प्रभा पर विजय पा रही थी कि आंगन में खड़ी राजकुमारी (चित्तोत्सवा) को उसने कामपीड़ा से व्याकुल होकर देखा। १० आँखे थकने तक देखकर अपनी दूती को (चित्तोत्सवा के पास) भेजा तो—ब्राह्मणकुमार (कपिल) के प्रति स्थित अपने प्यार की चिंता किए बिना, अपने राज्य छोड़ आने की घटना का स्मरण किये बिना, कुल-गौरव, अपख्याति, कीर्ति आदि की परवाह किए बिना आई हुई दूती से उसने राजकुमार (कुंडलमंडित) से मिलने की इच्छा व्यक्त की। स्त्रियों की आकांक्षाओं की थाह कौन पा सकता है? ११ राजकुमार ने इस तरह उसे बुलाकर, अपनी रानी बनाकर, कपिल को पागल बनाकर भगाया तो वह (कपिल) उसी कारण से दुखी बनकर कुछ समय के बाद आर्यगुप्त नामक आचार्य के सम्मुख तपस्या

आ सुदति नेलेसे चित्त नि-* वासदोळा कपिळमुनि तपश्श्री तनुवं
बासणिसे तेढु पोन्नं * पूसिद कबोन्नपापेयंतेवोलिर्द ॥ १२ ॥
ओप्पिसि मनमं मानिनि * गोप्पिसि तनुवं तपक्के मुनि मनसिजनिं
सोप्पागिर्दो चंवडिय * कुप्पसमं पोल्तु पोरगे नेरिदनादं ॥ १३ ॥
मुनि नडेदा तपदोळ् जी-* वनमं तवे तीर्पु देवगति समनिसे मु-
न्निन पगेयं कुंडलनं * नेनेदवधियिनळविगळिद मुळिसं तळेदं ॥१४॥

आतं निजविरोधियप्प कुंडलमंडितं पेरतोंदु पेण्गूसुवेरसु विदेहिय गर्भदोळ बळेवुदं तिळिदु—

गर्भद पेण्गूसिगं * गर्भिणिगं बाधे पिंगे पेत्तागडे ग-
र्भार्भकननुय्वेनेंबी * दुर्भावनयिं विदेहियं कादिर्द ॥ १५ ॥
हरिदिक्कातंगे चारु चंद्रकळेयुं चंडांशुवुं पुट्टुव-
तिरे भूवल्लभ चित्तवल्लभेगे पुत्रीपुत्ररोंदागि श-
गरसं कैमिगे पुट्टि पूर्वभव वद्धक्रोधर्दि बालनं
सुरनुर्वि पिडिदुय्दनुय्वतेरर्दि स्वर्भानुबालार्कनं ॥ १६ ॥

अंतु नेगेदु गगनमार्गदोळ् पोगुत्तुं—

ओगेवेनो बीसि पासरेयोळळ्दुवेनो कडलोळ् करुळ्गळं
तेगेवेनो कुत्तिकत्तिगेयोळिक्कुवेनो विपिनाग्नियोळ्करु-

---

करने लगा। चित्तोत्सवा उसके मन में निवास करने (लगी) और तपस्या के तेज (कांति) से कपिलमुनि के शरीर को घेर लेने (ढकने) पर, वह लोहे पर सोने का लेप चढ़ी गुड़िया-सा रहने लगा। १२ स्त्री को मन, और तपस्या को देह सौंपकर, कामदेव से पराजित हो भीतर और वाहर भिन्न-भिन्न (विपरीत) स्थिति में, (वह) सीधे स्वभाव वाले (सज्जन) के समान दिखाई देता था। १३ उसके नये जीवन ने यद्यपि उसे देवगति तक पहुँचा दिया, तथापि पुरानी शत्रुता का स्मरण कर, इतना समय बीत जाने पर भी राजकुमार (कुंडलमंडित) पर कुपित बना रहा। १४ शत्रु कुंडलमंडित को और एक शिशुकन्या के साथ विदेही के गर्भ में पलने की सूचना पाकर—इसी बुरी भावना से कि बालक को इस तरह ले उड़ेगा कि गर्भस्थित शिशुकन्या और गर्भवती को किसी तरह की पीड़ा न हो, विदेही के गर्भ से जन्म लेनेवाले बच्चों की प्रतीक्षा कर रहा था। १५ पूर्वदिशा-रूपी स्त्री के गर्भ से जिस तरह सूर्य और चंद्र जन्म लेते हैं उसी तरह जनक की पत्नी के गर्भ से एक पुत्र-पुत्री जन्मे तो पूर्व-जन्म के क्रोध से वालक को कपिल उसी तरह ले भागा (उड़ा) जिस तरह वालसूर्य पर राहु झपटता है। १६ इस तरह आकाशमार्ग से कपिल

तुगिर्वेनों कूडे मेय्दोवलनल्लदोडेन्नळलारदेंदु दि-
ट्टिगळोळे नुंगुवंते नडेनोडिदना शिशुवं निशाचरं ।। १७ ।।

अंतु नोडलोडमर्भकन पूर्वभवदणुव्रत सामर्थ्यदोळं निजमहा-
व्रत संस्कारदोळं—

फणि गरुडांकद पच्चेय * मणियं कंडंते मणियें शिशुवदन निरी
क्षणदिंदाक्षणदोळ्दा * रुणभावं देवनुपशमक्केडेयादं ।। १८ ।।
ओडलोळगुडिद सरल पोर * मडुवुदयस्कांत सन्निदानदोळेंतं
तोडलि पोदुदु मुनिसिन * पोडर्पु नक्तंचरंगे शिशुसन्निधियोळ् ।।१९।।

अंतु पशम भावमुं पापभीरुत्वमुं तनगे तोट्टने पुट्टे तन्न कर्ण
कुंडलमं बालकन कर्णयुगळंगळोळमर्चि पर्णलघुविद्येयिनीडाडिपोपुदुं—

तनुरुचि कर्णकुंडलमरीचि वियत्तळमेल्लमा पळ-
च्चनें बेळर्पतु पर्णलघुविद्येयोळोय्यनें बंदु खेचरें-
द्रन मृदुतल्पदोळ् सुरकुमारकनंदुपपात तल्पदोळ्-
जनियिसिदंते कण्गे पडेदं शिशु निर्भर हर्ष भारमं ।। २० ।।

अंता शिशुवं दक्षिणश्रेणिय रथनुपुरचक्रवाळपुरमनाळविंदु
गतिवियच्चरेंद्रनंदिन सूळ्गेवंद पुष्पवति वेसर महादेवि फलवति-

---

बच्चे को ले जाते हुए—यह सोच रहा था कि बालक को पत्थर पर पटक दूँ या समुद्र में डुबो दूँ ? अंतड़ियाँ निकालकर फेंक दूँ ? खड्ग से टुकड़ा कर दूँ ? जंगल की दावाग्नि में आहुति दे दूँ ? चमड़ी उधेड़ दूँ ? यह सोचकर कि कुछ भी करने पर (उसका) दुःख शांत नहीं होगा, राक्षसरूप में रहनेवाले कपिल ने बच्चे को ऐसा देखा मानों आँखों से उसे निगल जाना चाहता हो । १७ पूर्वजन्म के अनुव्रत के बल और अपने महाव्रत-संस्कार से, फुफकारने वाला नाग गरुडमणि को देख शांत होता है, उसी प्रकार बच्चे के मुख को देखते ही, कपिल के मन में करुणा जाग उठी और उसका राक्षसी भाव मिटने लगा। १८ देह के अंदर टूटकर गिरा हुआ लोहे का छड़ (शलाका) लोहचुंबक के आकर्षण से जिस तरह आता है, उसी तरह बच्चे का मुँह देखने मात्र से कपिल की पुरानी शत्रुता अदृश्य हुई । १९ इस तरह उसमें पश्चाताप, पाप से डरने की प्रवृत्ति जाग्रत हुई तो अपने कर्णकुंडलों को बालक के कानों में पहनाकर अपने अर्जित पर्णलघुविद्या बालक को देकर चला गया । बालक की देहकांति और कर्णकुंडल के प्रकाश ने आकाश भर को जगमगा दिया । पर्णविद्या के कारण बच्चा एक खेचर राजा की मृदुशय्या पर जा गिरा । २० रथनूपुर चक्रवालपुर का शासक इंदुगति ने यह एलान कर दिया कि उसकी पत्नी

यादळॆनिसि कोट्टु कुंडल प्रभामंडल विळासमं तळॆदनप्पुदरिं प्रभामंडलनॆंदु पॆसरिट्टनन्नॆगमित्तल्—

ईगळॆ पुट्टिदॆन्न शिशुवं करुणं तनगिल्लदॆत्तिकॊं-
डागसदत्तलंतकन दूतनवोल् पिडिदुय्दनॊर्वनि-
न्नॆगळ गॆय्वॆनॆंदळॆ विदेहि नवोत्पलमालॆ कारूवं-
तागॆ कदुष्ण वारिगळनुण्मिदुवाकॆगॆ बाष्पवारिगळ् ॥ २१ ॥

बडवं चिंतामणियं- ॐ पडॆवंतॆंतानुमॊर्वनं तनयननां
पडॆदागळॆ मत्तॊर्व- ॐ पिडिदुय्दं दनुजनॆंदु शोकंगॆय्दळ् ॥ २२ ॥

रक्षाविधानमं तनु- ॐ रक्षकरं बगॆयदॆन्न तनयननुय्दं
राक्षसनॆंदळ्तळ् धव- ॐ लेक्षणॆ दळदळिसि सुरियॆ बाष्पजलंगळ् ॥ २३ ॥

कुलवृद्धॆयरुं धात्री- ॐ कुळमुं शुद्धांत कांतॆयकुळमळलि
दरॆ कंडु जनकनति वि- ॐ ढळ चित्तं शोकरसमनॊळकॊंडिर्द ॥ २४ ॥

आगळ मौहूर्तिकरी शुभमुहूर्तदॊळ् पुट्टिद बालकंगमोघमपायमागदीकॆयुमगण्य पुण्यवतियक्कुमॆंदु शोकमनदिर्पॆ विदेहि संतोषंबट्टु निज तनूजॆय मुख सरोजमं नोळ्पुदुं—

आ सतिगॆ पुट्टॆ हर्ष वि- ॐ कासं मधुबिंदुमालॆ नीलोत्पलदिं
सूसुववोल् नगॆगण्णि- ॐ सूसिदुवानंदबाष्प बिंदुवितानं ॥ २५ ॥

---

पुष्पवती ने उसे जना है। कुंडलों की प्रभा से युक्त उस बच्चे को प्रभामंडल के नाम से नामकरण कर सुख से रह रहा था कि इधर, अभी-अभी जन्मे अपने बेटे को तिल भर भी दया दिखाए बिना यमदूत के समान किसी ने चुरा लिया है, अब क्या करूँ ? (ऐसा) कहकर विदेही दुःख करके उसी तरह आँसू वहाने लगी जिस तरह नया उत्पल (नीलकमल) पुष्प गरम पानी उगलता है। २१ गरीव जिस तरह चिंतामणि को पाता है उसी तरह मैंने एक वालक को पाया तो एक राक्षस उसे चुरा ले गया, कहकर विदेही दुखी हुई। २२ राजमहल में स्थित अंगरक्षकों एवं पहरेदारों की परवाह किए विना उस राक्षस ने वच्चे का अपहरण किया, कहकर आँसू बहाने लगी। २३ अंतःपुर की वृद्धाओं को, परिचारिकाओं को अनेक कुलीन स्त्रियों को, इस विषय को लेकर, दुःखित होकर रोते हुए देखकर जनक भी स्वयं शोक कर रहा था। २४ तव बच्चों के जन्म के शुभमुहूर्त का हिसाब लगाकर ज्योतिषियों ने शोकसंतप्त विदेही को यह वताकर संतुष्ट किया कि इस मुहूर्त में जन्म लेनेवाले बच्चों को किसी तरह का ख़तरा नहीं है और बच्ची (भी) बड़ी ही पुण्यशालिनी है। तो विदेही वच्ची का मुखकमल देखकर—मुख में संतुष्टि के चिह्न

तदनंतरं—

आ राजभवनदॊळ्मणि- * तोरणमॊडरिसिदुवीक्षणकर्षणमं
भारतिकनागॆ मंद स- * मीरं कैनिरिदुवुत्सव ध्वजततिगळ् ॥२६॥

कॆदरिद पिष्टातकदिं * दॊडविद पटवास चूर्णकदिदळवडॆ क-
ट्टिद रत्नद मेल्कट्टिं * पदॆपं पुट्टिसिदुदिट्टळं नृपसदनं ॥२७॥

बद्दवणं बाजिसॆ दॆसॆ * बिद्दं कुणिदाडॆ गणिकॆयर् पूवलियॊळ्
मुद्दाडॆ तुंबिगळ मुगि- * लुद्द परिदत्तु हर्षरसमा पुरदॊळ् ॥२८॥

पडॆदुदु गायनीमधुर मंगल गेयमुपायनंगळं
कुडलॆडॆयाडुतिर्प गणिका मणिनूपुर किंकिणीरवं
कडिदुपहार पुष्परसमं मॊरॆदॆळ्वळिनी रवं मग-
ळ्वडॆयॆ विदेहि पौरजन कर्णरसायनदॊंदु तंदलं ॥ २९ ॥

अंतु जातकर्मोत्सवमं माडि दशमदिनदॊळ् सर्वलक्षण सस्य-संपत्तिगॆ सीतॆयप्पदरिं सीतॆयॆंदु पॆसरिट्टु कॊंडाडि नडपुत्तुमिरॆ मदनमोहन दीपकळिकॆयंतॆयुं, कामकल्पलतॆयंतॆयुं, निरंतरोपच-यमनप्पुकॆय्दु भरतशास्त्रादि सकल कलॆयॊळति परिणतिवडॆदु—

---

बढ़ने (निखरने) लगे; तो उसके (विदेही के) नेत्रों से उसी तरह आनंदाश्रु बहने लगे जैसे नीलकमल से शहद निकलता है। २५ तत्पश्चात, राजमहल में, आँखों को आकर्षण प्रदान करनेवाले रत्नमाला के तोरण बाँधे गये; और सुगंध वहन करनेवाली पवन के वहने से ध्वजाएँ लहराने लगी। २६ जमीन पर बिखरे चंदनचूर्ण और धूपचूर्ण-से, सर्वत्र दिखाई देनेवाले, रत्नों से घेरा हुआ राजभवन आनंद जगा रहा था। २७ संतोषसूचक बाजे-वाद्य सुनाई दे रहे थे, नर्तकियाँ मनमोहक नृत्य कर रही थीं, पुष्पोद्यान में भ्रमर मधु के लिए पुष्पों को चूम रहे थे। ऐसे में उस नगर का आनंद-रस बादलों तक फैल गया। २८ जनक की रानी ने कन्यारत्न को जन्म दिया तो पुरजनों के कानों में, गायन का माधुर्य, मंगलाशीर्वचन की ध्वनि, नृत्य करनेवाली गणिकाओं के पैर के नूपुर का किंकिणीनाद, भ्रमरों की गुनगुनाहट आदि ने आनंदित कर दिया। २९ इस तरह जातकर्मोत्सव सम्पन्न करके दसवें दिन में, सर्वलक्षण-युक्त सस्यों के लिए सीता होने के कारण कन्या का नाम सीता रखकर दुलार-कर उसे चला रहे थे कि कामदेव के दीपशिखा के समान काम-कल्पलता के सदृश सुशोभित हो, भरतशास्त्र आदि कलाओं में पारंगत होकर, चंद्रप्रभा के समान, कपूर के प्रकाश के सदृश, देखनेवालों की आँखों को

शशिलेखेयेनल् कर्पू- ※ र शलाकेयेनल् विळोचनोत्सवमं मा-
डि शिलीमुखकुंतलॆ मद- ※ न शिलीमुखदंतॆ भुवनमं सोलिसिदळ् ॥३०॥
मनसिजनाज्ञारूपमि- ※ देनेकर्विनबिल्लनोल्लदुर्चुव सन्मो-
हन शरमेने बाजिसिदुदु ※ जनकजेय बेडंगु मदनजय डिंडिममं ॥३१॥

लीलेयनप्पुकेय्दु नयनोत्सवमं दयॆगेय्व गाडियिं-
देळिसि काम कल्पलतेयं परिपूर्णकळाविळासदिं
देळिसि चारु चंद्रकलेयं नेलेवेर्चिसिदळ् मराळ ली-
लाळसयाने जानकि विदेहिगॆ मोहरस प्रवाहमं ॥३२॥

जनकंगॆ हर्षदोदवं ※ जनियिसि जानकिय रूपविभवं माडि-
त्तनुरूपं नृपसुतना- ※ वनो वरनी वनितेगॆंब मनदुम्मळमं ॥३३॥

जनकजॆ मीरॆ शैशवमनें तलॆदोरिदुदो नवीन यौ-
वन विभवं मुगुळ्नगेयनोंदेरडं निजपल्लवाधरं
ननॆय सरल्गळोंदेरडुमं कडेगण् कुडुवुर्वु कामदे-
वन कुडुविल्लनोंदेरडुमं पडेदोप्पमनप्पुकॆय्विनं ॥३४॥

अंतु जानकि जननीजनकर मनक्कॆ संतोषमनोदविसुतिर्पिन-
मोंदुदिवसं—

---

उत्सव प्रदान करती हुई, अपने रूप से उसने सबको वैसे ही पराजित किया जैसे कामदेव के बाण समस्त संसार को पराजित कर देते हैं। ३० जनकनंदिनी (सीता) का रूप, मानो कामचक्रेश्वर की आज्ञा से निर्मित-सी, इक्षुधनुष से भी तीव्रता से निकलनेवाले (कामदेव के) सम्मोहन-बाणों के सदृश मदन (कामदेव) का विजयडंका बजा रहा था। ३१ खेलती हुई, अपनी दृष्टि के उत्सव को रूप के गांभीर्य से, काम-कल्पलता को अपने कलाचातुर्य से पराजित कर, चंद्रप्रकाश को वर्द्धित करके, मयूरी की तरह चलनेवाली जानकी ने विदेही के वात्सल्य-रस-प्रवाह को बढ़ाया। ३२ जनक को अत्यधिक आनंद प्रदान करनेवाली सीता को देखकर वह (राजा) इस बात की चिंता करने लगा कि बेटी के लिए कौन अनुरूपी वर होगा? । ३३ सीता का शैशव बीतकर उसे यौवन प्राप्त हुआ तो उसके मुस्कराते अधर नये अंकुर के समान, तिरछी नज़र पुष्पबाणों के सदृश, भौंहे कामदेव के ईख-धनुष की तरह दिखाई पड़े। ३४ —इस तरह सीता माता-पिता के मन को आनंद प्रदान कर रही थी कि एक दिन, एक चारण ने, जनक के राजदरबार में प्रवेश कर, राजा के पैरों में गिरकर, भयभीत हो, वस्त्र के छोर को अपने मुँह के पास ले

चरनोर्व बंदु बेगं जनकन सभेयं पोक्कुमैयिक्किभीता-
तुर चितं चीन चेलांचलमनधरदत्तुय्दु चित्तैसिदोंदं-
हरिवंशोत्तंस लोकाद्भुतमनसमयोत्पातमं लोकलुंटा
करसंख्यातर् किरातर् नेरेदु निखिलभूचक्रमं सूरेगोंडर् ।। ३५ ।।
इरिदु तविसुवोडे पडे ना * डेरेयर कैयळवियल्तु कंडंतुटने-
न्नरिवंतुटनुळ्ळंतुट * नरिपुवेनवधरिपुदेंदु चरनिंतेंदं ।। ३६ ।।
धनदाचलक्के बडगण * देने विजयार्धचलक्के तेंकणदेने दु-
ष्ट निवासमर्ध परमें * ब नामदिं म्लेच्छदेशमिर्पुदपारं ।। ३७ ।।
अल्लि मयूरमालेयेंब शबर शिबिरनाळ्व तरंगतमनेंब शबर नायकं तन्नाळ्वनाड बेडवडेयेल्लमं कूडिकोंडु कपोतकांभोजकनादि देशंगळं किडिसुत्तुं बंदु—
नाडरसं तगुळ्दु तडेगालद मारिय मूरियंते क-
ण्गोडदे बाल वृद्ध वनिता वधेगय्दु कवर्तेगोंडु सु-
ट्टोडिसि जातियं किडिसि नाडनवं कडिदिक्कि मेच्चिदं
बेडरसं तरंगतमनानिरे बेडरसेंब गर्वदिं ।। ३८ ।।
अंदु बिन्नविसे—
चर वचनमनालिसि तुं- * बुरकोळ्ळिय तेरदिनंबरक्के सिडिल्दा-
हरिवंशकेतु कण्किसु * सेरेवरियें कृतांतनंते मुळिदिंतेंदं ।।३९।।

---

जाकर निवेदन किया "प्रभु, चोरों ओर किरातों ने मिलकर, अनपेक्षित समय में, इस राज्य में उत्पात मचाकर, बड़ा लूटपाट किया है। ३५ उनसे भिड़कर उन्हें खदेड़ देने में राज्य के अधिकारी असमर्थ हैं; क्षमा करें; मैंने जो कुछ भी देखा है, समझा है और जो सत्य है (जैसा है वैसा ही) आप से कह रहा हूँ। ३६ कुबेरपर्वत के उत्तर और विजयाचल के दक्षिण में म्लेच्छदेश, जो दुष्ट निवासस्थान के रूप में प्रसिद्ध है न? । ३७ —वहाँ मयूरमाले नामक शबरपुर पर शासन करनेवाला तरंगतम नामक भीलों का सरदार अपनी सेना (टोली) के साथ कपोत कांभोज, कणा (आदि) राज्यों को लूटता हुआ आया है। राज्य के अधिकारी ने उन्हें भगाने का प्रयत्न किया लेकिन प्रयल-काल के मृत्यु-समूह के समान, आबाल-वृद्ध, स्त्रियों को मारकर, उनके सर्वस्व का अपहरण करते हुए, गाँव-गलियों को जलाकर, बचे हुओं को (जो मरे नहीं उन्हें) भगाकर उस भील राजा ने अभिमान के साथ यह सिद्ध करना चाहा कि मानो वही यहाँ का राजा है"। ३८ —इसे सुनकर, जनक आग की चिनगारी की तरह उछल कर प्रलयकाल के यम की तरह क्रोध से, नस-नाड़ियाँ

ओंदे कुठारदिंदडवियं कडिवंतिरे पोडुगारने-
न्नोंदे भुजासियिं शबरकोटियनिक्कि पिशाच कोटिगा-
नंदमनुंटुमाळ्पेनुळिदानिदनेळिसिदंदु दुर्यशो-
दुंदुभि नादमावरिसदिकुमें कूडे जगंगळेल्लमं ।। ४० ।।

इरियदे बेडिदोंडीयदे- * बरिदे कुलीनतेगे बेसेंदु पार्थिव शब्द-
क्करेवट्टिनिसि धरित्रिगे * पोरेयेनिपं राज नामधारकनल्ते ।।४१।।

अंदु परिच्छेदिसि नुडिये—

निनगे सहायं दशरथ * जननाथं तत्सहार्यदि लुब्धक वा-
हिनियं मर्दिसु धुरदोळ् * निनगं तनगं जवंगमिदिरांपवरार् ।।४२।।

अंदु मंत्रिमंडलं बिन्नविसे जनकं दशरथनल्लिगे लेख वाहकरनट्टि समरसन्नद्धनागि बेगमोंदेरडु पयणमं नडेदनित्तळ्—

बारिसि लेखार्थमनव * धारिसि दशरथमहीभुजं पोयिसुवुदुं
भेरिय बंभारवमदु * भैरव रवदंते तीवे गगनोदरमं ।। ४३ ।।

आ वृत्तांतमं तिळिदु—

पुदिये विभूषणांशु नभमं तनुदीधिति बेरदोंदु जों-
न्नद सिरिकार कारिरुळ् मेय्सिरि तप्पदेनल् दिगंतमं

---

तन गई तो, इस तरह बोला— । ३९ "कुल्हाडी के एक ही प्रहार से जिस तरह जंगल काट दिया जाता है, उसी तरह इस लुटेरे किरात को खड्ग से काटकर भूत-पिशाचों को आहार प्रदान करूँगा। अगर इनके अनाहुतों को रोक न सका तो क्या मैं संसार में अपकीर्ति का पात्र नहीं बनूँगा ? । ४० शत्रुओं को न मारकर, माँगनेवालों को दान न देकर, व्यर्थ ही क्षत्रिय-कुल का नाम लेकर शासन करनेवाला राजा पृथ्वी के लिए भार बनता है । ४१ —इस तरह स्पष्ट कह देने पर, "दशरथ राजा आपका सहायक हैं। उसकी सहायता से किरात सेना को पराजित करने का निश्चय कीजिए तो आपका, दशरथ का और यमराज का सामना कौन कर सकेगा ?" । ४२ —इस तरह उसके मंत्रियों ने निवेदन किया तो जनक ने दशरथ के पास पत्रवाहकों को भेजकर, स्वयं भी सेना के साथ निकल पड़ा। जनक के सेवकों (चारणों) द्वारा लाये गये पत्र का आशय जानकर दशरथ ने डंका बजवाकर (इसकी सूचना) अपने लोगों (सेना) को दी। डंके की ध्वनि भैरव-गर्जन की तरह आकाश में फैलगई (गूँज उठी) । ४३ —इस समाचार को सुनकर, बलाच्युत रामलक्ष्मण आभरणों से, जिनकी कांति आकाश तक जगमगा रही थी, सुसज्जित हो, सिंह-शिशुओं की भाँति युद्ध-कौतुकी बनकर सभा में प्रवेश करके । ४४

पुदियॆ बलाच्युतर् तरुणकेसरिवोल् पुगुतंदरिर्वरुं
कदन मदोद्भतर् दशरथक्षितिनाथ सभांतरालमं ।। ४४ ।।

अंतुबंदु तंदॆयपादरविंदक्कॆरगि—

बलदॆडगॆलदासनदॊळ् ॐ बलाच्युतर् नॆलसि मेरुनगदुपनगमं
गॆलॆवंदर्पसरिसॆ नि- ॐ स्तुल मुक्ताभरण किरण निर्झर नीरं ।।४५।।

अनंतरं—

गॆलॆ निटिलमर्धचंद्रन ॐ विलासमं नॊसलॊळॆसॆयॆ कर सरसिज कु-
ट्मलममृतकळॆगॆ दंतां-ॐ गुलेखॆ मार्पॊळॆयॆ रामचंद्रं नुडिदं ।।४६।।
देवर् दिग्विजय व्यस-ॐ नावष्टंभदॊळॆ नडॆयदाटविकरॊळा
दीविगृहक्कॆ नडॆवुदि- ॐ दावुदॊ जसमिरूपॆगानॆ मॊगमिक्कुवुदे ।।४७।।

अदरिंदेवरी बॆसनॆमगॆ दयॆ गॆय्वुदिवरनास्वादित रण रसर्
किरियॆरंदु बगॆयवेडदॆंतॆनॆ—

किडि किरिदाडॊडं सुडदॆ काननमं तरुणार्कनादॊडं
किडिसनॆ तीव्रमप्प तममं हरि बालकनादॊडं पड-
ल्वडिसनॆ गंधसिंधुर घटावळियं किरुगूसॆल्कॊवे-
दॆडरिदरं जवंगॆ पॊसतिक्कनॆ विक्रमशालि लक्ष्मणं ।।४८।।

मातेनॊ किंकिरातं ॐ पूतंतॆ किरातसेनॆ पुण्बडॆ शर सं-
घातद सविदॊर्कु रघु-ॐ जातंगॆंटनॆय केशवंगिदिरुंटे ।।४९।।

---

—पिता के चरणकमलों को नमन कर, दशरथ के बायें-दाहिने आसनों पर मेरुपर्वत के शिखरों के सदृश सुशोभित हो, धारण किये हुये मोती के आभरणों की शोभा को चारों ओर बिखेरते हुए विराजमान हुए। ४५ —तत्पश्चात्, उनके ललाट अर्धचंद्र को पराजित कर रहे थे और दंतप्रकाश जुड़े हुए हाथों में प्रतिबिंबित हो रहे थे कि रामचंद्र जी निवेदन करने लगे। ४६ "पिताजी, यह आश्चर्य की बात है कि आप दिग्विजय की योजना न बनाकर, जंगली किरातों का सामना करने के लिए सिद्ध हो रहे हैं। हाथी कभी चींटी को पराजित करने की सोचता है? । ४७ अत: किरातों को मारने की आज्ञा हमें दीजिए, हमें छोटा मत समझिए, क्योंकि—चिनगारी छोटी होने पर क्या सारे जंगल को जला नहीं देती? क्या बालसूर्य अंधकार को मिटा नहीं देता? सिंह-शिशु भी हाथियों के समूह को तितर-बितर नहीं कर देता? हमें छोटा न समझें! शत्रुओं को यह लक्ष्मण यमलोक भेजे बिना थोड़ा ही रहेगा! । ४८ अधिक क्यों? जिस तरह अशोकवृक्ष फूल खिलाता है, वैसे ही अष्टम केशव (कहलानेवाला) लक्ष्मण के बाण के प्रहार से किरात-सेना घायल हो जायगी। ४९ बाण

अंबेरिंगांतरं तत्तरदरिदु भुजागर्वमं बिट्टु बाय्वि-
ट्टि बेयेंबन्नेगं बेंदगुळ्दु मेरेंदु बिल्बलमेंयं नाडनिन्नें-
दुं बेडपोंर्दिदंतागिरें नियमिसि बंदप्पें नानेंदु शौर्या-
लंबं रामं रणक्कळ्तिगनेंनें बेंसनं तंदेंयं बेडिकोंडं ॥ ५० ॥

अंतु बेंसनं बेडिकोंडु तंदेंयं बीळ्कोंडु—

अपरिमितमेंनिप चतुरं- ॐ ग पताकिनि तमगें कदनकेळिगें नेंरम-
ल्तुपकरणमेंनिप कोदं- ॐ डपाणिगळ् दंडपाणिर्णेगेंयेंनें तळर्दर् ॥५१॥
गेंल्लरिदिवरिर्वर् दो- ॐ र्बलमं त्रिभुवनदोंळिवगें नेंरमल्तु चतु-
र्बलमिनितुं नुडि नेंरवेंनें ॐ बलाच्युतर् निच्चवयणदिंदेय्तंदर् ॥५२॥

अंतेय्देंवर्पुदुमवरनुचित प्रतिपत्तियिं मन्निसि—

नेंलं बेंसलेंयादवोल् नेंरेंदलुब्धकव्यूहमं
गेंलल् नेंरदेंनीगळेंब बलगर्वमं ताल्दिदं
बलाच्युतर कूर्टदिं जनकनुग्र वन्यद्विपं
बलंबडेंदुदेंबिनं विकट दंतकूटंगळिं ॥ ५३ ॥

अनंतरमुदात्तराघवनमोघ शरासनादि विविधायुध सनायनागि रथमनेरि लक्ष्मणं कालगापिनोंळ् नेंरेंदुबरें जनक कनकरिर्वर् विजय गजमनेरि मुंगोलोंळ् नडेंयें नाडगडियनेंय्दि बर्प समयदोंळ्—

---

के प्रहार को सहनेवालों के अहंभाव को त्यागने के लिए विवश करके, मुँह खोलकर (अपनी ज़बान से) न मार ने का निवेदन करने तक मारकर, संसार के समस्त किरातों को नाश करके लौटूँगा। मुझे आज्ञा दीजिए।" राम ने इस तरह अपने पिता से आज्ञा माँगी। ५० —इस तरह निवेदन कर, पिता से विदा लेकर, राम-लक्ष्मण ऐसे चल पड़े जैसे अपरिमित चतुरंगिणी सेना का बल उनके सहायक नहीं हैं और कोदंड (धनुष) धारण किए वे (राम-लक्ष्मण) दंडपाणि (यमराज) के समान हैं। ५१ देखनेवाले आश्चर्यचकित होकर कह रहे थे कि इस तरह जनक के धनुर्धारियों को पराजित करना त्रैलोक भर में किसी के लिए भी असाध्य कार्य है। बलाच्युत (राम-लक्ष्मण) नित्यप्रमाण से इस तरह जनक के पास आये। ५२ —आये हुए राम-लक्ष्मण का उचित उपचारों से स्वागत करके, मानो ज़मीन से ही जन्मी असंख्यात किरात-सेना को पराजित करने के लिए, जंगली हाथी ने मानो क्रूर दाढ़ पा ली हो, उपयुक्त सहायता पाने की ख़ुशी से जनक फूल गया। ५३ —तत्पश्चात् उदात्तराघव, अमोघ धनुषबाणों एवं विविध आयुधों से सुसज्जित रथ में चढ़ा और लक्ष्मण रक्षक बनकर पैदल ही चल रहा था कि जनक अनुज कनक के साथ हाथी

बलबारक्कें बिगुर्त सुय्ये फणिराजं सुय्दसुय्लि धरा-
वलयं किल्तु नभक्कें पारिदपुदो पेळेंविनं भानुमं-
डलमं मंडलिसित्तु तद्‌बल पदप्रोद्‌धूत्त धूलीच्छटा-
वलि कल्पांत कृशानुधूम पटली शंका समुत्पादकं ।। ५४ ।।

अनंतरं नेंलं बेंसलेंयादंतें बर्पबेडवडें रसेंयिनोंगेंवसुर रपडेंयंतेंयुं, व्योमतळादिनिखि धूमखेतुगळंतेंयुं कडेंगालदोंळडेंवोत्ति सुत्तलुं नेंगेंवनलन पोंगेंयंतेंयुं, नडेंवनंजिन बिबदंतेंयुं, कर्बुलिय पिंडिनंतेंयुं, सिंगद जंगुळियंतेंयुं, जवनेंमें्वोरिविंडिनंतेंयुं, बरसिडिल वळगदंतेंयुं, कालायस कालपुरुष परिषज्जनदंतेंयुं, काळरक्कसन संतानदंतेंयुं, कुलनग महत्तरकुलदंतेंयुं, अर्धप्रहारवर्धनदंतेंयुं. यमघंटासंघातदंतेंयुं, मारियमूरियंतेंयुं, क्रूरग्रह परिग्रहदंतेंयुं, आगुर्वमद्‌भुतमुमादुर्दल्लि-बळियं—

करिगळेंरंकेंवेंट्टुगळ्वोल् नडेंतंदुवु वाजिराजिगळ्
तेंरेंगळ तेंकेंयंतें कवितंदुवु लुब्धक सैनिकाब्धियोंळ्
करिमकरंगळंतें रथकोटिगळासुरमागें बंदुवा
वरिसिदुवावगं गगनमं वृक काक सृगाल केतुगळ् ।। ५५ ।।

---

पर सवार होकर सामने (प्रथम पंक्ति में) रहकर, देश की सीमा के पास आ रहा था कि, ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सेना के भार से शेषनाग निश्वास छोड़ रहा है और उस श्वास का वेग पृथ्वी को मानो उखाड़कर आकाश की ओर उछाल रहा है। सेना के पैरों की धूल को देखकर ऐसा लग रहा था मानो सूर्यमंडल को प्रलय की अग्निज्वाला के धुवें ने घेर लिया हो। ५४ —तत्पश्चात् किरात-सेना, जिसे भूमाता ने ही जना हो और जो पाताल से निकलनेवाली राक्षस-सेना की भाँति या आकाश से उतरनेवाले धूमकेतु की तरह या प्रलयकाल की अग्नि से निकलते हुए धुवें की तरह, या चलता हुआ विषवन की भाँति, बाघों के समूह के सदृश, सिंहझुंड के समान, यम के भैंसों के समूह की तरह घनर्जगना के परिवार की भाँति लोहे की सलाख की तरह, क्रूर राक्षस संतान की तरह, कुलपर्वत शिखरों की तरह, यम के घंटानाद की भाँति, मृत्युसमूह की तरह, क्रूर ग्रह-संघात-सदृश भयानक एवं अद्‌भुत हुई तो, किरात-सेनसमुद्र में हाथी इस तरह चले आए जैसे पंख पाये हुए पर्वत; घोड़ों के समूह ऐसे फैल गए मानो लहरों की परम्परा हों, असंख्य रथ समुद्र के मछली-समूह के समान दिखाई पड़े तो आकाश में गिद्ध और कौवे एवं सियार उनपर झपटने की ताक में रहे। ५५ युद्धवाद्य की विशिष्ट ध्वनि ने दिक्पालकों को

रुर्जेय दनि दिक्पालर * नंजिसें तळ्तोंगेंव कोड काळेंय दनि दि-
क्कुंजरमं बेदरिसे नभ * मं जेवोंडेंयुलिपु सुत्ति मुत्तित्तागळ् ॥५६॥

पलदिवसक्कैंतानुं
कलहं दोरेंकोंडुदेंदु कोंलवर् बिल्लं
गोंलेंगोंत्ति तीवि तेंगेंदें
नलिवरिदरों जवन दूतरेंनिसि किरातर् ॥ ५७ ॥

करिघंटानादं हय * खुरपुट निनदं वरूथ चीत्कारं किं-
कर चाप टंकृतं भो- * गेंरेंविनमार्देंत्तिदत्तु वनचर सैन्यं ॥ ५८ ॥

मत्तित्त रामचंद्रन बलुमें चंद्रबलमार्गे—

आनें हयं तेरालें- * बीनाल्कुं सेनें बेडवडेंयोंडेंन पे
रानें हयं तेराळें- * बीनाल्कुंसेनेंयोंडनें तागिदुवागळ् ॥ ५९ ॥

पंदलें पारें पुट्टे बिसुनेंत्तर सुट्टरें बाणजालदिं
पंदरविक्किदंतरें नभं मददानेंय वंत शल्कवें-
ट्टुदेंसेंगुळ्कदंतेंसेंयें कूरसि कूरसियोंळ्पळंचें भो-
रेंदोंडनुण्में तोरगिडि तागिदुवंदेंरडुं चतुर्बलं ॥ ६० ॥

अंतु काडुवागळ्—

इनितु सिडिलगें काय्पिनितु नंजिन गाळिगें वेगविल्लेंनल्
कनकननाजियोंळ् पिडिदु कट्टिदनळ्कुरें सुत्तिमुत्तिदं

---

भयभीत करा दिया; रणभेरी की ध्वनि ने दिग्गजों को डरा दिया; धनुषों की टंकार आकाश भर में फैल गई। ५६ किरातों ने यह सोचकर कि युद्ध करने का मौका बहुत सालों के बाद मिला है, धारण किए हुए धनुषों से अपने शत्रुओं का प्राणहरण करके संतुष्ट हुए। ५७ हाथियों का घंटानाद, घोड़ों के खुरों की ध्वनि, रथचक्रों का चीत्कार और वीरों के धनुषों की टंकारों से किरात-सेना की वीरता बढ़ गई। ५८ इधर रामचंद्र का सेना-बल बढ़ गया तो, राम का बलरूपी चतुरंग (हाथी, घोड़ा, रथ, और पैदल) सेना किरात के चतुरंग वल से भिड़ गई। ५९ कटा सिर उड़कर गिरने पर रक्त का तूफ़ान उत्पन्न हुआ; बाण-समूह छप्पर के समान दिखाई पड़ा; मदमाते हाथियों के दाँतों की कांति आकाश में दिखाई देनेवाले उल्का के सदृश थी; खड्ग से खड्ग टकराते पर जिस तरह अग्नि की चिनगारी निकलती है, उसी तरह दोनों चतुरंग बल लड़ने लगे। ६० इस तरह लड़ते समय, कनक को इस फ़ुर्ती से बाँध दिया कि (देखनेवालों को) ऐसा प्रतीत हुआ कि घनगर्जना में इतनी गरमी (उष्णता) नहीं है, तूफ़ान में इतनी तीव्रता (वेग) नहीं है। भयभीत

जनकननेच्चनच्चुडियें लक्ष्मणनेरिद तरेनावनां-
पनों यमनंतरंग सुभटोत्तमनं महाजियोळ् ॥ ६१ ॥
तेरच्चं मुरियेच्चु बिल्लिनुडियेच्चश्वंगळं सूतनं
कूरंबि कडेयेच्चु तां गडेनगं मारींथ गंडं गडें
दारुत्तुं गेलें कादें लक्ष्मणनोळं कंडंतदं लोक सं-
हारंमाळ्प कृतांतनंतें रघुजं कोंडें धनुर्दडमं ॥ ६२ ॥
ओंदविद चापटंकृति भयंकरमागें वरूथभारदिं-
ददिरें नेलं मनः पवनवेगदिनेय्दि बलं महाबलं
कदन मदाविलं करेयें बल्सरियेंबिनमंबनंबु न-
ट्टुदें नेरनागें कूडे गतजीवितमाय्तु किरातसाधनं ॥ ६३ ॥
आगळ्—
गेल्दारें जनकसेनें स- ॥ डिल्दिगियें किरातसेनें दशरथरामं
बिल्देगेदिसें मार्पडेयोळ्- ॥ बल्दलेयर् शबरनायकर् पडलिट्टर् ॥६४॥
आ समयदोळ् लक्ष्मणं लयसमय समुत्पादन समग्रवीर ग्रहावेशमनुप्पुकेय्दु—
पारदें केदुव बलभं- ॥ पारदें नेखलमनोदें तोळ्वलदिं सं-
हारिसिदं मार्बलमं- ॥ वारिजनाभंगें संगरक्किकदिरूंटे ॥ ६५ ॥

---

जनक के रथ को बाणों से ऐसा मारा कि रथ टूट जाय। लक्ष्मण के रथ को खींच लिया। इस तरह की वीरता यमराज के अंतरंग मित्रों (वीरों) के अलावा और किसमें हो सकती है? । ६१ रथचक्र को चकनाचूर करनेवाले, धनुष को तोड़कर, घोड़ों एवं सारथियों को क्रूरवाणों से बेधकर इस अभिमान से कि मुझ से कौन पुरुष भिड़ सकता है, लक्ष्मण से लड़नेवाले किरात को देखकर रघुराम ने लोक-संहार करनेवाले यम-सा धनुष धारण किया। ६२ धारण किए हुए धनुष की टंकार भयानक हुई; रथ के भार से पृथ्वी काँपने लगी; साथ की सेना मनोवेग (अत्यंत तीव्रता) से आगे बढ़ने लगी और धनुष से छूटे हुए वाण वर्षा की भाँति निरंतर चलने लगे तो किरात सेना का बल निर्जीव-सा हुआ। ६३ तब, जनक-सेना में विजयोत्सव-संचार हुआ और किरात-सेना भयभीत हो भाग खड़ी हुई (पीछे हटी)। श्रीराम ने पुनः धनुष उठा लिया तो किरात-सेना के नायक डरके मारे (त्रस्त हो) गिड़गिड़ाने लगे। ६४ उस समय लक्ष्मण प्रलय-काल के यम-सा भयकर शौर्य-आवेश की प्रतिमूर्ति बन गया—धनुष-बाण धारण किए विना, (अपने पक्ष की) सेना की सहायता की अपेक्षा किए विना, केवल वाहुवल से किरात-सेना का संहार करने लगा।

अंतु रामलक्ष्मणर् कडंगि कादुवाळवर बलक्कें सुगिदु मेय्देगेव वेडवडेयं कूडिकोंडु—

अदिरदिर्दिर्चि तागिद तरंगतमं दिननायकंगिदि-
र्चिद तमदंतें मेय्देगेयें मार्वलदानेगें कूटपाकळं
कुदुरेगें कर्णदूषिकें रथक्कें सिडिल् भटमंडलक्कें कें-
डद मळेयेंबिनं करेदंविन पेर्मळेयं हलायुधं ॥ ६६ ॥
कादलिर्दिर्चि कैदुविडिलवगेदर्पुदु मोंग्गें मंजिन-
तादुदु नंजनंजलिसिदंतेंवोलादुदु वेगें पर्विदं-
तादुदु गाळिगोंड्डिद मुगिलगेणेयादुदु कूडेयोंक्किदं-
तादुदु रामवाण हतिथिदिशद विरोधिसाधन ॥ ६७ ॥
आगळ्—

बलवळियें तरंगतमं- * पलायनोद्युक्ततासेंवट्टं जंघा-
बलमं दशरथरामन- * शिलीमुखक्कंडरुवंतवं दशमुखने ॥६८॥
ओडलोंडरिसुवडं तोंडें- * सेडोंडरिसिदप्पुदेंदु भयरसदिंद-
ल्लाडें मनं कैदुवनी- * डाडिदनंजिसुगुमारुमं रामशरं ॥६९॥
तुळिलाळ्तनक्कवं नी- * रिळिवंत वळिदु सूसें कण्णीर्तेरिं
दिळिदं नेलक्कें जसमडि-* गिळिविगेगं लुब्धकं नेलं पळिविनेगं ॥७०॥

---

उसका सामना कौन कर सकता था ?। ६५ युद्धभूमि में राम-लक्ष्मण इस तरह लड़ रहे थे कि उनकी वीरता से त्रस्त हो, भागने के लिए तैयार किरात-सेना से मिलकर तरंगतम पुनः युद्ध के लिए तैयार हुआ, तो हलायुध (लक्ष्मण) ने उसपर बाणों की वर्षा करके, उसकी सेना, हाथी, घोड़ों को रोग-विशेष से, रथ को घन-गर्जना-सदृश वारों से, सैनिकों को अग्निवर्षा से प्रहारकर, इस तरह भगा दिया जैसे अपने सम्मुख आनेवाले अंधकार को सूर्य भगा देता है। ६६ लड़ने की इच्छा से धनुष-बाण लिये आगे आनेवाले शत्रुओं की हिम्मत रामबाणों के आघात से विषपान-सी, अग्नि-ज्वाला फैली-सी हवा के आघात से टकराई घटाओं की भाँति हुई। ६७ तब, राम-बाणों की गति से तरंगतम का सेनाबल जर्जरित हुआ और लड़ने से असमर्थ हो वह पलायन करने की सोचने लगा। ६८ उसने भागना चाहा, तो उसकी जांघों के स्नायु अकड़ गए और वह भयभीत हुआ। क्योंकि राम के बाण किसी को भी डराने में समर्थ थे। ६९ इस विचार से कि राम के आधीन में सामंत बनकर रहना पड़ेगा, आँसू बहाते हुए रथ से ऐसा उतरा मानो उसका सारा यश पाताल में धँस गया हो। ७० हँसते लालकमल-सदृश श्रीराम की वीरता के सम्मुख

सुगिदिरॆ चंद्रमंडलदमुदॆ तमं कॊडॆदिर्दुदॆविनं
मुगियॆ करांबुजं कुवलयं नगुवंतिरॆ रामचंद्रने-
ळ्गॆगॆ दॆसॆगॆट्टु कॆट्टनु तरंगतमं शरणॆंदु बीळ्वुदुं
गगनमनागळावरिसिदत्तपहार घनानक स्वनं ॥ ७१ ॥

अंबरमं विजयपता- * कांबरवॊडनॊडनॆ सकल दिग्वनिताव-
क्त्रांबुजमनभयघोषं- * चुबिसिदुवु करॆदुदमर कुसुमासारं ॥७२॥

अंजदिरंजदिरॆनॆ मुगि- * दंजलिनुटमं तरंगतमनिदिरॊळ्निं
दंजनगिरियवॊलिरॆ कॊ- * ट्टं जयजायासहायनभयमनागळ् ॥७३॥

मुत्तिन पॊन्न पॆर्दुडुगॆयं वसनंगळनित्तरण्यदॊळ्
नित्तरिपंतु नाडगडियं मरॆदु पुगदंतवंगॆ भू-
पोत्तमनाज्ञॆयॆंब मणिमंडनमं नडुनॆत्तिगित्तु दि-
ग्भत्तिगॆ कीर्तिचंदन विलेपमनित्तनिदेनुदात्तनो ॥ ७४ ॥

प्रबलनबलनवॊलंता * शबरं बीळ्कॊंडु वेगमॆंदुदनॆगॊं-
डुबर्दुकि पोदनॆनॆ रा- * मबाणमं कदनभूमियॊळ् मीरुवरार् ॥७५॥

आगळनेकमंगळानक रवंगळॊडनॆ—
नगुवंतॆ पॆरर बिल्व- * ल्मॆगळं तण्वॆळगनुगुळॆ पूजिय नॆवदिं
जगदटिप धनुर्गुणमं- * त्रिगुणिसिदं तोरमुत्तिनेकावळियिं ॥७६॥

---

विवश हो, राम के चरणों पर हाथ जोड़कर 'शरणागत' कहकर वैसे ही झुक गया जैसे चंद्रमडल के सम्मुख अंधकार भयभीत होकर झुकता है। इसे देखकर बादलों से भेरीस्वर आकाश में सुनाई पड़ा। ७१ विजयध्वज के साथ-साथ समस्त दिग्वधुओं के मुखांबुजों ने आकाश को चूम लिया तो देवताओं ने फूल बरसाये। ७२ हाथ जोड़कर खड़े तरंगतम को 'मत डरो' का अभयदान देते हुए राम उसके सामने अंजनगिरि के समान खड़े हुए। ७३ उसे मोती और सोने के उत्कृष्ट उपहार (भेंट) देकर, 'भूलकर भी इस राज्य की सीमा को पारकर आगे न आने और वन में ही रहने' की राजाज्ञा देकर अपने कीर्तिचंदन के लेप को दिगंतों को प्रदान करनेवाले राम की उदारता का क्या कहना ? (राम कितने उदात्त है ?)। ७४ प्रवल शबर दुर्बल-सा, राम से विदा लेकर, उनकी आज्ञा को शिरोधार्य मानकर, कहीं (न कही) जीने के लिए चल पड़ा। युद्ध में राम-बाणों के प्रहार से बढ़कर किसका (प्रहार) होगा ?। ७५ —तब अनेक मंगल-ध्वनियों के साथ, श्रीराम ने अपने मोती की एकावली से चंद्रप्रकाश-तुल्य कांति को फैलाते हुए अपनी धनुर्विधा की निपुणता का प्रदर्शन ऐसा किया, मानो वह दूसरों की धनुर्विद्या को देखकर हँसना

अंतुपूजिसि—
मारणमंत्र नादमेँनिसित्तु विरोधिगे शांतिकक्रिया
कारण मंत्रनादमेँनिसित्तु धरित्रिगे मृत्युवंचनो-
च्चारण मंत्रनादमेँनिसित्तेँमगच्चरि निन्न चाप टं-
कार निनादमोँदे पलवुं तेरनं तळेदंदमावुदो ।। ७७ ।।
अेनं प्रत्युपकारम-
नानोँडरिसुवेँ कुमार कन्नंयनित्तेँ
मेनकेँयि मिगिलेँनिसिद-
जानकियं मनन वश्य मणिदीपिकेँयं ।। ७८ ।।
अनुबंधमन्वया गत * मेँनिसिदुददनधिकमागे माळ्पवुनयदिं-
दननुगुण सस्य संपा- * दन सीतेँयेँनिप्प सीतेँयं निनगित्तेँ ।।७९।।
अेँदु नुडिदु रामनुमं सौमित्रियुमं विचित्र वस्त्रभूषणादि-
गळिंदर्चिसि जनकं कतिपय प्रयाणंगळि कळिपुवुदुं रामलक्ष्मणर-
योध्येँयं पोक्कु सुखदिनिर्पुदुमोँदुदिवसं—
जनकं तनुजेँयनित्तं- * मनुवंश ललामनप्प रामंगेँबी
जनवोर्तेगेळ्दु नारद- * मुनिगादुदु नोळ्प कौतुकं जानकियं ।।८०।।
पेँडिर लीलेँयं यतिगे नोळ्पुदु पाळियेँ मुंजि कच्चटं
गुंडिगे बोळमंडे मणिदंडमि वीक्षण सौख्य हेतुवे

---

चाहता हो । ७६ —इस तरह, अपने मारणमंत्र-स्वरूपी शत्रु को पराजित कर, अपने बाणों की टंकार से पृथ्वी के मृत्यु को आश्चर्यचकित करके भगानेवाले राम की धनुष-कुशलता अनेक प्रकार से सुशोभित होती है तो कोई आश्चर्य की बात नही है । ७७ ऐसे राम के प्रति प्रत्युपकार करना धर्म मानकर जनक ने निश्चय किया कि अपनी बेटी जानकी, जो मेनका के समान (सुंदर) है, को विवाह में देना चाहिए । ७८ "हे राम, तुम्हारे और हमारे बीच का कुल-संबंध पुराना है; उसे और मजबूत बनाने के लिए समस्त सस्य-सम्पत्ति के लिए सीता कहलानेवाली जानकी को मैं तुम्हें सौंपता हूँ ।" ७९ —जनक ने ऐसा कहकर राम-लक्ष्मण को विविध वस्त्राभरणों से सजाकर, कुछ दिनों के पश्चात् उन्हें वापस भेज दिया । वे अयोध्या लौटकर सुख से जीवन बिता रहे थे कि एक दिन, नारद ने सुना कि जनक ने अपनी बेटी जानकी का विवाह मनुवंशज राम के साथ सम्पन्न कर दिया है । उसके मन में सीता को देखने का कुतूहल जाग उठा । ८० नारद जैसे यति का सीता को देखना क्या उचित था ? जनेऊ, कौपीन, कमंडल, मुंडा सिर, दंड आदि दिखाने योग्य

कंडोडॆ बालॆयर् तमगॆ पेसदॆ माण्वरॆ नारदं मरु-
ळ्गोंडवोलागसक्कॆ नॆगॆदं वृथॆयल्तॆ सराग संयमं ॥ ८१ ॥

अंतु नारदं गगनवीथियिं मिथिलॆगॆ वंदु कन्नॆवाडद वागिल्वाडमं पुगुवागळ्—

बिरिमुगुळि तुरुगिद ता- ॐ वरॆगोळदोळगाडुवंचॆवॆण्णनदं च-
प्परिसिदळों सीतॆ कन्या- ॐ परीतॆ वैडूर्य रत्नमयवेदिकॆयोळ् ॥८२॥

आगळदृष्टपूर्वमं नारदन विकृताकारमं कंडु तरुणि हरिणियंतॆ बॆचि बिरुतोडुवुदं—

तत्तरुणिय बळिवळियं ॐ पत्ति हिताहित विवेक विकलं पळियं
पॆत्तामुनिपं भ्रमक ॐ दत्तॊळसुव पच्चॆगर्वुनवकॊणॆयादं ॥ ८३ ॥
नारदनें तळॆदनों क- ॐ न्यारत्नमनॆळसि परिव परिणनियिं नि-
स्सारमनं नील शला- ॐका रत्नमनॆळसि परिव तृण परिणतियं ॥८४॥
धात्रि परिवतु तन्नं ॐ धात्रिजनमडसि पिडिदु परिभविसुवुदं
मित्तं शलभक्कॊनॆ मुनि- ॐ नेत्रेंद्रिय लोभदिंदमंदघवट्टं ॥ ८५ ॥

आगळा कळकळमं केळ्दु—

कडितलॆयं तूगुत्तुं- ॐ कडुगलिगळ्मुट्टॆ वर्पुदुं भयरसदिं
नडुगुत्तुं नारदमुनि- ॐ कुडुमिंचिन गोंचलंत गगनक्कॊगॆदं ॥ ८६ ॥

---

है ? इन सबको देखकर स्त्रियाँ नहीं डरेंगी ? नारद पागलों-सा संयम खोकर, अकारण आकाश की ओर उड़ा। ८१ —इस तरह आकाशमार्ग से मिथिला पहुँचकर, अंतःपुर के द्वार में प्रवेश कर रहा था कि, उसने खिले पुष्पों से भरे कमल के तालाब में तैरते हुए मादा हंस को डाँटते हुए, रत्नजटित मंचपर बैठी हुई सीता को देखा। ८३ —तब, अब तक कभी न देखे हुए, नारद के विचित्र रूप को देखकर वह (सीता) भयभीत हिरण-सी दौड़ने लगी तो, भले-बुरे की परवाह किए बिना अविवेकी नारद ऐसा पीछा करता रहा जैसे चुंबक-शक्ति से आकर्षित लोहा हो। ८३ कन्यारत्न को चाहकर भागता हुआ नारद ऐसा दिखाई पड़ा जैसे इंद्रनील-रत्न की कांति की ओर भागने की इच्छा रखनेवाली घास हो। ८४ —इस तरह पीछा करते हुए नारद को, सीता की सेविकाओं ने अनुसरण किया और ऐसा धमकाया मानो सारा संसार ही उसकी निंदा कर रहा हो। आँखों की आशा (इच्छा) के कारण वह पाप की ओर प्रवृत्त हुआ। ८५ इस शोरगुल को सुनकर, खड्गधारी सैनिक दौड़ आये तो नारद काँपते हुए बिजली के गुच्छे के समान तुरत आकाश की ओर उड़ा। ८६

अंतु पोळेदु पारि—

पिंदं वेंदगुळ्दप्परेंदु पेरगं नोडुत्तुमोडुत्तुमे-
यांदं गाळिगेरक्के मूडिदवोलाकाशंबरं नीळ्दुदं
कुंदेंदु प्रभेयं मनंगोळिपुदं विद्याधरी लोचना
नंदस्यंदि तटी विलास वनमं कैलासमं नारदं ॥ ८७ ॥

अंता नगमनेय्दि सानुनंदन लतामंदिरदोळगणेंदु कांत शिलातलदोळ् विश्रमिसि मनोविषादमुमं गगनाध्वखेदमुमं तळेदु तन्नोळितेंदं—

खेदमनेनगिनितं सं- ❋ पादिसिदा कन्नेगळविगळिदळलं सं-
पादिसुवेनेंदु परिपी ❋ डा दुश्चरितक्के नारदं बगेदंदं ॥८८॥

अंतु बगेदंदु—

नूल पवण्पवण्गेबरे निम्न धनोन्नतमं प्रदेशमं
पोलिसि नारदं विषम चित्रविचित्र कला विशारदं
वालेय मुद्दुगेय्तमुमनाकेय सुंदर रूपमं महा
लीलेयुमं दुकूल पटदोळ बरेदं प्रतिबिंबमेंबिनं ॥ ८९ ॥

अंतु परिविद्ध परिणतियं मेरेदापटमं विद्याधरराजधानियप्प रथनूपुरचक्रवाळपुरद पोरवोळल विनोद वनदोळगण मणिभवन-दोळगे नेरि पोपुदुमित्तळ्—

केलबर् खेचर राजकर् वळसेयुं केळीवन स्थानदोळ्
चलन न्यास विलासमं मेरेदु देहच्छेयेयुं रत्नकुं-

—इस तरह उड़कर, पीछा करनेवाली सेनाके भय से बार-बार मुड़कर देखते हुए इस वेग से उड़ा मानो हवा के पंख निकले हो, या चाँदनी की कांति सुशोभित हुई हो, इस तरह नारद विद्याधरों को आनंद प्रदान करनेवाले कैलास में पहुँचा। ८७ —कैलास पहुँचकर वहाँ उद्यान के लतामंडप के चंद्रकांत-शिलातल पर विश्राम करके मन के विषाद और आकाश-प्रयाण की थकावट को अनुभव कर मन ही मन सोचा, मुझे इस तरह का दुःख देनेवाली उस कन्या को मैं कष्ट दूँगा—इस तरह पर-पीड़ा-रूपी बुरे कार्य का संकल्प किया। ८८ —ऐसा निर्णय करके, अपने चित्रकला-कौशल से उसने सीता के निम्न, घन-उन्नत अंगों को स्पष्ट रूप से कपड़े पर ऐसा सुंदर चित्र बनाया मानो उसका (सीता का) प्रतिबिंब हो। ८९ अन्यों को पीड़ा देने के विचार से, उस चित्र को विद्याधर राजधानी रथनूपुर चक्रवालपुर के बाह्य प्रदेश के वन में सुशोभित रत्नभवन में लटकाकर

डल भूषा रूचियुं पळंचे देसेयं सौंदर्यदिं मन्मथं
गलगिक्कल् नडेवंते मदंगतियिं बंदं प्रभामंडलं ।। ९० ।।
अंतु बरुत्तुमानिकेतनदोळिर्द चित्रपटमं नोडि—
समुदायशोभे वर्ण- ※ क्रमदिं प्रत्येकशोभे चेलिवं नयन-
क्कमर्द मुंदिडे खेचर ※ नेमेयिक्कदे बयसि नोडि बरेपेद पेण्णं ।।९१।।
अनुरागं तनगागे कंडनितरिंदाविद्धमं तन्न मु-
न्निन जन्मांतरदळ्करं पोसयिपंतालोकिसुत्तिर्पुदुं
ननेयंबिदिसे निर्दयं मनसिजं कर्णात विश्रांत लो-
चनयुग्मं नसुमुच्चे मुच्चेगोळणागिर्द प्रभामंडलं ।। ९२ ।।
बरेदुरगलेखे मूर्छा- ※ परिणितियं मंत्रशक्तियिं पुट्टिपवोल्
बरेपद कन्ने भवांतर ※ परिचयदिं मोहमूर्छेयं पुट्टिसिदळ् ।। ९३ ।।
अदनातन तंदेयप्पिंदुगति केळ्दु संभ्रमदिं वंदु शीतल क्रियेगळनोडर्चे—
शिशिरोपचारदिं खच- ※ र शिरोमणि नयनकुवलयं विर्चे मनो-
ज शिलीमुख कीलित हृ-※ त्कुशेशयं तडेदु मूर्छेयिंदेळ्चिर्त्तं ।। ९४ ।।
तदनंतर माविंयच्चराधिराजनीपटमनिल्लिगार्तदरेंदुम्मळिसुत्तुमिरे नारदनागळल्लिगे बंदुचितासनदोळिर्दु खचरपतिगिंतेंदं—

---

चला गया। इधर, कुछ खेचर राजाओं से घिरा हुआ, खेल-विनोद में लीन, अपने सौंदर्य और धारण किए हुए आभरणों की शोभा से कामदेव को भी (सौंदर्य में) नीचा दिखानेवाला प्रभामंडल मंदगति से वहाँ चला आया। ९० आकर उस भवन में लटके हुए चित्र को देखकर, उस चित्र के रंगों के मिलाप से अंग-सौंदर्य की शोभा और रेखा-विवरण से प्रत्येक (महीन) शोभा स्पष्टतः दिखाई देने के कारण उसे महसूस हुआ मानो उसके सम्मुख अमृत रखा गया हो। उसे अपलक दृष्टि से देखकर चित्र में स्थित कन्या को पाने की इच्छा हुई। ९१ प्यार जगा तो उससे होनेवाली पीड़ा और अपने पूर्वजन्म के प्यार के विषय में सोचता हुआ प्रभामंडल निर्मम कामदेव के सताने के कारण आँखें मूंदकर मूर्छित-सा दिखाई पड़ा। ९२ चित्रित सर्प जिस तरह मंत्रशक्ति से सजीव (सर्प) होकर देखनेवालों को मूर्छित कर देता है उसी तरह चित्र की कन्या ने जन्मांतर के संबंध से उसे (प्रभामंडल को) मोह-मूर्छित कर दिया। ९३ —इस विषय को उसके पिता इंदुगति ने सुना तो तुरंत वहाँ आया और शैत्योपचार करने लगा—इससे प्रभामंडल की कमल-सदृश आँखे खुलीं और मन्मथ के वाण से घायल वह मूर्छा से उठ बैठा। ९४ तत्पश्चात्

जनकं मिथिलाधिपना- * तन वनितॆ विदेहियॆंबळाकॆगॆ वियदं-
गनॆगॆ तुहिनांशु कळॆयॆनॆ * जनियिसिदळ् सीतॆयॆंब कन्यारत्नं ॥९५॥
सुरविद्याधर कन्यका जनदॊळा स्त्रीरत्नमं पोल्वरॊ-
र्वरुमिल्ली नृपरत्नवाकॆगनुरूपं रत्न मेळापकं
दॊरॆवॆत्तिर्कुमिदं निवेदिसुवॆनॆंदा कन्यका विद्धमं
वरॆदानिल्लिगॆ तंदॆनक्कॆ निमगं भद्रं शुभं मंगळं ॥ ९६ ॥
ऎंदु नारदं परसि पोपुदुमित्तल्—
ऎनुमनारॊळं नुडियदुम्मळदिं विरहाकुलं मनो-
ग्लानियनॊंदि पॆण्णबरॆपं बरॆदंतिरॆ चित्तभित्तियॊळ्
जानिसि चित्तमं पुदियॆ मोहतमं बॆमरुण्मि पॊण्मॆ ल-
ज्जानमिताननं दळॆदना खचराग्रणि मौनमुद्रॆयं ॥ ९७ ॥
अंतु दिग्मूढनाद मगन यॊगमर्निदुगति नोडि—
मानव कन्यॆयं बयसि नंदन निन्न मनक्कॆ चिंतॆयं
म्लानतॆयं मुखक्कॆ तरवेळ्पुदॆ कॊळ्कॊडॆगर्तिवट्टॆनॆं-
दानॆरॆदट्टॆ निन्नदॊरॆयं वरनं पडॆदिर्मॆ केळ्वॆनॆ
जानकियं विवाहविधियिं जनकं निनगीयदिर्पने ॥ ९८ ॥

इंदुगति इस बात का पता लगाने लगा कि इस चित्र को लाकर किसने लटकाया। इतने में नारद वहाँ आकर उससे (इंदुगति से) पूजित हो बोला—'मिथिला के राजा जनक की पत्नी विदेही से, आकाश के लिए चाँदनी सदृश, सीता नामक पुत्री जन्मी। यह वही है। ९५ (सौंदर्य में) सुरों, विद्याधरों के समूह में, इस कन्या की बराबरी कोई नहीं कर सकती। इस मनुष्य-कन्या को प्रभामंडल के लिए योग्य समझकर मैंने उसका चित्र बनाकर यहाँ लटकाया है। इससे आपको शुभ और मंगल हो'। ९६ —ऐसा आशीष दे चला गया। यह सुनकर प्रभामंडल ने, किसी से कुछ बोले बिना, दुःख से मन ही मन तड़पता हुआ, कन्या के चित्र को अपने हृदय में चित्रित किया गया-सा, स्मरण करता हुआ, मोह बढ़कर पसीने से भीगे चेहरे को झुकाकर मौन (मुद्रा) धारण किया। ९७ इस तरह भ्रमित पुत्र का मुख देखकर इंदुगति ने कहा—बेटे, मनुष्य-कन्या के लिए तुम इतनी चिंता कर रहे हो ? अगर जनक के पास सूचना भेजें कि तुम्हारी बेटी से मैं अपने पुत्र का विवाह करने की इच्छा रखता हूँ तो क्या वह इसे (प्रस्ताव को) अपना अहोभाग्य समझकर (तुरंत) स्वीकार नहीं करेगा ? ९८ इस तरह बेटे को सान्त्वना देकर, उसके मन के दुःख को दूर करके अपने योग्य कर्तव्य के बारे में सोचने लगा। एक विद्याधर

अँदु निजनंदनन मनोविषादमं कळेदु नमगिल्लिगे तक्कुदावुदेने वियच्चर वीरनोर्वनिंतेंदं—

इदु मंत्रालोचंबर * मुदात्तमणमल्तु मिथिळेयं जनकनुमं
वेदरिसि जानकियं त- * पुंदु माळ्पुदु देव सुत विवाहोत्सवमं ।।९९।।

अँने वियच्चरेंद्रनिंतेंदं—

ईये तरवेळ्पुदवलेय * नीयदे तंदंदु तनगदत्तादानं
स्तेयमदरिंद मदन * श्रेयमनाचरिसदल्ते खेचरवंशं ।।१००।।
समनेनिपनोडने कोळ्कोडे * समनिसे समदत्ति भूचरर् खेचररोळ्
समनल्लरसुतमोहदि * नेमगसदश्रेयमादोडं करणीयं ।।१०१।।

अँबुदुमिदुगति वियच्चरेंद्रगे कुलमहत्तरं चंद्रवर्धननिंतेंदं—

अँरेददट्टिदोडीयर् भू- * चररेंतुं नीचरदरिनिल्लिगुपायां
तरदिं तंदेरेये भया- * तुरं निजात्मजेयनीवोडीवं जनकं ।।१०२।।

अँबुदुमाबेसनं चपलवेगनेंब विद्याधरं बेडिकोंडु—

गगनेचरं तेजश्शिखि * पगेवर भासुर यशो वितानमनुरिपल्
नेगेदुदेने चपलवेगं * नेगेदं गगनक्के विजित चपलावेगं ।।१०३।।

---

वीर ने कहा—यह इतना गहरा विषय नहीं है कि मंत्रियों से परामर्श लिया जाय। मिथिला के राजा जनक को धमका कर जानकी को लाकर अपने बेटे से विवाह करा देना ही उचित है। ९९ इसे सुनकर इंद्रगति बोला—पाणिग्रहण करा दे तो वधु को ले आना न्यायसंगत है। अन्यथा वह ऐसा दान होगा जो हाथ उठाकर (स्वेच्छा से) नहीं दिया जाता; और जबरन लाना तो चोरी मानी जायगी। हमारा खेचर-वंश ऐसा अश्रेयस्कर (अयोग्य) कार्य कभी नहीं कर सकता। १०० अपने स्तर के लोगों से लेन-देन (आदान-प्रदान) स्वाभाविक है। यद्यपि खेचर और मनुष्य समान नहीं, तथापि पुत्र-मोह के कारण ऐसा करना अनिवार्य है। १०१ तब कुलपुरोहित चंद्रवर्धन ने इंद्रगति से कहा—दूतों को भेजकर कन्यादान की माँग करने पर ये नीच मानव कभी नहीं देंगे। अतः उपाय से जनक को यहाँ ले आकर माँगें तो भय से, अपनी बेटी दे देगा। १०२ इस बात को सुनकर, चपलवेग नामक विद्याधर विशिष्ट वेग से आकाश की ओर इस तरह उड़ा मानो आकाश में संचार करनेवाले सूर्य का अग्निस्वरूप तेजस, शत्रुता की कीर्ति को जगाने के लिए लपका हो। १०३ देखनेवालों को उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर चलनेवाले उल्कापात-सा भ्रमित कराता हुआ निर्भय खेचर मिथिला में उतरा। १०४

भोंकने बडगण देसेयिं
तेंकणदेसेगागि नडेदुदुळ्कमिदेंबा
शंकेयनोडरिसि मिथिलेग
शंकितना खचरनिळिदनंबर तळदिं ॥१०४॥

अंतवनिगवतरिसि पुरश्रीय मुखश्रीयननुकरिसुव कमलवन समीपदोळ् विश्रमिसि जनक हयप्रियनप्पुदं तिळिदु—

नृपनीतं तुरगप्रियं विषमवाहारोहणात्यंत लो-
लुपनोल्देरदे माणनेरिदोडे साल्गुं कोंडु पोपेंमदी-
यथुरक्केन्नय पूण्के तीर्गुतिदरिं पोगेंदु निश्चयिसि रू-
प परावर्तन विद्येयिं तुरगरूपादं चरं खेचरं ॥१०५॥

अंतु विषम हय वेषमं तळेदु—

ऒय्ददेडेयेल्लमं परि- * देय्दि पुरोपवनमेल्लमं तुळिदु पलर्
वाय्देरेदुपुय्यलिडे कडु * केय्दुक्कंवगुदुरे पोलिनलिसिताागळ् ॥१०६॥

अदु तिगुरियंददिं तिरि-
दुदु मुंदं नेगेदु पिंदनीडाडि बिसि-
ल्गुदुरेयवोल् विरुवरिवरि-
दुदु केळदं कृतांतनितिदेंने कृतकाश्वं ॥१०७॥

कत्तरिसि किविगळं नसु-
गुत्तुत्तुं मेय्य खंडमं घुरुघुरेनु

उसने सोचा कि इस तरह उतर कर, वहाँ के सुंदर नगरोद्यान के पास विश्राम करके यह जानकर कि जनक को घोड़े प्रिय हैं, यह राजा घुड़सवारी के प्रति मोह रखनेवाला है, उस मोह के कारण घुड़सवारी की इच्छा किये बिना नहीं रहेगा, एक बार घोड़े पर सवार हो जाय तो बस, मैं उसे अपने देश ले उड़ूँगा, इससे मेरा कार्य बन जायगा। ऐसा सोचकर तुरंत उसने घोड़े का रूप धारण किया। १०५ इस तरह धोखादेही घोड़े का रूप धारण कर, लोगों के पैर न पड़े हुए स्थानों पर चलकर, मिथिला के समस्त उप वनों को कुचलकर (उसने) देखनेवालों को भयभीत कर दिया। १०६ लट्टू की भाँति चक्राकार घूमकर, सिर उठाकर, लपककर, पिछले पैर उठाकर नाचते हुए, कभी अदृश्य हो, पुनः दिखाई देकर, मृगमरीचिका का स्मरण दिलाता हुआ वह कृतक (बनावटी) घोड़ा यम-सा दिखाई पड़ा। १०७ कानों को खड़ा करके, शरीर के खंडों (उपांगों) को अलग-अलग करके दिखाता-सा हिनहिनाते हुए, वह प्रलयकाल की मृत्यु के समान दिखाई

तॊत्तरिसॆ घोण पवननु
दात्तं मसगित्तु वाजि पॆर्मारियवोल् ॥१०८॥
खर खुर हतियिं खरमं
करभंगळनट्टि मुट्टि दंताहतियिं
परिदॊरसि मनुष्यरना
तुरगं पुगिसित्तु निमिषदिं यमपुरमं ॥१०९॥
इडॆ गुंडॆय्दवु पॊय्दॊडॆ
बडिकॊळ्ळवु तुत्तॆ कय्दुवुर्चवु मनदिं
कडुगडिदु मिथिलॆयंकू-
गुडिसिदुदद्भुत तुरंगमं सिंगदवोल् ॥११०॥
करॆ वोयॆंबत्तलित्तल् तॊलगु तॊलगु पोगॆंब बायॆंब बिद्दं
बरियॆंबोवोवॊ कूकूगुगिदॆनुडिदॆनेगॆय्वॆनॆंबुच्चनीचं
पुरुष स्त्री बाल वृद्ध स्थविर युव जनांतक शंकातिरेकं
पुरदॊळ्पॊण्मित्तु विद्याधर कृतक हयाटोप घोर प्रलापं ॥१११॥
बालकरं कॆलर् मुदुपरं कॆलरक्षिविहीनरं कॆलर्
बालॆयरं कॆलर्पिडिदु चॆच्चरदिंदररी पुटंगळं
कीलिसि तम्म तम्म मनॆवॊक्किरॆ तत्पुरमॆल्लमल्लक-
ल्लोलमकालमृत्यु भय विह्वलमादुदु सूकळाश्वदिं ॥११२॥

---

पड़ा। १०८ वह अपने खुरपुट के प्रहारों से, दाँतों से काटकर, सामने आनेवाले मनुष्यों-प्राणियों को क्षण भर में यमपुरी भेजने लगा। १०९ पत्थर, गोलियाँ उस घोड़े तक नहीं पहुँचतीं, लाठी की मार नहीं लगती; आयुध उसे पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। इस तरह मिथिला के जन-जीवन को उस घोड़े ने ऐसा भयभीत (अव्यवस्थित, व्याकुल) कर दिया जैसे किसी सिंह के प्रवेश से होता है। ११० एक ओर से बुलाया जाता, दूसरी ओर से 'हटो-हटो' का शोरगुल सुनाई देता, आ जाओ, आओ, मरा, हाय क्या करूँ' आदि भयपूर्ण आर्तनाद रुलाई—स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्धों के मुख से सुनाई पड़ी। ऊँच-नीच के भेद-भाव के बिना मिथिला की प्रजा उस कृतक घोड़े के कारण मुसीबत में फँस गयी। १११ उस घोड़े ने बच्चों, बूढ़ों, अंधों, स्त्रियों को शीघ्रता से घर के भीतर जाकर द्वार बंद-करके अपने-अपने घरों में सुरक्षित रहने के लिए विवश किया और नगर-भर को अस्त-व्यस्त कर दिया, मानो अकाल मृत्यु का संदर्शन हुआ हो। ११२ उस समय, इस कोलाहल की बात सुनकर जनक सईसों

आ समयदोळ्—

कळकळनादमाद तेरनं जनकं तिळिदा सवारिगळ्
तळेदु ख्लीनमं तुरपदिं बरे संदिसि पिंदे राज मं-
डळि वर निंदु हयमं नडे नोळ्पुदुमीक्षांशुमं-
डळिसिदुदिंदु रश्मियोळे तीर्चितोर्डचिद कोळ नेणवोल् ॥११३॥

अंतु नोडलोडं—

सूकळमल्तुद सकल गु- ※ णाकरमेने जनकमुख विलोकनदिंदु-
द्रेकममुळिदिरे वाहक- ※ राकुटिलाश्ववक्के खर खलीमनिट्टर् ॥११४॥

ओट्टजेगेट्टु कार्यवशदिं खचरं पिडिपट्टु पल्लणं
गट्टिसिकोंडुमेनो मुखलीन खलीन कशाभिघातदिं
तोट्टने नोवनेय्दिदनिदावुदु चोद्यमो कौतवक्के कै-
गोट्ट खळंगे तीव्र परिवेदन बंधनमागदिर्कुमे ॥११५॥

अंतु मायाहयमं मंदुरंबुगिसुवुदु मासमयदोळ्—

मृगनाभियनानेय कों- ※ बुगळं पेर्विदर तोरमुत्तं कण्बी-
लिगळं मुंदिट्टोर्व- ※ पुगुतंदं राजभवनदोळगं शवरं ॥११६॥

अंतु बंदु तन्न तंदुपायनमं कोट्टेरगि पोडेवट्टु देव, नम्म वनदोळोंदु भद्रगजमिर्दुदेंदु बिन्नविसे—

जनकं वन्य गजालो- ※ कन कौतुक चित्तनादनुचितमे वलमा-
वनो भूर्भुजं गजयिप्र- ※ नेनिसदनरसानेयिल्लदेनोप्पुगुमे ॥११७॥

---

(अश्वरक्षकों) के साथ शीघ्रता से लगाम आदि मँगाकर घोड़ों के चारों ओर, परिवार के साथ खड़े देख रहा था कि तैयार की हुई लगाम घोड़े के लिए मृत्युपाश-सी प्रतीत हुई। ११३ ऐसा देखते समय, राजा जनक की मुख-मुद्रा से यह भाव झलक रहा था (प्रकट हो रहा था) कि यह नटखट घोड़ा नहीं है, सकलगुण-सम्पन्न उत्तम घोड़ा है। इतने में सईसों ने घोड़े को लगाम पहना दी। ११४ खेचर इस बात से चिंतित हुआ कि उसका काम नहीं बना और घोड़े के रूप में बंदी बनना पड़ा। पहनाई गई लगाम और चाबुक की मार की पीड़ा से वह तड़प उठा। कपटियों को ऐसी सजा मिले तो कोई आश्चर्य नहीं। ११५ —इस तरह मायावी घोड़े को अस्तबल (घुड़साल) में प्रवेश कराते समय, एक शबर, कस्तूरी, हरितदंत, मोती-रत्न एवं मोर के पंख लिये, राजभवन में प्रविष्ट हुआ। ११६ —उसने लायी हुई भेंटों को जनक के सम्मुख रखकर हाथ जोड़कर निवेदन किया 'भगवन्, हमारे वन में एक हाथी

अनंतरं—
परिजनमुमाप्तजनमुं॥परिकाररुमोजेविडियुमोडवरे वन्य
द्विरदन बंधन कौतुक॥ नरण्यमं मुट्टेवंदनंदु नरेंद्रं ॥ ११८ ॥
आ महागहन सरल सल्लकी प्रदेशदोळ्—
मुगिलोडुं गेलेवंद कायभरदिं पोंबेट्टनोट्टैपदि-
ट्टिगळि काळिगनागनं नगुव कैयिं कार तंदल्वोल-
ल्लुगुवेंटुं मदवट्टेयिं पेरेय सौभाग्यक्के तोडाद को-
डुगळिदं जनकंगे हर्षजनकं तानायतो वन्यद्विपं ॥११९॥
आगळा गजद वळिसंदु नडेवाने वाहकरोडने पोगलेंदु पल्लणिसि कोलदोळिदं कृतक तुरंगमं तरिसि—
उंगुटमनंकवणिगे क- ॥ रांगुळियं स्कंध संधिगुय्देरिदनु-
त्तुंग तुरंगममं नृप- ॥ तुंगं सूकळमिदेंदु सेडेदने मनदोळ् ॥१२०॥
अंतु बेंगेवंदु कीळनळवडे पिडिदु तोडेयोळवुंकि नूंकुवुदुं बिसिल्गुदुरेयंते पोळेदुच्चैश्रवदंते नभक्के नेगेदु रविरथवाजियंते पवनपथदोळ् परिवुदुं—

आया है।' यह सुनते ही जनक में उस हाथी को देखने का कुतूहल जाग उठा। किसी राजा का, हाथी को देखने के लिए आतुरित होना आश्चर्य की बात नही है। हाथी के बिना राजा की शोभा ही क्या है ? । ११७ तत्पश्चात्, वन में बंधित भद्रगज को देखने के कुतूहल से, परिजन एवं आप्त मित्रों के साथ जनक वन में चला आया । ११८ —दधिफल के पेड़ों से भरे उस घने जंगल में, मेघसमूह को पराजित करने के लिए तैयार, देहभार से कनकाचल का स्मरण दिलानेवाला, कालिंग (सर्प) की दृष्टि के समान दृष्टिमान, अपनी सूँड से अष्ट दिशाओं में पानी सींचकर वर्षाऋतु का स्मरण दिलानेवाला, मदांध रेखा और दाँतों से चंद्रकिरण को याद करानेवाला, उस हाथी ने राजा जनक को हर्षित करा दिया । ११९ —जनक उस हाथी के पास पहुँचकर, महावतों को हाथी पर चढ़ाकर, स्वयं घोड़े पर सवार होने की इच्छा व्यक्त करके उस मायावी घोड़े को मँगवाकर, मन में किसी तरह की शंका किये बिना, निडरभाव से उसे उत्तम लक्षण का घोड़ा जानकर, उसकी पीठपर सवार हुआ । १२० —इस तरह घोड़े पर बैठकर जाँघों से दबाकर (उसे) आगे बढ़ाया तो बिजली के समान चमक कर इंद्र के उच्चैःश्रवा (सफ़ेद रंग, खड़े कान, और सात मुखवाला इंद्र का घोड़ा जो समुद्रमंथन में निकला था)-सा आकाश में उछलकर, सूर्य के घोड़े की तरह वायुमार्ग में उड़ा तो

त्रिदशं मेण् खचरं मेण्-* कुदुरेय रूपिंदमरसनं मुन्निन ज-
न्मद पगेवनुय्दनंत- *ल्लदोडेवियद्गामियप्प कुदुरेगळोळवे ॥१२१॥

ऎंदु सकळ परिजनं विकळमागियुं नैमित्तिकनिंदरसन बरव-
नरिदुम्मळमनुळिदिर्पुदुमित्तल्—

ऎडेयॆडेय बेट्टनॆडेयॆडे
यडवियनॆडेयॆडेय नाडनॆडेयॆडेयूरं
मिडिदनितु बेगदिं कळि-
दोडरिसिदुदु नृपतिगाहयं विस्मयमं ॥१२२॥

त्वरितदिनेय्देवंदु पुरमं रथनूपुरचक्रवाळमं
पुर वन वीधियोळ् नडेये वाजिविळंबितदिं धराधिपं
धरणिगे पाय्दु कय्य करवाळ्ळिमाळे सरोजकोशदोळ्
मोरेयदे नीळ्दवोलिरे वसंतननेळिसिदं वनांतदोळ् ॥१२३॥

इडिदडरे कायुत मामर
दडियोळ् विश्रमिसि पथ परिम्लानतेयं
किडिसि नरेंद्रं तन्नोळ्
नुडिदं संस्सृतिय कर्म विषम स्थितियं ॥१२४॥

अमृत विषमक्कुं व- * क्रमादोडाविषमुममृतमक्कुं विधिव-
क्रमनुळिदोडंते हयमे- * न्नुमनिल्लिगे तंदुदिन्नवघटितमोळवे ॥१२५॥

---

लगा कि कोई देवता या खेचर, घोड़े के रूप में आकर राजा को, पूर्वजन्म की शत्रुता के कारण, ले उड़ा है। अन्यथा घोड़े आकाश मार्ग पर उड़ते थोड़े ही हैं? ।१२१ —ऐसा कहकर, समस्त परिवार दुखी हुआ। (लेकिन) ज्योतिषियों से राजा का भविष्य जानकर चिंता को त्याग दिया। उधर, आस-पास के टीलों, जंगलों, गाँवों, नगरों को पारकर उड़ते हुए उस घोड़े ने जनक को आश्चर्यचकित कर दिया। १२२ —घोड़ा बड़े तेज (वेग, तीव्रता) में आकर रथनूपुर चक्रवालपुर पहुँचने के पश्चात् धीमीगति से चलने लगा तो जनक तुरंत उसकी पीठ से नीचे कूद कर नगर के उद्यान में फली वसन्त की शोभा को बढ़ाने लगा। १२३ —वहाँ पके फलों से युक्त आम्रवृक्ष के नीचे लेटकर विश्राम करके प्रवास की थकावट मिटाकर, अचानक अपने पर आई हुई विषम परिस्थिति के बारे में सोचने लगा। १२४ —क़िस्मत विपरीत होने पर अमृत विष में और विष अमृत में परिणत हो जाता है। इस घोड़े द्वारा मुझे यहाँ ले आना विधिलीला नहीं तो और क्या है? । १२५ —मायावी घोड़ा जब मुझे

आनेलर्दि मायाहय-* मीनेलदत्तेन्ननेळेदु तर्पुदुमाक-
ट्टानेयुमाकुदुरेयुमा-* सेनेयुमेनेनगे माडलार्तुवे हितमं ॥१२६॥
समनिसिदनिष्ट संयो-
गमनिष्टवियोगमं चतुर्गतिगळोळं
क्रमियिसि कैकोळ्गुं ता-
नें सिक्कवर् नेरेदु तनगे नेरवादपरे ॥१२७॥
उदयिसिद शुभाशुभ क-*मर्द फलमं सदृशमागे काणुवुदु समचि-
त्तदोळिर्पुदु तक्कुदु त-*क्कुदल्तु तवकंगे लगद हर्ष विषादं ॥१२८॥
अंदु उदात्तचित्तिनल्लि दळर्दु वनविळासमं नोडि मेच्चुत्तुं
नडेयें मुंदें माकंद नंदनद बळिसिनोळमशोकवनद पुदिविनोळं
नागचंपक वनद सुत्तिनोळमति रमणीयमागि—
पदेपं कणुगे मनक्के संतसमनित्तें मणुदुदे माणुदुदि
ल्लदु बेरोंदमराचलेंद्रमेनें नानारत्न कूटांशु जा-
लदिनाशावधुगित्तु चित्रपटमं चैत्यालयं मत्तमि-
त्तुदु सप्ताश्वन सप्तसप्तिगे समग्र प्रग्रहाशंकेयं ॥१२९॥
इरुळ् कुमुदनेत्रदिं कमळनेत्रदिंदं पगल्
निरीक्षिसुवपेक्षेयिं वसुधे तज्जिनावासमं-

इस खेचर भूमि में ले आया तब क्या मेरे हाथी, सेनावृन्द इसे रोकने में समर्थ हो सके ? । १२६ —मनुष्य को चाहिए कि आये हुए अनिष्टयोग को, अपने प्रयत्न से, इष्टयोग में परिणत करा ले; दूसरों की सहायता की प्रतीक्षा (आशा) नहीं करनी चाहिए । १२७ —शुभ-अशुभ के क्षणों में जीव (मनुष्य) को उन्हें समान रूप से अनुभवकर, समचित्त दशा में रहकर, सुख में संतुष्ट (विभोर) न होकर, दुःख में दुःखी न बनकर, जीना चाहिए । १२८ —मन में ऐसा सोचकर (निर्णय करके) आगे बढ़ते हुए वहाँ की वनश्री का अवलोकन कर, संतुष्ट हो, आगे आमके पेड़ों से आवृत्त अशोक-वन के आवरण से युक्त, नागचंपक-वन के बीच सुशोभित, चैत्यालय, जो आँखों को आनंद और मन को हर्ष प्रदान कर रहा था, और जो एक (दूसरे) देवगिरि के समान विभिन्न रत्नों के लिए आश्रय-स्थान जो वन, दिग्वनिता को चित्रपट प्रदान करनेवाले सूर्यदेव के सप्ताश्वों को कारा-गृह के समान था, दिखाई पड़ा । १२९ —उस जिनावास को देखने की इच्छा से अनेक मुखवाली धरती मानों चारों ओर सरोवर-समूह का रूप धारणकर रात को कुमुद-पुष्पों की आँखों से, दिन में कमल की आँखों से देख रही थी। ऐसे मनोहर दृश्य को जनक ने देखा । १३०

दरस्मित मुखंगळं पलवनप्पुकेंय्दिर्पवोल्
सरस्समिति सुत्ति पोम्मगिल सुत्तलुं रंजिकुं ॥१३०॥

अंततिशयमप्प जिनभवनमं कंडु बलगोंडु—

अळि माळा मिळित प्रसून सुरभि द्रव्यंगळिंदर्चना
फळ शाल्यक्षत धूप दीप चरु संदोहंळिं सर्वमं
गळ संपूर्णमेनिप्प जैनगृहमं पोक्कं जिनस्तोत्र चा
पळ जिह्वाग्रसमग्र नाटक नटं साहित्य विद्याधरं ॥१३१॥

इदु परमजिनसमय कुमुदिनी शरच्चंद्र बालचंद्र मुनींद्र चरणनखकिरण चंद्रिकाचकोर भारती कर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितमप्प रामचंद्रचरितपुराणदोळ जनकजिनभवनदर्शन वर्णनं—

॥ चतुर्थाश्वासं समाप्तम् ॥

—ऐसे जिनावास को देखकर, उसकी प्रदक्षिणा लेकर, विविध सुगंधों को विखेरनेवाले फूलों से कस्तूरी आदि सुगंधित दृश्यों से, विभिन्न फलों से, धूप-दीप-नैवेद्य से समस्त मंगलों से परिपूर्ण जिनगृह में प्रविष्ट हो, जनक की जीभ, जिनकी स्तुति करने के चापल्य के वश में होने से न बच सकी। १३१

—कवि अभिनव पम्प, जो परम—जिन-समय और कमलों के लिए शरत्काल के चाँद के समान माने जानेवाले बालचंद्रमुनींद्र के पदनखों के चंद्र प्रकाश से पवित्र एवं जो सरस्वती के कर्णभूषण के समान है, के 'रामचंद्र चरित पुराण' का यह 'जनकजिनभवनदर्शन' नामक चतुर्थाश्वास है।

॥ चतुर्थाश्वास समाप्त ॥

## पंचमाश्वासं

श्री जिन गृहमं त्रिभुवन *पूजितमं पद्मराग मणितोरण वि-
भ्राजितमं पोक्कं जन- * ता जंगम कल्पवृक्षनभिनवपंपं ॥ १ ॥

अंतु पोक्कु पद पयोरूह मरीचियिं मध्यरंगमनळंकरिसि मुकुळित करांबुजं त्रिभुवन प्रभुगभिमुखनागि—

## आश्वास—५

जनता-जंगम-कल्पवृक्ष माना जानेवाला अभिनवपंप (जनक) ने अनेक पद्मपरागमणि तोरणों से सुसज्जित त्रिभुवन पूजित श्रीजिनगृह में

केवल बोधदिंदरिदु पात्रमपात्रमिदेंब भेदमं ।
देवरदेव संचकरमक्षय मोक्षसुखक्कॆनल विने-
यावळिगित्तुदात्त दिविजेंद्र नरेंन्द्र फणींद्र राज्य ल-
क्ष्मीविभवंगळं तळॆदॆ नीं जसमं जगदॊळ् जिनेश्वरा ।। २ ।।

इत्तपॆ नीनॆ देहिगनुरूपमॆनल् सुख लेशमादिया-
गत्तलनंत सौख्यमवसानमॆनल् पॆररारूमीवरि-
ल्लित्तपरन्यरॆंदु बहिरंग निमित्तदिनॆंबरॆन्गॆ दे-
वोत्तम नीनॆ चागिवॆसरं पडॆदै जगदॊळ् जिनेश्वरा ।। ३ ।।

पगॆकॆळॆयॆंब भेददरितं तमगिल्लदॆ तम्म नंटरं ।
पगॆवरॆ गॆत्तु कॊंदु कलियप्पवरक्कॆम घाति कर्ममं ।।
पगॆवडॆयं पडल्वडिसि कीरि कृतांतननिक्कि वीरल-
क्ष्मिगॆ नॆलॆयाद मॆय्गलियॆ नीनॆ वलं जगदॊळ् जिनेश्वरा ।।४।।

ननॆगणॆयिं जगत्रयमनंडलॆदंगभवंगॆ भंगमं ।
जनियिसिदै चराचररूमं तवॆ नुंगिद काल दंदशू-
कन रदमं कळिल्चि कळॆदै कडु बल्लिदनप्प मोहम
ल्लन बलगय्यनय्य मुरिदै कलि नीनॆ वलं जिनेश्वरा ।। ५ ।।

---

प्रवेश किया । १ प्रविष्ट हो, जिनगृह के बीच के पद्मासन को सुशोभित कर जुड़े हुए हाथों से त्रैलोक के प्रभु जिनेश्वर के सम्मुख बैठकर, जिनेश्वर! केवल ज्ञान से पात्र-अपात्र का भेद जानकर पूजने वाले भक्तों को अक्षय-मोक्ष सुख प्रदानकर तुमने देवेन्द्र, राजेन्द्र, फणीद्रों का राज्यलक्ष्मी वैभव और यश प्राप्त किया है । २ जिनेश्वर, देही को अनुरूप सुख आदि प्रदान कर उनके (सुख आदि के) समाप्त होने पर अवसान को नियुक्त करनेवाले तुम ही हो; तुम्हारी तरह दाता (दानी) इस संसार में और कौन है ? जगत में तुम ही त्यागी नाम से प्रसिद्ध हुए हो । ३ हे जिनेश्वर ! शत्रु-मित्र का भेद किये बिना, अन्यायियों को, संबंधी होने पर भी, मारकर शत्रुसेना को पराजित कर, कृतांत से बढ़कर वीरलक्ष्मी के लिए आश्रय-दाता वीर तुम्हारे अलावा इस संसार में और कौन है ? । ४ जिनेश्वर, अपने पुष्पबाणों से तीन लोकों को वश में किये हुए मन्मथ को भी पराजित कर तुमने चराचर के प्राणी-जीवियों को अपने पौरुष (बाहुबल) से संत्रस्त करने वाले उसके विष दाँतों को निकालकर, संसार को मोहित करने वाले उसके दाहिने हाथ को ही तोड़ देने वाले तुम सचमुच वीर हो । ५ स्त्रियों के उत्तम स्तनों से स्पर्श और उनके भार से मोह परवश होने वाले असंख्य है।

नीरेयरून्नत स्तन भरंगळ भारमवुंकि सोंके नी-
रेरिदरेरिदर्पे रवु पीठमनन्यरोळाप्तरेंब मा-
तेरदु भारती स्तन भरंगळ भारमवुंकि सोंके नी-
रेरदे सिंह विष्टरमनेरिदे नीने वलं जिनेश्वरा ॥ ६ ॥

सुगतिगे भक्ति दुर्गतिगे निन्न पद प्रतिकूल वृत्ति मु-
क्तिगे निज तत्व भावनेये कारणमेंदोडे नीने देह या-
त्रेगे सुख दुःख योजनेगे देहिगे मुख्यने निन्ननतर्रि ।
जगमनशेषमं षडेवेनेंबुदु युक्तिवलं जिनेश्वरा ॥ ७ ॥

कोलेय विकल्प कोटिगळे दुष्कृतमेल्लमबाधेयोंदे बं-
बल सुकृतंगळेल्लमवनिर्बगेयागिरे माडि मानवर्
पोलेगिडदंतु दुःख सुख हेतुगळं निज दिव्य भाषेयिं ।
जनकने तोरिदै सकलदेहिगे नीने शरण् जिनेश्वरा ॥ ८ ॥

मदन पतत्रि निन्न देसेगाणदु मोह महाहि निन्न न-
ण्मदु कलुषानलं निजदयारसदिं मसियाय्तु पापवि-
ल्लद पयणक्के निन्न नुडि संबळमाय्तेने पेण्ण मण्ण मो-
हद परमात्मरंतिशिल नीने जगत्स्तुतनै जिनेश्वरा ॥ ९ ॥

---

जिनेश्वर ! तुम्हें तो विद्यास्त्री के स्तन-भार का स्पर्श होने पर भी उससे परवश न होकर तुम उन्नत सिंहपीठ पर विराजमान हुए, यही प्रशंसा की बात है न ? । ६ सद्गति के लिए तुम्हारी भक्ति, दुर्गति के लिए तुम्हें न पूजने की प्रवृत्ति, मुक्ति के लिए तुम्हें अच्छी तरह से जान लेने की तत्वभावना ही कारण है । अतः मनुष्य की देहयात्रा के लिए, उसके सुख-दुख के लिए तुम ही कारण हो । ऐसे में हे जिनेश्वर, यह कहना केवल तर्क की बात होगी कि इस संसार में तुम्हारे अतिरिक्त और भी कोई उन सबको प्रदान कर सकता है । ७ हिंसा के नानारूप ही दुष्कृत्य हैं । अहिंसा ही पुण्य है । इन दो तत्वों से मानव को पथभ्रष्ट होने से रोककर, सुख-दुखों के कारण अपनी दिव्यवाणी से उनके मन को स्पष्ट बताने वाले हे जिनेश्वर ! मानव के लिए तुम ही आश्रयदाता हो । ८ जिस दिशा में तुम हो, वहाँ काम नामक पक्षी नहीं आयेगा; मोह नामक सर्प तुम्हें स्पर्श नहीं करेगा । पाप नामक अग्नि तुम्हारे दया-जल से मसि (स्याही) बन गयी है; पाप-रहित पथिक (प्रवासी) के लिए तुम्हारी वाणी टेक-लकड़ी बन गई है । ऐसे में हे जिनेश्वर, तुम्हारे अलावा वे भगवान जो औरत और मिट्टी के प्रति मोहित होते हैं, कैसे स्तुत्य हो सकते

नोटद तीटदाळिसुव सेविप वासनॆगॊळ्व सौख्यमं
माटद सौख्यमॆंदु पेसर्गॊळ्ळदे निन्नॊळभेदमाद कॊं-
डाटदनंत सौख्यमनॆ मर्चिद मर्चुगॆयॊळ् तॊडर्चु मा-
राटदिनॆन्न दर्शनविशुद्धियॆ मूल्यमॆनळ् जिनेश्वरा ॥ १० ॥

अॆंदु दर्शनस्तुतिगॆय्दु—

जिन मुख दर्शनदिदं *जनकं मुन्नाद खेदमं मरॆदु सुधा ।
वननिधियॊळ् मुळिगदवोल्*तनुपुळकितमागॆ हर्षरसमयनादं ॥ ११ ॥

अन्नॆगमित्तल्—

कृतक तुरंगमाकृतियनंदुपसंहृति माडि मुन्निमा-
कृतियॊळॆ पोगि पॊक्कनुचरं खचरं खचरेंद्रसद्ममं ॥
पतिय पदारविंदमनरिंदमनर्चिसिदं किरीट की-
लित हरिनील रत्न रुचि मंजरियॆंबतसी लतांतदिं ॥ १६ ॥

अंतु सर्वांगप्रणतनागि—

तंदॆं रम्यक वन जिन*मंदिरद कॆलक्कॆ मिथिळॆयिं जनकननॆं-
दिंदुगतिगनुचरं पो- * दंदमुमं बंदतॆरनुमं नॆरॆ पेळ्दं ॥ १३ ॥

आगळा वियच्चराधिराजनतिहर्षचित्तनंगचित्तमनित्तु—

गगनांतर्भागदॊळ् पूगॊळनलर्दवोलिबागॆ चित्रातपत्रं ।
पगलं भूषांशु जालं द्विगुणिसॆ मुगिलं मुट्टॆ नानाध्वजंगळ् ॥

---

है ? । ९ यह न जानकर कि तुम्हारा दर्शन, श्रवण, सेवन, आघ्राण (सूंघना) ही महान सुख है, तुम्हारे साथ अभेद प्रिय सुख को ही चाहने वाले मुझे तुम्हारे दर्शन से हे जिनेश्वर, वही (सुख) प्रदान करने की कृपा करो । १० ऐसी स्तुति करके, जिनेश्वर के दर्शन से जनक ने पूर्व खेद को भुलाकर, अमृतसागर में डूबे-से रोमांचन से संतुष्ट हुआ । ११ तब, कृतक घोड़े का रूप त्याग कर और असली रूप धारणकर चपलवेगने खेचरेंद्र के राजमहल में प्रवेश किया और हरिनील रत्नों के मुकुट धारण किये हुए अपने राजा को साष्टांग नमस्कार किया । १२ —इस तरह नमस्कार करके, अपने द्वारा किये गए कर्मो का विवरण देकर कहा—प्रभो, हमारे मनोहर वन के बगल वाले जिनमंदिर के पास मैं मिथिला के राजा जनक को ले आया हूँ । १३ —सेवक द्वारा कही हुई बातों से अत्यंत संतुष्ट होकर इंदुगति ने उसे उपहार दिये । नाना पताकाओं को लिये, समस्त तैयारियों और मंगलवाद्यों के साथ देवेन्द्र को नीचा दिखाता-सा इंदुगति जिनेश्वर की पूजा के लिए आया तो लगा मानों आकाश के अंतर्भाग में फूलों से भरा

भगवज्जैनांघ्रि पूजा परिकर सहितं मंगळातोद्यनाद ।
स्थगिताशा खंडनाखंडल विभवदिनेळ्तंदना खेचरेंद्रं ।। १४ ।।

आ समयदोळ्—

इदु खचर लोकमी ब* पुर्देखेचर निचयमेंदु मनदोळ् जनकं ।
पदेदीक्षिसुवन्नेंगमदु *पुदिदुदु मणि मकुट किरणदिंदाबनमं ।। १५ ।।

अंतु गगन तळदिनवनी तळक्कवतरिसिदिंदुगति मंदगतियिं जिन मंदिरमं बलगोंडोळगं पोक्कु दर्शन स्तुतिगेय्दनेकार्चनेंगळि-र्नचिसि—

आ गगन चर प्रवरं * स्वागत संभाषणंगळिं जनकनन-
भ्यागतनं मन्निसिदं * श्रीगेंतु विनयमोंदे भूषणमल्ते ।। १६ ।।

अंतु मन्निसि—

अलर्द मुखाब्जमंदरिपे चित्तद पत्तुगेयं कडंगि क-
ण्मलरनुरागमं केदरे नोडि नरेंद्र मुखारविंदमं ।।
जलजलिसुत्तुमिर्प दशनांशु पोंदळ्द तटिद्विळासमं-
गेले नुडिदं घनध्वनि घनध्वनियं मिगे खेचराधिपं ।। १७ ।।

अन्न तनयंगे तक्कळ्* निन्नतनूजाते रूपवति सीते गडा
कन्नेयनेन्न मगंगि *त्तेन्नोडनोडरिसु धराधिपति कोंळ्कोडेयं ।। १८ ।।

---

सरोवर ही खिला हो, विचित्र वर्णो के श्वेत पत्र को खोलकर अपने द्वारा पहने आभूषणों के प्रकाश ऊपर उठकर आकाश को छूते हुए मानों सूर्य-प्रकाश को दुगुना कर दिया हो । १४ —उस समय, जनक मन ही मन समझ गया था कि यह खेचर लोक है और यहाँ जो आ रहे हैं वे खेचर हैं । इतने में उपवन मणिमय मुकुट की किरणों से भर गया । १५ —इस तरह खेचर समूह के साथ आये हुए इंदुगति ने मंदगति से जिन मंदिर की प्रदक्षिणा लेकर, भीतर प्रवेशकर, संभाषणों में सत्कार-सन्मान दिया । धनवान के लिए विनय ही भूषण है न ? । १६ —इस तरह सन्मानकर, मुखकमल खिलने पर, मन उत्साह से पुलकित होने पर, नैन-ज्योति में स्नेह प्रकट होने (छलकने) पर, जनक के मुखारविंद को देखता हुआ मंद-हास से मिश्रित ध्वनि के मानों मेघध्वनि को नीचा दिखाता हुआ, खेचरा-धीश ने कहा । १७ "जनक, तुम्हारी सुंदर (रूपवती) पुत्री सीता मेरे पुत्र (प्रभामंडल) के लिए योग्य कन्या है । उसे मेरे पुत्र को देकर हमारे साथ संबंध स्थापित कर लो" । १८ —इसे सुनकर जनक ने कहा—"हे नमि वंशोत्पन्न, तुम्हारे पुत्र को मेरी पुत्री दी जा सकती है । लेकिन मैं

ऎंनॆ जनकनिंतॆंदं—

निन्न तनयंगॆ नमिवं-*शोन्नत कुडलप्पुदादॊडं कन्नॆयनां ॥
मुन्नमॆ रामंगित्तॆन-*दिन्निलॆ नुडियदॊडॆ मॆच्चलरिगुमॆ लोकं ॥ १९ ॥

ऎंनॆ सन्मतिवॆसर विद्याधरनिंतॆंदं—

दॊरॆकॊंड निधियनॊल्लदॆ * जरगं कर्चुवुदॆ तन्न तनयंगॆ विय-
च्चर राजनॆरॆदॊडीयदॆ * दॊरॆयल्लद मानवंगॆ कुडुवुदॆ कूसं ॥ २० ॥
आरादॊडमॆरॆवर्कॆ * न्यारत्नममॆरॆदॊडीयॆमॆंबरॆ कुडुवं-
तारामनॊळॆगंडॆ * पौरूषमं तक्कुदरिदु नॆगळल्वेडा ॥ २१ ॥

ऎंनॆ जनकं मुनिसं मनक्कॆ तारदॆ रामन भुज प्रतापमिल्ल दंदुतरंगतमनॆंब शबर नायकनिं विनीताखंडमनितुं म्लेच्छ देशमक्कुमंतागदंतॆम्मुमनॆम्मभिमानमुमं कादॊडॆम्म मगळं कन्यारत्नमं सीतॆयनित्तॆनॆनॆ मत्तॊवॆखचरनिंतॆंदं—

ऎरलॆयुमं बेडनुमं-
धुरदॊळ् बॆंकॊंडनॆंददं साहसमा-
गिरॆ पॊगळ्वॆसकळ विद्या-
धर वल्लभ सभॆयॊळिदु पॊगळ्तॆगॆ पॊलनॆ ॥ २२ ॥

गगनांगणदॊळ नडॆवर् * बगॆदॆडॆगॆबाळ्तॆयादुदावॊडमॆगळं ॥
बगॆदागडॆ कुडुगुं वि- * द्यॆगळॆनॆ खेचरर महिमॆ भूचररुंटॆ ॥ २३ ॥

---

उसकी शादी राम के साथ करने का संकल्प कर चुका हूँ। उस संकल्प को तोड़ूँ तो संसार क्या कहेगा ?" । १९ —तब सन्मति नामक विद्याधर ने कहा—"हाथ में आई हुई निधि का तिरष्कार कर, कीचड़ से सोने-चाँदी को धोना चाहते हो ? खेचराधीश के माँगने पर भी न देकर (सामान्य) मानव को बेटी दे रहे हो ?" । २० "कन्या माँगी जाती है। माँगने पर देने से कोई इन्कार करता है ? उस राम में तुमने कौन-सी विशेषता (अधिकता) देखी है ? उसमें कौन-सा पौरुष है ?" । २१ —यह सुनकर, कुपित हुए बिना, जनक ने कहा—"राम मे पौरुष न होता तो सारा संसार तरंगतम नामक शबरनायक के आधीन होकर म्लेच्छ देश हो जाता। उसने तरंगतम को पराजित कर, हमारे अभिमान की रक्षा की है। इसलिए मेरी कन्या सीता को उसे देने का वचन दिया है।" इसे सुनकर और एक खेचर ने कहा—"सूअर और शिकारी को हराना साहस का काम समझ कर तारीफ कर रहे हो ? यह विद्याधर की सभा में यह क्या तारीफ करने लायक विषय है ? । २२ "आकाश में चलकर, जहाँ चाहें वहाँ हम जाने

अँनॆ जनकं मुनिदु—

पुरु जिननादियागॆ जिनपुंगवरूं भरतेशनादिया-
गिरॆ सकलार्ध चक्रिगळुमें गळ भूचररल्लदारॊ खे-
चररदनेकॆ नीनरियॆ पारिदॊडें फलमुटॆ पक्कियं
तिरॆ पुरुषार्थमल्तु पर निंदॆयुमात्म गुण प्रशंसॆयुं ॥ २४ ॥

निमगवरेतरिंदुरदरॆंदिळिकॆय्विरॊ वंश वीर्यदिं ।
समनवर्गारूमिल्लवरशेष कला कुशलर् प्रचंड वि-
क्रमरवरी त्रिखंड भरतोर्वरॆयं भुजदंडदिंद मा-
क्रमिसुव गंडगर्वद बलाच्युतरल्लरॆ रामलक्ष्मणर् ॥ २५ ॥

अँबुदुमिंदुगति वियच्चरेंद्रनानुडिगॆ कनल्दु—

दॆसॆबिद्द बलगर्वमं पॊगळ्वॆ वज्रावर्तमं रामने-
रिसॆ वैदेहियनीवुदारदॊडॆ मत्पुत्रं प्रभामंडलं-
गॆ सरोजाक्षियनीवुदी नुडियनेगॊळ्ळॆबुदुं राम सा-
हसमं बल्लुदरिंदमानुडियनेगॊंडं महीवल्लभं ॥ २६ ॥

अनंतरं जनकनं विचित्र वस्त्रादिगळिनर्चिसि विद्याधर कुलक्कॆ मॊदलिगरप्प नमिविनमिगळ्गॆ नागराजनित्त नागविद्याधिष्टितंगळप्प

---

का सामर्थ्य रखते हैं; हमारी महिमाएँ मानवों में कहाँ ?" । २३ —इस तरह प्रशंसा करने पर, कुपित होकर जनक बोला "खेचर यह नहीं जानते कि पुरु परमेश्वर आदि जिनश्रेष्ठ, भरतेश आदि चक्रवर्ती मानव ही थे। पर उड़ने-मात्र से क्या लाभ ? बुद्धिमानों को चाहिए कि आत्मप्रशंसा और परनिंदा कभी न करें। २४ "वे किस दृष्टि में आप लोगों को अल्प (तुच्छ) दिखायी दिये ? वंश और शौर्य में वे अद्वितीय हैं। वे सर्व कला-कुशल है। प्रचंड साहसी है। इस भरतभूमि को अपने भुजबल से आक्रमण करने वाले राम-लक्ष्मण बलाच्युत के अलावा और कोई नहीं है।" २५ —इस बात से इंदुगति क्रुद्ध हुआ और गरजकर बोला—"उनकी दिगंत कीर्ति, वल और क्रोध की प्रशसा कर रहे हो ? हमारे यहाँ वज्रावर्त नामक जो धनुष है, उसे तुम्हारा राम उठा सका तो तुम अपनी कन्या उसे दे सकते हो; अन्यथा मेरे बेटे (प्रभामंडल) से सीता की शादी होगी। इस वात को मान लो।" जनक ने इस बात को स्वीकार किया। २६ —तत्पश्चात विशेष प्रकार के वस्त्राभूषणों से जनक का सन्मान कर, विद्याधर कुल के लिए प्रथम माने जाने वाले नमि विनमि को नागराज द्वारा दिये गये वज्रावर्त, सागरावर्त नामक धनुषों, हलायुध, गदाओं को

वज्रावर्त सागरावर्तगळेंब बिल्गळं हलायुध गदायुध समन्वितंगळं तरिसि कोट्टवर्कॆ चंद्रवर्धननॆंब महत्तरनं कापुवॆळ्दु कळिपुवुदुं वियच्चर बलंबॆरसवरिर्वरू मणिमयविमानंगळनेरि पवन पथदॊळ् मन: पवनवेगदिं मिथिळॆगॆ बरूतिर्पुदुं—

गगनदॊळॊड्डुगट्टिट वॆळगा बरूतिर्पुददल्तु रोहणा-
द्रिगळिळितर्पुवल्लवु नवग्रह मंडलमल्तु कल्प वा-
सिगर विमानमल्तु जनकं बरूतिर्दपनॆंदु कण्बॊलं-
बुगॆ नलिदत्तु दिट्टिवॆळगिं गुडिगट्टि पुरांगनाजनं ॥ २७ ॥

ऎल्लिगॆ पोदनॆम्मरसनिन्नॆमगार् शरणॆंब भेदमं ।
तल्लळमं मॊदल्गिडिसला बरूतिर्दनॆ नम्म सैपिनिं-
दिल्लिगॆ भूपनॆंदु नडॆनोळ्पॆडॆयॊळ् निजलोचन प्रभा-
पल्लवदिं विपल्लवमनित्तुदु चंद्रिकॆगंगनाजनं ॥ २८ ॥

अंतु जनकं मिथिळॆयं पॊक्कु चंद्रवर्धनादिगळनुचित प्रतिपत्तियिं मन्निसि बीडिगॆ बॆससॆ पुरद बहिर्भागद रम्यप्रदेशदॊळ्—

नॆलॆमाडंगळनेकमागॆ नॆलॆवीडं विद्येयिं माडि मॆ ।
य्गलि तळ्विल्लदॆ चंद्रवर्धन नभीप्सावल्लरी वर्धनं
बल नारायण वाहुदंडदळवं नोडल् गदादंडदिं
हलदिं कूडिद चापदंड युगमं बैतल्लि कादिर्पुदुं ॥ २९ ॥

---

मँगवाकर, चंद्रवर्धन नामक विद्याधर को उनकी रक्षा के लिए नियुक्त कर भेज दिया। खेचर सेना के साथ वे दोनों विमानारूढ़ हो मिथिला की ओर आ रहे थे कि (ऐसा लगा)—आकाश का प्रकाश एकत्र होकर (समूह रूप में) नहीं आ रहा है; कनक पर्वत ही उतरकर नही आ रहा है; नव-ग्रहमंडल भी नही है; देवताओं का विमान भी नहीं है। हमारा राजा ही आ रहा है। नगर के लोगों को ऐसा दृष्टिगोचर होने पर वे तोरण बाँधकर नाचने लगे। २७ "हमारा राजा कहाँ गया? हमारी रक्षा कौन करेगा? कहकर तड़पने—विलाप करनेवाली हम स्त्रियों की कातरता को समूल नाश करने के लिए, हमारे पुण्य (भाग्य) से जनक यहीं आ रहें है" कहकर देखनेवाली स्त्रियों की दृष्टि चाँदनी को भी प्रकाश दे रही भी। २८ इस तरह जनक मिथिला में प्रविष्ट हो, चंद्रवर्धन आदि खेचरों को योग्य गौरव देकर, सत्कार करके उनसे बिदाई ली तो वे नगर के बाहर स्थित रम्य प्रदेश में—अपनी अर्जित विद्या से मंजिलेदार राजमहल बनाकर, बलाच्युत राम-लक्ष्मण की शौर्य-परीक्षा-निमित्त गदा, हलायुधों और धनुषों को रखकर

अन्नेंगमित्तल्—
प्रिय संभाषण सहितं *वयसिदुदं परिजनक्कें साल्विनमित्त ।।
प्रियमं पुट्टिसिदं सुर- *भियोळेनौदार्य निधियो जनक नरेंद्रं ।। ३० ।।

अनंतर मज्जन भोजनादि दिवस व्यापारमं तीर्चि सेज्जेवनेयोळु-पधानविराजमान हंसतूल तलपदोळ् विश्रमिसि निजमनोवल्लभेगे तन्न पोदबंद वृत्तांतमं नेरेये पेळे घननिनदमं केळ्द हंसवनितेयंते विकळेयागि—

नोडिरे पुट्टिदागळे खलं शिशुवं पिडिदुय्दोडीकेयं ।
नोडि तनूजनं मरेदेनीकेयुमं गड बिल्गळं नेवं
माडि वियच्चरानुचररूय्दपरेंदु विदेहि मेय्यनी-
डाडि कपोलमं तोळेदळुण्मिद लोचन वारिधारेयिं ।। ३१ ।।

अंतु विकळेयप्पुदुं—
अंभुजनेत्रे निन्न मनदुम्मळमं बिडु तन्न तोळ्गे पा-
रूवळे भूरि भूवळयमेंवळवं तळेदिर्दननंत वी-
र्यं बलभद्रनेरिसुगुमंकदबिल्लनळुकें गेट्टु वि-
ल्लुंबेरणांगि पत्तुविडे कन्नेय लोभमनन्यराजकं ।। ३२ ।।
ऋणविल्लीबिल्गे विद्याधर्रगिवु ऋणसंबंधदिं रामनं ल-
क्ष्मणनं पोर्दल्के वेडिर्दुवु नेवदोळे कै सार्दुवीबिल्गळिं धा-

प्रतीक्षा कर रहे थे कि । २९ —इधर जनक ने, प्रिय बातचीतों से, परिजनों को वांछित वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में देकर उनके प्यार को पाया। पृथ्वी में जनक-जैसा औदार्यनिधि और कौन है ? । ३० तत्पश्चात स्नान भोजन आदि नित्य-कर्मों से निपटकर, शय्यागृह में प्रविष्ट हो अपनी पत्नी को (अश्व सवारी से लेकर लौटने तक की) सारी बातें सविस्तार बतायीं तो वह वैसे ही डरी, जैसे घनघोर गर्जना सुनकर हँसी । जन्म लेते ही बच्चे को वह दुष्ट ले उड़ा तो मैं इसे (सीता को) देखकर उस दुख: को भूल गयी थी । अब इन धनुषों के बहाने खेचर इसे ले जाना चाहते हैं । इस दु:ख को किस तरह सहन करूँ—कहकर आँसू बहाने लगी । ३१ —इस तरह दु:ख करने पर (जनक ने समझाया)—प्रिये, अपने मन की चिंता त्याग दो । राम, जो अनंतवीर्य है और जिसे इस बात का पूरा विश्वास है कि यह सारा भूचक्र उसके बाहुबल के साहस के आधीन है, इन धनुषों को (अवश्य) उठा लेगा । इससे (अन्य) समस्त राजा सीता को पाने की आशा छोड़ देंगे । ३२ धनुष और विद्याधरों के भाग्य नहीं

रिणियं बाय्केळिसल् कारणपुरुषरिवर् पुट्टिदर् पक्ष्मविक्षे-
पणमात्रं कार्मकारोपणमवर्गदर्रिदेके शोकातिरेकं ॥ ३३ ॥

अँदु सतिय शंकेयं कळेदु गृह महत्तरंगे बेससुवुदुं—
बहिरुद्यानद केलदोळ् * बहु रत्न सुवर्णमयमेनल् नयन सुखा-
वहमं माडिसिदं गृह * महत्तरं निमिषदिं स्वयंवर गृहमं ॥ ३४ ॥

आ स्वयंवर भूमि पूर्वा परायत चतुरश्रमेनिसि पोळेव पोम्मगिल बळसिनोळं, दक्षिणोत्तर मुखंगळागि तोर्केवेत्त कर्केतनद नेलेमाडंगळोळमवर मुंदणिदुकांतद बयल मंडपंगळोळं, अवरिर्केलद कर्केतनद चौपळिगेगळोळं, अवं सुत्ति मुत्तिद माणिकद मत्तवारणग-ळोळमल्लि पोरगे शोण मणि कळश कर किसल्यंगळानभ्यश्रीय नालिंगुमुव बागिल्वाडंगळोळमवर मुंदे संदणिसिद मरकत मकर तोरणंगळोळति रमणीयमागि—

दिविजोर्वीरुहमित्त देवर मनोव्यापरदिंदाद दे-
व विमानंगळिवेंबिभेददोळे भेदं माटकूटंगळिं ॥
नवरत्नोपल कर्मदिं मणिवितान श्रेणियिं भेदमें-
बवरारेंबिनेगं स्वयंवरगृहं कण्गें बेडंगादुदो ॥ ३५ ॥

---

मिलते। ये ऋण-संबंध से वे (धनुष) राम-लक्ष्मण को (ही) मिलना चाहिए—शायद विधि की यही इच्छा (विधान) है। सारे संसार को अपने आधीन करने के निमित्त जन्मे इन कारणपुरुषों को उन धनुषों को उठाना उतना ही आसान है जितना कि पलकें झपकाकर खोलना। तुम किसलिए चिंता कर रही हो? । ३३ —इस तरह पत्नी की शंका को दूर करके, अपने राजमहल के अधिकारी को बुलाकर, उसे आज्ञा देने पर, उसने नगर के बाह्य उद्यान के बगल में अधिकाधिक रत्न-सुवर्णमय स्वयंवर-मंडप का निर्माण करवाया, जो आँखों को सुख प्रदान कर रहा था। ३४ वह स्वयंवर-भूमि पूर्व दिशा से आवृत प्राकार से, दक्षिणोत्तर में दिखायी देनेवाले मंज़िलोंवाले चाँदी के राजमहलों से, उनके सम्मुख के चंद्रकांत-शिला-निर्मित मंडपों से, दोनों ओर से चाँदी बिछाये चौपालों (सभागृहों) से उनके चारों ओर निर्मित माणिक्य के चबूतरों से, वहाँ से बाहर रत्नकलश के हस्त-सदृश अंकुर आकाशकांता का आलिंगन करनेवाले राजप्रासाद के द्वार के समान, आगे बढ़े हुए मरकत आदि मणियों से निर्मित तोरणों से, मनोहर बन पड़ी। वे (तोरण) कल्पवृक्षों द्वारा दिये गये और जिनेश्वर के मनोव्यापार से निर्मित विमानों की भाँति (मनोहर) थे।

आ स्वयंरविहारक्के जनकं प्रधान पुरुष पुरस्सरं—

पुरुवंशद कुरुवंशद ⁕ हरिवंशद नाथवंश दुग्रान्वयदु-
वरेमोडेयादियागिरे ⁕ नरनाथ सुतर्कळेनिबरानुं बंदर् ॥ ३६ ॥

नाना वाहनमुं ना- ⁕ नानकमुं वंश विधृत नाना ध्वज सं-
तानमुमेसेदिरे बंदर् ⁕ नाना देशाधिनाथ नंदनरनिबर् ॥ ३७ ॥

आ समयदोळ दशरथं राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्नवेरसु बंदोंदु पळकिन चौपळिगेयोळ् रत्नमुद्रिकेय मध्यनायक रत्नदंतिर्पुदु—

शरनिधि रत्नराशिगळिनुर्वरे रोहण पर्वतंगळि ।
सुरगिरि सानु कल्पकुजदिं गगनस्थळि तळ्त तारका ॥
परिकरदिं सरोजिनि मराळदिनोप्पुव माळ्केयिं स्वयं-
वर गृहमोप्पमं तळेदुदोप्पुव राज तनूज राजियिं ॥ ३८ ॥

अन्नेगमित्तल्—

मळयज मिश्र तीर्थ जल धारेगळिं शशिकांत कांतमं-
गळ कलशांशु धारेगळिनिर्मडिसित्तु विवाह विवाह मुख्य मं-
गळ सवनं विळासवति सीतेगे दिक्तटमं पळंचे मं-
गळ पटह स्वनं पुदियें मंगळ गायक गीत निस्वनं ॥ ३९ ॥

हिम किरण माले मुसुकिद
कुमुदिनिय बेडगुं तनगे पुदुवने मृगने-
त्रे मनगोंड्ळ् मलजय
हिम कर्दम कलिल सलिल सवनोत्सवदोळ् ॥ ४० ॥

---

स्वयंवरगृह मनोहर नवरत्नों और किंजल्कों से निर्मित होने के कारण आँखों को आनंद प्रदान कर रहा था। ३५ —उस स्वयंवर में पुरुवंश, कुरुवंश, हरिवंश, नाथवंश (आदि वंश) के राजकुमार आये। ३६ नाना वाहनों पर, (अपने) वंश की कीर्ति का वर्णन करने-वाली नाना भेरियों एवं पताकाओं से सुशोभित राजकुमार आ गये। ३७ उस समय दशरथ, राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुहन के साथ आगमन कर चंद्रकांता शिला के चौपालों में, रत्नों के बीच नायक रत्न-सा बैठा तो, स्वयंवर मंडप में बैठे हुए राजकुमारों का समूह ऐसा लगा, मानों समुद्र रत्नराशियों से, भूमि-कनक पर्वतों से, सुरगिरि-शिखर कल्पवृक्षों से, आकाश-मंडल नक्षत्रों से, कमल हंसों से सुशोभित है। ३८ —तब इधर, श्रीगंध-मिश्रित जलधाराओं से भरे कलशों की शोभा चंद्रकांत शिला की कांति को दुगुना कर देने पर (उस जलधारा से) वधु सीता का मंगलस्नान कराया। तब

आ मंगलसवन समयानंतरं जानकि नीराजन विराजमानॆ धारानिळय जलयंत्र पुत्रिकॆयंतॆ नयन पुत्रिकॆगॆ मणिभूषणमॆनिसि पळिकिन पट्टवणॆ केसडिय कॆंपिनिंदरूणमणियनॊट्टैसॆ मॆट्टि निल्वुदुमा नितंबिनिय नितंब सूत्रदॊळ् तॊडर्चिद तोरमुत्तुगळंतॆयुं, आवृत्तकुचॆय कुचकळशदॊळॊसर्व लावण्यरसबिंदुगळंतॆयुं, आ कनक केतकी दळनखॆय नखमुखदॊळुण्मुव मयूख मंजरियंतॆयुं, आ पल्लवाधरॆयधरपल्लवदॊळ् पॊळॆव दरहास कळिकॆयंतॆयुं, आ चळाळकॆयळकवल्लरियॊळ् बॆळर्त बिरिमुगुळंतॆतुं, ओरॊंदे जलबिंदु बिडुतर्पुदुं—

आ रमणिय तनुलतॆयिं * वारिकण प्रचयमं दुकूलांचलदिं ।।
वारांगनॆयर् तॊडॆदर् * नीरंजिसुवंतॆ मणिशलाकॆयनागळ् ।। ४१ ।।

नगॆगणसूसॆ विळासमं नगॆमॊगं लावण्यमं बीरॆ सा-
वगिसुत्तुं कचबंधमं शिथिल नीवीबंधमं कांचियॊळ् ।।
तॆगॆयुत्तुं स्मरमंत्र देवतॆयवोल् बाहा लतांदोळनं ।
बगॆयं बल् सॆरॆगॆय्यॆ बालॆ मॆरॆदळ् लीला पदन्यासमं ।। ४२ ।।

अंतु बंदु चॆंबॊन्न कन्नॆमाडद मॊगसालॆयॊळिक्किद मुत्तिन बित्तरिकॆयॊळ्कुळ्ळिर्पुदुं मेळदंगनॆयर् मंगळ पसदनंगॊळिसलवसरंबडॆदु

---

गुंजरित होनेवाले मंगल वाद्यों की ध्वनि और गायकों की मधुर कंठध्वनि सुनायी पड़ी । ३९ चांदनी से आवृत कुमुदपुष्प की शोभा को ही अपने लिए सदृश माननेवाली मृगनैनी सीता, शीतल, गंधमिश्रित मंगलस्नान से मोहक दिखायी पड़ी । ४० —तत्पश्चात सीता अलंकारों से सुसज्जित होकर, स्फटिक के पाट पर हल्का-लाल चरण टेककर खडी रही तो उसके शरीर से एक-एक कर जलबिंदु ऐसे टपक रहे थे, मानों उसकी कटि में उलझे हुए मोती हों, उसके कुचकलश के सौदर्य-रस के बिंदु हों, उसके केवडावर्ण के चरणनखों की कांति की पुष्प-पंखुड़ियाँ हों, उसके अधर में चमकने वाली मुस्कराहट की कली हो, उसके केश के पास खिले फूल हों । इस तरह वहते हुए जलबिंदुओं को परिचारिकाएँ कपड़े से उसके शरीर पर इस तरह मलने लगी, मानों रत्न-शलाका को धार चढ़ा रही हों । ४१ सीता के मुस्कराने से नेत्रों से विलास झलकने लगा, हँसमुख सौदर्य को प्रकट करने लगा, केशबंधन को शिथिल करते हुए, पहने हुए कांचीबंध (कटि-बंध) की व्यवस्थित नीवि को छुडाते हुए लतारूपी बाहुओं को कामदेव के मंत्रदेवता के समान देखनेवालों को अपने पदन्यास (चलन-ढंग) से आकर्षित करती हुई सुशोभित हुई । ४२ इस तरह आकर स्त्रीगृह के

विचित्रचीनांबरमं निरिविडिदुडुसि, कॆंदावरॆयनॆळविसिलॆळसिदंदमागॆ लाक्षारसदिनडियूडियुं, चरणनख चंद्रमालॆनक्षत्रमालॆयनोलगिसुवंतॆ मुक्ताफल नूपुरमं तुडिसियुं, पुळिनवळयमं पॊंदावरॆय बळ्ळि बळसिदंतॆ नितंब वळयदॊळ् मणिमेखलॆयं तॊडर्चियुं, मदन मद रदनि रदनदॊळ् कीर्तिमुखमं कीळिसुवंतॆ शतपत्र भंगमं तुंगरतनाभोगदॊळ् संगळिसियुं, पीवर पयोधर मंडळक्कॆ परिवेषमं पडॆवंतॆ पंचरत्नद बण्णसरमं कॊरळॊळिक्कियुं, बाहुलतॆय बिळलंतॆ रत्नकांति कवल्वरि-विनमंगदम नळवडिसियुं, सिरिसद बासिगमं भृंगमालॆ बळसुवंतॆ नळितोळॊळ् पच्चॆय पिडुगंकणमनेरिसियुं, ननॆगणॆगॆ गरिगट्टुवंतंगु-लियॊळ् रत्नमुद्रिकॆयं मुद्रिसियुं, स्मरवशीकरण यंत्रमं बरॆवंतॆ कपोल तळदॊळ् मकरिका पत्रमं बरॆदुं, पॊसमसॆय पूगणॆगॆ पॊगरं पडॆवंतॆ नगॆगण्गळॊळंजनमनण्कॆगॆय्दुं, कर्णांत विश्रांत विलोचनदॊळ पडियिट्टु पोळ्पंतॆ कितियॊळवतंसोत्पलमं तॊडर्चियुं—

उर्गळ कांतियिदळकवल्लिगॆ नीर्दळिवंतॆ मॆल्लमॆ-
ल्लगॆ तलॆविक्कि चंद्र किरणंगळनागळॆ राहु नुंगि म-
त्तुगुळ्दपुदॆंबिनं मुडिसि बालॆय सोर्मुडियं ललाटदॊळ् ।
मृगमद बिंदुवं पॆरॆगॆ नुण्गरॆयं पडॆवंतॆ तिर्दिदर् ॥ ४३ ॥

चौपाल-स्थित पीठ (आसन) पर बैठी तो सेविकाओं ने उसे श्रृंगार से तुरंत सजाना प्रारंभ किया। न्यारी रेशमी साड़ी पहनायी, मेंहदी, जिसका वर्ण मानों लाल कमल पर बाल सूर्य-किरणें पड़ी हों, लगायी, चंद्रमंडल-सदृश पदनखों पर नक्षत्रमाला जड़ती-सी सीता को पैंदनी पहनायी, रेत के ढेर पर लालकमल-लता फैलायी-सी नितंब-क्षेत्र में रत्नमेखला पहनायी। कामदेव के पटहाथी के दाँतों में कीर्तिपताका फैलाता-सा कुचों के चारों ओर कमल-पंखुड़ियों का चित्र चित्रित किया। भरे कुचों की शोभा बढ़ाने के लिए पंचरत्न का हार पहनाया, शिरीष पुष्प के सेहरा को भ्रमर-समूह द्वारा घेरा-सा, बाहों से मरकत (पन्ना) के कंकण पहनाये, कामदेव के पुष्पबाण को पर बाँधती-सी उँगलियों में रत्न की अंगूठी पहनायी, कपोल पर रंगीन मकरिका पत्र का चित्र बनाया, पुष्पबाण की कांति पाती-सी आँखों में अंजन लगाया, कानों में उत्पल पुष्प-सदृश कर्णाभरण पहनाया। नखों की कांति से लता-सदृश केश पर पानी चिटकाता (डालता)-सा, धीरे-धीरे बालों को सँवारा। सीता की दासियों ने उसके कस्तूरी तिलक को इस तरह सँवारा कि उसकी लटकती केशराशि, जो राहु द्वारा चंद्रप्रकाश

आगळाकेय मंळवसदनमे तनगें बीरवसदनमागें—

बालेय कडेगण्णोटमें ※ सालदे ननगणेगळेवुवेंदु मनोजं ॥
शूलियनोसलुरिगण्णं ※ पीलिय कण्णेंबनावनेंनगिदिरेंवं ॥ ४४ ॥

मनसिजनेंने रतियेंने क-※विन विल्लें कुसुम बाणमेंने कोकिल नि-
स्वनमेंने मधुकर झंकृत-※मेंने सीतेय पसदनक्कें पर्यायंगळ् ॥ ४५ ॥

अंतु कैगेय्दुमा समयदोळ्—

हरिवंश नियमदिं हित ※ पुरोहितं शुभमुहूर्तदोळ् कन्यकेयं ॥
तरवेळें वृद्ध कंचुकि ※ वेरस मनोरथमेंनिप्प रथमं तंदर् ॥ ४६ ॥

आगळापुरोहितादेशदिननेक मंगळानक निनदमोदवे रथमनेरि—

रमणियरेरडुं केलदोळ्※चमररूहमनिक्कें बीळें बेळ्गोडे बेशें-
दमृतांशुवनाक्षणदोळ् ※हिमांशुमुखि मेरेदळीक्षणकर्षणमं ॥ ४७ ॥

आगळास्यंदनमं सुत्तिमुत्ति कुंचदडपद डवकेय कन्नडिय परिचारिकेयरूमोडनाडिगळप्पयनूर्वर् कन्नेथरूं संगळोपकरण द्रव्यंगळं पिडिदु नडेयें—

मदन पताकें चुंबिसें वियन्मुखमं स्मरचाप टंकृतं ।
पुदियें दिगंतमं कुसुमसायक सायकमच्चें राजलो-

---

को निगलकर पुनः थूका-सा प्रतीत हो रही थी, ललाट पर नृत्य करने लगी। ४३ सीता की कनखी पुष्पबाणों से कम नहीं है। कामदेव ने सोचा—मेरा, जिसका मयूर-नेत्र ईश्वर की तीसरी आँख के समान है, (कौन) शत्रु बनना चाहता है? । ४४ कामदेव, रति, ईक्षधनुष, पुष्प-बाण, मयूर-ध्वनि, भ्रमरों का झनकार आदि सीता के प्रसाधन (शृंगार) के पर्याय नाम हैं। ४५ —सीता इस तरह सजधजकर आयी, तब हरिवंश के नियमानुसार कुलपुरोहित ने कन्या को लिवा लाने के लिए कहा तो वृद्ध कंचुकी के साथ मनोरथ नामक रथ में ले आये। ४६ —तब पुरोहित के आदेशानुसार अनेक मंगल वाद्य गूँज उठने पर रथ पर चढ़कर, दोनों ओर खड़ी होकर स्त्रियाँ चामर डुलाने लगीं, उठाकर सिर पर पकड़ा गया धवल छत्र चाँदनी-सा प्रकाश फैलाने लगा। ऐसे में चंद्रमुखी सीता आँखों को आकर्षित हुई। ४७ —तब रथ के चारों ओर चामर, पान-सुपारी, दर्पण लिये हुए परिचारिकाएँ एवं सीता की पाँच सौ सखियाँ मंगल द्रव्य लिये चली आयीं तो मन्मथ की पताकाएँ आकाश को चूमने लगीं, कामदेव का धनुष-टंकार दिगंतों में गूँज उठा, पुष्पबाण का नोक (अग्रभाग) राजाओं के मन को चीरने लगा, कामचक्रेश्वर की विजयांगना-सदृश जानकी

कद मनमं मनोज विजयांगने जानकि पोक्कळा सभा ।
सदन सुवर्ण गोपुरमनेरि हिरण्मयमं वरूथमं ॥ ४८ ॥
कन्नेयरखिल कला सं- * पन्नेयरैनूर्वरलर्द तावरेगळवोल् ॥
तन्नोडवरे बंदळ् सिरि * सन्निदमादंते सीते कन्यारत्नं ॥ ४९ ॥

अंतुबंदु—
जनकजे वश्यदीप कलिकाकृतियिं पुगे तत्सभा निके-
तन कुसुमोपहार मणिरंगमनंगणमं नरेंद्रनं-
दनर्गे मनोविकारदोडनंग विकारमदें पोदळ्दु दो-
ननेकोनेयेरुवंते वनराजि मधु प्रथम प्रवेशदोळ् ॥ ५० ॥
उदयिसे शशिकळे तेरेमस-*गिद पालगडलंते नृपकुमार कदंबं ॥
सुदति पुगे सभेयनोळको-*डुदु मदन विकार चेष्टेय बहुविधमं ॥ ५१ ॥
दिनलक्ष्मिय पुगिलोळ् को-
कनदाकर निकरमोडनेसळ्मसगुववोल् ।
जनकात्मजे पुगे सभेयं
जनियिसिदुदु मदन चेष्टे राजत्यकदोळ् ॥ ५२ ॥
आगळाकेय लावण्य मदिरारस सेवनेयिं करं सोक्कि—
द्विगुणिसे नखरुचि पूमा-*लेगळं कारिरूळोळोगेद तारावळियं ॥
नगे तोरदुरुंबं सा-*वगिसिदनडिगडिगे नृपकुमारकनोर्व ॥ ५३ ॥

---

सुवर्ण से निर्मित रथ पर चढ़कर सभा में प्रविष्ट हुई। ४८ पाँच सौ सखियाँ जो खिले कमल-पुष्पों की भाँति दिखायी दे रही थी, कन्यारत्न सीता ऐसे आयी, मानों ऐश्वर्य ही हाथ लगा हो। ४९ —इस तरह आकर, वशीकरण दीपशिखा के समान वह उस सभा में प्रविष्ट हुई तो उपस्थित राजकुमारों को मनोविकार के साथ-साथ स्मर (काम)-विकार उसी तरह जाग्रत हुआ जिस तरह वसंत ऋतु के आरंभ में खिलने वाले पुष्प। ५० चंद्रोदय होते ही जिस तरह समुद्र में ज्वर आता है, उसी तरह सभा में सीता के प्रवेश करते ही राजकुमारों की कामचेष्टाएँ बढ़ गयी। ५१ दिनलक्ष्मी के प्रारंभ (सुवह) में जिस तरह लालकमल की पंखुड़ियाँ चमकती है, उसी तरह सभा में सीता के प्रवेश करने पर वहाँ उपस्थित राजाओं में भी कामचेष्टाएँ जाग उठी। ५२ —तब उसके सौंदर्यरूपी मदिरा के सेवन (अवलोकन) से नशा छा गया तो सीता के नखों की शोभा दुगुनी होकर पुष्पमालाओं से अधिक दिखायी पड़ी और उसकी मुस्कराहट ने अंधकार में चमकने वाले नक्षत्रों को फीका कर दिया तो एक

परभागंबेत्तिरे प- ❀द्मराग मणि पाणिपद्म रागदिनोर्व ।।
नरनाथ सुतं मेरेदं- ❀ किरीटमं तिर्दुवंते भुजशाखेगळिं ।। ५४ ।।
तारावळियं तळेद न- ❀ भोरंगद भंगि तनगे पुदुवेनिसिदुदं ।।
पेरुरमनदें मेरेदनो ❀ हारमनोसरिसुवंते नृपसुतनोर्व ।। ५५ ।।
मंगळ मणिपीठं विज- ❀ यांगनेगेने कोर्वुवेत्तुदं मत्तोर्व ।।
तुंग भुज शिखरमं र- ❀ त्नांगदमं सार्चुवोदुनेवदिं मेरेदं ।। ५६ ।।

तीविबेडंगुवेत्त कमलाकरदोळ रमणीयमाद कें-
दावरे पूविनोळ् सेणिसिदत्तु कुमार विशाल वक्षदोळ् ।।
सावगिसुत्तुमिर्प पददोळ् पोळेदोप्पुव तोरमुत्तिने-
क्कावळि सूसुवंसुजलदिं बेळगे पळवट्ट केंदळं ।। ५७ ।।

आगळा स्वयंवर मध्यभूमिगे मणिभूषणमेनिसि मनंगोळिसुव पळकिन चौपळिगेय नील शिलास्तंभमं मलंगि पोन्न पुत्तळिगेय विळासमनसकळिदु तटिद्वल्लरि बळसिद शरल्लक्ष्मियंतेयुं, तारावळि बळसिदिदुकळेयंतेयुं, विद्रुमलते बळसिद लावण्यरस समुद्रवेलेयंतेयु कन्यका कदंबद बळसिं बगेगोळिसि निखिलजन मनः पीठदोळ् मनसिजं प्रतिष्ठिगेय्दु रतियंते निरतिशयमागिर्पुदुं—

---

राजकुमार ने अपनी केशराशि को ठीक कर लिया। ५३ उसके द्वारा पहनी हुई पद्मरागमणि विशिष्ट प्रकाश फैलाने लगी तो एक राजकुमार ने अपने मुकुट को हाथों से व्यवस्थित कर लिया। ५४ नक्षत्र-मंडल में सुशोभित आकाश के सौंदर्य को मानों विनाशकारक समझकर एक राजकुमार ने छाती फैलाकर धारण किये हुए हार को सँवार (सँभाल) लिया। ५५ मंगलकारी मणिपीठ मानों विजयलक्ष्मी है, अपनी पुष्प-बाहुओं की रत्ननिर्मित भुजकीर्ति (आभरण-विशेष) के ठीक कर लेने के बहाने और एक राजकुमार विराजमान हुआ। ५६ सुंदर वक्षस्थल पर झूलता हुआ सुशोभित एकावली हार हल्की लालिमा से ऐसा सुंदर लगता था, मानों भरे सौंदर्य से युक्त सरोवर में रम्य लाल-कमल पुष्प के साथ प्रतिस्पर्धा करता हो। ५७ —तब उस स्वयंवर-मंडप के लिए रत्नभूषण-सदृश मनमोहक, चंद्रकांत शिला के चौपाल के शिलास्तंभ में लेटी सुवर्ण पुतलियों के सौंदर्य को लजाती हुई, विद्युतलता-आवृत्त शरत्काल के समान, नक्षत्रों से आवृत चंद्र के समान, विद्रुमलता-आवृत्त सौंदर्यसमुद्र की सीमा के समान, युवतियों के समूह से घिरी हुई सीता उपस्थितों को मानस-पीठ पर कामदेव द्वारा निर्मित रति के समान दिखायी पड़ी। चंद्रमुखी

सकळेंदु मुखियनाक- * न्निकॆयं कण्सोल्तु नोडिमत्तॊर्वं कौ-
तुकदिंदॆमॆयिक्कदे रा- * ज कुमारं सुर कुमारनं गॆलॆवंदं ॥ ५८ ॥
तरुणिय लावण्य रसां-*बुराशियॊळ तॆंकॆ तन्न कण्णुं मनमुं ॥
मरवानसनंतॊर्व *स्मर सम्मोहन शरक्कॆ गुरियागिर्दं ॥ ५९ ॥
अळवडिसुवंतॆ मणिकुं-*डळमं नसु मुरिदु जनक सुतॆय कपोल ।
स्थळमं मृगमद पत्रा-*वळि विळसितमं मरुळ्दु नोडिदनॊर्वं ॥ ६० ॥
तळवॆळगादं वनिता
तिळकद पॆरॆ नॊसल रोचना तिलकद चॆ-
ल्वॆळॆकुळिगॊळॆ सम्मोहन
तिळकदवोल् मनमनवनिपालक तिलकं ॥ ६१ ॥
बाळॆय सोर्मुडि मनसिज*काळोरगनंतॆ मनदॊळा कंपनमं ॥
मेळिसॆ मत्तॊर्वं भू-*पाळं पावडर्वनंतॆ बॆरगागिर्दं ॥ ६२ ॥
तनु रोमांचममप्पुकॆय्यॆ नृपनॊर्व कन्यकारूप द-
र्शनदिं तत्पुलकंगळं कल विपंची नादमं केळ्दु भों-
कनॆ मॆय्वॆर्चिवॆंदु बंचिसियुमें मेल्वाय्वुदंलोललो-
चनमं तांगिदनिल्ल जानकिय सौंदर्यक्किदाश्चर्यमे ॥ ६३ ॥
पल्लवपाटलाधरॆय पीन पयोधर मंडलंगळा ।
पल्लहरी परंपरॆयनीयॆ समुत्सुक लोचन प्रभा ॥

को कुतूहल से दृष्टि थकने तक अपलक देखनेवाला राजकुमार देवकुमार को पराजित करता-सा दिखायी पड़ा। ५८ युवती के रूपरस-समुद्र में और किसी (राजकुमार) का मन और दृष्टि तैरते रहने पर वह कामवाण का शिकार वन गया था। ५९ और एक ने अपने मणिकुंडल को ठीक कर लेने के वहाने मुड़कर सीता के कपोलस्थल पर चित्रित कस्तूरी रेखा को देखा। ६० उस वनिता के ललाट पर सुशोभित चंद्राकार-तिलक ने सम्मोहन-तिलक के समान एक और राजा को आकर्षित किया। ६१ उसकी सुंदर लंबी केशराशि ने सर्परूपी कामदेव के समान मन में कंपन जगाया तो अन्य एक राजा ऐसा भयभीत हुआ, मानों उसके शरीर पर सर्प चढ़ गये हों। ६२ कन्या को देखने-मात्र से और एक राजा के शरीर-भर को रोमांचन ने घेर लिया और उससे उत्पन्न पुलकों को वीणा से झंकृत नाद समझकर (वह) भ्रमित हुआ। जानकी का सौंदर्य सचमुच कुतूहलकारी है न? । ६३ एक और राजकुमार ने पल्लव-सदृश अधर-वाली सीता के भरे कुचों के ऊपर शोभायमान कपड़े को कौतूहलपूर्ण दृष्टि

पल्लवदिं दुकूल नव पल्लव शोभॆयनागलॊवॆनि-
त्तल्लियॆ कण्पळंचलॆयॆ जानकियं मनमॊल्दु नोडिदं ।। ६४ ।।

कॆलरागल् ऋजुविंदमर्धऋजुविंदं साचियिंदं कॆलर् ।
पलवुं भगियिनिर्दु जानकिय रूपाश्चर्यमं नोडि क-
ण्मलरं चित्तमनित्तु चित्रिसिदवोल् निष्पंदरागिर्पुदुं ।
गॆलॆवंदत्तु विचित्र चित्र सभॆयं भूभृत्सभामंडलं ।। ६५ ।।

अनितिंद्रियमुं विषयम- ❋ ननाकुलं बिट्टु दर्शनेंद्रियमॊंद-
र्कनुवशमादुवॆनल् नृप ❋ तनयर् जानकिय मेलॆ कण्णागिर्दर् ।। ६६ ।।

करणं नयनमॆ विषमं
तरुणियॆ पॆरतेनुमिल्लॆनल् रांजतनू-
जर कण्गळॆळसि बळसिदु
वुरवणिसिदुवट्टि मुट्टिदुवु जानकियं ।। ६७ ।।

अनंतरं—
बिसरुह नेत्रॆगॆ जानकि- ❋ गॆ सुट्टि तोरुत्तुमरिपिदळ् परिविडियिं
पॆसगॊंडु वृद्ध कंचुकि ❋ पॆसर नृपात्मज वंश वीर्य श्रुतमं ।। ६८ ।।

अंतरिपुवुदुं—
कडुमंदमप्प कण्णॆमॆ- ❋ कुडुवुर्व तुडुकॆ नोडॆ मॊगरसवॆंबि ।।
गडलॊळ् पॊळॆवॆळवाळॆय ❋ बॆगंडनॊळकॊडुवक्षिगळ् जानकिया ।। ६९ ।।

ननॆय सरल्गळंतॆ नॆरॆदिंगळ तण्गदिरंतॆ कंतुरा-
जन करवाळमॆय्वॊळपिनंतॆ नवोत्पल दामदंतॆ पू-

---

से, आँखें फैलाकर, जी भरकर देखा । ६४ उपस्थित राजाओं में कइयों ने खड़े होकर, झुककर, टेढ़े होकर, अनेक भंगिमाओं में जानकी के रूपाश्चर्य को चित्रवत् निश्चल अपलक नेत्रों से देखा । ६५ राजकुमारों ने जानकी को इस तरह देखा, मानों वे अपने अन्य इंद्रिय-व्यापारों को भूलकर केवल दर्शनेन्द्रिय-व्यापार में ही खो गये हों । ६६ मन ही दृष्टि बनकर और विषय मानों केवल स्त्री हो, राजकुमारों की दृष्टि ने सीता को स्पर्श किया । ६७ तत्पश्चात, वृद्धा कंचुकी ने उँगली रखकर उपस्थित राजकुमारों के वंश, पराक्रम (आदि) का परिचय दिया । ६८ इस तरह बताने पर, उसकी, जिसकी पलकें अधिक मोटी और भौंहें टेढ़ी हैं, आँखों को शीघ्र स्पर्श करने पर वे (आँखें) ऐसे प्रतिबिंबित हुईं, मानों मुख-रस-रूपी रस-समुद्र में सुशोभित मीन (का सौंदर्य) हो । ६९

विन मळेयंतॆ तुंबिगळमालॆ तॆरंबॊळेवंतॆ लोललो-
छन रुचि सुत्तिमुत्तिदुदशेष नृपाल सभांतराळमं ॥ ७० ॥

अंतु नोडि—

ॲरगदॆ पूत चंपकवनक्कॆ नमेरु महीरुहक्कॆ बं-
दॆरगुव चंचरीकदवोॆलाकॆय केकरमन्यराजक-
क्कॆरगदॆ राघवंगॆरगॆ कंचुकि कण्णरिदा लतांगिग-
ळ्किरॊळभिवर्णिसल् बगॆदळा धरणीश गुणैक देशमं ॥ ७१ ॥

प्राकृतनल्लनी दशरथाग्रतनूभवनेकवाक्यना-
शाकरि कर्ण चामरयशं चरमांगननंतवीर्यनि-
क्ष्वाकु कुलामृतार्णव सुधाकिरणं रणमेरु लोक लुं-
टाक निदाध ताप हर वर्षण मेघनुदात्तराघवं ॥ ७२ ॥

करियं काममं बिस पां- * डुरवर्ण रामनिदुवॆ भेदमभेदं ॥
निरतिशयमप्परूपिं *वरनागल् निनगॆ तक्कनी रघुवीरं ॥ ७३ ॥

ॲंबुदुमासमयदॊळा विद्याधर महत्तरं विधिपूर्वकमाविषम चापमनर्चिसुवुदुं—

रसना शंपा शतं संचळिसॆ पुदियॆ फूत्कारमाशांतमं द-
ळ्ळिसॆ वह्निज्वालॆ दीर्णानन कुहर सहस्रंगळि कण्गळिंदॆ ॥

---

उसकी आँखों ने उपस्थित राजसभा के हृदयों को, पुष्पबाण की तरह, पूर्णिमा के चंद्र की ज्योत्सना के समान, कामदेव के खड्ग की चमक की भाँति, उत्पल पुष्प के हार-सा, पुष्प-वर्षा-सदृश, भ्रमर-समूह की कांति के समान, घेर लिया। ७० इस तरह देखा, जिस तरह भ्रमर खिले हुए चंपा पुष्प के बन को न घेर करके पौधों को घेर लेते हैं, सीता की आँखों ने अन्य राजकुमारों को न देखकर राम को निहारा तो उसे कंचुकी जान गयी और वह राम के गुणों का वर्णन करने लगी। ७१ यह राम असामान्य है। वचन निभानेवाला है। दिग्गजों का कान उमेठने का यश रखता है। अनंत बलवान है। इक्ष्वाकु-कुल-रूपी अमृत-समुद्र के लिए चंद्रकिरण के समान है। रणवीर तरंगतम शवर के अभिमान (गर्व) का अपहरण किया है। उदात्त है। ७२ कामदेव काला है और यह गौर—इनमें इतना ही अंतर है, अन्यथा अभेद है। अतिशय रूपवान यही तुम्हारा वर बनने योग्य है। ७३ —ऐसा कहने पर, उस समय विद्याधर अधिकारी ने धनुष को विधिवत् पूजने पर, बिजली-सदृश सैकड़ों जिह्वाएँ चलने लगीं, फूत्कार दिगंतों तक सुनायी पड़ा, अग्नि-ज्वाला हजार मुखों में प्रज्जवलित होकर चिनगारियाँ भड़कने

णदेसेगंगारंगळेतं केंदरे फणसहस्रंगळं बिर्चि कण्ग-
विसि वज्रावर्तं चापं पडेदुदु भयमं काळ काळाहिरूपं ॥ ७४ ॥

सिडिलंतें मोळगि नेलनं ✻ पोडेयुत्तुं पत्तु देसेगव्वळिसुत्तुं ॥
पडेदुवगुर्वं जवनेदें- ✻ गिडे वज्रावर्तं सागरावर्तगळ् ॥ ७५ ॥

आगळवर मुसकमं कंडु भयंगोंडु खचर मंडलं प्रभामंडलंगे कन्ने कैसार्दळेंदु पेरसार्दु नोडुतिर्पुदुं—

ई वज्रावर्तं कोदंडमनवयवर्दिदेरिसल् साल्व दोर्द-
डावष्टंभ प्रचंडं जनकजेगे वरं वर्पुदबी व्यवस्था-
रावं कर्णावतंसं पसरिसे निजपीठंगळिंदेळ्दुदागळ् ।
तीवुत्तिर्पन्नेगं भूषणरुचि ककुभानीकमं राजलोकं ॥ ७६ ॥

मनसिजनुं चंद्रमनुं ✻ दिनकरनुमनेकरेके नेरेदरी पेळें ॥
बिनेगं नृपतनयर्बि- ✻ ल्लनेरिसल् तम्म बेळगे बेळगेने बंदर् ॥ ७७ ॥

अंतु बंदगुर्वुपर्वे बिगुर्विसिद बिल्गळं कंडु भयगोंडु—
उरियं कारुव केंडमं करेव बिल्लं कंडेविल्लुक्केवं ।
तरुणीरत्नमनिळ्दुकोळ्व समकट्टिदट्टिदं खेचरं ॥
मरुळदं जनकं व्यवस्थेयनोडंबट्टारो कल्याण त-
त्परी मंगळ लग्नदोळ् कुळिकदंष्ट्रा लग्नमं सैरिपर् ॥ ७८ ॥

---

लगीं, हजार फणों को फैलाकर, भयानक आँखें दिखाता हुआ वज्रावर्त, धनुष ने भीकर स्वरूप धारण कर लिया । ७४ वज्रावर्त, सागरावर्त धनुषों ने घनगर्जना की तरह गरजकर पृथ्वी को कँपाते हुए, दसों दिशाओं में व्याप्त होते हुए, भयंकर रूप धारण कर यमराज की छाती को भी दहला दिया । ७५ उस समय खेचरों के आनंदोल्लास को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कन्या (सीता) प्रभा-मंडल की ही हो गयी । इतने में यह घोषणा सुनकर कि इस वज्रावर्त धनुष को उठाने की शक्ति (क्षमता) रखने वाला राजा इस सीता का पति बन सकता है, अपने-अपने आसन से उठ खड़े हुए राजाओं की आभरण-शोभा को उपस्थित राज-समूह ने देखा । ७६ अपने वैभव का प्रदर्शन करते हुए धनुष उठाने के लिए आगे आनेवाले राजकुमारों को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों कामदेव, चंद्र, सूर्य अनेक संख्या में वहाँ उपस्थित हुए हों । ७७ —इस तरह आये हुओं का शौर्य अधिक होते हुए भी वश में न आनेवाले धनुष को देखकर वे डर गये । अग्निज्वाला उगलनेवाले, चिनगारी बरसानेवाले धनुष को देखकर, पीछे हटनेवाले राजकुमारों को देखकर खेचरों ने जनक से कहा कि सीता

अहिदर्शनमल्तु शुभा-* वहं विवाहक्के विषममीमार्गमहि ॥
ग्रहणं मुन्नं पाणि-* ग्रहणं बळियं गणिन्नवघटितमोळवे ॥ ७९ ॥
मधुपर्कमल्तु मंगळ* विधानदोळगोंदुमल्तु पावं पिडिवी-
विधि कन्या परिणयन* प्रधान कार्यगडिन्नवघटितमोळवे ॥ ८० ॥
कुडुवें जानकियं पिडि* दोडजगरमनेंदु मुन्न ,पेळ्दोडेयागा-
रूडमं कल्तु विवाह-*क्कोंडरिसुवं बरिदे पिडिवनावनो पावं ॥ ८१ ॥

दूरदोळंजदीक्षिसुव कणगलिगळ् नृपरारूमिल्लेनल्
सारेवरेल मनंगिडद मेय्गलियावनो बाहुवीर्यदिं-
दाखिनेत्तलार्पनेनलेरिसुवुद्धत वृत्ति नाडेयुं
दूरमिवर्के बिल्वेसरनिट्टवनुर्विगे नंजनिट्टवं ॥ ८२ ॥

अेंदु नेरेदरसुमक्कळेल्लराबिल्लं कंडु बलगरं पोदेदंते पेडं मगुळे—

देशाधीश तनूभवर् सेडेवुदुं साकेत सिंहासना-
धीशं कंडु दरस्मितं दशरथं भ्रूवल्लरी पल्लवा-
देशं नोडे मुखाब्जमं सभेयिनेळ्दिं तुंगवंशं सुरें-
द्राशादंति बलं जिताहितबलं दुर्वार बाहाबलं ॥ ८३ ॥

---

उन्हें सौंपी जाये। इस बात को सुनकर जनक ने यह कहकर उनकी निंदा की कि वे विघ्न-संतोषी है। ७८ मंगल कार्य के इस अवसर पर सर्प-सदृश इस धनुष का दर्शन तो उपस्थित राजाओं के लिए पाणिग्रहण न होकर सर्पग्रहण है; यह स्वयं सिद्ध (सत्य)है। ७९ विवाह-समय का यह मधुपर्क भी स्वीकार नहीं है। सर्प को पकड़ने का यह क्रम भी कन्या-परिणय की रीति में नहीं है। तुम लोगों के लिए तो यह विधि नियम है। ८० जनक की इस घोषणा को सुनकर कि इस कालसर्प को उठाने पर सीता दी जायेगी, खेचर कहने लगे कि मृत्युस्वरूपी इस सर्प को कौन उठावेगा? ८१ दूर से बिना डरे धनुष को देखनेवाले वीरों ने सोचा कि इस धनुष को उठानेवाला कोई वीर (बचा) नही है, ऐसा कोई साहसी भी नहीं है। वे कहने लगे कि इस तरह की स्पर्धा की योजना करानेवालों ने काले सर्प को धनुष नाम देकर अन्याय किया है। ८२ —उस धनुष से डरकर राजकुमार पीछे हटने लगे। इस तरह पीछे हटते हुए राजकुमारों को साकेत नगर के राजा दशरथ ने देखा और अपने पुत्र राम का मुख देखा। संकेत पाकर अत्यंत वलशाली और शत्रु-भीकर माना जानेवाला राम सभा में उठ खड़ा हुआ। ८३ —यूँ उठा तो, देखनेवालों के प्रतिबिंब उसकी

अंतु तळर्वुदुं—

जन नयन प्रतिबिंबं॥तनुरुचियोळ्पोळेये नडेव नेय्दिल्गोळनं ॥
नेनेयिसि माण्दने रामं॥नेनेयिसिदननुक्षणं सहस्रेक्षणनं ॥ ८४ ॥

बलभद्रं रजताद्रि बर्पतेरदिं वंदं धनुर्दर्शना-
कुलरं राजतनुजरं स्मितमुखं नोडुत्तुमुद्भ्रूलतं ॥
केलरं मूर्छेगे संदरं केलवरं बेळ्कुत्तु बेन्नितरं
केलरं वेक्कसमुत्तरं केलबरं शंका विषातंकरं ॥ ८५ ॥

अंतेय्देवर्पुदुं—

पदनख दीप्ति मंजरि निचोळकदंतिरे तन्ननावगं ।
पुदियलोडं बिगुर्वणे रघूद्वह सन्निधियिंद दृश्यंम-
प्पुदुमिळिदाय्तु चापलतॆ रोहणशैल विषापहार र-
त्नद वितताशु तळ्तडरे निर्विषमाद महा विषाहिवोल् ॥ ८६ ॥

आगळा विषम कोदंडमनेरंड कांडमं बगेवंतु बगेदु—

पदुळ निर्देडगय्योळोत्ति रघुजं कोप्पं पदांगुष्टम्-
लर्दोळिट्टीरिसॆ कालदंड निभमं कोदंडमं भूतळं ॥
पदुळंनिदुर्दे शेषकंठ कठिनास्थि श्रेणि नुर्गागदि ।
दुंदे कूर्मोन्नत कर्परं नळिदु बेन्नं पत्तदें माण्दुदे ॥ ८७ ॥

इर्मे भरंगेय्दने गोले ॥ गोर्मेदिलोत्तिदनगुर्वु मेय्वेत्तुदना ॥
कार्मुकमं रघुवीरन ॥ दोर्मडळ शक्ति मनुज साधारणमे ॥ ८८ ॥

---

देहकांति में सुशोभित हुए। गतिशील कमल-सरोवर के समान पग बढ़ाता हुआ आनेवाला राम सहस्राक्ष-इंद्र के समान दिखायी पड़ा। ८४ बलभद्र राम ऐसा चला आ रहा था, मानों स्वयं रजताद्रि (पर्वत) ही चला आ रहा हो और धनुष को निहारनेवाले राजकुमारों को देखकर मुस्कराते हुए, उसे उठाने में असमर्थ हो मूर्छित हुओं को देखकर सहानुभूति दर्शाकर आगे बढ़ा। ८५ —यूँ आते हुए, उसके चरण-नखों की कांति कवच के समान रहकर सदा उससे आवृत रहने पर, रघुराम की उपस्थिति से भयभीत हो सम्मुख स्थित वेगहीन धनुष ऐसा प्रतीत हुआ, मानों कनक पर्वत के विषापहार रत्न-दर्शन से विष त्यागा हुआ महासर्प हो। ८६ —तब उस धनुष को कपास का कांड (रूई का पौधा) समझकर, सीधा खड़ा होकर, बायें हाथ से पकड़कर धनुष के छोर को पैर के अँगूठे में रखकर, धनुष, जो यमदंड के समान था, को उठाने के कारण भूमंडल शांत रहेगा ? शंका हुई कि

पुलकं जानकिगुत्सवं जनकराजंगुम्मळं खेचरा-
वलिगुद्वेगभरं नरेंद्र सुत संदोहक्कें सम्मोहनं ॥
ललनाश्रेणिगे विस्मयं पुरजनक्काकर्षणं लोचना-
वलिगाय्तेरिसि नीवि जेवोंडेये वज्रावर्तमं राघवं ॥ ८९ ॥

तदनंतरं—
समदं लीलेयिनेत्ते खेचरवलं किळ्तत्ति पारित्तनु-
क्रमदिंदानतमागे कोप्पु पिरिदुं लज्जानतं राजलो-
कमणं बेक्कसमुत्तुदेरिसुवुदुं कोदंडमं रामन
श्रमदिं मन्मथनागळेरिसदे मारेच्चं पुरस्त्रीयरं ॥ ९० ॥

अवतंसमादुवमर
स्तवनंगळ् सकळ जनद जयजय निनदं ॥
किविसद्दं किडिसिदुदु
त्सव पटह ध्वनिगळुण्मि पोण्मिदुवागळ् ॥ ९१ ॥

ऎत्तिदुवु मंगलध्वज- * मेत्तिदुदु सितातपत्रवागसमं पो
त्तेत्तिदुदाशीर्वादं * मुतिन सेसेगळनिक्किदर् माननियर् ॥ ९२ ॥

आगळा बळन दोर्बलक्कें कंचुकि रोमांच कंचुकित शरीरेयागि

---

महाशेष की रीढ़ की हड्डी टूटे बिना रह सकेगी ? । ८७ राम ने एक बार से अधिक (वार) धनुष को छुआ ? नहीं। भंयकर आकार के धनुष को एक बार पैर से दवाकर उसे मानों सर्तक कर दिया। उसकी अद्वितीय शक्ति सामान्यों में थोड़े ही है ? । ८८ वज्रावर्त धनुष को राम के द्वारा उठाने से सीता को रोमांचन हुआ, जनक को हर्ष हुआ, खेचरों को चिंता हुई, राजकुमारों को मतिभ्रांति हुई, स्त्रियों को विस्मय हुआ, पुरजन आर्कषित हुए। ८९ तत्पश्चात, धनुष को राम द्वारा अनायास उठाने के कारण खेचर-समूह विवाह-मंडप त्यागकर चला गया। धनुष राम के वश में होने के कारण उपस्थित राजकुमारों ने लज्जा से सिर झुका लिया था। चढ़ाये हुए धनुष को नीचे रखकर राम ने पुरस्त्रियों पर सम्मोहनास्त्र फेंका। ९० इसे देखकर जयजयकार करनेवाले देवताओं के जयघोष उपस्थितों के कानों के लिए कर्णाभरण वन गये और अन्य स्वर सुनायी नहीं पड़े। ९१ मंगल ध्वजाएँ और श्वेत छत्र आकाश को छूने लगे। सुहागिनों ने आशीष के रूप में मोती वरसाये। ९२ —तब राम के सौंदर्य को देखकर पुलकित हो, वृद्धा कंचुकी ने निवेदन किया कि सीता के मनकी इच्छा पूर्ण होने के कारण इसी मंगल मुहूर्त में श्रीराम को फूलों से सजावें (श्रृंगार करें)।

जानकीदेवि निजमनोरथं सफलवादुदिदुवें पुण्यावह समयमखिल राजकुल शेखरनं कुसुमशेखरनं माळ्पुदेंदु विन्नविसें—

आवेंडें हंसिगीनडेंय चेंल्वेंनें नूपुरदिंचरं स्मरं ।
जेवोंडेंदंदमागें मृदुपादतळंगळ केंपु कूडें कें-
दावरेंवूगळं केंदरुवंतिरें कुंतळ सौरभक्कें भृं-
गावळि मेलें पीलिदळेंमंतिरें बंदळदोंदुलीलेंमिं ॥ ९३ ॥

अलर्गणेंयनंगजंगी-
यलेंदु रति वर्प माळ्केंयिं मालेंयना ॥
ललितांगि पिडिदु कण्गं
केंलक्कमा दाशरथिय बगेंगं बंदळ् ॥ ९४ ॥

अंतुबंदु—
मालेंयमेलें तुंबिगळमाळें तेंरंबोंळेंदाडें वेरें पू-
मालेंय लीलेंयं केंदरें केकरमालें शिरीषमालेंयं ॥
सोलिसें नीळ्द बाहुलतें तोळ मोंदल् मदनानुरागमं ।
सालिडें सार्दु सीतें रघुवंश नमेरुगें मालेंसूडिदळ् ॥ ९५ ॥

तनिसोंकिं मेंयगें रोमांचमनोंदविसि रामंगें वैदेहि नीरे-
जनिसर्गामोद गंधोदक सवनमनित्तळ्किरिं वाहुमूलं ॥
स्तनमूलं नाभिमूलं त्रिगुणिसें समनश्शेखरं माडि कंद-
र्पन वामोपांतदोंळ् रंजिसुव रतिय सौंदर्यमं सूरेंगोंडळ् ॥ ९६ ॥

---

सीता को चलकर आते हुए देखकर ऐसा लगा कि और किस हंसिका (हंसी) में यह भगिमा है ? वह चली तो उसके द्वारा पहनी हुई घुँघरुओं की मधुर ध्वनि मन्मथ के धनुष की टंकार के समान थी, उसके कोमल चरणों की लालिमा लाल कमल का अपमान कर रही थी, केशराशि की सुगंधि के कारण भौरे चंद्राकार में घेर रहे थे । ९३ हाथ में वरमाला लिये वह राम के पास आयी तो ऐसा प्रतीत हुआ, मानों कामदेव को पुष्प-वाण देने के लिए रतिदेवी ही आ रही हो । ९४ —इस तरह आकर, उस कुसुममाला पर मँडरानेवाले भ्रमरों का समूह एक अन्य पुष्पमाला के समान दृष्टिगोचर हुआ । सीता की दृष्टि शिरीषपुष्प की माला से बढ़-कर (सुदर) थी; लतारूपी बाहुओं से अनुराग जगाती हुई सीता आकर रघुवंश-तिलक राम को पुष्पमाला पहनायी । ९५ अपने स्पर्श से राम के शरीर में रोमांच जगाकर सीता, जो रतिदेवी से दुगुनी सुंदरी थी, कमल के सुगंध से मिश्रित जल से अभिषेक कर, काँख, छाती, पेट पुनः पुलकित

बलदेवंगेवुदो बें- * वलमातनोळाद मोहदिं कृष्णं दो-
र्वलदृप्तं सेणसिदरं- * कोललुं गेललुं कडंगि पिंदने बंदं ।। ९७ ।।
आकारमल्तु वज्र * प्राकारमिदेनिसि लक्ष्मणं बरे चापं
वैकुर्वण विषम फणीं- * द्राकृतियं बिट्टु मट्टमिर्दत्तागळ् ।। ९८ ।।
गरुडोद्गार मणिच्छवि
गरुडध्वजनेनिप कृष्णनिदिरोळ् धनु त-
न्नुरगाकारमनुषसं
हरिसि निजाकृतियिनिर्पुदोंदच्चरिये ।। ९९ ।।

अंतुबंदु—
नगधरनेत्तने धनुवनेरिसने नगसानु कूटमं ।
पगेवरनेरिसल् नेरेवलंघ्यवलं बलगर्वदिंददं ।।
बगेदने पुर्बनेरिसुव माळ्केयिनश्रमदिं पोडर्पु कै ।
मिगे रिपुमर्दनं धनुवनेत्तिदनेरिसिदं जनार्दनं ।। १०० ।।
पराभविसिदं गुणप्रगुण चंड कोदंडदिं ।
परिस्फुरित पंचरत्न रुचि सागरावर्तदिं ।।
विरोधिवल पोत वीररस सागरावर्तदिं ।
सुरेंद्रधनु मुडिदंबरमनंदु पीतांबरं ।। १०१ ।।

---

(रोमांचित) होने पर कंदर्प (कामदेव)-सदृश राम के वामपक्ष पर खड़ी हुई । ९६ वलदेव राम को रक्षा की क्या आवश्यकता है? फिर भी उसके प्रति कृष्ण (लक्ष्मण) का जो व्यामोह है, उसके कारण राम का सामना (विरोध) करनेवालों को मारने और पराजित करने की इच्छा (उद्देश्य) से उसके (राम के) पीठ पीछे (लक्ष्मण) आया । ९७ जब लक्ष्मण आया तो लगा, मानों वह देह नहीं, वज्र प्राकार है और भीषण आकार का सर्प-रूपी धनुष सामान्य धनुष-सा लगा । ९८ विष-परिहारी मणिस्वरूपी एवं गरूड़ध्वजी कृष्ण के सम्मुख सर्पस्वरूपी धनुष अपने (भयानक) रूप को छिपाकर निजरूप धारण कर ले तो आश्चर्य की वात क्या है? । ९९ —इस तरह आकर, जिसने पर्वत को उठाया है, वह धनुष उठाये बिना रहेगा? पर्वतशिखरों के समूह-सदृश शत्रुबल को पराजित करने की क्षमता का अलंघ्य साहसी वलदेव के लिए यह सामान्य धनुष क्या चीज है? अनायास जनार्दन द्वारा उठाये हुये धनुष को उसने चढ़ा लिया । १०० अति वलशाली पीतांवर (कृष्ण) ने जिस तरह सागरों से आवृत्त राजाओं के अभिमान को चकनाचूर कर दिया था, उसी तरह सागरावर्त के अभिमान को

उदधि कलंकिदत्तु देसॆ तल्लळिसित्तमराद्रि गाळिगॊ-
ड्डिद सॊडरंतॆ संचलिसिदत्तु नॆलं नडगित्तु दिग्गजं ॥
मदमुडुगित्तु खेचरवलं पॆळरित्तु करुत्तु दिव्य चा-
पद तिरुवाय्गॆ दिव्यशरमं तरॆ दोर्वलशालि लक्ष्मणं ॥ १०२ ॥

करकमलंगळं मुगिदु लक्ष्मणदेव शरण्यमॆंव दे-
वर नुडि पॊण्मिदत्तलक पॆर्मळॆ कॊंडुदु देवदुंदुभि ॥
स्वरमॊगॆदत्तवर्कॆगिदु खेचरराजमहत्तरं भया
तुरनॆमॆयिक्कदॆंटनॆय केशवनं वॆरगागि नोडिदं ॥ १०३ ॥

अवटं वज्रावर्त- ॥ क्कॆ दिव्यमॆनिसिद हलायुधंवॆरसु वलं-
गदॆवॆरसु सागराव ॥ र्त दिव्य चापक्कुपेंद्रनधिपतियादं ॥ १०४ ॥

चंद्रास्यॆयरं मनदॊळु- ॥ पेंद्रंगीरॊवंदिवरं निर्जित दे-
वेंद्र गणिकॆयरनंकद ॥ चंद्रध्वजनळ्कि कप्पमीवमॊलित्तं ॥ १०५ ॥

आगळनेकार्चनॆगळिं धनुर्युगलमं जनकनर्चिसुवुदुं—
अनरण्यसुतं दशरथ॥जनपति करिघटॆयॆळश्वदरिदॊळुपेंद्रं ॥
जनक तनूजॆयुमं रा-॥मनुमं मुंदिट्टु मिथिळॆगभिमुखरादर् ॥ १०६ ॥

अंतु स्वयंवरशालॆयिं तळर्वुदुं—

---

मिटाया तो ऐसा लगा, मानों आकाश में इंद्रधनुष उदय हुआ हो। १०१ लक्ष्मण ने धनुष पर बाण चढ़ाया तो समुद्र मानों मथ गया, दिशाएँ तड़प उठीं, मेरु पर्वत हवा के झोंके से टकराये दीप-सा चलने लगा, धरती काँप उठी, दिग्गजों का मद नाश हुआ, विद्याधर बल डर गया। १०२ हे भगवन लक्ष्मण! रक्षा करो—कहते हुए देवताओं ने हाथ जोड़ा और फूल बरसाये। देव-दुंदुभी सुनायी पड़ी। उस ध्वनि को सुनकर खेचर भयभीत हुए। विद्याधरों के अधिकारी ने भय-मिश्रित आश्चर्य से अष्टम केशव को देखा। १०३ (इस तरह) पराक्रमी बलदेव (राम) ने हलायुधधारी हो वज्रावर्त धनुष को और गदाधारी अच्युत (लक्ष्मण) ने सागरावर्त धनुष को (अपने) काबू में कर लिया। १०४ तब जनक के अनुज चंद्रध्वज ने मन में संकल्प किया कि अपनी अठारह चंद्रमुखी पुत्रियों को उपेंद्र (लक्ष्मण) को दे दूँगा। १०५ अनरण्य के पुत्र दशरथ राजा ने गज-समूह के साथ, लक्ष्मण ने अश्वदलों के साथ, राम और सीता का अनुसरण करते हुए नगर की ओर प्रस्थान किया। १०६ बुर्ज को हिलाकर, गोपुर में चढ़कर, दुर्ग को लाँघकर, अटारी पर उड़-चढ़कर, मार्ग के चौक से आकाश के पेट की ओर लपकी-सी,

अट्टळेयं पळंचि पुरगोपुरमं परिदेरि कोंटेयं ।
मेट्टि सुधा गृहावळिगे लंघिसि हर्म्यतळक्के पाय्दु चौ-
वटमनेय्दि देवगुळदादलेयिं गगनोदरक्के दिं ।
किट्टुदु दुंदुभिस्वनमनेरिसिं भोंकने शंकनिस्वनं ।। १०७ ।।

आगळा पुरजनंगळुत्तुंग माटकूट प्रासादंगळनेरि—
तलेवरिदाने सुत्ति पलवुं बरे तळ्तिरे मेघडंबरं ।
ललनेयरिक्के चामरमनिक्केलदानेय पुष्पकंगळोळ् ।।
नेलसि कुळाचळाकृतियनेरि गजेंद्रमनिंद्रनंते ब-
र्पलघुपराक्रमं दशरथं परिपूर्णजगन्मनोरथं ।। १०८ ।।

वनधितरंगदंतिरे तुरंग दळं बरेवाजि राज व-
ल्गनदिनुरस्स्थलंबिडिदु लक्ष्मिय केकरदंते तोरमु-
त्तिन तिसरं तेरंबोळेये मिंचिनवोल् मणिकुंडलांशुळ् ।
तोनेये कंदर्पिनोळ् मदनदंतिरे बर्पवनल्ते लक्ष्मणं ।। १०९ ।।

तनिसोंकि तनगीये हर्षभरमं लज्जाभुराकुंचिता-
नने वैदेहि तदीय कुंतळ सहस्रक्कित्तु तिर्यग्विळो-
कनमं हेम वरूथदोळ् तेलसि नेत्रानंदमं माळ्प रू-
पिन चेल्वि मदनंगे लाघवमनित्ता वर्पवं राघवं ।। ११० ।।

चल नीलाचल रत्नकूटमेने कालगोदानेयं दोर्भु जं-
गलता दंष्ट्रिके कण्गुविसुविनं वज्रांकुशं मौक्तिका-

---

बजायी हुई शंख-ध्वनि ने दुंदुभी-ध्वनि को मात (फीका) कर दिया । १०७ तब नगर की जनता ने अटारियों पर चढ़कर देखा कि, हाथियों के समूह पर छत्रधारण कर, परिवार की स्त्रियाँ हाथियों के पक्ष की पालकियों में बैठकर चामर डूला रही थीं कि कुलपर्वत-सदृश ऐरावत पर चढ़कर आनेवाले इंद्र के समान अपरिमित पराक्रमी दशरथ आ रहा है । १०८ उबलते हुए समुद्र की लहरों के समान, अश्वदल के बीच पुरुषोत्तम के वक्षस्थल पर निवास करती हुई लक्ष्मी के दृष्टिक्षेप की तरह मोती का तीनलड़ी हार सुशोभित होने पर रत्नकुंडलों की कांति को बिजली-सा बिखेरता हुआ, मन्मथ की भाँति जो आ रहा है, वही लक्ष्मण है । १०९ देहस्पर्श से मन को आनंद होने पर, शर्म से मुँह झुकाई हुई सीता राम की केशराशि को वहीं से देखकर स्वर्ण-रथ पर बैठकर आँखों को आनंद प्रदान करनेवाले रूप (सौंदर्य) से कामदेव के सौंदर्य को मात करते हुए जो आ रहा है, वही राघव है। ११०

वलि वक्षस्सरसीमृणाळिकॆ बॆडंगं वीरॆ चंद्रार्करं।
गॆलॆवंदा बरुतिर्पवर् भरतशत्रुघ्नर् पुरोभागदॊळ् ॥ १११ ॥

ऎंदु पुरजन परिजनंगळॊरॊर्वरॊळ् नुडियॆ पुरमं पॊक्कु करुमाडद मुंदण विवाहमंडपद मुंदॆ वाहनंगळनिळिदु पुण्यपुण्यांगनाजनद तळिव सजळ धवळ कळमाक्षतंगळिनळक वल्लरियं कुसुमिसुत्तुमॊळगं पुगुवुदु—

हरिनील स्तंभमं जागद पडलिगॆयुं तुंग भृंगारमुं नॆ-
म्मिरॆ भासद्भित्तियं सुत्तिरॆ सुरुचिर चित्रं हरिद्रत्न मध्या ॥
जिरमं मुक्तावली रंगवलि बळसॆ कर्केतन द्वार शाखां
तरमं रत्न स्फुरत्तोरणमॆळसॆ बॆडंगादुदुद्वाह गेहं ॥ ११२ ॥

सुरदंपतिगळ विद्या-
धर दम्पतिगळ नरेंद्र दम्पतिगळ कि-
न्नर दम्पतिगळ विद्धं
विराजिसित्तदर पॊळॆव पळकिन कॆरॊळ् ॥ ११३ ॥

पुरु जिन चरिमं भरते-
श्वर चरितं सगर चक्रवर्तिय चरितं ॥
हरिवंश वीर पुरुपर
चरितं बरॆदिर्दुवल्लि कॆलकॆलवॆडॆयॊळ् ॥ ११४ ॥

---

गतिशील नीलाचल के रत्न-समूह के समान, हाथी पर चढ़कर सर्पलता-सदृश अपने बाहुबल से दर्शकों की आँखों को भयभीत कराते हुए हाथ में धारण किये हुए वज्रांकुश, वक्षस्थल पर पहने हुए मोती का हार शोभा फैलाने पर सूर्य-चंद्र को पराजित करने की शक्ति के साथ जो सामने दिखायी पड़ते हैं, वे ही भरत-शत्रुघ्न हैं। १११ —इस तरह लोग परस्पर कह रहे थे कि वे नगर में प्रविष्ट कर राजमहल के सम्मुखवाले विवाह-मंडप के सामने अपने वाहनों से उतरकर, भद्रस्त्रियाँ अक्षत, सुगंधित द्रव्यों का सिंचन कर रही थीं कि भीतर गये। नीलरत्न के स्तंभ मरकत के कीलों और सुवर्ण-कलश से सुशोभित हुए। दीवार में मनोहर चित्र लटकायी गयी इंद्रनील-मणि का मध्यभाग मोती की 'रंगोली' से आवृत चाँदी के द्वार को रत्न-तोरणों से सजाया। इस तरह स्वयंवर-गृह की शोभा निखर उठी। ११२ देव-दम्पतियों, विद्याधर-दम्पतियों, राज-दम्पतियों, किन्नर-दम्पतियों के प्रतिबिंब-चंद्रकांत शिला की दीवारों पर प्रतिबिंबित हुए। ११३ वहाँ अनेक स्थानों पर पुरु परमेश्वर, भरत चक्रवर्ती, सगर चक्रवर्ती और हरिवंश

आमोद मुदित मधुकर*दामकदोळ् नीलरत्न धामं मल्ली ॥
दामकदोळ् मुक्ताफल*दामं तडवादुवोडनें मणिमंडपदोळ् ॥ ११५ ॥

आलंबित मणिघंटा
जालकदेडेयोळेळले कट्टिद मुक्ता
मालकेयं नव विचकिल
मालकेगेत्तेळसि सुळिवुवळि कळभंगळ् ॥ ११६ ॥

मंगळ गायनियर गी-* तगंळनुपहार कुसुम मधुपान व्या-
संगदोळिदेंळदुंबिग *ळिगोरलिर्मडिसिदत्तु राजांगणदोळ् ॥ ११७ ॥

पळिकिन कंभगंळ् क-
ण्गोळिसुव माणिकद सोडर्गळि नाडेमनं-
गोळिसिदुवु लसित भसितो-
ज्ज्वलगात्रं स्थाणु नोसल कण्दोरिदवोल् ॥ ११८ ॥

अरुणमणि दीप रुचियिं*परभागंबडेद नीलरत्न स्तंभां
तरदबलाप्रतिबिंबं *सिरि नेर्मिदळेनिसिदत्तु पीतांबरनं ॥ ११९ ॥

उगुळ्दपुदिंद्रचाप लतेयं नवरत्न वितान माडिद-
त्तगुरुव धूपधूम लते तुंबिय नीलद मेय्गे हास्यमं-
पगलनिरुळ्गे माणिकद दीविगे कैसेरेगोट्टुदुत्पता-
केगळ निलंगेमाडिदुवुमार्ग निरोधमना निवासदोळ् ॥ १२० ॥

---

के अनेक वीर पुरुषों के चारित्र्य-संबंधी विषय (इतिहास) लिखे गये थे। ११४ रत्नमंडप में आनंद से उड़नेवाले भ्रमरों के समूह नील रत्नमणि की माला के समान और भ्रमरियों के समूह मोतियों के हार के समान सुशोभित हुए। ११५ झूलती हुई रत्नमाला और मोतीमाला को खिले मोगरा पुष्प माला समझकर भ्रमित हो भ्रमर शिशु (उन्हें) घेर रहे थे। ११६ मंगल गीत गानेवाली गायिकाओं के गीतों की मधुरध्वनि पुष्पों पर बैठकर मधु चूसनेवाले भ्रमरों की गुनगुनाहट को दुगुना कर रही थी। ११७ चंद्रकांतशिला के स्तंभों में चमकनेवाले माणिक्य के दीप मन को आनंद प्रदान कर ऐसा प्रतीत हो रहे थे, मानों भस्म-भूषित महेश्वर ने अपने ललाट के तृतीय नेत्र को खोल दिया हो। ११८ नीलरत्न के स्तंभ में चित्रित स्त्री-रूप पर लाल रत्न की दीपकांति पड़ने के कारण उसकी शोभा निखरी तो ऐसा प्रतीत होता था, मानों पीतांबर राम को लक्ष्मीदेवी ने (अपनाकर) संतुष्ट किया हो। ११९ उस राजमहले में ऐसा दिखायी पड़ा, मानों कामदेव ने इंद्रधनुष-लता को थूक दिया हो, नवरत्न-समूह

आ मंटपद मध्यप्रदेशदोळ्—

मरकत मंगल वेदिकॆ
धरांगना केशबंधदंतिरॆ मुक्ता-
विरचित रंगवलि मनो
हरमाट्टुदु तॊळगि पॊळॆव तलॆदुड्डुगॆयवोल् ।। १२१ ।।

पसुर्वरल जगलियॊळ् रं-*जिसिट्टुदु चॆंबॊन्न पट्टवणॆ पसुरॆलॆयिं
मुसुकिद तावरॆगॊळदॊळ*पसुर्गॊळिदु मरल्दरल्द पॊंदावरॆवोल् ।। १२२ ।।

अॆळ अडकॆय गॊनॆयिं मा-*तुळंगदिं नारिकेळफलदिं द्राक्षा
फळदिं कांचन कदळी*फळदिंदॊप्पिट्टुदु वेदिकांतर्भागं ।। १२३ ।।

विससूत्र वितयं यवांकुर कृत गॆवेमकं पल्लवो-
ल्लसितादर्श सुदर्शनीयममल स्रक्सुंदरं पंचर-
त्न समस्तौषधि गर्भमक्षत युतं दूर्वाचितं सर्वधा-
न्य समुत्तंभित पूर्णकुंभमॆसॆदत्तावेदिका मध्यदॊळ् ।। १२४ ।।

अनुरूपं स्फटिकाब्जदॊळ् दधि सुवर्ण क्रौंचदॊळ् रोचनं ।
घन हारीतक हंसियॊळ् हरितं दूर्व राजत द्रोणियॊळ् ।।
घनसारं हरिनील शुक्तिकॆगळॊळ् कस्तूरि माणिक्य भा-
जनदॊळ् कुंकुम पंकमें मॆरॆदुवो मांगल्य साकल्यमं ।। १२५ ।।

---

खेला हो, सुगंध के धुवें-रूपी लता ने भ्रमरों के नील शरीर की हँसी उड़ायी हो, माणिक्य की दीप-ज्योति ने दिन (सूर्यकिरणों) को रात के जेल में डाल दिया हो, उत्तर दिशा में लहरानेवाली पताकाएँ वायुसंचार को रोक रही हो । १२० —उस मंडप प्रदेश में, मरकतमणि से निर्मित मंगलमय स्वयंवर वेदी (मंच)मानों भूमि-रूपी स्त्री का जूड़ा था और मोती से निर्मित मनोहर रंगोली सिर के आभरणों के समान थी । १२१ हरे चबूतरे पर हरे पत्तों से सुशोभित सुवर्णपीठ ऐसा सुंदर दिखायी दे रहा था, मानों कमल-सरोवर में हरा वर्ण मिटकर लालिमा से पूर्ण लाल कमल । १२२ कच्चे सुपारी का खौद (गुच्छा) से, नारियल, द्राक्ष, केले आदि फलों से मंच का भीतरी भाग भरा हुआ था । १२३ कमल-नालों से बाँधकर (जकड़कर) गेहूँ के धान्य से बनाये गये कंठाभरण से सजाकर, अंकुरों को ढक्कन के स्थान पर रखकर, पंचरत्न एवं समस्त औषधियों से, अक्षत (धान्यों) से मिश्रित समस्त धान्यों से भरा पूर्णकुंभ मंच के बीच सुशोभित हो रहा था । १२४ अनुरूप (यथायोग्य) स्फटिक कमल में दही, सुवर्ण सारस में गोरोचन, गहरे हरे हंस में दूर्वा, चाँदी के दोने में कपूर, नीलवर्ण

मिसुगुव कॆंदळिरॆ द्विगु-*णिसॆ मॆगॊगॆवंशुमालॆ वेदिकॆयॊळ् रं-
जिसिदुवॆळनेसरं नॆनॆ-*यिसुव चतुष्कोण शोण मणिकलशंगळ् ।। १२६।।

आ सकल मंगलद्रव्य संसेव्यमान मणिवेदिका मध्य विशाल कलदौत पीठदॊळ् रतियुं रतिपतियुमिर्पवोल् दंपतिगळिर्दरल्लि पुर्वभागदॊळ दशरथनिंद्रनंददिनुपेंद्र भरतशत्रुघ्न समन्वितनुमनेक मकुटबद्ध परिवृतनुमागिर्द; मत्तमपरभागदॊळपराजिता महादेवि सुमित्रॆ सुप्रभॆ कैकॆवॆरसनंत सामंत सीमंतिनियर नडुवॆ सुर पुरध्रियरबॆळसिर्दिद्रागियंतॆ महा महिमॆवॆत्तिर्पुदुमित्तल्—

रन्नद बायिनक्कॆ पलवंदद चंदद सीरॆगॆन्नव-
र्तन्नवरॆन्नदित्तॊसगॆगी नॆलदॊळ् पॆरगारुमिल्लॆनल् ।।
मन्निसि मैमॆयं मॆरॆदळंदु विदेहि विवाह गेहदॊळ्
सन्निदमाद कल्पलतॆयो सुरधेनुवॊ पेळिमॆंबिनं ।। १२७ ।।

अंतपारपुण्य पुण्यांगनाजनक्कॆ पंचरत्नदुपायनमनित्तु पळंचिनुं-गुरद नूपुरद् नूल तॊंगल संकलॆय पिडुगंकणद कलकल निनदमतनु चाप लता टंकार शरमोक्ष हूंकारदंतॆ किविसद्दं किडिसॆ, कडॆगण्ण कांति कुडिमिंचिन गॊंचलंतॆ संचलिसॆ, पॆंडवासद विलासिनी जनंगळ-

के मोती के सीप में कस्तूरी, माणिक्य के पात्र में सिंदूर, इस तरह सर्व मंगल द्रव्य एक जगह संग्रह किये गये थे। १२५ वेदी पर दिखायी देनेवाले चौकोण के रत्न कलशों का प्रकाश चमकनेवाले लाल पल्लवों को फीका कर उदित होनेवाले सूर्यप्रकाश का स्मरण दिला रहा था। १२६ —इन समस्त मंगल द्रव्यों से भरे वेदी के बीचवाले पीठ पर पति-पत्नी ऐसे बैठे थे, मानों रतिदेवी और कामदेव बैठे हों। उनके पूर्व भाग में दशरथ भरत-शत्रुघ्न के साथ ऐसे विराजमान हैं, जैसे उपेंद्र के साथ इंद्र। पश्चिम भाग में अपराजिता, सुमित्रा, सुप्रभा, कैकेयी और अनेकानेक सुहागिनों के साथ ऐसी बैठी थीं, जैसे अप्सराओं से घिरी इंद्राणी। विवाहगृह में सुहागिनियों को उपहार देने में और अपने एवं बारातवालों का अंतर किये विना अनेक तरह की सुंदर साड़ियाँ देने में, जनकपत्नी ने जो उदारता दिखायी, उससे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों देवलोक से स्वयं कामधेनु अथवा कल्पवृक्ष उतर आया हो। १२७ इस तरह अगणित स्त्रियों को पंचरत्नों का उपहार और अँगूठी, घुँघरू, कंकण आदि देकर, उनके कल-कल निनाद ने कान की ध्वनि-ग्रहण-शक्ति को बिगाड़ देने पर, उनकी कनखियों की कांति, बिजली के प्रकाश की भाँति चमक रही थी कि

गज जंगम लतॆयं सुत्तिदॆळलतॆगळॆनॆ विविधोपायन रत्न पटलिकॆगळं पिडिदॊडनॆ बरॆ बंदु—

कत्तुरिबॊट्टनिट्टु बिड्डुमुत्तिन सेसॆयनिक्कि मालॆवू-
वॆत्ति विचित्र वस्त्र मणिभूषणमं मणिभाजनंगळि ॥
दित्तु विदेहि सार घनसारद रन्नद बायिनंगळिं ।
चित्त विकासमं पडॆदळंदपराजितॆगं सुमित्रॆगं ॥ १२८ ॥

आ समयदॊळ् जनकनभिजन समन्वितं गणक गण पुनः पुनरुच्चरित पुण्याह प्रशस्त रवदॊडनॆ अगण्यपुण्य पुण्यांगना जनदाशीर्वदनादमॊदवॆयुं, मांगल्य गीत मधुर ध्वनिगळॊडनॆ मंगल पाठक पठन ध्वनि गळुण्मि पॊण्मॆयुं, रघुकुल राजभवन कलशोद्धरणमॆनिसि शुचि सुरभि सलिल पूर्ण सुवर्णकलशमनॆत्ति—

जगती जंगम कल्पवृक्षमिदॆ कैवंदत्तॆनल् बाहु शा-
खॆगळॊळ् पॊंगळसं मनंगॊळिसॆ भूपं तन्न संतान वृ-
द्धिगॆ पॊय्नीरॆरॆवंतॆ हर्ष पुलकं कैगण्मॆ हर्षाश्रु कै-
मिगॆ कैनीरॆरॆदं पळंचॆ दॆसॆयं मांगल्य तूर्य स्वनं ॥ १२९ ॥

अंतु पाणिग्रहणंगॆयिसुवुदुं—
तॆंकण गाळिय सोंकिनॊ-
ळंकुरिसिद चूतलतॆयवोल् कॆंदळमं ॥

अन्तःपुर की स्त्रियाँ, मन्मथ की गतिशील (हिलती) लता की तरह, विविध उपहारों को हाथ में लिये आयीं। माथे पर कस्तूरी तिलक रखकर, शीश पर मोती के दाने बरसाकर, पुष्पमालाएँ उठाकर, विचित्र मणि-भूषणों एवं रत्नाभरणों को देकर विदेही ने अपराजिता, सुमित्रा के मन को आनंद प्रदान किया। १२८ —उस समय जनक ने अपने परिवारवालों एवं बुज़ुर्गों के साथ (मिलकर), पुरोहितों द्वारा उच्चारण किये जानेवाले मंगल मंत्र-ध्वनि के साथ, अगणित सुहागिनियों के साथ मंगलमय गीत-वाद्य-रव से श्रीराम को पूर्ण सुवर्ण-कलश दिया, मानों विश्व का गतिशील कल्पवृक्ष ही पास आया हो, शाखारूपी उसके हाथों में सुर्वण-कलश सुशोभित होने पर अपनी सम्मानाभिवृद्धि के लिए जल सींचता-सा, चारों दिशाओं से मंगल स्वर सुनायी देने पर, आनंद से रोमांच होने पर, जनक ने राम-सीता के हाथों में तीर्थ-जल डाल (उँड़ेल) दिया। १२९ —इस तरह पाणि-ग्रहण करने पर, दक्षिण दिशा की हवा के स्पर्श से हर्षित आम्रलता-सा, राम का दाहिना हाथ

सोंकें बल करतळं पुळ-
कांकुरमोदविदुवु जानकिय तनुलतेयोळ् ।। १३० ।।
अपमानिसिदं बाला-*तपमेळसिद पुंडरीक षंडद सोबगं ।।
चपलाक्षिय कोमळ पा-*णिपल्लव स्पर्श हर्षदिं रघुरामं ।। १३१ ।।
अति ललिताकृतियं दं-*पतियं नोडिदुदु पुरजनं नोडुववोल् ।।
शतमखनं शचियं रति-*पतियं रतियं हिमांशुवं रोहिणियं ।। १३२ ।।

अंतु नेरेदु नोळ्पागळ्—
अनुविसिदुदु रजताचल-*दनर्घ्यमणिविकट कूटमं दशरथरा-
मन मणिमयमकुटं का-*मन बिल्लं बीरे बेरे निजदीधितिगळ् ।।१३३।।
मरकत मणिकुंडल र- * श्मिरेखेयिं गंडमंडळं सेवाळं
बोरेद सितकमलदंतिरे * करमेसेदं नृपकुमार चूडारत्नं ।। १३४ ।।
जयलक्ष्मिय मणिपीठं*भयानत क्षत्र वज्रपंजरमिदेनल् ।।
नयनोत्सवमं पडेदुवु*जयधीरन बाहुयुगलदंगद युगळं ।। १३५ ।।
उभय प्रकोष्ठ शाखा*सुभग धनुर्गुण किणंगळुं मणिमुद्रा ।।
प्रभेयुं गेलेवंदुवु बा*हु भुजंगन कोरल करेय फणमणि रुचियं ।। १३६ ।।

जळ बुद्बुद मालेगळवि-
चळंगळिगडल मडुविनोळ् वोळेववोलें

---

सीता के हाथ से स्पर्श होने पर उसके लता-सदृश शरीर पर रोमांच-रूपी पल्लव फूट पड़े । १३० राम ने चपलाक्षी सीता के लता-सदृश हाथों को इस तरह स्पर्श किया, मानों वाल सूर्य ने अपनी किरणों की गर्मी से पुंडरीक पुष्प के समूह का अपमान किया हो । १३१ पुरजनों ने दम्पति के सौंदर्य को उसी तरह देखा, मानों वे इंद्र-शची और मन्मथ-रतिदेवी के मनोहर रूप को देख रहे हों । १३२ —इस तरह देखते समय, दाशरथी राम का मणि-मंडित (जड़ित) मुकुट, जो चाँदी के पर्वत के अमर्घ्यमणि समूह के समान था, कि कांति कामदेव के धनुष की चमक के समान दिखायी पड़ा । १३३ मरकत रत्नकुंडल की कांति काई से आवृत श्वेत कमल के समान थी, ऐसे में राजकुमारों का मुकुटमणि श्रीराम विराजमान था । १३४ दर्शकों की दृष्टि में राम की भुजकीर्ति-प्रभा ऐसी दिखायी पड़ी, मानों जयलक्ष्मी का रत्नसिंहासन हो और भयभीत क्षत्रियों के रक्षणार्थ वज्रकवच हो । १३५ वाण प्रयोग करने के कारण घट्टे हुए दोनों हाथों पर धारण की हुई रत्न-अँगूठियों का प्रकाश, महाशेष के फणिरत्न की शोभा से बढ़कर था । १३६

पॊळॆदुवॊ निस्तुल मुक्ता-
वळिगळ् हलधर विशाल वक्षस्स्थलदॊळ् ।। १३७ ।।

पिंगिदुदंगजंगॆ कडुगाडिय गर्वमपूर्वसृष्टि चॆ-
ल्विंगिनितॆड्डमप्परॆ फणीद्र सुरेंद्र कुमाररॆंदु क-
ण्पिंगदॆ पत्तॆ चित्तदॊडनीक्षिसिदत्तु पुरांगना जनं
मंगळ भूषण प्रचयदिंदभिरामनॆनिप्प रामनं ।। १३८ ।।

राजकुमाररिकॆ सुरराजकुमारकरॊळ् मनुष्यक-
न्या जनमिकॆ मिक्क सुरकन्येयरॊळ् दॊरॆयप्परारॊ पे-
ळी जितकंतुगी जित मनोभवकांतॆगॆनुत्तुमंगना ।
राजि निरीक्षिसित्तु रघुनंदननं जनकात्मजातॆयं ।। १३९ ।।

तॊडवुगळी सरोजदळनेत्रॆय मॆय्वॆळगिंदुपश्रयं ।
बडॆदुवु नोळ्परुम्मळिसुवंतिरॆ रत्नविभूषणंगळि-
दॆडॆय विळासमं मरसिदप्पुवॆनल् तॊडवाकॆगॊप्पमं
पडॆवॆडॆगल्लमा वधुगॆ मंगळकारणमल्तॆ भूषणं ।। १४० ।।

ऎंदु पुरजनंगळति कूतूहल दिनवलोकिसुत्तिर्पुदुमा विवाहमंगल महोत्सव महामहिमॆयॊळ्—

---

उसके वक्षस्थल पर चमकती हुई मुक्तावलियाँ अमृत-समुद्र के मध्य में उठने वाले बुदबुदों के समान दिखायी दे रही थी। १३७ उपस्थित समस्तों ने उसे अपलक देखा और सोचते रहे कि सुर, नर, उरग, किन्नर-कुमारों में इतना रूपवान कोई होगा? अपने आप को अद्वितीय रूपवान माननेवाले कामदेव का अभिमान भी राम को देखकर समाप्त हुआ। १३८ राजकुमारों की बात ही क्या है? देवकुमारों में भी इसकी बराबरी कौन कर सकता है? मानव-स्त्रियों की बात रहने दो, सुरकन्याओं में सीता की बराबरी करनेवाली कौन है? लोग उन्हें इस विचार से देख रहे थे कि सौंदर्य में मन्मथ को पराजित करनेवाला राम और रतिदेवी को हरानेवाली सीता से बढ़कर कौन होगा? । १३९ सीता द्वारा धारण किये हुए आभरणों से उसकी शरीर-कांति ऐसा प्रकाश दे रही थी कि देखनेवाले मत्सर से जल जायें। वह ऐसा सुशोभित हुई, मानों (धारण किये हुए) आभूषणादि को उससे (सीता से) बढ़ती मिली, न कि उसकी शोभा की वृद्धि (आभूषणों के कारण) हुई हो। १४० —इस तरह पुरजन बड़े कुतूहल से (इन सबको) देख रहे थे। ऐसे विवाह-मंगल महोत्सव के समय,

पेररारिंतीवरेंबी जनद कळकळं पोण्मे साम्राज्यचिह्नं
पोरगागत्यंत वस्त्रादिगळनखिल लोकक्के संकल्पवर्ष ।।
करेंदत्तेंबंतु धात्रीपति जनकनुदात्तं महोत्साहचित्तं ।।
नेरेंदत्तिल्लेन्न दानक्कखिल जनमेंनुत्तुं मोगंनोडदित्तं ।। १४१ ।।

अंतु जनकं बीयद चागद पेंमेंयं मेरेंवुदुं रामचंद्रं चंद्रोदयद समुद्रदंतें पेर्चुवडेंदु—

पडेंदं शाश्वतलक्ष्मियं परहित व्यापारमं पालिसल् ।
पडेंदं पन्नगराज दिव्य धनुवं भूचक्रमं रक्षिसल् ।।
पडेंदं दर्पक रूप दर्पमनदिर्पल मूर्तियं कीर्तियं ।
पडेंदं कीळ्पडिसल् सुधाजलधियं साहित्यविद्याधरं ।। १४२ ।।

इदु परम जिनसमय कुमुदिनी शरच्चंद्र वाळचंद्र मुनींद्र चरणनख किरण चंद्रिकाचकोर भारती कर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितमप्प रामचंद्र चरित पुराणदोळ् सीता स्वयंवर वर्णनं

।। पंचमाश्वासम् समाप्तम् ।।

---

साम्राज्य-चिह्न के अतिरिक्त शेष समस्त सुवस्तुओं का किसी तरह का भेद-भाव (अपना-पराया) किये विना, उदारचित्त जनक ने बड़े उत्साह से दान दिया होगा ? । १४१ इस तरह त्यागभाव से दान करनेवाले जनक को देखकर राम का उत्साह उसी तरह बढ़ गया जिस तरह चंद्रोदय होने पर समुद्र में ज्वार आता है । इसने परहित पालन के लिए शाश्वत लक्ष्मी को पाया; भूमंडल-रक्षा-निमित्त दिव्य धनुष प्राप्त किया; मन्मथ के रूप-गर्व को मिटाने के लिए योग्य सौंदर्य पाया; अमृत समुद्र को भी नीचा दिखाने के लिए साहित्य विद्याधर ने कीर्ति पायी । १४२ कवि अभिनव पंप, जो परम जिनसमय और कमलों को शरत्काल के चंद्र के समान माने-जानेवाले बालचंद्र मुनींद्र के पदनखों के चाँदनी प्रकाश से पवित्र एवं सरस्वती के कर्णभूषण के समान है, के रामचंद्रचरित पुराण का यह सीता-स्वयंवर-वर्णन प्रकरण, पंचमाश्वास है ।

।। पंचमाश्वास समाप्त ।।

**षष्ठाश्वासं**

श्रीरामं विशद यश- ※ श्श्रीरामा रमणनर्थिजनता सुरभू-
जारामं धर्मोद्यम- ※ दौरेयनुदात्त चित्तनभिनव पंप ॥ १ ॥

अंतु रामलक्ष्मणरोळुदिनोदितमादगण्य पुण्य प्रभावमं कंडु—
सिरियुं मैमेयुमादुवग्रजरोळाय्तिल्लेन्नोळेंवेवर्दि
भरतं लोभरतं विषाद भरतंद्रीभूतचित्तं तपो-
भर तृष्णापरमप्पुदं तिळिदु तद्वृत्तांतमं कैके .मो-
हरसं कैमिगे कादलंगे पतिगंदितेंदळेकांतदोळ् ॥ २ ॥

भरतन वदनांभोजं- ※ कोरगिदुदु मनस्सरोजदोडनेत्तानुं
परिणयनोत्सव चिंता-※ भरमातन वर्गेगे वंदुदागलेवेळ्कुं ॥ ३ ॥

कनकंगं सुप्रभेगं ※ जनियिसिद विशालनेत्रे कनकप्रभेयं
जननाथ मदुवेमाडा-※तननिरदे तोडर्चु मोहपाशद तोडरोळ् ॥ ४ ॥

ऎन्ने मनदेकोडु जनकनुमं कनकनुमं वरिसि—
अनुबंध परंपरेयं※ जनियिसलेमगळ्तियादुदीवुदु निजनं-
दनेयननुरूपेयं म- ※ त्तनयंगेने दशरथगे कनकं नुडिदं ॥ ५ ॥

---

**आश्वास—६**

अभिनव पंप (कवि) श्रीराम-सा कीर्तिशाली, लक्ष्मी - युक्त कल्पवृक्ष-सदृश अपेक्षितों को वांछित वर प्रदान करता हुआ, धर्मकार्य में निरत रहा। १ —इस तरह राम-लक्ष्मण में निहित अगणित पुण्य-प्रभाव को देखकर—भरत को इस वात का खेद हुआ कि ऐश्वर्य, ख्याति—सव कुछ भाइयों को ही मिला, उसके लिए कुछ नहीं। आँसू वहाता हुआ, अपने दुर्भाग्य को कोसता हुआ, उसने निश्चय किया कि अपने लिए तपस्या के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। पुत्र की मनोदशा को समझकर कैकेयी अपने पति दशरथ से एकांत में मिलकर यूँ वोली— २ नाथ, भरत का मुखकमल मुरझा गया है। मुझे लगता है कि विवाह न होने की चिंता उसे सता रही है। ३ जनक के अनुज कनक की वेटी कनकप्रभा के साथ विवाह करा के उसे मोहपाश में जकड़ देना चाहिए। ४ —ऐसा कहने पर जनक और कनक को बुलाकर दशरथ ने कहा— अव हमारे वीच स्थापित संवंध को देखते हुए उसे और भी सुदृढ़ वना देने की मेरी इच्छा हो रही है। इसके लिए कनक की वेटी कनकप्रभा का विवाह मेरे वेटे भरत के साथ कर देना चाहिए। इसे सुनकर कनक ने कहा— ५ मेरी तो पहले से ही यह आशा (और अभिलाषा) रही कि

मुन्नमे भरतंगीवें ॐ कन्नेयनेंबळिपु मनदोळिरें मनदळिपं
बिन्नविसलिदें ना बेस॥नन्निम्मडि बेयसे बयके कूडिदुदीगळ् ॥ ६ ॥

अंदंदिन दिनदोळे मौहूर्तिक निरूपित शुभमुहूर्तदोळ्—
इनिविरिदु विभवमादुदें॥जनक तनूभवे यमदुवेयोळमेंबिनेगं
कनकप्रभेयं पदेंपि॥कनकं भरतंगे मदुवेमाडिदनागळ् ॥ ७ ॥

आ विवाह विभवदेंसकक्कमवर भुजबलद मसकक्कं विद्याधर महत्तरं विस्मितचित्तनागि मिथिलेयिं रथनूपुरचक्रवाळपुरक्के बंदु निजपतियनिंदुगतियं कंडु—

गणनेगळुंबमागे मोदलिं नुदियेय्दे तगुळ्दु रामल-
क्ष्मणर महाप्रभावमनदं नेरे बण्णिसे केळ्दु खेचरा-
ग्रणि किरिदाय्तु नम्मदसे केवलरल्लरवर् दिटक्के का-
रण पुरुषर् त्रिखंड भरतोर्विगे वल्लभरागदिर्परे ॥ ८ ॥

अेंदु बगेबेदरे विद्याधराधिराजनुषस्समयद राजमंडलदते निस्तेजनागिर्पुदुमा खचरवल्लभ तनूभवं प्रभामंडलं मनः करंडकदोळा कन्यारत्नमं तळेदु—

अय्दु मलर्गणेगळं कडु॥केय्दिसे मदनं वियोगि योगिय तेरदिं-
दय्दुं विषय सुखक्कं॥मेय्देगेदाकेयने बिडदे जानिसुनिर्दं ॥ ९ ॥

---

कनकप्रभा का विवाह भरत के साथ हो। मैं स्वय आपसे यही निवेदन करनेवाला था, (पर) आपने ही इसका प्रस्ताव किया, तो मेरी आशा पूर्ण हुई। ६ उसी दिन ज्योतिषियों द्वारा बताये हुए शुभ मुहूर्त में—दशरथ ने भरत-कनकप्रभा का विवाह इतनी धूमधाम से कराया कि लोग आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे कि क्या राम-सीता का विवाह इतनी धूमधाम से हुआ था ? ७ उस विवाह की शोभा, धूमधाम और पराक्रम की व्यापकता (अधिकता) को देखकर विद्याधर को आश्चर्य हुआ। उसने मिथिला से रथनूपुर-चक्रवालपुर में जाकर अपने राजा इंदुगति से मिलकर— राम-लक्ष्मण की महिमा (महत्ता) (तथा) उनकी वीरता का आदि से अंत तक सविस्तार वर्णन किया, जिसे ध्यान से सुनकर, यह सोचकर इंदुगति वड़ा दुखी हुआ कि उनके समक्ष अपना अस्तित्व (बड़प्पन) घट गया है। और उसे लगा कि ऐसे असामान्य, कारण-पुरुष त्रिखंड भारतवर्ष के अधिकारी वने विना नहीं रहेंगे। ८ इस तरह मन में चिंतित हो, उषाकाल के चंद्रमंडल के समान (वह) कांतिहीन दिखायी पड़ा और उसका वेटा प्रभामंडल सीता को स्मरण कर रहा था। —मन्मथ अपने तीक्ष्ण पुष्प-बाणों से प्रभामंडल पर प्रहार

अंतु कन्यासक्तियिं कन्यासक्तनादादित्यनंते प्रभामंडलं हतप्रभामंडनागि वसंतध्वजनेंब सहचरंगे सीता विरहदिंदाद तन्न मनोविषादमनरिपि—

आ रमणियधरमणिय सु-*धारसदिंदल्लदेन्न मनसिज तापं-
तीरदु तीर्चुवुदेन्न म-*नोरथमनिदकें नीनें सख सारथियै ॥ १० ॥

अेंबुदुमातन केलदोळिर्दे वृहत्केतुवेंब विद्याधरनिंतेंदं—

पोदुवु नम्मबिल्गळेरडुं जनकात्मजेगग्निसाक्षियिं-
दावुदु रामनाळ्मदुवे विल्देरेदेत्तु वर्कुदिं पुण्यदिं
पोद महत्तरं मगुळ्दिनाकेय पंवलोळप्पुदें रणा-
स्वादन लंपटर् नेरेदुकादुवमप्पोडे रामलक्ष्मणर् ॥ ११ ॥

अेनलोडं—

पुर्विनगंटुं कण्णोळ्*पर्विद किसुसेरेगळुं कपोल स्थलदोळ्
कोर्विद वेमर्वनियुं कर*मर्विसे मुनिसि कुमारनंदितेंदं ॥ १२ ॥

मानवरेन्नोळय्य कलिगळ् रणकेळिगे सात्वरेंब्रिदं
नीनुळि रामलक्ष्मणरनश्रमदिं वेदरट्टि तंदपें
जानकियं कुलागत धनुर्युगळं वेरसेंदु कीरि पं-
चानदंतें गर्जिसि विमान मनेरिदनाकुमारकं ॥ १३ ॥

---

कर रहा था। उन वाणों के आघातों को सहने में असमर्थ हो, प्रभामंडल हर पल तड़प रहा था। ९ संध्यादेवी से मिलने की आतुरता में रहनेवाला सूर्य जिस तरह कांतिहीन होता है, उसी तरह तेजरहित हो प्रभामंडल ने वसंतध्वज नामक अपने एक अनुचर से सीता के कारण अपने पर वीते विषाद का वर्णन किया। —उस युवती के अधर का रस-पान किये विना (और किसी से) मेरा कामताप नहीं मिटेगा। इसलिए, हे मित्र, मेरे मन की इच्छा को (किसी तरह) तुम्हें पूर्ण (शांत) करना पड़ेगा। १० इसे सुनकर उसके पास ही (वगल में) वैठा हुआ वृहत्केतु नामक विद्याधर ने कहा —विद्याधरों के दोनों धनुष हाथ से निकल गये; जनक की वेटी सीता को राम ने अग्नि-साक्षी देकर पत्नी वना लिया; धनुषों की रक्षा के लिए जो विद्याधर वीर गया था, वह सौभाग्य से लौटा है; सीता के लिए तड़प कर क्या होता है? उसकी अपेक्षा किये विना अव राम से लड़ना पड़ेगा। ११ ऐसा कहने पर— भौंहें चढ़ गयीं, कनपटी की नाडियाँ उभर आयीं, चेहरे पर पसीने की वूँदें छूट पड़ीं और प्रभामंडल ने आँखों से चिनगारियाँ वरसाते हुए कहा— १२ पिताजी, आप यह भूल जाइए कि मानव मुझे पराजित करने का सामर्थ्य रखते हैं।

कुलमदवों्दु रूपमदमों्दु वयोमदमों्दु तन्नदो-
र्बलमदमों्दु जातिमदमों्दु कलामदमों्दु देवना
बलमदमों्दु राज्यमदमोंदिनितल्लदे बेरे रागम-
ग्गलिसिद दोषदृष्टि विषयातुररें गड मुंदुगाण्बरे ॥ १४ ॥

अदरिना मदाविलंबलननबलनं बगेवंते बगेदु कतिपय खचर परिजनंबेरसु गगनमार्गदिं पोगुत्तुं दिगवलोकनंगेय्दु तन्नमुन्निन जन्मदोळ् कुंडल मंडितनागिर्दंदिन विदग्ध नगरमं काणलोडं जातिस्मरनागि मूर्छेगे सल्वुदुमोडने वियच्चरशतनं रथनूपुरचक्रवाळपुरक्किकदुगति खचर चक्रवर्तिय केळक्के तर्पुदुं—

घनसार सलिलमं चं-*दन रसमं तळिदुबीसे बिज्जणिगेय त-
ण्णनें तीडुवेलर तीटदि-*निनिसानुं तडेदु मूर्छेयिदेळ्चत्तं ॥ १५ ॥

आगळा वियच्चराधिपति कुमारन मुखारविंदमं नोडि—
जनकजेयिं नूर्मडि मिगि-*लेनिप्प कडुचेल्वुवेत्त खेचर कन्या-
जनदोळ् विवाह मंगल*मनोडर्चुवेनम्म बिसुडु मनदुम्मळमं ॥ १६ ॥

अंबुदुं प्रभामंडलं किंचिदुन्नमित कंधरनिंदुगतिय बदनेंदुवं नोडि मुकुळित कर कमलनेंदनेन्न मूर्छाप्रपंचक्किदु निमित्तवल्ती

---

(मैं) राम-लक्ष्मण को अनायास पराजित कर जानकी एवं वंश-परंपरा में आये हुए धनुषों को भी ले आता हूँ— ऐसा कहकर सिंह-गर्जना कर तैयार खड़े विमान पर वह सवार हुआ। १३ कुल का अहंकार, रूप का मद, पराक्रम का अभिमान, राज्यमद, विद्यामद, देवकृपा का मद रहते समय इंद्रिय-सुख के लिए आतुरित व्यक्ति भविष्य को (कैसे) देख सकता है? १४ इस तरह मदोन्मत्त प्रभामडल ने राम-लक्ष्मण को बलहीन समझकर, कुछ खेचरों को साथ लेकर, आकाश मार्ग से जाते हुए इधर-उधर देखने पर, उस विदग्धनगर को, जिसमें पूर्वजन्म में वह कुंडलमंडित था, देखकर, पूर्वजन्म का स्मरण हो आने पर मूर्छित हुआ, तो साथी उसे तुरंत रथनूपुर-चक्रवालपुर ले गये। —कर्पूर के जल और चंदन के रस का सिंचनकर, विजन (पंखे) डुलाने से उत्पन्न ठंडी हवा के स्पर्श से थोड़े समय में वह मूर्छा से जाग उठा। १५ खेचराधिपति ने उसके मुख को देखकर कहा— सीता से सौगुणी सुंदरी खेचर-कन्या से तेरा विवाह कराऊँगा, सीता के लिए तड़पना-विलपना छोड़ दे। १६ ऐसा कहने पर— प्रभामंडल ने सिर झुकाकर कहा—सीता का मोह मेरे मूर्छित होने का कारण नहीं है, मैं पूर्वजन्म में प्रतापसिंह नामक राजा का पुत्र था, मेरा नाम था—कुंडलमंडित। मैं अपने पिता के प्रति अविधेय (निरकुश) रहा और—

पोद भवदोळां प्रतापसिंहनेंब देशाधीशंगे कुंडलमंडितनेंबनागि पुट्टि तंदेगविधेयनागि पोगि—

बिट्टरननेनगे पापद*बट्टेये पेर्वट्टेयागे नाडं बीडं
सुट्टिरिदु कट्टि कवर्दा*कट्टाळ्तनदिं विदग्ध नगरदोळिर्दें ॥ १७ ॥

अंनगरसि माडिदें कपि-*लनेंबनापुरदोळिर्पनोर्व द्विजना-
तनपेंडतियं दर्पा-*धनेंनाडद गोंड्डमेनुमिल्लेंबिनेंगं ॥ १८ ॥

अंतिर्पुदुं—

अनरण्यन पडेवळं*मुनिदिरिदोडिसिदोडोडि पर मंडलदोळ् ॥
जिनमुनिमुख्यं कुडे पडे-*देंनणुव्रतमं विनेयजन सम्मतमं ॥ १९ ॥

अंतामार्गमं पत्तुविडदे नडेदु जीवितावधियोळ् देवगति वडेदानुमेंन्न देवियुमा देवलोकदिं वळिल्चि बंदिलिल जनकन महादेवियप्प विदेहिय गर्भदोळमळ्गळागि पुट्टि बळेवुदु मासमयदोळेन्न मुन्निन पगेवनप्प कपिळं देवगतिवडेदेन्न पिडिदुय्दु कोललोडर्चि काणलोडं करूणिसि तन्न मणिकुंडलमनेन्न किवियोळिट्टु पर्णलघु विद्येयिं निम्म तल्पदोळिरिसि पोगे देवरेन्नं पिरियरसिगे दयेगेय्दु कोंडाडि नडपि युवराजपदवियं दयेगेय्दिरानुवेन्न तंगेयप्पुदनरियदे सीतादेविगाटिसिदनेंदु बिन्नविसे—

---

देशांतर जाकर पापकर्म ही मानों जीवन का उद्देश्य है, माता-पिता, राजमहल, वंश-गौरव आदि की चिंता किये विना अहंकार से विदग्धनगर में रहा। १७ वहाँ कपिल नामक ब्राह्मण की पत्नी से वलात्कार से विवाह कर लेने के पश्चात्, इस घमण्ड से दुश्चेष्टाएँ करता रहा कि (कोई) मेरा सामना (बराबरी) नही कर सकता। १८ इस तरह रहते समय— अनरण्न के सेनापति ने हम दोनों को मार भगाया तो और एक राज्य में एक जिन मुनि से मैंने अणुव्रत दीक्षा ली। १९ इस तरह सन्मार्ग में क़दम रखकर, परलोकवासी वनकर, देवगति पाकर अगले जन्म में जनक की रानी विदेही के गर्भ में जुड़वें बच्चे जन्मे तो मेरे पूर्वजन्म के शत्रु कपिल ने भी दैवगति पाकर, मुझे उठाकर ले जाकर मार डालने की योजना की। तत्पश्चात् मुझ पर तरस खाकर अपने मणिकुंडल को मेरे कान में पहनाकर, पर्णलघु विद्याबल से मुझे आपकी शय्या पर सुलाकर चला गया। आपने मुझे देखकर, अपनी रानी को देकर, पाल-पोसकर युवराज पद देने की कृपा की। यह न जानकर कि सीता मेरी वहन है, मैं उसे चाहने लगा। ऐसा कह-सुनाने पर— खेचरपति विस्मित हो अपने शीश को हिलाया।

खचरपति विस्मयकुलि-
तचित्तनज्ञान तिमिर विघटन दीप-
प्रचुर रुचियेनिसे मणि मकु-
ट चंकनत्कांति तलेयनें तूगिदनो ।। २० ।।

अंतु बगेयोळोगेद विस्मयमे तनगे वैराग्य हेतुवागे—
दोरेकोळ्ळदोळ्ळितादुदु * तरूणिय संबंधमी सुतंगेत्तानुं
दोरेकोंडोडेन्न वंशं * दुरंत दुष्कीर्ति दावशिखिगोळगक्कुं ।। २१ ।।
उपकारमनोडरिसुवं- * गपकारमनुंटुमाळ्कुपकारिगे ता-
नुपकारमनोडरिसुगुं- * विपरीतं वगेदुनोडे करण ग्रामं ।। २२ ।।

पोदुवु मत्कुलागत धनुर्युगवेन्न महोन्नतिक्के की-
ळादुदु रामलक्ष्मणर तेजमगुंदलेयादुदेंदु नि-
र्वेदमनप्पुकेय्दु गगनेचरसंपदमं पोगळ्तेवे-
त्तादोरेतं जरत्तृण समानवेनल् बगेदं वियक्चरं ।। २३ ।।

अंतु वैराग्यपरं निज वियच्चराधिराज विभवमं प्रभामंडलं-
गित्तंदिनदिनदोळ् महेंद्रोद्यानदोळिर्प सर्वभूतहित भट्टारकर पदप-
योरुहद समक्षदोळ् वीक्षेगोळ्वुदुं—
इंदुगतियंते राज्यम- * नोदर्क बाळ्तेगेय्यदावनो तोरेदं
मंदरधैर्य नृपनें- * दोदेतेरममरसमिति पोगळ्दित्तागळ् ।। २४ ।।

---

(मानों) अब तक आवृत्त अज्ञान-रूपी अंधकार को प्रखर सूर्य-किरणों द्वारा मिटा-सा दिया । २० इस तरह अपने मन का कौतुक ही वैराग्य का कारण बनने पर— (उन्होंने मन में कहा) सीता के साथ मेरे इस पुत्र का संबंध न जुड़ना भी उचित ही हुआ, जुड़ जाता तो मेरा वंश दुरंत दुष्कीर्ति-रूपी बड़वाग्नि को प्राप्त हो जाता । २१ अधर्मी का अपकार करने पर भी वह (कार्य) उसके लिए उपकार के रूप में परिणत हो जाता है, इसके लिए अन्य उदाहरण की आवश्यकता नहीं है । २२ वंश-परम्परा में आये हुए हमारे दो धनुष हाथ से निकल गये; राम-लक्ष्मण की वीरता विश्वव्यापी बन गयी है; अब मुझे इस वैभव की क्या आवश्यकता है ? ये सब क्षणभंगुर है न ? ऐसा कहकर इंदुगति ने वैराग्य अपनाया । २३ इस तरह वैराग्य से अपने समस्त राज-वैभव को प्रभा-मंडल के हाथों सौंपकर सर्वभूतहित नामक भट्टारक, जो उन दिनों महेंद्रोद्यान में रह रहे थे, से दीक्षा ली । इसे देखकर— देवताओं ने यह कहकर उसकी प्रशंसा की कि ऐसे अतुल (विपुल) ऐश्वर्य एवं राज्य (भोग) को त्यागनेवाले इंदुगति के साहस (त्याग-भाव) की सराहना

अंतु वियच्चराधिराजं मुनिराज पदवियनप्पुकॆय्वुदुमित्तल जनकं सकल साम्राज्य राज्य चिह्नमुळियलुळिद वस्तुवाहनादिगळं सीतॆगॆ बळिवळिगॊट्टु अयोध्यॆगॆ कळिपुवुदुं दशरथं कतिपय प्रमाणंगळिं विनीतानगरमं पॊक्किरलॊंदुदिवसं—

सुकृत सुरद्रुम वनपा-॥लकनॆंविनमुतुल विचकिलोद्गममंतं
दकलुष चितं दशरथ॥सकलोर्वीशंगॆ ऋषिनिवेदकनित्तं ॥ २५ ॥

अंतु समयोचित सुमनोदर्शनमनित्तु देव ! नम्म सरयूनदीतीरद महेंद्रोद्यानदॊळ् मनः पर्ययज्ञानिगळप्प सर्वभूत हितभट्टारकर् महाऋषि समुदायंबॆरसु योग नियोगदिंदिर्दरॆंदु बिन्नविसॆ—

नॊसलॊळ् करपल्लव पुट॥मॆसॆदिरॆ दशरथनृपं मुनीश्वररिर्दा-
दॆसॆगॆ मॊगमित्तु तन्नि-॥र्दे सिंहविष्टरदिनॆळ्दु विनमितनादं ॥ २६ ॥

आगि परिमित परिजनंबॆरसु मुनींद्ररिर्द महेंद्रोद्यनक्कॆ वंदु—

दीप कळापमं तळॆदु वालिकॆयबॆरॆ सुत्तिमुति ता-
रापति तारॆगळ्बॆरसु मंदरमं बलगॊळ्व माळ्कॆयिं
भूपति सर्वभूत हित दिव्यमुनींद्ररनंदु वालचं-
द्रापरनामधेयरनदं बलगॊंडनॊ भक्तिपूर्वकं ॥ २७ ॥

---

कहनी चाहिए । २४ इस तरह इंदुगति ने मुनिराज पद को प्राप्त किया और, उधर जनक ने अपनी दुल्हन-बेटी सीता को साम्राज्य-चिह्न के अतिरिक्त शेष समस्त वस्तु वाहनादि भेंट के रूप में देकर अयोध्या भेज दिया। अनेक दिनों के प्रयाण के पश्चात् दशरथ विनीतनगर पहुँचे तो एक दिन— दशरथ, जो याचकों को माँगी हुई चीजें देने में कल्पवृक्ष के समान है, के पास वनपालक आकर बगल के (पास) वनांतर में डेरा डाले हुए ऋषि के बारे में बताते हुए बोले— २५ भगवान, हमारी सरयू नदी के तट पर स्थित महेंद्रोद्यान में केवलज्ञानी सर्वभूतहित भट्टारकजी ऋषिसमूह के साथ आकर योग-नियोग में लगे हुए है— वनपालकों की बात सुनते ही दशरथ ने सिंहासन से उठकर, अपने जुड़े हुए हाथों को माथे पर रखकर जिस दिशा में मुनीश्वर (विद्यमान) थे, उस ओर झुककर नमन किया। २६ तत्पश्चात् दशरथ ने चुने हुए अपने परिजनों के साथ महेंद्रोद्यान, जहाँ मुनीश्वर थे, की ओर प्रस्थान किया।— दीप धारण किये हुए बालिकाएँ उनके साथ चल रही थीं; सूर्य-चंद्र मानों मंदरपर्वत की प्रदक्षिणा ले रहे हों, दशरथ ने सर्वभूत-हित दिव्य मुनीश्वर की भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा ली। २७ इस तरह प्रदक्षिणा लेकर आठ प्रकार की अर्चनाओं से उनकी पूजा कर, गुरुभक्तिपूर्ण भाव से नमस्कार किया।

अंतु बलगोंडष्टविधार्चनेगळिर्दर्चिसि गुरुभक्तिपूर्वकं वंदिसुवृदुं—

मदनफणि निर्विषीकर-*ण दिव्यमंत्र स्वनं जरामरण शिला-
विदळन टंकध्वनि पों-*ण्मिदत्तु मुनि परसें धर्मवृद्धि निनादं ।। २८ ।।
क्षुभित दयार्णव घूर्णित*रभसमेनल् परसिदत्तनंतरवा स-
त्सभे विनत मकुट मणि रुचि*विभासियं नृपपुरस्सरं राजकमं ।।२९।।

अनंतरं दशरथं समुचितासनदोळ् रामलक्ष्मण भरतशत्रुघ्नवेरसु कुल्लिर्दु दीक्षितनाद इंदुगतियुमं परिम्लान दीनाननानागि तन्मुनिय समक्षदोळिर्द प्रभामंडलनुमं कंडु मुनिमुख्यंगेरगि तुकुळितांजलि पुटनागि—

बाल मृणाळमं पिडिदु कीळ्वोलश्रमर्दि मनोभव
व्याल गजेंद्रदंत युगळंगळनेकेयों किळ्तिनेकें नि-
र्मूलिसिदं भवाटवियनीजिनरूप कुठारदिं प्रभो-
धालय पेळिमी खचर चक्रियोळाद तपः प्रपंचमं ।। ३० ।।

अेंदु बिन्नविसे—

श्रुत देवता कटाक्ष
द्युति पसरिसि पर्वुवंदर्दि निजदंत
द्युति पसरिसें दयेयिं यति
पति नुडिदं मधुर मृदु गभीरध्वनियिं ।। ३१ ।।

—काम-रूपी सर्प के विष को निर्नाम करने के दिव्यमंत्र के स्वर से, टेढ़ी मृत्युओं को घटने से रोकनेवाली गंभीर वाणी से (मुनीश्वर ने उन्हें) आशीर्वाद दिये। २८ इसके अतिरिक्त उस उपस्थित राजसमूह को दयासागर-सा आशीष देने पर वे ऐसे विनीत हुए कि उनके झुके मुकुट की मणियों की प्रभा को सुशोभित कर दिया। २९ तत्पश्चात् दशरथ ने, अपने बच्चों के साथ उचित आसन पर बैठकर, दीक्षित इंदुगति को चिंतापूर्ण मुख लिये उनके सम्मुख बैठे हुए प्रभामंडल को देखकर, हाथ जोड़कर मुनिवर से कहा— आप यह बताने की कृपा करें कि जिस तरह कच्चे कमलदंड को अनायास उखाड़ा जाता है, उसी तरह मन्मथ-रूपी सर्प के विषदतों को उखाड़कर संसार-रूपी जंगल को जिन-रूपी इस परशु से इस खेचर चक्रवर्ती ने क्यों काट डाला ?। ३० इस तरह पूछने पर—(ऐसा लगा) मानों देवता-कटाक्ष की प्रभा पूर्णरूपेण फैल रही हो, अपनी दंतकांति की प्रभा को बिखेरते हुए, दया और मृदु-मधुर वाणी से मुनि ने इस तरह कहा। ३१ इस खेचर

ई खचर प्रभु प्रभामंडलन पोद भवनदॊळाद वृत्तांतमुमनी-
भवदॊळाद सीताप्रपंचमुमं केळ्दु तिळिददुवॆ निर्वेगकारणमागॆ
दीक्षॆगॊंडनॆंबुदुं प्रभामंडलं विनय विनमित शिरस्सरोजनागि—

इंदुगति खचरपति पिरि-
दॊंदळ्करनॆनगॆ माळ्पुदं बॆससिं नी-
मॆंदु मुकुळित करं मुनि
वृंदारकरं कुमारकं बॆसगॊंडं ॥ ३२ ॥

अंतु बॆसगॊळ्वुदुमवरिंतॆंदु बॆससिदर्—धाम नामधेय ग्राम
दॊळिर्प धरामरं विमुंचियॆंबनातन कुलवधु वसुमति बॆसखळवर्गति-
भूतियॆंब तनयनादं—

आतंगॆ सरसॆयॆंबळ् ॐ पातकि कुलवनितॆयॆनिसि कयनॆंब महा
पातकनॊळ् पुदुवाळ्दळ् ॐ जातिय नीतिय नॆगळ्तॆ नॆलॆगिडुविनॆगं ॥ ३३ ॥

आयुर्दशॆयळिगुं नर- ॐ कायुष्यं कट्टुगुं पराभवमक्कुं
श्रीयळिगुमन्नदन्य ॐ प्रेयसियं सरसॆयं कयं कळ्दुय्दं ॥ ३४ ॥

अंताकॆयं कयं कसवरंबॆरसुय्वुदुं अतिभूति मतिविकलनागि—
सुडु पॊल्लळनॆन्नदे त- ॐ न्नॊडमॆय कॆडिगमवळपोगिगं नि-
गंडि बॆन्नॊळरसि पोदं ॐ कडु मोहितरारुमुचितमं नॆनॆदपरे ॥ ३५ ॥

---

चक्रवर्ती प्रभामंडल के पूर्वजन्म की कथा और इस (वर्तमान) जन्म में सीता के साथ संबंधित घटनाओं को सुनकर, उसी वैराग्य के कारण ऐसा हुआ है। इसे सुनकर प्रभामंडल ने नममस्तक होकर— मुनिवर से कहा कि इंदुगति ने मेरे प्रति जो प्यार दिखाया है, कृपया उसे कह सुनावें। ३२ इस निवेदन को सुनकर मुनिवर बोले—धाम नामक नगर में निवास करनेवाले विमुंची नामक ब्राह्मण को वसुमती नामक कुलवधू से अतिभूति नामक पुत्र ने जन्म लिया। —उसकी पुत्रवधू सरसा ने पति को धोखा देकर जाति-नीति की परवाह किये बिना कय नामक पापी से संबंध जोड़ लिया। ३३ अपने दुष्कृत्यों के कारण आयु (जीवन) नाश होने, नरक प्राप्त होने, ऐश्वर्य-हानि होने, जीवन में पराभव पाने की संभावना को समझकर भी कय उसे (चुराकर) भगा ले गया। ३४ इस तरह सरसा को स्वर्ण-आभरणों के साथ चुरा ले जाने पर अतिभूति पागल (मतिभ्रष्ट) होकर— यह सोचे बिना कि ऐसी विश्वासघातिनी पत्नी से (किसी तरह का) संबंध नहीं रखना चाहिए, इस हेय भाव से कि अपने आभरणों को दूसरे ने चुरा लिया है, विचार-शून्य हो उसे (पत्नी को) ढूंढ़ता हुआ

मत्तित्त विमुंचियुं दानार्थियागि मगुळ्दु बंदु मगन वोर्तयं केळ्दु तानुं तन्न पेंडतियप्पनुमतियुं सरसेय तायप्पुरियुं कप्पडमनुट्टतिभूतियनरसुत्तं बंदंबरपुरदोळ् सर्वमुनिगळेंब दिव्यज्ञानिगळ पक्कदे धर्ममं केळ्दु विमुंचि मुंचि तोरेदननुतियुं उरियुं कमकश्रीकंतियर पक्कदे तोरेदु देवगतिवडेदर्—

अपवर्ग लक्ष्मियं कुडु-
व परमजिन चरण सेवेगरिदादुदे ना-
कपद प्राप्तियनोदविसु-
व पेमेयेने दिवदोळनिबरुं जनियिसिदर् ।। ३६ ।।

मत्तित्त सरसे दुराचारदिं कालमं कळिपि नरक तिर्यग्गतिगळोळ् तिरियुत्तुं बंदु वलाहकवेंबबेट्टदोळ् पुलियागि पुट्टि बेगेगिर्चिनोळ् सत्तु चंद्रध्वजनेंबरसनरसि मनस्विगे चित्तोत्सवेयेंब मगळागि पुट्टिदळदल्लदेयुमत्तल्—

मकराकद्विप दंतदंड दळित स्वांतं पर प्रेयसी
विकलं दुर्गतियोळ् कयं तिरितरुत्तुं बंदु मत्तं क्रमे-
ळकनादं कळिदल्लियुं कपिळनेंबं धूमकेशंगे दा-
रकनादं कडेयोळ् विचारिसे विचित्रं कर्म निर्मापणं ।। ३७ ।।

---

निकल पड़ा। ३५ इधर विमुंची भिक्षाटन करते, घूमते-घामते, बेटे की कहानी सुनकर अपनी पत्नी और सरसा की माँ के साथ ढूँढ़ते ढूँढ़ते अंबरपुर में सर्वमुनि नामक मुनिवर से धर्म-संबंधी बातें सुनकर जीवन के प्रति विरक्ति धारणकर देवगति को प्राप्त हुए। —मोक्ष प्रदानकरने की क्षमता रखनेवाले जिन-चरण की सेवा से देवगति प्राप्त करना आसाध्य थोड़े ही है? इस तरह उन सबने देवलोक में जन्म लिया। ३६ इधर सरसा ने दुष्कृत्य से जीवन-यापन करते हुए, नरक में भटकते-भटकते बलाहक नामक पर्वत (टीले) पर बाघ बनकर जन्म लिया और (एक दिन) जंगल में लगी आग में फँसकर मर गयी और (फिर) चंद्रध्वज नामक राजा की पत्नी मनस्वी के गर्भ में चित्तोत्सवा के नाम से जन्म लिया। —उधर कय ने पर-वधू को अपहरण करने के कारण कामदेव के क्रूर दाँतों में फँसकर, दुर्गति पाकर, भटकते-भटकते ऊँट के रूप में जन्म लिया। मरने के पश्चात् धूमकेश का बेटा बनकर पैदा हुआ। कर्मफल बड़ा विचित्र होता है। इसके अन्य उदाहरणों की क्या आवश्यकता है? । ३७ अतिभूति नरक में तड़पते-भटकते हुए ताराक्ष नामक हंस वन में, हंस के रूप में जन्म लेकर, जिनस्तवन का श्रवणकर, पाप

मत्तित्तलतिभूतियुं नरकायुष्यादि भवाटवियोळ् तोळलुत्तुं बंदु ताराक्षमेंब हंसवनदोळ् कलहंसनागि जिनस्तवन श्रवणदिदुपशम चित्तनागि किन्नरगति वडेदनंतरं कुंडल मंडितनागि विदग्धपुरमनाळुत्तिरे कपिळं चित्तोत्सवेयं तनगे पेंडतिमाडि तंदापुरदोळिर्पुदुं निनगे मुन्निन पेंडतियादुदवंधं कारणमागे नीनाकेयं कपिळनकैयिं कळेदुकोंडे; मुंपेळ्द विमुंचियुं सुरलोकदिं बंदिदुगतियादनातन पेंडतियप्पंदिननुमति पुष्पवतियादळदुकारणदिंदवर् निनगतिस्नेहितरादरंदिन कयं कपिलदेवनागि नीं पुट्टिदागळे निन्नं कोंडुपोदं; नीनतिभूतियादंदिनुरियेंब निम्मत्ते देवगतियिं बंदु जनकन महादेवि विदेहियागि निनगीगळव्वेयादळेंदु भट्टारकर् बेससुवुदुं—

अरिदात्मीय सुहृद्भवांतरमनाद्यंतं प्रभामंडळं
वेरगादं रघुरामनुं दशरथ क्षोणीशनुं सैपु क-
ण्देरेदंतुत्सुकरादरुण्मे पुळकं कैगण्मे हर्षाश्र् मे-
य्मरेदळ् जानकि केळ्दु केळ्दु तलेयं तूगित्तु राजन्यकं ॥ ३८ ॥

अमृतद कडलोळ्मुळुगि-*त्तमृतांश मयूख लेखेयं तळ्कैसि-
त्तमर्द मुक्कुळिसित्तेने*समनिसिदुदु राजसभेगे हर्षोत्कर्ष ॥ ३९ ॥

---

से मुक्त होकर, किन्नरगति को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् कुंडलमंडित के नाम से विदग्धपुर पर शासन करता रहा। कपिल चित्तोत्सवा को प्रेयसी बनाकर लाया और उस नगर में रह रहा था, तब तुम्हारी पहली पत्नी होने के कारण तुमने उसे कपिल के हाथों खो दिया। उपरोक्त विमुंची देवलोक से आकर इंदुगति बना। विमुंची की तब की पत्नी अनुमति ने पुष्पवती के नाम से जन्म लिया। इसलिए ये तुम्हारे स्नेही बन गये। तब का कय कपिल बनकर, तुम्हारे जन्म लेते ही तुम्हें (प्रभामंडल को) ले गया। तुम जब अतिभूति थे, तब उरी नामक तुम्हारी सास देवगति से आकर जनक की पत्नी विदेही बनकर, तुम्हारी माँ बन गयी। भट्टारक के यह कहने पर— अपनी आत्मकथा, स्नेह, पूर्व जन्मों के विषयों को आदि से अंत तक सुनकर प्रभामंडल चकित हुआ। श्रीराम, दशरथ रोमांचित होकर ऐसा उत्सुक हुए, मानों पुण्य ने आँखे खोल दी हों। सीता की आँखों से आनंदाश्रु छलक गये। उपस्थित राजाओं ने शीश हिलाया। ३८ राजसभा में आनंद की लहर ऐसे फैली, मानों अमृतांशु चंद्र अपनी कांति के साथ अमृत-समुद्र में डूबकर अमृत को साथ (मुँह में भरकर) ले आया हो। ३९ तत्पश्चात्— अपने मुकुट

अल्लि बळियं—

मणिकुंडल किरणंगळ्‌सेणसुविनं नखमयूखदोळ् दशरथ धा-
रिणिपतिय पद पयोजप्रणमनमनोचिदं वियच्चरतिलकं ॥ ४० ॥

अनंतरं रामलक्ष्मण भरत शत्रुघ्नरोळ् विनयवृत्तियं मेरेवुदुं—

अनुजे निजाग्रज पद को-कनदक्कानंद बाष्प मधुबिंदुवनि-
त्तनुनयदिनेरगिदळ् सी-तें नगुविनं भ्रमरकं भ्रमद्भ्रमरकमं ॥ ४१ ॥

अंतु विनयभरदिनेरगिदनुजेयं प्रभामंडळनखंडित पुण्यमागिनियागेंदु परसि परमानंद परंपरेमनप्पुकेय्दिर्पुदुं—

आदिव्यज्ञानियिंदं तिळिदु पद पदार्यगिळं पूर्व जन्म
प्रादुर्भाव प्रपंचंगळनधिक मनोरागदिं तन्मुनि श्री-
पादांभोजंगळं पूजिसि विनयदे बीळ्कोंडु भेरीनिनादं-
रोदोंतर्भागमं जक्कुलिसे नृपति साकेतमं बंदु पोक्कं ॥ ४२ ॥

मणिघंटा मणिकिंकिणी मणिवितान स्वर्णलंभूष भू-
षणमं रत्नविमानमं भरतनुं शत्रुघ्ननुं रामल-
क्ष्मणरुं तन्नोडनेरि सोंकि बरे सोत्साहं हरिद्रत्न तो-
रण शोभावहमं नरेंद्र गृहमं पोक्कं प्रभामंडलं ॥ ४३ ॥

---

की कांति को दशरथ के चरण-नखों पर प्रतिबिंबित कराते हुए खेचर चक्रवर्ती ने अपना शीश झुकाकर नमस्कार किया। ४० राम-लक्ष्मण के प्रति भी विनय दिखाया तो— बहन ने भाई के चरणारविंदों पर अपने आनंदाश्रु की बूँदें बरसायीं, तो वे नेत्र ऐसे प्रतीत हुए, मानों भ्रमरों को देखकर हँस रहे। ४१ इस तरह झुकी हुई बहन को सौभाग्यवती (खुशनसीब) मानकर, प्रभामंडल ने आशीष देकर, अत्यानंदित हो आलिंगन किया (और)— उस दिव्य ज्ञानी मुनि से पूर्वजन्म के जन्म, जीवत की बाते जानकर, उस मुनिश्रेष्ठ के चरणकमल की सेवा (पूजा) कर, विनम्र भाव से विदाई लेकर दशरथ वहाँ से रवाना हुए और आकाश को छूते हुए भेरी-निनाद के साथ अयोध्या में प्रविष्ट हुए। ४२ रत्न-विमान पर, जिसमें रत्न-घंटिकाएँ किणकिण नाद कर रही थीं, सुवर्ण घंटिकाएँ लकट रही थीं, प्रभामंडल बड़े उत्साह से भरत-शत्रुघ्न, राम-लक्ष्मण के साथ, चढ़ा और दशरथ के राजप्रासाद में प्रविष्ट हुआ। ४३ इस तरह प्रविष्ट होने पर पुत्र को रत्नजड़ित आसन पर बिठाकर

अंतु पुगुवुदुं कुमारनं मणिमयासनदोळिरिसि मधुपर्कपूर्वकम-पार सार वस्त्राभरण वस्तुवाहनंगळिं पूजिसि बळियं जनकंगे बळियनट्टुवुदुं विद्याधर महत्तरं पवनवेगनेंबं मनः पवनवेगदिं मिथिळेयनेय्दि राजमंदिरमं पोक्कु—

नमितं खचरानुचरं*क्रमदिं तिळिवंतु तनगे तनयन वृतां-
तमनरियें जनकनति सं*भ्रमचित्तं पडेदु पलवुसूळ्वेसगोंडं ॥ ४४ ॥

कोललेंदुय्द शिशाचरं खचरराजंगुय्दुकोट्टं गडं
कुलनिस्तारकनेन्न दारकननातं वंदु साकेतदोळ्
नेलसिर्दं गड सैपु कण्देरेदुदेंदानंदवाष्पांवु क-
ण्मलर्गिं कैगळिवागि पोण्मे जनकं रोमांचमं ताळ्दिदं ॥ ४५ ॥

अंतु हर्षरस तरंगितांतरंनागि—

तनुजागमनोत्सवमं * तनगरिपिद खेचरंगे निजराज्यमनी
वनितुवरमधिकरागं*जनियिसे जनकं निजांगचित्तमनित्तं ॥ ४६ ॥

अनंतरं—

रविरथमनुत्सव ध्वज*निवहं तुडुकिदुवु कोंदरिदुवु पूवलिवळ्
किवि शब्दगेट्टरे ब-*द्दवणं वाजिसिदुवोडने मिथिळापुरदोळ् ॥ ४७ ॥

---

मधुपर्क एवं अपार वस्त्राभूपणों के साथ सत्कार करने के पश्चात् इस समाचार को जनक राजा तक पहुँचाने के लिए पवनवेग नामक खेचर को नियुक्त किया, जो तुरंत पवनवेग से मिथिला में आकर— वहाँ पहुँचकर खेचर ने जनक को प्रभामंडल से संबंधित (जितनी वह जानता था उतनी) बातें सुनायी तो जनक ने अत्यत आनंदित होकर पुनः पुनः प्रश्न करके अधिक जानने का प्रयत्न किया । ४४ जिस वालक को राक्षस वध-निमित्त ले गया था, खेचर को सौप दिया । मेरे कुल की शोभा वढ़ानेवाला यह पुत्र अव साकेतपुर में निवास करने लगा है । मेरे भाग्य की आँखें खुल गयी हैं । ऐसा सोचकर जनक पल-पल (हर पल) आनंदाश्रु वहाते हुए रोमांचित हुए । ४५ इस तरह आनंद की लहरों में डूबकर— पुत्र के आने की खवर देनेवाले खेचर को सारा राज्य (ही) दे देने का उत्साह जाग्रत होने पर जनक ने उसे यथोचित उपहार प्रदान किया । ४६ तत्पश्चात— मिथिलापुर में उत्सव-ध्वजाएँ सूर्यरथ को छूने लगीं; पुष्पवृष्टि होने लगी; श्रवणेंद्रियों को वंद करा देनेवाले वाजे वज उठे । ४७ पुत्र के मुखचंद्र को देखने के लिए जनक के मन में उत्सुकता

तनय मुखेंदु मंडलमनीक्षिसुवुत्सुव वृत्ति चित्तदोळ्
ननेकोनेवोगे सज्जन सुभाषितदोळ् पुदुवोक्कु सेसेयं
मनमोसेदांतु बांधवजनंबेरसुत्यवदिं विदेहियुं
जनकनुमेरिदर् मणिवितान विराजितमं विमानमं ॥ ४८ ॥

अंतु विमानारूढरागि किरिदानु बेगदिंयोध्येगे बंदु राज-भवनमं पोक्कु जनकनुं विदेहियुं दशरथंगमपराजिता महादेविगं तुळिल्गेय्वुदुं, रामादिगळ वर्गं विनय विनतरागि परकेयं कैकोळ्वुदुं, जानकियुं जननीजनकरं निबिडालिंगनंगेय्दवर पद पयोरुहक्केरगे प्रभामंडळं तंदेय पादारविंदमं मणिकुंडल प्रभामंडल बालातपदिन-र्चिसुवुदुं, जनकंदिक्करि कराजुकारिगळप्प तोळ्गळिं तेगेदु तळ्क्कसि, मगन मोगमनळ्कर्तु नोडि, कल्पतरु कोरकितवादंते पुळकमं तळेदु, आनंदबाष्प बिंदु संदोहदिं नंदनन सहस्र कुंतळ कलापक्के बिडुमुत्तिन तलेदुडुगेयं पडेदु, मोहरस सुधापूरदोळवगाहमिर्पुदुं—

अंबिरिविडे भोंकने नय-*नांबुगळतिविह्वलं प्रभामंडलना-
त्मांबिकेय पदक्केरगिद*नंबुरुहक्केरगिदळिगळेनिसे कुरुळ्गळ् ॥४९॥

---

जाग उठी तो विद्वज्जनों के सुभाषितों के साथ बंधु-जनों को साथ लेकर जनक एवं विदेही रत्नाभरणों से सुसज्जित विमान में चढ़ गये। ४८ इस तरह विमानारूढ़ होकर तुरंत अयोध्या पहुँचकर, राजभवन में प्रविष्ट होकर वहाँ, जनक और विदेही ने दशरथ और अपराजिता को नमस्कार किया; राम आदि ने उनके (जनक एवं विदेही के) चरण छूकर आशीष पाये; जनक ने जानकी का दीर्घ आलिंगन किया; प्रभामंडल ने पिता (जनक) के चरणकमलों में झुककर अपने धारण किये हुये मणिकुंडल-प्रभा-रूपी बालसूर्य की किरणों द्वारा पूजा की तो जनक ने दिग्गज की सूँड़-सदृश बाहुओं से उसका आलिंगन कर बड़े स्नेह से उसके मुखकमल को निहारा, मानों कल्पतरु ने ही कलियों को खिलाया हो, (तथा) रोमांचित होकर, आनंदाश्रु बहाते हुए, उसकी केशराशि पर मोतियो का उपहार बरसाकर, प्रीति-रस के तालाब में मानों डूब रहे थे कि— आँखों से (आनंद के) अश्रु बह रहे थे। तभी विह्वल प्रभामंडल अपनी माता (विदेही) के चरणकमलों पर झुका तो उसकी केशराशि कमलों को घेरे हुए भ्रमरों के समान दिखायी पड़ी। ४९ विदेही बेटे को सीने से लगाकर सुख का अनुभव कर रही थी कि— उसके स्तन का दूध अनजाने ही बह पड़ा; आँखों से अश्रुधारा बहने लगी; शरीर-भर में

आगळा विदेहिसुत परिष्वंग सुखानुभवमनप्पुकेय्वुदुं—

मौलेंत्रालंबिरिविट्टु सूसें मोलेयुं वाष्पांबु कैगण्में क-
णमलरिं मैय्नविर्गळ् पोदळ्दोगेये मेय्यि गद्गदं कंठ कं-
दलदिंदुद्गतमागे मन्युमिगे नानाचेष्टे नानारसं
तलेदोरित्तु विदेहिगच्चरि सुत व्यामोह कौतूहलं ॥ ५० ॥

उदयिसिदागळातननगल्दळलातन वालकेळियं
पडेदवलोकिसल् पडेयदुम्मळवातन सोंकनोळ् पोद
ळ्दोदविद मोहवातन मुखाब्ज विलोकन जातकौतुकं
सुदतिविदेहिगें पडेदुदो रससंकर चित्र चेष्टेयं ॥ ५१ ॥

तनयननागळंते पडेदंते मनोमुदमं विदेहियुं ।
जनकनुमप्पुकेय्ये रघुवंशनमेरुगे चित्ररत्नमं-
डनवसनंगळिंदोसेदु मन्निसे हर्षमळुंवाय्तु चं-
दन रस मग्नरप्पवरनप्पिदुविदु करंगळेंबिनं ॥ ५२ ॥

अंतु दशरथनभ्यागत प्रतिपत्तियं माळ्पुदुमनुदिनं प्रभामंडलं रामलक्ष्मणरोंडने कूडि विविध विनोदंगळिं दिवसंगळनेक वागेयुमेक-क्षणदंते निरंतरोत्सवमनोदविसे सुखदिनोंदुतिगळ्व रमयोध्येयोळिर्दु, मिथिलेगे बंदु जनकन राज्यमं तत्र किरियम्मनप्प कनकंगे कोट्टु, जनकनुं

रोमांचन हुआ; गद्गदित होने के कारण विदेही के कण्ठ से तुतली बोली निकल पड़ी; वेटे को खोकर पाने का आश्चर्य (आनंद) सामान्य होता है? । ५० जन्म लेते ही उससे (पुत्र से) विछड़ जाने का दुःख, उसकी वालकेलि न देख सकने का विषाद, उससे जाग्रत स्नेह (वात्सल्य), उसके मुखावलोकन से उत्पन्न आश्चर्य (कुतूहल) आदि ने विदेही (के हृदय) में विभिन्न रसों का मिश्रण (किया) और मनोविकार (-जन्य) चेष्टाओं को जगा दिया । ५१ विदेही और जनक के मन में इतनी खुशी हुई, मानों विदेही ने वेटे (प्रभामंडल) को अभी-अभी जन्म दिया हो । रघुवंश श्रेष्ठ राम को नाना रत्न और वस्त्राभूषण देकर सत्कार किया तो समस्त आनंद चरम सीमा लाँघ गया । ५२ दशरथ अतिथियों का यथोचित सत्कार कर रहे थे और प्रभामंडल नित्य राम-लक्ष्मण के साथ विविध विनोदावलियों से अनेक दिनों को क्षण-सा विताकर एक महीने तक अयोध्या में रहने के पश्चात् मिथिला लौटकर जनक के राज्य को उसके छोटे भाई कनक को देकर (सौंपकर) अपने माता-पिता के साथ रथनूपुर चक्रवालपुर

विदेहियुं बॆरसु रथनूपुर चक्रवाळपुरक्कॆ पोगि विद्याधरविभूतियॊळ्
सुखदॊळिर्दनन्नेगमित्तलॊंदु दिवसं—

उर्वराधिपति कंडनर्चना * पूर्वकं दशरथावनीश्वरं
सर्वभूतहित नामधेयरं * सर्वभूतहित साधुमुख्यरं ।। ५३ ।।

अंतुकंडु गुरुभक्ति पूर्वकं वंदिसि—

ऎन्न भवावळियं दयॆ*यिनिम्मडि बॆससिमॆंदु कैमुगिदिरॆ कि-
च्चिन्नमित कंधरं पद*सन्निधियॊळ् दशरथंगॆ मुंनिपतियॆंदं ।। ५४ ।।

मॊदलिल्लॆनिप्प संसा-*रदलि सुखदु:खमं चतुर्गतियॊळ् मा-
णदॆ तिरिदु शुभाशुभ क-*र्मद फलमं नगुतुमळुनुमुणुतुं बंदॆ ।। ५५ ।।

अंतनंतमाद भवावळियिं तिरितरुत्तुमीभवक्कॆंटनॆय भवदॊळॊमॆ
सेनापुरमॆंव पुरळॊळ्—

मुनिचर्या विघ्नदॊळं*जिनधर्मद्वेष मतियॊळं दुर्गतियॊळ्
जनियिसि दुरंत दु:खम-*ननुभविसिदॆ वक्रभावमळलिसदारं ।। ५६ ।।

अंतॆत्तानुं सविपाक निर्जरॆयिं दुष्कर्म फलमं तविसि निजदिनु-
पशमभावमं पडॆददर फलदिं चंद्रपुरनाळ्व चंद्रनॆंब नरेंद्रंगमातन
मनोहारिणि धारिणिगं धारणनॆंव मगनादॆ; निमगॆ सुधर्मॆयॆंवळ्
पत्नियागॆ जिनधर्ममं पत्तुविडदॆ नडॆदु चतुर्विध दानशूरनागि शरीर-

---

जाकर विद्याधरों के साथ सुख से रह रहे थे कि एक दिन— सर्वभूतहित भट्टारक एवं उनके साथ रहनेवाले अन्य मुनियों से दशरथ बड़े भक्तिभाव से मिले। ५३ गुरु भक्ति से उन्होंने उनकी वंदना करके— हाथ जोड़कर निवेदन किया कि कृपया मेरा जन्म-वृत्तांत (पूर्व-जन्म कथा) बतावे। ऐसा कहकर पैरों पर पड़े हुए दशरथ से मुनिश्रेष्ठ ने कहा— ५४ आदि-अंत-रहित संसार में सुख-दु:खों को चार प्रकार से निरंतर अनुभव कर शुभाशुभ कर्मफल को रो-हँसकर तुमने उपभोग किया। ५५ असंख्य जन्म पाकर, वर्तमान जन्म के आठ जन्म के पहले एक बार सेनापुर नामक नगर में— यतियों की भिक्षावृत्ति में वाधा डालकर, धर्म का विरोध करने के कारण दुष्ट का जन्म लेकर दुरंत दु:ख का अनुभव किया। ५६ तत्पश्चात अपने सत्कर्मों से दुष्कर्म के फलों को धोकर, उसके फल से चंद्रपुर के शासक चंद्र नामक राजा और उसकी धर्मपत्नी धारिणी के पुत्र के रूप में, धारण नाम से, जन्म लिया। सुधर्मा नामक स्त्री तुम्हारी पत्नी बनी और तुमने जैन धर्म को त्यागे विना, चतुर्विध दानवीर बनकर शरीर-भार को त्यागकर, धातकी नामक भूखंड की पूर्वदिशा में स्थित

भारमनिळिपि धातकी षंडद मूडण मंदरदुत्तर कुरुविनोळ् पुट्टि मूरुपळितोपमंबरमल्लिय सुखमननुभविसि देवगतिवडेदु—

पूसद सौरभं तवद मैसिरि वाडद दाममुट्टोडं
मासद सीरे धातुमलविल्लदोडल् परिपूर्ण यौवनं
लेसेनिसिर्द रूपु शुभ लक्षणवेंबिवनप्पुकेय्दुना-
यासदिनीसिदै मोदल सग्गद वाळ्केयेरळ्कडलगळं ॥ ५७ ॥

मत्तमल्लिदं बंदु पुष्कलावती विषयद पुंडरीकिणी पुरमनाळ्व नंदिघोष नरपतिगमातनरसियप्प वसुमतिगं नंदिवर्धननेंब नंदननादे; निन्नतंदेयप्प नदिघोषनोंदुदिवसं क्रीडावनक्के पोगि, दिव्य योगिगळं कंडु, धर्ममं केसगोंडु, संसार शरीर भोग निर्वेगपरनागि निनगे राज्यमं कोट्टु यशोधर भट्टारकर चरणोपांतदोळ तपश्चरण निरत-नागि समाधिविधियिं विग्रहमनुळिदु, वळियमग्रिम नवग्रैवेयक मध्यनायकनादं; नीनुमोंदु पुव्वकोटि कालमरसुगेय्दु, जिनधर्ममं पत्तुविडदे नडेदु कडेयोळय्दनेय कल्पदुपपात तळ्पदोळ् देवनादै—

अय्दुं कल्याणमनि- ❋ त्तेय्दिपुदय्दनेय गतियनवयवदिं ता-
नय्दनेय नाकलोकम ❋ नेय्दिपुदु जिनेंद्र सेवेगावुदु गहनं ॥ ५८ ॥

---

उत्तर कुरुदेश में जन्म लेकर तीन 'पळित्' तक वहाँ के सुख का उपभोग कर देवगति पाकर— सुगंध न लगाने पर भी सुगंधित शरीर, न घटनेवाली देह-कांति, धारणकरने पर भी न मुरझानेवाले फूल, पहनने पर भी खराव न होनेवाला वस्त्र, धातु-मल-रहित देह, परिपूर्ण यौवन, मनमोहक रूप आदि पाकर (थकावट के साथ) स्वर्ग के प्रथम सुख एवं जीवन के दो समुद्रों को तुमने पार किया। ५७ वहाँ से आकर, पुष्कलावती नामक देश में पुंडरीकिणी नगर के शासक नंदीघोष और उसकी धर्मपत्नी वसुमती के पुत्र के रूप में, नंदीवर्धन नाम से, जन्म लिया। नंदीघोप ने एक दिन उद्यान-वन जाकर, दिव्ययोगी से मिलकर, धर्म को समझकर, संसार के भोग-भाग्य के प्रति वैराग्य धारणकर, तुम्हें राज्य सौंपकर, यशोधर भट्टारक के चरणों में तपस्या करके, समाधि-स्थिति पाकर, रत्नहार के मध्य में सुशोभित नायकरत्न के समान श्रेष्ठ (प्रसिद्ध) वन गया। तुम एक करोड़ वर्षों तक राज्य-भार (शासन) करने के पश्चात्, जिनधर्म मार्ग में चलकर, पंचम कल्प के अंत में देव वन गये।— पाँच प्रकार के कल्याण प्रदान कर, धर्म की पाँचवीं गति देकर, पंचम स्वर्गलोक दिया जाता है। जिनेंद्र सेवा (के माध्यम) से कौन कार्य कठिन है? । ५८

अंतल्लिय सुखमननुमविसि बंदु मंदरदपरविदेहद विजयार्धद शशिपुरमनाळ्व रत्नमालिगं विद्युलतेगं सूर्यजयनेंब मगनादें; निज जनकनप्प रत्नमालि सिंहपुरमनाळ्व वज्रलोचननोळ् कादलेंदु चतुरंगवलसहितनागि पोगुत्तमिरे—

मनद मुनिसेंब कळ्तलें॥मनलेंव माणिक्य दीपमेने दिवदिंदा-
तन मुंदण्गिळितंदं॥दिन लक्ष्मिगे तन्न देहरुचि कुडे कोर्व ॥ ५९ ॥

अंतुबंदु—

विग्रहदोळ् निमगिनिते-॥काग्रहवुळि मुळिसनोंदु कथेयं केळे-
काग्र मनदिंदमेंदु स-॥मग्रावधि बोधनमरनंदितेंदं ॥ ६० ॥

ई भरतद विजयार्ध म-॥ हीभृत्तट तिलकमेनिप शशिपुरदोडेयं
भूभुवन प्रथित यशं॥श्रीभूति सुभूतिवेसर सुतनं पडेदं ॥ ६१ ॥

उपमन्युवेंबवं तनगे॥पुरोहितनागे पिरिय सिरियं सुखदिं-
दुपभोगिसुत्तुमिर्दो-॥म्मे पोंदिदं कमलगर्भ यतिपति पदमं ॥ ६२ ॥

अंता तपोनिधिय सन्निधियोळ् मधु मद्य मांस निवृत्तनागि वर्तिसुत्तिर्प श्रीभूतियं तत्पुरोहितनप्पुपमन्यु दुष्टमतिनष्टब्रतम्माडि, तानुं रणमरणदिं वारणवागि मत्तं मरणमनेय्दि, मुन्नं तन्न पतियप्प

वहाँ के सुख का अनुभवकर, मंदरपर्वत की पश्चिम दिशा में स्थित विदेह के विजयार्ध के शशिपुर के शासक रत्नमाली और उसकी पत्नी विद्युल्लता के, सूर्यजय नाम से, पुत्र बन गये। तुम्हारे पिता सिंहपुर के वज्रलोक से लड़ने के लिए चतुरंग बल (सेना) के साथ जा रहे थे कि— मन में जगे क्रोध-रूपी अंधकार को दूर करनेवाले माणिक्य-दीप के समान आकाश से एक देवता, अपने दिव्य-दीप्ति के साथ (रत्नमाली के) सम्मुख उतरा। ५९ इस तरह आकर— उस अवधिज्ञानी देवता ने कहा युद्ध में तुम्हें इतनी आस्था क्यों है ? क्रोध को त्याग दो। एकाग्र-चित्त होकर एक कहानी सुनो। ६० इस भारतवर्ष के उत्तरार्ध को धारण किये हुए श्रेष्ठ पर्वत के तट (चरण) पर स्थित तिलक नामक नगर के शासक प्रसिद्ध श्रीभूति ने सुभूति नामक पुत्र को पाया। ६१ उपमन्यु नामक उसके पुरोहित के साथ अतुल ऐश्वर्य एवं सुख से रहते हुए एक बार उसने ब्रह्मपद प्राप्त किया। ६२ इस तरह उस तपस्वी के चरणकमलों में बैठकर, मीठा, मदिरा और मांस को त्यागकर शुद्धाचार से व्यवहार करनेवाले श्रीभूति को उसके पुरोहित उपमन्यु ने दुर्विचार से वृतभृष्ट करा दिया और युद्ध में मारा जाकर हाथी के रूप में जन्म

श्रीभूतिय मोहदिंदातन सुतनप्प सुभूतिगं योजनगंधिगमरिंदमनेंब नंदननागि, तानोंदु दिवसं कमलगर्भ महाऋषिय दर्शनदिं जातिस्मरनागि, तत्समीपदोळ् तोरेदु तपोनिष्ठेयोळ् नेरेदु देवनागि शतार कल्पदोळनल्प सुखमननुभवतिसुतिर्दसन्नेगमित्तल्—

अंदु दुराचारद फल-*दिंदं श्रीभूति सत्तु पुल्लेय बसिरोळ्
बंदं काळ्किच्चुं सुडल्*बेंदं मंदारमेंब गहनांतरदोळ् ॥ ६३ ॥

अंतु कळिदु कांभोजदोळ किरिजयनेंब किरातनागि—

आडिद काडोळ् जवने-*च्चाडिदनेने कोंदु तिंदु कैयुं कालुं
मूडिदुवु पातकक्केने*काडोडेयं कळिदु शर्कराप्रभेगिळिदं ॥ ६४ ॥

अदनुपमन्युचरनप्प देवनवधियिनरिदल्लिगे बंदु निनगे धर्मोपदेशंगेय्ये कैकोंडु नीनीगळ् रत्नमालियादे; निनगे धर्मोपदेशंगेय्दुदेवावेंदु पेळे, केळ्ददुवे निर्वेगकारणमागे सूर्यजयनेंब निज तनूजनं राज्यमं कैकोळ्वुदेनलातं तपोराज्यमनल्लदोल्लेनेंबुदं, तदपत्यनप्प कल्पानंदंगे राज्यमं कोट्टु रत्नमालि सूर्य जयंबेरसु तिलकसुंदर मुनिगळ समक्षदोळ् दीक्षेगोंडनेक कालं तपंगेय्दु महाशुक्र कल्पदोळ् पुट्टि पदिनारु सागरोपमतनल्लिय सुखमननुभविसि बंदंदिन सूर्यजयने

लेकर, पुनः मरकर, पुनः श्रीभूति के बेटे और पत्नी योजनगंधि को अरिंदम नाम से बेटे के रूप में जन्म लेकर एक दिन कमलगर्भ मुनि के दर्शनमात्र से पूर्वजन्म का स्मरण होने के कारण आश्रम को त्यागकर पुनः बड़ी निष्ठापूर्ण तपस्या से देव बनकर शतार कल्प में अल्पसुख का अनुभव कर रहा था कि— (उन दिनों के) पुरोहित के दुराचार के फलस्वरूप मरा हुआ श्रीभूति हिरण के गर्भ में जन्म ले रहा था कि मंदार नामक कानन में लगी आग मे उसकी आहुति हुई। ६३ इस तरह आहुति बनकर कंबोज देश में किरिजय नामक किरात के रूप में जन्म लेकर— वहाँ के प्राणियों पर ऐसी हिंसा करने लगा मानों यम ही उनका (प्राणियों का) वध करने लगा हो। उसके पापों को मानो हाथ-पैर निकल आये हों। मरकर वह शर्कराप्रभा नामक नरक को प्राप्त हुआ। ६४ अवधिज्ञान से इस बात को जानकर उपमन्यु, जो देव बन गया था, वहाँ आया और तुम्हें धर्मोपदेश दिया तो तुम रत्नमाली हुए। वही धर्मोपदेश वैराग्य का कारण बना, रत्नमाली के रूप में तुमने अपने पुत्र सूर्यजय नामक बेटे को राज्यभार करने का आदेश दिया। लेकिन उससे (सूर्यजय ने) यह कहकर कि तप-राज्य के अतिरिक्त और किसी प्रकार का राज्यसुख

नीनीगळ् दशरथनादे; नीं नंदिवर्धननादंदिन निन्नतंदेयप्प नंदिघोष-रेंबवर् तोरेदु नवग्रैवेयकदोळ् नेलसि बंदु सर्वभूतहित भट्टारकरावा-देवा श्रीभूतियुमुपमन्युवुं बंदु निन्न मैदुमरप्प जनकनुं कनकनुमादरेंदु बेसमे दशरथं विस्मयाक्रांत स्वांतनागि—

यतिपति पेळे केळ्दु भवसंततियं वगेदा जवंजव
स्थितियननादियं सुकृत दुष्कृत कर्म विपाक सौख्य दु-
स्स्थितिगळनुंडु राटळद गुंडिगेयंतेवोलादेनेंदु नि-
र्वृतिसुखदत्तराटिसिदनें रघुसूनु महानुभावनो ॥ ६५ ॥
अवचरदिन्नेगं सविर्देनिंद्रिय सौख्यमनग्र नंदनं
कवचहरं जिताहितबलं बलनन्ननिरल् महापरा-
भवमिदरिंदमावुदेनगेंदिरदुत्तरिसल्कोंडचिदं
भव जलराशियं दशरथं जिनरूप वहित्न यात्रेयिं ॥ ६६ ॥
परपीडाकरमेंतु नोडुवडमर्थोपार्जनं तद्दुरा
चरितोदीरित दुःख तिक्त फल सेवाकालदंदोर्वरुं
नेरविल्ला धनसेवेयंदे नेरवप्पर् नंटरेंददुं तां
मरुळक्कुं पुरुळक्कुमे मरेदु हानादान विज्ञानमं ॥ ६७ ॥

---

नहीं चाहिए, तो उसके पुत्र कल्पानंद को राज्य सौंपकर रत्नमाली अपने बेटे के साथ तिलकसुंदर नामक मुनिवर से दीक्षा लेकर अनेक वर्षो तक तपस्या करके महाशुक्र कल्प में जन्म लेकर, सोलह सागर वर्षो तक सुख का उपभोग (अनुभव) करनेवाला तब का सूर्यजय ही अब तुम दशरथ वन गये हो। तुम जब नंदिवर्धन थे तब तुम्हारे पिता नंदिघोष के नाम से मैं ही सर्वभूतहित भट्टारक था। श्रीभूति और उपमन्यु ही तुम्हारे अवके संवंधी जनक और कनक हैं। ऐसा कहने पर दशरथ आश्चर्यचकित हुआ। मुनिवर द्वारा कही हुई अपने पूर्वजन्मों की घटानाओं के बारे में सोचकर, अपने द्वारा अनुभव किए हुए सुख-दुःखों को, किए हुए सत्कार्य-दुष्कार्यो को स्मरणकर, इस वात से दुखी होकर कि अपने जीवन की स्थिति कुवें की गडारी के समान रही, वैराग्यमनस्क हुआ। यह महानुभावों (महापुरुषों) के व्यवहार नहीं तो और क्या हैं? । ६५ ग्लानि का शिकार न वनकर अव तक इंद्रियसुखों का अनुभव किया। ज्येष्ठपुत्र राम ने प्रसिद्ध खेचर धनुष को उठाकर, शत्रुओं को पराजित कर जगत्प्रसिद्ध हुआ है। फिर भी मैं उसे जान न सका। यह मेरी पराजय है, इससे मुक्त होने के लिए, इस जन्मरूपी सागर को पार करने के लिए जिन-रूपी नौका ही एक मात्र साधन है। ६६ परपीडा-प्रवृत्ति

वनिता संकुलमुं षडगं वलमुं भंडारमुं वस्तुवा-
हनमुं तन्नोडवर्पुवल्लवोडवर्कुं पुण्यपापंगळें-
बिनितं भाविसि ताने तन्न देसेयिं तन्नंदमं भाविसल्
मनमं तारदे वाह्यमं वयसुवंतश्यून्यनुं मान्यने ।। ६८ ।।

अळिवेण्णादोडमोंदेरळ्दिवसवोंदागिर्दवं नंटनें-
दुळिदंदन्यरनासेगेय्यळवळि निव्याकुळं पोल्लिवळ्
पळिगंजळ् भरतादिगळ् पलवुकालं तन्नोळोतिर्दवर्
कळिदंदा क्षणदोळ् धरारमणि मत्तोर्वगे पुविक्कुवळ् ।। ६९ ।।

मृगभूमिश्रित सांद्र चंदन रसंगळ् चंदनोशीर वा-
रिगळुं नर्तित हेमचामरचलन्मंदानिलगळं विला-
सगृहंगळ् कळेयल्के साल्दपुवं रागद्वेष वेगंगळिं
बगेयोळ् पेंचिद तापमं कळेववोल् जैनांघ्रिकल्पाघ्रिपं ।। ७० ।।

एनितेनितं पुंजिसदोड॥वनितनितुं मणियलरियदणियरमुरिगुं
धनदिं लोभाग्नियनि॥धनभारदिनावनग्नियं नंदिसुवं ।। ७१ ।।

जनकननरण्यनग्रज॥ननंतरथनिळेयनोंद्रुतिगळ कूसि-
गेनगित्तु तेरेंदरेन्नवो॥लिनवंशदोळितु मोहमूर्छितरोळरे ।। ७२ ।।

---

और अर्थोपार्जन दोनों दुरुद्देश्य से भरे हैं। इससे मिलनेवाला फल है दुःख। उस समय धर्म के अलावा और कोई सहायता नहीं करता। ऐसे धर्मज्ञान को भुला देना पागलपन होगा। ६७ अवसान के समय स्त्रीसमूह, चतुरंग सेना, (संपत्ति का) भंडार, वस्तु-वाहन कोई भी मेरे साथ नहीं आयेंगे। यह जानते हुए भी कि केवल पाप और पुण्य साथ आते हैं, इस तथ्य से अनजाना-सा व्यवहार करनेवाले अविवेकी इस संसार के लिए योग्य है ? । ६८ अल्प स्त्री (वेश्या) भी (पर-पुरुष के साथ) एक-दो दिन स्नेह से विताने के वाद दूसरों को नहीं चाहेगी। यह पृथ्वी उससे भी अल्प है (वुरी है)। अपमान से वह नहीं हिचकती। भरत चक्रवर्ती आदि ने अनेक वर्षों तक इस पर शासन करने पर भी उनके पश्चात् यह और किसी की वन गई। ६९ कस्तूरी मिश्रित चंदन रस, चंदन मिश्रित जल, सुवर्ण-मूठों के चामरों से ढुलाने पर उत्पन्न मंद हवा और विलास-गृह जिन-पदसेवा और रागद्वेषों से दूर करने के लिये पर्याप्त नहीं है। ७० लाख कोशिश करने पर भी आशा-अग्नि की भाँति उतना ही अधिक-जलने लगती है। धन-संग्रह से लोभ नामक अग्नि को और काष्ठ के भार से जलनेवाली आग को कौन वुझा सकता है ? । ७१ पिता अनरण्य

सावपुट्टु भयमं संसारमं सप्तधातुजयं देहस्थितिय
नाववस्तुवनुंडोडं तणियद कांक्षेयं बगेदु तन्नों-
ळेवुदी तोडर्पेनगिदेकेंदु दशरथं भाविसि भावितात्मनं
भाविमात्मनं परमयोगींद्रमं बीळ्कोंडयोध्येडे बंदनागळ् ॥ ७३ ॥

अंतरमनेयनधिराजं पोक्कु निर्वर्तित नित्यनियमनास्थान मंटप मध्यस्थित सिंहासनमनलंकरिसिर्पुदुं—

नेलसिद राजमंडलिय मंडळिकर्कळ दंडनाथ मं-
डलिय नियोगि वर्गद पुरोहित वर्गद मंत्रिवर्गदु-
ज्वल नवरत्न भूषण किरीट हटद्रुचियिंददें पळं
चलेदुदों राजराजसभे कुंभजनींटिद तोथ राशियं ॥ ७४ ॥

गुरु जनमुमाप्त जनमुं*परिजनमुं बंधुजनमुमाश्रित जनमुं
परिजनमुं तितिणिया-*गिरे सभेपोल्तत्तु रत्नमेळापकमं ॥ ७५ ॥

अंतोडोलंगंगोट्टु दशरथ महीनाथं निजतनूभवरं भरवेळ्दट्टु-वुदुं तदाज्ञेयं तलेयोळांतु—

हल मुसलायुधं नडेव तार नगेंद्रमनोंदुकर्मुगिल्
बळसिदवोल् विराजिसे विनीलपटं नडेतंदनेक कुं-
डलमुदयार्क मंडलमनेळिसे शेषनशेष धात्रियं
तडेवेडेयोळ् नेरंबडेदवोलिरे दक्षिणवाम बाहुगळ् ॥ ७६ ॥

---

और अग्रज अनंतरथ मुझ एक महीने के बच्चे को राज्य सौंपकर वन चले गये। तन भी सूर्यवंश में मुझ जैसा मोहपाश में फँसे हुए लोग हैं ? । ७२ जन्म-मरण के भय को, संसार को, सप्तधातुओं से बनी देह को, कुछ भी खाने पर समाप्त न होनेवाली आशा के संबंध में सोच-विचारकर, अपने आपसे यह प्रश्न करके कि इस तरह का व्यामोह मुझ में क्यों और क्यों कर जगा, परमयोगींद्र से विदा लेकर दशरथ अयोध्या लौटा । ७३ इस तरह राजमहल में प्रवेश कर, सोचते हुए अपने सिंहासन पर बैठा रहता था— राजदरबार में विराजमान राजसमूह के, मंडलिकों के, सेनापति, मंत्रीवर्ग के एवं पुरोहितों के सुशोभित मुकुट-भूषणों की कांति से वह सभा ऐसा प्रतीत हो रही थी मानों अगस्त्य द्वारा पिया हुआ (विशाल विस्तृत अगाध) समुद्र हो । ७४ उस सभा में समूह बनाकर बैठे हुए गुरुजन, आश्रित, बंधुजन, परिजन ऐसे लग रहे थे मानों वे रत्न के समूह हों । ७५ इस तरह दरबार में विराजमान दशरथ ने अपने जेष्ठ पुत्र राम को सभा में आने के लिये कहला भेजा

घमदोर्दंड विमंडितं घनगदा दंडं वृहत्कालदं
डनिभं भीकरमागॆ पीतवसनं संध्यांबुदं कोद नी-
लनगेंद्रं नडॆतर्प माळ्कॆविनुपेंद्रं दुर्जयं रामचं-
द्रन पिंदं नडॆतंदनायत सितांभोजेक्षणं लक्ष्मणं ।। ७७ ।।

इदिर्वरॆ तत्सभाजनद कण्मलरुं मनमुं कॆलक्कॆ वं-
दॊंदविद भक्तियिंदॆरगिदं पितृपादयुगक्कॆ राघवं
पदनख चंद्रमंडलिगॆ चंद्रिकॆयं कुडॆ देहदीप्ति हा-
रद नॆवदिंदमौलगिसॆ तारगॆयं निजकंठदळं ।। ७८ ।।

अनंतरं लक्ष्मण भरत शत्रुघ्नर् सर्वांग प्रणतरप्पुदुं अनंत सुख-भोग भागिगळागिमॆंदु परसि पर्यंक पार्श्वदॊळिक्किद मणिमयासनं-गळॊळ कुळ्ळिरिसि दशरथ रामचंद्रन मुखचंद्रमं नोडि—

निलॆ नुडिवीव कावधरॆय प्रतिपालिप धर्मवीधियिं
तॊलगद पॆमॆंय्यं तळॆदपॆमंगनं भुवनादिपत्यदॊळ्
निलिसि निसर्ग दुर्गमॆसिदर्पवर्ग पथक्कॆ दाळियि-
द्दलघु पराक्रमक्कॆ नॆलॆयागद पार्थिवनॆं कृतार्थने ।। ७९ ।।

---

तो राजाज्ञा को शिरोधार्य समझकर— चलकर आते हुए राम को एक नीलपट (वस्त्र) ने ऐसा घेरा मानों मंदारपर्वत को किसी काले बादल ने घेरा हो। एककुंडल राम सूर्यमंडल का उपहास करता हुआ-सा, पृथ्वी को धारण करने में शेपनाग ने हाथों का सहारा लिये-सा, दोनों हाथों में हल और मुसलायुध को धारण किये हुए था। ७६ हाथ में लिया हुआ गदादंड कालदंड के समान भयंकर दिखाई दे रहा था। पीतांबर धारण किया हुआ उपेंद्र लक्ष्मण संध्या के बादलों से घेरे हुए नीलाचल पर्वत के समान राम के पीठ-पीछे चला आ रहा था। ७७ वे दोनों चलकर राजसभा में आये तो उस सभा में उपस्थितों की दृष्टियाँ उत्सुकता से उन दोनों को देख रही थीं कि राम पिता के चरणकमलों में झुका तो ऐसा प्रतीत हुआ मानों चंद्रमंडल को चाँदनी ने प्रकाशमान बना दिया हो। ७८ तत्पश्चात् लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न ने दशरथ को साष्टांग प्रणाम किया तो उसने उन्हें "अनंत सुख भोग करो" कहकर आशीष देकर, अपने सिंहासन के बगल में स्थित रत्नजटित पीठों (आसनों) में बिठाकर, श्रीराम के मुखकमल को देखकर— गुणवान्, प्रजापालन में समर्थ, धर्म को न त्यागनेवाले, जेष्ठ पुत्र को राज्यभार सौंपकर, सामान्यों के लिए दुर्गम मोक्ष की अपेक्षा न रखनेवाला क्षत्रिय कृतार्थ हो सकता है! । ७९ वत्स, मैंने तुम्हें ललाट के नेत्र के समान प्राप्त किया।

नीसलोळ् कण्वडेदंते पुत्र पडेदें निन्न स्फुरत्तेजनं
वसुधा राज्यमनोप्पुगोळ् निलिसु नीनेन्नं तपो राज्यदोळ्
पसुगूसिगेनगित्तु मज्जनकनी संपत्तियं पूण्दु सा-
धिसिदं सज्जनता शरण्यननरण्य मोक्ष संपत्तियं ॥ ८० ॥

सुत नम्मन्वयदोळ् पुरातन जगद्विख्यात भूनाथरी-
स्थितियिं राज्यसुखंगळोळ् तणिदु तत्त्वाभ्यास विश्रांत जी-
वितरादर् मरेदी कुलक्रममनानितिर्दु सन्मार्ग प-
द्धतियं हास्यरस प्रवाह भरदिं प्रक्षाळितम्माळ्पेने ॥ ८१ ॥

तिलकाकारदिनिर्कें निन्न नीसलोळ् साम्राज्य पट्टं धरा-
वलयालंकृतमक्कें निन्न भुजदंडं निन्न मौळिप्रभा-
वलियिं चित्रितमक्कें बेल्गोडे तपःश्रीगां मनंददेने-
न्नोलवं पालिसु पाळियल्तु पितृवाक्योल्लंघनं राघवा ॥ ८२ ॥

किडिविडे कर्परं सुगिदु मेय्देगेदं कमठाधिपं पड-
ल्विडे पेडेगळ् फणिप्रभु मोगंदिरिदं देसेयाने माकोर्-
ल्वडेयदे तळ्गि मुळ्गिदुविवर्कतिभारदोळाद सेदेयं
किडिसि तनूज नीं तळेवुदी नेलनं निजबाहु दंडदोळ् ॥ ८३ ॥

---

यह लो, इस राज्य को स्वीकार करो; मुझे तपोराज्य में भेजो, जब मैं बहुत छोटा (दूधमुँहा) बच्चा था तब इस ज़िम्मेदारी को मुझे सौंपकर मेरे पिता ने अनन्यमोक्ष-साम्राज्य को पाया। ८० हमारे वंश के प्रख्यात-पुरातन राजाओं ने, इस तरह के राज्य-सुखभोग का उपभोग कर, तृप्त होकर, अपने निवृत्त जीवन को धर्मतत्व के अभ्यास में विताया। मैं इस रूढ़ि को भूलकर सन्मार्ग की परम्परा को संसार के अपहास्य के प्रवाह से भिगो दूँ ? । ८१ यह साम्राज्य में सिंहासन तुम्हारे माथे पर तिलकाकार में स्थिर हो, तुम्हारा भुजबल इस धरातल को धारणकर सुशोभित हो, तुम्हारे शिराभूषण से सूर्यवंश का श्वेतछत्र शोभायमान हो, मैंने तपस्ता का निर्णय किया है, मेरी इच्छा को पूर्ण करो, पिता के आदेश को अस्वीकार (उल्लंघन) करना धर्म नहीं है। ८२ तुम्हारी शौर्योन्नति से कमठ की पीठ का कवच आग उगलने लगा; अपने फनों के झुकने से महाशेष ने (अपने) सहस्रमुखों को हिलाया; दिग्गज ने तो अपने पर पड़े (लदे) भार को सहने में असमर्थ हो, अपनी पीठों को झुका लिया। तुम्हारे वाहुबल से इस धरती को तुम्हें धारणकर लेना होगा। ८३ ऐसा कहने पर हाथ जोड़कर राम ने कहा—पिताजी, वारह चक्रवर्तियों

एंबुदुं रामचंद्रं मुकुळित करसरोजनागि—

धरेयं द्वादश चक्रवर्तिगळिगित्तल् देव निम्मी भुजा
परिघक्कोप्पिसि बेळ्पुदं पडेदुवेंत्तानुं दिशादंति दि-
क्करिणी पेचक चुंबनैक सुखमं शेषोरगं भोगिनी-
परिरंभोत्सवमं पुराण कमठं निद्रांगना संगमं ॥ ८४ ॥

बळवद राशि मंडलमनंडलेदुद्धत बाहु दंडदिं-
दिळेयनिळेश नीं तळेदुदं रणबालकरेम्म वंदिगर्
तळेवरे विश्वलोकमुमनश्रमदिं प्रबल प्रभंजनं
तळेववोलक्षमं तळेयलार्कुमे वीजन मंदमारुतं ॥ ८५ ॥

ऎने दशरथं तनयन विनय वचनमं मनदे कोंडु—

तनयंगोप्पिसि राज्यमं नियमदिं निल्वर् तपोराज्यदोळ्
मनुवंश क्षितिनाथरी स्थितिगे निन्नं प्रार्थिसल्वेड नं
दन संक्रंदन वंदनीय पददोळ् निल्वें तपोराज्यदोळ्
निनगस्मद्वचनं विधेयमदरिं कैकोळ् धराभारमं ॥ ८६ ॥

ऎंदिवुमोदलागे पेललेरदिं मरुमतिगेडेयिल्लदंतु नुडिदेंतानुं रामननोवडिसि राज्यस्थनप्पंतु माडे तदनंतरं भरतं मुकुळित कर सरोजनागि—

---

ने इस साम्राज्य को आपके भुजवल पर सौपकर अपनी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर ली हैं। आपके शासनकाल में दिग्गज हथनियों की पूँछ के मूलभाग का चुंवन करने में, महाशेष (ढोने वाले) कमठ निद्रांगना का संग-सुख पाने में ही आसक्त रहे। ८४ बलवान शत्रुओं को आपके शौर्य से दंड देकर जैसा आपने शासन किया है वैसा करना क्या हम जैसे वच्चों के लिए संभव है? प्रचंड तूफ़ान की तीव्रता, हाथ-पंखे के हिलाने से निकलने-वाली हवा में कभी रह सकती है? । ८५ ऐसा कहने पर अपने बेटे की विनम्रपूर्ण वातों से संतुष्ट होकर, दशरथ ने समझाकर कहा— पुत्र को राज्य सौंपकर नियमित (रूप से) तपोराज्य को अपनाना हमारे सूर्यवंश की परंपरा है; ऐसे विषयों में तुमसे भी क्या पूछ लेंना नहीं चाहिए? बेटे, इन्द्रपद से भी श्रेष्ठ उस तपोराज्य में मुझे पहुँच जाना चाहिए। मेरी वात तुम्हारे लिए वेद-वाक्य है। इसलिए इस राज्यभार को स्वीकार कर लो। ८६ इस तरह अनेक प्रकार से ऐसा समझाया कि राम को तर्क के लिए मौक़ा ही नहीं दिया और उसे राज्य भार स्वीकार करने के लिए मना लिया तो भरत ने हाथ जोड़कर कहा— पिताजी, इस देह के

ऒडलशुचित्वमं गति चतुष्टयदॊळ् दॊरॆकॊळ्ळनिष्टमं
किडुव सुखंगळिं तणियदायसमं तिळिदिर्दुमॆनॊ नि-
म्मडि निमगळ्कि बिन्नविसलिन्नॆवरं सॆडॆदिर्दॆनिन्नॆरं
नडॆदॆळिशं निम्मॊडनॆ साधिसुवॆं परमाकसौख्यमं ॥ ८७ ॥

उपचित सौख्यमॊंदधिक दुःख समागम जन्मभूमियॊ—
दपगत दोषमॊंदखिल दोष समन्वितमॊंददरिं जिनपाद कल्पपा-
दप परिसेवॆगं जनप संपद सेवॆगभावुदंतरं ॥ ८८ ॥

ऎंदु तरिसंदु भरतं बिन्नविसॆ तत्सभॆयॊळॊर्वळतित्वरित गतियिं बंदु रामंगॆ राज्यमनित्तु दशरथं भरतंबॆरसु तपोवनक्कॆ पॊपुदं निवेदिसॆ कैकॆ विकळॆयागि—

धरॆयं रामगित्तं * गुरुवानळिपिंदमिदॊडॆनगक्कु किं-
कर भावमॆंब बगॆयिं * भरतंगॊडरसिदुदक्कुमी निर्वेगं ॥ ८९ ॥

अवनीश्वरनॊडनॆ तनू- * भवं तपंबट्टॊडासॆयारॆनगॆंदा-
युवति भयचकितॆ चिंता-*र्णव गर्त निमग्नॆ मरॆदळॆमॆयिक्कुवुदं ॥ ९० ॥

तक्करिदॆनगॆ सपत्निय-*रिक्कुंगूळिंगॆ बयसि पार्दिपं विषा-
दक्कॆ गुरियप्प दुर्यश*मक्कुं तनयं तपक्कॆ पक्कागलॊडं ॥ ९१ ॥

---

शुचित्व को बचाने के चतुर्विध पुरुपार्थो से प्राप्त होनेवाले अनिष्टों को निर्मूलकरने का उपाय जानते हुए भी उसे आपसे निवेदन करने से डर रहा था। अब आपके साथ ही मैं भी परमार्थ सुख पाऊँगा। ८७ जहाँ अधिक सुख हो, वहाँ गहरा दुःख भी मौजूद रहता है। —जन्मभूमि की रक्षा करना राज का कर्तव्य होते हुए भी, समस्त वस्तु-कार्य में अपरिमित दोषताप रहते हों तो जिनचरण सेवा और जिनपादानुग्रह से उपलब्ध सम्पत्ति की सेवा में अंतर क्या है? । ८८ इस तरह निर्णयकर भरत ने निवेदन किया तो एक स्त्री ने उस सभा से अत्यंत तेज से निकल कर राम को राज्य सौंपने, दशरथ भरत के साथ तपोवन गमन की सूचना कैकेयी तक पहुँचायी। खबर सुनकर कैकेयी को दु ख हुआ। —और उसने सोचा कि इस कल्पना से भरत में वैराग्य जगा होगा कि पिताजी द्वारा राम को राज्य सौंपने के पश्चात् उसे (भरत को) सेवक के समान जीवन बिताना पड़ेगा। ८९ यह सोचकर कैकेयी इतना भयभीत हुई कि चिंतासागर की लहरों में गोता लगाते हुए पलके मूँदना भूल गई। उसे इस बात का डर हुआ कि महाराजा के साथ अगर भरत भी तपस्या के लिए निकल पड़ा तो वह (कैकेयी) अनाथ बन जायगी। ९० अगर

अॆंदु पलुंबि पंबलिसुत्तुमा समयदॊळ्—

तनगिनियनित्त मॆच्चं॰नॆनॆदळ् मडट्टु मरॆद धनमं बडवं
नॆनॆवंतॆ कांतॆ चिंता॰घनांधकार प्रदीप रूपोपमयं ॥ ९२ ॥

अंतु नॆनॆदु मनदॊळ् गुडिगट्टि भरतनं राज्यमोहदॊळ् तॊडर्चलॆंदॊडर्चि—

कनक विभूषण प्रभॆ तनुप्रभॆयिं तनिगॊर्वुगॊर्वॆ मो-
हनमनॊडर्चलॆंदु गुणाहानिगॆ बॆर्चदॆ धर्महानियं
नॆनॆयदॆ पाळसेवॆ वृथॆयादुदॆनल् मलिनांतरंगॆ ट-
क्किनसॊडरंतॆ कैकॆ पुगुतंदळिळाधिप रम्म हर्म्यमं ॥ ९३ ॥

उद्वेग भरं सभॆगॆ ज-॰गद्वल्लभनभिमतक्कॆ विघ्नमपायं
विद्वज्जनक्कॆ पुसुगॆगॆ॰विद्वेषण विद्यॆ वर्प तॆरदिं वंदळ् ॥ ९४ ॥

अंतु कॆलक्कॆ बंदु—

अनुचितमॆंबिदं वगॆगॆ तारदॆ दुर्यशमक्कुमॆंबिदं
नॆनॆयदॆ कैकॆ देवरॆनगीवुदु बैकॆय मॆच्चनॆंवुदं
मनुकुलदॊळ् तॊदलनुडि पॊदळगुमॆ बॆर्चदॆ वेडिकॊळ् तपो-
वन गमनक्कॆ विघ्नकरमल्लदुदं मृगशाब लोचने ॥ ९५ ॥

---

भरत तपस्या के निमित्त राजप्रासाद त्यागता है तो मेरा महत्व (स्थान-मान) घट जायगा, सौनिकों द्वारा दी जानेवाली वस्तुओं पर निर्भर रहकर दुःख का अनुभव करना पड़ेगा। ९१ इस तरह तड़प रही थी कि तुरंत— अपने पति द्वारा दिये गये वरों का स्मरण हुआ तो चितापूर्ण अंधकार में भी उसे इतनी ख़ुशी हुई जैसी ग़रीव को अपने द्वारा संग्रहीत लेकिन भूले हुए भंडार (संपत्ति) को पाने पर होती है। ९२ भरत को राज्य मोह मे उलझाने (फँसाने) के विचार से— अपने पुत्र के प्रति स्थित व्यामोह को व्यक्त करने के उद्देश्य से, अपनी गुणहानि और धर्महानि की परवाह किये विना अशुद्ध मन की कैकेयी, स्वर्णाभरण जो उसकी देहकांति को बढ़ा रहे थे पहनकर कृतक दीप शिखा की तरह दशरथ के दरवार के प्रांगण में प्रविष्ठ हुई। ९३ वह वहाँ इस तरह आई मानों सभा में विद्वेग जगाने, जगवल्लभ दशरथ की इच्छा में वाधा डालने, विद्वज्जनों के लिए घातक वनकर द्वेषविद्या वाँटने के लिए आई हो। ९४ आकर वगल में खड़े होकर— इसे अनुचित न समझकर, इससे आनेवाली अपकीर्ति को न जानकर, कैकेयी ने कहा—प्राणनाथ, आपने जो वर देने का वचन दिया था, उसे आज पूर्ण करने की कृपा करे। इसे सुनकर दशरथ ने

ऍनॆ मनदॆ कॊंडु—

वदन सुधांशु बिंबद कळंकद बित्तुगळंतॆ वक्त्र प-
द्मद मधुपानमं सविदु सॊकिद तुंबिगळंतॆ नीळ्दुवा
सुदति समग्रनग्रजनरिरल् पळिगंजदॆ पाप भीरुवा-
गदॆ भरतंगॆ राज्य भरमं कुडवेळ्द मलीमसोक्तिगळ् ।। ९६ ।।

दशरथनं कैकॆ चतु- ॐ र्दश वर्षावधियनवनियं बेडॆ चतु-
र्दश भुवनावधियॆनॆ दु- ॐ र्यशस्तटिन्नादमादमॆनॊदविदुदो ।। ९७ ।।

कनवनिप काळरात्रिय ॐ दनियंता नृपन किविगॆ दुस्सहमाय्ता
वनितॆय नुडि किडियंतिरॆ ॐ मनक्कॆ पडॆदत्तु वेदनास्वादनमं ।। ९८ ।।

डोलायमान मनन ॐ स्तालापं गत मनोरथं दशरथना-
बालॆय दनि किविवुगॆ घन ॐ मालॆय दनिगॆळ्द हंसनंतळवळिदं ।। ९९ ।।

ऍरडक्कुं नुडि मॆच्चुगॊट्टु कुडदंदी कैकॆगानित्तॊडं
धरॆयं स्त्रीजितनागि कॊट्टनवनीशं रामनिर्दंदिं
भरतंगंबपवादमक्कुमदरिंदॆनॆंबॆनानॆंदु मू-
गरवोल् मौनदॊळॊंदि पच्चबगॆयि दुम्मच्चमं ताळ्दिदं ।। १०० ।।

कहा—मनुकुलवाले कभी झूठ नहीं बोल सकते, निडर होकर चाहे जो माँग लो लेकिन वह (वर) तपोवन के प्रयाण के लिए बाधक न बने। ९५ उसे सुनकर— मुखचंद्र के कलंक के बीज-सदृश मुखपद्म का मधुपानकर मदमस्त भ्रमरों-सा, जेष्ठ पुत्र राम के रहते हुए भी पाप और अपयश से न डरकर (कैकेयी ने) भरत के लिए राज्य माँगने की धृष्टता की; यह बुरी बात है। ९६ चौदह साल भरत के लिए राज्य के अधिकार की माँग चौदह लोकों को कंपा देनेवाली घोर घनगर्जना के समान थी। ९७ भयंकर गहरे अंधकार में सुनाई देनेवाले अपस्वर के समान कैकेयी की बात दशरथ के कानों को असह्य होकर मन में आग की लपटों की भाँति दुःख देने लगी। ९८ दशरथ का मन विचलित हुआ; कंठ से ध्वनि ही नहीं निकली; अपनी पत्नी की बात सुनकर उसकी दशा वैसी ही हुई जैसे घनगर्जना सुनकर हंसनी की। ९९ अगर दिये गये वचन (वर) को न निभाऊँ तो वचन भंग होता है। और अगर उसकी माँग के अनुसार भरत को राज्य सौंपूँ तो राम का राज्याभिषेक कर देने का जो निश्चय किया है, उसे निभा नहीं सकता। इसी दुविधा में मूक-सा मौन धारण किया और उसकी दशा मतिभ्रष्ट-सी हुई। १०० संध्या समय के चक्रवाक

अंतु दशरथ नरनाथं दिवसदवसानद रथांगदंतॆ चिताक्रांत-नागिर्पुदुं—

मज्जननि नॆलननॆनगॆ॥समज्जनकननॆरॆदळॆंदु नॊंदं भरतं
लज्जानतनाभिमानद॥पज्जॆयनॆं तप्पि मॆट्टलरिगुमॆ तक्कं ॥ १०१ ॥

इष्टमॆनगल्तु पतिगम-॥निष्टं भाविसिदळिल्ल तनगं दृष्टा-
दृष्ट विरोधं दुर्णय॥चेष्टितमं जननि मुग्धमति तिळिद्रपळॆ ॥ १०२ ॥

अॆंदु भरतं विषाद भर तंद्रीभूत चेतसनागिर्पुदुं—

नुडिदळनिष्टमं नुडिदळन्नॆयमं पनिगं विरुद्धमं
नुडिदळसेव्यमं नुडिदळन्वय राज्य विनाश हेतुवं
नुडिदळॆनुत्तुमळ्कदॆ नरेंद्र सभा जनमंदु कैकॆयं
नुडिदुदु मॆच्चिचदंददॊळॆ दोपमॆ दुर्वलमागदिर्क्कुमॆ ॥ १०३ ॥

मनदळिपिल्लदंगनॆयरॊर्वरुमिल्लॊनॆ कैकॆ वेडि मे-
दिनियनिदेकॆ माडिदळॊ मुग्धॆ सहोदररॊळ् विभेदमं
तनगपवादमं दशरथगॆ विषादमनीगळात्मनं-
दनन्न मनक्कॆ खेदमनदॊंदुचिताचरण प्रमादमं ॥ १०४ ॥

---

के समान दशरथ चिताक्रांत था कि— भरत को इस वात से दुःख हुआ कि उसकी माँ ने उसके लिए पिता से राज्य माँग लिया है, उसने लज्जा से सिर झुका लिया। १०१ उसकी यह माँग मुझे पसंद नहीं है। इसने (माँ ने) यह नही सोचा कि उसकी आकांक्षा पति के लिए घातक सिद्ध होगी; मां यह भी नहीं जानती कि इस माँग में मेरे और वड़े भैया (राम) के वीच में प्रत्यक्ष विरोध उत्पन्न होगा। १०२ भरत का मन विषाद से भरा हुआ था। इसने (कैकेयी ने) अनिष्ट कहा; अन्याय किया; पति से विपरीत वात कही; अहित चाहा; वंश के लिए अपमानजनक वात सोच-कर राज्य-विनाश के लिये कारण वनी कहते हुए उपस्थित सभा ने, जिसने पहले कैकेयी की प्रशसा की थी, आज दुत्कारा, दोषारोपण किया। १०३ मानो संसार में विचित्र आकांक्षा न रखनेवाली एक भी स्त्री न हो, कैकेयी ने राज्य माँगकर न जाने भाइयों में क्यों भेद डालना चाहती है! न जाने अपने आपका अपमान क्यों करा रही है? न जाने दशरथ को क्यों दुखी वना रही है? न जाने वेटे को क्यों लज्जित करा रही है? इस तरह का प्रमाद (अपने कार्य को योग्य समझकर) न जाने क्यों कर रही है? । १०४ उस राज्य को, जिसका अधिकारी अपराजिता के पुत्र राम

इतररळवल्लदपरा- ॐजित सुतंगल्लदेकें देवि धरित्री-
पतियं वसुमतियं जड-ॐमति वेडिदळेंदु कॅलवरेळिसि नुडिदर् ।। १०५ ।।

कीर्तिसें धरें तलॅगरॅदिरॅॐमार्तलें राघवनमोघशरमुं वज्रा-
वर्तमुमल्लदें रक्षिसॐलार्तपुवे नॅलननुळिदरंबुं बिल्लुं ।। १०६ ।।

गुणहानिगॆ बॆर्चदे धा-ॐरिणियं प्रणयदिनिळेशनित्तॊडमें ल-
क्ष्मणनीयलीयनॆंबुद ॐनॆणिसळॆ जडमतिगळागदिर्परॆ पेंडिर् ।। १०७ ।।

सुतमोहदिनी वधु पतिॐहितमं भाविसिदळिल्ल तनगमणं दु-
र्गति हेतुवनतिमोहंॐगतिगिडिसुगुमब नाडनुडि तप्पुगुमें।। १०८ ।।

मोघमनखिल परिग्रहॐदाघमनी कॅकॆ वेडॆ धरॅयं तृणदिं
लाघवमॆनॆ बगॆदीगुंॐराघवनौदार्य तुंगनीयदुदुंटे ।। १०९ ।।

भरतं लज्जानतं ताय् विकळॆ दशरथं विह्वलं लक्ष्मणं को-
प रसावेशं सभामंडलमसकृदसद्वाक्य मुक्तोष्ठमंतः
पुरवंतश्यून्यमिंतिर्पुदुमुपचित कारुण्य दृष्टिप्रभा नि-
र्भरपूरं पारिजातं कडल नडुवॆ कैवंदवोल् रामनिर्दं ।। ११० ।।

तंदॆय नन्नि निल्वुदु मनोरथवप्पुदु तायॅगॆ राज्यदॊळ्
निंदपनॆन्न तम्मनॊसॆदित्तु कृतार्थनॆनप्पॆनॆन्न सै-
पिं दॊरॆकॊंडुदी परम लाभमॆनुत्तुमुदात्त चित्तना-
नंदमनप्पुकॆय्दु पुलकोद्गाममं तळॆदं हलायुधं ।। १११ ।।

---

के अतिरिक्त और कोई हो नहीं सकता, मतिभ्रष्टा कैकेयी ने क्यों माँगा ? कहकर कुछ सभासदों (उपस्थितों) ने कैकेयी की निंदा की। १०५ राम के, अमोघ वाण और चक्रावर्त धनुष के अलावा, अन्य (सामान्य) धनुष-वाण इस संसार की रक्षा कर सकते है ? । १०६ अपने पर आनेवाली अपकीर्ति की परवाह किये विना, प्यार के कारण दशरथ भले ही सारी पृथ्वी देने के लिए तैयार हो जाय, कैकेयी इस बात को न जान सकी कि लक्ष्मण वैसे होने (देने) नहीं देगा। १०७ पुत्र-मोह के कारण यह कैकेयी पति के हित में बाधक बनी। अपने कार्य में स्वयं की दुर्गति कर रही है; अतिमोह वर्ज्य है, यह लोकोक्ति कभी ग़लत नहीं हो सकती। १०८ कैकेयी की इस नाहक (व्यर्थ) वर की माँग को सुनकर राम इस राज्य को केवल तृणतुल्य समझकर अपना औदार्य दिखाए विना रहेगा ! । १०९ लज्जा से सिर झुकाया हुआ भरत, विकल कैकेयी, विह्वल दशरथ, क्रोधावेशपूर्ण लक्ष्मण, क्रुद्ध सभाजन, दुखी-असंतुष्ट परिवार अपनी-अपनी भावलहरी में डोल रहे थे कि करुणपूर्ण दृष्टिवाला राम, समुद्र के बीच

मगनेनिपंगे मातृपितृभक्तियें कृत्यमिहत्रंगं पर-
त्रंगमुपकारि वेरे पेरतावुदो चारुचरित्रमेंदु की-
र्तिगे देसे सालवेंविनेगमर्णव मेखलेयं धरित्रियं
वगेयने वाळ्तेगेय्यने जरत्रण लाघवमेंदे राघवं ॥ ११२ ॥

असदनुशासनं सदवनं नृपलक्षणमोंदु वाहु सा-
हसगुणमोंदु दानगुणमीयेरडुं निमिर्वतु पोगि सा-
धिसुवेनराति मंडलमनेन्ननुजंगेनगम्म नित्तुदं
वसुधेयनीवेवेंदु मनदोळ् तरिसंदनुदात्तराघवं ॥ ११३ ॥

अंतु निश्चयिसि कैकेय मुखकमल विलोकनंगेय्दु मुकुळित करकमलनुं विकसित हृदयकमलनुमागि—

पुसि पोलनल्तु नालगेगे यंदेतनं मोरेयल्तु कैय कू-
रसिगे कुलक्रमं रघुकुलक्किदु देवियगेन्न दूसरिं
पुसिनुडियं मदीय जनकं नुडिदंदु जनापवादवे-
ण्देसेगमनर्गळं परेगुमानदनेळिसे दैन्यमागदे ॥ ११४ ॥

---

सुशोभित पारिजात के समान दिखाई पड़ा। ११० यह सोचकर राम अत्यंत हर्ष से रोमांचित हो उठा कि पिता के सत्य (वचन) की रक्षा होगी; माता का मनोरथ पूर्ण होगा; भरत राज्य शासन करेगा; इससे मैं कृतार्थ हो जाऊँगा; मुझे यह सुसंदर्भ मेरे भाग्य से मिला है। १११ माता-पिता के प्रति जो भक्तिभाव है वह पुत्र के इह-पर के लिए उपकारी बनता है, अन्य वस्तु नहीं। इसे अच्छी तरह से राम के अलावा और कौन जान सकता है? उसकी कीर्ति के फैलाव के लिये सागरों से आवृत्त भूमि की सीमा पर्याप्त नहीं है। इसी कारण उसने राज्याधिकार को तृणवत् समझा है। ११२ राजतंत्र का पालन करना, पालन कराना राजलक्षण है। राम ने निश्चय किया कि पराक्रम और दानगुण को उज्वल बनाए रखने के लिए शत्रुओं से लड़कर छोटे भाई की राजगी को सुदृढ़ बनाऊँगा. पिताजी के वचन को सादर स्वीकार करूँगा। ११३ इस तरह निर्णयकर, कैकेयी के मुखारविंद को निहारकर, हाथ जोड़कर खिले हृदयकमल से राम ने कहा— जीभ झूठ न बोले; हाथ में खड्ग धारण करनेवाले को कायरता शोभा नहीं देती; यह रघुवंशियों का आचार नहीं। मेरे कारण पिताजी पर किसी तरह की आँच न लगे। हमारे पिताजी झूठ न बोलें। झूठ बोलने पर कलंक दशो दिशाओं में फैल जाता है। अगर मैं उसे मौका दूँ तो क्या गलती नहीं होगी? । ११४

धरेयं तंदेय नन्निगित्तु धरेयं कैकोंडोडेन्नोळ्पु बी-
सरमक्कुं बगे कूडदंदु निमगक्कुं प्रार्थनाभंगिमी-
येरडु दुर्णयवेन्न कीर्तिगे कलुंवं माडुगुं राज्यमं
भरतंगळ्करोळित्तनेन्न नुडियं नीनितु नंबबिके ॥ ११५ ॥

अेनगे वेससिदोडे सालदे*जननियरी धरेयनेन्न तम्मंगानी-
येने वेडवेळ्पुदे म-*ज्जनकननिल्लिवरमितिदावुदु गह्नं ॥ ११६ ॥

अेंदु ताय बयकेयं तीर्चि—

जनकं राज्यमनीये रामन मुखं हर्षक्के पक्कादुदि-
ल्लनुजंगय्यन नन्नियं सलिसलेंदीवल्लि हर्षक्के ता-
य्वने तानादुदिदावुदच्चरियो पेळीवल्लि सत्पात्नदोळ्
धनमं पो मलिवंदिं नलिवने धन्यं धनप्राप्तियोळ् ॥ ११७ ॥

तदनंतरमुदात्तराघवं तंदेयमुमुखारविंदमं नोडि—

अेडेगुडदिदोडें गगनमंडलमुर्वरे ताळदिदोड
मिडुकदे गाळि मेय्गरेदोडं मळेगळ् मळेगालदंदणं
तडेदोडमग्नि तोरदोडमुण्णतेयं रघुवंशजर् तोद-
ळ्नुडिदोडमाहवक्के सेडेदिददोडमेंतो जगक्के जीवनं ॥ ११८ ॥

---

पिताजी के सत्य के लिए राज्य सौंपकर वनवास को स्वीकार न करूँ तो मेरी सज्जनता व्यर्थ जाती है; आपकी याचना भंग हो जाती है, ये दोनों अविनय मेरी क़ीर्ति में कलंक लगा देंगे। अतः भरत को स्नेह से राज्य दे रहा हूँ। मां, मेरी वात पर विश्वास रखे, इसे सत्य माने। ११५ भरत को राज्य देने की आज्ञा मुझे न देकर उसे पिताजी से माँगने की क्या ज़रूरत थी ? मेरे अनुज को राज्य दे देना कौन-सी बड़ी वात है ? । ११६ ऐसा कहकर, कैकेयी की आशा को पूर्ण किया —राम को दशरथ ने जब राज्य सौंपा था तब उसका मुखकमल हर्ष से भरा था। पिता के वचन को निभाने के लिए उसी राज्य को छोटे भाई (भरत) को सौंपते समय राम का हर्ष सीमातीत था। ऐसे में सत्पात्र में दान करने-वाले दानी के धन्य हो जाने में आश्चर्य क्या है ? । ११७ तत्पश्चात् राघव ने पिता के मुखारविंद को देखकर कहा— आकाश मंडल भले ही स्थान न दे, भूदेवी भले ही सहन खो दे, हवा भले ही अदृश्य हो जाय, वर्षाऋतु में बारिश भले ही न हो, अग्नि भले ही ठंडी हो जाय, किन्तु रघुवंशवाले दिए गए वचनों को न निभावें, युद्ध से भयभीत हों, तो संसार कैसे चल सकता है ? । ११८ पिताजी, अगर मुझे राज्य दिया जाय तो भी उसका

देवरेँनगित्तोँडं वसु-*धा वलयमनाळ्वरेँन्नतन्मंदिरेँ चिं-
ता विषयमल्तु भरतं*गीवुदु वसुमतियनेँम्मोँळेँडेँगट्टुंटे ॥ ११९ ॥
भरतं तपक्केँ नडेँगुं*धरेँयोँळ् निलिसदोँडेँ सुतनगळ्केँयोँळक्कुं
मरणं जननिगेँ निमगं*दोँरेँकोँळ्गुमदृष्ट वार्धवेँरसपवादं ॥ १२० ॥
प्राप्तियनसकळियलुम*प्राप्तियनागिसलुमागददरिं दोपा-
वाप्तियनें निम्मन्नर्*सुप्तरवोल् मोहमूर्छेँयं ताळ्दुवरे ॥ १२१ ॥
अँतुटु शुभाशुभोदय मंतुटननुभविपरारुमिदनरियुत्तुं
चिंताज्वरमं पिरियर् स्वांतदोँळिरिसुवुदेँ देव जडमतिगळवोल् ॥ १२२ ॥

पडेँमातें सुत मोहदिं दशरथं माताडिदं तप्पनें-
दोँडेँ देवर्गपवादमक्कुमेँनगं रामं गडं केळ्दुमा-
नुडियं राज्यमनासेँगेँय्दनेँनें दैन्यं बकुमिन्नासेँगे-
य्दोँडेँ निम्माज्ञेँगेँ तप्पिदें सलिसिमोँमिर्गेँन्न वाग्वृत्तियं ॥ १२३ ॥

पदिनाल्कुवर्पमं ताय तनयन तपमं माणिसल् राज्यमं वे-
डिदळोँळ्पं माडिदळ् सोदर विरहितमेवाळ्तेँ सामाज्य संप-
त्पदमस्मद्बाहु वीर्य प्रकटनदोँलविंदन्नेँगं दिग्जयोद्यो-
गदिनीगळ् पोगि वर्पें भरतन नोँसलोँळ् निळ्केँ सामाज्यपट्टं ॥ १२४ ॥

---

शासन करनेवाले मेरे अनुज ही है; इस बात को आप जानते हैं। वही राज्य भरत को दिया जाय तो हम में कोई भेदभाव (ग़लतफ़हमी) नहीं रहेगा। ११९ अगर इस राज्य में भरत को न रोकें तो वह अवश्य तप करने जायगा; पुत्र-वियोग से माँ मर जायगी। आप पर व्यर्थ ही कलंक लगेगा। १२० हमें उपलब्ध होनेवाली प्राप्ति को रोकना और अप्राप्ति को चाहना व्यर्थ (असाध्य) कार्य है। दोषारोपण के लिए लागू होनेवाले इस सामान्य विषय के लिए आप जैसे व्यक्ति मोहित हों? । १२१ इस जीवन में शुभाशुभ जिस रूप में भी आते है उनका अनुभव (उपभोग) करना चाहिए। इन बातों को जानते हुए भी, इस विषय के लिए आप सामान्यों-से दुःखी होते हैं? । १२२ जगवाले कहें कि 'दशरथ राम के मोह के कारण, दिये गये वचनों से मुकर गया' तो आप कलंक से बच नहीं सकते। मुझ पर भी यह लांछन लगेगा कि पिता के वचन से अवगत होते हुए भी राम ने राज्य की आशा की। मुझे राज्य का लोभ नहीं। भरत को राज्य देकर एक बार मेरी बात मान लीजिए। १२३ बेटे को चौदह साल की तपस्या से रोकने के लिए यह राज्य माँगकर माँ ने बड़ा सत्कार्य किया है। जिस राज्य में भाई न रहे वह राज्य ही क्या

अेंदु बिन्नविसिद राघवनमोघ वाक्य माणिक्य किरणदिन-पसारित मोहांध कारनागि—

परमश्री वल्लभंगी चरम तनुगिदेबाळ्तें नम्मीव राज्यं
परमाणु प्रायमेंदा तनयन विनयनक्कं नयक्कं गुणक्कं
चरितक्कं बेंक्कसंबट्टधिपति तलेयं तूगिदं सूसुवन्नं
सुरचाप श्रेणियं बासुर मणिगण नानांशु कूटं किरीटं ॥ १२५ ॥

आ समयदोळ् भरतं दशरथंगे मुकुळितांजलि पुटनिंतेंदं—

ज्यायन राज्यमनय्य क-*नीयनपेक्षिसुवुदुचितमल्तु तपोरा-
ज्यायत्तमेन्न चित्त*न्यायार्जितमल्लदेनिप धनमेबंड ॥ १२६ ॥

हेयमनरिदुं राज्यम-*नीयलपेक्षिसुविरेनगे नीवोल्लदुदं
श्रेयस्करमल्लदुदं *हेयमुपादेयमेनगदेंतापुदो ॥ १२७ ॥

अेन्नवरं वैराग्यं * तन्नोळ् तलेदोरदन्नेवरमोलववकुं
तन्नं तानरिद बळि * क्केन्नगें विषय सुखदोळोलवादपुदे ॥ १२८ ॥

अेनें दशरथं भरतन परिच्छेदमं मनदोळे मेच्चि तनय ! निनगिदन्नेवरं समयमल्लदेंतेनें—

---

है ? उस सम्पत्ति से क्या लाभ ? मेरे बाहुबल को प्रकट करने के लिए दिग्विजय-निमित्त मैं जा रहा हूँ। साम्राज्य-तिलक भरत के ललाट पर रहे। १२४ इस तरह निवेदन करनेवाले राम के अमोघ वचनों को सुनकर और भी मोहित होकर— यह समझकर कि इसे (राम को), जो लोकरक्षक है, हमारे द्वारा दिए जानेवाला राज्य अल्प है; पुत्र के विनय, गुण, चारित्र्य आदि से अत्याश्चर्य चकित होकर, दशरथ ने सिर हिलाया तो उसके किरीटों का रत्न-समूह कामदेव के धनुष की कांति के समान सुशोभित हुआ। १२५ तब हाथ जोड़कर भरत ने इस तरह कहा— न्याय से जो राज्य जेष्ठ पुत्र को मिलना चाहिए, छोटे पुत्र द्वारा उसे चाहना उचित नहीं है। मेरी तो एकमात्र इच्छा तपोराज्य पाने की है। जो धन न्यायोचित उपलब्ध न हो, वह अपेक्षणीय नही है। १२६ यह जानते हुए भी कि ऐसा करना (उसे देना) अनुचित है, आप राज्य मुझे देना चाहते है। आप में ही उसके प्रति वैराग्य जगा है। जो न्यायोचित नहीं है, मेरे लिए स्वीकार योग्य कैसे हो सकता है ? । १२७ जहाँ तक मुझमें वैराग्य नहीं जागता वहाँ तक ठीक रहेगा; मैं जब अपने आपको जान जाऊँगा, उसके बाद क्या इस तरह के विषय-सुख के प्रति आस्था रहेगी ? १२८ ऐसा कहने पर भरत के विचार से मन में प्रसन्न होकर

परम पुरुषार्थमिर्दुदु॰चरमदोळन्नेवरमुळिद पुरुषार्थदोळा-
चरिसुवुदु तक्कुददरिं॰परिविडियं तप्पलार्गमें बंदपुदे ॥ १२९ ॥

अदरि निनगें निजाग्रजन वचनमें विधेयमेंने मरुवातुंगुड-
लरियदे भरतनिरे राघवनिंतेंदं—

नन्निगें बन्नमादोडयशं पिरिदप्पुदु तंदेगेंविदं
निन्न वियोगदिं जननिगप्पुदु जीवविमोगमेंविदं
निन्न नेगळ्तेगं महिमेगं पितृवाक्यमें कृत्यमेंविदं
निन्नोळे नीने भाविसुवुदेळिसलप्पुदिदागदेंबिदं ॥ १३० ॥

क्रम परिपालनार्थमेनगित्तनिळाधिपनित्तनेन्न रा-
ज्यमनधिराज सत्य परिपालनेगां निनगंतरिंदद-
क्रममणमल्तु नीं तळेवुदोर्मेनदिं युवराज राज्यभा-
रमनधिराज वाक्यमेनगं निनगं करणीयमल्लवे ॥ १३१ ॥

अेंदु राममनुजनं राज्यदोळ् निल्वंतेंतानुमोडंबडिसे विस्मयं-
बट्टु—

अेदोरेयर् महापुरुषराद्यरिदं पिडिदोर्वरोर्वरोळ्
कादिदरोडिदर् मडिदरल्लदे तंदेय नन्निगित्तरार्
मेदिनियं जरत्तृणमनीववोलेंदु कडंगि वण्णिसि-
त्तादरदिं महीभुज सभा वलयं वलभद्ररामनं ॥ १३२ ॥

---

दशरथ ने कहा— बेटे, तुम्हारे वैराग्य का यह समय नहीं है, क्योंकि, परम पुरुषार्थ का वैराग्य मानव की अंतिम उपलब्धि है। तब तक उसे पूर्ववत् लोक-व्यवहारों को चलाना चाहिए; यह नियम (क्रम) है, इससे कोई छुटकारा नहीं पा सकता। १२९ अतः अपने अग्रज के आदेश को मानना ही तुम्हारा कर्तव्य है— ऐसा कहने पर उत्तर देने के लिए भरत उत्तर नहीं पा रहा था कि राम ने यूँ कहा— सत्य में बाधा पड़े तो पिताजी की अपकीर्ति बढ़ेगी, तुम्हारे वियोग से माँ के जीवन में वियोग उत्पन्न होगा; तुम विवेकी हो, अनुभवी हो। तुम ही ऐसा निर्णय कर लो ताकि तुम्हारी कीर्ति में आंच न लगे और पिताजी का वचन भंग न हो। १३० वंशक्रम के अनुसार पिताजी ने मुझे सौंपा है; मेरे राज्य को मैंने (स्वेच्छा से) पिताजी के सत्य (वचन) को क़ायम रखने के लिए, तुम्हें दिया है। यह अक्रम नहीं है। अतः तुम इसे सहर्ष स्वीकार करो। राजा की बात हम दोनों के लिए आज्ञा है न ? । १३१ ऐसा कहकर भरत को राज्य में रहकर शासन करने के लिए मना लिया तो आश्चर्य चकित होकर— उपस्थित सभाजनों ने राम

उर्वीनाथरनेकरुं मडगि भंडारंगळं लोभदिं
पॆर्वावागि पिशाचमागि पलकालं कादुकॊंडिर्परा-
रुर्वीचक्रमनितु कॊट्टरनुजंगॆंदा सभाविष्टरो-
रॊर्वर् बण्णिसिदर् परार्थ गुण कल्पारामनं रामनं ॥ १३३ ॥
कागिणिगॆ मरं बीळ-*ल्वोगिर्कु कडलकडॆवरं निमिर्द मही-
भागमननुजंगित्त *भागिगळार् सीरपाणियॊरॆगं दॊरॆगं ॥ १३४ ॥
ऒरगुवुदूर्ध्वज्वलनमॆ*तॊरनॆनिसिद दीयवर्ति निधिगा निधियं
तॊरॆदं दलॆदॊडार्पिन*तरिसलवं कंडनेककुंडलनॆ वलं ॥ १३५ ॥
वसुमतियं मृत्पिंड-*क्कॆ समंगंडारॊ कॊट्टु तंदॆय पळियं
मसुळिसि हलियवॊलॆंटु*दॆसॆवरॆगं विशद कीर्तियं पसरिसिदर् ॥१३६॥
अॆनानुमनित्तु कॆळर् * दानुगुणक्कुंतॆ बॆसॆवरय्यन सत्य
क्कॆनय्य रघुजनंतं- * भोनिधि वळयितमनिळॆयनित्तवनावं ॥ १३७ ॥

ऎंदु पॊगळ्व सभाजनद स्तवनक्कं भरतं क्रमंदप्पि साकेत साम्राज्य पट्टमनॊडंबट्टुदर्क लक्ष्मणं कट्टुकडॆदु—

के औदार्य का वर्णन करते हुए कहा कि इस राज्य के शासक उसके लिए लड़े, उसके लिए मरे; श्रीराम की भाँति पिता के वचन पालन के लिए साम्राज्य को तृणवत् समझकर अनुज को किसने दिया है ? । १३२ अनेक राजाओं ने शासन करते हुए, लोभवश अपने भंडार को बढ़ाकर (समृद्ध बनाकर) अजगर बनकर पिशाच के समान उसकी रक्षाकर रहे है। इस राम की तरह राज्य को अनुज को दे देनेवाले और कौन हैं? कहकर सभासदों ने परधन-निस्पृह राम की सराहना की । १३३ जिस तरह पेड़ का जटाजूट (रेशे) समुद्र के अंत तक व्याप्त होता है उसी तरह इस विशाल राज्य को हलायुध राम की भाँति अनुज को सौपकर कितने राजा कृतकृत्य हुए है ? । १३४ अग्नि जो उर्ध्वज्वलन स्वभाव रखती है, निधि की ओर मुँह करके जलती है । राम ने उस निधितुल्य राज्य को त्याग दिया । उसकी शक्ति (क्षमता) की थाह कोई उसके समान व्यक्ति ही ले सकता है । १३५ भूमि को मिट्टी का ढेला समझकर दानकरके पिता पर आने-वाली अपकीर्ति का निवारणकर आठों दिशाओं में अपनी कीर्ति फैलानेवाला और कौन है ? । १३६ कुछ न कुछ दान देकर, प्रसिद्धि पानेवाले तो इस संसार में अनेक हैं । लेकिन राम की तरह समुद्रांत तक व्याप्त साम्राज्य को दान देकर प्रसिद्धि किसने (कितनों ने) पाई है ? । १३७ इस तरह अनेक प्रकार से श्रीराम की प्रशंसा करनेवाले सभासदों की

अडॆवॊत्तॆ कोपशिखि क-॥ण्किडियं कॆंडमुमनुगळॆ पुर्वविसॆ मे-
गडर्वं पॊगॆयंतॆ कृष्णं॥गडॆगालदॊळॊगॆद धूमकेतुवॊलिर्दं ॥ १३८ ॥

अंतु कोपवश गतनागि—

कारागारदॊळिद्रनं सॆरॆयिडल् गोत्राद्रियं चाळिसल्
तारामंडलमं नॆलक्कॆ नॆलनं व्योमक्कॆ पक्कागिसल्
पारावारद नीरनींटलखिळाशादंति दंतंगळं
बेरिंदं किळलंददॆं बगॆदनो रक्तेक्षणं लक्ष्मणं ॥ १३९ ॥

सौमित्रि विलयकाल म-॥हामेघस्कंध विकट नर्तित विद्यु-
द्यामविदॆनॆ दंतांशु॥स्तोमं पॊळॆदुळकॆ बॆट्टवॆट्टनॆ नुडिदं ॥ १४० ॥

भरतावनियं कॊट्टं॥भरतंगॆ रघुवीरनय्यन नुडियं
परिपालिसलॆंगुमॆ पेळ्॥धरॆयं बॆळ्माडिकॊंडरॆंगु लोकं ॥ १४१ ॥

क्रममनतिक्रमिसि परा-॥क्रममिल्लॆंदिळिकॆगॆय्दु भरतंगित्तं
दमितारि दशरथं रा-॥ज्यमनॆंगुं रामनित्तनॆंगुमॆ लोकं ॥ १४२ ॥

नमगक्कुं निस्सहायं बहुविधदिनपायं सुखोपायमक्कुं
तमगेकायत्तमक्कुं प्रजॆ परिजनवॆंदब्बॆ कौटिल्यदिं रा-
ज्यमनीरॆळ्ब्दमं बेडिदळरियदॆ नीमित्तॊडं मिक्करं म-
ट्टमिरल् पेळीगुमे राघव कॊडॆनॆळ्ळॊळ् सागरावर्तचापं ॥ १४३ ॥

---

सराहना सुनकर और भरत द्वारा राज्य-भार की स्वीकारोक्ति को देखकर लक्ष्मण अत्यंत कुपित हुआ— कोपाग्नि से प्रज्ज्वलित हुई आँखें चिनगारियाँ बरसाने लगीं, भौंहे ऊपर चढ़नेवाले धुवें की तरह फैल गई, लक्ष्मण प्रलयकाल धूमकेतु की भाँति दिखाई पड़ा। १३८ इस तरह आगबबूला होकर— रक्ताक्ष लक्ष्मण ने आज इंद्र को काराग्रह में बंदकर देना, कुलपर्वतों को हिला देना, गगनमंडल को धरती में और धरती को गगनमंडल में उलटना, समुद्र के समस्त पानी को एक ही बार (अंजली भर) पी लेना, दिग्गजों के दाँतों को जड़ समेत उखाड़ लेना चाहा। १३९ प्रलयकाल के महामेघ के कंधे पर बैठकर विकट अट्टहास करनेवाली बिजली-सरीखे लक्ष्मण की दंतकांति चमकने लगी और वह घनगर्जना-सदृश गरज पड़ा। १४० क्या यह संसार कह रहा है कि पिता के वचन-पालन-निमित्त इस भारत-भूमि को राम ने भरत को सौंपा है? यह सच है कि संसार को मतिभ्रष्ट (पागल) कर देने के लिए कहा जा सकता है कि दे ही दिया है। १४१ संसार तो यही कहेगा कि वंशक्रम का अतिक्रमणकरके दशरथ ने भरत को इसलिए राज्य दिया कि राम में भरत-सी योग्यता, वीरता नहीं थी। वह यह कभी नही कहेगा कि राम ने अपने औदार्य के कारण भरत को राज्य सौंपा

अँदु पौंडेव सिडिलंतें गर्जिसि मणिमयासनदिनॆळ्दु—
रोमांचनदौंडनॆ सभॆगॆ म-*नोमुदमप्पंतु नुडियॆ लक्ष्मणदेवं
रामं परार्थ चरित*प्रेमं कण्जर्वुजर्वि नोडिदनागळ् ।। १४४ ।।
पिरियण्णन जर्विगोसरिसिदुदल्लदौंडे शार्ंगपाणिय मुनिसुं
हरनुरिगण्णुं लोकम नरगळिगॆगॆ बूदिमाळ्पुदौंदच्चरियॆ ।। १४५ ।।
परिहरिसिदनौंदविद को-*प रसावेशमनुपेंद्रमण्णन चित्तं
कौरगिदपुदेंदुदात्तं *पिरियंगिच्छाविघातमं माडुवने ।। १४६ ।।
दारुण भावमनुपसंहारिसि कण्णरिदु मट्टमण्णन कॆलदौळ्
वारिजनाभं गरुडोद्गार हरिन्मणिय कॆलद फणियवौलिर्दं ।। १४७ ।।

अनंतरं दशरथंगॆ रामनिंतेंदं—
इरवेळ्कुं पॆर्पिगि पांगरियदानिल्लिर्पुदुं सुत्तुगुं
परिवारं गुणहानि नॆट्टनॆनगक्कुं मुन्नमॆन्नित्तुदुं
भरतं पॆत्तुदुमाळमक्कुमपवादातोद्य नादं वसुं-
धरॆ निल्वन्नॆवरं दिशाकरटि कर्णास्फालनंमाडुगुं ।। १४८ ।।

---

है। १४२ छोटी माँ (कैकेयी) ने कुटिलता से इसीलिए भरत के लिए चौदह साल का राज्य माँगा कि राम को राज्य मिलने पर ये (कैकेयी) अधिकार से वंचित हो जाती हैं और भरत को राज्य मिलने पर अपना ही अधिकार चला सकती हैं; सुख से रहने का यही उपाय है। इनकी माँग (के रहस्य) को न समझकर, दूसरों को चुप रहने को कहते हैं तो हम थोड़े ही चुप रहेंगे ? । १४३ ऐसा कहकर पुनः घनगर्जना-सा गरजकर, सिंहासन से उठकर— सभासदों को रोमांचित करा देनेवाली, संतोष करा देनेवाली बातें लक्ष्मण ने कीं तो, श्रीराम ने आँखों के इशारे से शांत रहने का संकेत किया। १४४ बड़े भैया के दृष्टि-संकेत ने (अनर्थ करने से) उसे रोका, अन्यथा लक्ष्मण का क्रोध और शिवजी की तीसरी आँख समस्त लोकों को क्षणार्ध में जलाकर भस्म कर दे तो क्या आश्चर्य है ? । १४५ बड़े भाई के मन को ठेस पहुँचेगी, इसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ करना नहीं चाहिए, इस विचार से उपेंद्र लक्ष्मण ने अपने क्रोध का शमन किया। १४६ अपने मन में उत्पन्न क्रोधभाव को शांत करके राम के पक्ष में उसी तरह चुपचाप खड़ा रहा जिस तरह गरुडमणि के नीचे रहनेवाला सर्प। १४७ तत्पश्चात् राम ने दशरथ से यूँ कहा— पिताजी, मुझे तुरंत यहाँ से रवाना हो जाना चाहिए। अन्यथा जिन्होंने मेरी बात सुनी है, उनका चारित्र्य बिगड़ जायगा। मेरे द्वारा दिए गए और भरत द्वारा स्वीकृत कार्य को सत्य सिद्ध न करने से अपवाद (कलंक)

तलॆयॊळ् निम्माज्ञॆयं रत्नद तलॆदॊडवं पॊत्तु मॆय्वॆत्त वाहा-
बलदिं वॆंकॊंडखंडप्रभरमहितरं साधिपॆं विद्विषन्मं-
डलमं वीळ्कॊंडॆनॆंदय्यन चरणयुगक्कर्घ्यपाद्यंगळं नि-
स्तुल मौळिस्तूल मुक्ताफल रुचि जलदिं रामनुद्दामनित्तं ॥ १४९ ॥

अंतु विनत मस्तकनागि सभॆयिनॆळ्दु पोगॆ—
ऒडनॆ दशरथन कण्गळ्‌नडॆदुवु कण्णॊडनॆ तळर्दु निल्लदॆ मनमुं
नडॆदुददरॊडनॆ निड्डुसुय्‌नडॆदुदु सुय्यॊडनॆ नृपति मूर्छॆगॆ संदं ॥१५०॥
कडॆगण्णि कर्णमूलक्कॊगॆदुगुतरॆ बाष्पांबुगळ् सुय्ल पॊय्लि-
दॆडॆयॊळ् संदेहमं पुट्टिसॆ मिड्डुकुव ताणंगळल्ललल्लि सत्वं-
गिडॆ धैर्यगॆट्टु संसारमनुरद महासत्वनुं मूर्छॆवोदं-
गड जम्मारण्यदॊळ् मिक्करनळलिसदे मोहदावाग्नि दाहं ॥ १५१ ॥

अंतु दशरथं मूर्छितनागॆ—
पति पुत्रं पोगॆ मूर्छाभर परवशनागिर्पुदं कैकॆ लज्जा-
नतॆ कांची रत्नघंटा रवदॊडनपवाद प्रणादं दिशा सं-
ततियं तळ्पॊय्यॆ तळ्पॊय्दॆमॆदुरुगलनॊट्टैसि बाष्पांबु धारा-
तति मुक्ताहारमं पॆर्मॊलॆगॆ कुडॆ तदास्यानदिंदॆळ्दु पोदळ् ॥ १५२ ॥

---

का गंभीरनाद संसार के कोने-कोनों में प्रतिध्वनित होगा। १४८ शीश पर आपकी आज्ञा और रत्न-शिरोभूषण धारणकर इस शरीर के शक्ति-शौर्य से हमारे विरोधियों को मिटाकर साम्राज्य का कल्याण करता रहूँगा। लीजिये, मैं चला। ऐसा कहकर पिता के चरणों पर सिर रखकर, अपने वचन-रूपी मोती के जल से अभिषेक किया। १४९ इस तरह शीश नवाकर सभा से उठकर चले जाने पर— दशरथ की आँखें राम के पीछे-पीछे चलीं और मन ने भी राम का अनुसरण किया। निश्वास भी चला। इसके साथ ही साथ दशरथ मूर्छित भी हुआ। १५० उसकी आँखों की कोर से धाराकार आँसू बहने लगे। उसकी क्षीणसाँस ने संदेह पैदा किया। हृदय की धड़कन भी क्षीण हुई। धैर्य खोकर दशरथ मूर्छित हुआ। संसार-रूपी अरण्य में मोह-रूपी अग्नि किसे दुःख में (रोने के लिए) नहीं झुलसती (बाध्य नहीं करती)? । १५१ इस तरह दशरथ मूर्छित हुआ तो— पुत्र-वियोग के दुःख से पति के मूर्छित हो जाने पर कैकेयी ने लज्जा से सिर झुका लिया। उसके हाथों के कंगन की आवाज मानों उस पर लगे कलंक के डंके की ध्वनि दिगंतों तक फैल गई हो। अश्रुधारा ने नीचे की ओर बहकर, धारण किए हुए मुक्ताहार को स्तनों से चिपका दिया। वह तुरंत उठकर वहाँ से चली गई। १५२

अनंतरं—

अनुजं सभेयिनगल्द-*ण्णन बळियं सल्व मसयोळ् बेगं लो-
चनद वळिसल्व मनमं*तनुविन बळिसल्व नेळलनिनिसिळिकेय्दं।।१५३।।

प्रत्यंत देश भूभृद*पत्यरनेळ्बिट्टि पुगिसि कांतार नगो-
पत्यकमं कौसल्या*पत्यंगोलगिपेनवर हरिविष्टरमं ।। १५४ ।।

एंदु मनदोळ् मंतणमिर्दु लक्ष्मणं सभेयिनेळ्दु पोपुदुं—

क्रमदोडेयंगे तंदे धरेयं कुडलेंदिरे दैवयोगदिं
समनिसिदत्तु पुण्यपुरुषंगरण्य निवासमेंदु खे-
दमनोळकोंडु गद्गद रवं नत दीन मुखं प्रलाप सं-
भ्रममुदिताश्रु शोकरस भाजनमादुदु तत्सभा जनं ।। १५५ ।।

विगत दिगिभवाशा देशप्रस्तंगतार्क
गगन परिधि यात प्राणवातं शरीरं
सोगयिसदवोलागळ् राघवं पोगे कण्गं
बगेगमिळिकेयादत्ता सभा चक्रवालं ।। १५६ ।।

अन्नेगमा वृत्तांतमेल्लमं सुमित्रे केळ्दपराजिता महादेवि-
यल्लिगे बंदु—

अरेदळ् गड कैकें वसुं-*धरेयं भरतंगे रामनित्तं गडिदें
दोरेकोळ्गुमे कर्णपरं-*परेयिं केळ्दुदने निमगे पेळल्बंदें ।। १५७ ।।

---

तत्पश्चात्— लक्ष्मण सभा से उठकर बड़े भाई (राम) के पास ऐसा चला मानों आँखों का अनुसरण करनेवाले मन और शरीर का अनुसरण करनेवाली छाया की क्रिया फीकी पड़ गई है। १५३ अहित (शत्रु) राजाओं को पराजित कर, उन्हें देशांतर भगाकर, भाई द्वारा शासित अरण्यराज्य में जाकर उसे संतुष्टकर कृतकृत्य बनूँगा। १५४ मन में ऐसा सोचकर, लक्ष्मण सभा से उठकर चला तो— क्रम से पिता ने (दूसरे) जेष्ठ पुत्र को राज्य सौंपा और दैवयोग से पुण्यपुरुष (राम) को अरण्यवास मिला। इस दुःख से सभासद गद्गदित कंठ से शोकतप्त हुए और आँखों से अश्रुधारा बहाने लगे। १५५ अयोध्या के सभासदों को राज्य की शोभा बढ़ानेवाले राम का अभाव उसी तरह खटकने लगा जिस तरह दिग्गजों द्वारा वहन न किया हुआ संसार, सूर्य-रहित आकाश और प्राणवायु के अभाव में शरीर। १५६ इतने में विषय जानकर सुमित्रा अपराजितादेवी के पास आयी और बोली कि— कैकेयी ने इस वसुंधरा को, जो न्याय से राम

अॆंबुदुमपरजितॆ भयचकित चित्तॆयागि—
अॆरॆवन्नळॆ कैकॆ वसु-*धरॆयं तृणवागॆ बगॆदु कुडुवन्ननॆ मं-
दरधैर्य रामं नुडि*दॊरॆकॊळ्गुं दैवघटनॆयिंदागदुदें ॥ १५८ ॥

अॆंदवर् तम्मॊळुम्मळिसि नुडियुत्तिर्पुदुं—
अैरावण गजमं जम-*वारणमॊंदागि पुगुववोल् पुगुतंदर्
सीर गदा हस्तर् बल*नारायण देवरंतवुरदरमनॆयं ॥ १५९ ॥

अंतरमनॆयं पॊक्कु जननीयुगळ पदपयोजक्कॆ विनतरागि समुचितासनदॊळिर्दु लक्ष्मणदेवं श्रीरामदेवन परार्थ वृत्तियं बिन्नविसॆ केळ्दु अपराजिता महादेवि शोकानल दंदह्यमान मानसॆयप्पुदुं—

अनवरत बाष्पजल से-*चनदिंदपराजिता महादेविय लो-
चनपुत्रिकॆ बॆळॆयिसिदुदु*वनपालिकॆयंतॆ मोहमूर्छालतॆयं ॥ १६० ॥

बिदि बॆंदरट्टिदं मगनॆ मुन्न तवर्मनॆ नामशेषमा-
दुदु पतियुं तपक्कॆ नडॆवं सुत नीनुमगल्दु पोदॊडा-
वुदु गति जीविपंदमॆनगावुदु पॊर्दुवॆनारनॆंदु ग-
द्गद रवमुण्मॆ तंदळपराजितॆ कण्गॆ कदुष्ण वारियं ॥ १६१ ॥

---

को मिलना चाहिए, भरत को देने के लिए महाराज से कहा और राम ने उसे (भरत को) दे दिया। यह कैसा विचित्र है ? मैंने यह खबर दूसरों से सुनी है। उसे आपको सुनाने के लिए आई हूँ। १५७ इसे सुनकर अपराजिता भयभीत मन से बोली— कैकेयी तो माँगनेवाली ही है और साहसी राम तो माँगी हुई वस्तु को तृणवत् समझकर देनेवाला ही है। दैवेच्छा से क्या नहीं हो सकता ? । १५८ वह भीतर ही भीतर दु:खी बनकर इस तरह बोल रही थी कि इतने में— हलायुध और गदायुध को धारण किये हुए राम और लक्ष्मण अंत:पुर में उसी तरह प्रविष्ट हुए मानों दिग्गज और ऐरावत एक साथ आए हों। १५९ इस तरह राजप्रासाद में प्रवेशकर, माताओं के चरणारविंदों को प्रणाम किया। लक्ष्मण ने अपराजिता को राम के दान-गुण कह सुनाये तो वह शोकाग्नि से संतप्त हुई।— अनवरत बढ़ती हुई अश्रुधारा से उसकी आँखों की पुतली ने 'वनपालिका' की भाँति मोह-मूर्छा-रूपी लता को उगाया। १६० वत्स, विधि हमारा पीछा कर रही है। मुझे अपने मायके का आश्रय आधार नहीं है। पति तपस्या की तैयारी कर रहा है। तुम मुझे छोड़कर जंगल के लिये निकल पड़े हो। तो फिर मेरा क्या होगा ? मैं कैसे ज़िंदा रहूँ ? किसका सहारा लूँ ? ऐसा कहते-कहते उसका गला भर

वनचर वनमृग वनखग ※वनेभ वनदहन वनविषाहिगळिनपा-
यन बहुळसप्प वनमं ※ तनूभवं पुगुवोंडेंतदं सैरिसुवें ।। १६२ ।।
अग्रसुतनं समग्र गु-※णाग्रणियं रामनन्ननं दशरथनं-
तुग्राटविवुगिसिद मद-※न ग्रह पीडितरनारुमं कंडरियें ।। १६३ ।।
परिहरिसि पाळियं पा-※पिरामनं पुगिसि विपिनमं निज सुतनं
करुमाडंबुगिसिदपळ् ※ करुणंगेट्टाकें कैकें कल्लेदेंयक्कुं ।। १६४ ।।
कोंट्टोंडे जनकं पाळिय※बट्टेयनसकरिदु पिरियनिरें तानुमोंडं
ओंट्टं गड राज्यक्कोंने ※कोंट्टळिपर भरतनन्नरार् मनुकुलदोंळ् ।।१६५।।
असदर्थ स्वीकारं※पसुगेयें निनगेंदु बिडदें शत्रुघ्नं बा-
रिसदें भरतनोंळोंडंब-※ट्टु सैरिसिर्पिरवें पेळदे कैतवमं ।। १६६ ।।
अनुकूलं बिदि कैकेंगक्रमदिनित्तं राज्यमं रामदे-
वनदं लक्ष्मणदेव मीरुवुदुमण्णंगक्कुमुद्वेगवें-
देंनसुं मीरदें माण्दें मागदोंडें विद्विष्टांगना गर्भ पा-
तन मेनागदें नीवि जेवोंडेयें नीनी सागरावर्तमं ।। १६७ ।।

---

आया और वह आँसू बहाने लगी। १६१ जंगल में किरात, मृग, वनपक्षी, जंगली हाथी, कीड़े, सर्प आदि से ख़तरे का भय है। वैसे भयानक जंगल में प्रविष्ट होकर किस तरह जियोगे? कठिनाइयों का सामना कैसे करोगे? १६२ जेष्ठ और समस्त गुणों से युक्त राम जैसे पुत्र को इस तरह भयानक जंगल में भेज देना दशरथ जैसे को शोभा देता है? ऐसे काम-ज्वर से पीड़ितों को मैंने न देखा है और न जानती हूँ। १६३ वंशक्रम का उल्लंघन कर, बेटे को राज्य दिलाकर, राम को वनवास के लिए घोर कानन में भेजनेवाली कैकेयी पापी, निर्मम और पाषाण-हृदयी है। १६४ पिता द्वारा दिये जाने पर भी, वंशक्रम को जानते हुए भी कि राम बड़ा है, राज्य को स्वीकार करनेवाला मनुकुल में और कौन है? । १६५ अनुपयुक्त अधिकार को स्वीकार करनेवाले भरत को न रोककर शत्रुघ्न के सहन और चुप्पी को धोखा क्यों न समझा जाय? १६६ विधि कैकेयी के लिए अनुकूल बनी हुई है। उस विधि ने ही अक्रम से साम्राज्य (भरत को) देने के लिए राम को प्रेरित किया। लक्ष्मण इसलिए चुप रहा कि बड़े भैया के मन को ठेस न पहुँचे। अन्यथा तुम इस सागरावर्त धनुष को उठाकर एक बार झंकृत कर दोगे तो क्या वैरी राजाओंकी पत्नियों का गर्भपात हुए बिना रहेगा? । १६७ राजा क्रम को भुला दे तो सभा में उपस्थित अविवेकी-से विद्वज्जन, मंडलेश्वर, सेनापति

अरसं पाळिगॆ तप्पॆ पावडर्दरंतुन्मादवादंतॆ मॆय्
मरवट्टंतॊडलिंदुसिर् तॊदगिदंता सन्निपात ज्वरं
दॊरॆकॊंडंतविवेकदिंदभिजनं विद्वज्जनं मंडले
श्वर सेनापति मंत्रि मंडलमदं माकॆळ्ळदंतिर्कुमे ॥ १६८ ॥

अदु चित्रद सभॆ मद स *र्पद सभॆ तिर्यमनुष्य सभॆ पॆरतेन-
ल्लदॊडॆ पॊरमडिसि कळॆवुद*मदीय नंदनमनभिजनानंदननं ॥ १६९ ॥

ऎंदळलुमॆदॆवळलुमॊदवॆ मगन मॊगमं नोडि—
क्रममं नोडदॆ नंटरं तॊरॆदु नाडं विट्टु सप्तांग रा-
ज्यमनीडाडि सपत्ननं निलिसि सिंहासंदियॊळ् ताय्गॆ दुः
खमनुत्पदिसि तोपुदावुदुचितं पिंतिर्पुदिल्लुग्वुदॆ-
म्मुमनॆंदविक मॆय्यनॊक्कु विगळद्बाष्पांबुविं तेकिदळ् ॥ १७० ॥

अंतु शोक विकळॆयाद कौशल्यॆगॆ लक्ष्मीधरनधर किसलयद
मेलॆदंतकांति लतांतमालॆ पसरिसॆ मुकुळित कर सरोजनागि—

कलियुं चागियुमिन्नरार् मनुकुलर् मुन्नादरॆवन्नॆगं
नॆलनुं नेसरुमुळ्ळिनं निलिसिदं तत्कूमॆय्यं पॆमॆय्यं
कुल निस्तारकनेक कुंडलनदर्कानंदमं ताळ्ददा
कुलमं ताळ्दुवुदे मदग्रजनॊळादी पौरुषं शोच्यमें ॥ १७१ ॥

---

मंत्रीमंडल आदि ऐसी चुप्पी साध लें मानों शरीर पर साँप चढ़ गया हो, पागल बन गए हों, साँस निकलकर शरीर काष्ट बन गये हों या सन्निपात ज्वर से पीड़ित हो। १६८ यह सजीवों की सभा नही, चित्रवत् (बेजान) सभा है, मदभरी सभा है, नरक (लोक की) सभा है। अन्यथा मेरे बेटे को वनवास भेजकर यह (सभा) चुप थोड़े ही रहती ?। १६९ ऐसा कहकर अपराजिता दुःखी होकर, बेटे का मुँह निहारकर बोली— क्रम न देखकर संबंधियों को त्यागकर, देश छोड़कर, सप्तांगपूर्ण साम्राज्य को त्यागकर, छोटे भाई को राज्य सौंपकर, माँ को दुःख देकर, वन में जाना, यह कैसा त्याग है ? मुझे अपने साथ ले चलो। ऐसा कहकर वह अश्रुधारा में तैरने लगी। १७० इस तरह शोकविह्वल कौशल्या को देखकर मंद मुस्कराते हुए लक्ष्मीधर (लक्ष्मण) ने करकमल जोड़कर कहा—जब तक यह पृथ्वी और सूर्य रहेंगे तब तक के लिए इस मनुकुल में जन्म लेनेवाले वीर और त्यागियों में राम ने अद्वितीय शाश्वत कीर्ति कमा ली है। इसे देखकर भी खुश न होकर माँ दुखी हो रही है ? बड़े भैया द्वारा प्रदर्शित यह गुण शोचनीय है ?। १७१ मोक्ष पानेवाले को (कब) शरीर बाधक बन सकता

चरम शरीरनेय्दुवने वाधेयनुत्तमसत्त्वमार्तदोळ्
पोरेवने पुण्यमूर्तिगेडरुं दोरेकोळ्गुमे मूरु लोकमुं
धुरदोळनंतवीर्यनोळिदिर्चुमे वगेदी विषादमं
परिहरिसिं बळं प्रवळनादेसेगुम्मळमेवुदंबिके ।। १७२ ।।
कोलद नेलदरसुमक्कळ॰नलंघ्य बलरं तगळ्दु कळेदोदेडेयोळ्
नेलेवीडु माडि निम्मं॰बलभद्रं तरिसदिनिसनंतरिसुवेने ।। १७३ ।।
पंबलिसल्के वेड पेरतें भरतं भवदीय दिव्य पा-
दांबुज सेवेगेम्मळविगग्गळनल्लदोडं समस्त लो-
कांबिक निम्मोळादिसुवेसक्के सुमित्रेये साल्वळग्रजं-
गां बेसकेय्वेनि तोलगिसिं मनदोळ् निमगाद खेदमं ।। १७४ ।।
अेंदु सौमित्रि बिन्नविसे मनदोळवधारिसि कौशल्ये विगत शोकशल्ये नंदनन मुखारविंदमं नोडि—
सुचरिते सीते निन्नोडने बर्पवळिर्पळल्लळिर्पुदे-
नुचितमे पेळिमीकेगोडनुय्वुदेनल् रघुरामनंबिका
वचनमनात्मचित्तदोळोडंबडुवेत्तदनंते गेय्वेनें
दचलितनानतं पद नखांशुगळिं तळेदं ललाममं ।। १७५ ।।
अंतु रामनपराजितामहादेविय सुमित्रादेविय पादपल्लवंगळु-मनाशीर्वाद पारिजात स्तवकंगळुमनुत्तमाळ्पुदुमनंतरं लक्ष्मणं मणि

---

है ? महान् व्यक्ति क्या कंजूस होता है ? पुण्यमूर्ति (व्यक्ति) का शरीर कभी कष्ट का शिकार बनता है ? संसार में अनंत बलशाली का कोई प्रतिस्पर्धी होता है ? इन सारी बातों को जानते हुए भी आप दुखी हैं ? । १७२ श्रीराम अन्य अलंध्य पराक्रमी राजाओं को पराजितकर वहाँ अपना राज्य विस्तार कर आपको वहाँ बुला लिए विना रहेगा ? । १७३ इसलिए माँ, आप चिंता न करें । अगर भरत आपके पवित्र चरणों की सेवा की ओर ध्यान न दे तो मेरी माँ सुमित्रादेवी आप जैसी जगन्माता की सेवा करने के लिए तैयार हैं । बड़े भैया की सेवा के लिए मैं हूँ । अत: आपके मन की चिंता को त्याग दीजिए । १७४ लक्ष्मण ने इस तरह निवेदन किया तो उसे सुनकर कौशल्या ने दु:ख को भुलाकर बेटे के (राम के) मुख कमल को देखकर यों कहा— सुचरित्रा सीता तेरे साथ जायगी, यहाँ रहनेवाली नहीं है । उसका यहाँ रहना उचित भी नहीं है । उसे साथ ले जाओ । राम ने माता के आदेश को सविनय स्वीकार कर, 'वैसे ही करूँगा' कहकर माता के चरणकमलों को देखा । १७५ इस तरह राम ने अपराजिता और सुमित्रा के चरणकमलों को नमनकर आशीर्वाद पाया । तत्पश्चात्

किरीट किरणदिं तदीय पदनख मयूखमं कॊर्विसॆ सार्वभौमनागॆंदु परसि—

शयन कलेशदॊळन्न पान गमनायासंगळॊळ् निन्न से-
दॆयुमं नोडदति प्रयत्न परिचर्यारंभदिं पुत्र सी-
तॆयुमं रामनुमं समाहितमनर्माडॆंदु संप्रीतियिं
प्रियदिं प्रार्थिसिदळ् गुणप्रियॆ सुमित्रादेवि सौमित्रियं ॥ १७६ ॥

गुणमं नोडदरण्यमं पुगिसिदळ् राज्यार्हनं पुत्रका-
रणदिं कैकॆ सुमित्रॆ रामनॊडवोगॆंदट्टिदळ् पालिसल्
गुणमं लक्ष्मणनं जगं पळिविनं जीयॆंबिनं केवलं
गुणहीनर् गुणवंतरन्नॆयमनॊळ्पं माळ्पुदाश्चर्यमे ॥ १७७ ॥

अंतु रामलक्ष्मणरंबिकॆय चरणांबुजंगळं बीळ्कॊंडरमनॆयं पॊरमट्टु पादमार्गदिं विपणिमार्गदॊळगनॆ वैदेहिवॆरस बर्प समयदॊळ् कौवरॆगॊंडु नॆरॆदु परितंदु नोळ्प पुरजनंगळल्लि कॆलवरितॆंदर्—

संगडदिं पुरांगनॆयरिक्कदॆ सेसॆयनेकॆ शंकना-
दं गगनक्कॆ लंघिसदॆ मंगल तूर्य निनादमुण्मद-
त्तं गुडि तोरणं तुरुगि कट्टदॆ मंगल गीत नादमुं
मंगल पाठक स्तुतियुमिल्लदॆ भूपरॆत्त वोदपर् ॥ १७८ ॥

आनॆयमेलॆ बॆल्कॊडॆयनॆत्तिसि चामरमिक्कॆ चारु चं-
द्राननॆयर्कॆळिर्कॆलद पॊविडियॊळ् नॆलसिर्दु सुत्तलुं

---

लक्ष्मण ने मणिकिरीट-युक्त शीश को उनके चरणों में नवाया तो उन्होंने "सार्वभौम बनो" कहकर आशीष दिया। —सुमित्रादेवी ने अपने बेटे (लक्ष्मण) से निवेदन किया कि बेटे, निद्रा में, दुःख में, खाने-पीने में, प्रवास की थकावट में, तुम अपनी थकावट की चिंता किये बिना सीता-राम की सेवा करते रहना। तुम्हारी वह सेवा, प्रेमपूर्ण और विश्वासपूर्वक रहे। १७६ राज्य के लिए योग्य राम के गुणों को न देखकर, अपने पुत्र के कारण कैकेयी उसे वन भेज रही है। श्रीराम की रक्षा-सेवा करने के निमित्त सुमित्रा ने अपने बेटे लक्ष्मण को राम के साथ वन में भेज दिया। यदि अन्यायियों द्वारा की गई गलतियों को गुणवान् सुधार ले तो इसमें आश्चर्य क्या है ? । १७७ राम-लक्ष्मण माताओं से अनुमति लेकर सीता को साथ लिए राजमहल से निकलकर पादचारी वनकर पगदंडी में चलते समय झुंड-झुंड वहाँ आकर खड़े पुरजन आपस में यूँ कहने लगे— सच्चरित्र (सधवा) स्त्रियों द्वारा आशीष दिए बिना, शंखनाद आकाश तक पहुँचे बिना, सर्वत्र तोरण और पताकाएँ लहराये बिना, मंगलवाद्यों के गीत सुनाई दिए बिना, मंगल-पाठकों की स्तुति के बिना ये राजकुमार

दान गजं घनाघनदवोल बरॆ बारदॆ पादमार्गदिं
जानकियुं बलाच्युतरुमेळिदरंददॆ बर्पुदावुदो ।। १७९ ।।
पौरस्त्री नयनप्रभा सहचरं हारांशु विस्तीर्ण व-
क्षोरंग स्तलदॊळ् रसाभिनयमं तोर्पन्नॆगं वाजियं
धारा पंचकदॊळ विचित्र लयदिं तामेरि बर्पी महा
धीरर् कालनडॆयॊळ् नृपावसथदिं वर्पंदमावंदमो ।। १८० ।।
मंगलरत्नवेदिकॆयॊळोलगशालॆयॊळिंदु कांत रा-
जांगणदॊळ् गृहोपवनदॊळ् गृहदीर्घिकॆयॊळ् विलासगे-
हंगळॊळं चॆविंडिनॊडनाडुव जानकि पादमार्गदिं-
दंगडिवीदियॊळ पतिय पिंतनॆ मॆय्गरॆदॆत्त पोदपळ् ।। १८१ ।।

मत्तमल्लि कॆलर् नय निपुणरुं कलाकुशलरुमुदात्त राघव-नल्लदॆ पदपल्लवरागदिं निखिल परिजन मनोरागमनॊदविसलुमवार्य वीर्यदिनयोध्या सिंहासनमं पदुळमिरिसलुं, किंचिदुन्नमित भ्रूलता चलदिनखिल याचक मनोरथमं सफलम्माडलुं, भुजप्रताप तपन तापदिनुद्वृत्त राजमंडलमं मसुळिसलुं, निष्कृप कृपाणधारा जल जलधियिं शरणागत कुभृत्कुलमनॊळकॊंडु कायलुं, निखिल दिक्पाल मकुट निकटवर्ति निजाज्ञामात्रदिं वर्णाश्रम चरित्रमनविश्रातं माडलुं,

---

इस तरह कहाँ जा रहे हैं ? । १७८ हाथी पर सवार होकर, श्वेतछत्र धारणकर दोनों ओर से सुंदर स्त्रियों द्वारा चामर ढुलवाकर, चारों ओर से वर्षाऋतु के घने बादलों के समान (काले) हाथियों द्वारा घिरे हुए न आकर, पादचारी बनकर सामान्यों-सदृश आना विडंबना नहीं तो और क्या है ? । १७९ जिन राजकुमारों को पुरस्त्रियों की दृष्टि की प्रभा के साथ, सीने पर लटकती हुई हार की रत्नप्रभा के रंगमंच पर रसाभिनय करते हुए, घोड़े पर सवार होकर, उसकी विभिन्न चाल के साथ विचित्र लय-गति के साथ आना चाहिए था, वे पैदल ही आ रहे हैं; तो इसका कारण क्या हो सकता है ? । १८० सीता, जिसे रत्नरंगमंच पर दरबार की चंद्रकांत-शिला के राजांगण में, उपवन में, सरोवर में, विलासमय राजमहलों में, हंसों की जोड़ी में, सुखानुभव करना चाहिए, पति का अनुसरण करती हुई, छिपती हुई पैदल ही पगडंडी से कहाँ जा रही है ? । १८१ वहाँ कुछ लोग जो बुद्धिशाली थे कहने लगे—इस राघव के अतिरिक्त और कोई भी प्रजाजनों के मन की आकांक्षाओं को पूर्ण करने में असमर्थ है; इसके अलावा और कोई अपने पराक्रम से अयोध्या के सिंहासन को सुचारु रूप से चलाकर सुरक्षित रखने की क्षमता नहीं रखता; अन्य कोई याचकों

दुर्जय वज्रावर्त चाप टंकार शरमोक्ष-हूंकारदिं लोकलुंटाक विग्रह मदवीरग्रहोच्चाटनमनोंडर्चलुं, जगदपवित्र चारुचरित्रदिं मनुसूत्रमं विवरिसलुं, सहजसाहित्यकला कौमुदीविलासदिं विद्वज्जन मनः कुमुदियनलर्चलुं, प्रेमरस पुष्ट दृष्टिपातदिंदभिजनसनाभिजनमं कृतार्थम्माडलुं, पेरर् नेरेयरेंदु कैकोय कैतवक्के कमल्दोनल्दु नुडिव नुडिगळमालिसुत्तुं दिवसदवसान समयदोळ् पुरद परभागद अरभट्टारकर वसदिय कनकप्राकारमं पोक्कु—

ललिताकारमदीये नाडे नयनक्कानंदमं मेरुवं
वलगोळ्ववितनूजनंते वलगोंडं पंकज श्रीयनं-
डलेवन्नं निजपाद विन्यसन सौंदर्य वुध प्रस्तुतं
वलभद्रं जिननाथ दिव्यगृहमं साहित्यविद्याधरं ।। १८२ ।।

इदु परमजिन समय कुमुदिनी शरच्चंद्र वाळचंद्र मुनींद्र चरणनख किरण चंद्रिका चकोर भारती कर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितमप्प रामचंद चरित पुराणदोळ वनप्रवेश वर्णनं ।

।। षष्ठाश्वास समाप्त ।।

---

की मनोकामनाओं को पूरा करनेवाला और दानी नहीं है। इसके अलावा सीना ताने खड़े शत्रु राजाओं के दुरभिमान को मिट्टी में मिलाने में और कोई समर्थ नहीं है। इसके अलावा शरणार्थियों की रक्षा करनेवाला और साहसी कोई नहीं है। आज्ञामात्र से वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करने की योग्यता इसके अलावा और किसी में नहीं है। इसके अतिरिक्त और किसी में दुर्जय वज्रावर्त धनुष की ध्वनि के हुंकार से लोककंटक शत्रुओं को निर्नाम करने का शौर्य नहीं है। अन्य कोई जिनधर्म के रहस्यों को सविस्तार समझकर, साहित्य रसास्वादन कराकर विद्वज्जनों के मन को जीत नहीं सकता। इसके अलावा और कोई, मित्रों-वंधुजनों को प्रेमपूर्वक देखकर सम्मान प्रदान करने की योग्यता नहीं रखता। इस तरह वात-चीत करनेवाले पुरजनों की वातें सुनते हुए संध्या समय को नगर के वाहर स्थित राजपुरोहित के जैनमंदिर के सुवर्ण-प्राकार के भीतर प्रवेशकर— उनका मनोहर रूप आँखों को आनंद प्रदान करने पर, मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा करनेवाले चंद्र-सा उनकी प्रदक्षिणा कराकर, चरणकमलों को नमन करनेवाले शिशुभ्रमर-सा राम ने शीश झुकाया। १८२ कवि अभिनव पंप, जो परम जिनसमय और कमलों को शरत्काल के चंद्र के समान माने जानेवाले वालचंद्र मुनींद्र के पदनखों के चंद्रप्रकाश-से पवित्र एवं सरस्वती के कर्ण-भूषण के समान है, के 'रामचंद्रचरित पुराण' का यह वनप्रवेश-वर्णन—छठाश्वास है।

।। छठाश्वासं समाप्तम् ।।

सप्तमाश्वासं

श्रीरमणं बलगोंडखि- ※ लाराध्यन रत्नभवनमं पोक्कं नी-
हार रुचि रुचिर कीर्ति※ श्रीरमणं पेंपुवेत्तनभिनव पंपं ॥ १ ॥

अंतु जिनभवनमं पोक्कु मुकुळित कर सरोजमं नोसळ्गे तंदु—
ओडलुमनात्मनुमं बे- ※ पॅडिकुमवोरोंदरोळगे पोक्किर्दुवनें
पडेमातरभट्टारक ※रडिदळिरोळ् पोळेव नखरुचि क्रकचंगळ्॥ २ ॥

अॅंदु दर्शनस्तुतिगेय्दु जिनभवन मध्यरंगमं रामलक्ष्मण-
रलंकरिसिर्पुदुमासमयदोळ्—

भवबद्ध क्रोधदिं संधिसे पेरगे तमं स्तानमं बिट्टु तेजं
तवे शोकं चक्रवाकक्कोंडरिसे दिवस श्रीयनीडाडि कैकों-
डवरोध स्त्रीयरं पद्मिनियरनिनिसुं नोडदुत्तान पादं
दिवसेंद्रं भीतियिंदंबरमनुळिदु वाराशियं पोगि पोक्कं ॥ ३ ॥
सुगिदु तमक्के बिट्टु बिसुपं परिवारमेनिप्प जक्कव-
क्किगळ वियोगमं नेनेयदब्जिनियं कडुगूर्पनल्लळं
बगेयदे मंडलाग्र रुचिदोरदे भीतियिनोडिपोगि तो-
ट्टगे रवि सार्दनस्तगिरियं क्षणिकं स्थिरसारनप्पने ॥ ४ ॥

---

आश्वास—७

श्रीराम जिस तरह समस्त लोकों से पूजित जिनभवन की प्रदक्षिणा लेकर उस रत्नभवन में प्रविष्ट होकर कृतकृत्य हुए उसी तरह कीर्ति-श्री का पति अभिनव पंप (कवि) यशोभागी हुआ। १ —इस तरह जिनभवन में प्रविष्ट हो, हाथ जोड़कर ललाट पर रखकर—हर एक के भीतर समाये आत्म और देह को अलग करने का चैतन्य (क्षमता) रखनेवाले अरभट्टारकों के सम्मुख अन्यों की ख्याति दिखाई पड़ना कैसा संभव है? २ —ऐसा सोचकर, दर्शन, स्तुति करने के पश्चात् राम-लक्ष्मण जिनभवन के वीच खड़े हुए। उस समय—जन्मसिद्ध क्रोध से, वाहर अंधकार की भेंट हुई; प्रकाश अपने स्थान से पीछे हटा; चक्रवाक पक्षियों को शोक प्राप्त हुआ; इष्टकांता मानी जानेवाली पद्मिनी आदि को आँख उठा कर भी न देखा; ऐसे में दिन का स्वामी सूर्य भय से आकाश को त्याग कर समुद्र में प्रविष्ट हुआ। ३ अंधकार से डर कर, नाम (उष्णता) को त्याग कर, अपने परिवार के माने जानेवाले चक्रवाक पक्षियों के वियोग का स्मरण किये बिना, अपने प्रिय कमल को भी निर्लक्ष्य कर, आकाशमंडल में प्रकाश फैलाये बिना, दौड़कर सूर्य अस्तगिरि पहुँचा।

दिनपं तन्ननगळ्दु पोगॆ हरिदिक्कांताननं कंदिद-
त्तॆनॆ मर्बुविद्दुदातनॊळ् नॆरॆयॆ रागं पश्चिमाशा विळा-
सिनिगादत्तॆनॆ संजॆरंजिसिदुदेनाश्चर्यमे ताळ्दरा-
रिनियं तन्नमगल्दॊडं नॆरॆदॊडं नीरागमं रागमं ॥ ५ ॥

विरह व्याकुलमागॆ चक्रमिथुनं संकोचमं ताळ्दॆ ता-
वरॆ कामतुररुं रजोधिकरुमें खेदक्कॆ पक्कागदि-
र्परॆ दोषांधरॆनुत्तवं नगुववोल् नॆय्दिलगॊळं मेलमर-
ल्दरलुत्तिर्दुवु चंचरीक मधुर व्याहार वाचालितं ॥ ६ ॥

मिनुमिननॆ तोरॆ तारगॆ * घनतर निमिरावकाशमाकाशमदें
नॆनॆयिसिदुदॊ कडलॊळ् सी-* र्पनि तनुवं पुदियॆ तोर्प कृष्णन तनुवं॥ ७ ॥

अंतु नेसर्पडुवुदुमासमयदॊळुम्मळिसि तम्मल्लिगॆ बंद जननिय-
रॊळ् विनयमं नुडिदु संतोषंबडिसि मगुळ्दरमनॆगॆ कळिपि जिनमंदि-
रक्कॆ बंदु, निद्रामुद्रित लोचनर् नडुविरुळॆळ्दु परमजिन पतियं
बीळ्कॊंडु विल्लमनंबुमं कॊंडु, सीतॆ नडॆदुबरॆ पॊळल नडुवण क्षुल्लक
द्वारदिं पॊरमट्टु, दक्षिणाभिमुखरागि पयणंबोवुदुमनंत सामंत
संदोहमवरपिंदनॆ मार्वट्टॆयॊळ् वर्परं बॆसगॊळुत्तु वेगमॆय्तंदु, दूरोत्सारित
विचित्रातपत्र विविध वाह्लर् विनय विनमितोत्तमांगरॆतानुमॆय्दॆवंदॆवॆंदु

जिनका मन दृढ़ न हो वे शाश्वत थोड़े ही होते हैं ? ४ सूर्य द्वारा त्यागे जाने पर पूर्वदिशा-रूपी वनिता का मुख मुरझा गया। उसके मिलन में अंधकार वाधक वना। वह (सूर्य) पश्चिमांगना का संगाती वना। अपने प्रिय को दूसरों के साथ मिलते हुए कौन सह सकता है ? ५ वियोग के उत्पन्न होने पर चक्रवाक दुःखी हुए; कमल संकोचवश मूंद गये; कामातुर और अधिक रजोगुण से युक्त दुःखी हुये विना रहेंगे ? नीलकमल खिल गये, मानो उन्हें देखकर हंस रहे हो। भ्रमर मधु चूसने के लिए उत्साहित हुये। ६ आकाश पर टिमटिमा कर प्रकाश देनेवाले नक्षत्र ऐसे दिखाई पड़े मानो कृष्ण का शरीर है जिस पर समुद्र की जलविंदुएँ चिपट गयी हों। ७ —इस तरह सूर्यास्त होने पर, दुःखी होकर आयी हुई अपनी माताओं से विनम्रपूर्वक वात करके, समझा-वुझाकर, उन्हें राजमहल में भेज कर, जिनमंदिर जाकर, नींद से आवृत्त होते हुए भी मध्य रात को उठ कर, अरभट्टारक से विदा लेकर, धनुष-वाण धारण कर, सीता के साथ नगर के वीच जो गुप्तद्वार था उससे दक्षिणाभिमुख हो चलने लगे। अनेक सामंत राजा अन्यमार्ग से, पीछे से, श्वेतछत्रों

विन्नविसे, सीतॆ सेदॆवड्डवळॆंदु मॆल्लमॆल्लनॆ नडॆयुत्तिर्दॆवल्लदंदिन्नॆवरंदूरं पोपॆवॆंदवरोडनॆ माताड्डुत्तुमॆडॆयॆडॆय ग्राम नगरंगळं नोड्डुत्तुं कळिदु गंभीर तरंगिणिय नॆय्दॆवंदल्लिनिंदु, सामंतादिगळनॆंतानुमॊडंबडिसि निलिसि, तॊरॆयं यानमात्रदिं दाटि पोपुदुं, रामलक्ष्मणरगल्कॆ-गॆ सैरिसलारदॆ कॆलंबरदुवॆ निर्वेगकारणमागॆ तन्नदीतीरद जिनागार-दॊळिर्द शतकेतुगळॆंब गणधर स्वामिगळ समक्षदॊळ् दीक्षॆगॊंडल्लियॆ निंदर; कॆलबर व्रतविशेषंगळं कैकॊंडु साकेतपुरक्कॆ वंदरदॆल्लमं दशरथ नरनाथं केळ्दु—

सॆडॆदनॆ तन्न बंदुगळगल्कॆगॆ पुत्र कलत्र मोहदॊळ्
तॊडर्दनॆ पट्टबंधमनॊर्डचिदने भरतंगॆ राघवं
नडॆयॆ वनक्कंद मरॆदुमें बॆसगॊंड ना-
गडॆ विभु सर्वभूतहित दिव्यमुनींद्रर पादपार्श्वदॊळ् ॥ ८ ॥

अंतु दशरथं दशधर्मनिरतनप्पुदुं, भरतं राज्यसुख निरतनाद-नागळपराजितामहादेवियुमुदात्तराघवन वन प्रवेश क्लेशायासमं नॆनॆदविश्रांत विगळितातश्रु सलिल कलिल कपोल युगळॆ गद्गदकंठॆ-यागि—

---

के साथ आये और कहा कि हम यह सोच कर इन श्वेतछत्रों को ले आये हैं कि आप लोगों को कठिन (कठोर) मार्ग पर चलने की आदत नहीं है। इसे सुन कर राम ने कहा : सीता के थकने से हमारी गति मंद हुई है, अन्यथा अब तक हम काफ़ी दूर निकल जाते। आसपास के ग्राम, नगरों को देखते हुए, सामने गंभीर होकर बहनेवाली नदी को देख कर रुक गये और सामंतों को समझा कर सांत्वना देकर, उन्हें वहीं ठहराकर, नाव से नदी पार किया। राम-लक्ष्मण के विरह को सहने में असमर्थ होकर कुछ लोगों ने, वहीं उस नदीतट पर रहनेवाले शतकेतु गणधर से वैराग्य-दीक्षा ले ली। और कुछ लोगों ने विशिष्ट व्रत ग्रहण कर अयोध्या लौटकर दशरथ को सारी बातें सविस्तार वता दीं। सारी बातें सुनकर दशरथ—बंधुओं के अलग होने के विचार से विचलित हुआ ? पुत्र-बधुओं के मोहपाश में जकड़ा गया ? भरत को सिंहासन सौंपा ? राम वनगमन कर गया तो उसने सर्वभूतहित भट्टारक से दीक्षा ग्रहण की। ८ —इस तरह दशरथ के धर्मदीक्षा में लीन होने पर, भरत ने राज्य-सुख पाया। उस समय अपराजिता देवी वन में राम द्वारा अनुभव किये जाने वाले दुःख एवं थकावट का स्मरण कर, दुःख से आंसू वहाती हुई, गद्गदित होकर वोली—

अेननिदं नेगॆळ्दय् सुत * काननमं पोगिपॊवकु मंगल गीत
ध्वानमिरॆ सिंह शरभ * ध्वानमनालिसुव महिमॆगळ्तिगनादै ॥ ९ ॥
धवळ च्छत्र च्चमररुह पवनन * नवमानंगॆय्दु कंद निष्ठुरचीरी
रव मुखर परुष कानन * पवमानन सोंकनासॆगॆय्यल् वगॆदै ॥ १० ॥

वन जलकेळियं विसुटु नंदन निर्झर शैल सानु नं-
दन जलकेळियॊळ् तॊडर्दॆ वारवधू जनमुग्ध सालका-
ननमिरॆ साल कानन मनीक्षिसलळ्तिगनादॆ दिव्य भो-
जनमिरॆ कंद कंद फल मूलदिनारिसुवै क्षुधाग्नियं ॥ ११ ॥

मुडिय पयोधरंगळ नितंबदळुंवमॆनिष्प विग्गिपर्नि
गडणदिनंचॆयॊळ् गृह वनोपवन स्थलदॊळ् विनोद दिं
नडॆवडॆयॊळ् वलल्व जनकात्मजॆयं रघुवंशराम नीं
नडॆयिसुवंदमावुदॊ तनूज दुरंत वनांतराळदॊळ् ॥ १२ ॥

नडॆयं वन्य गजंगळ * नडॆयॊळ् सोगॆगळ सोगॆयोळ् सोर्मुडियं
नुडियं कोकिल रुतियॊळ्*पडियिडलॊडनुय्वॆ तनय जनकात्मजॆयं॥ १३॥

अॆंदति प्रळापंगय्यॆ सुमित्रॆयुमॊडनॆ शोकिसॆ कैकॆ केळ्दु तनगत्यंत शोकावेगमागॆ—

---

तुमने क्या चाहा बेटे ? तुम्हें तो राजमहल में मंगलगीत सुनना चाहिये था। लेकिन अब जंगल में सिंह, शार्दूल आदि क्रूरप्राणियों की गर्जना सुनने में आसक्ति दिखाई। ९ श्वेतछत्र की छाया और चामर की हवा की अपेक्षा तुमने जंगल के तूफ़ान को अधिक पसंद किया। १० उद्यान-वन के सरोवर की जलकेलि को निर्लक्ष्यकर, पर्वतप्रदेश के झरनों के स्नान के प्रति आस्था दिखाई। वारस्त्रियों की मुखपंक्तियाँ होते हुए भी, उनकी अपेक्षा तुमने वन की वृक्षपंक्तियों को निहारना पसंद किया। राजमहल के दिव्य भोजन की इच्छा किये बिना तुमने जंगल के कंदमूलों को खाकर, भूख मिटाना चाहा। ११ बेटे, तुम अपनी पत्नी सीता, जो अपने घने-लंबे बालों, कुचों, जांघों के अतिशय भार को लिये, हंसों से प्रतिस्पर्धा करती हुई, राजमहल, उद्यान में विनोद से चलते समय भी थकनेवाली है, को उस घोरकानन में किस तरह चला रहा है ? १२ सीता, जिसकी चाल मदमाते हाथियों के समान है, जिसके लटकने बाल मोरपंखों के समान हैं, जिसकी मधुर ध्वनि कोयल की मीठी कूक के समान है, को तुम अपने साथ क्यों ले चले ? १३ —अपराजितादेवी को इस तरह शोकसंतप्त होकर आँसू बहाते देखकर सुमित्रा भी शोक करने

पति दीक्षेगोंडनपरा- * जितेंगिनिविरिदाय्तु दुःखभारं धरेयं
सुततुमिळिकेय्दनी दु-*ष्कृतमं स्त्रीत्वद जडत्वदिंदोंडरिसिदें ॥१४॥

अेंदु तन्नं ताने निंदिसि कोंडु भरतनं बरिसि मगने निन्न राज्यं रामलक्ष्मणरिल्लदोप्पलरियदवर जननियरूमवर वियोग विषादवेगदिं विगत जीवितेयरप्परदुकारणदिं वेगमेय्दे वोगि पोगलीयदे निलिसानुं निन्न पिंदने बंदपेनेंबुदुमंतेगेय्वेनेंदु राघवनं कळिपि बंद सामंतवेरसु तोरेयं पाय्दु पोगि मुंदे करंगि कळ्तिलिसिद काननद बट्टेयोळ् जानकिय गमन परिश्रममनारिसुतिर्द रघुवीरनं मुट्टेवंदु वाहनदिनिळिदु कालमेले कविदुबिळ्दु—

पुदियें तमं मनमं मो- * ह दवाग्निय धूमदंते करणबल प्रा-
णद चेष्टेगेट्टु भरतं * पदानतं विकलनागि मूर्छेगे संदं ॥ १५ ॥

अंतु मूर्छितनागि किरिदानुं बेगदिनेंतानुमेळ्चत्तु सीतेगं लक्ष्मणंगं तुळिलगेय्दु निटिल तट घटित मुकुळित करसरोजं रामचंद्रन मुखचंद्रनं नोडि—

---

लगी। इन दोनों को इस हालत में देख कर कैकेयी ने सोचा—पति ने जिनदीक्षा स्वीकार कर ली। दीदी (अपराजिता) का दुःखभार बढ़ गया। पुत्र भरत ने राज्य को धिक्कारा। इस दुष्कृत्य को मैंने स्त्री-सहज मत्सर (जलन) से किया। १४ —इस तरह अपने आपकी निंदा करके (धिक्कार कर), भरत को बुलवाकर बोली : बेटे, यह राज्य राम-लक्ष्मण के अलावा और किसी को शोभा नहीं देगा। उनकी माताएँ वियोग-दुःख के कारण प्राणघातक स्थिति में हैं। इसलिए तुरंत उनके पीछे जाकर उन्हें रोक देना होगा। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे आ रही हूँ। इस सलाह को भरत मान गया और जो सामंत राम-लक्ष्मण से बिदा लेकर लौटे थे उन्हें साथ लेकर, नदी को पार कर, घने जगल के मार्ग पर चलने के कारण थकी सीता की थकान को दूर करनेवाले श्रीराम के पास जाकर; वाहन से उतर कर उसके चरणों पर गिर कर—मोहरूपी अग्नि के धुंवे से चकरा कर त्रिकरण (मन, वचन, क्रिया) शक्ति के मिटने के कारण चरणों पर गिरते ही भरत मूर्छित हुआ। १५ —कुछ समय के बाद इस मूर्छावस्था से मुक्त होकर (जाग कर) सीता और लक्ष्मण को विनम्र हो प्रणाम करके, जुड़े हुए हाथों को ललाट पर रख कर श्रीराम के मुखकमल को निहार कर वोला—भैया, तुम इस वात को स्पष्ट समझते हो कि अक्रम से, लालचवश, राज्य के लोभ के कारण दिगंत तक मैं अपयश का

अक्रमदिनळिपि वसुधा ❋ चक्रमनानासॆगॆय्ये दुर्यशमाशा
चक्रावधियक्कुं धो- ❋ विक्रम धन निम्म मनदॊळवधरिपुदिदं ।।१६।।
अनयं मनुकुलदॊळ् ना- ❋ भि नरेंद्रनिनित्तलादुदिल्लॆन्निदं
जनियिसिदॊडॆ कुल दूषक❋ नॆनिप्प पापवकॆ पळिगॆ पक्कागिरॆने ।।१७।।

अनयदिनप्प संपददिनिल्लमॆ नाडॆयुमिवुवॆत्तु दॆं-
तॆनॆ पळिवन्नरिल्ल धनमिल्लदरं दुरितानुबंधमि-
ल्लनयदिनप्पुवीयॆरडुमॆंबुदनिवरिदीवॆमॆंबिरॆं-
तॆनगधिराज राज्यमनपूज्यमनक्रमदिंदमप्पुदं ।। १८ ।।

अॆंदु बिन्नविसुवन्नॆगं कैकॆयुं नूर्वर् सामंतरॊडनॆ बरॆ वर्पळं कंडु—

इदिरॆळ्दु परिदु कैकॆय ❋ पदांबुजक्कॆरगॆ राघवं हर्षद भा-
रदिनुम्मळवा सतिगा- ❋ दुदु मनदॊळ् नॆनॆदुतन्न गॆय्दन्नॆयमं ।। १९ ।।
स्थानच्युति माडिदळॆं- ❋ बी नोविल्लेककुंडलं कैकॆगॆ पा-
दानतनादं पदॆपिं ❋ मान कषायक्कॆ तक्कनॆडॆगॊट्टपने ।। २० ।।

अंतु विनय विनमितनागिर्द मगनं तॆगॆदु तळ्कैसि पलतॆर्रदि प्रळापंगॆय्द विवेकदिनॆन्नगॆय्द दुर्विलसितक्कॆ सैरिसि मगनॆ राज्यमं

---

पात्र बना। १६ सूर्यवंशियों में, नाभिराजा से लेकर आज तक, कभी परस्पर अविनय को स्थान नहीं मिला। मेरे समय में हुआ और कुल पर अपकीर्ति का कलंक लगाने की दुष्कीर्ति मेरे सिर पर मढी जायगी। १७ अन्याय से प्राप्त सम्पत्ति से सर्वत्र अभाव ही दिखायी देता है। निर्धनों पर लांछन न लगाने का अभाव है और धन के अभाव के कारण पाप का लेप नहीं है। इसका कारण है क्रम विपर्यास करके मुझे दिया जाना। १८ —भरत इस तरह कह ही रहा था कि कैकेयी सौ सामंतों के साथ आती हुई दिखायी पड़ी। इसे देख कर राम उठ कर कैकेयी के चरणकमलों पर गिरा तो अपने द्वारा राम के प्रति किये गये अन्यायों को स्मरण किया और राम के विनय ने उसे अत्यंत हर्षित कर दिया। १९ इस भाव को मन में लाये बिना ही कि इसी कैकेयी ने उसे अपने स्थान (सिंहासन) से वंचित किया था, राम कैकेयी के चरणों पर पड़ा। योग्य व्यक्ति (सज्जन) विरोध को कब स्थान देते हैं? २० —इस तरह विनम्र होकर चरण-छुए पुत्र को, उठाकर आलिंगन कर, अनेक तरह से रोकर बोली, बेटे, मेरे अविवेक को सहन कर, भुलाकर, राज्य को स्वीकार कर लो। तुम्हारे अनुज तुम्हारे आज्ञाकारी बन कर जीवन करेंगे। निराश हुए बिना

कैकोळ्वुदु; निन्न तम्मंदिर् निनगे बेसकेय्दु बाळ्वरिदनुदासीनं गेय्यदे मगुळे बिजयंगेय्येंबुदुमंबिकेगे मुकुळित करांबुजं रामनिंतेदं—

अकलंक चरित्रं क्ष- * त्रकुलोद्गतनेरडनुसिदों डैहिकवामु
त्रिकमळिगुं केवलमं-* विके पातकमनृतदिंदमग्गळमुंटे ॥ २१ ॥

एंदु मत्तमय्यन नन्निगे बन्नमं पडेदु निम्मोळाद विनयमनति-क्रमिसि तम्मन कैय राज्यमं कोंडोडेन्न नुडि कित्तडमक्कुं; मुगुळे नुडियदिरिमेंदु भरतनुमनां कुडल्पडेद राज्यं निनगक्रम मणमल्तु वक्रंबंदोडेम्माज्ञेगे तप्पिदेयेंदु निले नुडिदु—

बंहिमवन्महिमं निज * सिंहकटी तट विलासि पर्यक तळं
सिंहासनवेने भरतं * गें हलि साम्राज्यं पट्टमं कट्टिदनो ॥ २२ ॥

अंतु निज वदान्यता गुण विशुद्ध सिद्धरस प्रवाहक्के सेतुगट्टुवंते पट्टमं कट्टि विनयमं मुंदिट्टु—

ईक्षिसुवन्नेगं भुवनवल्लभ निम्म पदारविंदमं
रक्षिसुवें धरावलयमं भवदाज्ञेगे बेंचि मन्मन-
स्साक्षिकवानपेक्षिसुवेनल्तुपभोगमनेंदु पूण्दने
नक्षतधैर्यनो भरतनोल्वने लोभरत प्रपंचमं ॥ २३ ॥

---

अयोध्या लौट चलो। कैकेयी के इस निवेदन को सुन कर, हाथ जोड़कर राम ने कहा—अकलंक चरित्रवान् क्षत्रिय वचन भंग करे तो इहलोक और परलोक की सद्‌गति नष्ट होती है। माँ, इस संसार में पाप और झूठ से वढ़ कर हानिकारक कार्य कौन सा हो सकता है ? २१ —और पिता के सत्यवचन में बाधक बनकर, आपके निवेदन का विरोध कर, अनुज के राज्य को वापस ले लूँ तो मेरा वचन भंग हो जाता है। इस लिए आपसे निवेदन है कि इस संबंध में आप कुछ न कहें। और भरत को भी समझाकर कहा : मैंने तुम्हें राज्य सौंपा है, उसमें कोई अक्रम नहीं है। तुमने अगर इसका विरोध किया तो इसका अर्थ होता है तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रहे हो। जिस तरह मृगराज सिंह अपने कटि प्रदेश के लिए ज़मीन को ही आसन मानता है उसी तरह महामहिम राम ने जमीन को ही अपना सिंहासन मानकर भरत से बात की। २२ —इस तरह मानो स्वभावसिद्ध सद्‌गुणरूपी प्रवाह के लिए राम ने अपनी कृति (कार्य) रूपी वांध वांधकर, सिंहासन सौपा। इसे देख कर भरत ने कहा—भैया, आपके चरणकमलों को पुनः देखने तक इस राज्य की रक्षा करूँगा। मेरा मन इस वात का साक्षी है। आपकी आज्ञा के डर के कारण, स्वीकृत

अंतु प्रतिज्ञारूढनाद भरतनुजं जननियुमनुचितप्रतिपत्तियिं मन्निसि पोळल्गे कळिपि रामलक्ष्मणर् सीता समेतं पयणं बोपुदुमित्त भरतं कैकेवेरसयोध्येमं पोक्कु—

अमळवेत्तंते समानमार्गे भरतं कोंडाडिदं क्षत्रध-
र्ममुमं धर्ममुमं धरावलयमं विक्रांतदिं ताळ्दि सं-
यम संरक्षण सत्वदिं तळेदु दानं पूजे शीलोपवा
समनत्त्युन्नतराद राज तनयर् तन्नन्नरारेंबिनं ॥ २४ ॥

अंतु भरतं राज्यसुख विमुखनरसुगेय्युत्तिर्पिनमित्तल्—

आतप तापमं तळिर सत्तिगेयिंदे तृषा विषादमं
शीतल तोयदिंदे पसिवं परिपक्व फलगळिंदे नि-
द्रातुर वेगमं लतेय मंटपदिंदे पथ श्रमांबुवं
सीतेगे तूळ्दिदं कदळिका दळ वीजनदिंदे राघवं ॥ २५ ॥

वनकेळी गमनक्के दीपकलिका दीप्ति प्रतानक्के वी-
जन वातक्के बळल्व सीते गमनायासक्के चंडांशु ता-
प निरोधक्के समग्र वात हतिगेनुं वेवसंवट्टुळि-
ल्लिनियं तन्नोडनुय्दपं रघुजनेंबी रागदुद्रेकदिं ॥ २६ ॥

---

इस राजपाट में राज्यभोग की इच्छा नहीं रखता। यह मेरी प्रतिज्ञा है। भरत की यह प्रतिज्ञा इस बात की साक्षी भी कि उसके साहस में कोई त्रुटि नहीं है। भरत जैसा व्यक्ति क्या लोभ-प्रपंच को स्वीकार करेगा? २३ —इस तरह प्रतिज्ञाबद्ध भरत और माँ कैकेयी को उचित उपचारों से तृप्त कर, नगर की ओर भेज कर, राम, लक्ष्मण-सीता के साथ अपने मार्ग पर आगे बढ़े। भरत कैकेयी के साथ अयोध्या पहुँच कर—ऐसा राज्याभार (शासन) करने लगा मानो धर्म और क्षत्रियधर्म ने जुड़वे बच्चों के रूप में जन्म लिया हो। उचित रूप से भूमंडल की रक्षा करके, संयम से, दान, पूजा, शील, उपवास का आचरण के साथ शासन कर अद्वितीय योग्य राजा कहलाया। २४ —इस तरह इधर भरत राज्यसुख-विमुख होकर शासन कर रहा था कि उधर—राम, सीता पर पड़नेवाली प्रखर सूर्यकिरणों की गरमी को अंकुर-कोपलों के छाते से, उसकी प्यास को ठंड जल से, भूख को वकफलों से, निद्रा को लतामंडप से, राह चलने की थकावट को केले के पत्तों के पंखे से दूर कर रहा था। २५ यह स्मरण कर कि पति अपने साथ रहकर, साथ लिवा ले जा रहा है, सीता जंगल में चलने की थकावट को, तूफ़ान के आघात को, सूर्य की प्रखर

परलोत्तें सैरिसुत्तुं * गुरु जघन भरंगळिं तडम्मॆट्टुतुं
चरण कमलंगळं सं-* वरिसुत्तुं सीतॆ सॆडॆदु मॆल्लनॆ नडॆदळ् ॥ २७ ॥

ओगॆद कुचंगळिं तॊलगॆ मेलुदनोरडिगॊमॆ सीतॆ सा-
वगिसुव कॆय्तमुं वदनचंद्र सुधा रस बिंदुवॆंबिनं
नॆगॆद पथश्रमांवु कणमुं नसुबंबल बाडिदंगमुं
त्रिगुणिसॆ रागमं मगुळ्दु वीक्षिसुतुं नडॆदं रघूद्वहं ॥ २८ ॥

क्रमदिं पर्यंत नाना जनपद नगर ग्राम पुण्याश्रम प्रां-
तमॆ बीडप्पंतु सौमित्रिय समुचित पर्यष्टियिं पिंगॆ यात्रा-
श्रमवेगं पारियात्रावनिय निकटमं राघवं जानकी स्मे-
र मुखाब्जालोकनं लोचनसुख मुखपाथेयगॆय्दॆवंदं ॥ २९ ॥

अंतॆय्दॆवर्पुदुं—

फलभाराक्रांत सार्वर्तुक निकटवनं मेखलाकीर्ण वल्ली
निलयं गंदेभ गंधोत्कटमविरळ सानु स्थली पद्मनीलो-
त्पल षंडं कूटकोटि स्फुरित मणि मयूखवली चित्रिताशा
वलयं कण्गं मनक्कं पडॆदुदु पदॆपं चित्रकूटाचलॆंद्रं ॥ ३० ॥

फणिलोकं पादपीठं तनगॆनॆ रसॆयं मॆट्टि मत्तित्त तारा
गणमं तळ्पॊय्दु पेर्विगळिनसदळं कण्गॆ चॆल्वागि नाना

किरणों (धूप) की उष्णता को भूल गयी। २६ पत्थर की ठोकरों को सहती हुई, जांघ के भार को सहती हुई, अपने कदमों को उठा-उठाकर रखती हुई सीता वन में धीरे-धीरे चल वही थी। २७ अपने वक्षस्थल से खिसके (सरके) हुए आंचल को संभालती हुई सीता को मुखचंद्र के अमृतविंदु सदृश उसके माथे पर प्रस्फुटित पसीने की बूँदों को, थकी-हारी उसकी देह को मुड़मुड़ कर देखते हुए राम चल रहा था। २८ लक्ष्मण की बेजोड़ सेवा के कारण राम-सीता राह पर मिलने पर अनेक गाँवों, आश्रमों, नगरों को ही अपना घर समझने लगे। इस तरह सीता-राम की थकावट दूर होने पर, मँद मुस्कराते हुए, परस्पर मुखदर्शन करते हुए वे आगे बढ़े। २९ —इस तरह चलते समय—सर्वऋतुओं में फल-भार से मुक्त वनों, पुष्प-लताओं के समूह, मदमाते हाथियों के मद की सुगंधी, गिरिशिखर, नीलकमलों के झुंड, रत्नप्रभा से आंखों को आनंद प्रदान करनेवाला चित्रकूट पर्वत सामने दिखाई पड़ा। ३० नागलोक को ही अपना पादपीठ समझकर, पाताल को दबाकर, ऊपर नक्षत्रलोक पर

मणिकूटं चित्रकूटं सोगयिसे पर्देपि सीतेयुं रामनुं ल-
क्षमणनुं नोडुत्तुमुत्कंटकित तनुगळाशैलमं दाटिपोदर् ॥ ३१ ॥

अंतवर् चित्रकूटाचलेंद्रमं वलदोळिक्कि पोगि तदनंतरमवंती विषयदोळगने बरुत्तुमदोंदु वट विटपिच्छायाच्छादितवप्प तण्बुळिल नुण्बसलेयोळ् विश्रमिसि परिश्रममनारिसुत्तुं—

फलभरितंगळ नीके ※ य्वोलंगळं कावरिल्ल निर्जतुकमी
नेलननितुं वेडर मेण् ※ केलदरसर बाधेयिंदे पाळाय्तक्कुं ॥ ३२ ॥

एंदु नुडियुत्तुमिर्पिनमोर्व मार्वट्टेयोळ् बरुत्तुमवरं कट्टिदिरोळे कंडेरगि पोडेवट्टु भरवट्टिर्पुदुं, लक्ष्मणनवननंजदिरेंदनुनयमं नुडिदी नाडेके पाळादुदेने मुकुळितांजलि पुटनिंतेंदं—

इदवंति विषयमी विष- ※यदोळुंटुज्जयिनियेंब पोळलदनाळ्वं
मदवदरि करटि मस्तक ※विदारि सिंहोदरं पराक्रमसिंहं ॥ ३३ ॥

आतं तन्न सामंतनप्प वज्रकर्णं तनगे कैतवदिंदेरगुवुदं कर्ण परंपरेयिं केळ्दु कडुमुळिदु—

सकलज्ञं पोरगागे कैमुगियेनेंबी पूण्केयिं रत्नमु-
द्रिकेयोळ् कीलिसि जैनबिंबमनदेनुद्वृत्तनो नम्र म-

---

पहुँचने को तैयार रश्मिराशियो से सुशोभित चित्रकूट राम-लक्ष्मण-सीता की दृष्टि में पड़ा तो आश्चर्यचकित होकर आगे चल पड़े। ३१ —इस तरह चित्रकूट पर्वत को पार कर वे आगे अवंती देश में प्रविष्ट हुए और राजमहलों से आवृत्त ठंडे रेती के ढेर पर विश्राम लेकर, थकान को दूर करते हुए—फलों से लदे इस वन की रक्षा करनेवाला कोई नहीं; यह प्रदेश निर्जन है, यह शायद पड़ोसी राजाओं और भील (जाति विशेष) के उपद्रव के कारण ऐसा बना होगा। ३२ —ऐसा वे कह ही रहे थे कि एक व्यक्ति सामने के मार्ग से आया और देख कर नमस्कार किया। उसे भयभीत देख कर लक्ष्मण ने अभयदान दिया और पूछा कि इस देश की इस दशा का कारण क्या है? आगंतुक ने हाथ जोड़ कर यूं कहा— यह है अवंती देश : इसके भीतर उज्जयिनी नामक नगर है। वैरीवृंद-भयंकर माना जानेवाला महापराक्रमी सिंहोदर इसका शासक है। ३३ —वज्रकर्ण उसका सामंत था। वह खुले आम कहता रहता था कि वह सर्वज्ञज्ञानी के अलावा और किसी के सम्मुख सिर नहीं नवायेगा। सिंहोदर इस विचार से कुपित हुआ कि वज्रकर्ण उसे गौरव देने का केवल अभिनय कर रहा है। क्रोध से उसने—धृष्टता से जिनबिंबको रत्नागार में रख कर

स्तकनप्पं गड वज्रकर्णनेनगं कौटिल्यदिंदेंदु मा-
न कषायाशयनातनिर्द पुरमं सिंहोदरं मुत्तिदं ॥ ३४।

अदरिनातनोळाद भीतियिनीविषयमिनितुं पाळादुदा दशपुर-
मुमिदे देसेयदिलिगनतिदूरमेंदु बिन्नविसि बीळ्कोंडु पोपुदुं—

व्रतमं पालिसिदं महापुरुषनेंबी संतसंगेट्टु दु-
र्मति सिंहोदरनप्रमत्त चरितंगा वज्रकर्णगे दु-
स्थितियं माडुवेनेंबु बंदु पुरमं मुत्तिर्दपं तन्मदो-
द्धतनं बारिसवेळ्पुदोडुपेक्षा दोषमेनाणदे ॥ ३५॥

कदनोद्योगदिनाळ्दनेत्तिबरेयुं बेळ्कुत्तु बेन्नित्तनि-
ल्ल दृढात्मंदळेदं पलर् पोगळ्विनं निश्शंकेयिं पूण्केद-
प्पिदनिल्लैहिक लाभमं वगेदनिल्लेवेळ्वे सद्दृष्टिग-
ल्लदसद्दृष्टिगे वज्रकर्णने वलं कैयं नोसल्गुय्यदं ॥ ३६॥

अेनुत्तवरल्लि तळर्दु दशपुरमनेय्देवर्पुदुं—

हरिय बळन नडुवे सीते पोळेये चल विलोचनं
करिय बिळिय मुगिल नडुवे पोळेव मिंचिनंददिं
बरे कडंगि वज्रकर्णनवरनात्म राज मं-
दिरद पोन्न नेलेय माडदिदिरोळिर्दु नोडिदं ॥ ३७॥

---

ताला लगाकर, अपने सामंत द्वारा कृत्रिम मान के कारण बदला लेने के विचार से उसके (वज्रकर्ण के) नगर पर आक्रमण किया। ३४ —उस डर के कारण यह प्रदेश इस तरह उजड़ गया है। वज्रकर्ण का दशपुर यहाँ से अधिक दूर नहीं है। इतना कह कर उसके चले जाने पर (राम-लक्ष्मण ने सोचा)—सर्वज्ञ को ही झुकाने का व्रत पालने के कारण वज्रकर्ण जैसे महानुभाव पर कुपित होकर, उसके नगर को घेरनेवाले उस दुष्ट और घमंडी सिंहोदर को योग्य सबक सिखाना होगा; अन्यथा अन्याय की उपेक्षा करने का दोष लगेगा। ३५ युद्ध करने के लिए आये हुए राजा को देख कर, भयभीत होकर पलायन न करके हिम्मत से भिड़ कर, संसार की प्रशंसा का पात्र बनकर, अपनी प्रतिज्ञा को निभाकर, इहलोक के लाभ की चिंता किये बिना कृतकृत्य होनेवाला एक मात्र वीर है—वज्रकर्ण। ३६ —ऐसा सोच कर वे वहाँ से चल कर दशपुर पहुँच गये। —चलते समय राम-लक्ष्मण के बीच सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो काले और सफ़ेद बादलों के बीच चमकती बिजली हो। अपने राज-महल के सुवर्णमंजले से वज्रकर्ण ने उनको दूर से ही आते हुए देखा। ३७

अति ललित गमनवत्या-* यत नयनमनूनवक्षमाजानु विळं-
वित बाहुयुगलमप्रा- * कृतमी सौंदर्यमिन्नरं कंडरियें ॥ ३८ ॥

कारण पुरुषरिवर् सा-* धारणरल्लर् तृणीकृत त्रिभुवनरे
कारणवेळ्तंदरीं बल * नारायणरप्परिन्नरुळिदरुमोंळरे ॥ ३९ ॥

ऎंदु नीडुं भाविसि विस्मय स्तिमित लोचननागि नोडुत्तिर्पुदु-
मवर् पुरदुत्तर गोपुरद जिनेंद्र मंदिरमनैय्दे वंदु मूरुसूळबलगोंडु
जगत्त्रय प्रभुविंगभिमुखरागि—

जय जितवृजिन जिनेश्वर*दयानदी पुळिन राजहंस भवांभो-
धिय तडियनेय्दिसेम्मं *नय निक्षेप प्रमाण पात्रदिनरुहा ॥ ४० ॥

नेवाळमेंदु कैलवर * पावं पिडिवंते देव नीनल्लदरं
देवरिवरेंदु पिडिदि * त्रेविधिवट्टपरों मोह मूर्छेयिनरुहा ॥ ४१ ॥

निनगें रसमोंदे शांतमे*जिनेंद्र मनमा रसांवु निधियोंळगवगा-
हनमिर्दु मिक्क रसमं*कनसिनोंळं नेनेयदंतु माडेमरुगहा ॥ ४२ ॥

मणिभूषण भरदिं तनु*किणमप्पुददेकें निन्न निर्मल गुण भू-
षणमं दयेगेय् पडेवें *प्रणयमनपवर्ग लक्ष्मिगदरिदरुहा ॥ ४३ ॥

---

अति ललित चाल से, तेजपूर्ण आँखों से, न्यूनतारहित वक्षस्थल से, अजानुबाहुओ से, सुशोभित ऐसे देह-सौंदर्य को मैंने अब तक कभी नहीं देखा था। ३८ ये कारणपुरुष है, सामान्य नहीं; त्रिभुवनों को तृणतुल्य समझानेवाले ये न जाने यहाँ क्यो आये है ! ये बलाच्युत के अलावा और कोई हो ही नहीं सकते। ३९ —इस तरह दीर्घ विचार करके, आश्चर्य से देख रहा था कि वे नगर के उत्तर के जिनमंदिर में प्रविष्ट होकर, तीन प्रदक्षिणा लेकर त्रैलोकप्रभु की ओर मुँह करके (बोले)—पाप पर विजय प्राप्त करनेवाले जिनेश्वर, दयासरिता में रहनेवाले राजहंस, अपनी कृपानाव के माध्यम से, हमें संसारसमुद्र से पार उतार दो। ४० जिस तरह कुछ लोग साँप को पकड़ कर (उसे) माला समझते है, उसी तरह यह सोच कर कि तुम ही ऐसे लोगों को पकड़ते हो जो भगवान् नहीं है वे अपनी अज्ञानता के कारण न जाने कैसा कष्ट भोग रहे हैं। ४१ शांत-रस तुम्हारा एक मात्र प्रिय रस है। जिनेद्र, हम पर ऐसी कृपा करो कि वह रस हमारे मानस-समुद्र में सदा रहे और अन्य रसों को स्वप्न में भी स्थान न मिले। ४२ रत्नाभरणों के भार से शरीर को क्यों कष्ट दिया जाय ? अपने निर्मलगुण-रूपी आभरण हमें पहना दो। उससे हमें मोक्षलक्ष्मी साम्राज्य प्रदान करने की कृपा करें। ४३ जिस तरह सिंह

सिंगद मार्दनि मदमा- *तंगमनळरिसुववोल् निज प्रतिबिंबं
पिंगदे मनदोळ् निंदिरे *पिंगिसुवुदु जनन मरण दुःखमनरुहा ।। ४४ ।।
मेच्चेंगडमळियेंगड बगे*बेच्चिरे वेरागे निन्न पददोळ् मनुजं-
गुच्चगति नीचगति वडे-*वच्चरि कण्देरेव तेरननरिपेमगरुहा ।।४५।।
ज्यायंगे नीने वलमा * देयं नीनल्लदन्य वस्तुगळेल्लं
हेयंगळेंब तत्वो- * पायमनेमगीवुदेवेवुळिदुवनरुहा ।। ४६ ।।
नित्यसुखमात्म रूपम- * नित्यसुखं मोहरूपवेंब विवेकं
सत्य स्वरूपमदरोळ * गत्यंतानुभव विभवमक्केमगरुहा ।। ४७ ।।

अेंदु दर्शनस्तुतिगेय्दु जिनमुख दर्शनदिं हर्षचित्तरागि चैत्यालयद पट्टशालेय मुंदण परिसूत्रद सुत्तण सरोवरंगळोळलर्द तावरेय तनिगंपं तळकैसि तीडुव तण्गाळिय सोंकि गमन परिश्रममनारिसुतिर्पुदुमागळल्लिगे वज्रकर्णनट्टिद बल्मानसर् बोनमं तंदु विनतरागि मार्बलंबळसि बिट्टिर्द दूसरिंदेम्मरसं वज्रकर्णं तां बरलुं निम्मं बरिसलुमरियदेम्मनट्टिदनेंदु बिन्नविसि मणिमय भाजनदोळर्घ्यपाद्यमं

गर्जना मतवाले हाथी को भयभीत करा देती है, उसी तरह तुम्हारा प्रतिबिंब हमारे मन में प्रतिष्ठित (प्रतिबिंबित) होकर, हमारे जन्म-मरण के दुःख को नष्ट करता है। ४४ तुम किसी को भी (अपना कह कर) पसंद नहीं करते; किसी पर कुपित नहीं होते। हमारा मन भयभीत हो जाने पर अपने चरणकमलों का आश्रय देकर कैवल्य प्राप्त करने का तरीका हमें अनुग्रह करो। ४५ तुम महानों में महान हो; तुम देनेवाले हो और पानेवाले भी। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य समस्त वस्तुएँ, जो कनिष्ट तत्व माने जाते हैं, हमें दी जाती हैं। ये अन्य वस्तुएँ क्या कर सकती हैं? ४६ नित्य सुख आत्मरूप है; अनित्य सुख मोहरूप है, यह विवेक ही सत्य है। हे भगवन्! हम पर ऐसी कृपा का अनुग्रह करो कि इस विचार का हमें श्रेष्ठ (सत्य, योग्य) अनुभव हो। ४७ —इस तरह दर्शन-स्तुति करके, जिनमुख संदर्श ने हर्षचित्त होकर, चैत्यालय के मंडपद्वार के सम्मुख स्थित मध्यभाग को घेरे हुए सरोवरों में खिले कमलों की सुगंधी को वहन करके वहनेवाली ठंडी हवा के झोंको के स्पर्श (राह चलने की) थकान को मिटा रहे थे कि इतने में वज्रकर्ण के सेवक वहाँ भोजन ले पहुँचे और शीश नवाकर वोले : प्रबल सेना द्वारा घेरे रहने के कारण आपके पास स्वयं आने या आप लोगों को अपने पास बुला लेने में असमर्थ होने के कारण हमें यहाँ भेजा है। ऐसा कह कर, रत्नमय पात्रों में 'अर्घ्यपाद्य' देकर सत्कार किया। उनकी सेवा को

कोट्टभ्यागत प्रतिपत्तिगेय्वुदुमवरभ्यवहृतियं निर्वर्तिसि कैघट्टियुमं तांबूलमं कोंडु बंद मानसरं विसर्जिसिदनंतरं दाशरथि सौमित्रिय मोगमं नोडि—

अनिमित्तं वज्रकर्णं नमगें विनयमं माडिदं मान्यनातं-
गनुदात्तं मत्तचित्तं मुळिदु बलसि सिंहोदरं कादलेंदि-
र्दनदं नीं वारिसेंबी नुडि किविवुगें सौमित्रि दिव्यास्त्र बाणा-
सनमं कैवार्दनिल्लंतकन बेसदे काळाहि वर्पंते वंदं ॥४८॥

अंतु वंदरमनेय बागिलोळ् निंदु पडियरनोडने सिंहोदरन सभेयनभयं पोक्कु—

ऎरगुवुदंतिर्केम का- ॐय्देरगुव सिडिलंतें घन रवं कैमिगें ना-
डेरेयं भरतं बेससिद- ॐ तेरनं केळेंदु पीतवसनं नुडिदं ॥४९॥
जिनपतिगल्लदें पोडेवडें ॐनेंने दोषियें वज्रकर्णनुळिवुदु मुळिसं
विनमदमरेंद्रनेनिसिद ॐजिनेंद्रनोळ् निनगें गंड मच्चरमुंटे ॥५०॥
अव्रतिकंगेरगद वी- ॐ र व्रतमं केळ्दु हर्षमं ताळ्दद नि-
न्नब्रह्मण्यं वर्यज- ॐ न व्रीडाकम्मदं विचारिसवेडा ॥५१॥

---

स्वीकार कर, उन्हें लौटा देने के वाद राम ने लक्ष्मण का मुंह देख कर कहा—किसी तरह वाध्य न होते हुए भी वज्रकर्ण ने हमारे प्रति आदर दिखाया है। वह उदात्त है। अहंकारी सिंहोदर उसे सताकर उससे लड़नेवाला है। उसे तुम रोक दो। यह बात लक्ष्मण के कानों में पड़ते ही वह दिव्य धनुष-वाणों को उठाकर उसी तरह चला मानो भय की आज्ञा पाकर समटनेवाला क्रूर सर्प हो। ४८ —इस तरह आकर, राजमहल के द्वार पर निडर खड़े होकर, द्वार पालक के साथ सिंहोदर की सभा में प्रविष्ट होकर—किसी तरह की शिष्टता न दिखा कर (सिर न झुका कर) भयंकर आवाज़ में, प्रहार करनेवाली घनगर्जना के समान वोला : देश के राजा भरत ने जो आज्ञा दी है उसे सुनो। ४९ अगर वज्रकर्ण ने कहा है कि जिनेश्वर के अतिरिक्त और किसी के सामने वह अपना सिर नहीं झुकाएगा, उसकी कोई गलती नहीं है। उससे शत्रुता छोड़ दो। देवेंद्र से भी वंद्य जिनेश्वर से तुम्हें मत्सर क्यों है? ५० वज्रकर्ण के इस वीरव्रत को कि वह किसी आचारहीन व्यक्ति को सिर न झुकाएगा, संतुष्ट न होनेवाले तुम हिंसक हो। हम, जो श्रेष्ठ हैं, तुम जैसों की खवर न लें? ५१ राजाज्ञा का पालन करोगे तो अधिकार

सुत्तुळिवुदु मन्निसे भू- * पोत्तमनाज्ञेयनवज्ञेगेय्ये कोंडे नेळल्
नेत्तिगे गेंटक्कुमिदं * मत्तेनिसदिरुचितमल्तु गुणविद्वेषं ॥ ५२ ॥

एने सिंहोदरं घनरवक्के सिडिल्द सिंहदंते मुनिदु—

श्रेयमनेनगरिपलुपा- *ध्यायने तनगरियनरिवनप्पोडे भरतं
ज्यायन राज्यमनय्य क-*नीयं कैकोंड तोंडु तनगावुचितं ॥ ५३ ॥

अण्णन मातं मन्निसि*कण्णरिदोसरिसिदं जनार्दननिदिरोळ्
तण्णने हरिपीठदोळि * पेण्णने तां तन्न वीरमेन्नरियदुदे ॥ ५४ ॥

एन्नाळेनगेरगदोडव * नन्नियमिसुवेडेगे तानुमेनगरसने बं-
देन्नं नियमिसुगेम त * न्नेन्नळवं समर मुखदोळरियल्बक्कुं ॥ ५५ ॥

एने लक्ष्मणं मंदस्मित मुखारविंदनागि—

अधिराजंबरेगं कद- * न धुरीणं गंडनावनेने मुनिदु घन
प्रधन रतं सिंहोदर * नधोक्षजंगोरेयिनुर्चिदं कूरसियं ॥ ५६ ॥

आगळदं कंडुकडुमुळिदु—

कडितलेयं तूगुत्तुं * कडितलेकारर् कडंगि बरे बरूगय्योळ्
तुडुकि पिडिदेत्ति मसकदि*नेडेयुडुगदे सिलेयोळसगवोय्लं पोय्दं ॥ ५७ ॥

---

बच सकता है; गुणवानों से द्वेष करना उचित नहीं है। ५२ —ऐसा कहने पर, लक्ष्मण की बातों से सिंहोदर अत्ययंत कुपित होकर घनगर्जना-सा बोला—भलाई और बुराई का बोध कराने (उपदेश देने) के लिए भरत क्या मेरा गुरु है? भरत अगर ज्ञानी (विवेकी) होता तो बड़े भाई को जो राज्य मिलना चाहिए था उस पर थोड़े ही राज्य करता? यह कैसा न्याय है? ५३ अग्रज के आग्रह को स्वीकार कर, अग्रज के सामने ही, जिस सिंहासन पर अग्रज का अधिकार था, उस पर बैठकर शासन करनेवाले भरत के शौर्य से क्या मैं अपरिचित हूँ? ५४ मेरे द्वारा नियुक्त मेरा सामंत वज्रकर्ण अगर मेरी बात नहीं मानता, तो मुझे नियुक्त मेरा राजा (भरत) आकर मुझे ठीक करे अन्यथा वह मेरे शौर्य को युद्धभूमि में देख ले। ५५ —ऐसा कहने पर लक्ष्मण मुस्कराया और बोला —चक्रवर्ती से भिड़ने का साहस किस वीर में है? सिंहोदर लक्ष्मण पर झपटने के उद्देश्य से म्यान से तलवार निकालने लगा। ५६ —उसे देखते ही लक्ष्मण आगबबूला हुआ—खड्गधारी शत्रु खड्ग उठाकर वीरता से आगे बढ़नेवाले शत्रुओं को निरस्त्र लक्ष्मण उठा-उठा कर उसी तरह पटकने लगा जिस तरह धोबी कपड़ों को पत्थरों पर पटकता है। ५७ एक को पकड़कर

ऒवॆरिनॊवॆरं मुरियॆ मोदिदनॊवॆरिनॊवॆरं भुजा
गर्वदिनोवदिट्टनरॆयट्टि सिडिल्पॊडॆवंतॆ पॊय्दनो
रॊवॆरिनॊवॆरॊवॆरनगुर्विसि सौळनॆ सीळ्दनितिदॆं
मार्वलमं पडल्वडियळुकॆंगॆ निर्दयनो जनार्दनं ॥ ५८ ॥

अदं कंडु सिंहोदरं सिग्गागि सिंहदंतॆ मेल्वाय्वुदुं—

बाळं बंचिसि पिडिदं ※ वाळकनं पिडिव माळ्कॆयिंदवनं वि-
ल्लाळनॆळॆदुय्दुनावं ※ काळॆगदॊळ् लक्ष्मणंगॆ कूर्पं तोर्प ॥ ५९ ॥

आगळा कळकळक्कॆ मुन्नीरॆ मेरॆदप्पिदंतॆ बॆंदगुळ्दु वर्पमार्पडॆगॆ कडॆगालद कृतांतनंतॆ पडंमगुळ्दु—

कूराळि कूराळं ※ तेरिं तेरं कडंगि हयदिं हयमं
वारणदिं वारणमं ※ नारायणनिट्टु तविसिदं मार्वलमं ॥ ६० ॥

अॆनुरदांपुदुं जवनवोल् तवॆ कॊंदनॊ वैरि सेनॆयं
मानव नंदमल्लमिदु दानवनंदमॆनल् वृहद्वलं
मानवरिं हय प्रकरमं हयदिं रथमं रथंगळिं-
दानॆयनिट्टु कैगॆ दॊरॆकॊंडुदॆ कैदुवॆनल् जनार्दनं ॥ ६१ ॥

अंतगुर्वुमद्भुतमुमागॆ कादि—

---

दूसरे पर प्रहार करते हुए, अपने भुजबल से पीछे करके घनगर्जना-सा मारकर पुनः भयानक खड्गधारियों को उठा-उठा कर अन्यों पर प्रहार कर पराजित करने में जनार्धन निर्दयी हुआ। ५८ —उसे देख सिंहोदर और भी कुपित होकर सिंह की भाँति लक्ष्मण पर टूट पड़ा। —जिस तरह वच्चों को धोखे से पकड़ा जाता है उसी तरह खड्ग के साथ धनुर्धारी सिंहोदर को लक्ष्मण ने पकड़ कर खींचा। युद्ध में लक्ष्मण के सम्मुख अपना शौर्य दिखाने की क्षमता कौन रखता है? ५९ —इतने में अनियंत्रित समुद्र की भाँति सिंहोदर की सेना ने पीछे से आक्रमण किया तो प्रलयकाल के यम की भाँति मुड़कर—खड्गधारियों को खड्गधारियों से, रथ को रथ से, घोड़े के घोड़े से, हाथी को हाथी से मारकर, लक्ष्मण ने शत्रुबल का नाश कर दिया। ६० किसी योजना के विना ही यम की भाँति न जाने किस तरह शत्रुसेना को मार दिया? मानो यह मनुष्य-गति नहीं, राक्षस-गति है। सैनिकों को सैनिकों से, घोड़ों को घोड़ों से, रथों को रथों से, हाथी को हाथी से, जो कुछ हाथ लगा उसे ही आयुध मान कर लक्ष्मण ने युद्ध किया। ६१ —इस तरसे भयानक और अद्भुत रीति से लड़कर—

चकितारातिचतुर्बलं बलयुतं दोस्तंभदोळ् सालभं
जिकेवोल् रंजिसे वीरलक्ष्मि रघुवीरं लक्ष्मणं राष्ट्र कं-
टकनं बाळ्दलेगोंडनुय्दनिभमं पंचाननं हस्ति म-
स्तक मस्तिष्क रसानुरक्त रसनं मार्कोंडु कोंडुय्ववोल् ॥ ६२ ॥

आ समयदोळ् परिजनंबेरसु करूमाडदेरडनेय नेलेयोळिर्दु वज्रकर्णं कर्णांत विश्रांत विस्फारित विलोचननिदेनेंदु नोडुत्तुमिरे—

गणनातीतान्य सेनांगमन नितुमनेकांगदोळ् शून्य हस्तं
रणदोळ् सीळ्दोट्टि सिंहोदरननुरदे कोंडुय्दनुद्दंडनीतं
गेणेयवं गंडनेंदा पुरजनवनितुं विस्फुरत्पक्ष्मविक्षे-
पणमेय्तंदीक्षिसित्तुत्सुक सरभस यानं गतान्यावधानं ॥ ६३ ॥

आ समयदोळ्—

अविरळ गळदश्रु जल-* प्लव धौत कपोलतळमवंतीश्वरनं
तवुरं परिपाळिपुदे- * म्मवतंसमनेंदु बंदु काल्गेरगुवुदुं ॥ ६४ ॥

मलेनिर्दं गड वज्रकर्णनोळदं नीं माणिसेंदट्टिदं
कोललेंदट्टिदनिल्ल रामनधिराजं चिंते बेडंतरिं
देले सिंहोदर मानिनीजनमे शोकोद्रेकमं माणिमं
जलिमेंदं घन दुंदुभि ध्वनिगळोंदादंते लक्ष्मीधरं ॥ ६५ ॥

---

चकित शत्रुसेना पराजित होकर लक्ष्मण की विजयस्तंभ-रूपी बाहों में सुवर्ण-प्रतिभाओं की भाँति सुशोभित हुई तो राष्ट्रकंटक सिंहोदर के मस्तिष्क को रघुवीर (लक्ष्मण) भी उसी तरह बेध कर ले गया जिस तरह हाथी के गंडस्थल (कनपटी) को बेध कर सिंह ले जाता है। ६२ —तब ऊपर मजले से वज्रकर्ण आश्चर्य से देख रहा था कि यह क्या हुआ ! उस नगर के लोग आश्चर्यभरी दृष्टि से लक्ष्मण की गति को देख कर सोच रहे थे— असंख्य शत्रुसेना को पराजित कर, सिंहोदर को बंदी बनाकर ले जाने वाला यह निरायुध अविजेय पराक्रमी कौन है ? इसकी बराबरी कौन कर सकता है ? ६३ —उस समय—सिंहोदर की अंतःपुर की स्त्रियाँ आकर धाराकार आँसू बहाती हुई लक्ष्मण के चरणों पर गिर पड़ीं और अपने भाग्य की रक्षा करने का निवेदन करने लगीं। ६४ तुम लोगों के पति ने वज्रकर्ण से शत्रुता मोल ली है। उसके निवारण करने के लिए राम ने मुझे भेजा है, सिंहोदर को मारने के उद्देश्य से नहीं। आप लोग शोक न मनावें। इस तरह की गंभीर बातों से लक्ष्मण ने उन्हें समझाया,

अंतवर मनद शंका कळंकमं कळेदु सिंहोदरननॆळॆदुय्वुदुमवनिवर् वलाच्युतरेंदरिदु—

अतिबलनप्प लक्ष्मण कुमारन वीररस प्रवाहिनी
पतित महा महीरूहमॆनल् नतनादनवंति वल्लभं
हृत सुमनोविळासनपसारित मूलवलं निरस्त वि-
स्तैत नयनस्तसारनविचारनिळेश्वर पाद पार्श्वदॊळ् ॥ ६६ ॥

आगळुदात्त राघवं—

मनदॊळॆ मॆच्चि लक्ष्मणन दोर्वल गर्वमनानतंगॆ स-
म्मनदॊळॆ भीतियं कळेदु विग्रहदाग्रहमिर्कॆ वज्रक-
र्णनॊळनुवंधमं मगुळॆ माळ्पुदु नीनॆनॆ जानकी प्रियं
विनमित मस्तकं मुगिद कैवॆरसॆंदनवंति वल्लभं ॥ ६७ ॥
देवर सम्मवावुगॆगळं पिडिदॆवुदनिवुकॆय्व स-
द्भावमॆ सालुमॊल्लॆनुळिदेनुमनी वॆसनं नरेंद्र नी-
नीवुदुपेक्षॆगॆय्वुदुमपेक्षिसुवॆं फल मूल वल्कल
प्रावरणाद्रिकुंज वनवास पवित्र तपश्चरित्रमं ॥ ६८ ॥

ऎंदु विन्नविसुत्तिर्पुदुमित्तल्—

बरुगय्यॊळॊदॆ सॆय्यॊळ् ※ मरुवक्कमनिक्कि गॆल्दु सिंहोदरनं
सॆरॆगॊडॊय्दं कृष्णं ※ पॆरंगॆ पेळ् वाहुवीर्यविनितावपुदे ॥ ६९ ॥

---

तसल्ली दी। ६५ —इस तरह उनके मनके संदेह का निवारण करके, सिंहोदर को घसीट कर ले जाने पर वह समझ गया कि ये बलाच्युत हैं। —अतिवलिष्ट लक्ष्मणकुमार के वीररस-प्रवाह में डूबे महावृक्ष के समान अवंतीवल्लभ सिंहोदर ने लज्जा से और अपने सेनावल को खोने और पराजय की पीड़ा से श्रीराम के चरणों के पास शीश नवाया। ६६ —तव उदात्त राघव ने—मन ही मन लक्ष्मण के वाहुवल की प्रशंसा की और सिर झुकाये हुए सिंहोदर के भय और शंका को दूर करके कहा कि वज्रकर्ण के साथ युद्ध करने का संकल्प छोड़ कर, उससे मित्रता जोड़ लो। इसे सुनकर हाथ जोड़कर अवंती-शासक सिंहोदर बोला। ६७ प्रभो, आपके चमड़े की पादुका लेकर, आपकी आज्ञा का पालन करके कृतकृत्य होना ही मेरे लिए काफ़ी है। आप यह आज्ञा मुझे दें। मैं अन्यों की उपेक्षा करता हूँ। मैं कंदमूल खा-कर, वल्कल वस्त्र धारण कर वन में तपस्या करूँगा। ६८ —सिंहोदर इधर ऐसा निवेदन कर रहा था और उधर वज्रकर्ण मन में यह सोच कर कि—निरस्त्र ही

अँदु मनदोळे निश्चैसि परिव्रत कतिपय परिजनं वज्रकर्ण वज्रकुंडल मरीचि पगल सिरिगे कण्देरविमाडे दूरोत्सारित विचित्रा तपत्र विविध वाहनं बसदियं बलगोंडु दर्शनस्तुतिगेय्दतिसंभ्रमदिं बंदु मणिमकुट मयूख लेखे पसरिसे दीपवर्ति निधिगेरगुवंतेरगुवुदुं—

बलद्वैरिगळल्लि मुन्नेळेदुकोंडंतिर्दुवं राम को-
मल पाद द्वितयं नतंगे पडेदत्तत्युन्नतांगुष्टदिं
बेळगुत्तिर्प नखंगळिं तळद कॆंपिं वज्रकर्णंगे नि-
श्चलमप्पंतिरे वेगमुन्नतियनुद्यत्तेजमं रागमं ॥ ७० ॥

कोट्टुदु रागमं तळमुदंशुगळिं नखपंक्ति पट्टमं
कट्टिदुदन्नतांगुलि समुन्नतियिं चरणानतंगे मुं-
दिट्टुदु वज्रकर्ण वसुधा रमणी रमणंगे तोट्टॆनल्
पुट्टिसिदत्तु मॆय्नविर्गळं रघुवीर वचस्सुधारसं ॥ ७१ ॥

अनन्तरं—

अॆरगदोडे नीच वृत्तिय*नॆरगिदोडुन्नतियनीव विपरीत गुण-
क्कॆरेवॆट्टॆनिसिदुपेंद्रं *गॆरगिदनादरदे वज्रकर्ण नरेंदं ॥ ७२ ॥

अंतु विनतनागि—

---

अकेले लक्ष्मण ने विरोधी पक्ष को पराजित किया और सिंहोदर को वंदी बनाकर ले गया ! यह कार्य और कोई नहीं कर सकता । ६९ —इनेगिने (थोड़े) परिजनों को साथ लेकर वज्रकर्ण अपने वज्रकुंडल के प्रकाश, जो सूर्यप्रकाश का सहायक था, को बिखेरते हुए, विचित्र वाहन, श्वेतछत्र आदि को दूर भेज कर, जिनमंदिर की प्रदक्षिणा लेकर, दर्शन-स्तुति करके, बड़ी धूमधाम से आकर, विभिन्न आभूषणों का प्रकाश फैला कर, श्रीराम के चरणों पर गिरा । —बलशाली शत्रु मानो पहले खोयी हुई अपनी प्रताप-कांति को राम के चरणकमल-स्पर्श से पा गया हो, वज्रकर्ण के चेहरे में सुर्खी और नखों में प्रकाश फैल गये । ७० श्रीराम के चरणों को स्पर्श करने पर (राम के) पदनखों की कांति से वज्रकर्ण की दंतपंक्तियाँ चमक कर शोभा देने लगीं । श्रीराम की अमृत तुल्य वाक्धारा ने उसके शरीर में रोमांचन जगाया । ७१ —तत्पश्चात्—आचारवाहिरों (हीनों) को सिर न झुकानेवाला, केवल जिनेश्वर के सम्मुख शीश झुकानेवाला, वज्रकर्ण ने गुणों में पर्वतप्राय (अडिग) माने जानेवाले उपेंद्र लक्ष्मण को आदर पूर्वक नमस्कार किया । ७२ —इस तरह नमस्कार करने पर—उसके

मनमं कारुण्य रसं * तनुवं राघवन देहरुचि पुदियॆ सुधा
वननिधियॊळ् मुळुगिदवो-* लनुरक्तं मुंदॆ मुगिद कैवॆरसिर्दं ॥ ७३ ॥

अंतु समुचित प्रदेशदॊळिर्पुदुमा समयदॊळ्—

भंगि मनसिजन गाडिगॆ*भंगमनॊडरिसॆ किरीट किरणं नभमं
रंगिसॆ किरिदानुं चतु * रंग बलं बॆरसु विद्युदंगं वंदं ॥ ७४ ॥

अंतु बंदु—

श्रीमुख दर्शनमॊडरिसॆ * रोमांचमनॆरगि विद्युदंगं मुन्नं
कामध्वंसिगॆ बळियं * रामंगं लक्ष्मणंगमानतनादं ॥ ७५ ॥

अंतानतनागि वज्रकर्णन कॆलदॊळ् कुळ्ळिर्पुदं लक्ष्मणकुमार नीतनारॆन्नॆ विद्युदंगनॆंबं कुंडळपुरद परदनुज्जयिनिगॆ परदुवोगि कामलतॆवॆसर पॆंडवासद विलासिनिगॆ वल्लभनागिर्दाकॆयत्तणिं सिंहो-दरनॆनगॆ रत्नत्रयाराधकंगल्लदॆ पॆरगॆ रगॆनॆंदुदर्कॆ कडुमुळिदु कॊललॆंदु बर्दु बळियट्टिदुदं कॆळ्ददुवॆ पॊळ्तागॆ दशपुरक्कॆ बरुतुमिदिरॊळॆन्नं कंडॆनगीवृत्तांतमं पेळ्दु पोगलीमदॆ मगुळॆ बंदु निन्नादुदनप्पॆनॆंदु कदन सहायनागिर्दनकारण बंधुवीतनॆंदु विन्नविसॆ तदनंतरं वज्रकर्णन मॊगमं नोडि रामदेवं निजव्रत परिपालन परिणामक्कॆ मॆच्चिदॆं, मॆच्चिदुदं बेडिकॊळ्ळॆनॆ महाप्रसादमॆंदिनॆंदं—

---

मनको करुण रस ने और शरीर को राम की मुखकांति ने घेर लिया। वह अमृतसमुद्र में डूबा-सा हाथ जोड़ कर खड़ा रहा। ७३ —वह ऐसा रह रहा था कि इतने में—अपनी छोटी चतुरंग सेना लेकर विद्युदंग वहां आया। वह ऐसा दिखाई दे रहा था मानो वह कामचक्रेश्वर की दिल्लगी उड़ा रहा हो। ७४ —विद्युदंग आ पहुँचा तो—मंगलकारी सुखदर्शन से (विद्युदंग को) रोमांचन हुआ। उसने पहले कामद्वंसी को और तत्पश्चात् राम-लक्ष्मण को प्रमाण किया। ७५ —इस तरह प्रणाम कर वज्रकर्ण के वगल में जा बैठा तो उसके वारे में लक्ष्मण के प्रश्न करने पर वज्रकर्ण ने वताया कि वह कुंडलपुर का व्यापारी है; नाम है विद्युदंग। व्यापार-निमित्त उज्जैन गया तो वहाँ कामलता नामक युवती का पति बना। पत्नी से यह (विषय) जानकर कि मैने निश्चय कर लिया है कि जिनेश्वर के अतिरिक्त और किसी के सम्मुख सिर न नवाऊँगा और इससे कुपित होकर सिंहोदर मुझे मारने की योजना वना रहा है, क्रुद्ध होकर देशपुर जाते समय मुझसे मिल कर, मुझे सारी खवर देकर, मुझे आगे वढ़ने से रोक कर मेरी मदद की है। यह मेरा वंधु है। तत्पश्चात वज्रकर्ण ने

प्राणोपकारमं क- ॐ ल्याणमनेनगित्तु देव तणियद निम्मी-
त्राण प्रवीण परम ॐ प्राणि हिताचरणवितर साधारणमे ।। ७६ ।।
अणुविं किरिदादुदु धा- ॐ रिणिदेवर बगॆगॆ देव निजगुणं
फणिपतिगमरिदु मनुजं ॐगणनार्हनॆ पॊगळलॊदॆ नालगॆय जडं ।। ७७ ।।
देवर बरवॆनगादुदु ॐ देवर वरवॆन्नसय्पिनिं देव भव-
त्सेवॆ दॊरॆकॊंडुदॆनगि- ॐ न्नावुदुमरिदुंटॆ बेडि पडॆवनितुवरं ।। ७८ ।।

अदरिं देव सिंहोदरंगॆ कारुण्यंगॆय्वुदॆंदु बिन्नविसॆ लक्ष्मीधर-नदर्कॆ मॆच्चि—

कडॆदॊडॆ पालगडल् विविधवस्तुवनीयदि तेयॆ चंदनं
कुडदॆ सुगंधमं पिळियॆ कर्बिनिदागदॆ कासॆ कांचनं
पडॆयदॆ कांतियं निजदिनॊळ्ळिदरप्पवरॆंतु बाधॆव-
ट्टॊडमुपकारमं पॆरगॆ माडदॆ बाधॆयनेकॆ माडुवर् ।। ७९ ।।

इरियल्कॆ बगॆदु सिंहो- ॐ दर निरॆयुं वज्रकर्णनॊळ्पमॆ बगॆदं
परपीडा करणदॊळॆं ॐ परोपकार प्रियंगॆ बगॆ बंदपुदे ।। ८० ।।

अॆंदु नुडिदनंतरं दामोदरं सिंहोदरंगं वज्रकर्णगं परस्पर कर-ग्रहणदिं मनद कलुषमं कळॆदु, नाडुमं बीडुमं पच्चुकॊट्टु—

कहा—प्राण बचाकर, उपकार और कल्याण करने वाली आपकी प्राणीदया जैसा श्रेष्ठगुण सामान्य थोड़े ही हैं? ७६ प्रभो, आपकी महिमा के सम्मुख यह पृथ्वी अत्यंत तुच्छ है। आपके सत्वगुण का बखान करना महाशेष के लिए भी कठिन कार्य है। ऐसे में मानव एक जीभ से आपकी प्रशंसा कैसे कर सकता है? ७७ मेरे पुण्यवल से ही मुझे भगवान् के दर्शन हुए हैं। मुझे आपकी सेवा करने का भाग्य मिला है, इससे बढ़कर मैं और क्या माँग सकता हूँ? ७८ —इसलिए आपसे निवेदन है कि सिंहोदर पर दया दिखाकर उसकी रक्षा करें। इससे प्रसन्न होकर—क्षीरसागर का मंथन किया तो विभिन्न वस्तुएँ मिलीं; चंदन को घिसने पर वह सुगंधी देता है; गन्ने को पेरने पर मीठा रस प्रदान करता है; सोने को तपाने से (कुंदन बनकर) वह अधिक प्रकाश देता है; अपने पर कष्ट टूट पड़ने पर भी सज्जन संसार का उपकार करते हैं, वे कभी अपकार की बात सोचते हैं? ७९ जिस सिंहोदर ने वज्रकर्ण को खड्ग से मौत के घाट उतारने के लिए तैयार हुआ था, वज्रकर्ण ने उसी सिंहोदर का हित चाहा है। सज्जन परों को पीड़ा देना कभी नहीं चाहते। ८० —ऐसा कह कर लक्ष्मण ने सिंहोदर और वज्रकर्ण के हाथ मिलवा कर, मन के द्वेषभाव को

नुडि कित्तडवॆंनिसदॆ ने- * पॆंडुगिडदॆ नरेंद्रनाज्ञॆयिंदिर्पुदिदं
कडॆगणिसॆ वलिक्कण्णन *तुडुव शिलीमुखदॊळुंटॆ मुखदाक्षिण्यं ।। ८१ ।।

ऎंदु नियमिसुवुदुं वज्रकर्ण परिपूर्ण मनोरथं दाशरथियं देव-रन्नॆमनॆगॆ विजयंगॆय्वुदॆंदुय्व समयदॊळ्—

तुरुगिदुवु तोरणं कै*निरिदुवु गुडि किवुडुवीळ्विनंदिक्करिगळ्
परॆ मॊळगिदुवुन्नति क- * न्दॆरॆदंतॆवॊलादुदुत्सवं दशपुरदॊळ्।। ८२ ।।

आ समयदॊळ् सुट्टि तोरि—

वनितारत्नं दला कोमलॆ जनकजॆ रामं दला वर्प नीहा-
र नगेंद्र प्रांशु सिंहोदर कदन मदोद्रेक रौद्र ग्रहोच्चा-
टन मुद्रामांत्रिकं लक्ष्मणनॆंदलॆनुतुं बेगमॆय्तंदुपौरां-
गनॆयर् कण्णार्विनं नोडिदरलर्गणॆयं तागॆ नेत्रत्रिभागं ।। ८३ ।।

अंतु पौरजनद मनदॊडनॆ पुरमनरमनॆयुमं पॊक्कु मणिमयमंटप-दॊळिक्किद मणिमयासनमनलंकरिसि रामलक्ष्मणरिर्पुदु मभिजन सनाभिजन सहितनानतननर्घ्यं पाद्यमं कॊट्टु सिंहोदरनुमनॊडनॆय-रसुमक्कळुं विचित्र वस्त्रभरणंगळिदमर्चिसि मज्जन भोजनादि सत्कारमनॆंदिन दिनदॊळ् मॆरॆदु मरुदॆवसं शुभमुहूर्तदॊळ्—

---

दूर करके, मित्रता जगाकर, राज्य को बाँट कर दे दिया। और कहा—बात ऐसी हो कि किसी के मन को ठेस न पहुँचे, सत्य को न छोड़ कर राजाज्ञा का पालन करते रहे। आज्ञा का उल्लंघन करने पर भरत भैया के वाणों को किसी पर दया नहीं आयेगी। ८१ —इस तरह नियम वताया। वज्रकर्ण ने अपनी मनोकामना पूर्णकरा लेने में सफल होकर, दशरथपुत्र को अपने घर में आमंत्रित किया। साथ में जाते समय—नगर तोरणों से भर गया, पताकाएँ मानों हाथ उठा-उठा कर आमंत्रण दे रहीं थीं। दिग्गजों के कानों को वहरा वना देनेवाले वाद्यनिनादों से दशपुर ने उत्सव मनाया। ८२ —उस समय उंगली के संकेतों से वताकर लोग कह रहे थे—वह देखो, वनितारत्न और कोमलांगी सीता राम के साथ आ रही है—वह देखो, हिमवतपर्वत के समान बलवान सिंहोदर को युद्धि-भूमि में वेहाल (पराजित) करा देनेवाला जादूगर लक्ष्मण वही है। इस तरह नगर के स्त्री-पुरुष उन्हें आँख भर देख कर तृप्त हो रहे थे। ८३ —इस तरह पुरजनों के मन के साथ नगर और महल में प्रविष्ट होकर, रत्नमय मंडप में सुसज्जित सिंहासन पर विराजकर, राम-लक्ष्मण और सिंहोदर को सत्कुलजन्य वज्रकर्ण ने सगे-संवंधियों के साथ अर्घ्यपाद्य आदि से सत्कार किया और (तत्पश्चात्) मिष्टान्न भोजन से तृप्त कर दूसरे

तन्न तनुजेयरनेंब- ॐ कन्नेयरं वज्रकर्णनुळिदरनित्तर्
चेन्नेयरनवनिपाल- ॐ मुन्नूर्वरनलिल मदुवे निदनुपेंद्रं ।। ८४ ।।

अंतु दशपुरदोळ् सिंहोदरननुज्ञेणिगे बीळ्कोळिसि केलवुदिवस मिर्पिनं—

नीरसवागे वळिळ गिडुपेर्मरगळ् करयंत्र नाळदिं-
भू रसमेल्लमं तेगेये भानु दवानल धूम धूसरं
कारिरूळंते कण्गे देसे बंदुदु बेसगेगालमस्त का-
सारक सारमस्तमित मारुतनुद्गत चीरिकारूतं ।। ८५ ।।

केरेदुवु सीरूडुगळ् पे-ॐर्मरंगळेलेयिक्कि कळले बिळ्दुवु तोरेगळ्
परिगेट्टुवु बेळ्वलोळ्ॐसरळिसिदुवु मरूमारीचिका वाहंगळ् ।। ८६ ।।

सारं किडे पार्थिव परि-ॐवारं देसेगेट्टु पोपवोल् पोदुवु नि-
स्सार सरोजाकरदिं ॐ सारस कलहंस चक्रवाक कुटुंवं ।। ८७ ।।

परिवारमेनिप बहु जलॐचर मरणदिनाद खेदर्दिदेर्दे योडेदं-
तिरे कूडे बीडेवरिदुवु ॐनिरंतरोत्तपन तापदिं पेर्गेरेगळ् ।। ८८ ।।

उरिवरिव बिसिल् सुडे सी-ॐकरिवोदुविवेनिसि तुंबियुं कोगिलेयुं
मरगळेलेवरेगळोळ् मे- ॐ य्गरेदुवु पडुनेसरप्पिनं बेसगेयोळ् ।। ८९ ।।

---

दिन शुभ मुहूर्त में—वज्रकर्ण ने अपनी आठ कन्याओं को और अन्यों ने अपनी बेटियों को (इस तरह) कुल तीन सौ युवतियों को, लक्ष्मण को देकर विवाह करवाया। ८४ —इस तरह दशपुर में रहकर सिंहोदर उज्जैन लौटकर कुछ दिन वहाँ रह रहा था कि—अपने प्रखर किरण-रूपी हाथों से सूर्य-भगवान् द्वारा पृथ्वी का रस चूसने के कारण, संसार के पेड़-पौधे लताएँ सब के सब रसविहीन हो गई; जहाँ देखो वहाँ (सर्वत्र) दावाग्नि का धुवाँ उठकर व्याप्त कालरात्रि के समान ग्रीष्मऋतु प्रविष्ट हुई। सूर्यास्त के पश्चात हवा के न चलने के कारण क्रिमि-कीटों का चीत्कार बढ़ गया। ८५ विशेष प्रकार के कीड़े बोल उठे; पेड़ के पत्ते झड़ गये; नदियों का पानी सूख गया; खेत-प्रदेशों में मरुभूमि के समान मृगजल दिखाई पड़े। ८६ शक्ति घटने पर जिस तरह क्षत्रिय परिवार (सेना) दिशाभ्रष्ट हो जाते हैं उसी तरह सूखे सरोवर के हंस, चक्रवाक पक्षियों के परिवार उड़ गये। ८७ धूप की गर्मी से बड़े-बड़े तालाब फट कर ऐसे प्रतीत हुए मानो अपने परिवार-रूपी जलचरों के मर जाने के दुःख के कारण उनका हृदय फट गया हो। ८८ गर्मी के बढ़ानेवाली धूप के कारण अपने परों के जल जाने के भय से भ्रमर, कोयल आदि संध्या तक पेड़ के पत्तों की आड़ में छिप गये। ८९ —सूर्य ने यह सोच कर कि यह (पृथ्वी?)

पिडिदिर्दे नलमेयिदीकेयुमेनगे करं कूर्पळेवी विवेकं
किडे जन्मावासमं पीडिसि नळिनिगे निष्कारणं काय्दु नोवं
पडेदं चंडप्रभं वारुणियननुदिनं सेविसुत्तिर्दराग-
क्कॆडॆगॊट्टुन्मार्गदॊळ् वर्तिसुव कुवलय द्रोह नेगॆय्दुतोरं ॥ ९० ॥
विकारमिनिसिल्लॆनल् मॆरॆदु बाह्यसामग्रियि-
दकार्यपरनागियुं परम योगियिपंर्ददि-
दकंपित शरीरनिर्द्दु जलाशयोपांतदॊळ्
वकं दर निमीलितांबकनशेप दोषाशयं ॥ ९१ ॥
भुवनजन प्रसन्न कमलाकर निन्न परार्थ जीवनं-
तवुतरे तीव्र काल वशदिंदमे नीरसमाय्तु नीरजं
कुवलयमप्पुकॆय्दुदु विषादमनंचॆगे खेदमाय्तु पो-
दुवु पींणर्वेविकगळ् विकळमादुवु मीन कुळीर कोटिगळ् ॥ ९२ ॥
मृग कुलमासॆगॆय्दु मृग तृष्णिकॆयं जलमॆंदु तृष्णॆयि
पगलिळिवन्नेगं परिदु गंटलुरंबरमारे वेंदॊवल्
तॊगळिगॆ वीळॆ बाय्गॆ करिसं बरे नालगॆगिळ्तु नट्ट दि-
ट्टिगळॊडनळ्ळॆ पॊय्यॆ नडॆगॆट्टवु तृष्णॆयिनारॊ वेयदर् ॥ ९३ ॥
दिनकर तीव्र तापमुरियॆण्णॆवोलळ्वे शरीर तापदिं
वनरुहं षंडमं तुरिपदिंदॊळत्रीक्कु कडंगि किळ्तदं

उसे प्यार करेगी; लेकिन वह विश्वास झूठ निकला। जन्मस्थान (पूर्व दिशा) को पीड़ा देकर, अकारण ही कमल की प्रतीक्षा कर, अकारण ही पीड़ा पाकर सूर्य हर रोज़ मदिरापान के पागलपन का शिकार बना। ९० किंचित भी विकार के बिना, बाह्याचार से दुष्टकार्यों में निरत-सा दिखाई देने पर भी, योगी-श्रेष्ठ-सा अचल हो, सरोवर में मूंदी आँखों वाला बकपक्षी सुशोभित हो रहा था। ९१ हे जगत् को आनंद प्रदान करनेवाले सरोवर, तुम्हारा परोपकारार्थ जीवन क्षीण हुआ तो तुममें जन्म लेकर खिलनेवाला कमल रसहीन हुआ; कुवलय (नीलकमल) दुःखी हुआ; हंसपक्षी खिन्न हुए; चक्रवाक उड़ गये; जलचर (मछली आदि) कलाहीन (निर्जीव-से) हुए। ९२ प्यास के मारे मृगमरीचिका को पानी समझ कर, मृगसमूह दिन भर (दिन समाप्त होते तक) चल-कर गले सूख गये और रोयें जलने लगे; जीभ (का पानी) सूख जाने पर एकटक दृष्टि से देखने लगे; पसलियाँ धड़क रही थीं और चलने में असमर्थ होकर रुक गये। प्यास के मारे कौन त्रस्त नहीं होता? ९३ सूर्य का ताप खौलता तेल की भाँति जल रहा था कि अपने शरीर की

मुनिसिनळुर्केयं पगेय नंटरोळं कडुकेय्दु तोर्पवोल्
वनगजमोट्टिकोंडुदु मृणाळिकेयं निजमूर्ध पिंडदोळ् ॥ ९४॥
तपनातपदिं चेष्टा-*क्षपणेयनोळकोंडु कोळ्मिगं बेळ्मिगमा-
त्म पुरोभागदोळिर्दों ड-* मुपशमिसिदुदोळ्पनीगुमातपयोगं ॥ ९५॥
उद बिदुगेत्तु गिरि सा-*नुदेशदोळ् काय्द बिदिर पोसमुत्तं नं
गिद सोगेबिडणं मरू- *गिदुवुंडिगे बेये केंडमं नुंगिदवोल् ॥ ९६॥
कविकांतोपल वह्नियिंदडविगळ् भस्मावशेषंगळा-
दुवरल्वोदुवु बेट्टुगळ् नदनदी द्रोणी जलं कासिदे-
ण्णेवोलुर्वेळ्दुवु मूषेयिट्ट तेरदिं ग्रावस्थलं लोहवा-
दुवु रेणुस्थलि काजुविळ्दुवु निदाघ द्राघिमोद्रेकदोळ् ॥ ९७॥
बहुतापक्के बिगुर्तु विष्णुपडेवं मत्स्यावतारक्किनं
तुहिनादींद्रमनोत्तुकोंडु नडेवं देवर्कळाग्नेयमें-
दुहविर्भागमनोल्लदिंदुकलेयं कोळ्वर् मृडं पार्वती
स्पृहेयं बिट्टु मरुत्तरंगिणियनंदालिंगनं माडुवं ॥ ९८॥
अंततिप्रबलमाद निदाघ समयदोळ्—
दिनमं केलवं दशरथ-* तनुजर् दशपुरदोळिर्दु पोगलोडं नों-
दनदर्के वज्रकर्णं * बिनीतरुत्तमरगळ्केयं सैरिपरे ॥ ९९॥

---

उष्णता का उपशमन करने के लिए जंगली हाथी, अपने शत्रुओं से बदला लेने की प्रवृत्ति रखनेवालों की भाँति, क्रोध से सरोवर के कमलों को उखाड़ कर कमलनालों को अपने माथे (कपाल) पर रखने लगे। ९४ धूप की उष्णता के कारण, दुष्ट मृग ने अपनी सहज चेष्टाओं को त्याग दिया और अपनी घातक-क्रियाओं को भुला दिया। धूप का ताप किसके गर्व को नहीं मिटाता ? ९५ पर्वतप्रदेश की तप्त बाँस के नये अंकुरों को भ्रमवश पानी की बूँदें समझ कर निगलनेवाले मयूरसमूह ने जलती अग्नि को निगल कर गला जला लिया हो। ९६ सूर्यकांतशिलाओं की आग से जंगल राख बन गये; पर्वत जल गये; नदी-समुद्रों का पानी उबाले जानेवाले तेल की तरह खौलने लगा; पत्थर पिघलकर लोहा बन गया; धूप की उष्णता की अधिकता असह्य हुई। ९७ इस तरह की गर्मी से डर कर विष्णुजी मत्स्यावतार लेते हैं। सूर्य स्वयं हिमाचल प्रदेश की ओर बढ़ता है। देवता गर्मी का अनुभव कर हविष्यान्न न चाह कर चंद्रकिरण-ज्योति की माँग करते (चाहते) हैं। ९८ —इस तरह कठिन गर्मी के दिनों में—दशरथकुमार कुछ दिन दशपुर में रहकर चला गया तो वज्रकर्ण मन ही मन दुःखी हुआ। विनम्र स्वभाव के व्यक्ति सज्जनों के अलगाव

अंतु सीता समेतं रामलक्ष्मणर् दक्षिणाभिमुखरागि वल्लडविय बट्टेविडिदु नडेवेडेयोळ्—

राघवनेन्नं तृणदि- ✻ लाघवमेने बगेदनेंब मनदुम्मळदिं-
दाघमनोळकोंडंते नि-✻ दाघद मुंबगले तळेदुदिळे कडुगाय्वं ॥१००॥
इनकुल साम्राज्य श्री ✻ तनगल्लदे ताळ्दरिददं रामं त-
न्ननुजंगोप्पिसि बंदोडे ✻ कनल्दवोल् चंडभानु बिसुपं तळेदं ॥१०१॥

इळेयं ताळ्दिद सत्वदिंदमेनगं बिल्लाळगळेवेवर्दि
वळ नारायणरं निसर्ग चपलं दावाग्नि धूम ध्वजं
झळमं मेले कडंगि पोय्दुमिळिकेय्देनानुमं कीरि चा-
वळिपंतादुदु जीर्ण पर्ण परुष प्रध्वानदिं मारुतं ॥१०२॥
कडुविसिलुर्चे कोमल लता तनु वंवलबाडे नाडे नी-
रडसि वळल्दु वर्प पददोळ् जनकात्मजे मुन्ने विट्टु बं-
दोडे त्रिडदुर्वरा रमणि वेन्नने बंदपळेंब शंकेयं
पडेदु रघूद्वहंगे पडेदळ् गमनश्रम खिन्ने खेदमं ॥१०३॥

अंतेंतानुमेय्देवंदुज्जयिनिय पडुवण पेर्वळुवं कळिदु कुरवकमेंब पोळल निकट वट विटपिच्छायेयोळ् सीते सेदेवट्टिर्पुदुं, जलान्वेषण निमित्तं लक्ष्मणं बरुत्तुमिरे—

---

को सह सकते हैं ? ९९ —सीता को साथ लेकर, घने जंगल के रास्ते से दक्षिण की ओर चले जा रहे थे कि—ग्रीष्मऋतु को इस बात का दुःख हुआ कि श्रीराम ने उसे तृणवत् (तुच्छ) समझा है। प्रतिकार (वदले) की भावना से दिन उगने से पहले ही पृथ्वी तपने लगी। १०० सूर्यवंश के साम्राज्यभार को संभालने में राम के अतिरिक्त और कोई समर्थ है ? उस साम्राज्य को छोटे भाई को सौंप आने के कारण राम के प्रति कुपित हुआ-सा सूर्य (अधिक) तपने लगा। १०१ पृथ्वी के रक्षक इन बलनारायण राम-लक्ष्मण को ही अपना प्रतिपक्षी समझकर निसर्ग चपल स्वभावी दावाग्नि धूम्रध्वजी चंडमारुत ने तीव्रगति से बहकर, पेंड़ के पत्तों को गिराकर, धूप के ताप को बढ़ाकर, किसी तरह उनके शौर्य में वाधा डालने का प्रयत्न कर रहा था। १०२ तीक्ष्ण धूप के कारण सीता का लता-सदृश कोमल शरीर मुरझा गया। थकान और प्यास का सहन करते हुए मार्ग चलते समय राम इस विचार से कि सीता कहीं यह न समझ बैठें कि वह पीछे छोड़ दी गयी है, रुक जाता और सीता उसके हो लेती। १०३ —इस तरह चला आकर उज्जैन की पश्चिम दिशा में स्थित जंगल को पारकर, कुरवक नामक नगर के पास के पीपलवृक्ष की छाया में पहुँचे तो

वनमोंदिर्दुदु मुंदे कंतु वन दुर्गाकारदिंदल्लि त-
द्वनलक्ष्मी मुखदंते नीरज वनं चेल्वाय्तदं कादु यौ-
वनदृप्तर् केलरिर्दरल्लिगे दळन्नीलातसी चंकन-
त्तनु तोयाहरणार्थि वंदनभयं सौमित्रि शत्रुंजयं ॥१०४॥

आगळल्लि—

परपुष्टदंते पुगलें-* वर मातं मीरि लक्ष्मणं वोक्कुसरो-
वरमं मोगेदं जलमं* सरोज विस्तीर्णपर्ण पुटिका हस्तं ॥१०५॥

अंतु नीरं मोगेदु पूगोळनं पोरमडुवुदुमासमयदोळ् पिडियनेरि कामन कैपिडियंते वरुतुं कण्वोलदोळ् तन्नं कंडु कण्वेटंगोंडु कूरंकुसद पोळेपिनोडने पालोळ् तोळेद कुडुमिंचिन गोंचलंते पोळेदु सोलदिंदेळसि सुळियिसुघ कडेगण्ण नोटदिं माटद गंडवरिजेंदरिदी वेषमनिदळिदेके ताळ्दिदळेंदरियलवसरं गोट्टिरे मुट्टेवंदु—

मनदोडनेय्दकोयिं परियें कण्णडे नोडि मृगाक्षि वारिजा-
क्षनकडुगाडियं पुरुष वेषद राज तनूजे कंतु मो-
हन शरमुर्च्चे घर्मजल कुट्मलमुं पुळकोद्गमंगळुं
तनुलतेयोळ् पोदळ्दोदवे ताळ्दिदळुत्कळिका विळासमं ॥१०६॥

---

सीता वेहोश हुई। लक्ष्मण पानी ढूँढता हुआ आ रहा था कि— सामने से एक वन दिखाई पड़ा। वह मन्मथ के उद्यान के समान था। सुशोभित कमलों का वन वनलक्ष्मी के वदनारविंद के समान था। उसमें विचरण करनेवाली युवकयुवतियाँ अपने रूपसौंदर्य से सुशोभित थीं। वहाँ, प्यास से छटपटाता हुआ, शत्रुविजेता लक्ष्मण आया। १०४ —तब—वहाँ न आने का निवेदन करनेवाले कोयलों की आवाज़ को अनसुनी करता-सा लक्ष्मण सरोवर के पानी को अंजली भर-भर कर पीने के पश्चात् वहाँ के कमलपत्तों को लेकर विश्राम करने लगा। १०५ —इस तरह अंजली भर कर सरोवर से ऊपर आ रहा था कि उस समय हथनी पर चढ़कर, कामदेव के दर्पण-सदृश रहनेवाली तिरछी नज़र देखकर, लालायित होकर तीक्ष्ण अंकुश के प्रकाश के साथ दूध से धोयी हुयी विद्युतलता-समूह-सा सुशोभित सौंदर्य से मोहित होकर, इच्छाभरी दृष्टि से देखकर, पुरुषवेश जानकर, इस आतुरता से कि इस (स्त्री) ने इस वेश को क्यों धारण किया होगा, पास आया और—मन के साथ साथ दृष्टि भी चली और हरिणी के समान आँखोंवाली पुरुषवेष की राजकुमारी लक्ष्मण के मनमोहक रूप को देखा तो कामदेव के बाणों के आघात से मोहित हुई, पसीने की बूंदे दिखायी पड़ीं

अंतु कंतुशरमुर्चे बेंचि शरणगे बर्पंते वाहनदिंदिळिदु बंदीतना- देशपुरुषनेंदरिदु निश्चैसि बीडिंगे बिजयंगेय्यिमेंदु कैयं पिडिदोडगोंडु पोगि हंसतूलतल्पदोळ् कुळ्ळिरिसि तानुमोडनेये कुळ्ळिर्दु नीमार्गे- निमित्तमिल्लिगे बिजयंगेय्दि रेंबुदु, लक्ष्मण देवनेंदनेंदनेम्म वृत्तांतमं वळिक्के तिळिय वेळ्दपेनीगळेम्मत्तिगे नीरडिसि बळल्दिर्दोडेम्म- ण्णन बेसदिं जळाशयमनरसि बंदेनदरिनिदवसर मल्लेंबुदुमाबेस क्काने साल्वेनेंदु कण्गरगद नीर्वेरसु कोलर्दोळिर्दे कोळदियरनट्टुवुदु- माकेगळवरिर्दल्लिगे पोगि, हिमसलिलदिं गमनश्रममनारिसि मुंदि- ट्टोडगोंडु बंद मज्जन भोजनादि सत्कारमं मेरेवुदुमाकन्नेय जननियप्प पृथ्वीमति महादेवि निज परिजनमं पोगल्वेळ्दु कट्टेकांतमं माळ्पुदुं, जनतिय कण्णरिदु कन्ने तन्नमुन्ने तोट्ट गंडवच्चमं कळेदु कटक कटिसूत्र विचित्राभरणादि दिव्यवस्तुगळिंदलंकरिसि—

रूप परावर्तन वि- * द्या परिणतियिंदमतनु रतियादवोला
रूपवति पुरुषवेषं * पोपुदुमर्चिसिद कैदुविर्पतिर्दळ् ॥१०७॥

और रोमांचन हुआ। वह कौतूहल चित्त हुयी। १०६ —यूँ कामबाण लगा तो भयभीत होकर शारणागत होती-सी, रथ से उतरकर, पास आकर, स्पष्टत: यह समझकर कि यह (लक्ष्मण) कारण पुरुष ही है, राजमहल में पधारने का निवेदन कर, हाथ पकड़कर, साथ चलकर हंसतूलिका तल्प (शय्या) पर विठाकर, स्वयं भी साथ वैठकर पूछा, 'आप कौन है, किस कारण से आपका यहाँ आना हुआ ?' उत्तर में लक्ष्मण ने कहा—मेरे यहां आने के कारण का विवरण वादमें बताऊँगा। मेरी भाभी प्यास से तड़प रही हैं। भैय्या के आदेशानुसार पानी को खोजता हुआ यहाँ आ गया हूँ। यह अवसर मेरे वारे में वताने का नहीं है। इतना सुनकर उसने तुरन्त अपनी सेविकाओं को शुद्धजल के पात्रों को उनके (राम-सीता) पास भिजवा दिया। तत्पश्चात् राह चलने की थकावट को ठंडे पानी से शमनकर, राम-सीता को आगे रखकर, साथ में राजमहल में आकर स्नान-भोजन सत्कार किया तो उस राजकन्या की माता पृथ्वीमतिदेवी भी अपने परिजनों को (वाहर) भेजकर एकांत में रही। तब माता के संकेत को समझकर वेटी ने अपने पहने हुए पुरुषवेश को त्याग कर स्त्री-सहज वेश से अपने आपको सजाकर—जिस तरह रूप को भुला देने की मायाविद्या से देहरहित व्यक्ति सुन्दर युवती वन सकता है, उसी तरह वह रूपवती युवती सुन्दर रूप के कारण कामदेव के वाणों की तरह दिखाई पड़ी। १०७ उसकी चाल हंसगति के समान थी, लतांगी सीता को उसके प्रति सहानुभूति

क्रम विक्षेपदिनंचेंगे ॐ समनिसे दैन्यं लतांगि सीतेगे. चेल्वि
समनधिकवेंब कौतुक ॐममर्दिरे नडेतंदु पार्श्वदोळ् कुळ्ळिर्दळ् ॥१०८॥

अंतु सीतेय समीपदोळ् कुळ्ळिर्पुदुमासमयदोळ्—

आ नगेगणगळा निमिर्द पुर्बुगळा नळितोळ्गळा सरो-
जाननवा मदाळिकुळ कुंतळवा कळहंस यानवा-
पीन कुचंगळा क्षणदोळीक्षणमं सेरेगेय्ये क्ष्मणना-
मानिनिगित्तु तन्नमनमं मरवानसनंते तोरिदं ॥१०९॥

आ समयदोळ् दाशरथि पुरुषवेषमी कन्नेगेकारणवादुदेने जगज्जनकंगे तज्जननि कैगळं मुगिदी कुरवकपुरमनाल्वं वालखिल्यनेंबनेम्मरसनातन मेले विंध्याटवियोळिर्पनवंध्यकोपं रौद्रभूतियेंबं म्लेच्छराजनसंख्यात किरात वलंबेरसेत्ति बंदु नाडुंबीडु सिंहोदरं केळ्देम्मरसन पुत्रकनेंदु तानीदेशमं स्वीकरिसलबगेदोम्म मंत्रिमुख्यं वालखिल्यनरसि गर्भिणियेंदु बिन्नविसुवुदुमदनात नवधारिसि संतोषमंबट्टु गर्भद कूसु गंडुकूसादोडातने नेलक्कोडेयनेंदोडंबडुवुदुमातनु कैलवानुंदिवसदिंदीकन्निकेयं पडेये मंत्रिमुख्यं अरसि

---

हुई। कौतूहल से देखनेवाले समझ नहीं पा रहे थे कि इन दोनों में से कौन अधिक सुन्दर है। ऐसे में वह आकर सीता के बगल में बैठ गयी। १०८
—इस तरह सीता के बगल में बैठी तो—मुस्कराती वे आँखें, सुन्दर भौहें, वे कोमल हाथ, कमलसदृश वह मुख, भ्रमरपंक्तियों को स्मरण दिलानेवाली वह केशराशि, हंसगति-सदृश वह चाल और भरे कुचद्वय ने क्षणभर में दृष्टि को आकर्षित किया तो लक्ष्मण उसपर मोहित हुआ। १०९
—तब पृथ्वीमति से राम ने पूछा कि इस युवती ने पुरुषवेश क्यों धारण कर रखा था? उत्तर में हाथ जोड़कर कहा—'इस कुरवकपुर के शासक का नाम है वालखिल्य। विंध्याटवी के रौद्रमूर्ति नामक म्लेच्छराजा ने, जो अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध है, असंख्यात किरात सेना के साथ आकर इस राज्य पर आक्रमण कर, राज्य को बरबाद करके, राजा को बंदी बनाकर ले गया। अवंती के राजा सिंहोदर को यह खबर मिली। यह जानकर कि हमारे राजा (वालखिल्य) की कोई संतान नहीं है, इस राज्य का शासनभार संभालना चाहा। लेकिन वालखिल्य के मन्त्री ने बताया कि रानी गर्भवती है। यह सुनकर खुश होकर सम्मति दी कि अगर जन्म लेनेवाला बच्चा लड़का हुआ तो वही इस राज्य का शासक होगा। कुछ समय के बाद रानी ने इस लड़की को जना तो मन्त्री ने एलान किया कि रानी के गर्भ से राजकुमार ने जन्म लिया है। इसे कल्याणमाल नाम

मगंवडेदळेंदोसगेयं माडि कल्याणमालनेंदु पेसरनिट्टु नडपुत्तिर्पिन- मोंदुदिवसं दिव्यजानिगळं कंडु वालखिल्यंगे बंधनमोक्षमारिंदवकुमेंदु वेसगोळ्वु दुमवरिंतेंदर्—

अळवडे कोंड गंडवरिजं बगेगोंडिरे नोडि नोडिदा-
गळे वधुवेंदु निश्चयिसि कैविडिदातने निम्म खेदमं
कळेदु निराकुलं बिडिसुगुं सेरेयं पेरतेनो काण्विरा
बळयुतनं पुरोपवन षंड समीप सरोज षंडदोळ् ॥११०॥

अेंदरिपुवुदुमंदिदित्तली सरोवरक्के कापं पेळ्दिल्लिये वीडा-गिर्दे वेम्म पुण्पोदयदिं नीवु मिल्लिगे बिजयंगेय्दिरेंदु शोकगद्गद कंठे कण्ण नीरं सुरिये सीतें संतैसे लक्ष्मणं जानकिगे कैगळं मुगिदु—

ईकेय ताय्गुपरामिसुगे ॥ शोकं राघवन कणेगे मणिगुं रणदोळ्
लोकत्रयमेने शवर ॥ पताकिनि पेरतेगेयदेंडरि बिल्देगेयपुदे ॥१११॥
अन्नेवरिमी तनूदरि ॥ मुन्निन तेरदिंदमिर्के वेडर पडेयं
बेन्नट्टि बिडिसि सेरेयं ॥ कन्नेयनां मदुवेनिल्वेनेंदनुपेंद्रं ॥११२॥

अेंदु नुडिदवरनोडंवडिसि वलंबेरसु नट्टिरुळेळ्दुपोगि मेखला तरंगिणियनुत्तरिसि तरदिनेडेयेडेय नाडुगळं कळेदु पोगुवोगे—

---

रखकर आनंद से जीवन विता रहे थे कि एक दिन एक दिव्यज्ञानी से यह पूछने पर कि वालखिल्य कब बंधन से मुक्त होगा तो दिव्यज्ञानी ने बताया कि—जो व्यक्ति इसके द्वारा धारण किये हुए पुरुपवेश को देखते ही समझ जायगा कि यह नर नहीं, अपितु नारी है और हाथ पकड़ लेगा वही दुःख को दूर करके राजा को बंधन से मुक्त करा सकता है। वह कारण पुरुष आपके उपवन के सरोवर में आप को दिखाई देगा। ११० —यह सुनने के पश्चात् तव से लेकर आज तक इस सरोवर की रखवाली के लिए पहरा रखकर हमने भी यहीं डेरा डाल रखा है। हमारे पुण्य से आप यहाँ पधारे हैं। गद्गदित कंठ से ऐसा कहकर आँसू बहाने पर सीता उसे धीरज बँधा रही थी कि लक्ष्मण ने सीता को हाथ जोड़कर कहा—इस माता की चिंता दूर हो। राम के वाणों से डरकर तीनों लोक पीछे हटते है तो यह किरात क्या ठहर पायेगा? १११ तव तक इनकी यह बेटी पूर्ववत् पुरुपवेश में रहे। किरात को हराकर वालखिल्य को बंधन से छुड़ाकर इससे मैं शादी कर लूँगा। ११२ —इस तरह कहकर उन्हें सात्वना देकर, सेना के साथ मध्यरात के समय चलकर, पहाड़ और नदी को पारकर, गाँवों में होते हुए आगे वढ़ रहे थे कि—खेलती हुई लताओं से, जुगाली (पागुर) करते हुए हरिणों से, हाथियों द्वारा आँवला चबाते समय

सरळ लता लास्य नटं *हरिणी रोमंय बंधुरं लवली म-
मर मुखरं करिकर श्री-*कर शीतळमेंसगिदत्तरण्य समीरं ॥११३॥
तांगिदुदु गाळियं देसें * यं गवसणिसिदुदु मेगें मोगेदागसमं
नुंगिदुदेने कळ्तिलिसि क-*रंगिद बल्लडवि कण्गे पडेदुदगुर्वं ॥११४॥

अंतगुर्वुवेत्त विपिनमं पुगुवसमयदोळ्—
तोंडिनोळेम्म पेरडवियं पुगुतंदपरेंदु लुब्धकर्
तंडदे सुत्ति मुत्ते गोलेगोत्तिदने धनुवं सरल्गळं
कोंडने दिव्यबाणधियिनस्खलितं नसुनवकु तन्न को-
दंड कृतांत दंडदोळे मोदिदनोडिसिदं जनार्दनं ॥११५॥

अंतु तम्मकैय बिल्गळि वीळेपोय्ये बेड वडे बेगडुगोंडोडि पोगि तम्माळ्दंगवरळविगळिदळवनरिये पेळ्वुदुमातनतिप्रबल किरात बल समेतं मेलेत्तिबर्पुदुमदं कंडु कडुमुळिदु सौमित्रिलय समयद काळरात्रेयंते सागरवर्तमं जेवोडेये संवर्त सागरावर्त गंभीर घोषदंते चाप टंकार घोषमोदवे केळ्दु रौद्रभूति सामान्यभूतरल्लिवर् कारणपुरुषरेंदु भयचकित चित्तनागि—

---

उत्पन्न सरसराहट की आवाज़ से, शरीर को ठंढक पहुँचाने वाले मंदमारुत के स्पर्श से, सुख मिला। ११३ इस तरह चलनेवाली हवा से टकराकर, ऊपर चढ़कर, आकाश को घेरकर, अंधेरा फैलता-सा, वह जंगल भयानक दिखाई पड़ा। ११४ —इस तरह के भयानक कानन में प्रवेश करते समय—यह सोचकर कि स्वेच्छावृत्ति से विरोधियों ने हमारे वन में प्रवेश किया है, किरातों ने लक्ष्मण की सेना को घेर लिया। तव लक्ष्मण ने अपने धनुप को उठाकर, उसमें मुस्कराते हुए प्रत्यंच खींचकर किरातसेना को ऐसा भगाया मानो यमदंड उसका (सेना का) पीछा कर रहा हो। ११५ —उनके हाथ से उनके वाण छूटकर गिरने तक प्रहार किया तो उससे उद्विग्न हो वे किरात अपने राजा के पास दौड़कर गये और अपनी हार के बारे में वताया। इसे सुनकर वह प्रवल सेना को साथ लेकर आगे वढ़ रहा था कि उसे देखकर लक्षण ने कुपित होकर प्रलयकाल के शिव-सा, सागरावर्त धनुष को झंकृत कर दिया। वह ध्वनि मानो प्रलयकाल के समुद्र गर्जन-सी रौद्रमूर्ति को सुनाई पड़ी तो वह चकित होकर और यह समझकर कि ये सामान्य पुरुप नहीं है, कारण पुरुष है, भयभीत हुआ और सोचा कि—अव मेरी धृष्टता नहीं चल सकती। यह युद्धविद्या-विशारद है, अचल साहसी है, इससे युद्ध न करके अनुग्रह पाना चाहिये।

आग्रहमोप्पदिदेंनगे स-॥ मग्ररोळनिवार्य वीर्यरचलि धैर्यर्
विग्रहमनुळिवेंनिवरोळ-॥ नुग्रहमं पडेवेनेंदु रथदिंदिळिदं ॥११६॥

अंतळवळिदु रथदिंदिळिदुवंदु वलाच्युतर मुंदे निंदु कैगळं मुगिदु मुन्नमेन्नरियमेयिंदिन्नेरमन्नेयमनाचरिसिदेंनिन्निम्म वेससिदं-ददोळे नेगळ्वेनेंदु सर्वांग प्रणतनागिर्पुदुं, लक्ष्मण कुमारनंजदिरेंदभय वचनदिंदवन मनद भयमं कळेदु वळियं नीं सेरेविडिदिर्द वालखि-ल्यनं तडेयदोडगोंडु वायेंवुदुं, महाप्रसादवेंदक्षणदोळे पोगि तर्पुदुमा-तनतित्वरितगतियिं वंदु—

वलनारायण देहवीप्ति तनुवं तळ्कैसे पादानतं
पलकालं सेरेवोगि वेडरोडनोंदागिर्द तद्दोष पं-
किलता क्षालन तत्परं सुरसरित्कल्लोलमं यामुना
जलमं पोक्कघमर्षणं मुळिगिदंतिर्द पुरोभागदोळ् ॥११७॥

अंतु विनतनागि राम प्रेम वचनामृत वर्षदिं हर्षमं ताळ्दि मुकुलितांजलिपुटं मुंदे निंदितेंदं—

अपरिमित सैनिकं सिं-॥ हपराक्रमनेंत्तिबंदु सिंहोदरनें-
न्न पराभवमं पिंगिस-॥ दें पिंगिदं रौद्रभूतिगिदिरांपवरार् ॥११८॥
द्युमणिगे कळ्गेले शरभ-॥क्के मृगेंद्रं सेडेव माळ्केयिं सेडेदनिवं
निमगे समरक्के मिक्कर-॥सुमक्कळं रौद्रभूति लेक्कंगोळ्ळं ॥११९॥

---

ऐसा सोचकर वह रथ से उतरा। ११६ —राम-लक्ष्मण के सम्मुख आकर हाथ जोड़कर वोला, 'अज्ञानता के कारण अव तक मुझसे जो अन्याय हुआ है, माफ़ किया जाय। अव मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। और साष्टांग नमस्कार किया तो लक्ष्मण ने अभयदान देकर उसके भय को दूर किया। उसके वाद यह कहने पर कि रौद्रमूर्ति द्वारा कैदी वनाये गये वालखिल्य को ले आने के लिए कहने पर वह तुरन्त उसे सभा में लिवा लाया। वालखिल्य के तीव्रगति से आने पर—वलनारायण की देहकांति ने चरणकमलों में झुके वालखिल्य के शरीर को जो अनेक वर्षो से किरातों के सम्पर्क के कारण कीचड़ के समान दूषित हो गया था, उसी तरह पवित्र कर दिया जिस तरह गंगा-जमुना कीचड़ को पवित्र कर देती हैं। ११७ —इस तरह झुके हुए वालखिल्य ने राम की वचनामृत-वृष्टि से अत्यन्त संतुष्ट होकर, हाथ जोड़कर कहा—सिंहपराक्रमी सिंहोदर ने अपने अतुल सेनावल के साथ आकर मुझे पराजित किया। कौन उसका सामना कर सकता है? ११८ जिस तरह सूर्य से अंधकार और शरभ (एक कल्पित मृग जो आठ पैरों वाला माना जाता है) से सिंह भयभीत होता है, उसी

ज्या ताडन टंकारदे * भीतियनीतंगे पडेंदु पुर्विन जर्वि-
पो तेंगेवरें नीवल्लद * रीतनकैयेंब जवन बायिदेन्नं ॥१२०॥

निम्मिदादुदु बंधमोक्षमेंनगळ् वृत्तियोळ् जातियोळ्
निम्मि निंदेनपार दुःखभरमं निम्मिदमां नीगिदं
निम्मं कंडु कृतार्थनादेंनिळेयोळ् मुन्नादरिन्नप्पवर्
निम्मन्नर् पेंररारुदात्तचरितर् दुर्वार बाहाबलर् ॥१२१॥

ऍंदु बिन्नविसि नीमेंन्न पुराकृत पुण्यमें रूपुगोंडु बर्यतें बंदिरे-निमित्तमेंनगिनिविरिदुपकारमनोंर्चिदिरेंबुदुं, लक्ष्मणनदेंल्लमं निन्न-पोळल्गें पोगलोंडं नीनेंतिळिदप्पेयेंदु रौद्रभूतियं नोडि बालखिल्यनं मुंदिट्टुय्दु पोळलं पुगिसि नीनीतन पेळ्दुदंगेय्दु सुखदिनिरल्लदोंडे कडुमुलिवेंनेंदु नियमिसि कळिपुवुदुं, रौद्रभूति महाविभूतियिं पोळलं पुगिसे वालखिल्यं रामलक्ष्मणर साहसमं सनाभिजन परिजन पुर-जनक्कें सहस्वमुखदिं स्तुतियिसुत्तुं शुभमुहूर्त्तदोळ् लक्ष्मणकुमारंगें निजकन्नेंयोळ् महोत्साहदिं विवाहमनोंर्डचि सुखदिनरसुगेय्युत्तिर्दनन्नें-

---

तरह यह आपलोगों से भयभीत हुआ है। वह अन्य राजकुमारों की परवाह ही नहीं करता। ११९ धनुष की प्रच्यंचा की ध्वनि से, भौहें चढ़ाकर इसे पराजित कर, यममुख-रूपी उसके हाथ से आपने मुझे बचा लिया है। १२० आपके कारण मैं उस बंधन से मुक्त हुआ। मेरे, जो वृत्ति, जाति और सगेसंबंधियों से अलग या, दु.ख को आपने दूर किया। आप लोगों के दर्शन से मैं कृतार्थ हुआ। परायों की विपत्ति के समय मदद करने की मनोवृत्ति रखनेवाले आपलोग उदारचरित हैं। आपके अलावा इस पृथ्वी में और कौन इतने उदारचित्त हैं? १२१ —आप ऐसा आ गये हैं मानो मेरा पूर्वपुण्य ही रूपधारण कर आया हो। इस तरह अनेक तरह से उसने उनकी प्रशंसा की और उसके यह पूछने पर कि आप लोगों ने मुझपर इतना महान उपकार क्यों किया, तो लक्ष्मण ने कहा यह सारी बात तुम्हारे राज्य में जाने पर तुम स्वयं जान जाओगे। इतना कहकर रौद्रमूर्ति को देखकर आज्ञा दी : तुम इसे इसके नगर में लिवा ले जाकर, इसकी हर बात को शिरोधार्य मानकर, सुख से नहीं रहोगे तो मैं तुमसे कुपित हो जाऊँगा। इस आज्ञा को मानकर रौद्रमूर्ति वालखिल्य को नगर ले गया। वहाँ पहुँचने पर वालखिल्य ने अपने परिजनों और प्रजापरिवार को राम-लक्ष्मण की वीरता का वर्णन कह सुनाया। तत्पश्चात् एक शुभ मुहूर्त में लक्ष्मण को अपनी बेटी देकर शादी करायी और सुख से राज्यभार करने लगा। राम-लक्ष्मण वहाँ से दक्षिण

गमित्त रामलक्ष्मणर् दक्षिणाभिमुखरागि विपिन दोळगने नडेयॆ नडॆयॆ—

भ्रमिताष्टापदमुग्र खड्गमृग संछन्नं जरद्दंदशू-
क मुख श्वास विषाग्नि दग्ध विपिनं मत्तेभ विक्रीडितं
तमदोड्डॆविनॆगं करंगि नभमं नुंगित्तु पापर्द्धि सं-
भ्रम कोलाहल लुब्धकं कलुषितांतस्सिधु विंध्याचलं ॥१२२॥
नॆलनिल्लिदित्तलिलॆंबिनमिनितॆ दिशाघाटमॆंबन्नॆगं क-
ळ्तलॆ चंद्रादित्य तेजक्कदिरदिदिरनॊड्डिर्दुदॆंबन्नॆगं क-
ळ्तलिसुत्तिर्दत्तु काडानॆय कडुपुगळि सिंह संघातदिं पॆ-
र्बुलिविंडि कण्गगुर्व पडॆदु कुलनगस्पर्धि विंध्याचलेंद्रं ॥१२३॥

आ नगोपत्यकदॊळ्—

मलयरुह गंधि मृगमद
तिलकॆ तमाल प्रवाळ कुंतलॆ पुळिन
स्थल विपुल जघनॆ मदगज
विलासवति वनलतांगि कण्गॆसॆदिर्दळ् ॥१२४॥

आ विंध्यनगमं दाटि पोगि ताविय़ॆंब तॊरॆयं पाय्दरुणॆयॆंबग्र-
हारमं पॊक्कदॊंदु गृह्मं पुगुवुदुमागळागृहद विप्रवधु—

---

दिशा की ओर जंगल में चल रहे थे कि—क्रूर शरभ, गैंडामृगों से भरे, भयानक सर्पों के मुँह से निकलनेवाली विषज्वाला से जले जंगल में मदमाते हाथियों के चिघाड़ से गूँजनेवाली आवाज़, आकाश तक व्याप्त होकर सर्वत्र अंधकार ही अंधकार फैलानेवाले बड़े-बड़े पेड़ों के फैलने और किरातों के शोरगुल के कारण विंध्य-पर्वत पृथ्वीपर के समुद्र के समान दिखाई पड़ा। १२२ ऐसा प्रतीत हुआ मानो इससे आगे जमीन ही नहीं है, यही दिशाओं का अंत है। अंधकार सूर्य-चन्द्र की प्रखरता से विचलित न होकर, सामने आकर रोकता-सा जंगली हाथियों के समूह, सिंहों के झुंड, बाघों की टोली के कारण आँखों को भयभीत करते हुए, कुलपर्वतों से स्पर्धा करता-सा विंध्य-पर्वत सुशोभित हुआ। १२३—उस पर्वत में—चन्दन की सुगंधी से, कस्तूरीतिलक से, तमालपत्र के मुख से, मुक्ताफल-लता के बालों से, रेत के ढेर के बीच से, मदमाता हाथी के मध्य से युक्त विलासित वनस्त्री दृष्टिगोचर हो रही थी। १२४ —विंध्याचल को लांघकर, तावी नदी को पारकर, अरुण नामक अग्रहार में पहुँचकर, वहाँ एक घर में प्रविष्ट हुए तो उस घर की सधवा ब्रह्मणी ने—इन अत्यन्त रूपवान पुरुषों को

आदेय रूपरं कं- ※ डादरिसिदळेरलिक्किद सीतेगे शी-
तोदकदिं गमन श्रम ※ खेदमनारिसिदळेनवळ् शुभमतियो ॥१२५॥

अन्नेगमाकेय भर्तारिं निजमंदिरक्के बंदवरं कंडिवरनेकिल्लि पुगलित्तेयेंवर्घ्यं पानीय पलाश कांड कुश कुसुम हस्तनप्रशस्तं कडेनुडियें—

कपिलन कैपेंवातु किविगेय्तरे जानकि पोगि विच्चत्तं-
विपिनदोळिर्पमीगृहदोळिर्पुदरिंदेने केळ्दु लक्ष्मणं
कुपितमनं कटाक्षिसुवुदुं द्विजनीतनवध्यनल्ते सै-
रिपुदनुजातं नीं मुळियलक्कुमे दुर्बलरेननेंदोडं ॥१२६॥

अंदु रघुवीरमल्लितळर्दु पोरवोळलं पेरगिक्कि पेर्वट्टेविडिदु नडेयुत्तुं—

मूल सटाळियिंदमुरगालयमं बहुशाखेयिंदमि-
द्रालयमं पळंचि तममं सेरेगेय्दु हिमक्के कोंबुगो-
ट्टालमनग्र पल्लव कराग्रनिरुद्ध मरुतरंगिणी
कूलमनेय्दिदर् विजित चंडमरीचि मरीचि जालमं ॥१२७॥

अंतेय्देवर्पुदुमा बट निवासियप्पिभकर्णदेवन वरपुण्य प्रभावक्के बेंचि बेगडुगोंडोडिपोगि विंध्याटवियोळिर्प यक्षराजं क्रीडापूतनेंबगे

---

देखकर, आदर से बैठने के लिए आसन दिया। सीता को ठंडा पानी देकर राह चलने की थकान को दूर किया। १२५ —तब उसका पति घर आया। उन्हें वहाँ देखकर उसने पत्नी से पूछा कि इन्हें आश्रय क्यों दिया? हाथ में अर्घ्य, पानीय, दाभ और फूलों के रहते हुए भी उसने बुरी बातें कहीं—कपिल नामक उस ब्राह्मण के दुर्वचन सीता के कानों में पड़े तो वह बोली: हम तुरन्त यहाँ से निकल कर-जाकर जंगल में रहें। यहाँ रहना असाध्य है। लक्ष्मण ने कुपित होकर उस ब्राह्मण को लाल आँखों से घूरा तो राम ने समझाया कि यह ब्राह्मण है, अवध्य है, शांत हो जाओ; दुर्वल कुछ भी कहे, क्रुद्ध नहीं होना चाहिये। १२६ —इस तरह सांत्वना देकर, वहाँ से निकल कर, गाँव को पारकर, पगदंडी से आगे बढ़ते हुए—जटाओं के कारण सर्पों के निवासस्थान के समान, डालियों से इन्द्र के प्रासाद के समान दिखाई दिया। अंधकार को घेरकर हिम के सींग निकला-सा, विशाल व्याप्त पलाश के पेड़ के पासवाले गंगातट पर पहुँचकर गंगा पर गिरनेवाली प्रचंड सूर्यकिरण को देखा। १२७ —राम-लक्ष्मण के आने पर उस पलाश के पेड़पर निवास करनेवाला इभकर्ण

चंड कोदंड धररिर्वन्नावासमं कैकोंडोडानवर देह दीप्तिगल्लि निल-
लळ्कि बळ्कुत्तुं निमगरिपल् वंदेनेंबुदुभवधियिनवरीकालद् वलदेव
वासुदेवरेंबुदुमनवर बंद तेरनुमनरिदवर्गे सत्कारमनोडर्चलेंदु—

क्रीडापूतं पुरमं *माडिदनळकापुरक्कममरावतिगं
नाडेयुमधिकमेनल् मणि *माड प्राकार गोपुराट्टाळकमं ॥१२८॥
पुरद बहिः पुरदंतः* पुरदरमनेयवनिपतिय माडद हयमं
दिरदानेसालेयदं * बरेयल् कंडरिसलरिदु मांडव्यंगं ॥१२९॥
मळेगालं बरेयुं पें- * वेंळुविनोळं यक्षविक्रिया जनितमदें
पोळलादुदों रघुरामन* पळुपळिद पोगळ्तेवेत्त पुण्योदयदिं ॥१३०॥

अंतपूर्वमेने पुरमं विगुर्विसि—

किंकुर्वाण प्रवणररेवर् बर्पिनं कादु तन्नं
बिंकं पोंकं गिडिसे ननेविल्लातनं तोट्ट दिव्या-
लंकारंगळ् नयन सुखमं नीडे बंदर्घ्यमं य-
क्षं कोट्टं राघवन चरणक्किन्नरार् धन्यजन्मर् ॥१३१॥

अंतर्घ्यपाद्यमं कोट्टु कैगळं मुगिदु—

आसन्नं मळेगाळमेन्न पुरदोळ् नीमन्नेगं दिग्जय
व्यासंगार्थिगळागदिर्दु चरितार्थमाळ्पुदेन्नं परा-

---

इनके पुण्यप्रभाव से डरकर, विंध्याचल में रहनेवाले क्रीडापूत कमक यक्षराज से कहा कि दो भयानक धनुर्धारियों ने मेरे निवासस्थान पर आक्रमण किया। मैं उनकी देहकांति से डरकर वहाँ न रहकर, आपसे कहने के लिए चला आया। क्रीड़ापूत ने अपनी अन्तर्दृष्टि से समझ लिया कि वे आगंतुक इस युग के बल वसुदेव हैं। उनका सत्कार करने के विचार से—अपने नगर अलकावती के मंजिलवाले महलों, प्राकारों और अट्ट-लिकाओं को रत्नों से ऐसा सजाया कि वह अमरावती के समान सुशोभित हुआ। १२८ नगर के बाहर, भीतर, अंतःपुर, राजमहल, गजशाला, घुड़साल आदि को अत्यन्त धूमधाम से, अद्वितीय ढंग से सजाया। १२९ श्रीराम के प्रसिद्ध पुण्योदय से कानन ही मानो नगर बन गया। यक्षों के कौशल ने निर्जनप्रदेश को शहर बना दिया। १३० इस तरह अपूर्व प्रकार से नगर का शृंगार कर—दिव्यवस्त्रा-लंकारों की शोभा में कामदेव को भी मातकर, दर्शकों की आँखों को सुख प्रदान करनेवाले श्रीराम को यक्ष ने अर्घ्य चढ़ाया। १३१ —अर्घ्यपाद्य देकर, हाथ जोड़कर—वर्षाऋतु, जो अभी-अभी प्रारम्भ हुई है, को मेरे

थसीनं निजवृत्तमेंदु नुडिदेंतानुं प्रियप्रार्थना
व्यासंगार्थि नरेंद्रनं निलिसिदं यक्षं परार्थप्रियं ॥१३२॥

अंतेंतानुं निलिसि तन्न विगुर्विसिद पुरक्कुय्दु—
अरमनेयोळ् बहुविध परि-
कर पूर्णदोळिरिसि माडिदं यक्षं दि-
क्करि कर्ण कुहरवं पट
हरवं तळ्पोय्ये रघुसुतंगभिषवमं ॥१३३॥

अंतु राज्याभिषेकंगेय्दु—
बेडदे बेळ्वनितुमनेडे * माडदे पदनरिदु तीर्चि पर्यष्टियलं
पोडदे रामंगोळ्पं * माडिदनुचितोपचार दक्षं यक्षं ॥१३४॥

मत्तित्तला कपिलनेंदिनंददिना विपिनदोळ् तोळलुत्तुं—
ऍनगाडुंबोलनी का- * ननविदरोळगिन्नेवरेगमां काणें लो-
चन हृदय हारि पुरमों-*दनिदं कंडें दलेंदु विस्मितनादं ॥१३५॥

आ समयदोळ् समयाभिदान यक्षि प्रत्यक्षमागे परोभागक्के
बरे कपिलं कंडब्बा ! पेळीपुरक्के पेसरावुदिदर्कपतियारेंबुदुं—
रामपुरमेंबुदिदु रघु-*रामं पुरदोडेयनखिल वसुधेगे कल्पा-
राममेने कोट्टपं वसु-*धामर नीं पोगि बेडिकोळ् कसवरमं ॥१३६॥

---

नगर में ही बितावे। मुझे आप सब लोगों की सेवा करने का मौका दे (मेरी सेवा स्वीकार करें), ऐसा निवेदन करके अपने व्यवहार से, अपने स्नेह की बातों से, उनके मन को प्रसन्न करके यक्ष कृतार्थ हुआ। १३२ —तत्पश्चात् उन्हें सजे हुए अपने नगर में ले जाकर—राजमहल में विभिन्न प्रकार से, धूमधाम से, श्रीराम को बिठाकर, दिग्गजों के कर्णफूल को बेधता-सा मंगलवाद्यों के साथ अभिषेक किया। १३३ —राज्याभिषेक करके—राम के कुछ न चाहने पर भी समय-संदर्भ के अनुसार अपनी सेवा के औचित्य को समझकर, चतुर यक्षपति ने राम की पूजा की। १३४ —इधर अग्रहार का कपिल रोज़ की भाँति इस जंगल में आया—देखा तो आश्चर्यचकित होकर सोचा कि यह जंगल मेरा खेल का मैदान बन गया है। यहाँ अब तक कभी मैंने किसी मनोहर नगर नहीं देखा था। १३५ —उस समय समय नामक यक्षिणी प्रत्यक्ष होकर उसके सामने आयी तो उसने पूछा, इस नगर का नाम क्या है? इसका राजा कौन है? उत्तर में यक्षिणी ने कहा—यह रामपुर है। इसके राजा हैं राम जो जग के कल्पतरु के समान हैं। ब्राह्मण! उसके पास जाकर अपने इष्टार्थ का

ऎनॆ कपिलं विषण्णनप्पुदरिं देवतॆगॆ कैगळं मुगिदु—

ऎनगवनीश दर्शनदुपायमनंविकॆ पेळिमॆंबुदुं
जिनगृहमिर्दुदी पुरद पूर्वत्रिभागदॊळिर्दरल्लि स-
न्मुनिपरुपासक क्रमदिनल्लि दृढव्रतनागि पोदॊडा
मुनिवरराज्ञॆगड्डविसरल्लिय कापिन यक्षराक्षसर् ॥१३७॥

ऎंबुदुमायक्षि बॆससिदंददॊळॆ वसदिगॆ बंदु जिनमुनिगळं कंडु धर्ममं बॆसगॊंडु लघुकर्मियप्पुदरिंदॆ दर्शन शुद्धनुमणुव्रत धारियुमागॆ ऋषिनिवेदकनॊडनॆ पोगि गंधोदकमनुय्दु कॊट्टु रघुवीरंगिच्छाकार-पूर्वकं सर्वांग प्रणतनागि काण्बुदुमातं व्रतक्कॆ वंदुदर्कॆ मॆच्चुगॊट्टु कळिपि—

ऎरगदॆ बाळ्गॆगॆट्टॆडॆगॆ पॊम्मळॆयं धरॆगाव कालमुं
करॆदु परार्थवृत्तियॊळॆ पावनमागिरॆ तन्न जीवनं
तॊरॆदु कळंक पंकिलतॆयं मळॆगालद सॊंपनॆळिसल्
नॆरॆदनुबंधमं मॆरॆदनच्चरि लांगलपाणि सीतॆयॊळ् ॥१३८॥

अंतु रामलक्ष्मणरा यक्षन विनयोपचारदिं समाहित मनस्कर-ल्लिर्पुदुं—

निवेदन करो। १३६ —इसे सुनकर विषाद से कपिल का चेहरा मुरझा गया और उसने हाथ जोड़कर यक्षिणी से कहा—देवी यक्षिणी कृपया बतावें कि राजा के दर्शन का उपाय क्या है? उत्तर में यक्षिणी ने कहा इस नगर के पूरब में जिनगृह है, वहाँ अनेक धर्मोपदेशक मुनी रहते हैं। अगर तुम वहाँ व्रतनिरत होकर उनकी आज्ञा का पालन कर सको तो वहाँ के पहरेदार यक्षराक्षस तुम्हें किसी तरह का कष्ट नही देंगे। १३७ —यक्षिणी के बताये हुए मार्ग से जिनमंदिर में आकर, जिनमुनियों से मिलकर, धर्म को समझकर, लघुकर्मी होने के कारण दर्शनशुद्धि और अणुव्रतधारी (अणुव्रत—जैन शास्त्र के अनुसार गृहस्थधर्म का एक अंग) बनने के निमित्त जिनमुनि के साथ जाकर गंधोदक ले आया; रघुराम को साष्टांग नमस्कार किया और व्रतबद्ध होने से प्रसन्नता व्यक्त करके लौट— दुर्नीत व्यक्तियों को सिर न झुकाकर, पृथ्वी पर सदा सुवर्णवृष्टि करके परायों को उपकार करने में जीवन की सार्थकता समझकर, अपकीर्ति को त्यागकर वर्षाऋतु के समान राम-सीता के सामने सुशोभित हुआ। १३८ —इस तरह यक्षके विनयोपचार से संतुष्ट होकर राम-लक्ष्मण वहाँ रह रहे थे कि—कलियाँ फूल बन गईं; कुंदपुष्प खिल गये; केवड़े विकसित हुए; चातक पक्षी चेत गये; हंस

मुगुळ तॊडंबॆ गंटॊडॆयॆ मॊल्लॆगॆ बॆळ्सुळि पुट्टॆ पुट्टॆ कॆ-
दगॆगळ सॊर्वु चेतरिसॆ चादगॆगं चिरमागॆ रागमं
चॆगॆ किरुवीलि कण्दॆरॆयॆ सोगॆगॆ तण्णसुवुट्टॆ बॆट्टवॆ-
सगॆय विसिलगॆ तीडिदुदु तण्णनॆ पण्णनॆ पश्चिमानिलं ॥१३९॥

परितापं किडॆ पुळकां*कुरमॊदवॆ लतांगदॊळ् नदी लोचनॆगु-
र्वॆरॆगानंदाश्रुगळु- *व्वरमादुवु पश्चिमानिलं सोंकलॊडं ॥१४०॥

पसुर्गविलनाद नीपद * कुसुममुमं दॆसॆगॆ कंपनॆत्तुव लोध्र
प्रसवमुमं सूळ्सूळॊळ् * पसवट्टंददॊळॆ मुसुरि मुत्तिदुवळिगळ् ॥१४१॥

अंतु घनसमय प्रवेशमखिल जनमनोविकासक्कवकाशमागॆ—
अपरांभोराशि वेळावनममरपुरोद्यानमं नोडलॆळ्तं-
दपुदो नीलाचलंगळ् कुल परिभवमं पिंगिसल् नाकलोका-
धिपनॊळ् मेलॆत्तिकादल् नॆरॆदुवॊ बुडबाभीतियिं मेण् शरण्बॊ-
क्कपुदो नीराकरं व्योममनॆनॆ नॆगॆदत्तंदु नीलाभ्रजालं ॥१४२॥

पडुवण कडलिंदॊगॆदुदु
वडवाग्निय पॊगॆ पॊदळ्दु किडिवॆरसॆनलॆं
कुडिमिंचुवॆरसु गगनम
नडर्दुदॊ नीरंध्र नीलनीरद निवहं ॥१४३॥

---

पक्षियों में उत्साह भर गया; कोयलों ने अपने लघु परों को फैलाया और पहाड़ियों में ठंडी का संकेत मिलने पर ग्रीष्म की धूप को ठंडा करती-सी पश्चिम हवा बहने लगी। १३९ इस तरह (ठंडी) हवा के बहने से गरमी की अधिकता दूर (कम) हुई और लताओं में कलियाँ निकली, नदियों में पानी बढ़ने के साथ लोगों का आनंद भी बढ़ गया। १४० हरा और कपिलवर्ण के कदंबवृक्ष के फूलों को और दिशाओं में अपनी सुगंधी फैलाने-वाले लोध्रपुष्पों को भ्रमरों ने सेना के समान घेर लिया। १४१ —इस तरह वर्षाऋतु के आगमन ने लोगों के मनोविलास को अवसर दिया—आकाश भर में फैले हुए नीलबादलों को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो पश्चिमसमुद्र-रूपी वन स्वर्ग के उद्यान को देखने आ रहा है या मानो नीलपर्वत अपने रूढ़िगत कष्टों के निवारण के लिए इंद्र से लड़ने के लिए तैयार खड़ा हुआ हो, या मानो बड़वाग्नि के डर से समुद्र आकाश की शरण गया हो। १४२ पश्चिमसमुद्र में बड़वाग्नि का धुवाँ उठा; बिजली के साथ नीलमेघ आकाश पर ऐसा चढ़ने लगे मानो समुद्र में चिनगारियाँ भड़क रही हों। १४३ जलती हुई बड़वाग्नि का धुवाँ फैलने के कारण

पॊत्तुव वडवाग्निय पॊगॆ
सुत्तिदॊडुम्मळिसि कण्गि पडुवण कडलॊळ्
नित्तरिसदॆ नडॆदुवु जल
मत्तद्विप घटॆगळॆनिसिदुवु घन घटॆगळ् ॥१४४॥

इदमोघं मेघकालं वरॆ गगन गृह द्वारदॊळ् तोरणं क-
ट्टिदुदो मेण् पंचरत्नावळि विलसितमं कंठिकामालॆयं ता-
ळ्दिदळो दिग्देवि मेण् रत्नद पॊरजॆ नवांभोद माद्यद्गजकि,
क्किदुदो पेळॆविनं कण्गॆसॆदुदु शवलच्छायॆयिं शक्रचापं ॥१४५॥

अनंतरं—

वसुधावल्लभॆ मेघकाल विटनॊळ् संभोगमंमाडॆ ब-
ण्णसरं पोर्कुळियिंदले परिदु सूसित्तल्लदंदॆत्तणिं
पॊरुमुत्तु किसुगल्गळुं कॆंदरि कण्गिबादुवॆंबंतदे-
नॆसॆदॊप्पिर्दुवॊ सूसिदालिवरलुं तळ्तिंद्रगोपंगळुं ॥१४६॥

तीडुव पश्चिमानिलन तीटदॊळुत्कटमागॆ रागमि-
पॊडिद चंचुवं तॆरॆदॆरंकॆ नॆरल्दिरॆ कंठनाळमं
नीडि वियत्तक्कॊगॆदु कार मुगिल्वनियं मनं कुळि-
कॊंडुविनं कर्दुंकि नलिवारिद्वारिदुवंदु चातकं ॥१४७॥

---

काला बनकर, प्राप्त कष्ट को न सहकर पानी ढोये हुए हाथियों के समूह के समान जल से भरे बादल दौड़ रहे थे। १४४ वर्षाऋतु के आगमन से आकाश में नयनाकर्षक कांति से परिपूर्ण इंद्रधनुष उदित हुआ जिसे देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो आकाशरूपी राजमहल के द्वार पर तोरण बांध दिया गया हो, या पंचरत्नों से युक्त कंठाभरण को दिक्वनिता ने धारण कर लिया हो, या मोटे रत्न की रस्सी नये मेघरूपी दिग्गज के गले में डाल दी गई हो। १४५ —तत्पश्चात्—भूमिरूपी युवती वर्षाऋतु-रूपी प्रेमी के साथ रमण के समय होनेवाले संघर्ष के कारण पहनी हुई रत्नमाला टूटकर उसकी मणियाँ ऐसे बिखर गई मानो वर्षाऋतु के इंद्रगोप (जुगनू) आदि अनन्य रूप से मनोहर दृष्टिगोचर होते है। १४६ पश्चिमदिशा से, तेज़ी से वहने से प्यार बढ़ गया (उमड़ आया), तो सूखी चोंच फैलाकर, पंखों को शिथिल लटकाकर, गर्दन को आकाश की ओर उठाकर बारिश की बूंद को चातक पक्षी मनतृप्त होने तक धीरे-धीरे पी रहे थे। १४७ विद्युल्लता ऐसी नृत्यलीला कर रही थी जो चातक पक्षी के लिए प्रेमलता, मोर के लिए प्रकाश का संयोजन, मेघलक्ष्मी के लिए

रागद बळ्ळि चादगेगे कांचन चंचल लास्य तर्जनं
सोगेनविल्गे मेखले घनाघनक्षिमगे दीपमाले जा-
रागमनक्के जंत्रदुरियेण्णे वियोगिजनक्केनल् नभो-
भागमनेय्दि बित्तरिसिदत्तु तटिल्लते लास्यलीलेयं ॥१४८॥
बिडे केम्मने गर्जिप त-* क्कडे तगदेडेयेन्नदेरगुवस्थिरनप्पा
जडनचिरप्रभे निमिषदो* ळडंगुगुं बेळगदंतुमदु सत्पथमं ॥१४९॥
घनगर्भाशा वधू पुंसवनदेसेव तूर्यस्वनं चूळिका व-
र्धन मांगल्यं बळाकक्केसेये पसरिपातोद्य घोषं विदूरा-
वनियोळ वैडूर्य रत्नं जनियिसे नेगळ्दानंदभेरी रवं ताने
रोदोभागदोळ् घूर्णिसिदुदभिनवांभोद गंभीरनादं ॥१५०॥
घननिनदं भयरसमं *जनियिसे नेनेयिसिदरंदु कळहंस कुटुं-
बिनियं प्रिय विरहालं*बिनियर् मृदुवेनिप मनदोळं गमनदोळं॥१५१॥
उगुळुत्तुं सिडिलेंब तोरकिडियं कालूरि भूभागदोळ्
गगनाभोगमनेय्दि नीळ्द घनवेणी बंदमं बिर्चि मिं-
चुगळेंब्रुळ्कुवदाडेगळ् पोळेये चंद्रादित्यरं नुंगि बे-
सगेयं बेर्चिसि गर्जिसुत्तु मोगेदं कारेंब काळासुरं ॥१५२॥
मदमदिरा प्रमत्त जनताशयदंते जडाशयं कलं-
किदुदु मनोजदीप कळिकाननदंतिरे काननंकरं

---

मेखला, प्रेमियों के लिए दीपमाला और विरहियों के लिए चितावर्धक साधन-सी थी। १४८ चमकते ही गरजनेवाले, सर्वत्र व्याप्त, अस्थिर एवं आलसी के व्यवहार के समान बिजली चमक कर छिप जाती थी। १४९ दिक्वनिता के गर्भ में मेघगर्जन की कठोर ध्वनि प्रतिध्वनित हुई तो हंसों को डर लगा; दूर की भूमि में ऐसा आनंदघोष सुनाई पड़ा मानो वहाँ वैदूर्य रत्नों ने ही जन्म लिया हो। आकाश में नये मेघों की गम्भीर ध्वनि गुंजरित हुई। १५० घनगर्जना की ध्वनि ने भयभीत करा दिया तो राजहंसों ने उड़ते हुए भी अपनी प्रियतमाओं को मन ही मन स्मरण कर लिया। १५१ घनगर्जना करते हुए बड़ी-बड़ी चिनगारियाँ उगलते हुए, भूगर्भ में पैर जमाकर, आकाशमण्डल तक व्याप्त होकर, बादलरूपी युवती की केशराशि की गाँठ छुड़ाकर बिजली-रूपी बड़े-बड़े दाँतों को चमकाते हुए, सूर्यचंद्र को निगल कर, ग्रीष्म को डराकर दुष्ट राक्षसरूपी वर्षाऋतु सुशोभित हुई। १५२ बादलों का समूह आकाश में इस तरह उमड़ने लगा जैसे मद्यपान से चकराया मनुष्य का मन। जंगल पीनी में डूब कर उसी तरह काला हुआ जिस तरह कामदेव की दीपशिखा का

गिदुदु विरोधि वाहिनिगळतिरॆ वाहिनिगळ् कडंगि मी-
रिदुवनुकूलमार्गमनिदॆं मळॆगालमळुंबमादुदो ॥१५३॥
नवविधमप्प कण्वॊळॆपु रंजिसॆ संचळितांग हाररदिं
विविध धनस्वनक्कॆ नविलाडॆ घनाघनलक्ष्मि केतकी
धवळ कटाक्षॆ कंडु रसमग्नतॆयिं पुळकांकुरंगळ-
त्यविरळमागॆ कॊट्टळचिरप्रभॆयॆंब सुवर्णमालॆयं ॥१५४॥
इंदॊवरॆनिसिद तनिरस*दिंदॊदविद नील पाटलच्छवियिं नु-
ण्पिदॆसॆवरनेरिल प-*ण्णंदरगिळिग्रामदॊलवनं तॊलगिसितो ॥१५५॥
माकंदं फलहीनमाद पददॊळ् जंबूरसास्वादन
स्वीकारोत्सवदिंददं मरॆदु कीरं प्रौढियं ताळ्दिद-
त्तेकग्राहि कनल्दु चूतकळिकास्वाद व्यवच्छेददिं
मूकीभावमनप्पुकॆय्दुदु विवेक व्याकुलं कोकिलं ॥१५६॥
पसुर्वुल्लं मेदु संदॊदॆडॆयॊळमॊर्डलिबिल्लॆनल् कॊर्वि कॆच्चल्
कुसिवन्नं वीगि पालंबिरिविडॆ मॊलॆयिं वत्स पीतावशेषं
पॊसगारॊळ्तारलॊळ् कण्णरॆ मुगिदिरॆ सृक्वंगळि सूसॆ फेन
प्रसरं मॆल्कॊत्तुतुं निदुदु वनमहिषी वृंदमानंददिंदं ॥१५७॥
सुरिव मळॆगळ्कि गिरिकं-*दरदॊळ् मडगिट्ट तम्म शाव कदंब-
क्करॆगॆंचि हरित दूर्वा- *कुरमं कॊंडुय्दुदंदु हरिणीयूथं ॥१५८॥

---

अग्रभाग। पानी का प्रवाह, जो पृथ्वी पर पड़ा, अनियंत्रित होकर बहने के कारण, वर्षाऋतु शत्रुसेना के समान भयानक दिखाई पड़ी। १५३ आँखों की नौ प्रकार की कांति, चलती हुई बिजली की भाँति चमकने लगी और घनगर्जन की ध्वनि सुनकर मोर को नाचते हुए मेघलक्ष्मी, जिसकी आँखें केवड़े के समान सफ़ेद हैं, ने देखकर रसमग्न और रोमाँचित होकर क्षणिक सुवर्णमाला दे दी। १५४ कोयलों के रस-सेवन से उत्पन्न नशा के कारण पके जामुनफल ने उस दिन तोते की इमली-रस की चाह को समाप्त कर दिया। १५५ तोता आम्रवृक्ष को फलहीन समझकर, जामुन का आस्वाद लेने के उत्साह से (आम को भूलकर) आनंदानुभव कर रहा था और एकाग्रचित्त कोयल कुपित होकर आम का आस्वाद लेने के बहाने मूकभाव धारणकर विवेकी-सी थी। १५६ जंगली भैंसे हरी घास चरकर, भरपेट खाकर, मदमस्त होकर पूर्णत: भरे हुए स्तनों से अपने बछड़ों को पेटभर दूध पिलाने के पश्चात् नये उत्साह से झाड़ियों के पास आधी आँख मूँदे मुँह से फेन बहाते हुए जुगाली करती हुई सुशोभित हुई। १५७ हरिणें बारिश से डरकर, गिरिकंदरों में छिपाकर रखे हुए अपने बच्चों के लिए,

भोरेंदेरगुव जलधर ※ धारा पुष्करदिनात्मकर पुष्करमं
पूरिसि सिंपिणियं कां-※तारदोळाडिदुवु करिगळुं करिणिगळुं ॥१५९॥

मारं बिरयिगोंडच्चिर्द ※मारण होमाग्निधूम पटलंगळवोल्
कार मुगिल नेगेदुवु रति※नीरेरेदोविद तमाल षंडंगळवोल् ॥१६०॥

पोगिं पोगिं मोल्लेय ※ पूगणेदोट्टं मनोभवं बिरयिगळों-
दागिरिमोंदोदरुववोल् ※ सोगेगळं केदरि सोगे केगिदुवागळ् ॥१६१॥

ओवदे कुड्डुमिंचिन कै※दीविगेगळिनरसि मन्मथं बिरयिगळं
तीवि तेगेनेरेद केदगे ※पूविन कोनेगरिय सलगिनंबिनोळिसुवं॥१६२॥

ओल्लदे बिसतंतु ज्या-※वल्लरियं कुसुमबाणमं कर्विन ब-
ल्विल्लं कामं कामन ※बिल्गोळे विरयिगळनट्टि मोदिदनागळ् ॥१६३॥

अंततिप्रबलमाद घनसमयमतिक्रमिसे मोल्लेय पूगुडि पल्लटिसेयुं, गिरिमल्लिगे बीतु बिन्ननागेयुं, कडवु मोगरागंगिडेयुं, चादगे नवोदक कण भक्षण व्रतमनुज्झिसेयुं, सोगेनविल पिंडु तांडवक्कलसेयुं, हंसमंडलि मृणाळ कांडमं सविदु सोकेयुं, गिरि दरिवनक्के निर्झर जलाभिषवणमनोडर्चेयुं, पोन्नेपोसननेय पसदनदिनेसेयेयुं,

---

मुँह में घास दबाये जाती हुई दिखाई पड़ीं। १५८ मुसलाधार बारिश के पानी की धारा को अपनी सूँडों में भरकर पुनः उसे चारों ओर फूत्कार के साथ सिंचन करते हुए हाथी और हथनी खेल रहे थे। १५९ वर्षाऋतु के बादल मानों कामदेव द्वारा विरहियों के लिए तैयार किए गए मारणहोम के धुंवे के समान दिखाई दे रहे थे और (वे बादल) रतिदेवी द्वारा पानी सींचकर बड़े किए गए तमाल वृक्ष के समान फैल गए थे। १६० मयूरों ने अपना पंख फैलाकर ज़ोर से मानो कहना शुरू किया, 'जाइये, भागिये, लो, मन्मथ पुष्पबाण छोड़ने के लिए तैयार हो गया है। विरहियों! एक हो जाओ।' १६१ मन्मथ वक्र बिजली का दीप लिए, विरहियों को ढूँढ-ढूँढकर किसी की परवाह किये विना, केवड़ा-पुष्प के नुकीले बाणों से प्रहार करने लगा। १६२ कामदेव ने कमलदण्ड के प्रत्यंचा, पुष्पबाण और इक्षुधनुष को लिये विना ही इन्द्रधनुष से विरहियों का पीछा करके पीड़ा दी। २६३ —इस तरह अत्यन्त प्रभावी वर्षाऋतु को बिताने पर कुंद (पुष्प) की कलियाँ खिलीं, जंगली मोगरा पुष्प व्यर्थ ही मुरझा गये, कदंवपुष्प का मुख कांतिहीन हुआ, चातकपक्षी ने जलबिंदु ग्रहण करने का व्रत त्याग दिया। मोरों के

पोंदावरेयमंद मकरंदमनळिगे बळियट्टेयुं, अतिप्रकाशमाद शरत्प्रवेशदोळ्—

पेरेयिक्कि पोदुवचिशं-
शु रसन घनकाल विषंधरंगळ् गगनो-
दर गह्वरदोळेनल् तर
तरदिं पसरिसिदुवंदु विळिय मुगिलगळ् ॥१६४॥

इरुळिंदुविनोडवोगदे
शरदद बेळ्दिंगळहिमकर कर तप्तं
तेरळे कनेगट्टिदंतिरे
पोरेवोरेगोंडिरे मुगिल् पगिल्तुवु नभदोळ् ॥१६५॥

ओवदे मीनमेष वृषभादिगळं क्रमदिं दिनाधिपं
सेविसि मत्ते कन्नेयोडगूडलोडं किडे तन्न तेजमि-
न्नावुदु कज्जमेंदु तोलेयं जनगंजनेगेरि रागमं
भूवलयक्के बीरिदनदें प्रभुमाडिद माये सल्लदे ॥१६६॥

ईगडलोळगोलाडुव ❋ मींगळ बळगंगळेंविनं शरदद बे-
ळ्दिंगळोळाडिदुवु चको❋रंगळ् चंद्रांशु पूर्ण चंचु पुटंगळ् ॥१६७॥

---

समूह ने नृत्य के प्रति आलस्य दिखाया। हंसों को पुष्पकांड खाकर मस्ती चढ़ गयी। गिरि-वनों पर पानी का अभिषेक हुआ। पीतसाल पेड़ नई कलियों के सौंदर्य से सुशोभित हुए। कमल मकरंद ने भ्रमरों को आमंत्रित किया। ऐसी शरत् ऋतु में—आकाश में श्वेतमेघ ऐसे फैल गये मानो घनगर्जना, बिजली और वारिशरूपी सर्पो ने अपना केंचुल त्याग दिया हो। १६४ रात चांद के साथ नहीं गयी। आकाश में मेघसमूह ऐसे जम गये मानो शरत्ऋतु की चांदनी ठंडी होकर जम गई हो। १६५ मीन, मेष, वृषभ राशियों को निर्लक्षकर सूर्य क्रमशः उनमें रहने के पश्चात कन्याराशी में प्रविष्ट हुआ तो तुरन्त अपने तेजस को खोकर उपाय न पाकर जनरंजन के निमित्त तुला राशी में आकर पुनः कांति (प्रकाश) पाकर, संसार को प्रकाश देने लगा। इस माया की महिमा सामान्य थोड़ी ही है? १६६ शरत्काल की चांदनी के साथ खेलते-खेलते चकोर पक्षियों ने चंद्रकांति को अपनी चोंचों से इस तरह चूस लिया कि मानो क्षीरसागर में विचरण करनेवाली मछलियों का समूह हो। १६७ कच्ची

बळसि सुळिदाडि कलिवडि-
देळसि कलापावमोंदवें जननिय मोलेंवा-
लगळनुण्ब शिशुगळंतिरें
कळवेंय पाल्देंनेंय पालनुंडवु गिळिगळ् ॥१६८॥

दूरदोंळीक्षिसि तुंगा * कारदोंळोंदिद ऋजत्वमं पदेंदेंळसि-
त्तारय्दु नोडदंत- * स्सारतेंयं काश कणिशमं शुकशाबं ॥१६९॥

आ शरत्समयदोंळ्—

तनगत्युत्साहदिं यक्षन नेंगळ्दुचिताचारमुं बेळ्पुदं स-
म्मनदिदं माळ्प संप्रीतियुमनवरतं हर्षमं माडे साहि-
त्य नटी शैल्मनत्यूर्जित शुभचरितं सज्जनाधारनिर्द-
द्युनदी फेन प्रतान प्रथित पृथुयशं भारतीकर्णपूरं ॥१७०॥

इदु परम जिनसमय कुमुदिनी शरच्चन्द्र बालचन्द्र मुनींद्र चरणनखकिरण चन्द्रिकाचकोर भारतीकर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितमप्प रामन्द्रचरित पुराणदोंळ् शरद्वर्णनं ।

॥ सप्तमाश्वासं ॥

---

कणिसक के दूध को तोते उसी तरह पान कर रहै थे जैसे आस-पास खेल-कूदने के पश्चात् पैरों को पकड़कर, हठ करके माता का स्तनपान करते हुए छोटे बच्चे हों। १६८ दूर से देखकर शिशु तोते ऊँचाई तक पहुँचकर तनकर खड़ी हुई घास की कणसिक के अंतसार को छककर देखे बिना सापेक्षभाव से निहार रहे थे। १६९ —उस शरतकाल में—यक्षराज द्वारा बड़े उत्साह से किये गये उपचार, खुशी से प्रदान की गयी सुविधाएँ, राम, जो साहित्यवनिता का पति है, शुभचरित है, सज्जनों का आधार है, देवगंगा के फेन के समान धवलकांतियुक्त हँसी से उल्लसित था। १७० —कवि अभिनव पंप, जो परमजिनसमय और कमलों को शरत्काल के चंद्र के समान मानेजाने वाले वालचंद्रमुनींद्र के पदनखों के चंद्रप्रकाश-से पवित्र एवं सरस्वती के कर्णभूषण के समान है, कृत रामचंद्रचरित-पुराण का यह सप्तमाश्वास शरत्वर्णन है।

॥ सप्तमाश्वास समाप्त ॥

अष्टमाश्वासं

श्रीनिलयंनिष्ट विषय सु-*खानुभवं बडेदु देव निर्मितमेनिसि-
र्द नगरियोळप्राकृत *मानधनं सुखदिनिर्दनभिनव पंपं ॥ १ ॥

आ शरत्समय समनंतरं गमनोत्सुक चित्तनाद रामंगमूल्य मुक्तादाममुमं लक्ष्मणंगे मणिकुंडलमुमं सीतादेविगे चूडारत्नमुमं वीणारत्नमुमनोलगिसि, विषममादेडेगेन्न नेनेवुदेंदु विनयमं नुडिदु किरिदेडेयं कळिपि वीळ्कोंडु बंदु, यक्षं वैकुर्वणपुरमनदृष्यंमाडि निज निवासक्के पोदनित्तला रामलक्ष्मणर् निच्चवयणंगळि विजय-पुरद बहिरुद्यानमनेय्देवर्प समयदोळ्—

मुन्निन काय्पुगेट्टु दशदिमुखदिं पेडमेट्टि रश्मिगळ्
तन्नोळडंगे चंडकिरणं वरुणानिल कैय कंबर-
लग्नडियंते दिट्टिगळवट्टिरे पोंदिदब्जषंड सं-
च्छन्नमनुत्क हंस मधुरस्वनमं बनमं रघूद्वहं ॥ २ ॥

अंततिशयमप्प वनविलासमं सीतेगे तोरुत्तुं वंददोंदु तिळि-गोळद तडिय तमालवन लतागृहदोळ् विश्रमिसिर्पुदुं—

लतेवनेयोळगण तण्बुळि-*ल ताणदोळ् कुसुमदेसळ पसेयं सीता-
पतिगे समेदं सुमित्रा *सुतं सहोदररोळितति स्नेहितरार् ॥ ३ ॥

---

आश्वास—८

अपेक्षित सुख पाकर, श्रीराम देवनिर्मित उस नगर में ठाट-बाट से रह रहा था। १ —उस शरत्काल को बिताकर अपने प्रवास को आगे बढ़ाने की इच्छा व्यक्त की तो राम को अमूल्य मौक्तिक हार, लक्ष्मण को मणिकुंडल और सीतादेवी को चूडामणि एवं वीणा भेंट-स्वरूप देकर, कष्ट आने पर अवश्य याद करने का नम्र निवेदन कर, उन्हें रवाना करके यक्ष ने वैकर्वणपुर को अदृश किया और अपने निवासस्थान पर गया। इधर राम लक्ष्मण-सीता के साथ नित्य प्रयाण करके विजयपुर के उद्यान के बाह्य प्रदेश में आते समय, —पहले की गरमी कम होकर, दसो दिशाओं से पीछे हटकर धूप जब सूर्य में समा गयी तब वह पश्चिम दिग्वनिता के हाथ के लाल दर्पण के समान दृष्टिगोचर होने लगा। श्रीराम कमलों एवं हंसों की ध्वनि से सुशोभित सरोवरों से युक्त वन में प्रविष्ट हुआ। २ —उस वन के अतिशय सौंदर्य को सीता को दिखाते हुए आगे बढ़कर शुद्ध-जल के एक सरोवर के किनारे पर स्थित तमालवृक्ष के लतागृह में विश्राम किया।—लतागृह के ठंढे रेतीले ठाँव में लक्ष्मण ने राम के लिए पुष्प-

सौमित्रिय निरतिशय * प्रेममनदनंतुटिंतुटेंबंतुटे नि-
द्रा मुद्रित लोचननिरे * रामं रक्षानिमित्तमेळ्चित्तिर्द ।। ४ ।।

अंतनत्तिदूरदोळनतिशयमप्पदोंदु माकंद नंदनद पोंदरोळ्पेंद्रनिर्पुदुमत्तला पुरदधिपतियप्प पृथ्वीधरमहाराजंगमातन महादेवियप्पिद्राणिगं पुट्टिद वनमालेयेंब बाले—

गंडर् चन्निगरन्नरिल्ल कलिबिल्लाळन्ननिल्लेंदु मुं-
कंडर् वण्णिसे केळ्दुकेळ्दु किविवेटं गोंडु लक्ष्मीधरं
गंडं पो मोरेयल्लरन्यरेनगेंबी पूण्केयं कन्ने कै-
कोंडळ् गाडियनेय्दे नोडिदवरारातंगे कण्सोलदर् ।। ५ ।।

अंतु वनमाले बगेयोळोडंबट्टंताकेय मातापितृगळ् लक्ष्मणंगे कुडुवमेंदु निश्चयगेय्दु दशरथं तपंबट्टुदुमं रामलक्ष्मणर् पळिवट्टुदुमं चरवचनदिनरिदिद्रपुरमनाळ्व सुंदरकुमारंगे तन्नं कुडलेंदिर्पुदुमदं केळ्दु वनदेवतेयनर्चिसुवेनेंबं नेवदिनुपवासमिर्दु कतिपय परिजनं बेरसु महाविभूतियिं वनदोळगे लक्ष्मणनिर्दं देसेगे पुण्य प्रेरणेयिं पोगि वनदेवतेयनर्चिसि जागरमिर्देल्लरुं निद्रावशगतरागे निर्वेगपरे शय्यातलदिनेळ्दु—

---

पंखुड़ियों का विस्तर तैयार किया। सहोदरों में इतना घनिष्टस्नेही कौन है ? । ३ लक्ष्मण का भ्रातृप्रेम कितना अगाध है यह कहना असाध्य कार्य है। नींद के कारण आँखे भार हो तो भी वह राम की रक्षा में जगा रहता है। इस तरह राम की रखवाली में पास के आम्रवृक्षों के उपवन में लक्ष्मण रह रहा था। उस नगर के अधिपति पृथ्वीधर और उसकी पत्नी इंद्राणी को वनमाला नामकी बेटी हुई। ४ लोगों से यह सुन-सुनकर कि पुरुषों में लक्ष्मण के समान कोई सुन्दर नहीं है, धनुर्धारियों में ऐसा कोई अन्य नहीं है, वह भ्रमित हो गयी और प्रतिज्ञा ली थी कि लक्ष्मण के अलावा और किसी की पत्नी नहीं वनूंगी। ऐसा कौन है जो लक्ष्मण के रूप-सौंदर्य को देखकर मोहित न हुआ हो ? । ५ —वनमाला के निर्णय को सुनकर उसके माता-पिता ने तय किया कि लक्ष्मण से उसका विवाह किया जाय। इस विचार से, गुप्तचरों से यह खबर पाने के पश्चात् कि दशरथ तपस्या के लिए गये हैं और राम-लक्ष्मण वन में आये-हैं, उन्होंने वनमाला का विवाह इंद्रपुर के राजकुमार सुन्दरकुमार के साथ करने का निश्चय किया। इसे जानकर, वनदेवता की पूजा के वहाने उपवास में रहकर वनमाला परिचारिकाओं के साथ पुण्यप्रेरणा से वहाँ आयी जहाँ लक्ष्मण रह रहा था और जब सव निद्रा की गोद में थे,

तनुगंधं वनमॆल्लमं वळसॆ नेत्रज्योत्स्नॆयुं रत्नमं-
डन वालातपमुं तमक्कॆ तविलं तर्पन्नमेळ्तर्पळ्
वनलक्ष्मीवधुवो सुरप्रमदॆयो विद्याधर स्त्रीयो पे-
ळॆनुतं कण्णॆमॆयिक्कदीक्षिसिदना स्त्रीरत्नमं लक्ष्मणं ॥ ६ ॥

अंतु नीडुं भाविसि नोडि—

वनमॆत्तल् बालॆयॆत्तल् नडुविरुळॊडनिल्लवरुं भीतिगॆट्टा-
व निमित्तं बंदळॆवी तॆरननरिवॆ नानॆंदु लक्ष्मीधरं बॆ-
न्ननॆ पोदं पोक्कळा कन्नॆयुमवनि तलालिंगितानेक शाखा
जनित ध्वांतांतराल प्रवल वटमनेगॆय्यदुद्वेग वेगं ॥ ७ ॥

अंता मरदडियॊळाकॆ निंदु रामानुजनप्प लक्ष्मणकुमारनॆत्तानुमी वनक्कॆ विनोदर्दि बंदनप्पॊडी वट विलासिनियरप्प देवतॆयरारानु-मुळ्ळॊडॆ लक्ष्मणकुमार ! वनमालॆ निनगल्लदॆ वधुवागॆनॆंदुनॆल्दु सत्तळॆविदं मरॆयदरिपुवुदॆंदु करुणवागॆ नुडिदु—

मृतिगिनिसप्पॊडं सॆडॆयदी भवदॊळ् दॊरॆकॊंडुदिल्ल दु-
ष्कृतदॊदर्वि मनः प्रिय करग्रहणं मरुमॆदुय्यॊळादॊडं
पतियॆनगक्कॆ लक्ष्मणनॆनुत्तुमवळ् कॊरलॊळ् तॊडर्चिदळ्
लतॆयनिदॆवॊगळ्वुदॆरडिल्लद नल्मॆयना लतांगिया ॥ ८ ॥

अनंतरं—

---

वह धीरे से उठी। —उसकी देहकांति वनभर में व्याप्त हुई, नयनकांति, मानों सूर्यकिरणें अन्धकार को पराजित करती-सी, रत्नकांति को भी नीचा दिखाती हुई, वह आगे बढ़ी तो लक्ष्मण आश्चर्य से देखकर समझ नहीं पाया कि वह वनलक्ष्मी है, सरोवर-सुन्दरी है या विद्याधर स्त्री। ६ —इस तरह देखकर, यह सोचकर कि—कहाँ यह वन और कहाँ यह सुन्दरी ? मध्यरात को अकेली डरकर किस कारण से यहाँ आयी ? इसे जानने के विचार से उसके पीछे-पीछे जाकर जहाँ वह खड़ी थी उस वटवृक्ष के पास आया। ७ —पेड़ के नीचे खड़ी वनमाला ने पेड़ में निवास करनेवाले देवताओं को पुकारकर कहा कि वे यह बताना न भूलें कि 'राम के अनुज लक्ष्मणकुमार के इस वन में आने पर उनके अतिरिक्त और किसी की वधू नहीं बनूँगी; ऐसा कहकर फंदे में लटककर आत्महत्या कर ली है'। मृत्यु से तनिक भी डरे विना यह कहती हुई कि भले ही इस जन्म में पत्नी बनने का भाग्य न हो लेकिन अगले जन्म में लक्ष्मण अपना पति बने, अपने गले में लता की फाँस जकड़कर मरने के लिए तैयार उस युवती के प्रेम-आवेश का वर्णन कैसा

वेगं बंदा वधु ने- * ल्वागळ् नीनरसुवातनानुळि मरणो-
द्योगमनेंदु घनध्वनि* सोगेय किविसार्दुदेंनिसि कृष्णं नुडिदं ॥ ९ ॥

अंतु नुडिदु—

वनमाला मंडनना * वनमालेयनळ्करिंदे तळ्कैसिदन-
ब्जिनियं करंगळिद* ब्जिनीप्रियं चंडभानु तळ्कैसुववोल् ॥ १० ॥

अंतु नेल्वार्केयं तळ्कैसि नेगपि—

ओपळ कोरलोळ् कोद ल-*ता पाशमनंबुजोदरं कळेदु समु-
द्दीपित राग मोह ल-*ता पाशमनोडने तन्न कोरलोळ् कोदं ॥ ११ ॥

आगळति संभ्रममनप्पुकेय्दु—

हरिनीलच्छवि पुंडरीक नयनं विस्तीर्ण वक्षस्स्थलं
परिवृत्तायत बाहु पीवर नितंवं गंडरोळ् नीरनें-
बर मातं किवियारे केळ्दु किविवेटंगोंडु कण्णाविनं
हरियं नोडिदळाके तन्न कडे गण्गळ् बीरे बेळ्दिंगळं ॥ १२ ॥

बेमर्वनि कैमिगे लज्जा
नमिताननें निमिर्द सुय्गळोडने कटाक्षं
निमिर्देसेये नोडिदळ् सं-
भ्रमदिं वनमाले बाले पीतांबरनं ॥ १३ ॥

---

करे ? । ८ —तत्पश्चात् —वह फाँस को गले में डाल रही थी कि लक्ष्मण ने आकर गंभीर ध्वनि में कहा, मैं वही हूँ जिसे तू ढूँढ रही है। मरने की बात भुला दे। ९ —इस तरह कहकर— वनमाला (हार) को गले में धारण किए हुए लक्ष्मण ने युवती वनमाला को प्रेम से उसी तरह आलिंगन किया जिस तरह सूर्य कमल का आलिंगन करता है। १० —इस तरह मरने के लिए उद्युक्त होकर निकली हुई उसे रोककर सिर उठाकर— प्रिया की गर्दन मे लिपटी लता-फाँस को निकालकर अपने प्रेम-विश्वास-रूपी फाँस में जकड़ लिया। ११ —तब वनमाला के अत्यंत हर्षित होने पर— नीलकमल सदृश आँखोंवाले, विशाल वक्षस्थलवाले, दीर्घ बाहुओं से युक्त, भरे हुए नितंववाले पुरुष, जिसे लोग समस्त पुरुषों में सुन्दर कहते आये है और जिनके वारे में उसने केवल कानों से सुन रखा था, वही अब अपनी तिरछी दृष्टि से ऐसा देख रहा है मानो चाँदनी विखेरी है, उसे (वनमाला ने) अपनी आँखों से देख लिया। १२ उसे देखकर वह लज्जित हुई। उसके माथे पर पसीना छूट पड़ा। दीर्घ श्वास के साथ सिर उठाकर पीतांवर (-धारी) लक्ष्मण को वह देखने लगी। १३

आ समयदोळ् लक्ष्मणकुमारनुमाकॆयं नोडदंतु नोडॆ—

पल्लटिसदॆ कण्गळ् नि-
दल्लियॆ निलॆ तम्मॊळॆळसि नोड्डुव पददॊळ्
फुल्लशरं कॊळवाडिय
बिल्लंतिर्दॆसगदरल सरलं सुरिदं ॥ १४ ॥

नडुविरुळारुमिल्लदॆडॆयॊळ् कॊरलॊळ् वधुकोदु बळ्ळियं
मडियलॊडर्चॆ लक्ष्मणनिमित्तदिनातनॆ दॆवदॊदॊडं-
बडिकॆयिनागळा यिरूळॊळल्लिगॆ तां पळुवट्टु बंदुक-
य्विडिदॊडॆ सावु माण्दुदॆनॆ सायदरं कॊललारुमार्परॆ ॥ १५ ॥

अनंतरमा कांतॆवॆरसु लक्ष्मणं निजाग्रजनिर्द लतागृहक्कॆ पोद-
नित्तला वनमालॆय कॆळदियरुमाकॆयं शय्यातलदॊळ् काणदॆ बॆगडुगॊंडा
बनदॊळ् तॊळल्दरसुत्तुं बंदल्लिर्दळं कंडल्लिर्द महानुभावरं राम-
लक्ष्मणरॆंदरिदु मैगापिनवरू परितंदु तनगरिपुवुदुं पृथ्वीधर महाराजं
कॆळ्दु पुरदॊळष्ट शोभॆयं माडिसि चतुरंगबलंबॆरसु बॆगमिदिर्वॊगि
राजभवनक्कुय्दभ्यागत प्रतिपत्तियिं मन्निसि शुभदिन मुहूर्तदॊळ्—

उत्तम कन्यारत्नम * नित्तं पृथ्वीधरं नरॆंद्रोत्तमन-
त्युत्तम वरनॆनिसिद पुरु- * षोत्तम दॆवंगॆ कूसुगुडलार्पडॆवर् ॥ १६ ॥

---

—उस समय लक्ष्मण ने उसे देखा तो— परस्पर नेत्र अपलक और अचल होने पर, पुष्पवाणधारी कामदेव ने ईख का धनुष उठाकर पुष्पवाणों से उन (दोनों) पर प्रहार किया। १४ मध्यरात्रि के समय, निर्जन प्रदेश में, अकेली स्त्री, गले में लता-फाँस जकड़ कर लक्ष्मण के निमित्त मरने के लिए उत्सुक हो रही थी कि दैव-संकल्प-सा लक्ष्मण ने ही आकर हाथ पकड़कर मरने से वचाया। इससे यह स्पष्ट है न, कि जो मरनेवाले नहीं उन्हें कोई मार डाले यह संभव नहीं है। १५ —उसके वाद लक्ष्मण वनमाला के साथ वहाँ गया जहाँ भाई राम पत्तों के घर में रहता था। इधर वनमाला की सखियों ने वनमाला को उसकी शय्या में न पाकर आश्चर्य-चकित हो, वन का कोना-कोना छान मारा। अन्त में वहाँ पाकर पृथ्वीधर महाराजा के पास पहुँचकर यह निवेदन करने पर कि वे राम-लक्ष्मण हैं, महाराजा ने सारे शहर को सजाया, चतुरंग सेना के साथ उनके पास जाकर, धूमधाम के साथ, राजमहल में लिवा लाकर, विशेष आतिथ्य के साथ सत्कार किया और एक शुभ मुहूर्त में—पृथ्वीधर महाराज ने अपने श्रेष्ठकन्यारत्न का विवाह पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मण से कर दिया। ऐसा भाग्य और

अंतु वनमालॆगं चक्रपाणिगं पाणिग्रहणमप्पुदुमा समयदॊळॊर्व नंद्यावर्तपुरवनाळ्वतिवीर्यन दूतं बंदु दूरावनतमस्तकं समस्त राजलोकमनेकक्षौहिणीबलं बॆरसु तन्नॊळ् कूडॆ भरतन मेलॆ नडॆयलॆंदॆम्मरसं निमगॆ बळियट्टिद राजादेशमॆंदु पृथ्वीधरंगॆ बिन्नविसॆ केळ्दु—

मुळिसॆंब विषद बळ्ळिय
तळिरॆनॆ पॊळॆवधर मणिय मेलॆ मुगुळ्प-
ज्जळिपंतॆ मुगुळ्नगॆ प-
ज्जळिसुविनं चक्रि नोडि दूतन मॊगमं ॥ १७ ॥

भरतनुद्योगमेनॆंबुदुमातनतिवीर्यवल्लभनट्टिद दूतं विनीत पुरमं पॊक्कु भरतनं कंडु निम्मनॆम्मरसं तनगाळागि सुखमिर्पुदॆंदु बॆससियट्टिदनिदु निमगुरुव कज्जमदॆंतॆनॆ—

बगॆयदॆ काळॆगक्कॆ बगॆदपॊर्डॆ निम्मळवल्ल वंकदा-
नॆगॆ तुरगक्कॆ तेर्गॆ पवणिल्ल पदातिगॆ मेरॆयिल्लदं
बगॆदुरदिर्प गांपनुळिदाळ्वॆसगॆय्वुदु बाळ्व बट्टॆयं
बगॆवुदु कीरि मीरुववरारतिवीर्यन बाहुवीर्यमं ॥ १८ ॥

ऎंदु गदरि गर्जिसिद दूतन मातिगॆ शत्रुघ्नं मुळिदु—

---

किसको उपलब्ध होता है ? । १६ —वनमाला-लक्ष्मण-विवाह हो रहा था कि उतने में नंद्यावर्तपुर के शासक अतिवीर्य राजा के दूत ने आकर पृथ्वीधर को हाथ जोड़कर निवेदन किया कि हमारे राजा ने यह सूचना देने के लिए हमें यहाँ भेजा है कि समस्त राजाओं के साथ अनेक अक्षोहिणी सेना लेकर भरत पर आक्रमण करने के लिए आप आवें। इस निवेदन को सुनकर— मानो कोपरूपी विषलता के अंकुर-स्वरूप और चमकते अधर पर पुष्प के समान मुस्कराहट सुशोभित हुई। १७ —दूत का मुख देखकर लक्ष्मण द्वारा भरत के वृतांत का विवरण पूछने पर उसने बताया कि विनीतपुर के अतिवीर्य के दूत ने भरत के पास जाकर कहा कि आप हमारे राजा के आधीन होकर सुख से जीवन बितावें, यही आपके लिए योग्य है। क्यों कि— इसे अनसुनी करके युद्धभूमि में टकराना आपके लिए असाध्य कार्य है। क्यों कि हमारे राजा के पास असंख्य हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना है। इसे स्पष्ट समझकर युद्ध की आशा त्यागकर जीने का मार्ग अपनाइए। अतिवीर्य के शौर्य से टकराकर जीना किसी के लिए भी कठिन काम है। १८ —इस तरह गरजकर बोलने पर शत्रुघ्न कुपित होकर बोला— स्वप्न में भी सूर्यवंशी भय नहीं खाते। अल्पवीर

कनसिनॊळप्पॊडं भयद लोभद मातु मनु प्रसूतरॊळ्
जनियिसदल्पवीर्यनतिवीर्यवॆसर् तनगॆवुदाहव-
क्कॆनगिदिरागि निल्वनितु दोर्बलमुळ्ळॊडॆ तंदु कादिसा-
तननॆलॆ दूत बिल्विडियलीवॆनॆ पुल्विडिवंतु माडुवॆं ॥ १९ ॥

ऎंदॊदरि दूतनं परिभविसि कळॆवुदुं—
भरतनॊळतिवीर्य सं- * गरक्कॆ मॆलॆत्ति वंदनॆंबपवादं
परॆदंदु रघुकुलक्कॊदॆ * पराभवं परिभवक्कॆ कॊडॆरडॊळवॆ ॥ २० ॥

ऎंदु मनदॊळ् निश्चयिसि भरतं शत्रुघ्नंबॆरसु चतुरंगबल समेतनागि नंद्यावर्तपुरक्कॆत्तुवुदुमासमयदॊळ् मिथिलॆयनाळ्व कनकनुमुज्जॆणियनाळ्व सिंहोदरनुम संख्यातबलंब्बॆरसु तम्मॊळ् वंदुकूडिदरित्त परिभवंबॆत्तुवदं चरन वचनमनतिवीर्य केळ्दु घनगर्जनॆयं केळ्द सिंहदंतॆ मुळिदु भरतंगिदिरॆत्ति नडॆयलॊडरिसिदनॆंबवार्तॆयं वायुगतिवॆसर दूतनरिपॆ पृथ्वीधरं दूतनं मन्निसि कळिपि राघवन मॊगमं नोडि काळॆगमनां पोगि मणिसुवॆनॆंबुदुं लक्ष्मणनदर्कानॆ साल्वॆनॆंदु मनःपवन जवमुळ्ळ वाजिगळं पूडिद रथमं तरिसि मूमरुमेरि पोगि नंद्यावर्तनगरद पॊरवॊळलॊळ् बीडं बिट्टिर्द समयदॊळ्—

---

होते हुए भी अतिवीर्य कहलानेवाले से डरनेवाले हम नहीं है। अगर वह मुझसे भिड़ने की शक्ति रखता हो तो उसे ले आकर मुझसे युद्ध कराओ। मैं साबित कर दूँगा कि उसके हाथ में जो धनुष है वह धनुष नहीं, अपितु घास है। १९ —दूत के साथ ऐसा निष्ठुर होकर बात करके लौटा देने के बाद—इस बात का फैलना ही कि अतिवीर्य भरत के साथ युद्ध के लिए तैयार हुआ है, रघुकुल के लिए सबसे बड़ी पराजय है, दूसरी पराजय नहीं। २० —मन में ऐसा निश्चय करके, भरत शत्रुघ्न को साथ लेकर, चतुरंग सेना के साथ नंद्यावर्तपुर आया उस समय मिथिला पर शासन करनेवाले कनक और उज्जैन पर शासन करनेवाले सिंहोदर असंख्य सेना के साथ आकर भरत-शत्रुघ्न से मिले। इधर अपमानित होकर लौटे हुए दूत की बात सुनकर अतिवीर्य अत्यंत कुपित हुआ और गरजते हुए, सिंह की तरह क्रुद्ध होकर, भरत से भिड़ने के लिए चल पड़ा। पृथ्वीधर को दूत से इसकी सूचना मिलने पर दूत का सत्कार करके लौटाया और राम का मुख निहारकर, यह कहने पर कि वह जाकर युद्ध रोक देगा, लक्ष्मण ने कहा कि उसके लिए मैं ही पर्याप्त हूँ। ऐसा कहकर मनोवेग के समान दौड़नेवाले तेज घोड़ों से सजे हुए रथ पर तीनों (राम-सीता-लक्ष्मण) चढ़कर, जाकर नंद्यवर्त नगर के बाह्य प्रदेश में रह

अतिवीर्यन शौर्यमन-॥ प्रतिहतमं भरतनार् कुमारं गॆललु-
द्धतनं मुन्नमॆ रणदॊळ्॥ हतप्रभं माडि गॆल्व बगॆयं बगॊयि ॥ २१ ॥

ऎनॆ जनकजॆगॆ मुकुलित कर सरोजनागि—

जननि बरुगय्यॊळवनं ॥मनदॊळूतं पिडिदु तर्प तॆरदिं तंद-
ण्णन काल्गॆरगिसुवॆं बगॆ॥वनितुवरमदाव गहनमदनुपेंद्रं ॥ २२ ॥

ऎनॆ राघवं केळ्दु भरतंगतिवीर्यनं नियमिसुवुदाव गहनमॆनॆ लक्ष्मणनॆत्तानुं भरतनुं सोल्तनप्पॊडॆ नमगॆ कुलपरिभवमक्कुमॆंबुदुं राघवनॆंद निंदिगॆ मूरनॆय दिवसदंदु शत्रुघ्नं नंद्यापुरक्कॆ परियिट्टु पलबररसुमक्कळं कॊंदु पॊरवॊळलॊळिर्दॆळ्नूरानॆयुमनरुवत्तु सासिर कुदुरॆयुमं पिडिदुय्दनॆंदु पेळ्वुदं मरुदॆवसं पुरमं पॊक्कॊंदु जिनमंदिर-दॊळायुध समेतं सीतॆयुमं रघुवीरनुमनिरिसि बंदु—

अदटनतिप्रचंड बलनॆन्नदॆ दुर्धर दोस्सहायर्दिं
कदन धुरीणनॊल्लदॆ धनुर्लतॆयं निजदिव्य बाणमं
गदॆयनदेनुदात्तनॊ जनार्दननॊर्वनॆ पाशदंडमि-
ल्लद जवनंतॆ निंदनतिवीर्यन राजगृहोपकंठदॊळ् ॥ २३ ॥

आगळब्जोदरनिदिर्गॆ बंदागमन वृत्तांतमनरिदु—

---

रहे थे कि— सीता ने कहा कि अप्रतिम भरत अतिवीर्य के शौर्य को पराजित करने से पहले आप लोग ही उसे पराजित कीजिए। २१ —इसे सुनकर, सीता को हाथ जोड़कर, लक्ष्मण ने कहा— माँ, उसे तो मैं खाली हाथ ही भैया के चरणों में वैसा ही लाकर डाल दूँगा जिस तरह घर की कोई चीज़ उठाकर लाई जा सकती है। उसके लिए सोचने (चिंता करने) जैसा महत्व क्या है ? । २२ ऐसा कहने पर राम बोला कि अतिवीर्य को जीतना भरत के लिए कोई बड़ा काम नहीं है। लेकिन लक्ष्मण ने समझाया कि कहीं अतिवीर्य से लड़कर भरत हार गया तो हमारे कुलपर कलंक लगेगा। तव रामने बताया कि तीन दिन पहले शत्रुघ्न ने नंद्यावर्त पर आक्रमण करके अनेक राजकुमारों को मौत के घाट उतारकर नगर के बाह्य प्रदेश में स्थित छः सौ हाथियों और साठ हजार घोड़ों को कैद कर लिया है। दूसरे दिन वे नगर में प्रविष्ट हुए और एक जिनमंदिर में हथियारों (आयुधों) और राम-सीता को वहाँ रखकर आ गया— सेनाबल रहित, केवल अपने वाहुबल से, धनुष धारण किये बिना, गदा को तजकर, अकेला लक्ष्मण अतिवीर्य के राजमहल के द्वार पर ऐसा खड़ा रहा मानो पाश, दंड रहित यमराज हो। २३

पडियरनोर्व बंदा ※ गडे भरतन दूतनिर्दपं बागिलोळें-
दोडे बरवेरेदं बर ※ सिडिलं बळियट्टि बरिसुवंततिवीर्य ॥ २४ ॥

अनंतरं बंदु—

ऎरगदे वज्रस्तंभद ※तोरर्दिदिरे मुळिसु कण्ण किसुसेरेयिं क-
ण्देरेये नडे नोडि बंदुद※ नरिपेने दुंदभि गभीर रवर्नितेंदं ॥ २५ ॥

ऎत्ति बरुत्तुमिर्द निदिरांतवरार् भरतेश्वरंगे भू-
पोत्तमनाज्ञेयं तलेयोळांतु पदानतनागि कप्पमं-
तेत्तुळि गडुंगेय्यदिरिविट्टिगे जट्टिगनागि बाळ्वुद-
त्युत्तम पक्षमांतोडपवर्तिसुगुं क्षणर्दिं निषेकमं ॥ २६ ॥

आळागि बर्दुकदे बि-
ल्लाळागि बर्दुकलोडरिपोडे भरतन कू-
र्वाळ नसुमसेगे बालमृ
णाळं रिपुनृपर कंठनाळं धुरदोळ् ॥ २७ ॥

ऎंबुदुं कडुमुळिदु—

सिडिल दनिगेळ्द सिंहं
सिडिल्दु नेगेवंते गजरि गर्जिसि बाळं-
जडिदेय्दि पोय्व कैयं
पिडिदातन बीरसिरियुमं कैविडिदं ॥ २८ ॥

—तब, लक्ष्मण के आने की सूचना मिलने पर, एक सेवक द्वारा राजा को यह बताने पर कि भरत का एक दूत आकर द्वार पर खड़ा है, अतिवीर्य ने उसे ऐसा बुला लिया मानो प्रलयकाल की घनगर्जना को (बुला रहा हो)। २४ —तत्पश्चात आकर, अतिवीर्य के सामने सिर झुकाए बिना, वज्रस्तंभ के समान खड़ा रहा तो, तिरछी दृष्टि से उसे देखकर, उससे आने का कारण पूछने पर गंभीर ध्वनि से वह बोला। २५ चढ़ आनेवाले भरत चक्रवर्ती का सामना करके कौन जी सकता है ? उसकी आज्ञा को शिरोधार्य समझकर, चरणों को हाथ जोड़कर, कर देकर जी लो। ऐसा जीने में ही तेरी भलाई है। अन्यथा तेरी आयु क्षणार्ध में समाप्त हो जाती है। २६ भरत का सेवक बनकर जीने की इच्छा करने की अपेक्षा, उससे भिड़ने की इच्छा करेगा तो, तेरी गर्दन की स्थिति वही होगी जो तेज खड्गधार को बलि होनेवाले पुष्पदंड की। २७ इसे सुनकर अतिवीर्य क्रुद्ध होकर, उसी तरह गरजकर उठ खड़ा हुआ जैसे घनगर्जना की ध्वनि सुनकर कोई सिंह उछल पड़ता है। वह लक्ष्मण

मुंगय्यं पिडिदेत्ति कैय करवाळ् बीळ्तर्पिनं वक्त्नर्-
ध्रंगळ् कारुविनं कदुष्ण रुधिरांभ:पूरमं पोय्दु पों-
ऱ्दंगय्यिं मोगमं मुसुंबु बिरुबिद्दंबोगे वीरंगे दो-
र्भंगं माडिदनेनलंघ्यबलनो रामानुजं लक्ष्मणं ।। २९ ।।

अंतु परिभविसि—

भरतनोळिदिर्चि कादुव*भरवशदिं बंद कलिगळिदेंडेयिं सं-
चरिसिदोडे मेट्टि कीळ्वें*शिरमं कीळ्वंते वन्यगजमंबुजमं ।। ३० ।।

एंदु गजरि गर्जिसुवुदुमतिवीर्यनोळ् कूडि भरतनोळ् कादलेंदु बंदन्यराजन्यकदोळ् विजयनिवनजेयनेंदु मनंगुंदेयुं, शार्दूलं शार्दूलनं कंड तोळनंतोळसोर्दु समरमुख विमुखनागेयुं, मृगध्वजं मृगध्वजनेनिसेयुं, रणोर्मि भयरसोर्मियं नूर्मडिसेयुं, कलभं कुसुमित चंपकानोकहमं कंडळि कलभदंते मोगंदिरिपेयुं, केसरि केसरियं कंड काडानेयं तोसरिसेयुं, वज्रधरनधरनागेयुं, भद्रं भद्रगजद कण्मुट्टितोळिर्द फणियंते मणियेयुं, सुभद्रनभद्रनेनिसेयुं, नंदनं रणरसास्वादनानंदन-

---

के पास आया तो लक्ष्मण ने उसके उठे हुए हाथ को पकड़ लिया। २८ कुहनी पकड़ कर दबाया तो हाथ का खड्ग नीचे गिर गया। आँखों से आँसू बह चले। हथेली के कठोर तमाचे से मुख मुरझा गया। इस तरह अतिवीर्य के शौर्य को भंग करनेवाला रामानुज लक्ष्मण न जाने कैसा साहसी होगा ? । २९ —इस तरह पराजित कर, भरत के साथ लड़ने के लिए आनेवाले वीरों से ललकार कर कहा, जहाँ खड़े हैं, वहाँ से हिलने पर उसी तरह उखेड़ दूँगा जिस तरह जंगली हाथी सरोवर के कमलों को नालों के साथ उखेड़ देता है। ३० इस गर्जना को सुनकर भरत से लड़ने के लिए अतिवीर्य से आकर मिले हुए राजाओं में से विजय नामक राजा लक्ष्मण को अविजेय समझकर भयभीत हुआ, शार्दूल नामक राजा के पैर उसी तरह उखड़ गये जिस तरह शार्दूल को देखकर डरे हुए सियार के; राजा मृगध्वज चंद्र की भांति कांतिहीन हुआ; राजा रणोर्मी डर गया; कलभ नामक राजा ने उसी तरह मुँहमोड़ लिया जिस तरह खिले हुए चंपा (चंपक पुष्प) को देखकर शिशु-भ्रमर; केसरी नामक राजा उसी तरह पीछे हट गया जिस तरह केसरी (सिंह) को देखकर जंगली हाथी; वज्रधरने तो अस्त्रों को ही फेंक दिया; भद्र नामक राजा ने वैसे ही सिर झुका लिया जैसे सिंहासन के हाथी को देखकर सर्प; सुभद्र नामक राजा भी भयभीत हुआ; नन्दा नामक राजा तो युद्ध प्रवृत्ति (प्रशिक्षण) को ही भूल गया; अवार्यवीर नामक राजा

मनुळियेयुं, अवार्यवीर्य शौर्यगिडेयुं, मारिदत्तननुदात्तनेनिसेयुं, लंबोष्ठं रक्षरक्ष रव मुक्तोष्ठनागेयुं, पोष्ठिलं प्रतिष्ठेगिडेयुं, मत्तं पेररुमरिकेय नरेंद्रनंदनर् पावडर्द पंदेयंतेवेमिड्डुकदिरेयुं—

अतिवीर्य हतवीर्यनादनिवनं कोंडुय्दपें दोष दू-
षितनं दोर्बलमुळ्ळरुळ्ळोडेनगड्डंबर्पुदेंदभ्र ग-
र्जित मेंबंतिरे गर्जिसुत्तुमेरेदुय्दं लक्ष्मणं हस्त पा-
द तलोद्घट्टनर्दि पडलवडिसुत्तुं मारांत सामंतरं ॥ ३१ ॥

कडुकेय्वं भरतंगिवं गड रणक्रीडा रसक्कतिगं-
गड साकेत पुराधिराज पदमं कैकोळ्वेनेंदेत्तुवं-
गड दुर्लेखमनट्टुवं गडेनुतुं रोडाडि पुल्गोडनं
पिडिदुय्वंतेवोलुय्दनप्रतिहतं सौमित्रि शत्रुंजयं ॥ ३२ ॥

अनंतिवीर्यननंतवीर्यनेळेंदु तंदोप्पिसुवुदुं—

अेवेळ्वें बलनिं कृपाळु पेररारद्रोहनं कंडु रो-
षावेशं तनगादुदे भरतनं शत्रुघ्ननं कंडु नं-
द्यावर्तक्कधिराजनागि सुखदिं नीनिर्पुदेंदं परा-
र्यविष्टंभमनप्पुकेय्दवर्गे मैत्रीभावमाश्चर्यमे ॥ ३३ ॥

---

अपना शौर्य ही खो बैठा; मारिदत्त नामक राजा खिसक गया; राजा लंबोष्ठ 'त्राहिमां त्राहिमां' मंत्र जपने लगा; प्रोष्ठिल नामक राजा अपनी प्रतिष्ठा खो बैठा और अन्य राजा उसी तरह भयभीत हुए जिस तरह सर्प को देखकर कायर भयभीत होते हैं। लक्ष्मण गरजकर बोला कि अतिवीर्य हार गया है, इसे लिवा ले जाता हूँ। जिनमें हिम्मत हो वे मुझे रोकें। जिन सामंत राजाओं ने उससे भिड़ने का प्रयत्न किया, उन्हें अपने हाथ पैरों के चपत-लातों से हरा कर घसीटता गया। ३१ यह भरत के लिए घातक है; युद्ध में भरत को कुशलता से पराजित कर अयोध्या को अपने अधिकार में ले लेगा, ऐसा सोचकर शत्रुंजय लक्ष्मण ने अहंकारी अतिवीर्य को तृणवत् वंदर समझकर अपने साथ ले गया। ३२ —इस तरह अतिवीर्य को घसीटकर ले जाकर अपने भैया राम के चरणों पर डाल दिया। श्रीराम के समान दयालु और कौन होगा? उस द्रोही को देखकर वह आगबबूला हुआ? नहीं। उसने अतिवीर्य से कहा:— भरत-शत्रुघ्न से मिलकर नंद्यावर्त का राजा बनकर शासन करो। साहसियों के लिए स्नेहभाव आश्चर्य है?। ३३ अतिवीर्य ने कहा— राजा बनने की मेरी इच्छा मिट गयी। अब जिन्हें भी देना चाहें राज्य

अरसुतनदळ्ति पिंगिदु-*दु राज्यमं निस्नमेंच्चिदवर्गीवुदिदं
परिहरिसिदेतानिन्नें- *दु रामलक्ष्मरना नृपं क्षमेगोंडं ॥ ३४ ॥

अंतु निश्शल्यनागि पोगि श्रुतधारण भट्टारकर पदपार्श्वदोळ्—

बेंचिसे तन्नं कृष्णं- * बेंचिसिदं कृष्णतनयनं जिनरूपिं
केंचेंरिद वैराग्यद * पेंचि मुय्यं मगुळ्चुवंततिवीर्यं ॥ ३५ ॥

निजभुज वीर्य हानिगे तपंबडे तंदे मगंगे राज्यमं
बिजयरथंगे रामनोसेदीवुदुमातन तंगेयोळ् जग-
द्विजयिगे ळक्ष्मणंगे रतिमालेयोळाय्तु विवाहमुन्सव
ध्वज मणितोरणं तुरुगे घूर्णिसे मंगलतूर्य निस्वनं ॥ ३६ ॥

आ विवाह विधानानंतरं नंद्यावर्त नगरमनगल्दु निच्चवयणंगळि क्षेमांजलि पुरक्के बंदा पोळल पोरवोळल मनोहरोद्यान दोळ् दाशरथियुं वैदेहियुं विश्रमिसिर्पुदुं, तत्पर निरीक्षणनिमित्तं लक्ष्मणं राजवीथियोळगने बरुत्तुमिरे पलरुमोंदेडेय्तेंळिर्दु जितपद्मेय पडेमातं नुडियुत्तुमिरे केळ्दु लक्ष्मणं जिनपद्मेयेंबळगें बुवुमातन समुद्रघोषमनजनिसुव गंभीर स्वरदोळं भद्राकारदोळमीतं कारणपुरुषनागलेंवेळ्कुमेंदु निश्चयिसि पुराणपुरुषनोर्वनिंतेंदं—

---

दे दें। और उसने राम-लक्ष्मण से अपने अपराध के लिए क्षमायाचना की। ३४ —इस तरह विरक्त होकर, जाकर श्रुतधारण भट्टारक के चरणों में, यह सोचकर कि डराने गया था लेकिन लक्ष्मण ने मुझे ही डरा दिया। और जिनरूप के प्रति वैराग्य धारण कर पूर्वव्यामोह का बदला लेता-सा अतिवीर्य तपस्या करने लगा। ३५ अपनी पराजय के कारण अतिवीर्य तपस्य में लगा तो राम ने उसके पुत्र को राज्य सौंप दिया। उसकी बहन रतिमाला के साथ लक्ष्मण का विवाह हुआ। विवाहकाल के मंगलवाद्यों की ध्वनि आकाश में गूँज उठी। मणि तोरण सर्वत्र सुशोभित हुए। ३६ —उस विवाह के पश्चात नंद्यावर्त नगर छोड़कर नित्य प्रयाण करके क्षेमांजलीपुर आकर गांव के वाहर स्थित उद्यान-वन में राम-सीता विश्राम कर रहे थे और नगर देखने के कुतूहल से लक्ष्मण राजमार्ग में आ रहा था। रास्ते में कुछ लोग एक जगह खड़े होकर जितपद्मा के विषय को लेकर आपस में चर्चा कर रहे थे। उन लोगों से पूछने पर कि यह जितपद्मा कौन है, उसकी गम्भीर ध्वनि जो समुद्रघोष की भाँति थी, सुनकर और भद्राकार को देखकर,

जनपति शत्रुंदमना * तनरसि कनकाभे तत्तनूजे सरोजा-
ननें मसेंद कुसुम सायक*मेंनिपळ् जितपद्मे पेसरोळं रूपिनोळं ।। ३७ ।।

आकन्यारत्नं पुट्टलोडनत्त शस्त्रशालेयोळोंदु शक्ति पुट्टिदुदा-समयदोळोंदाकाशवचनमिंतेंदुदी देवताधिष्टितमप्प शक्तियिं शत्रुंद-मनिड्डुवुदुमदं संचलिसदे बंचिसि पिडिद महासत्वनी रमणिगं दक्षिण भरत धरणी रमणिगं रमणमक्कुमेंबा देवतादेशमं केळ्दातना तेरदिनल्लदे कल्याणोत्सवमं माडेनेंदिरे कन्यालोभदिननेक राजसुतर् बंदीशक्ति प्रहारदिं यमागारमनेय्दिदरेंदु पेळे लक्ष्मणं केळ्ददं गहनंगेय्यदातनरमनेय बागिलगे बंदु पार्थिव पुत्रनोर्वं कन्यार्थि बंदनेंदु निम्मरसंगरिपेंदु पडियरन नट्टुवुदुमवं बंदु बिन्नविसे बरवेळेंबुदं—

सिरिय हरिनील वेदिय
नुरस्थलं बीरसिरिय मरकत मणि वि-
ष्टरमं भुजद्वयं पो-
ल्तिरे पोक्कं राजसभेयनभयनुपेंद्रं ।। ३८ ।।

अंतंजन दिक्कुंजरदंते वरुतिर्पुदुं—

---

यह सोचकर कि यह कोई कारणपुरुष होगा, उनमें से एक वृद्ध ने कहा— शत्रुंदम इस राज्य का राजा है; उसकी पत्नी है कनकाभा; उन्हें जितपद्मा नामक कन्या हुई जो कामचक्रेश्वर के कुसुमबाण के समान है। ३७ इस कन्यारत्न के जन्म लेते ही उधर शस्त्रशाला में एक शक्ति ने भी जन्म लिया। तब एक आकाशवाणी हुई कि देवता निर्मित इस शक्ति को शत्रुंदम द्वारा प्रयोग करने पर, जो व्यक्ति उससे साहस से लड़कर इस आयुध को हाथ में पकड़ेगा, वह इस युवती और भारतवर्ष पर शासन करेगा। इस कारण से अन्य प्रकार से कन्या का विवाह करने के लिए राजा राजी नहीं है। कन्या पाने की लालसा से अनेक राज-कुमार आये लेकिन सबके सब उस शक्ति के आघात से यमलोक पहुँचे। ऐसा कहने पर लक्ष्मण निडर हो राजा के राजमहल के द्वार पर आकर द्वारपालक से कहा कि अपने राजा से कह दो कि एक क्षत्रियपुत्र कन्यार्थी बनकर आया है। राजा को समाचार पहुँचाया गया तो उसने आगंतुक को बुला लाने की आज्ञा दी। इन्द्रनील रत्नमाला को वक्षस्थल में धारण-कर, मरकतमणि-जटित सिंहासन पर विराजमान शत्रुंदम के राजमहल में उपेंद्र (लक्ष्मण) निर्भय होकर प्रविष्ट हुआ। ३८ —इस तरह, अंजन नामक दिग्गज के समान (लक्ष्मण के) आने पर, उसके लक्षणपूर्ण, देहकांति

तनु शभलक्षणक्के तवरादुदु नीरने कंतुराजनी-
तन तेरदिंदमीतने पोडर्पिन शक्तिगे दर्पभंगमं
जनियिसलार्पनेन्नसुतेगीतने वल्लभनक्कमेंदु क-
ण्मनदोडनेक्केयि परियें नोडिदना नृपनब्जनाभनं ॥ ३९ ॥

अंतु बंदु नृपन केलदोळिर्द कन्यारत्नक्के मनमेरगेयु मातंगेर-
गदे तनगिक्किद मणिमयासनदोळ् कुळ्ळिर्पुदुं कुमारन निरुपमा-
कारमं नोडिकन्ने कण्वेटंगोंडु—

जितपद्मे कंतुशर पी-※डित चेतःपद्मे जनक शस्त्राहतियिं
हतनादोडीतनीतन ※गति गतियेनगेंदु चित्तदोळ् तरिसंदळ् ॥ ४० ॥

आ समयदोळ् शत्रुंदमं सौमित्रिगिंतेंदः—निन्नसकलभुवनादेय-
मप्प रूपं नोडि मोगं नोडदमोघशक्तियिंदिडलेनगे बगे दंदपुदिल्ल;
नीनी कन्नेयासेयनुळिदु मगुळे बिजयंगेय्वुदेने—

निन्निडुव शक्तियळवुम- ※ नेन्नळवुमनीगळितें तोर्पे बेगं
तन्निमेने दृष्टि विषफणि ※ सन्निभमं शस्त्रशालेयिंदं तंदर् ॥ ४१ ॥

---

को देखकर, यह साक्षात कामचक्रेश्वर है, राजकुमारों को पराजित करनेवाली शक्ति के अभिमान को चकनाचूर करनेवाला इसके अतिरिक्त ओर कोई नहीं होगा; मेरी बेटी के लिए इसके अलावा और योग्य वर नहीं होगा; ऐसा सोचकर शत्रुंदम ने लक्ष्मण को बड़े प्यार से निहारा। ३९ —राज दरबार में प्रविष्ट लक्ष्मण ने वहाँ उपस्थित जितपद्मा के रूप सौंदर्य के सामने सिर झुकाने पर भी राजा को सिर झुकाए बिना अपने लिए तैयार किए गए रत्न-सिहासन में बैठ जाने पर उसके अनुपम आकार को देखकर युवती उसके प्रति मन हार बैठी। कामदेव के वाण के प्रहार का निशाना बनकर उसने मन में निश्चय किया कि अगर मेरे पिताजी द्वारा प्रयोग में लाये जानेवाले शक्ति-आयुध के आघात से कही इसकी मृत्यु हुई तो मेरा भी वही हाल होगा (मैं भी मर जाऊँगी)। ४० —तब शत्रुंदम ने लक्ष्मण से कहा : तुम्हारे इस रूपातिशय शरीर को देखकर इस अप्रतिम आयुध को तुम पर प्रयोग करने के लिए मन नहीं मानता; तुम इस कन्या की आशा छोड़कर लौट जाओ। यह सुनकर, लक्ष्मण ने कहा : तुम्हारे उस आयुध की शक्ति से मेरी अपनी शक्ति की तुलना करके अभी-अभी दिखा देता हूँ; उसे तुरन्त मंगवा लो। ऐसा कहने पर शस्त्रशाला से उस आयुध को, जो भयानक जहरीले साँप के समान था, मंगवा लिया। ४१ —लाये हुए

अंतु तंदु विवधार्चनेयिनर्चिसि मंत्रपूतं माडि शस्त्रमंपिडिदु समाहितमतियागेंदनतिदूरदोळिरिसि सर्वशक्तियिनिडुवुदुं—

कडेगालद सिडिलंतिरे
किडियं कारुत्तें कीरि बरे बंचिसि त-
न्नेडगैयिं शक्तिवलं-
गिडे पिडिदिट्टवन शक्तियं तलेविडिदं ॥ ४२ ॥

आ समयदोळ्—

पूमळेगळ् कळेदुवु कुसु-*मामोदं वळसे भृंग रवदोडने दिशा
व्योमांतरमं सुर भे- *रि मंद्र ध्वान घनरवं पुदिविनेगं ॥ ४३ ॥

परिकिसवेळ्पुदे लक्ष्मी- * धरनळवनवार्य वीर्यनातंगी दु-
र्धर शक्ति ग्रहणमदा*वरिदाय्तेंदमर समिति पोगळ्दतागळ् ॥ ४४ ॥

अंतु पोगळ्द दिव्यध्वनियिं लक्ष्मणनेंदरिदु—

क्षमियिसुवुदेन्न गेय्दरि * यमेगोमिगेंदु चकित चित्तं शत्रुं
दमनागळ् सौमित्रि * क्रमक्के विक्रममनुळिदु विनमितनादं ॥ ४५ ॥

अनंतरं सौमित्रियं विचित्रवस्त्राभरणंगळिंदर्चिसि, वहिरुद्यानदोळुदात्त राघवनिर्दुदं लक्ष्मणं पेळे केळ्दु किरिदानुं बलं बेरसु पादमार्गदिं रामस्वामियल्लिगे वंदुपायनपुरस्सरं सर्वांग प्रणतनागि

---

आयुध की विविध प्रकार से अर्चना करके राजा ने उसे उठा लिया और अपनी सर्वशक्ति को केन्द्रित कर आयुध प्रयोग किया। प्रलयकाल की घनगर्जना-सी चिनगारी वरसाता हुआ वह लक्ष्मण के पास आ रहा था कि उसे अपने बायें हाथ से पकड़कर वश में कर लिया। ४२ —तब, आकाश से पुष्पवर्षा हुई, पुष्प-कुसुमों को घेरकर भ्रमर आनन्द से भिन-भिनाते हुए उड़ने लगे। यह गुंजन देवभ्रमरों के निनाद की भाँति दिगंतों तक फैल गया। ४३ लक्ष्मीधर लक्ष्मण की शक्ति की परीक्षा ली सकती है? अद्वितीय साहसी इस उपेन्द्र को इस सामान्य शक्ति से भिड़ना कोई असाध्य कार्य है? ऐसा कहकर देवताओं ने लक्ष्मण की प्रशंसा की। ४४ —इस गुणगान को सुनकर, यह जानकर कि यह लक्ष्मण ही है, आश्चर्य चकित होकर, अनजाने में किए गए अपने कृत्य के लिए शत्रुंदम ने क्षमायाचना का निवेदन कर, सिर झुकाकर प्रणाम किया। ४५ —तत्पश्चात लक्ष्मण को दिव्य वस्त्राभरणों से सजाकर, पूजाकर, उससे यह जानकर कि उद्यानमंदिर में राम-सीता है, थोड़ी सेना को साथ लेकर, वहाँ जाकर पूजाविधियों से उन दोनों को प्रणामकर,

सीतदेविगं तुळिलगेय्दु वंदनमाला मनोहरमुं ध्वजराजि विराजितमुं मंगलानक ध्वान भरित भुवनांतरालमुमुपहार कुसुम मत्त मधुकर झंकार मुखरमुमप्प पुरमनरमनेयुमनतिविभूतियिं पुगिसि समयोचित विविधोपचार परिचर्य चातुर्यमं मेरेदु शुभदिनमुहूर्तदोळ्—

परिणयनमागे पद्मो- ※ दरंगे जितपद्मेयोडने मंगल गीत
स्वरदोडने मंगलानक-※विरुति पळंचिदुदु गगन दिगवनितलमं ॥ ४६ ॥

अंतल्लि कतिपय दिनमिर्दा मूवरुं पूर्वाभिमुखदिं पयणं बोगि वंशस्थलमेंब पोळलनेय्दि तत्समीपद वंशस्थल गिरिदरी देशमं दिवसावसान समयदोळेय्दि देसेगेट्टोडुव पौरजनमं रघुवीरं कंडिदे-कारणमोडिदपुदेंदु बेसगोळ्वुदुमिदिगे मूरुदिनं मोदलगोंडु रात्रिसम-यदोळी शिखरि शिखरदोळतिभयंकरमुमत्यद्भुतमुमागे पलवु सिडिल दनिगळोंदादंतश्रुतमप्पदोंदु रौद्र ध्वनियं केळ्दंजि पोळलेल्लं यथायथमागोडिदप्पुदेंदु पेळ्वुदुमा ध्वनिगेय्वरारेंबुदनारय्वमेंदानगम-नेरि नोळ्पागळल्लि चतुर्मुख प्रतिमा योगदोळ् निंदु शुभध्यानमन-प्पकेय्दु महर्षियरं कंडेय्देवर्पुदुमवरं सुत्ति सुय्युत्तिर्द विषम विषोर-गंगळुं मापादमस्तकंबरमेडेवरियदे मुसुरिमुत्तिर्द विषमवृश्चिकंगळुं

---

विभिन्न तोरणों, आकाश में व्याप्त होनेवाले विविध मंगल वाद्य-घोषों, विविधि कुसुमार्चनाओं के साथ उन्हें राजमहल में लिवा लाकर समयो-चित उपचारों से पूजनकर, एक शुभ मुहूर्त में, पद्मोदर लक्ष्मण के साथ जितपद्मा का विवाह सम्पन्न हुआ। तब मंगलध्वनि एवं मंगलभेरीनाद अवनि-अंवर एवं दिगंतों तक फैल गया। ४६ —इस तरह वहाँ कुछ दिन रहकर वे तीनों पूर्वदिशा की ओर चलकर वंशस्थल नामक नगर पहुँचकर, शाम तक वहाँ से पास ही स्थित वंथस्थल गिरिप्रदेश पहुँच गये। तब तितर-वितर होकर भागनेवाले पुरजनों को देखकर राम ने कारण पूछा तो उन लोगों ने वताया कि आज से तीन दिनों से इस पर्वत प्रदेश से रात के समय अत्यद्भुत एवं भयानक घनगर्जना सुनाई देती है। उसे सुनकर सारा गाँव भाग रहा है। यह सुनकर इस विचार से कि देखें कि यह आवाज उत्पन्न करनेवाला कौन है, वहाँ गये। उन्होंने वहाँ चतुर्मुख प्रतिभायोग में खड़े होकर शुभ ध्यान में मग्न महर्षि को देखा। उनके पास जाकर, देखा तो भयानक सर्पों ने उन्हें घेर रखा था; एड़ी से चोटी तक उनका शरीर बिच्छुओं से भरा हुआ था। राम-लक्ष्मण के पुण्य-प्रभाव से वे सव अदृश्य हो गये। राम-लक्ष्मण ने वहाँ उपलब्ध पर्वत-पुष्पों एवं चंदन से महर्षि की अर्चना की। इतने में सूर्यास्त हुआ।

रामलक्ष्मणर पुण्यप्रभावदिनदृश्यमप्पुदुमा पर्वतद सुगंध कुसुमंगळिंद-
मवरनर्चिसुत्तुमिरॆ नॆसपॆडुवुदुमति रौद्रमप्प भूतवेताळ समूहमुमनति-
भयंकरमागॆ गजरि गर्जिसुव सिंह शरभ शार्दूलंगळुमनत्यद्भुतमुमा
गुर्वुमागॊ मिंचुं मॊळगुं बॆरसु सुरिव बिसुनॆत्तर मळॆयुमं विगुर्विसॆ—
परम जिनमुनिगॆ योगां- * तरायमांमरोपसर्गदिंदक्कुमॆ नि-
ष्ठुर मारुन हतिथिंदं- * तरु संचलिपंतॆ मेरु संचलिसुगुमे ॥४७॥

अंता मुनिगॆ महोपसर्गमं माळ्प देवन महारौद्रानुभावमं
किडिसलॆंदु तम्म देवताधिष्ठत धनुर्युगळमनेरिसि—

कॊडॆदुदो मंदरं धरॆगॆ बिळ्दुदॊ भानुरथं नभस्स्थलं
पिडिसिदुदॊ धरित्रि मॊळगित्तॊ महाप्रलयानलार्चियिं
दॊडॆदुदॊ वज्रवेदिकॆयॆनल् नभम पुदिदत्तु नीवि जे
वॊडॆयॆ बलाच्युतर् त्रिभुवनैकभमं कृत चाप टंकृतं ॥४८॥

आरौद्रध्वनि कर्णलग्नमागॆ भग्नाशयनग्निप्रभं हतप्रभ-
नागि विभंग ज्ञानदिनिवरॆंटनॆय बलदेव वासुदेवरॆंदरिदु निज-
ज्योतिर्लोकमनोडि पॊक्कनित्तल्—
त्रिदशोपसर्गमं बगॆ- * यदॆ कुलनगदंतॆ देशभूषण मुनिपर्
सदमल शुक्लध्यानदॊ-* ळुदात्तरिरॆ घातियाय्तु कदळीघातं ॥४९॥

---

अँधेरा होते ही रुद्राकार के भूत पिशाच और गरजनेवाले सिंह-शार्दूल दृष्टिगोचर होने लगे। बिजली चमकी, घन गरज उठे, गर्म रक्त की वर्षा होने लगी। श्रेष्ठ जिनमुनि के योगसाधना में रहते हुए इस तरह की भयानक बाधाएँ उसे विचलित (विमुख) कर सकती हैं? तूफान से पेड़ पौधों के टूट पड़ने पर भी मेरुपर्वत हिलता है? । ४७ इस मुनि को कष्ट देनेवाले देवता के रौद्रभाव को मिटा देने के विचार से अपने दिव्य धनुष-बाणों को चढ़ाया तो, राम-लक्ष्मण के बाणों का टंकार आकाश मंडल में व्याप्त होने पर, ऐसा प्रतीत हुआ मानो, मंदर पर्वत टूट पड़ा हो, सूर्य का रथ पृथ्वी पर आ गिरा हो, आकाश फट गया हो, पृथ्वी ने मुँह खोल दिया हो या प्रलय की वड़वाग्नि से वज्रवेदिका फट गयी हो। ४८ —उस रौद्रध्वनि ने कानों के परदों को फाड दिया तो आशाभग्न अतिप्रभा नामक देव निर्वीर्य होकर अपनी ज्ञानदृष्टि से यह समझकर कि ये लोग अष्टवलदेव, वासुदेव है, वह भागकर अपने ज्योतिर्लोक में पहुँच गया। इधर, देवता द्वारा उत्पन्न पीड़ा-बाधाओं की चिंता किये विना कुलपर्वत-सा देश-भूषण मुनिवर निश्चल-चित्त थे। ४९ इस तरह निश्चल चित्त हो रहने पर उन्हें अनन्त ज्ञानसिद्धि

अंतु विगत घातिचतुष्टयरनंतज्ञानादि नव केवललब्धिवडे-वुदुं—

दुंदुभि निनाद मुखरं ※ मंदार नमेरु विकच कुसमासारं
संदिसे केवलि पूजेगे ※ बंदतु चतुर्निकाय देवनिकायं ।। ५० ।।

अंतु बंदु पूजिसुवुदुमुदात्तराघवं किंचिदुन्नमित कंधरं मुकुलितांजलि पुटं निमगुपसर्गमाद मार्गमं बेसससिमेने देशभूषण केवलिगळितेंदु बेससिदर्:— पद्मपुरमनाळ्व विजयपर्वत क्षितिपतिय चरनमृतस्वरनेंबनतन कुलांगनेगे तनयरुदितनुमनुदितनुमेंबरादराकेयोंडनापुरद वसुभूतिवेसर सुरधामरं मरेवाळुत्तुमिरलुपभोग रागवेगदिं विवेक विकलेयागि मुंदरियनोंदुदिवसं तन्नवरनमृतस्वरनिरे नमगें मेच्चदंते नेगळल्बारदेंबुदुमापाण्बनमृतस्वरनं दुरित भीरुवागदारुमरियदंते कोल्वुदुं—

अपवादक्कगियदे नर- ※क पातमं बगेयदा महापातकि मु-
न्नुपपतियिं पतियं कोलि-※सि पुत्रवधेगं बळिक्के बगेयं तंदळ् ।। ५१ ।।
स्वैरिणि बगेवंदागळे ※ मारकीडेयनोंडिर्चलेंदुपपतियं
दारकनं कोलवेळ्दळ् ※ दारुण कर्मक्के कामुकर् पेसुवरे ।। ५२ ।।

---

उपलब्ध हुई। वे केवलज्ञानी हुए। उनकी पूजा के निमित्त देवताओं ने मंगल-वाद्य-घोषों के साथ, मंदार, सुरंगी और अन्य विविध पुष्पों को संग्रहीत किया और आकर पूजा की। ५० —इस तरह आकर पूजा करते समय वहाँ श्रीराम मुनिवर के पास आकर, हाथ जोड़कर यह पूछने पर कि आपको इस तरह के कष्ट देने का कारण क्या है तो देशभूषण मूनि ने यों कहा— पद्मपुर के राजा विजय के अनुचर का नाम था अमृतस्वर। उदित अनुदित उसके दो पुत्र हुए। उसकी पत्नी का उस नगर के वसुभूति नामक ब्राह्मण के साथ अनैतिक संबंध था। अपने इस प्रकार के भोग-विलासमय जीवन के कारण अपना विवेक खोकर वह युवती उस ब्राह्मण से बोली : मेरे पति के साथ हमारा रहना उचित नहीं है। उसकी बात सुनकर, पाप से तनिक भी न डरकर उस ब्राह्मण ने अमृतस्वर की हत्या कर दी। अपवाद से न डरकर, नरक से झिझके बिना, पत्नी ने उपपति के हाथों पति की हत्या कराने के साथ-साथ बेटों की भी हत्या करानी चाही। ५१ इच्छा होते ही उपपति से संभोग करने में बाधक बननेवाले पति और अपने ही पुत्रों को मारने की सलाह दी। कामातुर लोग हीनकृत्य से झिझकते थोड़े ही हैं? । ५२

अंतु पेळ्वुदुमामातनाकॆय सॊसॆ केळ्दु तन्न पुरुषनप्पुदितंगॆ पेळॆ वसुभूतिय पॆंडतियप्प रतिकारिणियुमीर्ष्यॆयिददनॆ पिसुण्बॆळॆ केळ्दुदितनुमनुदितनुं विदित वृत्तांतरागि वसुभूतिगुपायदिनपायमं माळ्पुदुमवं सत्तु शार्दूलास्यमॆंब महागहनदॊळ् कालजंघनॆंब शबरनागि पुट्टिदनॆंदु पेळ्दु मत्तमितॆंदु बॆससिदरा पद्मपुरदुद्यानदॊळ् सुमतिवर्धनरॆंबाचार्यर् बंदिर्दरॆंदु ऋषिनिवेदकनरिपॆ विजयपर्वत महराजं पूजॆवॆरसु बंदर्चिसि पॊडॆवट्टु कुळ्ळिर्दु धर्ममं केळ्दु वैराग्यपरनागि दीक्षॆगॊळ्वंदॊडनॆ सहोदररप्पुदितनुमनुदितनुं दीक्षॆगॊंडु तीर्थवंदनार्थ सम्मेदशैलक्कॆ पोगुत्तिर्प समयदॊळा मुनियुगळमं कंडु भवबद्ध क्रोधदिं कालजंघं कॊललनिजंघालनागि मुट्टवर्पुदुमवरवन धूर्त चेष्टॆयनरिदु—

उपसर्ग परिपडुविन- * मयघनमाहारमॆंबिवं तॊरॆदु समं
तुपशांतर् कैयिक्किरॆ * कृपाळु तत्पति दुरात्मनं बारिसिदं ।। ५३ ।।

अॆंदु बॆससॆ—

अनितु दयापरतॆ किरा- * त नायकंगादुदाव कारणदिनदिं
मुनिमुख्य बॆससिमॆनॆ दि- * व्यनाददि दिव्ययोगि हलिगिंतॆंदं ।। ५४ ।।

—उन्होंने बताया कि इस तरह कहने पर यह बात उसकी बहूने सुन लिया और अपने पति उदित को बतायी तो वसुभूति की पत्नी रतिकारिणी और उदित-अनुदित ने मिलकर उपाय से वसुभूति को मरवा दिया। मरने पर उसने (वसुभूति ने) शार्दूलास्य कानन में कालजंघ नामक किरात के रूप में जन्म लिया। उन्होंने कहानी को आगे बढ़ाते हुए कहा कि पद्मपुर के उद्यान में सुमतिवर्धन नामक आचार्यजी के आने की सूचना सेवकों (गुप्तचरों) से पाकर, वहाँ आकर उनका पूजन करके धर्म संबंधी बातें सुन-समझकर वैराग्य अपनाकर दीक्षा लेनेपर उदित-अनुदित ने भी दीक्षा लेकर तीर्थवंदना के उद्देश्य से सम्मेदशैल की ओर जा रहे थे कि रास्ते में उन दोनों को देखकर पूर्व-जन्म के द्वेष के कारण क्रुद्ध होकर उन्हें मारने के लिए आगे वढ़ रहा था कि उसके व्यवहार को समझकर, वे अपने पर आयी हुई विपत्ति की समाप्ति होने तक, देह आहार की इच्छा तजकर उस किरात की राह रोक रहे थे कि किरात के मन में उनके प्रति दया जाग्रत हुई। ५३ ऐसा कहने पर, श्रीराम ने मुनि से निवेदन किया कि कृपया यह बतावे कि उस किरात में इस तरह का परिवर्तन कैसे हुआ तो उन्होंने गंभीरध्वनि में

यक्षनाम ग्रामवासिगळेकोदरर् सुरूपनुं करुषनुमेंबरल्लिगोर्व व्याधनोंदु पक्कियं पिडितरे करुणिसि बेडंगे बेलेगुडिसि बिडिसिदोंडा पक्षियुपशमक्कें पक्कुगोंट्टुसुवं बिट्टु बेडवट्टिगोंडेयनादुदा सुरूपनुं करुषनुं कळिदुदितनुमनुदितनुमागि पुट्टिदरातनुं मुन्निनुपकारं कारणमागे कोललीयदे नियमिसिदनेंदु बेससि मत्तमितेंदर्—

सदमल चरितंतम्मि *दुदितोदितमादुदेंनिसि संन्यसनदे स-
त्तुदितानुदित मुनीश्वर * रुदात्तरुत्कृष्ट देवगतियं पडेदर् ।। ५५ ।।

मत्तित्तलवर्गपायमं बगेद बेडं विगतासु दुरंत दुर्गतियोळ् तोळल्देंतानुं मनुष्यगतिवेत्तु तापसनागि सत्तातं ज्योतिर्लोकदोळग्निप्रभनेंब देवनादनित भरतक्षेत्रदरिष्टपुरमनाळ्व प्रियव्रत महीभुजंगे पद्मावतियुं कनकाभेयुमेंबरिर्वेररसियरादरल्लि पद्मावतिगे मुन्नममरगतिवडेदुदितानुदितरिर्वरुं बंदु रत्नरथ विचित्ररथरेंब तनयरादरा ज्योतिष्कनल्लि बंदु कनकाभेगे तनूभवननुंदरनेंबनादना प्रियव्रतनुं तन्न मक्कळ्गरसुतनमं कोट्टु तोरेदारुदिवसं संन्य संगेय्दु समाधि मरणदिं स्वर्गक्कें पोदनित्तलरसु मगनोर्व निजनतूभवेयं

---

कहा—। ५४ —यक्ष नामक ग्राम में सूरूप, करुष नामक दो भाई थे। एक किरात एक दिन पक्षी को पकड़ लाया तो उन्होंने पक्षी को बंधन से छुड़ाया। बंधन-मुक्त होते ही उस पक्षी ने प्राण त्याग दिये और अगले जन्म में किरात के रूप में जन्म लिया। सुरूप, करुष ने अगले जन्म में उदित-अनुदित के रूप में जन्म लिया। पूर्वजन्म के उपकार को याद करके किरात ने उन्हें मारे बिना छोड़ दिया। मुनि ने आगे बताया कि— सद्व्यवहार के कारण उदित-अनुदित किरात से बचकर मुनि बन गये और कालवश होकर फिर उत्कृष्ट देवपद को प्राप्त हुए। ५५ —उनका बुरा चाहनेवाला किरात भयानक दुर्गति में फँसकर अनेक वर्षो के बाद मानव जन्म लेकर तपस्वी बनकर, मरकर ज्योतिलोक में अग्निप्रभा नाम का देव बना। इधर भरतभूमि के अरिष्टपुर के शासक प्रियव्रत नामक राजा को पद्मावती, कनकाभा नामक पत्नियों में से पद्मावती के गर्भ से, पूर्वजन्म में देवगति को प्राप्त उदित-अनुदित, रत्नरथ-विचित्ररथ के नाम से जन्मे। कनकाभा को अनुंदर नामक पुत्र हुआ। प्रियव्रत ने अपने पुत्र को राज्य सौंपकर सन्यास-दीक्षा लेकर छ दिनों की तपस्या करके समाधि-मरण से स्वर्ग गया। उसके पुत्र रत्नरथ का एक राजा अपनी कन्या श्रीप्रभा से विवाह कराना चाहता

श्रीप्रभेयं रत्नरथंगे मदुवेमाळ्पेनेंदिर्पुदुमाकेयननुंदरं तनगे वेडि-पडेयदे कूसुगुडदातनमेलेत्ति वर्पुदुं रत्नरथनुं विचित्ररथनुं केळ्दु दारियिट्टु सुत्तिमुत्ति—

पिडिदु परिभविसि कोल्लदे
कडंगि पोरमडिसि कळेदु नाडि दैन्यं
वडिसिदोडनुंदरं व-
ल्पिडिदेवदिनुग्रकोपि तापसनादं ॥ ५६ ॥

इत्तला रत्नरथ विचित्ररथर् चिरकालमरसुगेय्युत्तिर्दु वैराग्यदिं तोरेदु तपंगेय्दु शरीरभारमनिळिपि नाकलोक सुखमननुभविसि वंदु सिद्धार्थनगरमनाळ्व क्षेमंकर नरेंद्रंगं विमलादेविगं देशभूषण कुलभूषणरेंब तनयरागिर्पुदुमेम्मनेम्म तंदे विद्याभ्यास निमित्तं मत्तोंदु पुरदोळिरिसे सकलविद्येगळुमं सागरघोपरेंबुपाध्यायर् कलिसे कल्तु गुरुगृहागमन पूजानंतरं महाविभूतियिनेम्म पुरमं पुगुव समयदोळ् कैगेय्दु करुमाडद मेलिर्दकन्नेयं कंडेमगे परिणयनक्कें तंदरसुमगळेंदु वगेदु वयसि नोडुत्तरमनेयं पोक्केम्मोडवुट्टिदळेंदरिदु पोल्लदं वगेदेवेंदु अदुवे निर्वेग निमित्तमागे तोरेदु तपंवट्टु चारण ऋद्धिवडेदु पोगलोडमेमगे मूरुंजन्मदोळं जनकनाद निरतिशय

---

था। लेकिन अनुंदर ने निवेदन किया कि श्रीप्रभा उसे मिले। अपनी कन्या उसे देने से इनकार करने पर वह (अनुंदर) युद्ध के लिए तैयार हुआ। इसे सुनकर रत्नरथ, विचित्ररथ कुपित हुए और अनुंदर से लड़कर उसे पराजित कर— वंदी वनाकर, विनामारे, नगर से वाहर भगा दिया। अनुंदर हठी (छली) वनकर उग्र कोपी मुनि हुआ। ५६ इधर रत्नरथ, विचित्ररथ अनेकवर्ष तक राजा वनकर शासन करते हुए, वैराग्य अपनाकर राज्यलोभ को त्यागकर, तपस्या करके, शरीरभार को तजकर, देवलोक-सुख का अनुभव (उपभोग) कर पुनर्जन्म में सिद्धार्थ नगर के शासक राजा क्षेमंकर और रानी विमलादेवी के यहाँ देशभूपण, कुलभूपण के रूप में जन्मे। पिता ने पुत्रों को, विद्यार्जन के लिए एक और नगर में रखा तो वहाँ सागरघोष नामक गुरु से समस्त शिक्षा पाकर, गुरुदक्षिणा देकर, अपने राज्य में आकर राजप्रासाद में प्रवेश कर रहे थे कि आभरणों से विभूपित होकर मज़िलवाले घर में रहनेवाली एक कन्या को देखकर इस विचार से कि हमारे विवाह के लिए लायी हुई राजकुमारी होगी, मोह से निहारते हुए, भीतर गये। लेकिन फिर इस विचार से कि हमने

प्रेमानुबंधदिं क्षेमंकर महाराजनेम्मगल्केगे सैरिसलारदे आहार शरीर निवृत्तिगेय्दु मुडिपि गरुडाधिपनागि महालोचनाभिधानमं पडेदीगळेम्म केवल प्राप्तियनरिदु पूजिसल् बंदनेंदु बेससि—

तापस रूपंविगता- * लापं मुंपेळ्दनुंदरं कौमुदियें-
बापुरमनगलदिर्पं * कौपीनधरं जटाधरं दंडधरं ।। ५७ ।।

आ पुरपति पोगळ्वुदुमा*तापसनं मदन वेगे तत्पतिगे मरु-
च्चापदोळमधिप मिथ्या *रूपदोळं माडदिर् गुणारोपणमं ।। ५८ ।।

एने सुमुखं विमुखनागे—

केम्मनुम्मळिसि कोपिसदिर् माण्-
निम्मनुज्ञे दोरेकोडोडे साल्गुं
निम्म नच्चिन तपोधननं तं
देम्म काल्गेरगुवंतिरे माळ्पें ।। ५९ ।।

एंदोडंबडिसिनिज तनूजेयनेकांतक्के करेदु तापसन तपमं किडिसुवुपायमं कलिसि कळिपुवुदुं—

जननिय बेसदिं सम्मो- * हन विद्येये मूर्तिगोंडु बर्पंतेवोला-
मुनियिदेडेगोर्वळे पू-*विन पोळ्तरोळारुमिल्लदेडेयोळ् बंदळ् ।। ६० ।।

---

अनुचित सोचा है, चिंतित हुए। यही चिंता वैराग्य का कारण बनी तो नगर छोड़कर, तपस्या करके, सिद्धि पायी। महाक्षेमंकर, जो तीनों जन्मों में उनका पिता था, इस अलगाव को सहने में असमर्थ होकर, अनशन व्रत से शरीर त्यागकर गरुडाधिप एवं प्रसिद्ध बनकर अब हमें प्राप्त केवल-प्राप्ति को जानकर पूजने आया है। मुनि अनुंदर कौमुदी नामक नगर में, कौपीन धारणकर, जटा बढ़ाकर, 'दंडपाणी' बनकर जी रहा था। ५७ उस राज्य का राजा उस मुनि की प्रशंसा कर रहा था। रानी मदनवेगा ने राजा से कहा कि जिस तरह कामदेव के क्षणिक बाणों को शाश्वत समझ बैठते हैं उसी तरह इस मुनि के वेश को देखकर उन गुणों की प्रशंसा मत कीजिए जो उसमें नहीं हैं। ५८ —इस बात से राजा दुःखी हुआ तो वह बोली, व्यर्थ ही दुःखी मत बनिए। जिस मुनिपर आपका इतना विश्वास है उसकी तपस्या भंग करके आपके चरणों में डाल देती हूँ। अनुमति दीजिए। ऐसा कहकर— । ५९ —राजा को मनाकर, बेटी को बुलाकर, मुनि की तपस्या भंग करने का उपाय एकांत में समझाकर भेज दिया। माँ की आज्ञा के अनुसार पुष्प विकसित होते समय मुनि के पास वह ऐसे आयी मानो सम्मोहन विद्या

आ समयदोळ् सूक्तमं जपियिसुतिर्दाकेय कालपळंचि-नुंगुरदिंचरमतनुचाप टंकारदंते किवियं पळंचे जपमं मरेदु कण्णं तेरेदु नोडि घन स्तनाद्यवयवंगळ भंगि तपोभंगमं माडे—

स्मर रागं मनदोळ् बे * वेरिविनेगं ब्रह्मचर्यनिष्ठागरिमं
करगुविनमेळसे कण्गळ्* वराक भिक्षाकनाकेगंदितेंदं ॥ ६१ ॥

नीनी संजेयोळंजदे नेरमिल्लदे बंद बरवावुदेंबुदुमेम्मब्बे नेव-मिल्लदेनगे मुनिदु जडिदु नुडिये बंदु निम्मं कंडु संतोषदंतनेय्दिदेनेनगे निम्म दीक्षेयं कुडुवुदेने दिटमेंदु वगेदिदाव गहनमीगळे कैकोळ्ळेंबु-दुमाके नां कुडगूसप्पेनदु कारणदिनेम्म तायल्लिगे पोगि बेडिमेने पेत्त मगळनेमगे कुडलरियरेंवुदुमानरसि नडपिद कुडगूसेनेन्नं कुडुबरें-बुदुं तापसं मदन संतापन शरतापक्के सुगिदु कैविडियलडहडिसुवुदुं नीमेके तुरिपंगेय्विरेम्मरसियं प्रार्थिसि पोडेवट्टु बेडिकोंडु विधि-पूर्वकं मदुवेनिल्वुदेंदोडंवडे नुडिदोडगोंडु पोपुदुं—

---

ही आ गयी हो। ६० —उस समय जप करते हुए मुनि के कानों में (जब) उसके पैरों की घुंघरू की ध्वनि कामदेव के बाण की टंकार-सी सुनाई पड़ी तो (उसने) जप भूलकर, आँखें खोल दी और बड़े (भारी) कुचद्वयों ने और अन्य मोहक अँगों ने उसकी तपस्या को भंग कर दिया। मन्मथ का ताप मन में व्याप्त होने लगा। अब तक की सारी ब्रह्मचर्य-निष्ठा गल गयी। शोचनीय स्थिति में, उसे दैन्य भरी आँखों से देखकर मुनि ने पूछा—। ६१ इस सूर्योदय के समय निस्संकोच होकर तुम्हारा यहाँ आने का कारण क्या है? उत्तर में वह बोली : मेरी माता ने अकारण मुझे डाँटा, इसलिए मैं यह सोचकर यहाँ आयी कि आपको देखकर संतुष्ट हो जाऊँ। आप मुझे दीक्षा देने की कृपा करें। इस आग्रह को सत्य समझकर उसने कहा : यह कौन-सा महाकार्य है, अभी देता हूँ। लेकिन वह बोली : मैं विवाह योग्य कन्या हूँ, जाकर मेरी माता से मुझे माँग लीजिए। मुनि ने कहा कि माँ अपनी कन्या को किसी मुनि को देने के लिए तैयार नहीं होगी। इस पर युवती बोली : मैं रानी की बेटी (राजकुमारी) हूँ, आप मुझे माँग लीजिए तो अवश्य दिए बिना नहीं रहेंगी। लेकिन मुनि कामपीड़ा से तड़पकर युवती का हाथ पकड़ने की आतुरता से आगे बढ़ा तो वह बोली : आप इतनी उतावली क्यों करते हैं? मेरी माता से निवेदन करके, विधिवत् विवाह कर लीजिए। इस तरह समझाने पर मुनि राजमहल की ओर जाने लगा तो प्रतीत हुआ कि कामदेव के पुष्पवाणों की बौछारों में फँसकर, अपनी तपस्या के तेजस्

कन्नेय बळिसंदिननें ॐ बन्नं मनसिजन पूविनंबिन मळेयोळ्
कन्नेय बळिसंदं मुनि ॐ तन्न तपस्तेजदेसकमोळसोर्विनेगं ॥ ६२ ॥

अंतुरात्रि समयदोळ् राजपुत्रिय बळिविडिदु बंदु राजसदनमं पोक्कु मदनवेगेगे कैगळं मुगिदु निम्म नडपिद मगळप्पनागदत्तेय-नेमगित्तु कन्यादान फलमं पडेवुदेंदु सर्वांग प्रणतनागिर्पुदुमा समयदो-ळरसनरसिन्यल्लिगे बंदु गोरवनिरवं कंडु कडुमुळिदु पलतेरदिं परिभविसे पोरमडिसि कळेये—

परिभवमं पोर्दिद दु-ॐष्परिणतियिं कळिपि कालमं दुर्गतियोळ्
तिरितंदु मनुज गतियोळ्ॐदुरंत दुष्कर्म फलमननुभविसुत्तुं ॥ ६३ ॥

मत्तं तापस रूपं कळेदु काय क्लेशद फलदिं ज्योतिल्लोक-दोळग्निप्रभनेंब देवनादनिन्नलनंतवीर्य केवलिगळ पूजेगे बंददेवसभे-योळोर्व देवं मुनिसुव्रत तीर्थकर भट्टारकर तीर्थ संतानदोळ् निम्मंते केवलिगळागि धर्मोपदेशंगेय्वरारेंदु बेसगोळ्वुदुं—

जलजलिसे दशन किरणा-ॐवलि मृदु मधुर प्रणादर्दिं केवलि के-
वललब्धि देशभूषण ॐ कुलभूषण दिव्यमुनि युगक्ककक्कुमेनल् ॥ ६४ ॥

अदना सभेयोळिर्दग्निप्रभदेवं केळ्देम्मोळाद जन्मांतर वैरमं विभंगज्ञानदिंदरिदीगळेमगे योग विघ्नोद्योगदोळिदु नीं पुण्य पुरुषनुं

---

को खोकर, मुनि अपने पास आयी हुई कन्या की शरण में उसी तरह गया जिस तरह पश्चिम दिशा-कन्या की शरण में सूर्य । ६२ —इस तरह रात के समय राजकुमारी का अनुसरण करते हुए राजमहल में प्रविष्ट होकर, हाथ जोड़कर मदनवेगा से बोला : अपनी कन्या नागदत्ता को मुझे देकर कन्यादान का फल पाइए । ऐसा कहकर साष्टांग प्रणाम कर रहा था कि राजा वहाँ आया और मुनि की स्थिति देखकर, कुपित होकर अनेक तरह से नीचा दिखाकर, गालियाँ देकर, बाहर निकलवा दिया तो, हँसी का पात्र बनकर, प्राप्त दुस्थिति में जीवन बिताकर, दुर्गतिपाकर, भिक्षाटन करते हुए मनुष्य जन्म में दुष्कर्म फल का उपभोग करते हुए— । ६३ मुनि रूप को तजकर, शारीरिक श्रम के फलस्वरूप ज्योति-र्लोक में अग्निप्रभा नामक देव बना । इधर अनंतवीर्य केवलियों के पूजन के लिए आये हुए, देवसभा में एक देव के यह पूछने पर कि मुनि सुव्रत तीर्थकर भट्टारक की परंपरा में आपकी तरह केवलज्ञानी पद पाकर और कौन धर्मोपदेश कर रहा है, तो एक ज्ञानी ने मधुरवाणी में बताया कि यह क्षमता देशभूपण और कुलभूषण दो मुनियों में है । ६४ —इस बात को सभा में उपस्थित अग्निप्रभा ने सुनकर हमारे भीतर के जन्मांतर वैर

चरमदेहधारियुमुप्पुदरिंदीतं निन्न मुळिसिंगॆ भीतनागि मुन्निन तन्न मुळिसनुरिदुपशांत स्वांतनी सभॆगॆ वंदिर्दनॆंदु राघवंगॆ बॆससुवुदुम- दॆल्लमं गरुडाधिपं केळ्दु संतोषदंतमनॆय्दि—

मत्तनयोपसर्गमनदिर्पिद निन्न गुणप्रतिष्ठॆ लो-
कोत्तरमाय्तु निन्न समय प्रतिपालन शील शक्ति सं-
पत्तिगॆ मॆच्चिदॆं नॆनॆवुदुं नॆनॆदागळॆ वर्पॆनॆंदु मॆ-
च्चित्त निदेनमानुषमो राघव संचित पुण्य संचयं ॥ ६५ ॥

नरनाथंगित्तु तन्नं नॆनॆद समयदोळ् वर्पॆनानॆंदु मॆच्चं
चरितार्थ भक्ति भारानत मणिमकुटं हर्ष वाष्पांबुवर्ष
गरुडं बीळ्कोंडु तत्केवलिय पदयोजगळं तन्न तोट्टा-
भरणप्रद्योतियिंदस्खलितमॆनॆ नभं तन्न लोकक्कॆ पोदं ॥ ६६ ॥

भूवंद्य देश भूषण * केवलिगळ समवसृति विहारिसिद्दु भ-
व्यावलिगळनाराखं- * डावनियॊळ् तणिपलॆंदु धर्मामृतदिं ॥ ६७ ॥

तदनंतरं वंशस्थलमनाळ्व सुप्रभनरेंद्रं वंदु रामलक्ष्मणरं पूजिसि वंशस्थल नगोपरिम तलदोळ् विचित्र चैत्य भवनंगळि वहु प्राकार प्रासाद पंक्तिगळिनेकांत कमनीय मप्पंतु पॊळलं माडिसि

---

को ज्ञानबल से जानकर, मेरी तपस्या मे वाधा डाल रहा था। तुम पुण्य पुरुप होने के कारण अपना क्रोध तजकर शांत होकर इस सभा में आये थे। ऐसा राम को वताने पर सारी वातें सुन-समझकर गरुडाधिप अत्यंत संतुष्ट होकर वोला, मेरे पुत्र की दुष्ट प्रवृत्ति का निवारण करा देनेवाले तुम्हारे गुण लोकोत्तर है। तुम्हारे न्याय-विवेचन से मैं संतुष्ट हूँ। राम! तुम जिस क्षण मुझे याद करोगे उसी क्षण मैं उपस्थित हो जाऊँगा। ऐसा उसने वचन दिया। श्रीराम द्वारा अर्जित पुण्य अगाध हैं। ६५ राम के स्मरण करने पर तुरन्त उपस्थित होने का वचन देकर गरुड़ाधिप ने भक्ति से अपने भारी शीश को झुकाकर आनंदाश्रु वहाते हुए अपने द्वारा पहने हुए आभूपणों की प्रभा से आकाश को आलोकित करता हुआ अपने लोक में चला गया। ६६ विश्व-वंद्य देशभूषण-केवली के धर्मामृत उपदेश आर्य-खंड के भक्तों की ज्ञान-तृषा को शांत करता हुआ सर्वत्र व्याप्त हुआ। ६७ तत्पश्चात वंसस्थलपुर का राजा सुप्रभ आया और राम लक्ष्मण का पूजन कर, वंसस्थल पर्वत के शिखर पर स्थित विचित्र चैत्य भवनों से युक्त प्रासाद भवनों का निर्माण कर उन्हें वहाँ रखकर सेवा करता रहा। अतः वंसस्थल गिरि का नाम

रामलक्ष्मणरना पॊळलॊळिरिसि बॆसकॆय्युत्तिरॆ वंशस्थल गिरिगॆ रामगिरियॆंब पॆसराय्तु; मत्तमवरल्लि तळर्दु तॆंकमॊगदे निच्चवणगळिं बंदु पॆर्वळुवं पॊक्कु कर्णरवयॆंब तॊरॆयं पाय्ददर तॆंकणतडियॊळॊंदु रम्यप्रदेशदॊळ् विश्रमिसिर्पुदुमल्लिगॆ सुगुप्ति गुप्तरॆंब गगन चारण युगलं गगन तलदि नवनितलक्कवतरिसि मासोपवासद पारणॆयॊळ् कांतार चर्यॆगॆ बर्पुदुमवरं दूरदॊळ् कंडु—

दॆसॆयं भूषांशुगळ् चित्रिसॆ पदतलमात्मीय शोणांशुविंद-
र्चिसॆ धात्री देवियं संभ्रम रसवशनॆळ्तंदु सद्भक्तियिं वं-
दिसि रागोत्कंठनुच्चासनदॊळ्तिरिसि दिव्यार्चना द्रव्यदिंद-
र्चिसिदं साहित्यविद्याधरनमलयशं भारती कर्णपूरं ।। ६८ ।।

इदु परमजिनसमय कुमुदिनी शरच्चंद्र बालचंद्र मुनींद्र चरणनख किरण चंद्रिका चकोर भारतीकर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितमप्प रामचंद्र चरित्रपुराणदॊळ् चारणयुगल दर्शनवर्णनं ।

।। अष्टमाश्वासं समाप्तं ।।

---

रामगिरि पड़ा । तत्पश्चात वे वहाँ से रवाना होकर दक्षिण की ओर चलकर निर्जन कानन में प्रविष्ट होकर, आगे कर्णरवा नामक नदी को पारकर, उसके दक्षिण भाग के एक रम्य प्रदेश में विश्रांति लेने लगे। सुगुप्ति, गुप्त नाम का गगनचारण आकाश से अपने मासोपवास के पारण (व्रत समाप्ति का भोजन) और कांतारचर्य्य के लिए वहाँ आया तो उन्हें दूर से देखा । उनके धारण किए हुए आभूषण दशों दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे; चरणकमलों की अरुणछाया भू-देवी की अर्चना कर रही थी । राम धूमधाम से, भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम करके लिवा लाये और उच्च आसन पर बिठाकर, दिव्य सुगंधित द्रव्यों से (उनकी) अर्चना की । ६८

कवि अभिनव पंप, जो परमजिनसमय और कमलों को शरत्काल के चंद्र के समान माने जानेवाले बालचंद्र मुनींद्र के पद-नखों के, चाँदनी प्रकाश से पवित्र एवं सरस्वती के कर्णभूषण के समान हैं, उनके रामचंद्रचरित पुराण का यह चारण युगल दर्शन वर्णन, अष्टमाश्वास है ।

।। अष्टमाश्वास समाप्त ।।

### नवमाश्वासं

श्री पदमनीव मुनिप ※ श्रीपदमं परमभक्तियिंदर्चिसि पु-
ण्योपार्जनमं तळॆदनि ※ ळापूजित चारु चरितनभिनवपंपं ॥ १ ॥

अंतर्चिसि विधिपूर्वकं निश्वद्याहारमं कुडुवुदुमवर् संयम संरक्षणार्थमप्प कायस्थितियं निर्वर्तिसि कैयॆतिकॊंडक्षयं दानमॆंबुदुं—

अॆनॆसॆदुदॊ रैवृष्टि हि- ※ मानिलनळि मिलित कुसुमवर्ष सुर भे-
रीनिनदं दिविजरहो ※ दानश्रुति नॆगळॆ नॆगळ्द पंचाश्चर्यं ॥ २ ॥

आगळवर तपस्सामर्थ्यक्कॆ रामादिगळ् रोमांचकंचुकित देहरागि धर्मकथा श्रवण प्रसंगदॊळिर्पुदुमवरिदिरॊळिर्द विशालद्रुम शाखारूढ़नागिर्दु—

पोद भवप्रपंचदरितं मुनिदर्शनमात्रदिं मन-
क्कादॊडॆ पाप संचयमनिन्नपवर्तिपॆनॆंदु बंदु पा-
दोदकदॊळ् पॊरळ्दु कनकप्रभॆवॆत्तु पदोपकंठ ल-
ग्नोदर मस्तकं विनतमिर्द्दु पर्दुपशातं चेतसं ॥ ३ ॥

आगळदं कंडु राघवं अवर तपस्समृद्धियं सीतॆगं सौमित्रि-गमभिवर्णिसि मुनिगॆ मुगिद कैवॆरसु हिताहित विवेक विकलमुं

---

### आश्वास—९

भक्तिपूर्ण भाव से मंगलमय पदवि प्रदान करनेवाले मुनिवर के चरण कमलों की अर्चना कर मंगलचरित श्रीराम ने पुण्य अर्जन किया। १ इस तरह अर्चना करके, विधिवत् आहार देने पर उस मुनिवर ने लोक-संरक्षणार्थ मानी हुई अपनी देहस्थिति को भूलकर, हाथ उठाकर 'यह तुझे अक्षयदान है' कहने पर— ऊपर से बरसती हुई सुवर्णवृष्टि ठंडी हवा के साथ मिलकर, भ्रमरों से भरी पुष्पवृष्टि के साथ देवताओं का प्रशंसा-घोष सुनाई दे रहा था कि मुनि ने पाँच प्रकार का आश्चर्य कर दिखाया। २ तब मुनि के तपोवल से श्रीराम आदि रोमांचित हुए और उनसे धर्मकथाएँ सुनते हुए आनंद ले रहे थे कि, उनके सामने वाले विशाल द्रुम की शाखा में रहकर— मुनि-दर्शन मात्र से पूर्वजन्म का विषय जानकर, अब अपने पाप को दूर करने के विचार से, नीचे उतरकर, मुनि के पास आकर उनके चरणों पर गिरकर सुवर्णप्रकाश से युक्त एक गीध अपना सिर फैलाकर लोटने लगा। ३ उसे देखकर राम ने मुनि की तप-सिद्धि की महिमा सीता और लक्ष्मण को सुना कर वर्णन किया और मुनि को हाथ

विजातियुमप्प विहंगमुपशमक्के बंद कारणमेनेंबुदुं, चारणऋषिय-
रिंतेंदु बेससिदरी महागहनं मुन्नं कर्णकुंडल प्रमुख निखिल-
ग्रामाकीर्णमदनाळ्वं दंडकनेंबरसनातन पेंडति दुर्मनस्कॆमस्करि
समयमं पिडिदिर्पळादंडकनुमॊमॆ पुरबहि:पुर दॊळ् कल्नेलेनिंद
महाऋषियरं नोडुत्तुं पोगि बेंटेवडेयदे बंद विवेकियप्पुदरिंदवरकॊर-
लॊळॊंदु सत्त पावं सुत्ति पोदॊडवरुपसर्गं पिंगुविनं कैयेत्तेवेंदिरे मत्तॊंदु
दिवसमा देसेयनेमृगया निमित्तं दंडकं पोगुत्तुमॊर्वनवरकॊरलॊळिर्द
काळोरगन कळेबरमं कळेवुदं कंडरियदतिदेनेंदु बेसगॊळ्वुदुं—

आरेंदुमरियेनॊर्वं * क्रूरात्मं दिव्य मुनिगिदं माडि दुरा-
चारं नरकायुष्य- * क्कारंबिगनादनेंदु बॆळ्कुरे नुडिदं ॥ ४ ॥
दंडकना नुडिगे भयं * गॊंडं यतिपतिय धैर्यमं कंडु गुणं
गॊंडं पदानतं क्षमे * गॊंडं भव्यंगे सहजमुपशमभावं ॥ ५ ॥
क्षमियिसुवुदेन्न गेय्दरि* यमॆगेंदडिगेरगे दंडकं मुनि नुडिदं
क्षमियिसुवुदे मुख्यं सं-* यमक्के निश्शल्यनल्लंद संयमिये ॥ ६ ॥

ऎडपिद कल्गे तागिद मरक्किनिसं मुनिसं मनक्के त-
पॊडे तरलक्कुमन्यरॊळमन्यभवंगळॊळार्त रौद्रदिं

---

जोड़कर पूछा कि हिताहित और विवेक का ज्ञान न रखने वाले इस पक्षी के शांत स्वभाव से आपके चरणों पर लोटने का कारण क्या है ? उत्तर में चारण ऋषि ने बताया कि यह महाकानन पहले कर्णकुंडल आदि गांवों से बना था। दंडक यहाँ का शासक था। दुर्मनस्का उसकी पत्नी थी। वह तपस्विनी की तरह थी। एक बार दंडक ने, शिकार से लौटते समय, तप में लीन मुनि की गर्दन में एक मृतसर्प को लपेट दिया। उस मुनि ने निर्णय कर लिया था कि अपनी तपस्या पूर्ण हुए बिना हाथ नहीं उठाऊँगा। फिर एक दिन दंडक शिकार खेलने उसी रास्ते से जाते समय मुनि को अपनी गर्दन से सर्प के कंकाल को निकालते देखकर, अनजान-सा पूछा कि यह क्या है ? इसे सुनकर उस मुनि ने कहा— पता नहीं कौन था ! एक निर्दयी ने ऐसा अनुचित काम किया है और साथ ही दुराचारी एवं नरक का पात्र बन गया है। ४ इस बात से दंडक डर गया। मुनि का साहस देखकर प्रभावित हुआ और उनके चरणों में गिरकर क्षमा याचना की। मुनियों के लिए क्षमा सहज ही है। ५ अनजाने में किये गये अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करते हुए मुनिपति के चरणों में पड़ा तो उन्होंने कहा— संयम ही मुनि बना रहने का मुख्य सूत्र है न ? जो संयमी नहीं है वह तपस्वी ही नहीं है। ६ फेंके गये पत्थर के आघात से पेड़ को

दोंडरिसिदात्म कर्मफलमं तविपल्लि सहाय वृत्तियं
पडेव सुहृज्जनक्के मुनिपं मुनिदंदु कृतघ्ननल्लने ॥ ७ ॥

अेंदहिंसा रूपमप्प धर्ममनुदेशंगेय्ये दंडकनदं कैकोंडा क्रमदोळे नडेयुत्तुमिरे—

अरसियुममात्यनुं पा-*प रतर् मधु मद्य मांस सेवासक्तर्
निरवद्यमनरसन स- *च्चरित्रमं किडिसलेंदु मंतणमिर्दर् ॥ ८ ॥

अंतु तमगपायमनोडर्चुवुपायमं चिंतिसि—

कळवं मिथ्येयनेरिसि * कळत्रदोळ् पोल्लकेय्दरेंदिल्लदुदं
गळपिदोडे दंडकं कडु * मुळिदं ऋषियर्गे माये मोहिसदारं ॥ ९ ॥

पळिगंजदे कर्णेजप
रळिनुडि दिटमेंदे डंगुरंबडियिसि का-
पळियें पोरमडिसि कळेदं
पोळलिदंविचारि जैनमुनि संकुलमं ॥ १० ॥

अंतु ऋषिरूपनूरं पोक्कोडे कोल्वेनेंदाणतियिट्टु पोरमडिसि कळेवुदुं—

अरियदे पोळलं पुगे कोल
ररुगुलि ऋषियर्गे मुनिदु तन्नाज्ञेगे बे-

---

तनिक क्रोध, भले ही आ जाय, लेकिन पश्चाताप करनेवालों के प्रति, आर्तो के प्रति, अपने पाप को घटाने में अगर मुनि कुपित होता है तो वह (मुनि) कृतघ्न नहीं होगा ?७ —इस तरह के अहिंसा धर्म का उपदेश देने पर, दंडक ने उपदेश को स्वीकार किया। (वह) उसी के अनुसार चल रहा था कि— उसकी पत्नी और आमात्यजन, पापाचार में लीन रहकर मद्य और मांस का सेवन करते हुए, राजा को कुमार्ग में प्रवृत्त कराने की साज में थे। ८ —इस तरह अपनी ही हानि करने में तुले हुए उन्होंने— ऋषियों पर यह मिथ्यारोप लगाया कि चोरी और धोखे से वे स्त्रियों पर बलात्कार करते हैं। इसे सुनकर दंडक ऋषियों पर कुपित हुआ। असत्य किसे मोहित नहीं करता ? ९ आरोप से न डरकर, चुगलीखोरों की बातों पर विश्वास कर, जैनमुनिसंकुल को नगर से बाहर निकलवाकर ऐलान किया। १० —और शपथ खाया कि ऋषि-वेषधारी कोई भी नगर में प्रवेश करेगा तो उसका वध कर दिया जायगा— अनजाने में जिन मुनियों ने उसके नगर में प्रवेश किया तो यह कहकर उनका वध किया कि उन्होंने राजाज्ञा का उल्लंघन किया है। इस तरह उसने अपने नरक-साम्राज्य का द्वार

ळ्कुररेंदु कोंदु पातकि
तेरदं पुगलेंदु निरयदररी पुटमं ॥ ११ ॥

अंतु ऋषिवधगेय्दुत्कटमप्प पापमं सद्यः फलरूपमं दंडकनुपार्जिसुवुदुमित्त मत्तोंदु दिवसमापुरक्कें महातपोधनरेक विहारिगळ् बरुत्तमिरे मार्बट्टेयोळोर्व कंडु मगुळे विजयंगेय्यिमेनलदेकारणमेंबुदुमीपोरलनाळ्व नृपं निष्कारणमनेक ऋषिसंघातमं घातिसिदनेंबुदुमानुडियोळोगेद करुणारसमे कलुष किंपाक बीजमनंकुरितंमाडे—

अरसां बारिपरेन्ननारेनगे चातुर्दंतमुंटेन्न दोः
परिघं दुर्धरमेंदु साधुजनमं निष्कारणं कोंदने
दुरितक्कंजने दुर्यशक्कगियने पेळेंदु कण्केंकमागिरे पुर्ववें पोदळ्दुदामुनिगे सर्वग्रासि कोपानलं ॥ १२ ॥

अरसननरसिय नूरं * परिजनमं नाडनडवियं बेट्टोळगागिरे मुनितेजोवृद्धियि*नुरिपिदनणकक्के सवणनुं सैरिपने ॥ १३ ॥

सकलत्वं क्षणमात्रदिं विलय वह्नि ज्यालेवोल् सुट्टु दंडकनं नंदिदुदिल्ल पेळे पेसरिल्लेंवन्नेगं वंश रा-

---

खोल दिया। ११ —इस तरह ऋषियों का वध करके उस पाप के फल का उपभोग कर रहा था कि एक दिन उस नगर में विहार निमित्त एक महातपस्वी आ रहे थे कि रास्ते में उनसे मिलकर एक व्यक्ति ने कहा, तुरन्त लौट जाइए। उन्होंने इसका कारण पूछा तो उसने वताया कि इस नगर के राजा ने अकारण अनेक ऋषियों का वध किया है। उसकी वात में निहित करुणा ने ही पापरूपी विषवृक्ष के बीज को अंकुरित किया। ऋषिने कहा— राजा ने इस अहंकार से कि 'मैं राजा हूँ, मेरा विरोध कौन कर सकता है, मेरी चतुरंग सेना है, मेरा भुजवल-पराक्रम असाधारण है' साधुजनों का अकारण वध किया है। पाप से डरे विना, अपकीर्ति से हिचके विना, यह राजा मनमानी कर रहा है? ऐसा कहते-कहते उसकी आँखों से (क्रोध की) चिनगारियाँ निकलीं, भौहें चढ़ गयीं और ऐसा क्रोध फूट पड़ा मानो सारे राज्य को तुरन्त भस्म कर देना चाहता हो। १२ मुनिवर ने राजा, रानी और उनके परिवार के सौ सदस्यों को, नगर, जंगल और पर्वत को अपनी क्रोधाग्नि को आहुति दे दी। १३ मुनि की क्रोधाग्नि ने समस्त वस्तुओं को उसी तरह जला दिया जिस तरह प्रलयाग्नि की ज्वाला समस्त को जला देती है। दंडक की वंश-परम्परा को जला देने के लिए मुनि के वाम भुजाग्र में अग्निज्वाला निवास करने

जकमं वाम भुजाग्रदोळ् मुनियतेजोवृद्धियिदाद पा-
वकनास्वादिसिदत्तिदेविरिदों पेळा पातकंगेंविनं ॥ १४ ॥

सुडुवुदु किर्चल्लदे गति*गिडिसदु कोपाग्नि सुट्टुमोडलं गतियं-
गिडिसिदुदा यतिगेनलें*पडेमातरिवुळ्ळनुळियदिर्पनें मुळिसं ॥ १५ ॥

अंतु साधुसंघ वधेगयिसिद वधुवुममात्यनुं वधकनप्प दंडकनुं क्रोधक्के संद तपोधननुमधोगतिगे संदरा दंडकं नरकदंडनेळगागि बळियं दुर्गतिगळोळ् तोळल्दीगळ् पर्दागिर्दनेने केळ्ददक्के खगं खेदिसे नीं मुन्नमरिवुनेरेयदे नरकादि दुःखमननुभविसिदे; नीनीगळेम्मं कंड दूसरिं कर्मबंधं शिथिलवादुदेंददर मनोविषादमं कळेददक्कें लब्धि दोरेकोंडुदेंदरिदु सम्यग्दर्शन पूर्वकमणुव्रतमं कोट्टु रामलक्ष्मणरुमं सीतेयुमं परसि गगनचारणर् पोपुदुं—

ऒनगिदु कंदनेंदु गळ कंदळदोळ् चरणद्वयंगळोळ्
जनकजे कंठिकावलयमं मणि नूपुरमं तोडर्चे मं-
डनद मयुखलेखे जडेगोंडु मडल्तु कवल्तलर्चे दृ-
ग्वनरुहमं जटायुवेंसरादुददक्कें रघुप्रवीररिं ॥ १६ ॥

---

लगी। यह कहना असाध्य कार्य है कि दंडक का पाप कितना घनतर था। १४ अग्नि देह को जला सकती है लेकिन गति को नहीं जला सकती। फिर भी मुनि के क्रोध ने दंडक की देह के साथ उसकी सद्गति को भी जला दिया। इसके साथ ही साथ मुनि की सद्गति को भस्मीभूत करके इस बात का समर्थन किया कि ज्ञानी-जन कोप-वर्जित रहें। १५ —इस तरह, साधुओं का वध करानेवाली रानी, आमात्य, उसके लिए कारणीभूत दंडक और क्रोध का शरण लेनेवाला मुनि, सब के सब अधोगति को प्राप्त हुए। दंडक को नरकदंड प्राप्त हुए और उसने अनेक दुर्गतियाँ पायीं; और अब गीध बना हुआ है। यह सुनकर गीध चिंतित हुआ। मुनि ने कहा—अपनी अज्ञानता के कारण पाप-कार्य करके तूने नरक और दुर्गतियों को भोगा है। अब हमारे दर्शन से तेरे पाप-बंधन टूट गये हैं। इस तरह उसके मन के विषाद को दूर कर, दिव्यज्ञान से यह जानकर कि उसे पुण्य प्राप्त हुआ है, अणुव्रत का उपदेश देकर, राम-लक्ष्मण-सीता को आशीष देकर, गगनचारण चले गये— सीता ने उस गीध को अपना शिशु मानकर उसके गले और पैरों में क्रमशः रत्नजटित माला और पायल पहनाया तो उसकी कांति फैलने और उसके नयन-कमल खिलने पर सीता ने उसका नाम जटायु रखा। १६ —इस तरह सुगुप्त गगनचारियों की तपस्या के बल से

अंतु रामलक्ष्मणर् सुगुप्तसुप्त गगनचारणर तपस्सामर्थ्यदर्शन बलदिं कृतार्थरागि मरुदिवसं दंडकारण्यदोळगने दक्षिणाभिमुखरागि नडॆदु चल वीची संचयमं क्रौंच नदियनुत्तरिसि सरित्तट वनलता गृहदोळ् सीतॆ बळल्दलॆंदु विश्रमिसि सुखमिर्पुदु मानदिय समीपद सर्वरत्नगर्भमप्प दंडक गिरिम गुहा गेहदोळॊंदु योजनदॆंटनॆय भागं खातवादल्लि पाताळलंकॆयॆंब पुरमिर्पुददनाळ्वं खरनॆंबनातनसि रावणन तंगॆ चंद्रनखॆयॆंवळवगॆ शंभुकनुं सुंदरनुमॆंबरिर्वर् तनयरा- दरल्लि पिरियमगं शंभुकंपॆरगॆ पन्नॆरडु वर्ष मॊदलगॊंडु सूर्यहासासियं साधिसुत्तिर्पुदु मातंगाबाळनित्तु बॆसकॆय्यलॆंदु बंद यक्षामर सहस्रमा खड्ग रत्नमनवनिर्द बिदिर पॊदर मॊदलॊळिरिसि मेरु मंदारसुमनो- मंजरियिनर्चिसुतिर्पुदुमित्त लक्ष्मणं वन विलास निरीक्षण कुतूहल- नागि—

सुळिवॆडॆगॆ खड्गसिद्धिगॆ *बळियट्टिद पुण्यदेवता दूतनवोल्
सुळिगाळियॊडनॆ हर्षद * मळॆ बरॆ बंदत्तदॊंदु दिव्यामोदं ॥ १७ ॥

इदु मनुज लोक वन कुसु-
मद सौरभमल्तु दिविज लोकद मंदा-
रद कुसुम सौरभं बं-
दुदॆत्तणिदॆंदु लक्ष्मणं बळिसंदं ॥ १८ ॥

---

एवं दर्शन-भाग्य से राम-लक्ष्मण धन्य होकर, दूसरे दिन दंडकारण्य की दक्षिण-दिशा की ओर चल पड़े। लहरों से सुशोभित क्रौंचनदी को पारकर उसके तट के लतागृह में, थकी सीता के साथ विश्राम-सुख ले रहे थे। उस नदी के समीप स्थित समस्त रत्नों से भरा दंडक-पर्वत के एक गुफा भाग में तल में पाताल लंका नामक नगर बसा हुआ है। उसका राजा खर रावण की बहन चन्द्रनखी से शंभुक और सुन्दर नामक पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र शंभुक बारह वर्षों से सूर्यहास नामक खड्ग पाने के लिए तपस्या कर रहा था। उसकी तपस्या से संतुष्ट होकर खड्ग देने के लिए आये हुए सहस्र देवताओं ने उस खड्ग को बाँस के उस घर के अन्दर उतार दिया जहाँ वह तपस्या में लीन था। उसके बाद सुगंधित मंदार आदि पुष्पों से वे उसकी पूजा कर रहे थे कि उस वन की शोभा देखने के लिए आतुरित होकर लक्ष्मण— टहल रहा था; खड्ग प्राप्ति के लिए अनुसरण कर आये हुए पावन देवदूत की भाँति, मंदमंद बहती हुई हवा के साथ, पुण्यगंध की सुगंध, आनंद वर्षा-सी आकर, फैल गयी। १७ यह सुगंध मर्त्यलोक की नहीं है, देवलोक के मंदारपुष्प की सुगंध किस दिशा से आ

तनिगंपिन बळिवळियिं ※ जनार्दनं भृंगदंतें सुमनोरागं
जनियिसें तमाल पल्लव ※ तनुरुचि पेंविदिर पोंदरनंदैतंदं ॥ १९ ॥
स्थल रक्त कमलमं को-※मल पद तळपद्मरागरुचियिं वंश
स्थलमं तनु प्रभामं ※डलदिंदेंटनेय केशवं द्विगुणिसिदं ॥ २० ॥

अंतु बंदु बिदिर पोंदर मोंदलोळमर तरु सुमनोमालेयोळमनर्घ रत्नमालेयोळमर्चिसिर्द सूर्यहासासिगें कैयं नीडुवुदुं—

जयलक्ष्मिय नयनोत्पल※ममूखमेनें तानें बंदु कर किसलय कां-
तियिनें रागंबेत्तुदों※जयासि पोंगरिळिसें किसुर मसियक्करमं ॥ २१ ॥
काळाहियेंनिप कृष्णन ※ तोळोळ् निश्वास धूम लेखाकृतियिं
बाळायतमिरे जडिदं ※ बाळोंडनल्लाडें नेळल नेंवदिं दिनपं ॥ २२ ॥

अंतु जडिदु करवाळ कूर्प नोडलेंदु—

बाय्दारें निलें कुमारं ※ पोंय्दोंडे कैयळविदार कैयळवियेंनल्
नेंय्दिल काविन पोंदेयं※ पोंय्दंतोमोंदलें परिदुदा वंशवनं ॥ २३ ॥

आ वंशवनदोंडनें—

तलें परिदु पारें पारुव ※ तलेंवरवेंडेंवरियदट्टयिंदुणमुवसृ-
ग्जलधारें नाळमेनें पं- ※ दलें पोल्तुदु नभदोळलर्द केंदावरेयं ॥ २४ ॥

---

गयी ? यह देखने के लिए लक्ष्मण पास आ गया। १८ उस सुगंध के साथ-साथ लक्ष्मण भ्रमर-सा अनुसरण करने लगा तो उसका मन आनंदरस से भर गया। आगे बढ़कर वह तमाल के अंकुरों (कोपलों) से आवृत्त बाँस के झुंड (पेड़ों) की ओट में पहुँचा। १९ कमल की लालिमा एवं अपने चरणकमलों की अरूणिम-प्रभा से लक्ष्मण ने बाँसो के झुंड की लालिमा को दुगुना कर दिया। २० —अंत में एक बाँसों के झुंड में मंदार-पुष्पों की माला और अनर्घ रत्नमाला से आवृत्त सूर्यहास खड्ग की ओर हाथ बढ़ाया। तो— जयलक्ष्मी की नयनकांति-सा वह खड्ग उसके हाथ में अपने आप आकर कलह के लिए मूलाक्षर बना। २१ कृष्णसर्प-सा दिखाई देनेवाला वह खड्ग लक्ष्मण के हाथ में विष की श्वास की धूम्र-रेखा के समान दिखाई पड़ा। लक्ष्मण ने उसे पकड़ कर उठाया तो ऐसा लगा मानो—आकाश का सूर्य भूमि को छाया देने के बहाने चल पड़ा हो। २२ —इस तरह उठाये हुए खड्ग की धार (तेज) देखने के लिए— आस-पास के बाँसों के झुंडों पर उस खड्ग से अद्वितीय भुज-बल-सामर्थ्य का वीर-सा वार किया तो बाँस कमलदंड के समान कटकर गिर गये। २३ —उस बाँस के झुंड के साथ— मानव का एक सिर गर्दन से अलग होकर जमीन पर गिरा, मुंड से बहती हुई रक्तधारा के साथ वह आकाश में खिले हुए लालकमल

आगळदं कंडु निश्पराधनं कोंदेनेंदु मनदोळ् लक्ष्मणं कट्टुकडेदु—

वेदस्संकल्पं दु- ※ र्बोधमिवं निट्टेयिं निरोधिसि तनुवं
साधिसिदोंडी कृपाणमें ※ बाधाकरमाय्तजा कृपाणीयदवोल् ॥ २५ ॥

अेंदु कारुण्यपरनागिर्पुदुं तत्कौक्षेयकमं रक्षिसुवं यक्षामर सहस्रमिन्नेंमगें नीनें पतियेंदु पोडेवट्टु पूजिसि पोपुदुं, निजाग्रजन समीपक्कें बंदु करवाळ वृत्तांतमं विदितं माडि—

जळरुहनाभं कण्णोळ् ※ पोळेदुळ्कुव सूर्यहासमं कुडे कैयोळ्
हळधरन देहरुचि मू- ※ वळसुवुदुं चंद्रहासमेंनिसित्तागळ् ॥ २६ ॥

अन्नेगमित्तल्—

विविधार्चनेंवेरसु तनू- ※ भवनिंदु कृपाण सिद्धिवडेदपनेंबु-
त्सवदिंदुळ्कापातम ※ नवळंगप्रभेयिनिळिसि नभदिंदिळिदळ् ॥ २७ ॥

अंतु नभदिंदिळिदु—

तनयन तलेयोंदेसेयोळ्
तनुवोंदेसेयोळ् सिडिल्दु कॅडेदिरे कंडा-
वनितें भयरसदिनेंदे पौ-
वनें- पारें विषाद वह्निगिंधनमादळ् ॥ २८ ॥

---

के समान दिखाई पड़ा। २४ —यह देखकर, लक्ष्मण यह सोचकर दुःखी हुआ कि उसने एक निरपराधी की हत्या की है। —हाय! मनोनिग्रह कर निष्ठा से तपस्या करके, खड्ग पाने की इच्छा रखनेवाले इस व्यक्ति को वही खड्ग मृत्यु बना। २५ —ऐसा सोचकर लक्ष्मण का मन करुणा से भर गया। इतने में उस खड्ग की रक्षा करनेवाले यक्षों का समूह उसके पास आ गया और 'आज से तुम्हीं हमारे स्वामी हो' कहकर, प्रणाम करके चला गया। उसके बाद उस खड्ग को लेकर लक्ष्मण अपने भाई राम के पास गया और उसे सारी बातें बताकर— उसके हाथ में सूर्यहास खड्ग दिया तो उस खड्ग ने तीन बार श्रीराम की प्रदक्षिणा की और श्रीराम की देह-कांति के प्रभाव से चंद्रहास कहलाया। २६ —तब —इस उत्साह से कि बेटा आज सूर्यहास प्राप्त करनेवाला है, शंभुक की माँ चंद्रनखी अपने शरीर की शोभा से उल्कापात करती हुई आकाश से उतर आयी। २७ —ऐसा आकाश से उतर कर— बेटे का सिर एक तरफ और देह दूसरी तरफ पड़ी देखकर, शोक के आवेश और आश्चर्य से चकित होकर वह विषादाग्नि में पत्ते के समान जलने लगी। २८ खर के बेटे

खर नंदननं दशकं
धरनळियनॆन्न शंभु कुवरननार् कॊं-
दरॆनुत्तॆ मोदिकॊंडळ्
करदिंददडिगडिगॆ चंद्रनखि तॊळ्वसिरं ॥ २९ ॥

बरबरबत्तॆ बाय् बॆरल बासुळ पद्धति मध्यदॊळ् पगं-
डिरिदिरॆ कण्ण नीगॆळ पॊनल् कलॆगण्मि कपोलदॊळ् बय-
ल्दॊरॆयनॊडचॆ चंद्रनखि शोकरसाकुळ चित्तॆयागि मॆ-
य्यरियळॆ चित्रमल्तु निजपुत्र वियोगमनारॊ सैरिपर् ॥ ३० ॥

अनंतरमॆंतानुं मूर्छॆयिंदॆळ्चत्तु—

तन्न दंडिसि बाळं ॥ पन्नॆरडब्दक्कॆ पडॆद बालकनं कॊं-
दॆन्नॊळॆडरिदन बेरॊळ् ॥ बॆन्नीरं पॊय्वॆनॆंदु बेगदिनॆळ्दळ् ॥ ३१ ॥

ऒडनॊडनॆ शोकरसमुं ॥ कडुमुळिसुं तिण्णमागॆ खेचरि मॊळगं
सिडिलं कॆदरुव कल्पद ॥ कडॆगालद कॆंडवळॆय मुगिलवॊलिर्दळ् ॥ ३२ ॥

रोदनदिं सुमन शिर- ॥ श्छेदनदळलारदारुगुं रिपु रुधिरा-
स्वादनदिनॆंदु विलयो- ॥ त्पादन भैरवियं मसकमं कैकॊंडळ् ॥ ३३ ॥

अंतु मुळिदॆळ्दु पज्जॆविडिदु नडॆदु रामलक्ष्मणरं कंडु—
बगॆववरारिदं खचर कामिनि पुत्र वियोग वेगमं
बगॆयदॆ कंदनं बरिदॆ कॊंदवनं कॊललॆंदु पूण्दुदं

---

दशकंठ के भांजे और मेरे बेटे अर्थात् इस शंभुक का वध किसने किया होगा ? ऐसा सोचती हुई अपना पेट पीट-पीट कर विलाप करने लगी । २९ अपार दुःख से उसकी जीभ सूख गयी । पेट पीट लेने के कारण उंगलियों के अग्रभाग सूज गये । अश्रुधारा कपोलों से उतरकर नदी प्रवाह-सी लग रही थी । शोक-रस से आवृत्त मन की चंद्रनखी बेहोश हुई । पुत्र-शोक किसे विचलित नहीं करता ? ३० —बाद में, होश आने पर— बारह साल देह तपाकर अब खड्ग पाने के लिए योग्य बालक का वध करके उसे इस दुःख-सागर में डुबानेवाले के वंश को जड़ समेत नाश करने के लिए वह अत्यंत कुपित होकर उठ खड़ी हुई । ३१ शोक और क्रोध से भरी होने के कारण वह प्रलयकाल की घनगर्जना-सी और अग्नि बरसनेवाले बादल-सी थी । ३२ पुत्र-मरण का दुःख रोने मात्र से शांत नहीं होता । यह सोचकर कि इस दुःख का शमन केवल वैरियों के रक्तास्वादन से होता है, चंद्रनखी प्रलय-भैरवी-सी आग बन गयी । ३३ —इस तरह क्रुद्ध होकर चरणचिह्नों की निशानी को पहचानती हुई राम-लक्ष्मण के पास आकर— लक्ष्मण को

वगॆयदॆ नोडि लक्ष्मणन गाडिगॆ सोल्तॊडगूडुवासॆयं
बगॆदयदंतॆ दल् बगॆवरे विषयासव मत्तरेनुमं ॥ ३४॥

अंतु कंतु संतापदिनावर्तन परिवर्तनं बंदु—
रूप परावर्तन वि- * द्या परिणतियिं वियच्चरांगनॆ कन्या
रूपमनॆं तळॆदळॊ ता-*रापति तारुण्य लक्ष्मियं ताळ्दिदवोल् ॥ ३५॥

ननॆगणॆयधिदेवतॆयॆं-
बिनॆगं सार्तंदु कृतक शोक रसालं-
बिनि नॆय्दिलॊसळॊळमर्दिन
पनि बंदपुदॆनिसि कण्ण नीरं तंदळ् ॥ ३६॥

आ रमणि कृतक शोका
सारद पॊनलॊळगॆ बॆंडु नॆगॆदिर्दुमदॆं
राराजिसलार्तळॊ तिळि
नीरॊळगण चंद्रकलॆय नॆळलॆंबिनॆगं ॥ ३७॥

अंतु शोकिकुवळं कंडु—
तनगॆ करुणारसं सं-
जनियिसॆ सारण्गॆ करॆदु कुळ्ळिरिसि लता
तनु कण्बनियं तॊडॆदळ्
जनकात्मजॆ कन्नॆ कपटियॆंदॆत्तरिवळ् ॥ ३८॥

---

देखकर, यह भुलाकर कि पुत्र का वध करनेवाले का नाश करने के लिए आयी है, उसके रूप के प्रति मोहित होकर, उससे संभोग की इच्छा करने लगी। विषय-भोग-सुख के प्रति मोहित लोग और कुछ सोच सकते हैं ? ३४ —इस तरह संताप काम-संताप द्वारा घेरा जाने पर— रूप-परिवर्तन-विद्या से उसने कन्यारूप धारण कर, पूर्णकलाओं से सुशोभित तारापति चंद्र की भाँति वह सुशोभित हुई। ३५ पुष्पबाणधारी कामदेव की रानी रतिदेव की तरह वह राम-लक्ष्मण के पास आयी और कृतक शोक से उसकी आँखों से आँसू ऐसे बहने लगे मानो कमल की पंखुड़ियों से अमृतरस की बूंदे टपकती हों। ३६ वह, कृतक शोक रूपी प्रवाह में तैरते हुए गेंद के समान, स्वच्छ जल के तालाब में चंद्रकला की छाया की तरह दिखाई पड़ी। ३७ —इस तरह शोक कर रही थी कि— सीता के मन में उसके प्रति सहानुभूति जाग उठी; (सीता ने) उसे पास बुलाकर, बिठाकर, बहते हुए आँसू को पोंछ दिया, जानकी उसके कपट-स्वभाव को कैसे जानती ? ३८ —राम ने उस कन्या की दुःखपूर्ण दृष्टि को

आगळा कन्नेयं करुणारस प्रसन्न दृष्टियिं रघुवीरं नोडि—
बिसिलुं बॆळ्दिंगळुं गाळियुमॊळपुगदत्युग्र सत्वंगळिंद-
विसुवी दुर्वार कांतारमनबलॆयॆ निश्यंकॆयिंदॆंतु पॊक्कॆ
विसवंदं कन्नॆ निन्नंदमनॆमगरिपॆंदाजिरंग प्रचंडं
बॆसगॊंडं बीरॆ दंतद्युति शरदद बॆळ्दिंगळं रामचंद्रं ।। ३९ ।।

अंतु बॆसगॊळ्वुदुं मुकुळीकृतांजलिपुटॆ कृतकि कृतांतनॆन्न मातापितृगळनॊमॆदिलॊळ् मुरिदुय्यॆ निस्सहाय वृत्तियिं निम्मनॆन्न पुण्योदयदिं कंडॆनॆन्ननिर्वरॊळॊर्वर् गंधर्व विवाहविधियिं कैकॊळ्वुदॆनॆ जनकजॆ रामलक्ष्मणर् मॊगमं नोडि मुगुळ्नगॆ नगुवुदुमदर्कॆ सिग्गागि—

मगनळिदळलं पातकि * बगॆयदॆ परपुरुष सेवॆगळिपुव बगॆयं
बगॆदा बगॆ कूडदॊडु-*व्वॆगमिर्मडिसित्तु खचर वधुगाक्षणदॊळ् ।। ४० ।।

अंतु मनदॊळुम्मळिसि—

अवळिवर्गॆ तक्कुदं मा-*डुवॆनॆंबाग्रहदिनवर कण्वॊलनं दां-
टुविनं नडॆदु तटिल्लतॆ-*यवॊलाकाशक्कॆ नॆगॆदु पारिदळागळ् ।। ४१ ।।

अंतु मनोवेगदिं पोगि पॊळलुमनरमनॆयुमं पॊक्कु-

---

देखकर—शरतकाल की चांदनी सदृश अपनी दंतपक्तियों की कांति फैलाते हुए पूछा, दुष्ट प्राणियों से भरे इस घने जंगल में जिसमें धूप, चाँदनी और हवा भी प्रवेश नही कर पाती, तू अवला निर्भय होकर कैसे आयी ? सविस्तार हमें बताओ कि तुझे किस तरह का दुःख है ? ३९ —इस तरह पूछने पर उस कपटी कन्या ने हाथ जोड़कर कहा, 'यमराज ने मेरे माता-पिता को पहले ही बुला लिया है। अपने आपको जीने में असमर्थ समझकर मैं इस घोर जंगल में, मरने के विचार से, आ गयी। यहाँ मेरे भाग्य (पुण्य) से आप लोगों के दर्शन हुए। अव आप दोनों में से कोई (एक) गंधर्व-पद्धति से मुझे स्वीकार करके कृतार्थ करें।' ऐसा कहने पर लक्ष्मण का मुख देखकर सीता मुस्करा पड़ी। यह देखकर चंद्रनखी कुपित होकर— बेटे को खोने की चिंता को भुलाकर, पर-पुरुष के संभोग की कामना कर, उसमें असफल होने के कारण, उसका क्रोध दुगुना हुआ। ४० —इस तरह मन ही मन घुटकर, राम-लक्ष्मण को उचित सवक सिखाने के विचार से उनकी आँखों से ओझल होने तक चलकर, वह विद्युत की भाँति आकाश की तरफ लपकी। ४१ —इस तरह मनोवेग

परेद कच्चमुं कण्णं कय्गण्मुवश्रु जलंगळुं
बेरसु बसिरं तिण्णं मोदुत्तुमात्मज शोकदिं
खरन चरणोपांतक्षोणीप्रदेशदोळा तनू
दरि तनुवनंदोक्कळ् हाहा रवं नेगळ्वन्नेगं ॥४२॥

अंतु शोक विकलेयाद चंद्रनखियं कंडु खरनिदेनेंदु बेसगोळ्-
वुदुं—

बर्गेगिदुम्मळमागे तल्लळिसि बाळं साधिसुतिर्दे पे-
र्मगनं नोडुवेनेंदु पोगि तले बेरागट्टे बेरागि धा-
त्रिगे बिळ्दिर्दोडे कंडुभोंकनेदे बाळं वीसिदंतागे मू-
र्छेगे संदें सुडे सुत्ति शोकदहनं ज्वालासहस्रंगळि ॥४३॥

अंतु मूर्छेवोगि किरिदानुं बेगर्दि—

चेतरिसि तनयनं कों*दातन बळिविडिदु पोगिबाळं कोळलें-
दातन मेल्वाय्दोडे पडे*मातें परिभविसि कळेदनुद्धतनेन्नं ॥४४॥
निनगेसतियागियुं त्रिभु-*वन विजयि दशास्यनोडनेपुट्टियुमाद-
त्तेनगे परिभवमेनलमु- *न्निन जन्मद कर्मबंधमं मीरुववरर् ॥४५॥

कवचंदोट्टु शराशनंबिडिदु तूणीरंगळं ताळ्दि मी-
रुवरारेम्मुमनेंब दोर्बलदगुर्वि निर्भरानंददिं-

---

से जाकर, अपने राजप्रासाद में प्रविष्ट होकर— बिखरे हुए बालों से, आँखों से बहते आँसू धारा-रूप में पेट में उतर रहे थे कि, पुत्र-शोक से तप्त चंद्रनखी ने, हाय-हाय मचाती हुई अपने पति खर के चरणों में सिर रख दिया। ४२ —इस तरह शोक-विह्वल पत्नी को देखकर खर ने इसका कारण पूछा। उत्तर में चंद्रनखी ने बताया— 'मन को व्यथा होने पर, तपस्या में सूर्यहास खड्ग पाने के लिए तैयार जेष्ठ पुत्र शंभुक को देखने की इच्छा से दंडक-पर्वत की तरफ गयी। वहाँ अलग होकर पृथ्वी पर पड़े हुए बेटे के सिर और धड़ को देखकर ऐसा लगा मानो किसी ने खड्ग से छाती को चीर दिया हो। मैं बेहोश हुई और मानो शोकाग्नि की ज्वाला ने मेरे शरीर को घेर लिया हो। ४३ —कुछ ही देर में, होश में आकर— बेटे के हत्यारे को खोजती हुई गयी और ढूँढकर, उसके पास जो सूर्यहास था, उसे वश में लेने का प्रयत्न कर रही थी कि उस उद्धत ने मुझे पराजित कर भगा दिया। ४४ तुम्हारी पत्नी बनकर, लोकैकवीर दशकंठ की सहोदरी होते हुए भी मुझे इस तरह की पराजय, अपमान सहना पड़ा तो पूर्वजन्म के कर्मबन्धन की अवहेलना कौन कर सकता है। ४५ कवच पहनकर, तर्कस लटकाये, धनुष-बाण धारण कर, अपने

दवरिर्वर् मनुजर् तनूभवनुमं कोंदेन्ननादं परा-
भवमं पोंदिसि निर्दयर् वगेयदिर्दर् दंडकारण्यदोळ् ॥ ४६ ॥

ऍनलोडं श्रवण विवरदोळ् तप्तायसमं पोय्दंते दारक विदा-
रणमुं दार पराभवमुं तनगळलनेदॆ्वळलुमनोदविसे—
वीजदिनोगेव विषांकुर-* दोजेयेनल् खरन शोक बीजदिनोगेदु-
त्तेजिसिदुदु कोपाग्नि शि-* खाजालं केंदरॆ किडियुमं केंडमुमं ॥ ४७ ॥

इवॆ कोपानल धूमलेखेयेने पुर्वुर्वॆळ्दु जर्वल् तगु-
ळ्दुवु कण्गळ् पोरवाय्दु कोपशिखि पोण्तित्तेंविनं केंकमा-
दुवु कोपानल तापदिं रणरसं दळ्ळेदु काय्दुक्कुवं-
तॆवोलागळ् वेमर्गळ् कपोलतलदोळ् तळ्पोय्दुवा दैत्यना ॥४८॥

अंतु रोष ग्राहावेशमनप्पुकॆय्दु—

तडॆवुदु पळियॆ सुतनं * मडिपिदनं सतिगॆ भंगमं माडिदनं
कडुकॆय्दु कादि रणदोळ् * पॆडतलॆयं मॆट्टि किळ्तुकोळ्वॆं तलॆयं ॥ ४९ ॥
अनिमिषरुं दानवरुं * मोनॆगॆनगिदिरल्लरॆंदोडिदिरांपवरॆ
मनुजरवंदिरनानो- * र्वनॆ दॆसॆबलिगुडुवॆनॆंदु बिडॆ गर्जिसिदं ॥ ५० ॥

---

आपको असमान वीर समझकर, अपने भुजबल-दर्प से हमारे पुत्र का वध करके, मुझे हराकर, किसी की परवाह न कर वे निर्दय मानव दंडकारण्य में स्वेच्छाचारी बने हुए हैं। ४६ —पत्नी के मुख से यह विवरण सुनकर उसे (खर को) ऐसा लगा मानो किसी ने उसके कानों में गर्म लोहा उंडेल दिया हो। पुत्र का वध और पत्नी की पराजय ने उसे दुःखी बना दिया— बीज से बाहर निकलते हुए विषांकुर की भाँति खर का दुःख-बीज अंकुरित होकर, क्रोधाग्नि की ज्वाला की चिनगारियाँ फैलने लगीं। ४७ उसकी भौंवें तन गयीं तो ऐसी लगीं मानो कोपाग्नि का धुँआ हो, रक्तवर्ण की आँखों की तितलियाँ बाहर निकलकर दर्शकों को भयभीत कराने लगी। इस तरह की कोपाग्नि ज्वाला से उसके कपोलों में पसीने की बूंदें दिखाई पड़ीं। ४८ —इस तरह कोप रूपी ग्रह का ही आलिंगन किया हुआ-सा— पुत्र का वध करनेवाले को मारे बिना छोड़ना, पत्नी का अपमान करनेवाले के प्रति निर्लक्ष कर देना न्याय नहीं है। उससे लड़कर युद्ध में उसका सिर काट लूंगा। ४९ जब देव, दानव भी युद्ध में मेरे सामने टिक नहीं सकते तो फिर यह सामान्य मानव मुझसे भिड़ सकता है? मैं अकेला इसका बलि चढ़ाऊँगा। ऐसा सोचकर उसने गर्जना की। ५०

अंतु गर्जिसि करवाळ्गॆ कैयं नीडुवुदुं मंत्रिमंडलमदं मार्कोंडु—

साधारणरल्लर् वि- * द्याधर वल्लभ विचारिसवरुन्नतियं
साधिसदॆ सूर्यहासं * साधनवाय्तॆंदॊडेनवर् मानवरे ॥ ५१ ॥

अदरिनवरनेळिसदॆ सकल सामंतरं बरिसि समर सन्नद्धनागि नडॆवुदॆ नयमदॆंतॆनॆ सकल चक्रवर्तिगळुमर्धचक्रवर्तिगळुं मनुष्यरागि-युमेकांगदॊळजेयरॆंबुदु सर्वजन सुप्रसिद्धमॆंदु बिन्नविसॆ मनदॆ कॊंडा-स्वरूपमं दशकंधरंगॆ बिन्नपंगॆय्वुदॆंदु दूतरनट्टि समस्त सामग्री-सहितनागि—

कनकाचल चूळिकॆयिं*कनल्दु गर्जिसुतुमॆळ्द सिंगदवोल् कां-
चन पीठदिं खर ख-*ड्ग नखरनुत्तंस किरण केसरनॆळ्दं ॥ ५२ ॥

पदिनाल् स्त्रसिर नायक-*रुदंशु मणिमकुट किरणमॊडनंबरमं
पुदिविनमॊडनॆळ्दर् विं-*जदडवियं बॆगॆ बळसिदत्तॆंबिनॆगं ॥ ५३ ॥

अंतसंख्यात खचर सामंत सेनॆवॆरसु खरदूषणर् गाळिगिदिरं नडॆव मगिलॊड्डिनंतॆ गगनवीधिविडिदु रामलक्ष्मनरसि बर्प समय-

---

—इस तरह गरज कर, खड्ग में हाथ डाला तो उसके मंत्रिमंडल ने उसे रोककर— विद्याधर-वल्लभ, वे साधारण नहीं है, उनकी महानता को समझ लो। साधना किए बिना ही सूर्यहास खड्ग को प्राप्त करनेवाले वे मानव होंगे ? ५१ —इस लिए उन्हें सामान्य न समझ कर, सहायता के लिए समस्त सामंतों को साथ लेकर युद्ध की तैयारी के साथ चलना उचित होगा। क्योंकि यह जगत्-प्रसिद्ध है कि चक्रवर्ती और अर्धचक्रवर्ती, मानव होने पर भी, एक-एक से युद्ध करके विजय पाने में चतुर (कुशल) हैं। ऐसा निवेदन करने पर, उनकी सलाह मानकर, इस विषय को रावण तक पहुँचाने के लिए दूत भेजकर, चतुरंग सेना के साथ सुसज्जित होकर— कनकाचल के शिखर से गरजकर उठे सिंह की भाँति खर अपने सिंहासन से उठते समय उसके धारण किए हुए खड्ग का प्रकाश सिंहनख की भाँति चमक उठा। ५२ चौदह हज़ार सेनानायकों के मुकुटों की रत्न-किरणें आकाश में फैल गयीं। वे सब उठे तो ऐसा लगा मानो विंध्यापर्वत के कानन को दावाग्नि से घेर लिया हो। ५३ —इस तरह असंख्य खेचर सामंतों की सेना को साथ लेकर, हवा के विपरीत दिशा में चलनेवाले मेघ समूह के समान, खर-दूषण आकाश मार्ग में राम-लक्ष्मण

दोॕळ समुद्र घोषमनजनिसुव पटुपटह शंख कहळा रवंभोरेने केळ्दि-
देनेंदु सीतॆ बॆर्चॆ बारिसि—

दोरॆकोंड बाळ कूर्पं * परिकिसलॆंदरियॆ लक्ष्मणं वंशवनां-
तरितनॆनिसिर्दु सत्तन*परिग्रहं काळॆगक्कॆ बंदपुदक्कुं ॥ ५४॥

अॆंदु मनदोळवधारिसि—

गगनचर प्रचंड वलमॆत्ति बरुत्तिरॆ काळॆगक्कदं
बगॆदने जानकीमुख सरोरुहदोळ् नॆलसिर्द दृष्टियं
तॆगॆदने कालदंडमुमनेळिप तन्न शरासनक्कॆ मॆ-
ल्लगॆ करशाखॆयं रघुतनूभवनुय्दनिदेनुदात्तनो ॥ ५५॥

अंतु दाशरथि दिव्य चापक्कॆ कैयनुय्यॆ लक्ष्मणनिंतॆंदं—

देवर् बिल्विडिवंतु बल्वडॆयॆ वज्रावर्त चापक्कॆ मेण्
देवेंद्रं धरणींद्रनल्लदुळिदर् बिल्वोय्दु निल्वन्नरार्
देवर् कावॊडमॆन्न कूर्गणॆगळिं मॆय्वॆर्चि मेलॆत्ति बं-
दी विद्याधर सैन्यमं निमिषदिं पर्दिगॆ बिर्दिक्कुवॆं ॥ ५६॥

अॆंदु बॆसनं पडॆदु मदीय मातॆयं सीतादेवियनपायबहुळमप्प गहनदोळगलदिर्पुदॆत्तानुमॆनगॆ धुरं दुर्धरमागॆ सिंहनादंगॆय्यॆ बर्पुदॆंदु विनय वचनमं नुडिदु विनय विनमितनग्रजनं बीळ्कोंडु—

---

को ढूँढते हुए आ रहे थे कि समुद्रघोप को प्रतिध्वनित करनेवाले उनके वाद्यघोष से सीता भयभीत हुई तो— रामने सोचा कि लक्ष्मण ने हाथ आये हुए सूर्यहास खड्ग की तीक्ष्णता की परीक्षा करने के उद्देश्य से बाँस-झुंड को काटा था। उससे जिसका सिर कटा था, शायद उसका परिवार युद्ध के लिए आ रहा होगा। ५४ —मन में ऐसा सोचकर— युद्ध निमित्त आई हुई अपार खेचर सेना को देखकर वह डर गया? सीता के मुख-कमल में दृष्टि गाड़कर देखा और कालदंड को भी नीचा दिखानेवाले अपने धनुप पर धीरे से हाथ डाला। ५५ —इस तरह राम ने धीरे से दिव्य धनुष पर हाथ डाला तो लक्ष्मण ने कहा— भैया, यह ऐसी कौनसी भारी सेना है कि आप धनुर्धारी बने? वज्रावर्त के सामने देवेंद्र और महाशेष के अतिरिक्त कौन ठहर सकता है? भले ही भगवान ही उनकी रक्षा करे, हम पर आक्रमण करनेवाली इस विद्याधर सेना को मैं अपने बाणों के आघातों से मारकर गीदड़ों का आहार बना दूँगा। ५६ —ऐसा कहकर, अनुमति पाकर बोला, सीता देवी मेरी माता के समान हैं। उन्हें इस भयानक घातक कानन में आप अपने से अलग न रखे। मुझे जब ऐसा लगे कि युद्ध मेरे लिए कठिन कार्य है, मैं सिंहनाद करूँगा। तब मेरी

कवचमनाळिसि पेगलोळ्
तवदोणेयं बिगिदु बिल्लनेरिसि टंका-
रवगुर्वुवडेये जेवोडे-
दुवियच्चर सेनेगदिरदिदिरं नडेदं ॥ ५७ ॥
पोक्किसे मार्गणमं मरु*वक्कद नायकरनाजियोळ्कंडिनिसुं
तक्कळिदने बगेयोळ् बे-*ळ्वक्किय पिंडिगवंदिरं सरिगंडं ॥ ५८ ॥
उर्वरेयोळिर्दखंडित * दोर्वलनंबिक्के नभदोळिर्दनिबरुमा-
दोर्विनिसे मंजिन मळे*पर्वतमं पर्विदंते कविदुवु कणेगळ् ॥ ५९ ॥
गगनमेडेनेरेयदेनिसिद*गगनेचर सैन्यमिसुव पोसमसेय सरल्
नगधरन मेले पाय्दुवु *नेगेदग्नि मुखक्के पाय्व शलभंगळवोल् ॥ ६० ॥
अेडेयुडुगदे खचरर बि-
ल्वडे कडुकेय्दिसुव कणेगळर्कन तेजं-
किडे हरियमेले सुरिदुवु
बडवाग्नियमेले सुरिव सरिवळेगळवोल् ॥ ६१ ॥
तरिदोट्टि सूर्यहासदे * मरुवक्कद पुदिदु पेणेद शरपंजरदिं
पोरमट्टु बिदिर पोदरिं * पोरमट्ट मृगेंद्रनंतिरिर्दनुपेंद्रं ॥ ६२ ॥
अंतु पोरमट्टु परिवेषंगोंड चंडकिरणनंते कुंडलित कोदंडनागि—

सहायता के लिए आप आवे। ऐसा नम्रवचन कहकर, भाई को नमस्कार करके निर्गमन कर— कवच धारण कर, तर्कस को पीठ पर बाँधकर, धनुष चढ़ाकर, प्रत्यंचा खींचकर, भयानक गर्जन करता हुआ विद्याधर सेना की ओर चल पड़ा। ५७ सेना में घुसकर, वाण प्रयोग करने वाले प्रतिपक्ष के नायकों को देखकर वह तनिक भी भयभीत न हुआ? उसने उन्हें पक्षीसमूह के समान माना। ५८ पृथ्वी का अद्वितीय वीर लक्ष्मण ने आकाशगामी खेचरों पर बाण प्रयोग किया तो वे सब मिलकर बीच खड़े एक व्यक्ति पर बाणों की वर्षा करने लगे। तब ऐसा लगा मानो बर्फ की वर्षा ने पर्वत को घेर लिया हो। ५९ आकाश में खेचर-सेना द्वारा लक्ष्मण पर प्रयुक्त तीक्ष्ण बाण-समूह अग्निज्वाला पर गिरनेवाली पतंगों के समान दिखाई पड़ा। ६० निरंतर सूर्यतेज से भी तीव्रता से आनेवाले खेचर बाण अच्युत (लक्ष्मण) पर ऐसे आ गिरे जैसे वड़वाग्नि पर बरसनेवाली वर्षा की बूंदें। ६१ उन सब बाणों को सूर्यहास से काटकर, प्रतिपक्ष के शर-पंजरों से मुक्त होकर, उपेंद्र (लक्ष्मण) ऐसा ही था जैसे बाँसों के झुंड से अभी-अभी बाहर निकला हुआ सिंहराज। ६२ —इस तरह बाहर आकर, धनुष धारण कर, ऐसा खड़ा रहा मानो वेष बदल कर सूर्य ही धनुर्धारी

तोडं बीडं काण्बुदु * नाडेयुमरिदेनिसि कृष्णनादिसे देसेगे-
ट्टोडिदुदल्लाडिदुद-*ळ्काडिदुदोमोंदले खरन बलवेन्नितनितुं ॥ ६३ ॥
पत्ति जवनंते रिपुबल*पत्तियनिसे लक्ष्मणं वियच्चर सैन्यं
सत्तुदु पुण्बेत्तुदु बे-*न्नित्तुदु पूण्दिवुदरिदु गरुडध्वजनोळ् ॥ ६४ ॥
इवे दृष्टि विषाहिगळी*कवितर्पुवे जवन बेसदिनेने निमिषक्कें
तवे पीर्दुवो खचर प्रा-*णवायुवं कृष्णनेच्च नाराचंगळ् ॥ ६५ ॥
इमेंय्गाण्विनमांतर*नोमोंदलोळे कणेगळ्चि पेणनं वित्तल्
कामुंचिदंते नेत्तर *पेर्मळे करेदत्तुपेंद्रनि धुरधरेयोळ् ॥ ६६ ॥
आवेडेयं नट्टुवु बा-*णावळि नट्टेडेये तमगे नेरनेने केडेदर्
भूवळयक्के वियच्चर*रावुदो लक्ष्मणनकणेगे मणियद सैन्यं ॥ ६७ ॥

आरेसाडिदराव दिग्मुखदिनी कूरंवुगळ् बंदुवें-
दारुं काण्बवरिल्ल नट्टुदने काण्बर् मायददवल्लदं-
दारानुं पोरगागरे कणेय कोळ्गेबंतु तन्नंबु सं-
हारंमाडे विपक्ष सैनिकमनंभोजाक्षनेसाडिदं ॥ ६८ ॥

---

बना हो— लक्ष्मण कुपित होकर, धनुष उठाकर, वाण प्रयोग करने लगता है तो नदी-नाले, घर-बाजार कुछ भी दिखाई देना असंभव है। ऐसे में खर की खेचर-सेना दिशाभ्रमित होकर जहाँ-तहाँ भाग गई। ६३ मृत्यु के समान पीछे पड़े हुए लक्ष्मण ने शत्रुबल का सामना किया। इससे खेचर-सेना (कुछ) मर गयी, (कुछ) घायल हुई (और शेष) पीठ दिखाकर भाग खड़ी हुई। गरुडध्वज के सम्मुख खड़े होकर भिड़ना असाध्य नहीं है? ६४ अच्युत (लक्ष्मण) के वाण आगे बढ़कर खेचरों की प्राण-वायु को ऐसा चूसने लगे मानो स्वयं विष-पूर्ण सर्प यमराज की आज्ञा पाकर आ गये हों। ६५ जिस शरीर में लक्ष्मण का वाण लगता है, स्पर्श के साथ वह जमीन पर गिरता है; फिर वर्षाऋतु की मूसलाधार वर्षा के समान वह रक्त की वर्षा करता है—इस तरह वह दो प्रकार की प्रतिक्रिया करता था। ६६ जहाँ देखो वहाँ (सर्वत्र) लक्ष्मण के वाण लगे हुए स्थान ही दिखाई पड़े। वाणाघात से पृथ्वी पर गिरते समय विरोधी (सैनिक) गड़े हुए बाणों के स्थान ही को 'शरणक्षेत्र' समझ कर वहीं गिर पड़े। लक्ष्मण के बाणों से कौन सी सेना बच सकती है? ६७ किसने इन वाणों का प्रयोग किया? किस दिशा से ये वाण आ रहे हैं? —इसे किसी ने नहीं देखा। सिर्फ यह देखा कि वे उनके शरीर को बेध रहे हैं। लक्ष्मण ने शत्रु-पक्ष पर ऐसा वाण प्रयोग किया कि अगर वे जान भी जाते कि लक्ष्मण के वाण हैं, तो वे किसी तरह उनसे (लक्ष्मण के

मोनेयंबलिलवु नंजिनंबुगळेनळ् कूरंबु मारांतरं
मनदिं बेगदिनुर्चि पोगे पेणनं सालिट्टवोलागे मे-
दिनियोळ् खेचर सेने बीळे बयलादत्तागसं कृष्णनं-
बिन कृष्णाहिय कोळ्गे बेंर्चदिदिरोळ् मेय्सार्चि बाळ्वन्नरार् ॥६९॥

सिडिल कडुगाय्वु सिंगद
पोडर्पु भैरवन बल्पु मारिय मसकं
कडेगालद जवनेळ्तर
मोडरिसे लक्ष्मणनडुर्तु कादुत्तिर्द ॥७०॥

अन्नेगमत्त रावणं खरदूषणरट्टिद सुद्धियं केळ्दु शंभुकन
साविगळल्दु कडु मुळिदु—

बेंदरिसिदत्तु कारिरुळनुर्विद पुर्विन गंटिनोळ् करं-
गिद मोगमंजिसित्तु किसुसंजेयनासुरमागे कंपुवे-
रिद बिडुगण्ण बण्णवरेयट्टिदुदळ्कुरे कण्णोळ्ळ्कुवु-
ळ्कद तेरनं सकंपवधरं दशकंधर चक्रवतिया ॥७१॥

अंतु संवर्त समयद समुद्रदंते कदडि—
नियमदिनिर्दनं निरपराधननन्नेयदिंदमेन्न तं-
गेय मगनं विदारिसिदनं तरिदातन मेय्य रक्त वा-

---

बाणों के घेरे से) बाहर नहीं रह पाते। ६८ सम्मुख आनेवालों को वे तीक्ष्णबाण पीड़ित कर ऐसा गिरा देते थे मानो उन बाणों में तीक्ष्णता नहीं अपितु वे विषबाण हो। धरती पर गिरे हुए सैनिकों की कतार की कतार दिखाई पड़ी तो ऊपर आकाश में रहनेवाली सेना कृष्ण (लक्ष्मण) के बाणों से कृष्णसर्प सदृश विष-ज्वाला (जलन) के सम्मुख अदृश्य हुई। ऐसे शौर्य के सामने कौन बच सकता है? ६९ लक्ष्मण हर जगह व्याप्त होकर ऐसा लड़ रहा था मानो उसे घनगर्जना की ज्वाला, सिंहराज का शौर्य, भैरव की शक्ति, मृत्यु का क्रोध और प्रलयकाल के यम की महिमा (महानता) मिल गयी हो। ७० —उधर खर-दूषण द्वारा भेजे गये दूतों से रावण को खबर मिली। वह शंभुक के मरण से दुःखी होकर, कुपित हुआ— उस क्रोध के कारण तनी हुई भौंहों ने अंधकार को भयभीत करा दिया। मुख, संध्या की कालिमा की भाँति, लाल-लाल हो गया। लाल आँखों से उल्कापात-सी चिनगारियाँ वरसने लगीं। उसके अधर (क्रोध से) काँपने लगे। ७१ —इस तरह, प्रलयकाल के समुद्र की भाँति उद्वेलित होकर— रावण ने निश्चय किया कि तपस्या में लीन, निरपराधी, मेरी बहन के पुत्र को अन्याय से मारने (वध करने) वाले को मारेगा

रियनेरेदारिपें खरन शोक कृषानुवनेंदु काय्दु दु-
र्जयनसुराधिपं जडिदनासुरमं निज चंद्रहासमं ।। ७२ ।।
ओंदविद कोप वह्नियुरियुं पोंगेयुं नेगेवंतें पद्रा-
गद हरिनीलदुन्मुख विभूपण रश्मि पगंडुगोळ्विनं
कदन मदोद्धतं खचरनायकरं वरवेळ्दु सिंह पी-
ठदिनिरदेळ्दनस्तमित पुण्य दशाननना दशाननं ।। ७३ ।।
अंतु सिंहासनदिंदेळ्दु—
सेडेये हिमप्रभं निज यश: प्रभेयिंदिननंशु माले की-
ळ्वडे बलगैय वाळ पोळेपि कडुगळ्गले देह दीप्तियिं
दोडरिसे राहु तन्न हरिनील विमानमनेरुवंतिरा-
गडे कडुकेय्दु पुष्पक विमानमनेरिदनिंद्रविद्विषं ।। ७४ ।।
अनंतरं—
प्रतिकूलानिलनिं पताके मगुळेंबंतागे कैसन्नेयिं
श्रुतियं सार्तरे पोपुदल्तु नयमेंबंतागि घंटा ठण-
त्कृति सार्तदुदु पुण्य देवतेय कण्णीरेंबिनं मेघं सं-
हतियिंदल्लुगे मुत्तु पुष्पक विमानं दंडकारण्यमं ।। ७५ ।।

और शत्रु की रक्तधारा से खर की दुखाग्नि को बुझा देगा। इस विचार से उसने अपने चन्द्रहास खड्ग को उठा लिया। ७२ रावण की कोपाग्नि से ज्वाला और धुँआ फूट पड़े। उसके द्वारा धारण किए हुए इंद्रनील वज्र का प्रकाश स्पष्ट चमक रहा था। युद्ध के मद से आवृत्त उसने खेचर-नायकों को बुलवाकर, बैठे हुए अपने सिंहासन से उठा तो ऐसा लगा मानो अर्जित पुण्य के दसमुख अस्त होने जा रहे हों। ७३ —यूँ सिंहासन से उठा तो— उसके यश की प्रभा से चंद्रप्रभा भयभीत हुई। दाहिने हाथ के चंद्रहास के प्रकाश से सूर्य-किरणें फीकी पड़ गयीं। देह के प्रकाश से घना अंधकार ही हट गया। इंद्र का शत्रु रावण अपने पुष्पक विमान पर ऐसा चढ़ा मानो राहु अपने काले विमान पर चढ़ा हो। ७४ —उसके बाद— प्रतिकूल हवा के कारण पीछे की ओर उड़कर विमान का ध्वज लहरा कर मानो कह रहा था 'लौट जाओ', हाथ के आभूषण की घंटिका मानो 'यह न्याय कार्य नहीं है' कह कर रोकना चाहती थी; बादलों से मोती-सी बूंदे ऐसे टपकने लगीं मानो पुण्यदेवता इस कुकृत्य का परिणाम सोचकर आँसू बहा रहा हो। इतने में पुष्पक विमान दंडकारण्य पहुँचा। ७५ —उस समय छायादार जगह में राम के बगल

आ समयदोळ दशास्यनोंदु तण्बुळिल ताणदोळ् बरसिडिल बरिविडिदु पोळेव कुडुमिंचिनंते बलभद्रन कॆलदोळिर्द सीतेयं कंडु—

बलॆ दृष्टिगॆ वज्रद सं-
कलॆ हृदयक्कॆ निजरूपवति जानकि क-
ण्बोलदोळिरॆ पद्मपत्रद
जलबिंदुविनंते चलितमादुदु चित्तं ॥ ७६ ॥

अॆनगालोकनमात्रदि ※ ननुरागमनित्तु तम्म नीलच्छविर्यि
मनमं ऋजुमाडिदुवी※वनितेय कोंकिद कुरुळ्गळिदु बिसवंदं ॥ ७७ ॥

मृगलोचनंगळिर्दुवु ※मृगमिल्लिर्दपुदु वटफलं वटमिल्ली
पगलुमॆसॆविदुवेत्तणि ※नोगॆदुदो पेळॆंदु नोडिदं नगॆमोगमं ॥ ७८ ॥

तळतळिसि पोळॆयॆ सीतेय
चळ नयनं खचर चक्रवर्तिय चित्तं
कोळदोळगॆळवाळॆ तेरं
बोळॆवंते कळंकि कदडिदत्ताक्षणदोळ् ॥ ७९ ॥

सिरिसद वासिगदोळ् नलि-
वरिदाडुव तुंबियंते पाण्बन कण्गळ्
परिमरियाडिदुवू तनू
दरिय तनुव पाशमॆनिप दोर्वल्लरियोळ् ॥ ८० ॥

---

में बैठी हुई सीता जो घनगर्जना का अनुसरण कर आई हुई बिजली-सी प्रतीत हो रही थी, रावण को दिखाई पड़ी— उसका सौंदर्य रावण की आँखों के लिए जाल और हृदय के लिए वज्र-शृंखला बना। उसका मन उसी तरह विचलित हुआ जिस तरह कमल के पत्ते पर पड़े हुए जल-बिंदु। ७६ उसे लगा कि अवलोकन मात्र से अनुराग जगाकर इस युवती के घुंघराले बालों ने मेरे मन के प्रकाश को विचलित कर दिया है। यह आश्चर्य की बात है। ७७ हरिणी-सी आँखें होते हुए भी वह हरिणी नहीं है, यहाँ वटवृक्ष का फल है लेकिन वटवृक्ष नहीं है। यह सोचकर कि दिन में यह चाँद कहाँ से आया, उसके (सीता के) हँसमुख को देखा। ७८ सीता की चंचल आँखें चमचम चमकने लगीं तो रावण का चित्त उसी तरह चलने लगा जिस तरह तालाब के पानी में मछली का शिशु चलता है। ७९ सिरीष-पुष्पमाला में खेलता हुआ भ्रमर की भाँति उस पातक की दृष्टि सीता के शरीर-रूपी पाश में दौड़ने लगी। ८०

सुळिगोंड नाभिकूपद
सुळियिं पोरमडदे सुळिव नयनंगळ वें-
बळिविडिदु परिदुसुळिदुदु
सुळियोळगण परिगुलंते पातकन मनं ॥ ८१ ॥

हार मरीचि मंजरि सुधारस धारे सुधांशु लेखे क-
पूर्र शलाके नेत्रसुख दायकमीदोरेतल्लवीके श्रं-
गार समुद्रमं कडेये हृद्भवनुद्भवेयादळेंदु क-
ण्णारे दशास्यनीक्षिसिदनीक्षिसि कण्णरिदारे मन्मथं ॥ ८२ ॥

पलरुं विद्याधरस्त्रीयरुममरियरुं मानव स्त्रीयरुं त-
म्मोलविं मेल्वाय्दोडं मुंवगेयद बगेयेनादुदेंदुद्धतं मू-
दलिसुत्तु रूपिनोळ् मच्चरिसुवनेनगेंदवनंवट्टुवन्नं
पलकालक्केसुवेत्तं दशमुखनेनुतुं मन्मथं माणदेच्चं ॥ ८३ ॥

स्वांतं पंचेषुविं दंतगेवुलवोलप्पंतु कंदर्पनेच्चे-
च्चेंतुं कैवारदट्टासुरवेने मुळिदेळ्वट्टि कोदंडदिं पो-
य्देंतानुं निन्न सौंदर्यदिनेनगोळगादं दशग्रीवनेंदा
कांता रत्नक्के वैदेहिगे मकुट हटद्ररत्नदिंदर्घ्यमित्तं ॥ ८४ ॥

अंतु बसदागि—

नडे नडगोल्वरं दशमुखं मनमं सुमनश्शिलीमुखं
नडेगिडे कीर्ति बातेगिडे लक्ष्मि मोदलिगडे मानसिक्के ने-

---

उस पातकी का मन सीता के नाभी-कूप के भँवर में फँसकर वहाँ से निकलने के बाद सीता के दृष्टि विक्षेप के पीछे भटकता रहा। ८१ इसके कंठाहार का प्रकाश, अमृतरस-धारा, चंद्रकिरण, कर्पूर-कांति आदि दृष्टि-सुख को बढ़ाते है तो यह श्रृंगार-समुद्र का मथन करने पर कामचक्रेश्वर की बेटी बनकर जन्मी होगी। इस विचार से रावण काम-पीड़ा से छटपटाया। ८२ अनेक विद्याधर स्त्रियों, देवस्त्रियों, मानवस्त्रियों द्वारा अपने प्रेम से इस रावण को मोहित करने का प्रयत्न करने पर भी विचलित न होनेवाला उसका अटल स्थैर्य अब क्या हुआ? इस उद्धट रावण के स्थैर्य की परीक्षा के लिए कामदेव ने उस पर पुष्पवाण का प्रयोग किया। ८३ पंचबाणों से, मन्मथ ने ऐसा बेधा कि रावण का अंत:सत्व विचलित हो उठा। तत्पश्चात् सीता को अपने मुकुट-रत्नों की कांति से अर्ध्य चढ़ाते हुए यह कहकर प्रणाम किया कि तुम्हारे सौन्दर्य के कारण बलशाली रावण मेरे वश हुआ है। ८४ —इस तरह रावण सीता के सौंदर्य-जाल में फँसने पर—

पंडुगिडॆ सत्य सौच गुण संपदवेळ्दिदनादनॆन्नरुं
किडिमसियादवोल् विषय लोभदिनेळ्दिदरागदिर्परे ॥ ८५ ॥
विहिताचारमनन्वयागत गुण प्रख्यातियं दुष्ट नि-
ग्रह शिष्ट प्रतिपालन क्षमतॆयं कैगायदन्यांगना
स्पृहॆयं ताळ्दनल्तॆ कालवशदिं लंकेश्वरं विस्मया
वहमल्तभ्धियुमॊर्मॆ कालवशदिं मर्यादॆयं दांटदे ॥ ८६ ॥
अंतु मनवॆळदुवरियॆ—
मदकरिय दान लेखॆगॆ * पदॆव मधुव्रतद माळ्कॆयिं दशवदनं
पदॆदं रघुवीरन पा- * र्श्वद सुदतिगॆ विषयि तन्न केडं नोडं ॥ ८७ ॥
अविवेकि दशमुखं दृ-
ष्टि विषाहिय पॆडॆय मणिशलाकॆगॆ कै नी-
डुव गांपनंतॆ रघुवी-
रवधू जनकॆजॆगॆ मनदॊळळिपं तंदं ॥ ८८ ॥
परवधुगासॆगॆय्वधिक पातकमॊंदु रघुवीरनॊळ्
धुरदॊळिदिर्चदोसरिसि वंचिसि सीतॆयनुय्व भीतियॊं-
दॆरडरॊळं जसं मसुळॆ तन्नवलोकिनियं दशासनं
स्मरिसिदनात्म सत्वगुण हानियॆ सूचिसदे विनाशमं ॥ ८९ ॥

---

पुष्पबाण के आघात से उसकी गति मंद हुई, मन मलिन हुआ, कीर्ति घटने लगी। सत्य और शुद्ध चारित्र्य अपहास के पात्र हुए, समस्त सद्गुण जलकर भस्म हुए तो विषयापेक्षा किसे बर्बाद किए बिना छोड़ेगी ? ८५ आचार-शुद्धि को, वंशपरंपरा से आयी कीर्ति को, दुष्टों को दंडित कर, क्षमागुण की रक्षा करना छोड़कर रावण जैसा व्यक्ति परस्त्री की चाह से कालवश हुआ तो यह अवश्य आश्चर्य करने की बात है न ? ८६ —इस तरह मन हार जाने पर— रावण अपने पर आनेवाली विपत्ति की परवाह किए बिना, राम के पक्ष में खड़ी सीता के रूप द्वारा ऐसा घेर लिया गया। जैसे मदमत्त हाथी के मदोदक को घेरते हुए भ्रमर हो। ८७ भयानक विषधर के फन पर स्थित रत्न के प्रकाश में हाथ डालनेवाले मूर्ख की भाँति अविवेकी दशमुख, राम की पत्नी (सीता) को चाहने लगा। ८८ पहला, परस्त्री की चाह का पाप, दूसरा, युद्ध में राम का सामना किए बिना, वंचना से सीता को उठा ले चलने का भय—दोनों में उसकी कीर्ति कलंकित हुई तो अपने वश में जो अवलोकिनी विद्या थी, उसे रावण ने स्मरण किया। आत्म-सत्व की दुर्बलता विनाश की सूचना नहीं

अंतु नेनेयलोडमवलोकिनीविद्ये मनदोडने वंदु बेसनावुदेने दशमुखनिवरारेंबुदुमयोध्या सिंहासनक्कधिपतियुमिक्ष्वाकु वंशसंभव-नुमप्परण्य तनूभवं दशरथ नरनाथं तदपत्यरिवरीकालद वलदेव वासुदेवर् देवताधिष्ठितंगळप्प वज्रावर्त सागरावर्तचाप रत्नंगळन-प्रयत्नदिं पडेद रामलक्ष्मणरेंबर्, महावल पराक्रमरीकें रामन महादेवि मिथिलापुरवरेश्वरनप्प हरिवंशद जनकन तनूभवे रथनू-पुरचक्रवाळपुरमनाळ्व चंडवल पराक्रमनप्प प्रभामंडलन तंगे सीतादेवियेंबळेंबुदुमीकेयनीतनिंदगल्चुवुपायमावुदेने देवते भयचकित चित्तेयागि—

आरय्ये विरोधं सा-॥धारण पुरुषरोळमुचितमल्तधिक वलर्
कारणपुरुषरिवर् नि-॥ष्कारणविवरोळ् विरोधमं माडुवुदे ॥ ९० ॥
काव बेसं निन्नदु सक-॥लावनियनधर्मनिरंतरं नियमिसि नी-
नीविषयक्केरगुवुदुं ॥कावरे कणेगोंडरेंब नुडिगेडेयक्कु ॥ ९१ ॥
अन्नेयदिं नडेववरं ॥ नीन्नियमिसुवै दशास्य पेरनावं नि-
न्नन्नियमिसुवं मुन्नीर् ॥ बेन्नीरेने बेरसलण्ण तण्णीरोळवे ॥ ९२ ॥

---

देगी ? ८९ —इस तरह स्मरण करने पर अवलोकिनी विद्या ने प्रत्यक्ष होकर स्मरण करने का कारण पूछा। रावण के यह प्रश्न करने पर कि यह कौन है, उसने वताया कि अयोध्या-सिंहासन के अधिपति एवं इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न अनरण्य के पुत्र दशरथ के वेटे हैं। इस युग के वलदेव-वसुदेव हैं। देवताओं के वज्रावर्त, सागरावर्त धनुषों को वड़ी आसानी से पानेवाले राम-लक्ष्मण हैं। वड़े वलशाली हैं। यह इसकी (रामकी) पत्नी सीता है; मिथिला के राजा जनक की वेटी है; रथनापुर और चक्रवालपुर के शासक वीर पराक्रमी प्रभामंडल की वहन है। रावण के (पुनः) यह पूछने पर कि इसे (सीता को) पति से अलग करने का उपाय क्या है, तो विद्यादेवता को भय और आश्चर्य हुआ— सोचे तो, असामान्यों के साथ शत्रुता मोल लेना उचित नहीं। ये कारण-पुरुष हैं। अकारण इनसे शत्रुता क्यों मोल लें ? ९० सवकी रक्षा करने की जिम्मेदारी तुम्हारी है। अधर्म में लगे हुए लोगों को सद्मार्ग में लानेवाले तुम ही ऐसे विषय-भोग की इच्छा करने लगे तो इस वात को अवसर मिलेगा कि रक्षक ही भक्षक वन वैठ गये हैं। ९१ अन्याय के पथ पर चलनेवालों को दंड देने-वाले तुम्हें इस तरह गलत मार्ग पर चलना नहीं चाहिए। समुद्र के खारा पानी में गरम पानी मिलाने पर क्या वह मीठा पानी में परिवर्तित होता है ? ९२ चौदह हजार सेना और असंख्यांत सेनाधिपतियों के साथ खर-दूषणों

पदिनाल्सासिर मुख्य नायकरसंख्यातं बलं खेदर्दि-
दिदिरादर् खरदूषणर् बगेदनिल्लत्तल् भरंगेय्दु का-
दिदपं लक्ष्मणनित्तलीकेयोडनीतं वीत शंकं विनो-
दर्दोलिर्द रघुवीररिन्नरिवरोळ् विद्वेषणं दूषणं ।। ९३ ।।
अेंदु तेरेये नुडिदुदर्कें कडुमुळिदु—

मदन यशःपटह ध्वनि
पुदिये वियच्चरन कर्णमं हृदय-
क्कैय्दिदुदिल्ल दिव्य वचनं
बिदियं मीरुगुमे पेरर पेळ्दुपदेशं ।। ९४ ।।

आनोंदं बेसगोंडोडे ※ नीनोंदनिदेके पेळ्दे पेळ्दनेगो-
ळ्ळेनेंदु कीरिनुडिवै ※ मानवरांतपरे मरुळे लंकापतियं ।। ९५ ।।

अेंबुदुं विद्यादेवते कनल्दु—

जनकजेयनुय्ये दशरथ ※ तनूजरिं मरणमागलेंदिर्दपुदीं-
तन कैयळवल्तु पुरा- ※ तन कर्मायत्तमल्ते देहिगळेसकं ।। ९६ ।।
गेललेनगे रिपुबलं ब ※ ल्वलमादोडे सिंहानादमं माळ्पे बें-
बलवागि बर्पुदेंदी ※ बलदेवंगरिपि वासुदेवं पोदं ।। ९७ ।।

---

ने सामना किया तो उनकी परवाह किए बिना लक्ष्मण लड़ता रहा और (उस समय) राम सीता के साथ प्यार-मोहब्बत की बातों में लगा हुआ था। ऐसों से शत्रुता मोल लेना हास्यास्पद है। ९३ —इस तरह स्पष्ट समझाने पर कुपित होकर— कामचक्रेश्वर की कीर्ति की जय-ध्वनि उसके कानों में ऐसी सुनाई दे रही थीं कि अवलोकिनी की दिव्य-वाणी उसके हृदय तक नहीं पहुँच पाई। अन्यों का उपदेश विधि-नियम की अवहेलना थोड़े ही कर सकता है? ९४ मैं एक बात पूछता हूँ तो तू कुछ और ही क्यों कहता है? तू समझता है कि मैं तेरा उपदेश सुनूँगा? अरे मूर्ख सामान्य मनुष्य मुझ लंकाधिपति का सामना कर सकते हैं? ९५ —रावण के ऐसा कहने पर विद्यादेवता कुपित हुआ— सीता को ले जायगा तो दशरथ के पुत्रों से इसकी मृत्यु निश्चित है। ऐसे में इसे उपदेश देने से क्या लाभ? अपने-अपने कर्म के अनुसार ही उन्हें फल मिलेगा न? ऐसा सोचकर। ९६ उसने रावण के कानों में कहा कि लक्ष्मण राम से यह कहकर युद्ध भूमि में गया है कि शत्रुओं को पराजित करने में असमर्थ होने पर वह सिंहनाद करेगा। ९७ —इसे सुनकर

अेंदु रावणंगे पेळ्वुदुमवं रणक्षोणिगे पोगि लक्ष्मणं केळदंतु वैकुर्वण शक्तियिं सिंहनादगेय्येंबुदुं, अंतेगेय्वेनेंदु विद्यादेवते पोगि सिंहनादंगेय्वुदुमा ध्वनियं केळ्दु—

धुरदोळ् दुर्जयनार्गमेन्ननुजनेंबी निश्चयंगेट्टु सिं-
ह रवंदोरिदनाहवं विषममेंबी विस्मयं चित्तदोळ्
दोरेकोंडत्तु रघुद्वहंगमुळिदंदेंतवकुमो जानकी
हरणं कर्म विपाकमारबगेगं वैकल्यमं तारदे ॥९८॥

कापं पेळ्दु जटायुव ※ नोपळनिरवेळ्दु वैरिबलमं तविसल्
पोपंतिरे दंडधरं ※ चापधरं बलनवंध्यकोपं पोदं ॥९९॥

अन्नेगमित्तल्—

अळिपि परवधुगधोगति※गिळिवुदनभिनयिसुवंते सीतेय सार-
ण्गिळिदं नभदि खचरं ※पळिगं पापक्कमंजदवरेगेय्यर् ॥१००॥

दोषि पिडिवंते दिण्यद ※ कासिद कुळुवं कडंगि कालोरगनं
कूसुपिडिवंते पिडिदं ※ सासिगनविवेकि सीतेयं दशकंठं ॥१०१॥

अंतु पिडिदु निज विमानदोळिट्टु—

---

रावण ने अवलोकिनी को आज्ञा दी कि वह युद्धभूमि में जाकर, जादू से ऐसा सिंहनाद करे कि लक्ष्मण न सुन पावे। आज्ञा मानकर वैसा ही करने का वचन देकर, विद्यादेवता ने युद्धभूमि में सिंहनाद किया। इसे सुनकर— इस सिंहनाद ने, राम के इस विश्वास को कि उसका भाई किसी के लिए भी अविजेय है, विचलित किया। उसके लिए युद्ध कठिन बन पड़ा है। लेकिन राम मन ही मन शंका करने लगा कि यह तो आश्चर्य की बात है! राम को ऐसा हुआ तो फिर औरों को कैसा लगेगा? जानकी को खोना कर्मफल ही है तो उसका उल्लंघन कैसे हो सकता है? ९८ जटायु को बुलाकर, सीता की रक्षा करने का भार सौंपकर, पत्नी को समझाकर—सांत्वना देकर, शत्रुओं पर विजय पाने के लिए, धनुर्धारी राम ऐसा चल पड़ा मानो दंडधारी यमराज निकल पड़ा हो। ९९ —इधर— आकाश से रावण सीता के पास ऐसा उतरा मानो परस्त्रियों की अपेक्षा कर अधोगति में उतरने का अभिनय करता हो। जो अपकीर्ति और पाप से नहीं डरते, वे क्या नहीं कर सकते? १०० सीता को रावण ने उसी तरह पकड़ा जिस तरह दोषी (अपराधी) व्यक्ति आग में तपे दिव्य लोहे की छड़ी को और छोटा (अबोध) बच्चा विषैले सर्प को पकड़ता है। १०१ —इस तरह पकड़कर, उठाकर, अपने विमान

दशमुखनुन्मुखनळिपिं॰शशिमुखियं जनकसुतेयनावरिसे चतु-
र्दश भुवनमनपवादं ॰ शशिकलेयं सैंहिकेयनुय्वंतुय्दं ॥१०२॥

आगळदं जातिस्मरनप्प जटायु कंडु कोपानल विस्फुलिंगदं-
तारक्तंगळाद कण्गळि नुंगुवंते नोडि—

पति कापुवेळ्दु पोदं ॰ सतियं कळदुय्दपं खळं मार्कोडु
द्धतनं मदीय तुंडा ॰ हतियिं शत खंडमागे माळ्पेनेनुत्तुं ॥१०३॥

खरनखरंगळिं निशित चंचुगळिंदिरियल्करुत्तु सा-
र्तरे नसुनक्कु पोय्ये करदिं गमनोत्सुकनिंद्रवैरि त-
न्नेरडुमेरंकेगळ् मुरिदिळातळदोळ् केडेदत्तु वज्रदिं
सुरपति पोय्ये बेट्टु केडेदंते जटायु नभोविभागदिं ॥१०४॥

पक्किमोंदलागि पति का-
र्यक्कनुवशमागि तागि रावणनोळडु-
र्तेक्कतुळमिरिदुदेंदोडे
तक्कं पतिकार्यदेडेयोळोसरिसुवने ॥१०५॥

भूमिगे बिळ्देरंके मुरिदिर्द विपत्तिगे नोंदुदिल्लणं
रामनगल्केयिं जननिगेदोरेतक्कुमो दुःखवेगमें-

में रखकर— पापी दशकंठ रावण चंद्रमुखी सीता को ऐसा ले चला मानो परस्त्री को मोहित कर चौदह भुवनों को अपमानित (कलंकित) किया हो या राहु ने चन्द्र को ग्रस लिया हो। १०२ —तब जटायु ने कुपित होकर, आँखों से अग्नि की चिनगारियाँ बरसाते हुए, रावण को ऐसा देखा मानो आँखों से ही निगलता हो— पति ने (सीता की) रक्षा करने को कहा है। यह पापी तो उस सती को चुरा ले जा रहा है। उसे रोक कर अपनी चोंच से उसपर ऐसा वार करूँ कि वह सौ टुकड़ा हो जाय। ऐसा निश्चय कर। १०३ तीक्ष्ण नखों से, चोंच से, रावण पर वार करने के लिए जटायु आगे बढ़ा तो रावण ने जाने की गड़बड़ी में अपने हाथ से जटायु पर वार किया, तो वह पक्षी अपने दोनों पंखों को तुड़वाकर (खोकर) आकाश से उसी तरह नीचे पृथ्वी पर गिरा जैसे देवेन्द्र के वज्रायुध के प्रहार से धरती पर पर्वत गिर पड़ा था। १०४ तब एक पक्षी ने भी स्वामीकार्य मानकर रावण का सामना किया तो अपने स्वामी के लिए अपने प्राण देने में कोई योग्य व्यक्ति क्या पीछे हटेगा ? १०५ अपने पंखों को खोने या आकाश से पृथ्वी पर गिरने की पीड़ा से जटायु तनिक भी दुखी नहीं हुआ। अपितु इस बात की चिंता रही कि राम की

बी मनदुम्मळं तनगॆ तिण्णमॆनल् तोरॆदंतदं खग-
ग्रामणि चित्तदॊळ कळॆदुदंचित पंच पदाक्षरंगळं ।।१०६।।
अंतु बिळ्दु जटायु कंठगत वायुवागॆ दशकंठनुय्व समयदॊळ्—
सिंगदकैगॆ विळ्द हरिणांगनॆवोलॆदॆगॆट्टु रामचं-
द्रांगनॆ नीळ्द कण्मलर्गळिंदुगॆ कण्वनिगळ् मडलत प-
क्ष्मंगळनॊत्ति कारमुगिलिंदुगुतर्प नवोद बिंदु जा-
लंगळॆनल् बेमर्तळॆनसुं तनुवल्लि मुगुळ्तुदॆंबिनं ।।१०७।।
मनमॆळदागॆ मन्युमिगॆ तळ्तॆमॆयिं करॆगण्मि सूसॆ क-
ण्वनिगळकंदळं बिगियॆ गद्गद निस्वनमुण्मॆ हारवं
जनियिसॆ सीतॆ भीतॆ दॆसॆगॆट्टॆदॆगॆट्टळॆ पॊण्मिदत्तु मा-
दनिदॆसॆयॊळ् दिगंगनॆयरुं बिडदंदॊडनळ्व माळ्कॆयिं ।।१०८।।
भोंकनॆ कंडु सीतॆ दशकंधरनं नॆलॆवॆर्चॆ शोकवा-
तंकमॊडर्चॆ पुष्पक विमानद रत्न विचित्र पुत्रिका
संकुलमळ्तॊडळ्तुवु बॆमर्तॊडॆ कूडॆ बॆमर्तुवागळा-
लंकॆय सूडनुन्नतिय केडनवंगॆ निवेदिपंतॆवोल् ।।१०९।।
स्तनमंडलक्कॆ पॊसमु- * त्तिन हारमनित्तु तोरकण्वनिर्यिं लो-
चन युगलमरुण मणि मं*डनमं किविगित्तुवरुणरुचि मंजरियिं ।।११०।।

---

अनुपस्थिति में आई विपत्ति को सीता माता न जाने किस तरह सह पायेगी ! इसी चिंता में उसके प्राण उड़ गये । १०६ —इधर जटायु ने प्राण त्याग दिए और उधर दशकंठ सीता को ले जा रहा था । ऐसे समय में— सिंह के पंजे में फँसी हिरणी के समान सीता, दुखी होकर व्यस्त पलकों से बहती हुई अश्रुधारा से वर्षाऋतु के पानी के समान सारा शरीर भीगने पर, ऐसी लगती थी मानो देहरूपी पुष्पलता ही खिल गयी हो । १०७ उसका मनोबल घटने लगा; कंठ से गद्गदित स्वर निकला; मुख से आर्तनाद निकल पड़ा । उसका भयाकुल आर्तनाद ऐसा प्रतिध्वनित हो उठा कि दिग्वनिताएँ आश्चर्यचकित हुईं । १०८ सीता ने मुख उठा कर रावण को देखा तो चौंक उठी; मन में शोक और भय एक साथ जाग उठे । पुष्पक विमान के रत्न-पुतलो ने भी उसकी रुलाई के साथ ध्वनि मिलायी । सीता को पसीना आया तो उन्हें भी पसीना आया । ऐसा लगा मानो ये विचित्र रोदन ही लंका के लिए घातक के सूचक हैं । १०९ बहते हुए अश्रुबिंदु उसके कुचमंडल को घेरकर ऐसे लगने लगे मानो मोती का हार पहनाया गया हो । उसकी आँखों की कांति ने कर्णाभरणों को अरुणिमा प्रदान किया । ११० जाल में फँसे मयूर के समान भय-व्याकुल

वलॆगॊळगाद सोगॆनविलंतॆ भयाकुळॆ तन्नचित्तदॊळ्
नॆलसिद रामनं बयसि नोडलपेक्षिसि बाह्य दर्शन-
क्कलसिदळॆंबिनं मुगियॆ कण्मलर्गळ् नसु मुच्चॆवोगि त-
ण्णॆलरलॆपिंदॆ मूर्छॆदिळिदळ् मगुळ्दुं पॊरपॊण्मॆ हारवं ।।१११।।
नेसर सारॆ निब्बरिसुवुत्पलमालॆयॆनिप्प दृष्टि वि-
न्यासमनॊय्यनोसरिसि नम्रशिरोधरॆ सीतॆ लोक सं-
त्रासिय रूपु पाद नख दर्पणदॊळ् पलवागि तोरॆ कं-
डासति बॆंचिमुच्चिदळॆरळ्करदिं तरलेक्षणंगळं ।।११२।।
क्रूरात्मं वंचकनवि- ※ चारि दुराचारि वगॆयदुय्दपनॆन्नं
हा रामा हा रामा ※ बारिपरारॆंदु सीतॆ शोकंगॆय्दळ् ।।११३।।

अंतु शोकंगॆय्व सीतॆयं दशास्यननंतरवीर्य केवलिगळ चरणोपांतदॊळ् कैकॊंड परांगना विरतिव्रतद भंगमं वगॆयदुय्दनन्नॆग-मित्तल्—

देवेंद्रन वज्रमनॆ ※ न्नी वज्रावर्त चापमं मीरुवनि-
न्नावनॆनुत्तुं संग्रा- ※ मावनिगनुजन कॆलक्कॆ रामं वंदं ।।११४।।

अंतु बर्पुदुं लक्ष्मणनपाय बहुळमप्प गहनदॊळ् देव ! सीतादेवियनगल्देकॆ विजयंगॆय्दिरॆंबुदुं, निम्न सिंहनादमं केळ्दु वंदॆनॆनॆ

---

सीता, अपने मन में निवास करनेवाले राम को देखने की अपेक्षा से बाह्यवस्तु को देखने से आलस्य दिखाती हुई-सी, आँखें मूंदकर मूर्छित हुई। लेकिन बहती हुई ठंडी हवा के स्पर्श से जागकर पुनः आर्तनाद एवं शोक करने लगी। १११ सीता को लेकर उड़नेवाला विमान सूर्यमंडल के निकट पहुँचा तो उस प्रकाश से सीता ने आँखें मूंदकर, नतमुखी होकर, देखा तो लोक-कंटक रावण का रूप उसके (रावण के) दर्पण सदृश नखों में विभिन्न प्रकार से दिखाई देने लगा। तब सीता ने काँपते हुए दोनों हाथों से आँखों को बन्द कर लिया। ११२ क्रूरात्म, वंचक, अविचारी एवं दुराचारी (रावण) मुझे ले जा रहा है। हाय हाय ! इसे कौन रोक सकता है? इस तरह सीता विलाप करने लगी। ११३ —इस तरह विलाप करती हुई सीता को, रावण, अनंतवीर्यमुनि के समक्ष दिए गये इस वचन (व्रत) को कि वह कभी परस्त्री की अपेक्षा नहीं करेगा (जानते हुए भी) ले जा रहा था इधर— यह सोचता हुआ कि देवेंद्र का वज्रायुध और मेरे इस वज्रावर्त धनुष का कौन सामना कर सकता है, राम युद्धभूमि में शत्रुओं से लड़नेवाले अनुज लक्ष्मण के पास आया। ११४ —ऐसा आने पर, उसे देखकर लक्ष्मण के यह पूछने पर कि भगवन्, सीतादेवी को

भवदीय प्रसाददिनेनगे बल्वलमप्प . बवरमिल्लदावनानुमोर्व मायाविय माटमक्कुमदुकारणं बेगं बिजयंगेय्वदानि बवरमं तीर्चि निम्म बेन्ननें बंदप्पेनेंदु बिन्नविसे—

तोरिदनिल्ल सिंह रवमं गड लक्ष्मणनेन्न चित्तदोळ्
तोरिदुदिल्ल बिट्टु बरलागदु सीतेयनेंब निर्णयं
बेरे कडंगि केत्तिदपुदेन्नेडगण् तडविल्लदच्चिगं
तोरदे माणदितिदेनुतुं मगुळ्दं मनुवंश मंडनं॥११५॥

अंतु मगुळ्दु बंदु मुन्नमिर्द लताभवनदोळ् मनोवल्लभेयं काणदे शिखिमुखक्के वंद पादरसदंते निज निसर्ग धैर्यगुणमदृश्य-मागे—

हाहा जनकसुते वै- * देही वैदेहियेंदु पुदिदिरे मनमं
मोहतमं दीपं वा- * ताहतियिं नंदुवंते मूर्छेगे संदं॥११६॥

अंतु मूर्छेवोगि किरिदानुं बेगदिं—

नसु बिसुपेळे मेय् मगुळे केत्तुव ताणमे केत्ते मंदमा-
दुसिर्गळे नासिका मुकुलदिंदिनिसुं पोरपोण्मे नळ्तु सं-

---

खतरनाक घने जंगल में छोड़कर क्यों आये ? तो राम ने कहा, तुम्हारा सिंहनाद सुनकर आया हूँ। तब लक्ष्मण ने कहा भैया, आपकी कृपा से मेरे लिए यह युद्ध तनिक भी कठिन नहीं लगा। सिंहनाद तो किसी मायावी का कपट-नाटक होगा। अतः आप तुरन्त सीतामाता के पास लौट जाइए। इस युद्ध को समाप्त कर मैं भी तुरन्त आ जाता हूँ। लक्ष्मण के ऐसा निवेदन करने पर-- राम मन ही मन यह सोचते हुए कि मेरे मन में यह विचार कभी नहीं आया कि लक्ष्मण ने सिंहनाद नहीं किया, और अकेली सीता को छोड़कर नहीं जाना चाहिए; इससे लगता है कि कुछ अचातुर्य घटा होगा। मेरी बायीं आँख फड़क रही है; यह अशुभ के सूचक (लक्षण) हैं, वह अपनी पर्णकुटीर में पहुँचा। ११५ --पहुँच कर सीता को वहाँ न पाकर रामका निसर्गदत्त (सहज) साहस उसी तरह अदृश्य हुआ जिस तरह आग के पास आकर पारा-- हा हा ! जनकसुता, वैदेही, सीता ! कहकर उसका हृदय पत्नी के व्यामोह से तड़पते-विलपते हुए तूफान के आघात से बुझता दीप-सा (राम) मूर्छित हुआ। ११६ --इस तरह मूर्छित होने के कुछ क्षणों के बाद-- उसका शरीर थोड़ा गरम होने पर, चलनेवाले अंग चलने लगे, नासिकाओं से मंद स्वास चलने लगा, तो बंद पलकें खुलने पर पुनः जानकी को पुकारता हुआ सूर्यतुल्य

दिसिदें मै विर्च्चे कण्मलर्गळुळ्ळलरुत्तिरें जानकी येंनु-
त्तुसिर्दुसिर्देळ्दना रघुकुलांवर चंडमरीचि मूर्छेयिं ॥११७॥

अंतु मूर्छेयिंदेळ्चत्तु सुत्तलुं तोंळल्दरसुत्तुमडवियोंळगनें बरुत्तुमिर्पागळोंदेडेयोंळसु वियोग संकटदिं सरंगेय्व जटायुवं कंडु सीताहरणमिदर्कें मरणनिमित्तमादुदेंदुब्वेगंबट्टु संसारविषम विषापहारमं पंच नमस्कार मनदर्कें पेळ्दमरगतियनेंय्दिसि वैदेहियना वनांतरदोंळेल्लियुमरसि काणदे—

कळहंसालस यानेंयं मृगमदामोदास्य निश्वासेंयं
तळिरे तावरेंये मदाळिकुलमे कर्नेय्दिले मत्तको-
किळमे कंडिरें पल्लवाधरें मनंभोजास्येंयं भृंग कुं-
तळयं कैरव नेत्रेयं पिक रव प्रख्यातेयं सीतेंयं ॥११८॥

मलयज गंधबंधुर सरोरुहमं दरहास चंद्रिका
विलसित चंद्र मंडलमना रमणी रमणीय लोचनो-
त्पल सहज प्रसन्न कमलाकरमं स्मरराज राज्य मं-
गल मणिदर्पणोपममनोपळ वक्त्रमनेंल्लि काण्बेंनो ॥११९॥

कळरुति मत्तकोकिलमनीक्षणमुत्पलमं विनील कुं-
तळमळि मालेयं कचभरं नविलं नडे हंसिय तळ्

---

राम उठ खड़ा हुआ । ११७ —मूर्छा से जागकर, चारो तरफ भटक कर, ढूँढते हुए जंगल में चलते समय, एक जगह प्राण त्यागने की वेदना से कराहते हुए जटायु की ध्वनि सुनाई पड़ी । वहाँ जाकर, यह जानकर कि सीतापहरण ही उस पक्षी की मौत का कारण है, वह अत्यंत दुखी हुआ और पंच-नमस्कार, जो मोक्ष-साधन था, करके पक्षी को सद्गति प्रदान कर, उस जंगल में और कहीं सीता को न पाकर— 'हे पल्लव, कमल, भ्रमरो, लालकमल, मोर, तुम लोगों ने उस सीता को जिसका अधर-कोमल अरुण पल्लव के समान है, जिसका मुख कमल-सदृश है, जिसकी केशराशी भ्रमरों के समान है, जिसकी आँखें लाल कमल के समान है, जिसकी ध्वनि कोयल की ध्वनि के समान है, जिसकी गति हंस के समान है, जिसकी साँस में कस्तूरी-सुगंधी भरी हुई थी, क्या कहीं देखा है ? ११८ उस मुख को जो सुन्दर कमल-सदृश है, मुस्कराहट की कांति चंद्रमंडल का स्मरण दिलाती थी, जिसकी मनोहर आँखें विकसित कमलों से भरे सरोवर के समान थीं और कामदेव के रत्न-दर्पण-सदृश उस मुख को कहाँ पाऊँगा ? ११९ जिसकी कंठध्वनि कोयल की मिठास के, आँखें कमल

तळिर्गळनाननं कमलमं नळितोळ् लतेयं लतांत को-
मळे मळेगोंडु मेय्गरेदु काडुव कारणमेनो जानकी ॥१२०॥

एंदु मत्तमा मदगज गमनें वन्यगज बृंहितक्के तल्लळिसि तन्नं तळ्कैसिद सल्लकी निकुंजमुमना चकोर लोल लोचने विलोचन चंद्रिकेयिनोसर्व चंद्रकांत शय्यातळद तळिर्वासनुदासी-नंगेय्दुसमेद बयल्दावरेयेसळ पसेयिनेसेव तमाल वनमालेयुमना हेमतामरस मुखि मुखसमीर सौरभक्केळसि वळसुवळिमालेगे सुगिदु सुय्यनोसरिसिद सप्तच्छद षंडमुमना पृथुनितंबे नितंब भरपरिस्खलित पदविन्यासदिंदंचेयं पळंचळेद तण्बुळिल ताणमु-मनालावण्य रस तरंगिणि तावरेय तळिरेलेय पत्नभंगदिनुत्तुंग पयोधरमं पसदनंगोळिसिद तिळिगोळद तडियुमना मदाळिपटल कुटिल कुंतळे चेन्नेय्दिलेसळ चेन्नपूगळि तन्न तोर गुरुळ्गळनलंक-रिसिदकासार तीरमुमना सुवर्णकेतकी सुगंधि सहज सौरभदिं मृगनाभियनभिनमिसिद लवंगवन वीधियुमना शिरीष दाम कोमले सुमनोविभूषण विनोददिं बिरिमुगुळनाय्द वनतरु लता वितान-मुमना संकल्पजन्म जंगम लतांगि संभोग लोभदिनडंगुरुचाडि

---

के, काली केशराशी भ्रमरों की पंक्ति के, बंधा हुआ केशविन्यास मोर के, गति हंस के, चरण अंकुर (पल्लव) के, मुख कमल के, बाँहें लता के समान थीं, वह कोमल अंगवाली सीता अदृश्य होकर मुझे क्यों तरसा रही है ? १२० —इस तरह कहते हुए वह पुनः उस विल्वपौधे के छोटे स्थल के पास गया जहाँ हाथी के आने से डरकर सीता उससे (राम से) लिपट गयी थी और उसके (सीता के) अवलोकन से रस बहाती हुई चंद्रकांत-शिला के तलपर स्थित पल्लवशय्या को निर्लक्ष कर उसके (सीता) द्वारा बनायी गई कमल-पंखुड़ी मिश्रित तमालपत्र की माला को, उसके (सीता के) मुख के निकट बहती हुई हवा की सुगंधी के कारण मंडराते हुए भ्रमरों की गुनगुनाहट से डरकर निश्वास छोड़े हुए सात पत्तों के समूह को, ठंडी रेतीली चट्टान को, जिसमें अपने भरे नितंब के भार से हंसगति में चली थी, शुद्धपानी के तालाब के तटको जहाँ सीता कमल के कोमल पत्तों से अपने कुचों का शृंगार किया करती थी, सरोवर-तट जहाँ भ्रमरकुंतला सीता नीलकमलदलों को अपनी केशराशि में पहना करती थी, सुवर्णकेवड़े के समान सुगंधित वह (सीता) कस्तूरी-मृग की नाभि-तुल्य लवंगवन को, शिरीषपुष्पनाल-सदृश कोम-लांगी विनोद से पुष्पों को चुनकर जहाँ संग्रह किया करती थी, उस

काडिद चंदनलता मंदिरमुमना कनक कदळीदळश्यामे कदळीदळ-
व्यजनद तणगाळियिननंग केळी परिश्रममनारिसिद संपगेय जोंपमुमं
वियोग शोकाकुल चित्त नवलोकिसुत्तुं—

ऎनितानुं तॆरदिं पलुंबि पलवाडुत्तुं मनस्तापदिं
तनु संतापमनप्पुकेय्यॆ बळलुत्तुं कंतु संतापदिं-
दोनलुत्तुं कनलुत्तुमंदविरळ प्रस्यंदि भाष्पोदका
ननना काननदोळ् तोळल्दु रघुरामं सेदॆवट्टिपिनं ॥१२१॥

अन्नॆगमित्तल्—

ऎरडुं तोळ् नॆरवोंदे बिन्नॆरवसंख्यातं द्विषत्सेनॆ खे-
चररं भूचरनोंदॆमॆय्योळॆ कोलुत्तिर्दप्पनानीतनं
शरणागॆंदु कुलक्रमागतदोळस्मद्वृत्तियोळ् निल्वॆनी
शरणायात शरण्यनिंदॆनगॆ कैसार्गुं मनोवांछितं ॥१२२॥

ऎंदु तरिसंदु संग्राम भूमिगॆ बंदु—

देव भवच्चरणांबुज * सेवॆयॆ शरणॆंदु बंदॆनेवॆसनं नी
नीवुदॆनगॆंदु लक्ष्मण * देवंगॆरगलि विराधितं तदनादं ॥१२३॥

अंतु बेसनं बेडिकोंडु बीळ्कोंडु नॆलमुक्किनंतॆ नभक्कॆ नॆगॆदु
खरनं सॆरगिल्लदॆ मुट्टिवंदु मदीय जनकनं कोंदिदुवरं पाताल

---

लता मंडप को, चलते हुए कमल-सदृश वह (सीता) संभोगाकांक्षा से जहाँ आँखमिचौनी खेला करती थी उस चंदनलता के मंदिर को, सुवर्णरंग के केले के पत्ते के समान श्यामवर्ण की सीता पत्तों के पंखों से झलकर कामकेली की थकावट को दूर किया करती थी, उस चंपापुष्प के चप्पर को, विरहदुःख में डूबा राम देखता हुआ— अनेक तरह से विलाप करता हुआ, मनके दुःख से पीड़ित होकर, विरहवेदना से कुपित हो, आँखों से निरंतर अश्रुधारा बहाता हुआ, तड़पता हुआ राम जंगल में पसीने से तर हो रहा था। १२१ —इतने में इधर— विराधित ने सोचा कि पृथ्वी में खड़े होकर, अपनी शक्तिवान भुजाओं की मदद से अगणित शत्रुओं को निर्नाम करनेवाले इस वीर (लक्ष्मण) से मैं अपने कुलक्रम की रूढ़ि के अनुसार, मेरे शरणागत होने की वात कहूँगा, इससे ही मेरी मनोकामना पूरी होगी। १२२ —रणभूमि में आकर— भगवन्, आपकी चरण सेवा मेरा कर्तव्य समझकर आया हूँ। मुझे क्या आज्ञा है ? कहकर लक्ष्मण के चरण कमलों में उस साहसी ने नमन किया। १२३ —इस तरह आज्ञा माँगकर, लक्ष्मण से विदाई लेकर, आकाश में उड़कर, खर से भिड़कर, कहा, 'मेरे पिता को मारकर अब तक पाताल लंका से बाहर

लंकेयं पोरमडदे बर्दुंकिदे पलकालवक्कें तानुं बयल बवरक्कोळगादे नीनिन्नेत्तवोदपेयेंदु मूदलिसि कादुत्तुमिरे—

मोरेयुत्तुं परियुत्तुमिर्प रुधिर स्रोतंगळि सुत्तलुं
नरलुत्तु पोरळुत्तुमिर्प भटरिं पिट्टाद पीराद सिं-
धुरदिं तळ्गिद मुळ्गिदन्यरथदिं कण्गं मनक्कं भयं
करमादाजियोळट्टि तिब जवनेंबंतिर्दनब्जोदरं ॥१२४॥

आ समयदोळ् लक्ष्मणनं कंडु विराधितनं लेक्कंगोळ्ळदे मामसकंगोंडु—

पेंडतियं पराभविसिदं सुतनं वधेगेय्दनेन्नोळं
गंडगुणक्के मच्चरिसि मार्मलेदिर्दपनेंदु बिट्ट कण्
केंडद तंडमं केदरे कोपदिनंदुरिदेळ्दु कोंडु को-
दंडमनण्मेनुत्तोदरिदं गगनेचर शेखरं खरं ॥१२५॥

कवचं मिंचं कण्णु-क्ष्ळ्कुव सिडिलं चाप टंकृतं मोळगं बी-
रुविनं करेदं खरन-क्ष्स्त्रवर्षमं नीलघन विशालापघनं ॥१२६॥

आगळातनिसुव निशित विशिखंगळं मंडलाग्रदिं खंडिसि—

मोनेयोळ् भैरवनंतगुर्वुवडेदं रामानुजं बीरे बि-
च्चने विट्टक्षियुगं तृतीय नयनक्काक्षेपमं कृष्ण स-

---

न आने के कारण बच गये। अब बहिरंग में आकर मेरे हाथों पड़ गये। अब कहाँ जा सकते हो?' ऐसा अपहास्य करके लड़ रहा था कि— बहते हुए रक्त-प्रवाहों, चारों ओर से कराहते-लोटते हुए योद्धाओं, निष्प्रयोजन हाथियों, टूटकर चकनाचूर हुए शत्रु-रथों से, दृष्टि और मन को भयंकर प्रतीत होनेवाले युद्ध के बीच लक्ष्मण ऐसा दृष्टिगोचर हो रहा था मानो दिखाई देनेवालों को भगाकर खानेवाला यमराज हो। १२४ —उस समय लक्ष्मण और विराधित की परवाह किए बिना, कुपित होकर— आँखों से चिनगारी बरसाते हुए खर ने सोचा कि अपनी पत्नी का अपमान कर, बेटे को मारकर, अब युद्धभूमि में आकर मुझसे भिड़कर लड़ रहा है! उसने ललकारा— 'तेरा कोदंड उठाकर तैयार हो जाओ। १२५ उसने लक्ष्मण पर ऐसी बाणवर्षा की कि उसके कवच बिजली-सी, आँखें, घनगर्जना-सी, धनुष की टंकार घनगर्जना की ध्वनि-सी प्रतीत हुई। १२६ —तब लक्ष्मण ने शत्रुपक्ष के बाणों को आकाशमार्ग में ही तोड़कर, रामानुज युद्ध में भैरव-सा भयंकर हुआ तो चिनगारियाँ बरसाती हुई उसकी दोनों आँखें त्रिनेत्र-सी प्रतीत हो रही थीं। धनुष

पंनगुर्वं तिरुवायोळिट्ट विशिखं कीळ्माडे कालाग्नि रु-
द्रन गंटिक्किद पुर्वनंडलेये कोदंडं भुजादंडदोळ्॥१२७॥

उडियेच्चं धनुवं सिडिल्विनेगमेच्चं केतुवं सूतनं
मडियेच्चं कडिखंडमागे मुरियेच्चं तेरनश्वंगळं
कॆडेयेच्चं बळियं खरं मुळिदु कोंडुग्रासियं मेले पा-
र्दोडे पोय्दं तलेपारि बीळे रघुवीरं सूर्यहासासियं॥१२८॥

सौमित्रिय कोपाग्नि शि-*खा मालेगे सुगिदु खरन विजयश्री सं-
ग्रामदोळाश्रयिसिदळा *रामानुज भुज कृपाण धारा गृहमं ॥१२९॥

अनंतरं—

अग्रजन मरण दु:खदों * ळाग्रहदिं मेले वाय्द दूषणनं वी-
राग्रेसरनसियिंद- * ग्रग्रासं माडिदं जवंगाहवदोळ्॥१३०॥

आ समयदोळ्—

समनिसिदत्तु जयश्री*रमगिगे परिणयनमप्पुदुं लक्ष्मणनोळ्
सुमनोवर्षं समन्वित * ममरानक निनदममर जयजयनिनदं॥१३१॥

अंतु गेल्लंगोंडु कैदुविक्कि शरणेंदु बंद विरोधि वाहिनियं विराधितंगे बेसकेय्दु बाळ्वंतुमवरनवर पूर्व वृत्तियोळ् निलिसुवंतुं नियमिसि बरुत्तुं—

---

से लगाया हुआ बाण मानो प्रलयकाल के अग्निस्वरूपी रुद्र की कुटिल भौंहों के समान दिखाई पड़ा। १२७ उसने विरोधी के धनुष को काट दिया; ध्वज को तोड़ दिया; सारथी को मार दिया; रथ एवं घोड़ों को मार गिराया। इसे देखकर खर ने निशित बाण छोड़े तो लक्ष्मण ने सूर्यहास खड्ग से खर का सिर काट दिया। १२८ सौमित्रि की क्रोधाग्नि शिखामाला से भयभीत होकर खर की विजय-श्री ने कृपाणधारी रामानुज की भुजा में आकर (वहाँ) आश्रय लिया। १२९ --तत्पश्चात्— बड़े भाई के मरण-दु:ख से कुपित होकर लड़ने के लिए आये हुए दूषण को लक्ष्मण ने अपने खड्ग से वली को बलि चढ़ा दी। १३० —उस समय— लक्ष्मण के साथ स्थापित जयश्री के सम्बन्ध को देखकर आकाश के देवताओं ने विविध वाद्यों से लक्ष्मण का जयघोष किया। १३१ --इस तरह युद्ध में जीतकर, शरण में आये हुए शत्रुओं को यह आदेश देकर कि वे भविष्य में विराधित के आधीन में जीवन व्यतीत करें और अपनी-अपनी वृत्ति में निरत रहने के लिए उनको नियुक्त कर, लक्ष्मण लौट रहा था

मदजल धारॆयिल्लद दिशागजदंतॆ सुधांशुलेखॆ यि-
ल्लद नभदंतॆ कल्पलतॆयिल्लद नंदनदंतॆ मेलॆयि-
ल्लद कडलंतॆ केसरिणियिल्लद केसरियंतॆ सीतॆयि-
ल्लद रघुवंश रामनिरॆ नोडिदनाकुलनागि लक्ष्मणं ॥१३२॥

अंतु मनदॊळल्लाडुत्तुमॆय्दॆवंदु चरणारविंद रजोललामल-क्षित ललाटनप्पुदुमतित्रिषम रणांगणदॊळव्रण कायनुमजेयनुमॆनिसि विजयश्रीयॊडगूडिदुदर्कॆ मनदॊळॆ मॆच्चि मुहुर्मुहुराशीर्वाद मुखर मुखनाद रामदेवनं लक्ष्मणं मदंबिकॆयं कंडॆनिल्लॆत्तलिर्दपळॆंवुदुमां निन्नल्लिगॆ बंद पिंदॆ सिंह शरभादि रौद्रवनचरंगळुय्दुवॆंदरियॆना-वनानुमॊर्व मायावि कळ्दुय्दनॆंदरियॆनिन्नॆवरमरण्यदॊळ् तॊळल्दॆ-ल्लियुमरसि कंडॆनिल्लॆंदु नॊंदु नुडिवुदुमदर्कॆ लक्ष्मणं विषण्ण हृदय-नुद्दीपित कोपशिखि शिखाकलापनितॆंदं—

धारिणियं मगुळ्चि कुलपर्वतमं नॆलॆयिं तॆरळ्चि नि-
र्नीरमॆनल्तुळुंकि लवणार्णवमं दिवमं नॆलक्कॆ तं-
दारिदिरांतॊडं जवन बारिगॆ सोवतमागिरॆ माळ्पॆनि-
न्नारॊ मदीश जानकियनुय्दवरिं पॊरगॊल्लि बय्तपर् ॥१३३॥

---

कि—सामने, मदरहित दिग्गजकी भाँति, चन्द्रकला-विहीन आकाशमण्डल के समान, कल्पलता-रहित नंदनवन के समान, तट-रहित सागर की तरह, सिंहिणी-रहित मृगराज की भाँति, सीता के अभाव में राम आ रहा था। उसे लक्ष्मण ने व्याकुल चित्त होकर देखा। १३२ —इस तरह विचलित मन से आकर उसने राम के चरणों में मस्तक रख दिया। युद्ध में विजय पाकर आये हुए अनुज के शरीर में कहीं भी (एक भी) घाव न पाकर, मन ही मन संतुष्ट होकर, मुँह से आशिर्वचन सुनानेवाले राम से यह पूछने पर कि सीता कहाँ है, राम ने कहा "मैं तेरा सिंहनाद सुनकर युद्धभूमि में आया। लौटा तो सीता नहीं थी। मैं नहीं जानता कि घोर कानन के दुष्ट मृग उसे ले गये या मायावी राक्षस उसे चुरा ले गये! अब तक बहुत ढूँढने पर भी वह मुझे नहीं मिली।" ऐसा कहने पर आग-बबूला होकर लक्ष्मण बोला— चाहे पृथ्वी उलट-पुलट हो जाय, कुल पर्वत गिर जाय, समुद्र का पानी सीमा पारकर जाय, आकाश पृथ्वी पर आ जाय, मुझसे कोई भी भिड़े तो उसे यम की आहुति बना दूंगा। जानकी का अपहरण करनेवाले कहाँ छिपे रह सकते हैं? १३३ —इतना

अेंदोदरि नुडिवन्नेगमिदिरागि बर्प वलमनेककुंडलं कंडिदार बलमेने लक्ष्मीधरनिदु विगाधितनेंब विद्याधरं धुरदोळेनगे कदन सहायनागि पाळियं पाळिसिदनीगळ् देव निज चरण सेवासक्त चित्तनागि बरुत्तिर्दपनातन बलमेंदरिपुवन्नेगमेय्दे वंदु राघवन पादोपांत प्रदेशदोळ् मेय्यनिक्कि निजवृत्तांतमनिंतेंदु बिन्नविसिद-नति प्रचंड निजानुज भुजादंड मंडलाग्र धाराहतियिंदमर कामिनी पर्यंक शेखरनाद रवरं पाताळ लंकाधिपतियप्पमदीय जनकनं चंद्रोदर वियच्चरेंद्रननुपांशु वधेगेय्वुदुमेम्म परिजनमोडिवोगि दुर्गममप्पी वनदुर्ग प्रदेशदोळावासमं माडिकोंडिर्पुदुं विराधित नामधेयनप्पानुमिलिये बळेदु केलवु कालदिं साधित सकल विद्यनागि पगेयं साधिसुवुपायमावुदेंदुम्मळिसुतुमिर्दोंदु दिवसमोर्वरं दिव्य-ज्ञानिगळं कंडेम्म पूर्ववृत्तियोळ् निल्वुदवकुमागदेंबुदं बेसससिमेनल-र्रितेंदर्—

संशयमें निल्वय् निज * वंशागतमप्प वृत्तियोळ् करवाळि
वंशच्छेदमुमं खर * वंशच्छेदमुमनोडने पडेदतिबळनि॥१३४॥

अेंदुबेससुवुदुमानं- * दिदित्तल् निम्म बर्पुदं पार्दिरे नी
मिंदेन्न पुण्यदिंदे- * ळ्तंदिर् तीर्तदुदेन्ने पगेयु बग्गेयु॥१३५॥

---

कहते समय सामने आती हुई सेना को देखकर राम के यह पूछने पर कि वह किसकी सेना है, लक्ष्मण ने बताया "वह विराधित नामक विद्याधर की सेना है, युद्ध में मेरा सहायक बनकर वह लड़ा था। अब आपके चरणारविंदों की सेवा करने आ रहा है।" विराधित श्रीराम के चरणों को प्रणाम कर, अपने बारे में बताते हुए बोला— "अपनी शौर्योन्नति एवं अनुज के साहस से स्वर्ग तक ख्यातिप्राप्त खर ने, पाताललंका के स्वामी मेरे पिता चन्द्रोदर को मारा तो हमारे परिवार ने, भागकर इस दुर्गम वन में आश्रय लिया। मैं यहीं बड़ा होकर समस्त विद्या सीखकर बदला लेने का उपाय सोच रहा था कि एक दिन एक दिव्यज्ञानी को देखकर उनसे यह पूछने पर कि मैं अपनी पूर्व-स्थिति में आऊँगा या नहीं— उन्होंने बताया कि मैं पूर्व-स्थिति को निस्संदेह पाऊँगा। वंश परंपरागत आई हुई रीति से हाथ के खड्ग से जिस तरह बाँस के झुंड काटे जाते हैं उसी तरह एक महान्वीर खर के वंश को ही काट डालेगा। १३४
ऐसा कहने पर मैं तब से आज तक आप लोगों के आगमन के समय की प्रतीक्षा कर रहा था। आज आप मेरे सौभाग्य से आकर मेरे शत्रु

आळ्वेसननेनगे देवर् * पेळ्वुदु कारुण्यदृष्टियिंदेन्नं कै-
कोळ्वुदु बिन्नपमं बगे * गोळ्वुदु चरितार्थनागे माडुवुदेन्नं ॥१३६॥

एंदु बिन्नविसि रामदेवन चरण सेवा लाभदिनमृत सेवेव-
ॾेदंते परितप्तनाद विराधितंगे लक्ष्मीधरनेंदनेम्मण्णनेन्न कदन केळीविलोकन कुतूहलदिनेन्नल्लिगे वर्दपिंदे जगन्मातेयं सीतादेवियं नावनानुमोर्व मायावि कळ्दुय्दा काननदोळिर्पनादेसेगग्रजं व्यग्र-नागिदेपनदरिनिल्लिगे तक्कपुरुषरनरसलट्टुवुदेने विराधितं केळ्दु कट्टुकडेदु कार्य धुरंधररप्प विद्याधररं बेससुवुदुं—

लतिका कुंजंगळोळ् भूविवर कुहरदोळ् घोर कांतारदोळ् प-
र्वत सानूद्यानदोळ् निर्झर सरिदुपकंठंगळोळ् सार कासा-
र तटीदेशंगळोळ् पूगोळद तडिगळोळ् दंडकारण्यदोळ् कू
डे तोळल्दर् कंडरिल्लंबिकेयनरसि विद्याधरादीश मुख्यर् ॥१३७॥

अंतवर् मनोवेगदि पोगिबंदु जातस्वरूपमं विन्नविसे खिन्न-नागिर्द रामंगे विराधितनेंदं मत्कुलागतमुं निसर्ग दुर्गममुमप्प पाताळलंकापुरदोळिर्दु सीतादेवियर पिरियण्णनप्प प्रभामंडलनं बरिसि बळिक्के तक्कुदं नेगळलक्कुमदर्काने साल्वेनल्लिगे विजयं-

---

को निर्नाम कर दिया। १३५ आप मुझे आज्ञा देकर, मुझ पर कृपा दृष्टि डालकर, मेरे निवेदन को स्वीकार कर मुझे कृतार्थ बनाने की कृपा करें।" १३६ —इस तरह निवेदन कर, श्रीराम के चरणसेवा-लाभ से अमृतपान किया हुआ-सा तृप्त विराधित से लक्ष्मण ने कहा— "मेरे अग्रज जब मेरे युद्ध-कौशल को देखने के कुतूहल से युद्धभूमि में आये तब जगन्माता सीता को कोई मायावी चुरा ले जाकर इसी कानन में कहीं छिपा है। उस कारण से भाई चिंता कर रहे हैं। अतः इस कानन से जो परिचित हैं, उन्हें ढूंढने के लिए भेज देना होगा।" इसे सुनकर, व्याकुलचित्त हो, विराधित के कार्यकुशल विद्याधरों को यह कार्य सौंपने पर— लतामंडपों में, गुफाओं में, घोर कानन में, पर्वत-शिखरों में, उद्यान-वनों में सरोवर-तटों में, पुष्प-पौधों के समूहों में, दण्डकारण्य में उन्होंने खोज की, लेकिन सीता का कोई पता लगाने में असमर्थ हुए। १३७ —इस तरह खोजकर मनोवेग से लौटकर वास्तविकता बताने पर खिन्न श्रीराम को देखकर विराधित बोला— "मेरे अधिकार के अंतर्गत स्थित दुर्गम पाताललंका में आप लोग रहें और सीतादेवी के बड़े भाई प्रभामंडल को बुलाकर तत्पश्चात् ही यथायोग्य कदम उठावें। इस कार्य

गेय्वुदेंदु रामलक्ष्मणरं रथमनेरिसिकोंडु चतुरंग वलसहितं नित्या-
लंकारोदयमप्प पाताल लंकापुरमं पुगुव समयदोळ्—

पुरमं पुगलीयदे सु- * दरनेंब खर तनूभवं तन्नबलं
बेरसड्डंबरें मेय्गलि * विराधितं जवन मसकमं कैकोंडं ॥१३८॥

देसे मसुळे भानुबिंबं*मसुळे विराधितन चाप विलयांबुदर्दि
पसरिसि सुंदरनोळ् भय * रस वर्ष पेर्चे पेचिदुदु शरवर्षं ॥१३९॥

खरदूषणरवोलंतक * पुरमं पुगुवंतु सुंदरं गांपने बे
ळ्ळेरलेगे गरि मूडिदवोल्*भरवशदिं पोक्कनोडि लंकापुरमं ॥१४०॥

अंतवनवर्यदिंदोडिसि महाविभूतियिं पुरमं पोक्करन्नेग-
मित्तलसुरनागसदोळर्णवद मेगे मनोवेगदिं पोगुत्तुमिरे—

रवेदं कैगळिवागे दिग्विवरमं हाहा रवं तीवे बा-
ष्पोद स्वेद जलंगळि करगि नीरागुक्कुवंतागे मेय्
मोदुत्तुं बसिरं परांगनेयनेन्नं कळ्दुकोंडी खळं
पोदप्पं शरणप्पुदार्परेनुतुं वैदेहि पुय्यल्चिदळ् ॥१४१॥

---

के लिए मैं ही पर्याप्त हूँ।" ऐसा कहकर राम लक्ष्मण को अपने रथ में बिठाकर चतुरंग बल (सेना) के साथ सदा सुशोभित पाताललंका की ओर जा रहा था कि— खर के पुत्र सुन्दर ने अपनी सेना को एकत्र कर नगर के भीतर प्रवेश करने से रोका तो अत्यन्तवीर विराधित काल-सा कुपित हुआ। १३८ मानो दिशाओं का प्रकाश बुझ गया हो और सूर्यबिंब कांतिहीन हो गया हो, विराधित के धनुष से प्रयुक्त बाण सुन्दर पर प्रलयकाल के बादलों से बहते पानी-से बरसने लगे। १३९ बाणों के प्रहार का बलि बनकर यमपुर पहुँचने के लिए सुन्दर, खर-दूषणों के समान मूर्ख थोड़े ही था? भयभीत हरिण का पैर फूटा सा वह वायु-वेग से भागकर लंका पहुँचा। १४० —उसे इस तरह पराजित कर, राम-लक्ष्मण के साथ विराधितपुर में प्रविष्ट हुआ। इधर रावण आकाशमार्ग में, मनोवेग से जा रहा था कि— अतिशय दुःख होने पर, दिशाओं में हर ओर से हाहाकार ध्वनि भर जाने पर, बहते हुए आँसू और पसीने की गरमी से मानो देह ही द्रवित हो गई हो, हाथों से पेट को पीटती हुई सीता विलाप कर रही थी कि परस्त्री का अपहरण कर ले जानेवाले इस दुष्ट को कौन रोकेगा? १४१ "राजमहल के निवासी, वनचर, पिशाचोद्भव, अत्युग्र नवग्रह, ज्योतिर्लोकि के लोग, विमान में आरूढ़ इन्द्र आदि इस दुष्ट को रोके। यह परस्त्री को, राम की पत्नी सीता को ले जा

भवनावास निवासिगळ् सकल वानण्यंतरावास सं-
भवरत्युग्र नवग्रहादि विषम ज्योतिष्कर्रिंद्रादि क-
ल्प विमान स्थितरी दुराचरितनं माकोॅळ्वुदन्यांगना
विवशं दाशरथि प्रियप्रमदेयं कोॅंडुय्दपं सीतेयं ॥१४२॥

धरणी रक्षण दक्षिण भुजं लक्ष्मीधरं मैदुनं
हरिवंशं जनकं मदीय जनकं वीरं प्रभामंडलं
पिरियण्णं रघुरामनंगनेॆन्नं सीतेयं पातकं
दोॅरेगेट्टुय्दपनेवॆनेंदु सति हाहाक्रंदनं माडिदळ् ॥१४३॥

अंतु मुहर्मुहुरूदीरित खमनर्कजटिय मगनप्प रत्नजटि केळ्दु—
सति पुय्यल्चिदपळ् रघूद्वहकुलस्त्री सीते पेॆण्वुय्यलं
श्रुति कय्कोॅंडुदु केळ्दिदं तवळगंडदेॆन्त विख्याति दू
षितमक्कुं सेरेगोॅंडनं कदनदोॅळ् वेॆंकोॅंडु वाहावलो-
क्षत्रियं वीरूवेॆनेंदु घूर्मिसिदनें गंडं परिच्छेदियो ॥१४४॥

अंतु परिच्छेदिसि रत्नजटि बद्धभ्रुकुटि दशानन विमानक्कडुं बंदु—

परिहरिसि पाळियं भू-
चर खेचर चक्रवर्ति रावण नीनी
पर वधुगळिपुवुदुमिहं-
परवळिगुं निन्न महिमेगिदु नडेवळिये ॥१४५॥

---

रहा है। १४२ अपने वायें भुज की शक्ति से इस भूमि की रक्षा करने में समर्थ लक्ष्मण ही मेरे देवर हैं। हरिवंश ख्यात जनक ही मेरे पिता हैं। वीर प्रभा मंडल ही बड़ा भाई है। मुझे राम की पत्नी को, यह पापी धोखे से ले जा रहा है।" इस तरह सीता विलाप करने लगी। १४३ —अर्कजटी का पुत्र रत्नजटी ने सीता की इस विलाप ध्वनि को सुनकर, श्रीराम की पत्नी सीता विलाप कर रही है। कुल-स्त्री का आर्तनाद सुनकर उदासीन हो, निर्लक्ष्य करना मेरी कीर्ति के लिए कलंक है। उसे ले जानेवाले का पीछा करके अपना वाहुवल दिखाऊँ; देख लूँ कि वह कितना बलशाली है। १४४ —ऐसा निश्चय कर रत्नजटी कुपित होकर, रावण के विमान के सामने आकर, "हे रावण, तू खेचर चक्रवर्ती होकर भी, कुल-क्रम के विपरीत परस्त्री को चाहकर, अपहरण करना इह-पर-लोक के लिए बाधक बन रहा है। यह व्यवहार तेरी कीर्ति के योग्य है ?" १४५

अँदु मर्मोद्‌घाटनं गॆय्दु—

मूदलिसि मुट्टॆवर्पुदु ❋ मा दानवनर्कजटियनणिंपगवनॊळ्
काददॆ करूणिसि विद्या ❋ च्छेदं गॆय्दं निरंकुशं दशकंठं ॥१४६॥

अंतु विद्याच्छेदं गॆय्वुदुं—

अंबरदिनात्मविद्या ❋ डंबरमस्तमिसॆ विळ्दु मूर्छापन्नं
कंवु द्वीपदॊळळवळि ❋ दंवरचरनॆरकॆमुरिद पक्किवॊलिर्दं ॥१४७॥

अन्नॆगमित्त दशमुखं लंकॆगभिमुखनागि पोगुत्तुं—

बगॆ संभोग सुखक्कॆ कातरिसॆ कण्गळ् कीरि सर्वागमं
तॆगॆदालिंगिसॆ मातुगळ् मदनरागोन्मादमं बीरॆ बा-
हुगळालिंगन लालसंगळॆनॆ धैर्यंगॆट्टु मेल्वाय्व चे-
ष्टॆगॆ पौलस्त्यनुमॊत्तुगॊट्टनॆनलारं दर्पकं दंडिसं ॥१४८॥

आगळवनळिपिनळिगॆय्तक्कॆ सीतॆ सैरिसदॆ नीनॆन्न सॊंकिदॊडॆ नालगॆ गिळ्तु सावॆनॆंदु परिच्छेदिसि नुडियॆ दशास्यनोसरिसि महासतिय शीलदळवनरियनप्पुदरिननंतवीर्य केवलिगळित्त परवधूविरति व्रत परिपालनवॆनगरिदादुदॆनॆ निसर्ग रागिगळप्प पॆंडिर परिणाम-वॆल्लिवरं नडॆप्पुदीकॆयनाव तॆरदॊळमॊडंवडिसुवुदाव गहनमॆंदु तन्नं तानॆ संतयिसुत्तुं पोप समयदॊळ्—

---

—मर्माघात होने जैसा धिक्कार कर, दुत्कारता हुआ पास आ रहा था कि राक्षस ने अर्कजटी के साहस का स्मरण कर उसके वेटे से न भिड़कर उसकी आकाशगामी विद्या का अपहरण कर लिया। १४६ —रत्नजटी की इस विद्या का अपहरण होने पर, आकाश गामी-शक्ति को खोकर मूर्छित होकर नीचे कंबुद्वीप में वह उसी तरह चटपटा रहा था जैसे पंख टूटा हुआ पक्षी। १४७ —इधर रावण लंका की ओर जा रहा था कि, उसका मन संभोग सुख के लिए लालायित हो रहा था; आंखें मर्यादा पारकर सीता का अवलोकन कर रही थीं; वातों में काम-पिपासा अभिव्यक्त हो रही थी; वाहें आलिंगन के लिए चटपटा रही थीं और रावण मदन चेष्टा के लिए उद्युक्त हुआ तो काम किसे दंड नहीं देगा ? । १४८ उसके दुर्व्यवहार को देखकर निश्चित रूप से सीता के यह कहने पर कि तूने अगर स्पर्श किया तो मैं अपनी जिह्वा काटकर आत्महत्या कर लूंगी। रावण इस वात का स्मरण कर चिंतित हुआ कि साध्वियों के शील की महत्ता न जानकर अनंतवीर्य केवली द्वारा अनुग्रहीत पर-वधुविरतव्रत का पालन करना उसके लिए असाध्य हुआ।

अनुवरदोळ् पलायनपरर् गरिसोंकदे हस्तनुं प्रह-
स्तनुमतिवेगदिं बरूतुमागसदोळ् दशकंठनं विलो-
चन पथ वर्तियं जयजयध्वनि कैमिगे मुट्टिवंदवर्
विनमित मस्तकर् मुकुळितांजलिगळ् पोडेवट्टु पोपुदुं ॥१४९॥

आगळदं सीते कंडीतं रावणनेंदरिदु—

अनशनमं कैकोंडळ्
मनदोळ सतिपतिय कुशलवार्तेयनां के-
ळ्विनमुण्णेनेंदु नृप मा-
निनियर् सज्जनिकेंगितु नोंतरूमोळरे ॥१५०॥

अंतु रावणं लंकेयनेय्दवंदु गीर्वाणरमणनेंब निजविनोद वनमं पुगुवागळ्—

पुगदिर् वनमं पोक्की
मृगाक्षियं मडगे रामदूतनिनेमग-
च्चिगमक्कुमेंदु कैस-
न्नेगेय्ववोल् तळिर तोंगललुगिदुदेलर्रि ॥१५१॥

अंता वनमं पोक्कल्लिय विचित्र मणिमय गेहदोळ् वैदेहियनिरिसि तानुं तन्नरमनेय करूमाडमं पोक्किर्पुदुमा समयदोळ् खरदूषणर मरणवार्तेयं चंद्रनखि चरवचनदिं केळ्दु—

स्त्रियों की कामना निसर्गदत्त होती है। यह सीता कब तक संयम का पालन कर सकेगी? यह सोचकर कि इसे मनाना (स्वीकार कराना) कठिन कार्य नहीं है, अपने आपको सांत्वना देकर जा रहा था कि इतने में, युद्ध में घायल न होकर पलायन किए हुए हस्त प्रहस्त आकाशमार्ग में अतिवेग से आकर, दशकंठ को देखकर जयजयकार करते हुए, निकट आकर, शीश झुकाकर, हाथ जोड़कर आगे निकल गये। १४९ —तब यह देखकर सीता यह समझकर की वह रावण है, तब सीता ने मन में यह निश्चय कर लिया कि जब तक वह पति राम की कुशल-वार्ता नहीं सुनेगी तब तक निरशनव्रत अपनायेगी। इस तरह व्रतबद्ध नृप मानिनियां (क्षत्रिय स्त्रियां) कौन हैं?। १५० —रावण लंका पहुँचकर गीर्वाणरमण नामक उद्यान में प्रवेश कर रहा था कि, वहाँ के अंकुर गुच्छे हवा के झोंके से सिर हिलाकर संकेत से मानो कह रहे थे 'इस वन में मत घुसो, घुसकर इस सीता को यहां रखोगे तो रामदूत (हनुमान) हमें हानि पहुँचायेगा'। १५१ —इस तरह वन में प्रवेश कर वहां के

सुतनं कोंदवनं को ॐ ल्व तक्किनिं पोगि निज परिग्रह सहितं
पतियुं मैदुननुं परि ॐ ह्लत जीवितरागे शोक विह्वलेयादळ् ।।१५२।।

अविरल पारिहार्य रूति शोक रूति प्रतिबद्धमागे प-
ल्लव परिशोभि पाणितलदिं बसिरिं बिडे मोदिकोळ्वुदुं
तिवळिगळन्नवागे बेरलच्चिचरिदंतिरे कण्ण नीर्वोनल्
कवितरे बंदु चंद्रनखि पोंदिवळग्रज पादमूलमं ।।१५३।।

अंतु चंद्रनखि निखिलांतः पुरमुं मंडोदरियं बेश्सुबंदु मुंदे महाशोकंगेय्वु दुमाकेगे संसार स्वरूपमं निळिपि खरदूषणरं कोंदननमोघं कोल्वेनेंदळ्कयं बारिसि भगवदर्हद्भवनंगळोळ् महापूजेगळं माडिसि राज भवनक्के बंदु शय्या सदनमं पोक्कु—

तडेवुदु तक्कुदल्लु खरदूषणरं कडुकेय्दु कोंदनं
मडिपुवेनेंब तक्करिदु सीतेयनेतेरदिंदमोंतोडं
बडिसुवेनेंतु मेळिसुवेनेंतु मदीय मनोज तापमं
किडिसुवेनेंदु पंबलिसिदं पलवं मनदोळ् दशाननं ।।१५४।।

अेतर सोंकुमावुदर गाडियुमोंदर कंपुमन्नरो-
ळ्वातुमदेंतुटप्प रसमुं तनगेंतुमसह्यमागे ह्-

रत्नमंदिर में सीता को रखकर स्वयं अपने प्रासाद के मजले पर पहुँचा। उतने में चंद्रनखी चारणों के मुख से खर-दूषण की मरणवार्ता सुनकर, पुत्रबधिक को मारने के उद्देश्य से सेना सहित गये हुए पतिदेव और देवर की मृत्यु से वह शोक विह्वल हुई। १५२ पल्लव सदृश करतल से पेट पर निरंतर पीट लेने के कारण उसकी (सौंदर्य सूचक) त्रिबलियां मिट गयीं और अश्रुधारा वहाती हुई उसने भाई के चरणों में अपना सिर झुका दिया तो धारण किए हुए खड्ग की कांति शोककांति से फीकी पड़ गयी। १५३ —इस तरह चंद्रनखी रावण के अंतःपुर में प्रविष्ट हो, मंदोदरी के साथ अतीव शोकाकुल हुई तो उसे संसार का व्यामोह समझा कर, खर-दूषण को मारने वाले को अवश्य मार डालने का आश्वासन देकर, बहन के भय को दूर कर, अर्हतनिलयों में विशेष पूजा कराकर राजभवन में आकर, शय्यागृह में प्रवेश किया तो, उसके मन से यह विचार पूर्णतः निकल गया कि खर-दूषण का वध करने वाले को मारने में तनिक भी विलंब नहीं करना चाहिए। वह तो इस विचार से पल-पल चटपटाया कि सीता को समझा कर किस तरह अपनी काम पिपासा को शांत करूँ। १५४ किसी का स्पर्श, कोई दृश्य, कोई सुगंध,

ज्जातन मायॆ मोहिसुवुदुं वगॆयं विगतान्य चिंतना
सीतॆय चिंतॆयिं दशमुखं मरवानसदंतॆ तोरिदं ॥१५५॥

अंतु चिंताक्रांतनाद निजमनोवल्लभनं मंडोदरि कंडु—
खरन विपत्तियॊळ् विकलनादनॆ गॆत्तिनितेकॆ पॆंडिरं-
तिरॆ बहु शोकमीनॆरदिनिदॊडॆ गंड गुणक्कॆ नाडॆयुं
परिभवमॆंदळॆत्तलरिवळ् गगनेचर चक्रि जानकी
विरह कृशानु सुत्तिसुडॆ चित्तमनाकुलनादनॆंविदं ॥१५६॥

ऎनॆ दशग्रीवनॆन्न वेवसक्किदु निमित्तमल्तु निनगॆन्नतॆरननरिय-
लागदॆंदु—
बॆंडागॆ मनं मौनं * गॊंडिरॆ वल्लभन मनमनरिवाग्रहदिं
मंडोदरि माणदॆ बॆस * गॊंडळ् कौतुकमिदॆं निमित्तमॆनुत्तुं ॥१५७॥

अंतु बॆसगॊळ्वुदुं मरुमातुगुडदॆ लज्जारस निमग्नाननं
दशानननिरॆ—
गंडुडॆयुट्टु कैदुविडिदुम्मळमं निनगुंटुमाळ्प व-
ल्गंडिन देव मानव वियच्चररॊर्वरुमिल्ल निन्नदो-
र्मंडलमी त्रिखंडमुमनाक्रमिसित्तिदु पुष्पकांड को-
दंडन गॊड्डुमुर्चिरुवॆ तोरवॆयातन पूविनंबुगळ् ॥१५८॥

---

किसी की वात, किसी तरह की रुचि उसे असहन प्रतीत हो रही थी। मनसिज कामदेव का माया प्रताप वढ़ने के कारण अन्य चिंताओं से दूर रहकर केवल सीता की चिंता से वह लकड़ी के खिलौने के समान दिखाई पड़ा। १५५ इस तरह चिंता व्याकुल पतिदेव को देखकर मंदोदरी ने पूछा— "खर के मरण के दुःख से आप जैसे साहसी को इस तरह धैर्य खोना क्या उचित है ? यह आपके पौरुष की पराजय है न ? वह कैसे जानती कि उसका पति जानकी की अपेक्षा की आग में जल रहा है ?" १५६ —तव रावण ने कहा: 'मेरे दुःख के लिए खर का मरण कारण नहीं है, मेरे मनके दुःख को तू समझ नहीं सकती'। मन मुरझा कर, मौन रहने वाले पति को देखकर मंदोदरी ने उसके अंतः मन की वात जानने के उद्देश्य से आतुरित होकर, इतने दुःख का कारण वताने का आग्रह किया। १५७ —पूछने पर उत्तर न देकर लज्जित रावण ने सिर झुका लिया। "युद्ध की पोशाक पहनकर, हाथ में आयुध धारण कर लड़कर आप में चिंता जगाने वाला वीर देव, मानव, खेचरों में कोई नहीं है। आपकी साहस-गाथा तीनों लोकों में व्याप्त है। ऐसे

स्मरनं मेच्चद मिन्नी * परिजं कडगणिसि निनगमिनितच्चिगमं
तरलार्त नीरे लेप्पद * बरेपद कंडरणेवेसद पेण्णक्कुसवळ् ॥१५९॥

अेंदरिदु मुरियदंते तेरेये नुडिये मनदे कोंडु मंडोदरियमोगमं नोडि—

अरिपुव वार्तेयल्तु निनगेन्न नेगळ्तेय वार्ते नीने मु-
न्नरिद बळिक्ककदं निनगे वंचिसलागदु तंदे निंदु मु-
दरियदे सीतेयं मदननाकेय दूसरिनेन्ननेच्चपं
नेरेगोळे पूविनंबलगिनंबुगळेंबिनमंबुजानने ॥१६०॥

अेंदु मत्तमितेंदनिंदु पुष्पक विमानदोळ् जानिकियनुरे सेरेविडिदु बरूत्तुमाकेय पळुगळिद गाडियं नोडि मनदोळेनगळिपु कैगळिवागे सैरिसदे पोर्दल्वरे नीनेन्नं पोर्दिदोडे नालगेगिल्तु सावेनेंदु जडिदु नुडिये सेडेदु लंकेगे तंदु गीर्वाण रमणोद्यानदोळिरिसि बंदेना कुंद दळ दवळ लोचनेयलावण्य सुधा सेवे समनिसदिरे सावु समनिसुगुमेने दशाननन दशावस्थेयं कंडु मंडोदरि भयंगोंडु—

---

में क्या मैं समझ नहीं सकती कि आपके दुःख के लिए पुष्पबाण धारी मनसिज ही कारण है ? । १५८ स्पष्ट समझ लीजिए कि जो स्त्री आपके रूप को, जो मन्मय के रूप को भी तुच्छ दिखाने वाला है, अस्वीकार करती है वह आपके अभ्युदय को निर्नाम कर देगी"। १५९ —मन में जो भी आया उसे स्पष्ट कह दिया तो अपनी पत्नी का मुख देखकर रावण बोलाः— "कहने जैसी बात नहीं है क्योंकि यह मेरी कीर्तिका प्रश्न है। तू इसे भलीभांति जानती है। अतएव तुझसे नहीं छिपाऊँगा। पूर्व-अपर न जानकर सीता को ले आया हूँ। उसी के कारण मुझे काम सता रहा है। उसके पुष्पबाण ऐसे चुभ रहे है मानो कोई तीक्ष्ण छुरे से बेध रहा हो"। १६० —उसने आगे कहाः "आज पुष्पक विमान से जानकी को ले आते समय उसके अतुल रूप को देखकर मनकी आकांक्षा बढ़ने पर उसे स्पर्श करने के लिए आगे बढ़ा तो उसने 'तुम मुझे स्पर्श करोगे तो जिह्वा काटकर मर जाऊँगी' कहकर धमकी दी। उससे डरकर लंका में लाकर गीर्वाणरमण उद्यान में रख आया हूँ। कुँदपुष्प की पंखुड़ियों सदृश धवल-लोचना के अमृत सदृश स्वरूप का सेवन (भोग) न करूँ तो मैं मर जाऊँगा।" इस तरह कहने वाले रावण की विपरीत दशा को देखकर मंदोदरी भयभीत होकर— बिजली की प्रभा और स्त्री का शुचित्व चिरकाल थोड़े ही रहता है ?

अचिर प्रभेयुं पेंडिर ※ शुचित्वमुं क्षणदिनगळं निल्कुमे पेळ्
खचरेंद्र निजाकृति चि※ त्त चमत्कृति कंडिदर्कॆ सोलदरॊळरे ।।१६१।।

अॆंदु संतसंबडॆ नुडिदाकॆयनॊडंबडिसलानॆ साल्वॆनॆंदु समस्तांतःपुर सीमंतिनियर्वॆरसु सीतॆय समीपक्कॆवंदु—

वनितॆयर नयन रुचियिं ※ तनु रुचियिं रत्नभूषणंगळ रुचियिं
दिनलक्ष्मिगॆ कॊर्वुविदु ※ दॆनॆ मंडोदरि विलासदि कुळ्ळिदळ् ।१६२।

अंतु कुळ्ळिर्पुदुं—

अनिबररसियर रूपुं ※मनक्कॆ सॊगयिसिदुदिल्ल सीतॆय कॆलदॊळ्
दिमलक्ष्मिय कॆलदॊळ् लो※ चन सुखमं पडॆयदंतॆ ताराविभवं ।।१६३।।

अनंतरमा खचरकांतॆ जानकिय मुखसरोजमं नोडि—

पंकज संभवं निनगॆ पासटियल्लद राघवंगॆ नि-
न्नं कुडॆ सैरिसदॆ चित्तभवं दशकंधरंगॆ कॊ-
ट्टं कडुनीरॆ निन्ननुरूप वरंगॊडगूडि लीलॆयिं
लंकॆयनाळ्दु नाळ्दरसिवट्टमनात्म ललाट पट्टदॊळ् ।।१६४।।

ई नव यौवनोदयमनी नयनोत्सवमप्प रूपिनु-
द्यानियनी तनुच्छवियनॆवॊगळ्दप्पुदॊ सोल्तु बंदॊडं

और रावण के मोहक रूप को देखकर किसका चित्त भ्रमित नहीं होगा ? । १६१ —इस विचार से कुछ अनुभव करती हुई-सी वोलीः "उसे समझाने के लिए मैं स्वयं जाऊँगी ।" और अंतःपुर की स्त्रियों को साथ लेकर सीता के पास पहुँचकर, स्त्री समुदाय की आंखों की प्रभा से, उनकी देहकांति से, रत्नाभरणों के प्रकाश से घेरी वैठी तो वह (मंदोदरी) ऐसा दिखाई पड़ी मानो दिनलक्ष्मी का सौंदर्य ही बढ़ गया हो । १६२ —ऐसा बैठी तो, जिस तरह सूर्योदय के पश्चात नक्षत्रों की कांति शोभा नहीं देती उसी तरह सीता के वगल में वैठी हुई उतनी स्त्रियों के रूप शोभा नहीं दे रहे थे । १६३ —तत्पश्चात जानकी के मुखकमल को देखकर मंदोदरी वोलीः "ब्रह्म ने तुझे राम जैसा अयोग्य वर दिया । इसे कामचक्रेश्वर सह न सका और इसलिए उसने रावण के साथ तेरा संबंध जोड़ा है । तू अपने अनुरूप वर को पाकर, माथे पर रानी का सिंहासन धारण कर लंका का शासन कर । १६४ तेरे नवयौवन के उदय की आंखों को तृप्त करने वाले रूप की, और इस देहकांति की कितनी सराहना की जाय ? जिस रावण ने चाहकर (स्वेच्छा से) आयी हुई मेनका को ठुकरा दिया था, आज वही तुझे देखकर हार

मेनकॆ बाळ्तॆगॆय्यद दशाननं बसदादनॆंदॊडार्
जानकि निन्नवोलुळिद मानिनियर् कड़ु गाडिकार्तियर् ॥१६५॥

पदविल्लं ननॆयंबिन * पॊदॆयं पिडिदिरद पददॊळानॊंडिदॊडं
मदनंगं मानिनि दश * वदनंगं रूप भेदमेनादपुदे ॥१६६॥

इसुवॆसकैसु खेचर पुरंध्रियरं भरत त्रिखंडदॊळ्
पसरिसु निन्न गोसणॆयनाणॆयनी खचरेंद्र वक्षदॊळ्
वसियिसु लक्ष्मिवोल् विजयलक्ष्मिवॊलीतन तोळ तळ्पिमॊळ्
वॊसयिसु नल्मॆयं दिवस लक्ष्मियनेकॆगॆ बंजॆमाडुवै ॥१६७॥

जनकजॆ निन्न पीवर पयोधर मंडलमं मनोज रा-
जन विजयाभिषेक सवनोत्सव पूर्ण सुवर्ण कुंभमं
नॆनॆयिसुवंतु माड़ु खचरेंद्रन कातर दृष्टि पान चं-
दन घनसार कर्दम विलेपनदिं कर पल्लवंगळिं ॥१६८॥

ऎनॆ जानकि मंडोदरिगॆ मनदॊळॆ कनल्दु—

इदु मत्तोन्मत्त जल्पं कुलवधुवरमातल्तु निम्मॊदिगर् वं-
शद केडं नोडदॊळ्पं वगॆयदॆ पळिगं पातकक्कं भयं गॊ-
ळ्ळदॆ पेळर् पॊल्ल मातं नुडिविरिद्धु मनं नोळ्प संकल्प जल्पं
मदधीशं रामचंद्रं पॊरगॆनॆ पेररेवातॊ जातानुजातर् ॥१६९॥

---

बैठा है तो तू समझ सकती है न कि तुझ-सी मोहक रूपसी और कौन होगी ? । १६५ वक्ष पर तने धनुष और पुष्पबाण के अतिरिक्त, हे सीता, काम और राम में और कोई भेद है ? । १६६ खेचर कुल की दासियों को आज्ञा दे, भरत आदि खंडों में तेरे शासन की आज्ञा फैला दे । खेचर स्वामी रावण के वक्ष स्थल में लक्ष्मी के समान निवास कर । शय्या सदृश उसकी बाहों में पसर जा । सुख के दिनों को व्यर्थ क्यों गंवा रही है ? । १६७ सीता, तेरे उभरे हुए कुचमंडल और मन्मथ के विजयोत्सव यज्ञ के पूर्ण कुंभ को रावण की कातर दृष्टि से झरे हुए कर्पूर और सुगंध लेपन से भिगो दे" । १६८ —ऐसा कहने पर सीता मंदोदरी के प्रति मन में कुपित होकर: "यह बात कुलवधू को शोभा नहीं देती यह अहंकारकी बात है । आप जैसी नारी वंश की बुराई न देखकर, अहित न चाहकर निंदा और पाप से न डरकर, इस तरह की अयोग्य बात कर रही हैं । यह शायद मेरे मनको परखने का उपाय है । मेरे पति राम ही यह बात कहें तो भी मैं माननेवाली नहीं हूँ । दूसरों की बात ही क्या है ? ।१६९ जो स्त्री पतिव्रता नियम का पालन नहीं करती, वह

ननगे पतिव्रतमिल्लद * वनितें कुलस्त्रीयें भिन्न भाजनमित-
प्पनुचितमं हरिवंशद * वनितेयरोळ् नुडियलक्कुमे निम्मन्नर् ।१७०॥

अँदु मंडोदरियं बिडेनुडिवुदुमा समयदोळ्—

जडियुत्तुं चंद्रहासासियनेळसे तदास्थानमं दिव्य गंधं
कडुमिंचं बीरे वज्राभरण किरणमिंद्रंगे सौंदर्यदिं नू-
र्मडि मेलेंबन्नेगं भोंकने जनक सुतालोकनोत्कंठ चित्तं
नडेतंदं दानवेंद्रं सुरतरू सुमनोमंजरी कर्णपूरं ॥१७१॥

अंतु बरलोडं—

परिनीरोळगण नेळलं * तिरे तन्नं नोडि नडुगे जानिक दशकं-
धरनंजलेनुत्तंतः * पुरमं कण्सन्नेयिदमल्लि कळेदं ॥१७२॥

अनंतरं जानकीवदन विन्यस्त विलोचनं कमलिनियनेळसुव हिमकर किरणदंते दंतकांति पसरिसे पौलस्त्यनितेंदं—

नूपुरमं पदक्के मणिमेखलेयं जघनक्के कुंकुमा-
लेपनमं कुचक्के पसर्गकणमं नळितोळ्गे पत्र ले-
खा परिशोभेयं निज कपोल तळक्के कुडल मनोज सं-
तापन तप्त मातुरिसिदप्पुदु मन्मनमंबुजानने ॥१७३॥

---

कुल-स्त्री कैसे हो सकती है ? हरिवंश की मुझ जैसी वधू का दुःख और अन्याय के लिए कारणीभूत ऐसे पापपूर्ण अनुचित उपाय बताना आपके लिए योग्य है ?" । १७० —कहकर मंदोदरी को टोक रही थी कि इतने में, चंद्रहास खड्ग धारण किये, लेपित गंध की सुगंधी को फैलाता हुआ, देहकांति को बिजली की भाँति चमकाता हुआ, वज्राभरण की किरणों को, जो इन्द्र-सौंदर्य से भी सौ गुना अधिक चमक रही थीं, चमकाता हुआ जनकसुता को देखने के उत्साह-चित्त से दानवेंद्र रावण वहाँ चला आया । १७१ —आते ही, सीता, जो बहते पानी में कांपती हुई छाया की भांति कांप रही थी, को डराने के उद्देश्य से, रावण ने अपने अंतःपुर की वनिताओं को, आंखों के इशारे से बाहर भेज दिया । १७२ —तत्पश्चात जानकी के अवलोकनार्थ उत्सुक रावण ने, नीलकमल को चाहनेवाली चंद्रकिरण की तरह, अपनी दंत प्रभा को फैलाता हुआ यूँ कहा: "सीता, तेरे पैरों को नूपुर, कटि को रत्नमेखला, कुचों को कुंकम लेपन, कोमल हाथों को कंकण, कपोलों को मकरिकापत्र, शोभा प्रदान करने के लिए कामचक्रेश्वर का ताप मुझे सता रहा है । १७३ हाथी पर श्वेतछत्र की छाया में बैठकर, रनिवास की स्त्रियां तेरे आसपास

आनेय मेलें बेळ्गोडेय नण्णेरलोळ् नेलसिर्दले सरो-
जाननें पेंडवासद विलासिनियर् बरें निन्त सुत्तलुं
जानकि नोड निन्ननगेंगण् परितुष्टियनप्पुकेय्ये लं-
कामगरी बहिः पुर नमेरू विलास वनंगळेळुमं ।।१७४।।

कुलनदियं कुलाद्रि शिखरंगळ दिव्य सरोवरंगळं
मलय गिरींद्र सानु वनमं लवणार्णव वज्र वेदिका
विलसनमं विलोचन पथातिथिमाडु वियद्विलासिनी
तिलक मेंनिप्प पुष्पक विमानमनेंन्नोडनेरि जानकी ।।१७५।।

अेंन्नोळ् पोर्दुडिदिद्रं सिंधुरदकोडिदाद पल्यंकदोळ्
मुन्नं पद्मजनंचेयं तरिदु तुप्पुळ्गोडुं दिक्पालकर्
बेंन्नित्तिक्किद चीलदिं समेंद केळीतल्पदोळ् निद्रेगेय्
निन्नं निद्रेयिनेळ्बुवन्नममरी मांगल्यगीत स्वनं ।।१७६।।

असिरत्नं चक्ररत्नं नवनिधि पलवुं विद्ये कैसार्दुवुळ्ळं-
जिसिदें दिक्पालकरं कट्टिदेंनुरदिदिरादिंद्रनं लीलेंयिं चा-
ळिसिदें कैलासमं दक्षिणभरत धराचक्रमं चक्रदिं सा-
दिसिदें पौलस्त्यनं मीरूवरें समरदोळ् मानवर् मीननेत्रे ।।१७७।।

---

रहकर सेवा करती रहेंगी तो तेरी मुस्कराहट भरी आंखें प्रसन्नता की तृप्ति व्यक्त करती हुई लंका के चारों तरफ के सात उद्यावनों को खिला देंगी। १७४ कुल-नदियों को, कुल-पर्वत-शिखरों को, दिव्य सरोवरों को, मलय पर्वत के शिखर के वन प्रदेश को, लवण समुद्र को, वज्रदेवी तुल्य इस लंका को तेरी दृष्टि से अतिथि बना दे। हे सीता, तत्पश्चात मेरे साथ पुष्पक विमान पर सवार हो जा। १७५ मुझसे भिड़ने के कारण इंद्र के टूटे हुए ऐरावत की दाढ़ों से निर्मित शय्या में, ब्रह्मा के हँस को मारकर उसके परो से, दिक्पालकों द्वारा निर्मित बिस्तर पर सो जा। अमर स्त्रियों के मंगल गीत तुझे जगाने तक सोती रह। १७६ चंद्रहास नामक खड्ग रत्न, चक्र रत्न, नवनिधियाँ आदि ऐश्वर्य और समस्त विद्याएं मेरे वश में हैं और मैंने इन्द्र आदि देवताओं को पराजित कर कैद कर लिया है; कैलास पर्वत को हिलाया है। मेरे शौर्य से दक्षिण भरत देश को जीत लिया है। संसार में कोई ऐसा मानव है जो पुलस्त्य कुल से उत्पन्न इस रावण का सामना कर सके? । १७७ जंगल में भटककर, कंदमूलों को सम्पदा माननेवाले राघव के साथ जीने से क्या मिलेगा? विद्याधरों के क्रीडा सद्मों जो

काडं कूडॆ तॊळलिच काडॊडमॆयि भोगंगळॊळ्
नीडुं तृप्तियनीव राघवनॊळे वैदेहि विद्याधर
क्रीडासद्मदॊळंगराग वसनादि द्रव्यदिं मन्मय
क्रीडासौख्यमनप्पुकॆय्दु मॆरॆ नीं नानाविनोदंगळं ॥१७८॥

ऎंदु परनिंदापरनुमात्मस्तवन तत्परनुमागि—

अनुनय शतंगळं नुडि * दनुवशॆ माडल् वियच्चरेंद्रनुमेना
तॆनॆ जनकजॆयं गगनम * ननुलेयंगॆय्दॊडल्लि मसि पत्तुगुमे ॥१७९॥
सिरियं मॆय्सिरियं मॆरॆ * दु रावणं सतियनॆरगिसल् नॆरॆदनॆ यॊ-
न्नॊरॆगन्य दीपमॆरपं * तिरॆ माणिक्य प्रदीपमेनॆरगुगुमे ॥१८०॥

अंता दुरात्मन दुरुक्तिगॆ जनकसुतॆ कडुमुळिदु मुनिसं मॊगक्कॆ तारदॆ—

नुडियल् तक्कुदॆ पाळिदप्पि पापक्कमुळ्ळळ्कदी
नुडियं चिः परदारवन्य शयन स्थानं पॆरर् मिद नीर्
मुडिदुत्फुल्ल कदंबकं तॊडॆद काश्मीरांगरागादिकं
मडॆगूळ् वीळुडॆ बाय तंबुलमिवस्पृश्यंगळॆनल्लमे ॥१८१॥
गुणहानियिंदधोगति * गुणदिं स्वर्गापवर्ग सुखमक्कुमॆनल्
गुण हीनन सिरियिंदं * गुणिगळ बडतनमॆ नाडॆयुं लेसल्ते ॥१८२॥

---

रत्नाभरण, वस्त्र, द्रव्य आदि चाहिए उनसे सजधजकर मन्मय-क्रीड़ा विनोद करते हुए इस संसार में जीना ही तेरे लिए योग्य है"। १७८ —कहकर पर-निंदा और आत्मस्तुति करने पर, अनुनय की सौ बात करके सीता को वश में करने का प्रयत्न करने पर भी उसके मन में किसी तरह का व्यामोह जगाने से रावण समर्थ होगा ? । १७९ अपनी सम्पत्ति और देह सौंदर्य के प्रदर्शन से रावण ने सीता को अपने वश में कर लेने की इच्छा की । लेकिन जिस तरह दीप की वाती सोना दिखाने पर झुकती है क्या उसी तरह माणिक्य दीप की वाती भी झुकती है ? । १८० —रावण की दुष्ट प्रवृत्ति के प्रति सीता कुपित हुई । लेकिन मुख पर उस कोप की छाया को भी आने नहीं दिया। कुल-परंपरा के विपरीत निंदा और पाप से भी न डरकर, इस तरह की बात कोई नहीं कर सकता । पर-वधू, पर-शयनकक्ष, दूसरों के द्वारा स्नान किया हुआ पानी, दूसरों के द्वारा पहना हुआ पुष्प, दूसरों के लेपित सुगन्ध द्रव्य, अन्यों की जूठन, अन्यों के वस्त्र, अन्यों का थूका हुआ तांबूल, ये सब अस्पृश्य वस्तुएं हैं न ? । १८१ "गुण से स्वर्ग और दुर्गुण से अधोगति प्राप्त होती है ।

अरू नीरागिरें तायूमळल्वरेंगमी वाराशियं तुळ्कलुं
तिरूकल्लाडलुमी त्रिकूट गिरियं तत्सूर्यहासासियिं-
दिरिदळ्काडिखलुं द्विषन्नृपरनेकाक्षौहिणी सेनेया
नेरेवं दोर्बल दृप्तनप्रतिहतं रामानुजं लक्ष्मणं ॥१८३॥

रामननंतवीर्यनिदिरोंळ् भुवन त्रयवांतोंडं नृप
ग्रामणि दोंस्सहायदोंळे गेल्वनमोघमुदात्त राघवो-
द्दाम शिलीमुखं रणदोंळन्य सहायमनासेंगेय्व शं-
कामय पीड्यमानधिराजनोंळेक्कतुळक्के वर्परे ॥१८४॥

आहव दोहळं मसुळे मत्पतियिंदमगल्चि तंदे वें-
देहियनेन्ननुक्केवदिनल्लदोंडें दशकंठ राम बा-
णाहतियि नंमंबरगेंमंबिरिविट्टु मडल्त विद्विष-
ल्लीहितदिंदकांड लयकालद संजेमुगिल्गळागवे ॥१८५॥

अेंदु मरूमातिंगेंडेयिल्लदंतु—

विडेनुडियें सीतें मुळिसिन* पडेमातंतिकें रावणंगोंलवु पदि-
र्मडिसित्तप्राप्ति रसं *वडेगुं वैषयिकसुखदोंळिदु विस्मयमे ॥१८६॥

अंतु दशकंठना कंबुकंठिय कनल्दोंनल्दु नुडिव वचनमें सुग्गिय कळकंठिय पुगलेंब वक्रवचनदंतें तनगें मदनराग हेतुवागें—

---

ऐसे में तुम जैसे गुणहीन के ऐश्वर्य की अपेक्षा गुणवान गरीब की गरीबी ही उचित है। १८२ भरा समुद्र भले ही सूख जाय, त्रिकूटगिरि को तुम अपने खड्ग से बेधकर भले ही हिला दो लेकिन रामानुज लक्ष्मण अपने अतुल अद्वितीय साहस से शत्रु राजाओं को उनकी अक्षौहिणी सेना को पराजित करने की क्षमता रखता है। १८३ अनंतवीर्य राम अकेला ही अपने भुजबल से त्रैलोकों से भिड़ कर विजयी बनने में समर्थ है। युद्ध में अन्यों की सहायता के विना ही विजयी बनने वाले उस राम के सम्मुख साहस दिखाने वाला वीर कोई है? । १८४ युद्ध में तुम्हारे सम्बंधियों की जो हार हुई है, उससे डर कर मुझे पति से अलग कर, धोखे से न लाकर सामना करते तो राम बाण प्रलयकाल के मेघों के समान आकाश से पृथ्वी तक तुम्हारा पीछा किए बिना रहते?" । १८५ —आगे बोलने का मौका न देकर, निर्भय हो सीता बोली तो उसकी बातों से कुपित न होकर रावण के मन में सीता के प्रति प्यार दुगुना हुआ। अनुपलब्ध विषय सुख के प्रति आसक्ति बढ़ना आश्चर्य थोड़े ही है? । १८६ —सीता की फटकार भरी ध्वनि रावण के लिए वसंतकालीन कोयल की

नयदिंदमी सरोरूह ❀ नयनेयनळवडिसलातें निल्लळवडिपें
भयदिंदमेंदु विद्या ❀ दयितं पडेदं विकुर्वणावैभवमं ॥१८७॥

आ समयदोळ्—

रागाविलरापद्गत ❀ रागदरारेंदु दशमुखंगरिपुववोल्
आगसदिनपर संध्या ❀ रागाविलनर्कनपर वारिधिगिळिदं ॥१८८॥

अंतु नेसर पडलोडं—

तोर वेणंगळं तळेदु भूतगणं कुणिदाडुवंतिरल्
क्रूर मृगंगळव्वळिसि गर्जिसि नुंगलोडर्चुवंतु भो-
र्भोरेने रक्तवृष्टिकरेवंतु सिडिल् पोडेवंतु सुत्तलुं
वारिधि मेरेदप्पि कविवंतु विगुर्विसिदं दशाननं ॥१८९॥

अंतु बिगुर्विसुवुदुं—

बगेयोळ् जैन पदं ना ❀ लगेयोळ् पंचपदमगलदिरे रत्नद दी-
विगे परूष पवन हतियं ❀ बगेयदवोल् सीतें बगेदळिल्लुपहतियं। १९०॥

आ समयदोळ् सवितृमंडलमुदयाचल शिखंड माणिक्यमंडन-मेनिसे विभीषण प्रमुख मुख्यपुरूषर् पौलस्त्यन केलक्के बंदु खरदूषण मरण शोक विषण्ण मनरागिर्पुदुमन्नेगमित्त कन्नेमाडदमरेयोळिर्दु

---

मधुर ध्वनि के समान उसके कामदाह को बढ़ाने लगी तो, उसने सोचा कि इस पंकजाक्षी सीता को विनय से समझा-बुझा नहीं सका। अब भय से वश में करेगा। इस विचार से अपने अर्जित शिक्षा से विकार रूप धारण किया। १८७ —उस समय, संध्याराग के साथ सूर्य मानो यह संकेत करता हुआ कि जो लोग मोह-जाल में फंसे हैं वे विपत्ति में पड़े विना नहीं रहते, पश्चिम समुद्र में उतरा। १८८ —इस तरह सूर्यास्त होने पर, रावण ऐसा भयानक दिखाई पड़ा मानो शवों को ढोकर ले जाते हुए भूतगण नाच रहे हों, गरजते हुए क्रूर मृग निगलने के लिए आगे बढ़ रहे हों, घनगर्जना के साथ रक्त की वर्षा हो रही हो, घनगर्जना प्रहार कर रही हो, समुद्र ही असीम होकर बह रहा हो। १८९ —ऐसा भयंकर दिखाई देने पर, सीता मन में जैन तीर्थंकरों के चरण को जिह्वा में पंचनमस्कारों का उच्चारण करती हुई निश्चल चित्त हो ऐसी बैठी थी जैसे रत्नदीप स्पर्शमणि के तूफान को अलक्ष्य कर देता है। १९० —उस समय उदय पर्वत के शिखर में सूर्य माणिक्य के समान चमक रहा था कि विभीषण आदि मुख्य लोग रावण के पास आकर खर-दूषण के मरण के प्रति विषाद व्यक्तकर रहे थे कि सीता

सीतॆ शोकंगॆय्व सरमं विभीषणं केळ्दु पुरुष विरहदिनतिप्रलापं-
गॆय्वरारॆंबुदुमा मातं केळ्दु सीतॆयितॆंदळ्—

तनगिदिराद पॆर्वलमनॊर्वनॆ लक्ष्मणनांतु कादॆ त-
म्मन रणमं निरीक्षिसलपेक्षिसि पोगॆ परोक्षदॊळ् दशा-
नतनॆळॆनंदनां जनकनंदनॆयें रघुवीरनप्प रा
मन वधु सीतॆयें पतिवियोग कृशानुसुडल्कॆ बेंदपॆं ॥१९१॥

ऎनॆ विभीषणं नैमित्तिकादेशमं नॆनॆदु भयचकित चित्तनागि—

पर परिगृहीतॆगळिपं ※ तरॆ पुरुषं पुरुष धर्ममळिगुं पळिगुं
धरॆ दुर्गति समनिसुगुं ※ परिहरिसुवुदारुमदरिनी दुर्णयमं ॥१९२॥

ऎंदु विन्नविसॆ मारीचनुमदनॆ नुडियॆ—

स्त्रीरत्नक्कानिरॆ पॆर ※ रारॊडॆयर् मीरुवन्नरारॆन्नी दु-
वरि भुज बलमनॆंदवि ※ चारि दशग्रीवनवर नेळिसि नुडिदं ॥१९३॥

अंतु नुडिदु दानवं त्रिजगद्भूषण दानगजामनेरि जानकियं
पुष्पक विमानमनेरिसि निखिल सामंत सेनॆ मुंदॆ परियॆ पुरस्त्री
विलासमं तनगॆ तोर्पुदुं—

की शोक ध्वनि सुनाई पड़ी यह पूछने पर कि पति-विरह से कौन विलाप कर रही है, (इसे सुनकर) सीता यूँ वोली : "अपने से लड़ने के लिए आयी हुई बड़ी सेना से अकेला ही भिड़कर पराजित करनेवाले अपने छोटे भाई लक्ष्मण की युद्ध कुशलता देखने के लिए राम गये तो उनकी अनुपस्थिति में उनकी पत्नी को रावण जबर्दस्ती ले आया है। मैं हूँ रामकी पत्नी सीता; पति-वियोग की अग्नि में जल रही हूँ।" १९१ ऐसा कहने पर ज्योतिषी का स्मरण कर, भयभीत हो, विभीषण बोला, "पर-वनिता को चाहने पर पुरुष अपने पुरुष धर्म को ही खो देता है। सारा संसार उसकी निंदा करने लगता है। उसे दुर्गति प्राप्त होती है। ऐसे अधर्म को कौन टाल सकता है ?"। १९२ —ऐसा आग्रह करने पर, मारीच ने भी वैसा ही कहा तो, वह अविचारी रावण उनकी निंदा करता हुआ बोला: "जब मैं जिंदा हूँ, संसार की स्त्रियों का स्वामी और कौन हो सकता है ? मेरी बातों का उल्लंघन कर, मेरे बाहुबल का सामना कौन कर सकता है ?"। १९३ —ऐसा कहकर वह अपने हाथी पर चढ़ा और सीता को पुष्पक विमान में बिठाया। उसके सामंत और समस्त सेना आगे-आगे बढ़ी तो नगर की शोभा दिखाई पड़ी। पति-वियोग से उत्पन्न दु:ख अतिशय होने के कारण सारा दृश्य सीता के लिए असह्य हो रहा

जानकि जीवितेश्वरनगल्केयोळग्गळमाद खेददिं-
देनुमसह्यमागे पुरमं पुर गोपुरमं बहिः पुरो-
द्यानमनीक्षिसल् बगे विरुक्षिसे कन्नडिसल्के सालदळ-
जानने दुःखिते मनसि सर्वमसह्यमेनिप्प वाक्यमं ।।१९४।।

अंतु रामसीमंतिनियं प्रमद मदिरा प्रमत्तं प्रमदवनदोळ् सेरेगेय्दु विरहविकलनागिर्पुदुमातन केडं विभीषणं कंडु भयंगोंडु मंतणमिर्द समयदोळ् संभिन्नवेसर मंत्रिमुख्यं दिग्गजद निग्गवमनुडिवंते वियच्चर पतिय नच्चिन खरदूषणरं कोंदु तदपत्यनप्प सुंदरनं पाताल लंकेयिं सोदु कळेदु तद्विरोधियप्प विराधितननन्वयागत राज्यलक्ष्मियोळ् निलिसि रामलक्ष्मणर् वैदेहियपोद देसेयनरियदु-सिकनिर्दरल्लदेयुं विग्रह समग्रनप्प सुग्रीवं नम्मोळादनुबंधदोळ् शिथिलनागिर्कुमातनोळनुबंध मुळ्ळुदरिं हनुमनुमेमगेल्लनेबुदुमा नुडिगे दशमुखं परिहास मुखरमुखनागि—

कडलोळगोंदेरळ् जलकणं पवनाहतियिं विनष्टमा-
दोडे जलराशि कुंदुगुमे मेरेगे दूरमेनिप्प नम्म पै-
वडे खरदूषणर् कळियो कुंदुगुमे कपि चिह्नरिल्लदें
किडुवुदो भूचरर् धुरदोळांपरे खेचर चक्रवर्तियं ।।१९५।।

---

था। नगर, गोपुर, नगर के बाह्य उद्यानों को देखने से उसकी आंखों ने इनकार किया तो दुःखी मन असह्य वाक्य को प्रतिबिंबित करने लगा। १९४

—इस प्रकार स्त्री मोहके पागलपन से मत्त रावण ने सीता को प्रमदवन में बंधन में रखवाया। सीता विरहवेदना में ऐसा जल रही थी कि इस अनुचित व्यवहार के लिए मिलनेवाली सजा की कल्पना कर विभीषण, भयभीत हुआ और अन्यों के साथ विचार विनिमय में लग गया। उस समय संभिन्न नामक मंत्रीवर दिग्गज की दाढ़ को तोड़ता-सा बोला: "रावण के संबंधी खर-दूषण को मारकर, सुन्दर को पाताललंका से भगाकर, विरोधी (शत्रु) विराधित को राजा बना दिया है। राम-लक्ष्मण सीता के चले हुए मार्ग को न जानने के कारण चुप है। चतुर सुग्रीव भी हमारा संबंधी होने के नाते इस तरह चुप है। फिर भी हनुमान हमारा द्वेषी बन बैठा है।" इसे सुनकर रावण परिहास की हंसी हँसकर बोला: "तूफान के आघात से समुद्र के पानी की एक-दो बूँदें नष्ट होती है तो समुद्र का पानी सूख जाता है? खर-दूषण के न रहने से हमारी असीम सेना दुर्बल होती है? वीर कपिवर सुग्रीव और हनुमान के न रहने मात्र से हानि होगी? अल्प मानव हम खेचर चक्रवर्ति से भिड़ सकते हैं?"। १९५।

अेंबुदुमा नुडियनवकर्णिसि निशित प्रज्ञनुमनागतज्ञनुमप्प सहस्रमति विद्याबलदोळं भुजवलदोळं षडंगबलदोळमत्यधिक-नप्पश्वग्रीव खेचरनं भूचरं त्रिपिष्टनश्रमदोळे कोंदं भूचररसंख्यात खेचररं कादि विधेयरं माडिकोंडरेंबुदाबाल गोपाल प्रसिद्धमदरिनवर-नेळिसुवुदुचितमल्तु सुग्रीवादिगळुमं दान सन्मानंगळिंदेमगे माळ्पुदु लंकेगभेद्यमार्गे विद्याप्राकारमं माळ्पुदितु बलिदिर्पुदुं वैदेहिय विरहदिं रामं विगतदेहनक्कुमंतागे लक्ष्मणंगं प्राण परित्यागमक्कुमेंदु निश्चयिसि नुडियें विभीषणना प्रकारदिं प्रयत्नपरनागिर्पुदु-मन्नेगमित्तल्—

खरदूषणरिं पगेयुं * परिभवमुं तीर्गुमवर्गे पेळ्वेनेनुतुं
बरुतुं काननदोळ् वा * नर चिह्नं कंडनोंदु रण मंडलमं ॥१९६॥

चतुरंग सेनेयुं जव * नतिकांक्षेयिनुंडु कारिदंतिर्द रण
क्षिति तलमं कंड निज * सती वियोगार्त चेतसं सुग्रीवं ॥१९७॥

कंडिदेनेंदु बेसगोळ्वुदुमदनरिवनोर्वनिंतेंदं बलाच्युतर् बंदु—

शंबुकनं कोंदसिर * त्नं बडेदर् चंद्रनखिय पुय्यलगत्या-
डंबरदिनेत्ति बंदुद * नबरचर बलमनोंदेमेय्योळ् कोंदर् ॥१९८॥

—ऐसा कहने पर, उसकी बात का खंडन करते हुए तीक्ष्ण बुद्धिशाली और भविष्य ज्ञाता सहस्रमति नामक मंत्री ने स्पष्ट कहा: "यह सर्वविदित है कि अश्वग्रीव, जो महान विद्वान, भुजबलशाली, षडंग बलशाली था, को आसाना से मारकर, असंख्य खेचरों को अपने वश में कर लिया है। उनकी अवहेलना कर देना उचित नहीं है। सुग्रीव आदि को उचित सम्मान के साथ हमारे पक्ष में मिला लेना चाहिए। हमारे विद्याबल से लंका को अभेद्य वना लेने का उपाय ढूंढना चाहिए। ऐसा करने पर सीता के विरह में राम प्राण त्याग देगा। ऐसा होने पर लक्ष्मण भी मर जायगा।" इधर, विभीषण इस प्रयत्न में था कि शत्रुता जो खर-दूषण के कारण शुरू हुई थी, इस संबंध में समझाकर पराजय से बचा देना चाहिए, वानरपति सुग्रीव आ रहा था उसने मार्ग में युद्ध-भूमि देखी। १९६ युद्ध-भूमि ऐसा दिखाई दे रही थी मानो चतुरंग सेना और यमने अत्यधिक भूख के कारण खूब खाने के पश्चात उलटी कर दी हो। इसे देखकर सुग्रीव अपनी पत्नी को खोने के कारण दुःखी हुआ। १९७ —युद्ध-भूमि को देखकर, यह पूछने पर 'कि इसका कारण क्या है एक ज्ञाता व्यक्ति ने वताया कि वलदेव अच्युत आकर, शंबुक को

खरदूषणरं कोंदर् * विराधितंगवन पूर्ववृत्तियनित्तर्
सेरगिल्लदवर् कारण * पुरूषर् पाताळलंकेयोळ् वंदिर्दर् ॥१९९॥

अनुजं लक्ष्मणनग्रज * ननंत बलनप्प रामचंद्रं सकला
वनिपति तत्पद सेवेयि * ननाकुलं तीर्गुमार पगेयुं वगेयुं ॥२००॥

गरल ग्रीवनहींद्रनिदु मृगलक्ष्मं शंकरं नीलकं-
धरनेंदेळिसि तन्न निर्मल यशं दिक्कामिनी मौक्तिका-
भरणं कायलुमीयलुं नेरेव पुण्यात्मं परार्थ प्रियं
पुरूषार्थयितनैक रत्न कलशं साहित्य विद्याधरं ॥२०१॥

इदु परम जिनसमय कुमुदिनीशरच्चंद्र बालचंद्र मुनींद्र चरणनख किरण चंद्रिका चकोर भारती कर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितमप्प रामचंद्र चरित पुराणदोळ् सीताहरण वर्णनं नवमाश्वासं ।

॥ नवमाश्वास समाप्त ॥

मारकर, खड्ग-रत्न को प्राप्त कर लिया। चंद्रनखी का हाहाकर सुनकर सजधजकर आये हुए आकाशगामी खेचरों को बलाच्युतों ने अनायास मार दिया। १९८ खर-दूषण को मारनेवाले विराधित को उसका पूर्व राज्य दिलाया। उनका साहस अतुल अद्वितीय है। वे कारणपुरुष हैं। पताल लंका में वे ठहरे थे। १९९ लक्ष्मण छोटा भाई है, बड़ा भाई महान पराक्रमी राम है। वे दोनों श्रेष्ठ राजा हैं। उनकी चरण-सेवा से किसी की भी शत्रुता नहीं रह पायेगी। २०० महाशेष, जिसके गले में विष रहता है, आज राम के रूप में पृथ्वी में जन्म लिया है। उसका निर्मल यश दिग्वनिताओं के लिए मोती का आभरण बन गया है। शरणागतों की रक्षा करने में, याचक को मांगी हुई वस्तु प्रदान करने में वह समर्थ है। अन्यों को उपकार करने की प्रवृत्ति रखता है, पुरुषार्थ में रत्न-कलश के समान है। वह साहित्य विद्याधर है। २०१ यह कवि अभिनव पम्प, जो परम जिन समय और कमलों के लिए शरत्काल के चंद्र के समान माने जानेवाले बालचंद्र मुनींद्र के पदनखों के चंद्र-प्रकाश से पवित्र एवं जो सरस्वती के कर्णाभरणों के समान है, के 'रामचंद्र चरित पुराण' का सीताहरण वर्णन—नवमाश्वास है।

॥ नवमाश्वास समाप्त ॥

दशमाश्वास

श्रीललना स्तनभर निबि ※ डालिंगन कुंकुमांकितोरस्स्थलनु-
र्वीलोक मंडनं महि ※ मालंबन चारु चरितनभिनवपंपं ।। १ ।।

अेंन्ने मनदें कोंडु सुग्रीवनी महानुभावरप्प रामलक्ष्मणरिंनेन्न पगेयुं बगेयुं तीर्गुमेंदु निश्चयगेय्दु निजागमनमं विदितंमाळ्पंतु मुंदे विराधितनल्लिगें दूतनं कळिपि—

बलसहितं सुग्रीवं ※ बल मारायणर बलदोंळभिमतमं ती-
र्चलोंर्डचि वियन्मुखमं ※ वलिमुख जय वैजयंति चुंबिसे बंदं ।। २ ।।

अंतु बंदु पुरमं पुगुव समयदोंळ् लक्ष्मणनीतनार्गेंनें विराधितनेंदं किष्किंध नगराधिनाथनुं कपिध्वज कुलध्वजनुं सूर्यंजय प्रिय तनूजनुं वालि भट्टारकरिं नेर्गिरियनुमंगदन जनकनुमप्प सुग्रीवं निम्मनोलगिसल् बंदनेंदु बिन्नविसुवन्नेंगं—

अविचलित धैर्यनुत्तुं ※ ग वंशनप्रतिम सहज सत्वं कपि के-
तुवुदात्तं बंदं नडें ※ व वर्षधर शैलमेंबिनं सुग्रीवं ।। ३ ।।

अंतु बंदु रामलक्ष्मणर चरणकमवक्केरगिदनंतरं तनगेरगिद विराधितनं परसि सुग्रीवं नियमितासनदोंळिर्पुदुमुदात्त राघवं—

---

अश्वास—१०

उज्ज्वल चरित्रवान अभिनव पंप श्रीलक्ष्मी के घने कुचों का आलिगन करने का साहस और समस्त लोकों के लोगों से वंदनीय होने की महिमा (क्षमता) रखता है। १ —ऐसा कहने पर, सुग्रीव ने उस बात को मानकर और यह सोचकर (समझकर) कि इन महानुभाव राम लक्ष्मण से अपने शत्रुओं का नाश कर सकता है, अपने आने की पूर्व-सूचना देने के उद्देश्य से विराधित के पास दूतों को भेजकर,— और इस विचार से कि अपनी सेना और राम लक्ष्मण के द्वारा अपनी इच्छा पूर्ण हो जायेगी, आकाश के मुख का चुंबन करता हुआ एवं कपिध्वज को फैलाता हुआ सुग्रीव वह आ पहुँचा। २ —इस तरह आकर नगर प्रवेश करते समय लक्ष्मण के यह पूछने पर कि वह कौन है, विराधित ने बताया: "यह किष्किंधा का राजा है, कपिध्वज कुल का भूषण है; सूर्यजय का पुत्र है; बालि भट्टारक का छोटा भाई है; अंगद का पिता है और नाम है सुग्रीव। आपको प्रसन्न करने के लिए यहाँ आया है।" ऐसा निवेदन कर रहा था कि,— अचल धैर्य से परिपूर्ण, श्रेष्ठकुल में जन्म लेनेवाले सहज

कुशलमे निमगेने निज पद* कुशेशयक्केरगुवंतु सैपाय्तेनगिं
कुशलमे नरेंद्र पेररिं *कुशलं विपदुयहतंगे समनिसिदपुदे ।। ४ ।।

अंबुदं लक्ष्मीधरनिवरेनिमित्तं बंदरेने जांववं मुकुळित कर सरोजनिंतेंदं—

सुग्रीवन कुलवधु कं * वुग्रीवे सुतारेयेंवळा सतियोळ् तो-
ट्टाग्रहदिंदरमनेयं * सुग्रीवन रूपगोंडु खळनोळवोक्कं ।। ५ ।।
ओळगण पोरगण कापिन* कुल वृद्धरूमंगरक्षरूं पडियररूं
खळनं सुग्रीवनेंगे *त्तोळवुगलित्तर् विचित्रमवन चरित्रं ।। ६ ।।
ओंदच्चिनोळोत्तिद तेर * दिंदिदेडिमवन रोय्तमं कंडु लता
सुंदरि मायाविय रू * पेंदरिदळ् सतिय सैपनदनेवेळ्वें ।। ७ ।।
अरेयन कुरिपुगळं त *न्नरिवन्नवनवन तनुविनोळ् काणदिवं
पेरनेंदरिदवनेर्दे पडि *देरेविनमोवरिय पडियमासति केत्तळ् । ८ ।।
हरिणाक्षि सेज्जेवनेयो *वरियोळ् मेय्गरेये वगेयोळोगेदुम्मळदिं
देरेदप्पल् पडेयदे खळ * नेरेदप्पिद दंदशूकनंददिनिर्दं ।। ९ ।।

सत्व से युक्त सुग्रीव चलता पर्वत-सा चला आया । ३ —इस तरह आकर राम लक्ष्मण के चरण कमलों में नमने के बाद नमस्कार करने वाले विराधित का अभिवादन कर योग्य आसन पर बैठने के पश्चात श्रीराम ने पूछा:— "कुशल हो न सुग्रीव ?" उत्तर में सुग्रीव बोला: "आपके चरणों पर झुकने के पश्चात कुशल नहीं तो और क्या ? जिन पर आपकी कृपा होती है उनके पास विपत्ति आ सकती है ?" । ४ —ऐसा कहने पर राम ने जाँबव से पूछा कि वे लोग, किस कारण से वहाँ आये हैं ? जाँबवने हाथ जोड़कर कहा:— "सुग्रीव की पत्नी तारा को चाहकर, एक राक्षस ने सुग्रीव का रूप धारण कर राजमहल में प्रवेश किया । ५ उसे असली सुग्रीव समझकर, भीतर और बाहर के पहरेदार सैनिकों ने भीतर जाने दिया । उसकी कहानी बड़ी अजीब है । ६ सुग्रीव और मायासुग्रीव में लेशमात्र भी अंतर न रहने पर भी अपनी चतुरता से तारा ने पता लगा लिया कि वह व्यक्ति असली सुग्रीव नहीं है । ७ पति के विशिष्ठ चिह्नों को मायासुग्रीव में न पाकर उसे पराया समझकर वह इतना और ऐसा रोयी कि मायासुग्रीव का हृदय फट जाय । ८ वह शय्यागृह में छिपकर बैठ गयी और मन ही मन दुःखी हुई । तारा कहीं दिखाई न देने पर राक्षस की स्थिति आश्रय खोये हुए सांप के समान हुई । ९ उस समय असली सुग्रीव उद्यान से अपने अंतःपुर में आया और राक्षस को पाकर;

आ समयदोळुद्यानदि * नी सुग्रीवं स्वकीय भवनक्केळ्तं-
दा सुग्रीवन गौंड्ड *क्कासुरमेने मसगि कादलुद्यतनादं ॥ १० ॥
अवनुं बवरक्कोडरिसि * दवसरदोळ् दिटद पुसिय सुग्रीवन भे-
दवनरियदे वारिसिदर् * बवरमनाप्त प्रधान सेना मुख्यर् ॥ ११ ॥
मूवत्तक्षौहिणिवेर * सा वधुवं कादु वालिदेव सुतं रा-
जावसथदोळिर्द शौ * र्यावसयं चंद्ररश्मि दोर्बल दृप्तं ॥ १२ ॥

आ क्षणदोळेळक्षौहिणीबलंबेरसंगदकुमारं माया सुग्रीवनं तंदेयेंब संदेगदिं स्वीकरिसि नळननिते बलंबेरसु सुग्रीवनं पोरवोळलोळ् सेरेगेय्दिदरेंदु नियमिसि बेरेवेरे ओलिदिर्पुदुमी सुग्रीवं हनुमनल्लिगे पोगि निज वृत्तांतमं निवेदिसुवुदुं—

हनुमं माया सुग्री * वननिक्कुवेनेंदु बंदु भाविसि सुग्री-
वनदावनेंदुमरियदे * मुनिदिरियदे मगुळे पोदनेळिदनादं ॥ १३ ॥

अंतातं पोपुदुमी सुग्रीवं निम्म दोर्बलदगुर्वुमनव्यवहित परहित व्यसनमुमं केळ्दु सुतारा विरहदिं चंडकिरण किरणमनासेगेय्विरूळ चक्रवाकदंते निम्म चरणमे शरणेंदु बंदनेंबुदुमुदात्तराघवं लक्ष्मणन मोगमं नोडि—

---

कुपित होकर, उससे भिड़ने के लिए तैयार हो गया। १० मायासुग्रीव और असली सुग्रीव के बीच युद्ध हुआ तो उन दोनों के अंतर समझने में असमर्थ होकर मंत्री और प्रधान सेनापतियों ने युद्ध को रोक दिया। ११ तीस अक्षौहिणी सेना की सहायता से तारा की रक्षा करके बाली पुत्र अपने भुजबल-पराक्रम के लिए प्रसिद्ध हुआ। १२ —उस समय सात अक्षौहिणी सेना के साथ अंगदकुमार स्वय आया और मायासुग्रीव को ही अपना असली पिता समझकर, असली सुग्रीव को नगर के बाहर स्थित कारागृह में रखने का अपनी सेना को आदेश दिया। हनुमान के पास जाकर सुग्रीव ने घटित सारी घटनाएँ बतायीं तो,— हनुमान मायासुग्रीव को मारने के लिए आया लेकिन दोनों को देखने के पश्चात समझ नहीं पाया कि कौन असली है और कौन मायावी। इससे कुपित होकर जैसा आया था वैसा ही लौटा और अपहास्य का पात्र बना। १३ —इस तरह उसके चले जाने पर, यह सुग्रीव आपके बाहुबल और आपकी परोपकारी प्रवृत्ति को सुनकर, तारा के विरह से, सूर्य किरणों को चाहने वाले रात के चक्रवाक पक्षी की भांति आपके चरणों में आया है" ऐसा कहने पर लक्ष्मण का मुख देखकर राम ने सोचा,— वह उनकी तरह ही दुःखी है। उसका

अॆम्मॊंदिगनीतन मन * दुम्मळमं कळॆवुदॆंदु कारूण्यपरं
तम्मंगॆ नुडिदनर्यिग * ळम्मन्निसुवळ्ति राघवंगॆ निसर्गं ॥ १४ ॥
आ दॊरॆयनुमं काडिद * ना दॊरॆयं हनुमनळ्कि काददॆ नॆवदिं
पोदनवनधिकनॆन्नदॆ * कादिकॊलल् वगदनॆनुदात्तनॊ रघुजं ॥ १५ ॥

अॆनॆ रामचंद्रननुग्रहक्कॆ सुग्रीवं समाहित चित्तनागि विराधितन मॊगमं नोडि—

विरह व्याकुलरंतॆ देवरूसिर्दी वृत्तांतमेनॆंदु वा-
नर चिह्नंगॆ विराधितं तिळिपिदं कांतारदॊळ् जानकी
हरणं वंचनॆयिंदमादतॆरनं संग्राममादंदमं
खरनुं दूषणनुं जनार्दनन कैयॊळ् कादि सत्तंदमं ॥ १६ ॥
आरूय्दरॆंदुमरियदॆ * नारायणनिर्दनरिदॊडुय्दन करूळि
वीरश्रीगॆ भुजासिय* धारा गृहदल्लि तोरणंगट्टदिरं ॥ १७ ॥

अॆनॆ सुग्रीवनवसरंवडॆदु सप्त दिवसक्कॆ देवियर सुद्धियं तपॆनॆंदतिप्रतिज्ञॆगॆय्दु बिन्नविसि मॆच्चॆ निच्च पयणदिं वलनुमच्युतनुं विराधितनुं बॆरसु किष्किधपुरमनॆय्दि दूतननट्टुवुदु मातं यमदूतनंतॆ बंदु साहस गतियं कंडु—

---

दुःख दूर करना चाहिए। शरणागतों की रक्षा करना राम का सहजगुण है न? । १४ ऐसे व्यक्ति को विपत्ति के पात्र बनाने वाले कपट सुग्रीव से डरकर यद्यपि हनुमान लौटा तथापि उस मायावी से उदात्त राघव लड़ने के लिए तैयार हो गया। १५ —राम की दर्शाई हुई सहानुभूति के प्रति विनीत और संतुष्ट होकर, सुग्रीव विराधित का मुख देखकर,—विरह-व्याकुल से पूर्ण-सा यह पूछने पर कि श्रीराम के व्यक्त विषय क्या हैं, विराधित ने बताया कि किस तरह युद्ध में खर-दूषण को लक्ष्मण ने वध किया और रावण ने धोखे से किस तरह सीता का हरण किया। १६ "राम नहीं जानता कि सीता का हरण किसने किया है। अगर जानता तो हरण करने वाले की अँतड़ी की माला से विजयलक्ष्मी के मंडप में तोरण बँधवाये बिना नहीं रहता"। १७ —ऐसा कहने पर सुग्रीव ने तुरंत प्रतिज्ञा ली कि वह सात दिनों के अंदर सीता का समाचार ला देगा। उसकी प्रतिज्ञा से संतुष्ट हुआ। राम लक्ष्मण और विराधित को साथ लेकर सुग्रीव किष्किधा आकर दूत को नगर में दौड़ाया तो वह यमदूत के समान पहुंचकर साहसगति से मिलकर बोला,— "राम ने सुग्रीव को आश्वासन दिया है कि अगर भगवान भी उसके शत्रु की रक्षा करने आवे

देवर् कावोंडमिदु निन्न पगेयं सुग्रीव कोंदीवेनें-
दा वीराग्रणि विग्रह व्यसनदिंदेळ्तंदनिं प्राणमं
कावुद्योगमिदोंदे मत्पतिय पादांभोजमं बंदु काण्
जीवाकर्षण विद्येयं मेरेयदन्नं राम रौद्रेषुगळ् ।। १८ ।।

अेंदु गजरि गर्जिसिद दूतन मातिंगे मुळिदु मुळिसं मोगक्के तारदे—

सेरगं बेरगं बगेयदे ※ पुरमं पोरमट्टु कृतक सुग्रीवं के-
सरियंते गर्जिसुत्तुं ※निरंकुश मुट्टवेंदनिदिरोड्डणमं ।। १९ ।।

आजिगिदिरेत्ति बरे मा※ या जीवियनंदु कंडु वानरचिह्नं
स्त्रीजं कोपानलनु ※ त्तेजिसे काळ्किर्चु नेगेद नगदंतिर्द । २० ।।

आ क्षणदोळ् परस्पर निरीक्षणदिं मुळिसुण्मि पोण्मे र-
क्तेक्षणरात्मशक्तिगे शरीर बलक्कनुरूपमप्पुवं
लक्षणयुक्तमप्प गदेयं तळेदिर्वरूमिर्वलं बिगु-
र्तीक्षिसे मीरिदर् विकट शृंग समग्र कुलाचलंगळं ।। २१ ।।

अंतु गदयुध सन्नद्धर् पंचविध स्थानकदोळमष्टविध चारणेयोळमतिचटुलरागि—

---

तो भी उसे (शत्रु को) मारे बिना नहीं छोड़ेगा। और इसी उद्देश्य से युद्ध करने आया है। अब तुम अगर अपना प्राण बचाना चाहते हो तो लो मेरे स्वामी के चरणारविंद से मिलकर इस बातका निवेदन करो ताकि राम तुम्हारे प्राण न ले।" १८ —इस तरह गरजकर कहने वाले दूत की बात से कुपित हुआ लेकिन चेहरे में प्रकट होने न देकर, —अपने लिए प्राप्त आश्रय और आश्चर्य करा देनेवाले दूत की बात की परवाह किए बिना कृतक सुग्रीव नगर से निकलकर, सिंह-सा गरजता हुआ, निडर हो, सामने खड़ी सेना के पास आया। १९ युद्ध के लिए आगे बढ़े हुए माया सुग्रीव को सुग्रीव आग बबूला होकर दावानल फैले पर्वत के समान दिखाई पड़ा। २० उस समय परस्पर अवलोकन से कोपाग्नि उनके मुख से उज्ज्वलित होकर बाहर निकली; आँखें रक्तवर्ण में परिवर्तित हुईं, अपने देहबल के योग्य गदाओं को धारणकर, मुड़कर अपनी-अपनी सेना को देखते हुए तैयार हुए तो ऐसे दिखाई पड़े मानो दो पर्वत मिलने आये हों—आमने सामने आ गये हैं। २१ —इस तरह गदायुद्ध धारणकर, पंचविध (प्रकार) स्थानक और अष्टविध क्रम से पूर्णरूपेण परिचित कुशाग्रमति होकर, चलने के ढंग से, गदा के प्रहार से, श्वासोच्छ्वास के क्रम से,

नडॆव नडॆ पॊय्व गदॆयं ※ विडॆ बीसुव पॊयलनॊडनॆ कट्टुव कड्डुपुं
कडुविन्नणमुं तमगळ ※ वडॆ तागिदरिळॆयुमागसं तागुववोल् ॥ २२ ॥
उरवणॆयिं बाह्यभ्यं ※ तरंगळं वामं दक्षिणंगळनरिदॊ-
र्वरनॊर्वर् पॊय्ये गदा ※ परिहरणं पडॆदुदिर्वलक्कं भयमं ॥ २३ ॥
भर्रदिं पॊय्वुदुमोरॊ ※ र्वर गदॆयॊळ् गदॆ पळंचॆ किडिसूसॆ रणा-
जिरदॊळकांडद कॆंडद ※ सरि सुरिववॊलादुदवरदॆनतिवलरो ॥ २४ ॥
ओरन्नर् तम्मॊळगा ※ कारदितिनितल्तु सत्वदिं साहसदिं-
दोरन्नर् बिन्नणदिं ※ बीरदिनोरन्नरनॄत ॠत सुग्रीवर् ॥ २५ ॥

आ समयदॊळ् संवर्त समयद कृतांतनंतॆ मामसकं मसगिबीसुत्तुं—

कालदंड प्रतिम घनगदा दंडमं कणगळिदं
सूसुत्तुं कॆंडमं मॆळिसॆ जयवधु तन्नुच्च दोर्दंडमं सं-
त्रासं सेनाद्वयक्कं समनिसॆ तॆरपं पार्दु सुग्रीवनं मा-
या सुग्रीवं गदादंडदिनडसि सिडिल् पॊय्ववोल् काय्दु पॊय्दं ॥ २६ ॥

अंतु बसवळिदु बीळॆ पॊय्वुदुं मूर्छॆवोदनं गतप्राणनॆ गॆत्तु मायावि मगुळॆ पोपुदुं जांववादिगळ माळ्प शिशिरोपचारर्दिदॆंतानुं मूर्छॆयिदॆळ्चत्त सुग्रीवन मॊगमनुदात्त राघवं नोडि—

---

अपने चातुर्य का प्रदर्शन करते हुए, ऐसे भिड़ गये मानो अवनी और अंवर मिल गये हों। २२ शौर्य से भीतर-वाहर के अंतर को जानकर, दायें-वायें को पहचानकर, एक दूसरे पर प्रहार करने लगे तो इनके गदाओं के आघात दोनों पक्ष की सेनाओं को भयभीत कराने लगे। २३ वड़ी तीव्रता से एक दूसरे पर गदाओं से परस्पर प्रहार करते समय गदाओं के घर्षण से अग्नि की चिनगारियां बरसने लगीं तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो युद्ध भूमि में अग्निवर्षा ही हो रही हो। २४ अपने देहवल के अतिरिक्त अपने वल, साहस, कुशलता आदि से सुग्रीव और मायासुग्रीव लड़ने लगे। २५ —उस समय उनमें प्रलयकाल के यमके समान क्रोध कौधने लगा तो कालतुल्य गदा को घुमाता हुआ, आँखों से अग्निकण वरसाता हुआ अपने भुजवल से जय-वधू को वलात्कार से खींच लाने की उत्कट इच्छा को (सुग्रीव द्वारा) छीने जाने का भय (शंका) उत्पन्न होने पर मायासुग्रीव ने गदा से सुग्रीव पर प्रहार कर गिरा दिया। २६ —इस तरह गिरकर मूर्छित सुग्रीव को मृत समझकर मायासुग्रीव मुड़कर चला गया। लेकिन जाँवव आदि के

तनुवं भाविसि निनगं॥ तनगं सादृश्यमार्दोडक्कुमपायं
निनगेंदु बेंचिदें ती ॥ चेन्ने मोनेयोळ् नाळे निन्न पगेयं बगेयं ।। २७ ।।

ऎंदु नुडिदु मरूदेवसं रणभूमिगे वदु माया सुग्रीवनं कंडु—
कडुमुळिसि कट्टिदिरोळ् ॥ नडेवेडेयोळ् रामनातनं लक्ष्मणनिं
पिडियिसिदं मोनेयोळ् मा॥ र्पडेगंडोडे सेडेव गंडने सुग्रीवं ।। २८ ।।
आ समयदोळ्—

मोनेयोळ् मारांत चातुर्बलमनळरें बेंकोंडु कैकोंडु सुग्री-
वननावं कावोडं कोंदपेनेनगिदिरारेंदु मेय्वेंचिदुद्वृ-
त्तननत्तित्तल् मगुळ्पोगदिरेने रघुजं केळ्दु पोय्वेत्त पंचा-
ननदंतेय्नंदना साहसगतिवरेगं गंडरोळ् गंडनावं।।२९ ।।

अंतेय्दवर्युदुं—

आ रामनिदिरोळा वि॥ द्यारूपं पिंगिपोगे साहसगति त-
प्तारक्तायश पिडं ॥ नीरोळगळ्दंते तन्न तेजंगेट्टं ।। ३० ।।

परिहरिसि पोर्गे माया॥ स्वरूपमळवळिदनिल्ल खेचरपति भी-
कररूपं निजदिदं ॥ पेरेयिक्किद कृष्ण सर्पनिर्पतिर्द ।। ३१ ।।

---

शीतोपचार के कारण सुग्रीव जागा तो उसका मुख देखकर उदात्त राघव ने कहा: "मैंने तुम दोनों में परस्पर सादृश्य, साम्य देखा। अत: मैंने सोचा कि ऐसी (संदिग्ध) स्थिति में बाण चलाना खतरे से खाली नहीं है; इसी से मैं डर गया। कलके युद्ध में तुम्हारे शत्रु को अवश्य मारूँगा।" २७ —ऐसा कहकर अगले दिन युद्ध-भूमि में आकर माया-सुग्रीव को देखकर, अत्यंत क्रोध से सामने चलते समय राम ने उसे लक्ष्मण से पकड़वाया। शत्रुसेना को देखकर भी वह मायासुग्रीव पीछे हटा ?। २८ —उस समय, युद्ध में सामने से आती हुई चतुरंग सेना से भिड़ता हुआ माया-सुग्रीव बड़े अभिमान से कहने लगा "सुग्रीव की रक्षा के लिए जो भी आगे बढ़ेगा उसे मैं मारूँगा, मेरा सामना कौन कर सकता है ? कोई भी इधर उधर न भागे।" यह सुनकर राम घायल सिंह-सा दृढ़ पग बढ़ाते हुए मायासुग्रीव के पास आया। उसके समान धैर्यशाली पुरुष और कौन है ?। २९ —ऐसा आगे आ रहा था कि, राम के सम्मुख माया-सुग्रीव का कपट रूप अदृश्य हुआ और वह उसी तरह अपने तेज को खो बैठा जिस तरह तप्त लोहे को पानी में डुबोने पर वह अपना रूप खो लेता है। ३० कपट रूप गायब होने पर भी वह राक्षस डरे बिना अपने असली भयानक रूप में, कैंचुल छोड़े हुए कृष्ण सर्प के समान

आगळंगदनदं कंडु निज बल सहितं सुग्रीवनं बंदु कूडे लक्ष्मण-देवनेलवों सुग्रीवनं शरणबोंक्कु र्जीविसेने मुनिदु साहसगति रघुवीरनं मुट्टेवंदु—

अंतुपेरगिक्कि पगेयं ※ मुंतादंतणमेनुत्तुमिसे नगे रामं
दंतांशु निमिर्दुववनसु※ वं तेगेयल् निमिर्द काल पाशंगळवोल् ॥३२॥

अंतु नसुनक्कु—

तेगेदंबं दोणेयिं तोडंचि तिरूवायोळ् कर्णमूलंबरं
तेगेदेसाडे वलं जिताहितवलं तत्सायकं दैविकं
तेगेदत्तातन तोळोळिर्द विजयश्रीकांतेयं प्राण वा-
युगळं मेय्देगेवंतु वानरपताक स्वांत चिंताज्वरं ॥ ३३ ॥

अंतु साहसगति गतप्राणनागे—

नोडिदोडोडिपोय्तवन नच्चिन विद्ये रघुप्रवीरने
साडिदोडोंदे बाणमवनं नडे नोडि नेलक्के सोवतं
माडिदुदेंदु तूगि तलेयं पोगळ्दं तनगिष्ट सिद्धियं
माडिद दृष्टिपात शरपात चमत्कृतियं कपिध्वजं ॥ ३४ ॥

आगळखिळ जयजय ध्वानमोळवे राघवनमोघ शरासनमं पूजिसि करसरोजमं मुगिदु—

---

था। ३१ —तब, उसे देखकर अंगद अपनी सेना के साथ सुग्रीव से मिला। लक्ष्मण ने राक्षस से कहा: "हे दुष्ट, सुग्रीव की शरण जाकर जी लो।" राक्षस कुपित हुआ और युद्ध के लिए तैयार होकर, "लो मेरे भुजबल साहस को देख लो" कहकर बाणों की वर्षा करने लगा तो राम हँस पड़ा। उसके दाँतों की कांति राक्षस के प्राण लेने वाले काल-पाश के समान दिखाई पड़ी। ३२ —इस तरह हँसकर, रामने तर्कस से बाण निकाल कर धनुष पर चढ़ाकर कान तक खींचकर बाण छोड़ा तो उस बाण ने शत्रु की भुजा में स्थित विजयश्री एवं प्राण को छीन लिया और वानरध्वजी सुग्रीव के चिंता-ज्वर को (पूर्ण) दूर कर दिया। ३३ —इस तरह साहसगति नामक वह दुष्ट राक्षस मर गया। इसे देखकर सुग्रीव ने सोचा—राम के दृष्टि स्पर्श मात्र से साहसगति की कपट-विद्या भाग गयी; बाण प्रयोग से उसे धराशायी बनाकर मार ही दिया। ३४ —तब समस्त दिशाओं से जयजय की जयजयकार सुनाई पड़ी तो राघव के धनुष को पूजकर, हाथ जोड़कर, "भगवान हमारे यहाँ

देवर् बिजयंगेय्दु म ※ दावसयक्कैनगे रागमं केसडि कैं-
दाव्ररेवूविंदीवुदु ※ सेवापदवियोळे निलिपुदेन्नन्वयमं ।। ३५ ।।

अेंदु बिन्नविसि कपिध्वजं रघुकुल ध्वजरप्प रामलक्ष्मणरं मुंदिट्टु वंदन माला मनोहरमं किष्किंधपुरमं पुगुव समयदोळ्—

आ मुक्ताफल कांतियोळ् सेणसुवंगच्छायेयिं राजिपं
रामं लक्ष्मणना हरिन्मणि मयूख श्यामनेंदीक्षण
प्रेमं कैमिगे नोळ्प कामिनियरं सन्मोहनास्त्रंगळि
कामं कविन बिल्लोळेच्चु मेरेदं चापागम प्रौढियं ।। ३६ ।।

अंतु पुरमं पोक्करमनेगे विजयंगेय्दु करूमाडद मुंदण मणिमंटपदोळिक्किद मणिमयासनमनलंकरिसि रामलक्ष्मणरिर्पुदुं सुग्रीवं मधुपर्क पूर्वकमपूर्व वस्तु वाहनंगळनोलगिसि—

परिभव भारमं कळेदु बांधवपुत्र कलत्र मित्ररोळ्
नेरपि मदन्वयागत पद स्थितियं दयगेय्दे देव दे-
वर दयेगेन्न वंशमनितुं बेरसाळ्वेसगेय्दु बाळ्वेनि-
न्नरडनमोघमां नुडिदोडुन्नत राम कृतघ्ननल्लने ।।३७।।

अेंदु राघवनं पदपयोज सेवा परम लाभमं पडेदु—

---

पधार कर अपने अरुणिम चरणों की सेवा करने का सौभाग्य प्रदान कर हमें अनुग्रहीत करें।" ३५ —ऐसा निवेदन करके राम लक्ष्मण को आगे करके तोरण मालाओं से श्रृंगरित किष्किंधा में सुग्रीव ने प्रवेश किया। ऐसे में, मुक्ताफल की कांति के साथ स्पर्धा करने वाले देह सौंदर्य से सुशोभित राम को और इंद्रनील रत्न सदृशवर्ण के लिए प्रख्यात लक्ष्मण को जो स्त्रियां देख रही थीं उन पर कामदेव ने अपने इक्षुधनुष से सम्मोहनास्त्र मारकर अपनी शस्त्र विद्या की कुशलता (प्रौढ़ता) दिखायी। ३६ —इस तरह नगर में प्रविष्ट होकर, राजप्रासाद में प्रवेश कर, मजलेदार महल के सम्मुख तैयार किए हुए रत्न मंडप में रखे हुए मणिमय सिंहासन को राम लक्ष्मण ने अलंकृत किया तो सुग्रीव ने उन्हें मधुपर्क सम्मिलित अपूर्व वस्तु-वाहन प्रदान किया। "परिभव के भार को भूलाकर, पुत्र, मित्र, सगे संबंधियों में मुझे भी मिलाकर, मेरे वंश-पद को प्रदान करने का अनुग्रह किया। भगवन, मेरा वंश आपकी सेवा के लिए सुपुर्द है। इस अवसर पर एक बात न कहूँ तो मैं कृतघ्न माना जाऊँगा"। ३७ —ऐसा कहकर राघव के चरण कमलों का स्पर्श पाकर,

दिननायंगल्लदे प ※द्मिनिगळ् मोगमीयदंते निनगल्लदे स-
ज्जनवार्गेवेंदु रघुनं ※ दन कन्याव्रतदोळेन्न तनुजेयरिर्दर् ॥ ३८ ॥

ऎंदु शुभदिन मुहूर्तदोळुत्सवानक ध्वानमोंदवे—
वनधिगे कुलाचलं वा ※ हिनिगळनीवंते मीन नयनद निज नं
दनेयरनित्तं रघुनं ※ दनंगे राजीव मुखियरं सुग्रीवं ॥ ३९ ॥

अंतु पन्निर्वर् खेचर कन्नेयरं मदुवेनिंदु—
नसुसोंकि बालेयरं ※ बसदागिसि नेनेदु सीतेयं रामं दू-
रिसिदं चंद्रिकेयं से ※विसिद चकोरक्के बाळ्तेये तुहिण कणं ॥ ४० ॥

तनु लतेयुं मराळगतियुं पिक विस्वनमुं वियच्चरां-
गनेयर लोचनोत्पलमुमानन हेम सरोजमुं घन-
स्तनयुग कोकमुं बगेगे माडदे खेदमनेके माडगुं
जनक सुता वियोग विधुरंगे रघुप्रवरंगे रागमं ॥ ४१ ॥

जनक तनुजेय घनकच ※घनकुच घनजघन भारदिं बळ्कुव रा-
मन चित्तमितर वनिता※ जनदत्तडियेत्तरदिरविदेनच्चरिये ॥ ४२ ॥
अनुरागं खचरियरिं ※ जनियिसदिरे जनकराज सुतेयं रामं
नेनेदं रागोत्कंठं ※ नेनेवंतिरे चूत कलिकेयं कलकंठं ॥ ४३ ॥

---

"जिस तरह कमल सूर्य के अतिरिक्त और किसी को मुख नहीं दिखाते उसी तरह मेरी पुत्रियां अब तक इस उद्देश्य से कन्या-व्रत मनाती रहीं कि राम के अतिरिक्त अन्यों को मुख नहीं दिखायेंगी"। ३८ —ऐसा कहकर शुभ दिन, शुभ मुहुर्त में उत्सव का वाद्य घोष सुनाई देने लगा और सुग्रीव ने अपनी राजीवलोचनी पुत्रियों को राम को उसी तरह सौंपा जिस तरह कुल पर्वतों द्वारा छोटी नदियां समुद्र को सौंपी जाती हैं। ३९ —इस तरह रामने सुग्रीव की बारह कन्याओं से विवाह कर लिया। केवल स्पर्श मात्र से उन्हें अपने वश में कर लेने पर भी सीता का स्मरण कर राम दुःखी हुआ। जिस चकोर ने चांदनी का उपभोग किया हो वह हिमकण की परवाह करेगा ? । ४० खेचर वनिताओं की लता-सदृश देह, हँस-सी चाल, कोयल-सी ध्वनि, उत्पल पुष्प-सी आंखें, स्वर्ण-कमल सदृश मुख, घने कुच आदि, सीता को खोये हुए राम को दुःखी न बनाकर खुश कैसे कर सकते थे ? । ४१ सीता की घने केशराशि और कुचों के भार से हिलती हुई कटि का स्मरण हो आने पर अन्य युवतियों के प्रति रामका अलक्ष्य दिखानेमें आश्चर्य क्या है ? । ४२ खेचर वनिताओं का प्रेम व्यक्त

अंबर चरनुं तारा *बिंबाधर मधुर मधुवनास्वादिसि चि-
तं बेंडु नेगेये राग र* सांबुधियोळ् कूडे मूडि मुळुगुत्तिर्द ।। ४४ ।।
अनुरक्तं नल्लळनेळ * सि निर्दयालिंगनोन्मुखं सम्मरत सं
जनित सुखं दिनमुखद* ब्जिनिगेळसिद मधुकरंगे किंकरनादं ।। ४५ ।।

अंतिष्टविषय सुख सतुष्टनागि--

हिमकिरणं संध्यारा * गमनुळिवंतागळंते सुग्रीवं रा-
गमनुळिदु रघुजनुपका * रमनात्मीय प्रतिज्ञेयं स्मरियिसिदं ।। ४६ ।।
कृतमरियदनेंबी दु * श्श्रुति परेगुमसत्य दोषमक्कुं मुळिगुं
प्रतिपन्निकेंगिडे दशरथ * सुतना विभु मुळिदवंगे जवनुं मुळिगुं।। ४७ ।।

एंदु मनदोळे मंतणमिर्दु--

चंडबलं बलाच्युतर सीतेय सुद्धियनट्टि मुं प्रभा
मंडलनल्लिगंबिकेय सुद्दिगे साधित विश्वविद्यरं
तंडदिनट्टि गुप्तचररं केलरं तरिसंदु तानुमा
खंडल दिग्मुखं कतिपयानुचरं तळर्द वियच्चरं ।। ४८ ।।

---

होने पर भी राम ने सीता को उसी तरह स्मरण किया जिस तरह वसंतकाल के उत्साह-उल्लास से परिपूर्ण सुग्गा आम्र-पल्लवी का स्मरण करता है । ४३ जिस तरह आकाशगामी व्यक्ति नक्षत्रों में स्थित मधु के आस्वादन के लिए अपने मन को धीरे से उछाल देता है (मन ही मन संतुष्ट होता है) उसी तरह सीता के प्रति राम के मन में जो मोह था, उसी रागरसांबुधि में राम लीन हुआ । ४४ सीता में ही अनुरक्त होकर, उसे ही चाहकर, आलिंगन के लिए उद्युक्त-सा उससे जगे सुख से प्रात:काल के कमल को चाहने वाले भ्रमर का सेवक बना । ४५ —इस तरह इतने सारे विषयों को मन ही मन चिन्तित कर, संतुष्ट हुआ । जिस तरह चंद्र संध्या को त्याग देता है उसी तरह सुग्रीव ने निज सुख को त्यागकर, राम से प्राप्त उपकार और अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर लिया । ४६ मुझ पर उपकार न जानने की अपख्याति आ सकती है । उससे असत्य और दोष प्राप्त होता है । विवेक के बिगड़ने पर दाशरथी कुपित होता है । जो व्यक्ति उसके कोपका पात्र बनता है, उस पर यमराज भी कुपित होता है । ४७ —मनमें ऐसा सोचकर, पराक्रमी सुग्रीव ने प्रभामंडल को सर्वप्रथम राम-लक्ष्मण-सीता का समाचार देकर, सीता का पता लगाने के लिए बहुविद्या प्रवीण कपिध्वजियों के समूहों को अनेक दिशाओं में दौड़ाकर कुछ गुप्तचरों के साथ वह स्वयं पूर्व दिशा की ओर चल पड़ा । ४८

अंतु गदायुधा हलायुधरं बील्कॊंडु मनः पवनवेगदिं पोगुत्तुमिरे—

अनुकूल मारुतांदो ※लनदिं कैसन्नॆगॆय्ववोल् गिरिशिखरा-
वनियॊळ् मिळ्ळिसिदुदु के※ तन पल्लवमॊंदशोक पल्लव शोणं॥ ४९ ॥

नग सानु तलं मनुज ※ गंगोचरं कट्टि गुडियनिर्दपरारि-
ल्लिगॆ पोगि नोळ्पॆनॆंबी※ बगॆयिं सुग्रीवनॆय्दि वर्पवसरदॊळ् ॥ ५० ॥

वलिमुख खेतननं चकि※ त लोचनं रत्नजटि निजप्राण भया-
कुलचित्तं पौलस्त्यं ※ कॊललट्टिद तीक्ष्णपुरुषनॆंदीक्षिसिदं ॥ ५१ ॥

आगळातनं सुग्रीवनॆय्दॆ वंदु निनगिनिविरिदवस्थांतरमेकादुदॆंदु बॆसगॊंडॊडदं सविस्तरमरियॆ पेळॆ केळ्दु—

वानर चिह्नं तन्नभि ※ मानं निदत्तु पूण्कॆ संदत्तॆनगॆं-
देनॊसॆदनॊ दशवदनं ※ जानकियं लंकॆगुय्दनॆंदरिपलॊडं ॥ ५२ ॥

अंतु संतोषदंतनॆय्दि—

इडिदिरॆ सीताविरहद ※ कडुगळ्तलॆ दाशरथिय मानसदॊळदं
किडिसुव बगॆयिं रत्नद ※ सॊडरं तर्पंतॆ रत्नजटियं तंदं ॥ ५३ ॥

---

—इस तरह राम लक्ष्मण को नगर में छोड़कर, मनोवेग से प्रयाण कर रहा था कि, उसने देखा कि अनुकूल हवा के बहने से एक पर्वत शिखर में एक अशोक वृक्ष की डाली हिलकर मानो हाथ के इशारे से उसे बुला रही हो। ४९ यह पर्वत शिखर मनुष्यों के लिए अगोचर है। यहां घर बनाकर कौन रह रहा है? वहाँ जाकर देख लूँ। ऐसा सोचकर सुग्रीव जा रहा था। ५० इतने में सुग्रीव को आश्चर्य-चकित दृष्टि से देखते हुए प्राण-भय से रत्नजटी को इस बात की शंका हुई कि शायद रावण ने मुझे मार डालने के उद्देश्य से इसे यहाँ भेजा होगा। ५१ —सुग्रीव उसके पास पहुँचा और उसकी इस दशा का कारण पूछा। रत्नजटी ने अपनी सारी बातें सविस्तार बतायीं तो उसे सुनकर, सुग्रीव को इस बात का हर्ष हुआ कि अपनी इज्जत बच गयी और अपनी प्रतिज्ञा सफल हो गयी। लेकिन वह इस बात से दुःखी भी हुआ कि रावण ने अपने इस कृत्य से अपने अहित को आमंत्रित किया है। ५२ —इस तरह हर्ष-विषाद से भरा सुग्रीव किष्किधा लौटकर, राम, जिसका मन सीता के विरह के अंधकार में डूबा था, के सम्मुख रत्नजटी को वैसा ही उपस्थित किया जिस तरह रत्नदीप रखा जाता है। ५३ —ऐसा उपस्थित करने पर,

अंतु तंदु काणिसुवुदुं—

पिटिल तट घटित कर सं * पुटं हटन्मणिकिरीट मंजरियिंदं
जटिलितमॆनॆ पद पीठी * तटं नरेंद्रंगॆ रत्नजटि नतनादं ॥ ५४ ॥

अनंतरं जनार्दननीतनारॊनॆ सुग्रीवनिंतॆंदं—

अर्कजटिवॆसर खचर कु * लार्कन सुतनप्प रत्नजटि रणकेळी
कर्कशतात्मांबिकॆयन * वर्कॆतवदुय्दरॆंदु बिन्नविसिदपं ॥ ५५ ॥

ऎंबुदुमदं केळ्दु—

बिदि कण्णिट्टवनावनावनसुवं कालं कळल्चल् कडं-
गिदनावं यमपाशदॊळ् तॊडर्दनावं देवियं मुंदुगा-
णदॆ कळ्दुय्दवनॆंदु रत्नजटियं रोषग्रहावेश ग-
द्गद कंठ बॆसगॊंडनुत्तरलितारक्तेक्षणं लक्ष्मण ॥ ५६ ॥

अंतु बॆसगॊळ्वुदुं रत्नजटि कैगळं मुगिदु—

स्वैरदिनां पोगुत्तिरॆ * तारापथदॊळ् पळंचिदुदु किवियं हा-
हारवमुरियॆण्णॆयवोलु * दूरिसॆ बगॆबगॆयॊळॊगॆयॆ कारूण्य रसं ॥ ५७ ॥

कामांधं कळ्दुकॊंडुय्दपनिदुवॆ पदं तोर्पुदण्मुळ्ळवर् स-
ग्रामावष्टंभमं हा जनक जनक हा लक्ष्मणा लक्ष्मणा हा

---

राम, जिसके माथे पर रखे हुए हाथ धारण किए हुए मुकुट के समान चमक रहे थे, के चरणारविंदों में रत्नजटी ने अपना सिर रखकर नमस्कार किया। ५४ —राम के यह पूछने पर कि यह कौन है, सुग्रीव ने यूँ कहा— "यह अर्कजटी नामक खेचरवीर का पुत्र रत्नजटी है, प्रचंड साहसी है। इससे ही पता चला कि सीता माता को वे कपट से ले गये है।" ५५ —इस वात को सुनकर, लक्ष्मण की आँखें लाल हो गयीं। उसने अत्यंत कुपित होकर रत्नजटी से पूछा वह कौन है जिस पर विधि की दृष्टि पड़ी है? वह कौन है जिसके प्राण को ले जाने के लिए यम तैयार खड़ा है? वह कौन है जो यमपाश में फँसा हुआ है? कौन है वह जो सीता को चुराकर ले गया है? ५६ —ऐसा पूछने पर हाथ जोड़कर रत्नजटी ने बताया— "मैं आकाश मार्ग में, स्वेच्छागामी बन, जा रहा था कि मेरे कानो में हाहाकार सुनाई पड़ा। उस आर्तनाद भरी ध्वनि, जो मानो साक्षात् करुणा की मूर्ति थी, ने मेरे मन को विचलित कर दिया। ५७ यह कामांध मुझे इस मार्ग से हरण कर ले जा रहा है। कोई शूर साहसी युद्ध में अपना शौर्य दिखाकर मुझे छुड़ा ले। हाय

रामा रामायेनुत्तुं जनकजे बसिरं मोदि पुय्यल्चे केळ्दा
नामक्कानेय्दिदें रावणनोळिरिव तक्किकदमण्मणमेनुत्तुं ॥ ५८ ॥

अंतु मूदलिसि मुट्टेवर्पुदुं मदीय जनकनोळादनुबंधं कारण-मार्गेन्नोळिरियदे विद्याच्छेदनगेय्दु रावणं सीतेयं लंकेगुय्दनेंदु बिन्नविसे—

रावणनुय्दं सीता ❋ देवियनेने केळ्दु मनदोळुम्मळिसिदनि-
ल्ला वार्तेवेळ्दवंगे म ❋ हीवल्लभनित्तनातनभिवांचितमं ॥ ५९ ॥
मेरेदं सीतेय सुद्दिय ❋ नरिपिद खेचरननन्वयागत पददोळ्
निरिसि भुजबलद मेच्चिन ❋ नेरनं राघवन मै मेगिदु विस्मयमे॥ ६० ॥

अंतु रत्नजटिय सपत्नरं पोरमडिसि कळेदु देवोपनीतपुर-क्करसुमाडि किष्किंधपुरक्के बंदु—

नळ नीलांगद जांबवत्प्रमुख सेनानाथरूं मंत्रि मं-
डलमुं बंधुजनंगळुं बेरसु सुग्रीवं निजास्थानमं-
डलदोळ् किंकरभावादंदिरे मृगेंद्रोत्तुंग पीठंगळोळ्
बलनारायणरिर्दरप्रतिहतर् चंद्रार्कर्रिर्पदंदिं ॥ ६१ ॥

आ समयदोळ् सौमित्रि सुग्रीवन मोगमं नोडि—

---

जनक महाराज ! हाय लक्ष्मण ! हाय हाय राम ! कहकर सीता अपना पेट पीटती हुई आर्तनाद किया था। उसे सुनकर मैंने रावण को रोक लिया। ५८ इस प्रकार रोकने पर रावण ने मुझसे न भिड़कर मेरी विद्या का छेदन (हरण) कर सीता को लंका ले गया।" ऐसा निवेदन करने पर, रावण द्वारा सीता का हरण किए जाने का समाचार पाकर भी उसके लिए दुःखी न होकर महीवल्लभ राम ने सूचना देनेवाले को मनोवांछित फल दिये। ५९ सीता का समाचार देनेवाले खेचर के खोये हुए राज्य को उसे पुनः देकर, वंश परंपरा में उसे साहसी बने रहने का आशीर्वाद दिया। राम की महत्ता के लिए यह आश्चर्य की बात थोड़ी ही है ? । ६० —इस तरह रत्नजटी के शत्रुओं को बाहर निकालकर, उसे देवोपनीतपुर का राजा बनाकर, किष्किंधा में आकर, नल, नील, अंगद, जाँबव आदि सेनानायकों, मंत्रीमंडल के सदस्यों, बंधुजनों के साथ सुग्रीव अपने दरबार में राम के प्रति सेवा भाव से रह रहा था। उस दरबार के सिंहपीठों में बल नारायण (राम लक्ष्मण) आकाश के सूर्य चंद्र की भांति बैठे थे। ६१ —उस समय लक्ष्मण ने सुग्रीव का मुख देखकर कहा— "सीता माता की खबर पाकर भी मेरे भुजबल का

अरसिय सुद्दिगेळ्दुसिरदिर्पुदु पाळियॆ पारदॆन्न तो-
ळ्नॆरवलमं विरोधिबलमं तवॆ कॊल्वॆडॆगानॆ साल्वॆंति
शरनिधि ताय्मळल्वरॆगमानिसॆ बत्तदॆ लंकॆगॆत्तदिं-
तिरॆ सॆरगॆदनेनघटनो रणलंपटनो जनार्दनं ।। ६२ ।।

लंकॆयनॊक्कलिक्कुववॊलळ्कुरॆ लंकॆयनॊक्कलिक्कि कॊ-
ळ्वॆं कडुपिं त्रिकूटगिरियं दशकंठन कंठनाळमं
भोंकॆनलॆच्चु पाय्व बिसुनॆत्तर सेकदिनॆन्न तोळ ती-
नं कळॆवॆं विळंबिसिदॊडॆन्न नॆगळ्तॆगॆ बन्नमागदे ।। ६३ ।।

ऎंदु तरिसंदु लक्ष्मणं नुडियॆ--

किसुसंजॆवॊरॆद चद्रिकॆ * पसरिसिदपुदॆनिसि रामचंद्रं सभॆयॊळ्
पसरिसि नयनप्रभॆ रं * जिसॆ जांबूनदन वदनमं वीक्षिसिदं ।। ६४ ।।

अंतु नोडि--

जैनागम कोविदनं जां * बूनदनं मधुर निदननं बॆसगॊंडं
दानवन वंशमं लं * का नगरद तॆरननत्युदात्तं रघुजं ।। ६५ ।।

अंतु बॆसगॊळ्वुदुं मुकुळितांजलि पुटनागि--

विपुलमति सकल विद्या * निपुणं गणधर निरूपति क्रमदिं दै-
त्यपति प्रपंचमं श्रव * ण पथातिथिमाडलागळुद्यतनादं ।। ६६ ।।

---

उपयोग न कर इस तरह बैठा रहना उचित है ? शत्रुओं को जीतने के लिए मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ। ऐसे में मेरे वाणाघातों से समुद्र तल तक सूखे बिना रह सकता है ? । ६२ लंका के शासक को सेविका की भांति डरा-धमकाकर, जिस त्रिकूटगिरि में लंका बसी है, उसी को उखाड़ कर फेंक दूंगा। दशकंठ के कंठनाल को मरोड़कर, बहती हुई रक्तधारा के सेंक से मेरी भुजाओं की इच्छा को शांत कर दूंगा। देर करूँ तो मेरी शौर्योन्नति में कलंक लग सकता है" । ६३ —लक्ष्मण के ऐसा गरजने पर, संध्या समय फैली हुई चाँदनी की तरह सभा में उपस्थितों पर अपनी नयन प्रभा फेंककर वह जाँबव का मुख देखने लगा । ६४ —ऐसा देखकर, जाँबव, जो जैनागम परिणत एवं मधुर-वक्ता था, से रामने लंकाधीश की वंश परंपरा के बारे में पूछा । ६५ इसके उत्तर में जाँबव हाथ जोड़कर, अपनी कुशलमति से और गणधर की शैली में लंकेश्वर का वंश चरित्र इस तरह बताने लगा कि राम के कानों को श्रव्य लगे । ६६ उसके कहने का ढँग अमृतपान का स्वाद प्रदान करा

श्रवणक्कमर्दिन सरि सुरि ॠ ववोलागे वचोविलासवा सभेगत्यु-
त्सवमं कुडे नेर्पडे बिॠ न्नविसिदनावरिसॆ दंतरूचि तत्सभेयं ।। ६७ ।।

अदेंतेंदोडे देव जगत्त्रियनायनप्प पुरूपरमेश्वरन धर्मं तीर्थ प्रवर्तनानंतरं—

पलकालं पोपुदुमा ॠ कुलदोळ् केयूरदंतॆ रंजिसे दोर्मं-
डलदोळ् तळेदं भूमं ॠ डलमं त्रिदशंजयं जयश्री रमणं ।। ६८ ।।
कडुनीरॆ कळाविभवं ॠ वडेदा भूभुजनोळग्र महिषी पदमं
पडेदु गुणाब्धिदगे पेर्च ॠ पडेदिळेयोळ् चंद्रलेखवेसरं पडेदळ् ।। ६९ ।।
जितशत्रु विजयसागर ॠ सुतर्कळ् चंद्रलेखे चंद्रादित्य
प्रतिमरनेंद्रियवोल ॠ प्रतिम प्रभरं प्रसिद्धरं वधु पडेदळ् ।। ७० ।।

आ सुतर्गनुक्रमदिं पौदनपुरवरेश्वरनप्प—

भुजसखना नंद मही ॠ भुजंगमंभोजमालॆगं पुट्टिदवर्
विजये सुमंगळेयेंबर् ॠ विजितामर कन्येयर्कळरसियरादर् ।। ७१ ।।

आ त्रिदशंजय महीभुजं पलकालमरसुगेय्दु विषयवैराग्य परनागि—

निजपुत्रं जितशत्रुगप्रतिममं साम्राज्यमं कोट्टु भू-
भुज रत्नं त्रिदशंजयं तळेदिळापूज्यं तपोराज्यमं

---

रहा था। उपस्थित सभाजनों में उत्साह जगाता हुआ अपनी दंत प्रभा फैलाकर, राम से निवेदन किया। ६७ —सर्वप्रथम जगतनाथ जिनेश के जन्म लेने के पश्चात, अनेक वर्षो के पश्चात उस कुल में त्रिदंशजय पैदा हुआ। उसने अपने भुजवल से भूमंडल को जीतकर शासन कर रहा था। ६८ उसकी चंद्रलेखा नाम की, सुन्दर एवं गुणवती पटरानी भी जिसने समुद्र में ज्वार लाती-सी दोनों कुलों की उन्नति कर अपने नाम को अन्वर्थ बनाया। ६९ उन्हें जिन्हें जितशत्रु, विजयसागर नामक दो पुत्र हुए। ये पुत्र पूर्व दिशा को प्राप्त सूर्य-चंद्र की भांति प्रसिद्ध हुए। ७० —इन पुत्रों को पौदनपुर के राजा ने अनुक्रम में, अपनी राज्ञी अंभोजमाला से जन्मी विजय और सुमंगला नामक कन्याओं से विवाह करवाया। ७१ —उस त्रिदंशजय ने लंबी अवधि तक राज्य भार (शासन) करने के पश्चात वैराग्य स्वीकार कर, पुत्र जितशत्रु को साम्राज्य सौंपकर, कुबेरगिरि में तपस्या में लीन रहकर, अपने कर्मो से मुक्त होकर मुक्ति मार्ग को प्राप्त किया। ७२ इधर जितशत्रु

निजकर्मारिगळं कुबेरगिरियोळ् बेंकोंडु मुक्त्यंगना
भुज पाशक्कोळगागि पीर्दनोलवि तद्वक्त्र पीयूषमं ।। ७२ ।।

मत्तित्तल् जितशत्रुवेंब पेसराय्तन्वर्थमेंबन्नमु-
द्वृत्तारातिगळं भयंगोळिसि कप्पंगोंडु कैयांतव-
गेत्ति बेळपुदनित्तु आण्दनें भुजोत्खातासि धारांबुविं
दित्त श्रीवधुगं जयप्रमदेगं वार्मानुषी जन्ममं ।। ७३ ।।

विजिगीषुवेंनिसिदा भू * भुज वल्लभें मेरूमेखला लक्ष्मि मरू-
त्कुजमं पडेदुदी पेळेंने * विजयांबिके पडेदळजित भट्टारकरं ।। ७४ ।।

आ वनितानुजे रूप क * ला विभव ख्याते विजयसागरन महा-
देवि सुमंगले पेत्तळि * ळावल्लभनप्प सगरचक्रेश्वरनं ।। ७५ ।।

जिनपतियनोर्वळोर्वळ् * जनपतियं षडेदळेंदोडार् दोरे विजयां-
गनेगे सुमंगलेगे वृथा * स्तनभरमं पोत्तु कुसिव राजांगनेयर् ।। ७६ ।।

चतुरूदधि मेखलालं * कृत वसुधेयनाळ्दु पडेदु सुतरिन्नरना
जितशत्रु विजयसागर * रतक्यं भुजवीर्यररसुगेय्युत्तिर्दर् ।। ७७ ।।

आ कालदोळजितनाथ तीर्थावतारमखिल पुण्य दशावतार-मादुदंदु विजयार्धद रथनूपुरचक्रवाळपुरद पूर्णघन वियच्चरंगे तोयदवाहननेंब तनूजनादनत्तलुत्तर श्रेणियोळंबरतिलकमेंबपुरद

---

अपने नाम के अनुरूप शत्रुओं पर विजय पाकर उनसे कर लेकर याचक को वांछित वस्तुएं देकर, यश पाकर ऐसा सुशोभित हुआ कि उसका राज्य राज्यलक्ष्मी और जयलक्ष्मी दोनों का निवासस्थान वन गया। ७३ उसकी पटरानी विजयांविका ने अजित भट्टारक नामक पुत्रको उसी तरह जन्म दिया जिस तरह मेरू पर्वत देव वृक्ष को। ७४ उस विजयांविका की वहन रूप-कला-विभव के लिए प्रसिद्ध सुमंगला ने विजयसागर-से चक्रवर्ती सगर राजा को जन्म दिया। ७५ एक ने जिनपति को दूसरी ने जनपति (राजा) को जन्म दिया। ऐसे में विजयांविका और सुमंगला के समान स्त्रियां इस संसार में और कौन है ? । ७६ मेखलाकार में चार समुद्रों से आवृत्त भूमिपर जितशत्रु और विजयसागर अपने पुत्रों के साथ अपने भुजवल से शासन कर रहे थे। ७७ —उस समय अजितनाथ तीर्थंकरजी, जो अखिल पुण्य भंडार थे, का जन्म हुआ। रथनूपुर चक्रवालपुर के राजा पूर्णघन नामक खेचर को तोयदवाहन नामक पुत्र हुआ। उधर उत्तर भाग में अंवरतिलक नगर

सुलोचनंगे सहस्रलोचनर्नि किरियळुत्पलनेत्रेयेंब तनुजेयादळा- कैयं पूर्णघनं तोयदवाहनंगे वेडियट्टिदोडे चक्रवर्तियप्प सगरं- गग्रमहिषियक्कुमेंदु नैमित्तिकादेशदिं कुडलोल्लदिरे कड्डुमुळिदु पूर्णघनं लयसमयद घनाघनदतेत्तिबंदंबरतिलकमं मुत्ते पुत्रनं पुत्रियुमं विद्येयिं पतत्रिमाडि पोरमडिसि पोरमट्टि कादि सुलोचननमरी विलोचनातिथियप्पुदुं पूर्णघननंबरतिळकमं पोक्कु कन्नेयनरसि काणदे तन्न पोळलगे पोदनित्तला सहस्रलोचननुमुत्पलनेत्रेयुं शरभाटवियं पोक्कु वेत्रावती तीरदोळिर्दरन्नेगं सगरनं दुष्टाश्वमेळेदुतंदा पळुविनोळिळिपियोगे तोळलुत्तुं बंदु--

मृगराजंगगिदोडुवानेगड्डपं मत्तद्विपंगेत्तु का-
र्मुगिलोळ् पोर्व गजंगळं शरभमं बेंकोळ्व भेरूंडव-
क्किगळं नोडिद नोटदासरूगिवन्नं कंडनासन्नदोळ्
सगरं कन्नेयुमं तदग्रजनुम वेत्रावती तीरदोळ् ।। ७८ ।।

नवशशिलेखेयुं नव दिनेशनुमिल्लिगे राहुगळ्कि बं-
दुवों दिटवेंदु संदेगदिनिर्वरूमं नडेनोळ्प भूभुज

---

के राजा सुलोचन को सहस्रलोचन और उत्पलनेत्रा नामक पुत्र और पुत्री को जन्म दिया। पूर्णघन ने कहला भेजा कि उत्पलनेत्रा की शादी अपने बेटे के साथ करे। सुलोचन को यह स्वीकार नहीं था क्योंकि नैमित्तिक जी ने बताया था कि उत्पलनेत्रा सगर चक्रवर्ती की पटरानी बननेवाली है। इस अस्वीकार से अत्यंत कुपित होकर पूर्णघन ने प्रलयकाल के घनघनाते हुए मेघवृंद सदृश अपनी सेना के साथ अंबरतिलक को घेरा। इसे देखकर सुलोचन ने अपने विद्याबल से अपने बच्चों (सहस्रलोचन और उत्पलनेत्रा) को पक्षी बनाकर उड़ा दिया और स्वयं शत्रु से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। पूर्णघन ने अंबर- तिलक में कन्या की खोज की लेकिन उसे कहीं न पाकर वह अपने नगर लौटा। सुलोचन के बच्चे पक्षियों के रूप में शरभारण्य में प्रवेश कर, वेत्रावती नदी के तट पर रह रहे थे। उस समय कर्म-धर्म-संयोग-सा, एक दुष्ट घोड़े ने सगर को वहां ला छोड़ा। सगर उस जंगल में चटपटाने लगा। सिंह से डरकर भागते हुए हाथियों के समूह के समान, काले बादलों में बने हाथी, शरभ (प्राणी विशेष) को वास्तविक समझकर उनका पीछा करते हुए पक्षी रूपी सहस्रलोचन और उत्पलनेत्रा को राजा सगर ने वेत्रावती नदी तट पर देखा। ७८ उन दोनों को देखकर राजा सगर को संदेह हुआ कि कहीं राहू से डरकर भागते हुए नया चाँद और

प्रवरन चित्तमं सॆरॆगॆ तंदुवु सोलिप तम्म लीलॆयिं
कुवलयमालॆयं नगुववालॆय लोलविलोचनांशुगळ् ।। ७९ ।।
अलॆयदॆलर् दिनेश किरणं पुगदॆंबिनॆगं करंगि क-
ळ्तलिसुव काननांतरदॊळंगज जंगम दीपमालॆवोल्
जलजलिसुत्तुमिर्प खचरेश्वर कन्यॆयनागळॆय्दिदं
तॊलगदॆ दिट्टि नट्टुनिलॆ कण्बॊळपिंदमर्दप्पिकॊळ्ववोल्।। ८० ।।
किडिसिदनेकॆ तावरॆयनी मॊगमं पडॆदेकॆ नॆय्दिलं
किडिसिदनी तॆरंबॊळॆव कण्मलरं पडॆदेकॆ तुंबियं
किडिसिदनी विनील कुटिलालकमं पडॆदेकॆ पद्मजं
किडिसिदनीकॆयं पडॆदु जंगम कल्पलता विलासमं ।। ८१ ।।

ऎंदु नीडुं भाविसि नोडुत्तुमिरॆ--
ऎळलतॆयनुळिदु तावरॆ* गॆळसुव मरिदुंबियंददिदॆरगिदुदा-
चळनयनॆय तनुलतॆयिं*तळर्दरसन कण् कुमारमुख सरसिजदॊळ् ।।८२।।

अंतु नोडि--
बालॆ शिरीष मालॆयवॊलीकॆ करं सुकुमारॆ नीं करं
बालनॆ काननं मनुज खेचर गोचरमल्तु ऋक्ष शा-

---

नया सूर्य तो नहीं हैं ? इस तरह उन्हें देखनेवाले राजा के मन को उस कुमारी के मनोहर नेत्रों ने पूर्णतः आकर्षित किया । ७९ ऐसे घने जंगल में जहाँ हवा चल (बह) नहीं सकती, सूर्य-किरणें प्रवेश नहीं कर सकतीं, कामचक्रेश्वर की चलती फिरती दीपमाला सदृश नेत्रवाली खेचर कन्या के पास पहुँचकर, अपलक दृष्टि से निहारते हुए सगर ने मानो आंखों से ही आलिंगन कर लिया हो । ८० वह सोचने लगा इस मुख के रहते हुए कमल का, इन आंखों के रहते हुए कुवलयों का, इन घुंघराले बालों के रहते हुए भ्रमरों का निर्माण कर ब्रह्म स्वयं क्यों अपहास्य का पात्र बना ? और उत्पलनेत्रा को देखकर आश्चर्यचकित हुआ । ८१ —इस तरह देख रहा था कि—कोमल लता को तजकर कमल-मकरंद को चाहने वाले शिशु भ्रमर-सा देहरूपी लता को छोड़कर राजा की दृष्टि उत्पलनेत्रा के मुख-कमल पर टिक गयी । ८२ —इस तरह देखकर—सहस्रलोचन से बोला: "यह युवती गिरीषमाला के समान कोमल है । तू छोटा बालक है । यह कानन इतना भयानक है कि मनुष्य और खेचर आँख उठाकर भी नहीं देख सकते । फिर तुम लोगों का यहाँ आने का

दूल मदेभ सिंह शरभाकुलमिल्लिगेवर्प दुष्कृतो-
न्मीलनमावकारणदिनादुददं तिळिपेंदना नृपं ॥ ८३ ॥

अंतु बेसगोळ्वुदुं सहस्रलोचनं निजवृत्तांतमं तिळिपि—
ई निन्नाकृति निन्न दुंदुभिगभीर ध्वानमी निन्न ने-
त्रानंदोदय भद्रलक्षण गणं पेळ्दप्पुवीतं धरि-
त्रीनाथं पेरनल्लनेंबिनितनी भीमाटवी दुर्गम
स्थानंबोक्कु तोळल्वुदं बेससिदं लोकैक रक्षामणी ॥ ८४ ॥

अेंबुदुमातनयोध्यापतियें सगरनेंवेनेंदु तन्न बंद तेरननरियॆ तिळिपॆ सहस्रलोचनं विस्मय स्तिमित लोचननागि—

पगॆ तीर्वुदु बगॆ तीर्वुदु *सगरनना श्रयिसिमेंदु पितॆ बेससिदन-
च्चिगमाय्तु निमगमेंदु* ब्बेगमुब्बरमागॆ खचरतनयं नुडिदं ॥ ८५ ॥

आ नुडियनवधारिसि—
खेदं माण्गॆ शुभोदयं समनिकुं संसारिगळ्गिंतिदे-
नादं चोद्यमे नच्चि निम्म जनकं पेळ्दंतुदं माळ्पेना-
ह्लादंबेत्तिरिमेंदु संवरिसि मुन्नं तन्ननोट्टैसि बं-
दा दुष्टाखद पच्चेगोंडु नडेदुं पिंतिक्कि कांतारमं ॥ ८६ ॥

कारण क्या है ?" ८३ —सहस्रलोचन द्वारा सगर को अपनी सारी बातें बताने के पश्चात—लोकैकरक्षामणि सहस्रलोचन ने कहा: "आपकी यह देहाकृति, दुंदुभि-सी आपकी गंभीरध्वनि, आंखों को आनंद प्रदान करनेवाले सद्‌लक्षण आदि स्पष्ट बताते हैं कि आप राजा हैं, धरित्रीनाथ हैं। फिर इस दुर्गम महान जंगल में आकर भटकने का उद्देश्य (कारण) क्या है ?" ८४ —इस प्रश्न के उत्तर में उसने बताया कि वह अयोध्यापति सगर है। उसने अपने आने का कारण बताया तो सहस्रलोचन ने आश्चर्यचकित होकर, बड़े उद्वेग से बताया—"हमारे पिता जी ने बताया था कि सगर के आश्रम से वांछित काम बनेगा और शत्रुता भी मिटेगी, उसके शरण जाओ लेकिन हम देख रहे हैं कि यहाँ आप पर ही विपत्ति आयी है।" ८५ —इस बात को सुनकर—"संसारियों का दुःख मिटकर, शुभ प्राप्त होना सामान्य बात है। उसमें आश्चर्य नहीं है। तुम्हारे पिताजी ने जो कुछ कहा है उसपर विश्वास करो" कहकर, उन्हें सांत्वना देकर, उसे उस जंगल में लाये हुए दुष्ट घोड़े का पीछा करता हुआ जंगल छोड़कर सगर आगे बढ़ा। ८६ —ऐसा आ रहा

अंतु बरुतिर्पिनं--

करॆदंतादुदु हस्त्य * श्वरथ पदातिगळ कळकळं धरॆनिंदा-
धरणीशनिर्द दॆसॆयं * निरीक्षिपंतादुदॊगॆद धूळीजालं ॥ ८७ ॥

अंतु निज चतुर्बलं बंदु कूडलॊडं विजयवारण मणिशारिकॆ-
यॊळ् सहस्रलोचननुमुत्पलनेत्रॆयुमुभय पार्श्वमनळंकरिसिरॆ--

पुरवनिताजनं कुडुव पूविन मालॆयुमं पुरांगना
तरळ कटाक्ष मालॆयुमनांतु दुकूल पटी पताकॆयिं
मरकत रत्नतोरणदिनॊप्पुवुदं पुगुतंदनुत्सवा
करमनयोध्यॆयं दिविज नायकनंतॆ धराधिनायकं ॥ ८८ ॥

अंतापुरमं पॊक्कुत्पलनेत्रॆयं मदुवॆनिंदु--

निजवक्षदॊळा वधुवं * भुजदॊळ् भूवधुवनिरिसि षट्खंड मही
भुज पूज्यनमल कीर्ति * ध्वजमं दिग्दंति दंतदॊळ् तॆत्तिसिदं ॥ ८९ ॥

परचक्र कालचक्रं * निरस्त दिनकर सहस्रकर चक्रं भा-
सुर चक्ररत्नमॊगॆदुदु * धरणीवल्लभन शस्त्रशालोदरदॊळ् ॥ ९० ॥

बलवारुं नवनिधियुं * पलवुं चिह्नंगळुं चतुर्दश रत्ना-
वलियुं जनियिसॆ सगरं * नॆलनं षट्खंड भरतमं साधिसिदं ॥ ९१ ॥

---

था कि--हाथी-घोड़ा और पदाति सेना का कलकल निनाद मानो राजा को बुला रहा हो और उस प्रदेश, जहाँ वह खड़ा था, की धूल का जाल ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह उसी की प्रतीक्षा कर रहा हो। ८७ —इस तरह सगर की सेना उससे आ मिलने पर, सहस्रलोचन और उत्पलनेत्रा दोनों सेना के दोनों पार्श्व में सुशोभित हुए। --पुरस्त्रियों द्वारा दी जाने वाली पुष्पमालाओं और स्त्रियों की कटाक्षमालाओं को स्वीकार करता हुआ सगर जिसके पीतांबर का आंचल बहती हवा के कारण, तोरण-सा लहरा रहा था, मरकत रत्नाभरणों से सुशोभित कांता समूह को देखता हुआ (सगर) अयोध्या में उसी तरह प्रविष्ट हुआ मानो अमरावती में प्रविष्ट होता हुआ देवेंद्र हो। ८८ —पुर प्रवेश करके उत्पलनेत्रा से विवाह कर--अपने हृदय में उस वधु को, भुजा में भूवधु को धारणकर, षड्खंड भूमि को अपनी आज्ञा के अंतर्गत लेकर अपनी कीर्ति ध्वजा को दिग्गजों की दाढ़ों में गाड़ दिया। ८९ शत्रु राजाओं को पराजित किया हुआ, कालस्वरूप चक्र, सूर्य का सहस्रधार चक्र जो चक्रों में रत्न तुल्य था, सगर की आयुधशाला में जन्मा। ९० षड्बलों, नौनिधियों, अनेक

अंतु सिद्धदिग्विजयं विद्याधरलोकमं तनगेकुडे सहस्रलोचनं निज जनकनं कोंदवनं कोंदल्लदे माणेनेंदसंख्यात बल समेतं बंदु रथनूपुरचक्रवाळपुरमं मूवळसागि मुत्ते सहस्रलोचनं समरसाध्यनल्लनेंदु तरिसंदु पूर्णघनं निजतनूजनप्प तोयदवाहननं विद्येयिंदे हंसनं माडि कळिपि महायुद्धमेय्दु कळियें सहस्त्रलोचनं तोयद वाहनन बलियं गळेवळिय पाविनंते तगुळ्त्तुं बंदु—

अट्टुवन मुळिसुमोड्डुव * निट्टळमेनिसिर्द भयमुमोमों दलोळ् पि-
मेट्टिदुवु बगेयोळच्चरि * पुट्टविनं समवसरणमं मुट्टलोडं ॥ ९२ ॥

अंतपगत कलुषरिर्वरूं भगवदजितभट्टारकर समवसरण भूमियं पोक्कु वस्तुस्तव रूपस्तव गुणस्तवानंतरं मानव सभासदनागिर्द सगरचक्रवर्तिय समीपवर्तिगळागे गणधर मुखकमल दत्तलोचनं सहस्रलोचनं—

श्रेयोनिधि मत्पितृगं * तोयदवाहनन पितृगमी मुळिसी ज-
न्मायत्तमो मेण् पूर्वभ * वायत्तमो नेरेये बेससिमेमगा तेरनं ॥ ९३ ॥

अेने गणधराचार्यरितेंदु बेससिदरी भरतार्यखंडद षडर्तुकमेंब पुरद परदं भावननेंबनातं हरिदासनेंब तन्न मगंगे नाल्कु कोटि

---

शुभचिह्नों, चौदह रत्नों के उत्पन्न होने पर सगर ने समस्त भूमंडल को जीत लिया। ९१ —इस तरह दिग्विजय से विद्याधर लोक भी उसके वश हुआ। अब सहस्रलोचन ने, इस विचार से कि जिसने उसके पिता को मारा है उसे मारे बिना चुप रह नहीं सकता, असंख्य सेनाबल के साथ रथनूपुर चक्रवालपुर को तीन घेरे में घेर लिया। पूर्णघन ने यह सोचकर कि इसे युद्ध में पराजित करना असभव कार्य है, अपने पुत्र तोयदवाहन को विद्या से हँस बनाकर युद्ध भूमि में भेज दिया। वह वहां युद्ध में मारा गया। सहस्रलोचन ने सांप की भांति हँसका पीछा किया। —पीछा करनेवाले का क्रोध और भागनेवाले का भय दोनों एक साथ अचानक ठिठक जाता-सा, आश्चर्यचकित होकर, दोनों समव-सरण भूमि में पहुँच गये। ९२ —उस पुण्य भूमि में पहुंचने पर दोनों के पाप दूर हुए और वे अजित भट्टारक के समवसरण प्रदेश में वस्तुस्तव, रूपस्तव, गुणस्तव गाकर, वहां के सभासद सगर चक्रवर्ती के पास खड़े हुए। पुण्यात्मा सहस्रलोचन ने अजितभट्टारक से पूछा— "भगवन, कृपया बतावें कि मेरे पिता और पूर्णघन के बीच उत्पन्न द्वेष इस जन्म का है या पूर्व-जन्म का ?" ९३ —इस प्रश्न के उत्तर स्वरूप गणधराचार्य जी ने

कसवरमं कोट्टु परदेशक्के परदुवोपुदुं हरिदास नाधनमं किडिसि निजभवनदिं राजभवनक्के कन्नमं समदु तदुपार्जनमे जीवितमागिर्दतन्नेगं कैलवुकालदिनातन तंदेयप्प भावनननून धनमं पडेदु रात्रिसमयदोळ् मनेगे बंदु मगन वार्तेयं केळ्दु मगुळ्चि तरलेंदु कन्नमं पुगुवुदुमा समयदोळ् हरिदासं तन्नं कोललरसनट्टिद तीक्ष्णपुरुषं बंदनेंदु कय्दुगेय्दु नम्मोळिळिदु सत्तु परस्पर विरोधिगळप्प निर्यग्जातिगळागि तम्मोळोरोर्वरं कोंदु तिदु दुःखपरंपरेयनेय्दि पेरतोंदु जन्मदोळ् पूर्वविदेहद पुंडरीकिणीपुरदोळुत्तरनुमनुत्तरनुमेंब सहोहररगि तपंगेय्दु शतारकल्पदोळ् पुट्टि बंदीगळभावननुं पूर्णघननादं हरिदासनुं सुलोचननादनंदिन विरोधं कारणमागे सुलोचनं पूर्णघनन कैयोळ् सत्तनेंदितु तिळियै पेळ्दु—

पोल मुळिसेंबुदा मुळिसु पुट्टिद पोळ्तरोळावनादोडं ।
पोलेयने पापहेतु मुळिसल्लदे पेळ् पेरतुंटे कोपदिं ॥

सविस्तार बताया— "इस आर्यावर्त के षडर्तुक नामक नगर में भावन नामक एक व्यापारी था। अपने बेटे हरिदास को चार करोड सुवर्ण नाण्य देकर वह व्यापार के लिए विदेश गया। बेटे ने उस ऐश्वर्य को गँवाकर (बर्बाद करके), अपने घर और राजमहल के बीच भूगर्भ-मार्ग (सुरंगमार्ग) बनाकर चोरी करता रहा। कुछ समय के बाद अतुल धन कमाकर भावन रात को घर लौटा तो बेटे के बारे में पता चला। उसे बुरे मार्ग से हटाने के उद्देश्य से सुरंगमार्ग में प्रवेश किया। हरिदास ने यह सोचकर कि राजा ने ही उसे मारने के उद्देश्य से किसीको भेजा है, पिता पर ही आक्रमण किया। परस्पर लड़कर दोनों मर गये और हर जन्म में शत्रु बनकर जन्में। इसी तरह अनेक जन्मों में विभिन्न प्राणी-जाति में जन्म लेकर, पुनः पुनः परस्पर लड़कर, मारकर दुःख परंपरा का अनुभव करते रहे। तत्पश्चात् एक जन्म में पूर्वविदेह के पुंडरीकिणीपुर में उत्तर और अनुत्तर नाम से, सहोदर के रूप में, जन्म लेकर, तपस्या करके तत्पश्चात् इस कल्पसें भावन पूर्णघन के रूप में और हरिदास सुलोचन के रूप में पैदा हुए। पूर्वजन्म की शत्रुता के कारण ही सुलोचन पूर्णघन के हाथों मारा गया।— कोप पाप है; जिस समय कोप उत्पन्न होता है तब कोई भी हो पापी ही हो जाता है। पाप का कारण कोप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कोप से खून होता है और खून ही पातक है। कोप के वश में होकर भी पाप न करना पुण्य है। अतः तुम दोनों पाप के लिए कारणीभूत विरोध को त्याग दो। ९४ —इस तरह उपदेश देने के पश्चात्,—

कोले दोरेकोळ्गुमा कोलेये पातकमेंबुदु पुण्यमेंबुदा ।
कोले पोले पोर्दिदपिखे नीमदरिं तोरेयिं विरोधमं ।।९४।।

अेंदु निळिपे तदनंतरं—

ओलवेमगिनितेके सह- * स्रलोचननोळादुदेंदु बेसगोंडं च- ।।
क्रिललामं सगरं भव * जलनिधितारकरनजित भट्टारकरं ।।९५।।

अंतु बेसगोळ्वुदुमशेष भाषात्मकमप्प दिव्यभाषेयोळिनेंदु बेससिदरी भरतविषयद पद्मपुरदोळारंभिकनेंबनोर्व पार्वनातंगे बलि शिखिगळेंविर्वरंतेवासिगळादखर् विद्यामत्सरमे तमगे वैर कारणमागे वर्तिसित्तिर्दु मत्तोंदु देवसं धेनुविक्रयनिमित्तमोरोर्वर-निरिदु सत्तु—

कलुषमति शबरनादं *बलि शिखियुं वृषभनागि शवरं तन्नं ।
कोले मूषकनादं कळि * दु लुब्धकं बद्धरोषदिं बेक्कादं ।।९६।।

अंतु परस्परोपघात परिणनिर्यि—

अनुभविसि पलवु कालम*ननंत भवदोळ् दुरंत दुष्कृत फलमं ।।
जिनदेव दितगादर् * तनूजखरोमे वारणासी पुरदोळ् ।।९७।।

अनंतरं व्यंनरगनियोळ् सुरूपसुंदरवेसरं पडेदल्लिं बंदु सोमपुरदोळ् कुलं धर पुष्पभूतिगळेंबरागि जनिमिसि जायानिमित्तं

संसार सागर के प्रश्नों का उत्तर देने की क्षमता रखनेवाले अजितभट्टारक से सगर के यह पूछने पर कि उसे सहस्रलोचन के प्रति इतनी आत्मीयता क्यों जगी । ९५ —समस्त भाषाओं के समायी हुई दिव्यभाषा में उन्होंने कहा— "इस भरतभूमि के पद्मपुर में आरंभिक नामक एक ब्राह्मण था । उसके बलि, शिखि नामक दो शिष्य थे । विद्या में परस्पर ऊँच-नीच के भाव के कारण (परस्पर) शत्रु बन बैठे थे । एक दिन एक गाय को बेचने के विषय को लेकर दोनों लड़-भिड़कर मर गये ।— दुष्टमति बलि शबर बना और शिखि बैल बना । शबर ने बैल को मारा तो दूसरे जन्म में शिखि चूहा बना और शबर बिल्ली के रूप में पैदा हुआ । ९६ —इस तरह परस्पर एक दूसरे को मारने के उद्देश्य से— बहुत समय तक अनेक जन्म लेकर अपने पाप कर्मों के फल का उपभोग करते रहने के पश्चात् वाराणसीपुर के जिनदेव के बच्चों के रूप में पैदा हुए । ९७ उसके बाद पिशाच जन्ममें, सुरूप, सुन्दर नाम पाकर, वहाँ से आकर, सोमपुर में कुलंधर और पुष्पभूति के नाम से जन्म लेकर पत्नी निमित्त परस्पर लड़ने

वैर वैरस्य मनस्करागि सलुत्तमोर्वे पुण्यवशदिनगंण्य पुण्यधनरं तपोधनरं कंडुपशांन स्वांतरागि तोरेदु सत्तु सनत्कुमारकल्पदुपपात कल्पदोळ् पुट्टि नाकलोक सुखमननुभविसि बंदु धातकी षंडदपरविदेहद विजयावतीविषयद विजयपुरदोळ् ओडवुट्टिद क्रूरधरनुममर-धरनुमेंबरादरा पुरमनाळ्व सहस्रशीर्षनेंबनोंदु दिवसमानेवेंटेगडवियं पोक्कु परस्परोपद्रवकारिगळप्प क्रूरमृगंगळुपशमभावदिरे कंडु कौतुकंबट्टु नोळलुत्तुमल्लि विनमंधर केवलिगळं कंडु तच्चरण समक्षदोळ् दीक्षेयं कोंडु मोक्षक्के वोदनित्तला क्रूरधरनुममरधरनुमा केवलिगळ पादपार्श्वदोळ् तपंगेय्दु शरीरमं तोरेदु शतारकल्पदोळनल्प सुखमननुभविसि बंदा बलियुं शिखियुं सहस्रलोचननुं तोयदवाहननुमादरेंदु बेससि—

परिषज्जन हृत्कैरव ※मरल्विनं दिव्यवचन परिपूर्ण सुधा- ।।
कर रूचि पसरिसे मत्तं ※ नरेश्वरंगजित तीर्थकरर्रिनेंदर् ।।९८।।

अंदिनारंभिकं ऋषियर्गाहार दानमं कोट्टु भोगभूमियोळ् पुट्टि बळियं दिवक्के संदु दिव्यसुखमननुभविसि बंदु धातकीषंडदपरविदेहद विजयावतीविषयदोळ चक्रपुरमनाळ्व हरिवर्मगं गांधारिगं

लगे। तत्पश्चात् पुण्यवशात, तपस्वियों के दर्शन के कारण अपने पापों से मुक्त होकर, फिर मरकर सनत्कुमार कल्प के उपरांत कल्प में पैदा होकर, देवलोक का सुख पाकर, उत्तर विदेह के विजयावनीपुर में क्रूरधर, अमरधर नामक सहोदर के रूप में जन्में। उस पुर का सहस्रशीर्ष नामक राजा हाथी के शिकार के लिए जंगल में प्रवेश किया। वहाँ उपद्रवकारी क्रूरमृगों को शांत स्वभाव में रहते हुए देखकर आश्चर्यचकित होकर, वहाँ घूमते हुए विनयंधर केवली जी को देखकर (मिलकर) उनके चरणों में दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त हुआ। उधर वह क्रूरधर और अमरधर ने भी उस केवली के चरणों में तपस्या करके, शरीर त्यागकर शतारकल्प में अल्प-सुख का अनुभव कर वे बलि और शिखि दोनों क्रमशः सहस्रलोचन और तोयदवाहन के रूप में अव पैदा हुए हैं। —अपनी दिव्य अमृतवाणी से श्रोताओं के हृदयकमल को प्रफुल्लित करने के पश्चात् तीर्थंकर जी सगर से बोले—। ९८ —"तब के आरंभिक ने ऋषियों को आहार-दान देकर, भोगभूमि में जन्म लेकर, तत्पश्चात् देवलोक पहुँचकर, दिव्य सुख का उपभोग कर उत्तर विदेह के विजयावती देश के चक्रपुर के शासक हरिवर्म की पत्नी गांधारी के गर्भ से श्रुतकीर्ति के नाम से जन्म लेकर, तपस्या करके,

श्रुतकीर्तिवेसर सुतनागि तपंगेय्दु कळिदु स्वर्गदोळ् पुट्टि वंदु पूर्वविदेहद रत्न संचयपुरनाळ्वभयघोषंगं चंद्रामणिगं पयोवलनेंब पुत्रनागि पवित्र चारित्र नपगतप्राणं प्राणतप्राप्तनागि मगुळे बंदु पृथ्वीधरपुरमनाळ्व जयंधरंगं विजयेगं जयकीर्ति वेसर मगनागि राज्यंगेय्दु जनकसूरिपाश्र्वदोळ् परिव्राजकनागि समाधिवेत्तनुत्तरेगे वोगि बंदु नीनीगळेरडनेय चक्रवर्ति सगरनादें निनगारंभिकवादं-दिननुबंधं कारणमागे सहस्रलोचननोळतिप्रीति समनिसिदुदेंदु बेससे—

जिनवचनमनालिसि भी* मनेंब राक्षसकुलाधिपं तोयदवा-
हनन पुरातन जन्मद* जनकं प्रेमानुवंधदिंदितेंदं ॥९९॥
मगने विजयार्धनगदोळ् *पगेवरति प्रवलरवर नडुविरे निनग- ॥
च्चिगमक्कुं पाविनोळं * पगेयोळमोंदागि जीविसल् वंदपुदे ॥१००॥
पळवुं द्वीपंगळ् क * ण्मलरं सेरेगेय्दु किन्नराघण्ट मरू- ॥
त्कुल निलयंगळ् दक्षिण*जलधियोळिर्पुवु निकाम कमनीयंगळ्॥१०१॥

आ द्वीपंगळोळगे राक्षसद्वीपमेंबुदु सप्तशन योजन प्रमितमदर नडुवे—

---

स्वर्ग पाकर, पुनः पूर्वविदेह के रत्न संचयपुर के राजा अभयघोष की पत्नी चन्द्रायणी के गर्भ में पयोवल के नाम से जन्म लेकर पवित्र चारित्र्य और पुण्यवान जीवन विताकर अगले जन्म में पृथ्वीधरपुर के राजा जयंधर और रानी विजया के यहाँ जयकीर्ति के नाम से जन्म लेकर, शासन करके जनक-सूरि नामक मुनि से आचार्यत्व पाकर, तपस्या करके, समाधिस्थ होकर, अव तुमने द्वितीय चक्रवर्ती सगर के रूप में जन्म लिया है। तुम्हारे आरंभिक के रूप में जन्म लेने से लेकर आज तक संचित स्नेह के कारण ही सहस्रलोचन के प्रति तुम्हारा अगाध स्नेह है।"— मुनि की वात सुनकर तोयदवाहन के पूर्वजन्म के पिता भीम नामक राक्षस ने, पुत्रमोह के कारण यूँ कहा—। ९९ "वेटे, विजयार्ध पर्वत में शत्रु प्रवल हुए हैं। उनके वीच रहना तेरे लिए खतरा है। साँपों के और शत्रुओं के साथ अन्योन्य जीवन विताना संभव है? । १०० अनेक द्वीपों की पंक्ति दर्शकों की दृष्टि को आकर्षित करते हुए किन्नर आदि देवपर्वत दक्षिण समुद्र में प्रसिद्ध हैं। १०१ —इन द्वीपों में राक्षसद्वीप नामक द्वीप सात सौ योजन (एक योजन = नौ मील) के दायरे में व्याप्त है। उसके वीच— एक जिनगृह सुशोभित हैं। द्वीप में सात सुवर्ण प्राकार व्याप्त हैं। वहाँ सात नन्दन वन हैं। वहाँ

कनक प्राकारवेळुं बळसिरे विळसद्गोपुराट्टाळकं नं- ।
दनवेळुं लोचनानंदमनोविसे सार्वर्तुकं रंजिकुं यो- ॥
जनमोंबत्तुद्धमय्वत्तगलमेने शिरोभूषणाकारमुद्य- ।
ज्जिन गेहं सुत्तलुं तळ्तिरे विकट हटद्रत्नकूट त्रिकूटं ॥१०२॥

आ त्रिकूटाचलद शिखर मंडलदोळ्—

त्रिंशद्योजन विस्ता * रं शरदंबुधर धवल हार मणि ह- ।
र्म्यांशु स्थगित वियच्च * क्रं शोभा जन्मभूमि लंकानगरं ॥१०३॥

आ निरंतकमप्प लंकेयोळ् सुखदिनरसुगेय्येंदु भीमराक्षसं भवांतर स्नेहदिं तोयदवाहननं तन्न पोळलगुय्दु राज्यभिषेकगेय्दु पट्टमं कट्टि राक्षसविद्ये मोदलागे पलवु विद्येगळुमं लंकेयुमनित्तु निनगे राक्षसकुलमे कुलमक्केंदु नियमिसि निज परिग्रहंबेरसु द्वीपांतरक्के पोदनित्त तोयदवाहनं निज परिजनं बेरसु लंकेयोळर-सुगेय्युत्तुं विजयर्धद किन्नरपुरवमनाळ्व रतिमयूखंगमनुमतिगं पुट्टिद सुप्रभेयं मदुवेनिंनु केलवु कालदिं वैराग्य परनागि निजाग्र तनयनप्प महाराक्षसंगे राज्यमनित्तु दीक्षेगोंडु मोक्षक्के पोपुदुमित्तल्—

रक्षिसि वसुमतियं पर * पक्षमनाक्रमिसि विभवदोळ् तनगे सह- ॥
स्राक्षं समनेनिसि महा * राक्षसनधिराजनेनिसि लंकेयोळिर्दं ॥१०४॥

---

सदा समस्त ऋतुओं का निवास है। जिनगृह नौ योजन लम्बा, पचास योजन चौड़ा है और वह शिरोभूषण के आकार में सुशोभित है। उसके चारों तरफ त्रिकूटपर्वत है जहाँ रत्न पैदा होता है। १०२ —उस त्रिकूट-पर्वत के शिखर मंडल में— तीन सौ योजन के विस्तार में जिसका मानो बादल ही धवल कंठाभरण बने हैं, लंकानगर वसा है जो खेचरों की जन्म-भूमि है। १०३ —"तुम उस लंका में जहाँ किसीका आतंक नहीं है, सुखसे राज्यभार करो" ऐसा कहने पर भीमराक्षस सगर से कहकर उसे अपने साथ लेकर अपने नगर लौटकर वहाँ उसका राज्याभिषेक करके, सिंहासन सौंपकर अनेक राक्षस-विद्या सिखाकर, नये मुखाभरण आदि अनेक प्रमुख आभरणों नौनिधि युक्त पाताल लंका का सिंहासन देकर राक्षसकुल को ही उसका कुल नियुक्तकर, अपने परिवार के साथ द्वीपांतर निवास निमित्त चला गया। इधर तोयदवाहन अपने परिजनों के साथ लंका में रह रहा था। विजयार्ध के किन्नरपुर के शासक रतिमयूख और उनकी पत्नी अनुमति की पुत्री सुप्रभा से विवाहकर, बहुत समय के पश्चात् वैराग्य अपनाकर, अपने पुत्र महाराक्षस को राज्य सौंपकर स्वयं दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त हुआ।

आतंगे तनयरमरराक्षसनुं भानुराक्षसनुमेंबरादर् आ महाराक्षसनोंदुदिवसं क्रीडावमक्के बंदमंद मकरंद लोभदिंदिरुळ् मुगिद कमल कोशदिं पोरमडलरियदुसिर्पिंगिद भृंगनं कंडु—

मरणमनेय्दिदुदी ष-* ट्चरणं घ्रणेंद्रियक्के सोल्तेनलय्दुं ॥
करणदनुसरणमिं सं * सरण विपत्करणमप्पुदोंच्चरिये ॥१०५॥

अंदु संसार वैराग्यपरनवधिबोधरं श्रुतसागर चारण ऋषियरं कंडु निजविभव कारणमं बेसगोळ्वुदुमवरिंनेंदु बेरासिदर् पौदनपुराधिपं कनकरथं जिनपूजेयं माडे नोडि नलिदु नर्तिसि तत्फलदिं कडेयोळपरविदेहद कांचनपुरदोळ् यक्षनागि साधु संघक्के समनिसिदुपसर्गमनपहरिसि तटिल्लंघनेंब खेचरंगं श्रीप्रभेगमुदितनेंब मगनागि वैराग्यदिं तोरेदु जिनचरण वंदनानंददिं बंद विक्रमनेंब विद्याधरन विभूतियं नोडि मनवेळसि विधानंगेय्दु जीवितावसानदो-ळीशानकल्पक्के पोगिबंदु महाराक्षसनादोडी महामहिमे निनगादुदेंदु पेळे केळ्दु निजतनूजनप्पमरराक्षसंगे लंकेयं कोट्टु विसर्जिसि तपंगेय्दपवर्ग प्राप्तनाद नित्तल्—

---

इधर— अपने राज्य की रक्षा करता हुआ, परराज्यों पर आक्रमण करता हुआ, अपने आपको सहस्राक्ष इंद्र के समान मानकर महाराक्षस लंका में राज्य कर रहा था। १०४ —अमरराक्षस, भानुराक्षस नामक उसके पुत्र हुए। उसने एक दिन उद्यान में मकरंद की लालसा से कमल-पुष्प में घुसकर, सूर्यास्त होने पर फूल के बंद हो जाने के कारण, बाहर आने में असमर्थ मरे हुए भ्रमर को देखकर— इस भ्रमर ने मकरंद की लालसा के कारण मरण का आलिंगन किया। पंचेंद्रियों की लालसा में आकर, मानव का विपत्ति में फँसना आश्चर्य नहीं है। १०५ —ऐसा सोचकर संसार-वैराग्य को स्वीकारकर, अवधिबोधी श्रुतसागर चारणऋषि से मिलकर, अपने वैभव का कारण पूछा तो उन्होंने कहा—"पौदनपुर के अधिपति कनकरथ के जिनपूजा करने पर, उसे देखकर, झूमकर नृत्य करके, फलस्वरूप पश्चिम विदेह के कांचनपुर में यक्ष बनकर साधुसन्तों के कष्टों का निवारणकर तटिल्लंघ नामक खेचर और उसकी पत्नी श्रीप्रभा से उदित नामक पुत्र जन्मा। वैराग्य के कारण संसार त्यागकर, जिन चरणवंदन से उत्पन्न विक्रम नामक विद्याधर की विभूति को देखकर, चाहकर, पूजा करके, जीवितावसान में ईशानकल्प से लौटकर, महाराक्षस होने के कारण तुझे यह वैभव प्राप्त हुआ है।" इसे सुनकर अपने पुत्र अमरराक्षस को राज्य सौंपकर, अर्जित विद्याओं को त्यागकर, तपस्या

करवाळ कूर्पिनिंदम * रराक्षसं कूर्पगिडिसि तनगेंडरूव खे- ॥
चर वल्लभरं लंका * पुरदोळ् निश्यंकनरसुगेय्युत्तिर्द ॥१०६॥

आ विपक्ष राक्षसनेंनिप्पमरराक्षसंगं तदनुजनप्प भानुराक्षसंगं प्रत्येकं पदिंबर् तनयरप्पुदुमवर नोरोंदें पोळलगरसुमाडि निसर्ग वैराग्यदिं तोरेदिर्वरूं निर्वाणक्कें संदिबळियमा संतानदोळनेकररसुगळतिक्रांतरप्पुदुं—

घन रुतिगें राजहंसं * मनमळिवंतन्यराजकं बेर्चुविनं ॥
घन तेजः प्रभेगाळ्दं * घन प्रभं प्रयितकीर्ति लंकापुरमं ॥१०७॥

तदपत्यं—

धवलच्छत्रच्छायेयिं * नवनी चक्रक्कें चंडकर तापं सं- ।
भविसदेंनें तन्न जसदिं * धवळिसिदं धवळकीर्ति दिग्भत्तिगळं॥१०८॥

अंतातं लंकेयनाळुत्तुयिरें मत्तित्त विजयार्धगिरिय दक्षिण श्रेणिय मेघपुरद वियच्चरेंद्रनतींद्रनेंबं निज तनूजनप्प श्रीकंठ कुमारनिं किरियळ् देविलेयं रत्नपुरद पूर्वोत्तरं तन्ना मगं पुष्पोत्तरंगें बेडें कुडदें—

देविलेयं लावण्यर * साविलेयं धवळकीर्तिगुत्सव तूर्या- ॥
रावं गगनोदरमं * तीवुविनं चंद्रमुखियनित्तनतींद्रं ॥१०९॥

---

करते-करते मोक्ष को प्राप्त हुआ। इधर— अपने भुजबल पराक्रम से, अमरराक्षस ने अपने खेचर शत्रुओं को हराकर, लंकापुर पर निःशंका से शासन कर रहा था। १०६ —उस अमरराक्षस और भानुराक्षस के दस दस बच्चे हुए। उनमें से हर एक को एक-एक राज्य का शासक बनाकर संसार के प्रति विरागी बनकर दोनों मोक्ष को प्राप्त होने के पश्चात् उस वंश में अनेक पराक्रमी पैदा हुए। उनमें— जिस तरह घनगर्जना से राजहँस चौंक जाता है, उसी तरह अपने शौर्यबल से अन्य राजाओं को पराजित कर, घनप्रभा लंकापर शासन करता रहा। १०७ —उसका पुत्र— धवलकीर्ति ने, श्वेत छत्र की छाया से प्रचंड सूर्य के ताप से बचाता हुआ-सा, अपने यशरूपी धवल छत्र की छाया में प्रजा की रक्षा करता हुआ, दशोदिशाओं में प्रसिद्धि पायी। १०८ —इस तरह लंका पर राज्य कर रहा था कि इधर विजयार्धगिरि के दक्षिण भाग के मेघपुर के अतींद्र नामक राजा ने अपने पुत्र श्रीकंठकुमार से छोटी देविला को रत्नपुर के राजा पूर्वोत्तर ने अपने पुत्र पुष्पोत्तर के लिए माँगा तो देने से इनकार कर दिया। उस लावण्यमयी चन्द्रमुखी देविला को लंका के घनप्रभा के पुत्र धवलकीर्ति को देकर बड़ी धूमधाम से मंगलवाद्य-ध्वनि से मानो

आतन तनूभवं श्रीकंठकुमारनोमें मंदरकंदक्के जिनवंदना— निमित्तं पोगि रत्नपुरद मेगने मेघपुरक्के बर्प समयदोळ् पुष्पोत्तरन तंगे पद्मोत्तरे तन्न चैंबोन्न कन्नेवाडदोळ् सुस्वरदिं पाडुत्तुमिर्पुदुं—

जितभृंगीझंकृतं निर्जित मदन धनुर्ज्यालता टंकृतं त- ।
र्जित वीणा शिंजितं भंजित रतिरमणी रत्नकांची प्रणादं ॥
श्रुतियं तळ्कैसे रोमोद्गतियोडने गतिस्तंभमं खेचराधी- ।
श तनूजंगिनुदा कन्निकेयमधुर सप्तस्वरोत्तान गानं ॥११०॥

स्वर मंत्र देवता नू * पुर रवमेने किवियनेय्दे कन्या कलकं- ॥
ठ रव श्रीकंठं रा * ग रसोत्कंठं प्रतिष्ठेयोळ् पाडरिदं ॥१११॥

अंतातं गोरिय मृगदंतेळसि बर्पुदुं—

नोडलोडमा कुमारन * गाडिगे कण्सोल्त कन्नेयं मनसिजने ॥
साडिदनेडेवडेदेने पर * पीडाकररेके बाधेवडिसदे माण्वर् ॥११२॥

अंतु वशमाद कन्नेयनशंकितं लंकेगुय्दु धवळकीर्तिय कैलदोळिर्पुदुमदं पुष्पोत्तरनरिदु—

---

आकाश का पेट भर दिया हो, विवाह कर दिया। १०९ —एक बार अतींद्र का पुत्र श्रीकंठकुमार जिनपूजा निमित्त मंदरपर्वत जाकर, रत्नपुर होता हुआ मेघपुर आ रहा था कि पुष्पोत्तर की छोटी बहन पद्मोत्तरा अपने महल में बैठकर मधुर स्वर में गा रही थी।— भ्रमरों की गुंजन, कामदेव के धनुष की टंकार, वीणा स्वर और रतिदेवी के पायल की झनकार को लजा देनेवाले उसके मधुर गीत को सुनकर आकाशमार्गगामी श्रीकंठकुमार की गति रुक गयी। ११० —उस कन्या का मधुर स्वर गान-देवता के नूपुर की झनकार-सा कर्णपटल पर पहुँचने पर श्रीकंठकुमार अपने आपको भूल गया। १११ —इस तरह उसे आहार के प्रति आकर्षित मृग की भाँति आते हुए— देखते ही उस कुमार के प्रति मन हार बैठी हुई कन्या को कामदेव ने अपने बाण से घायल कर दिया। परों को प्यार करने की प्रवृत्ति रखनेवाले इसके अतिरिक्त और क्या कर सकते हैं? ११२ —इस तरह वश हुई कन्या को निःशंक हो लंका ले जाकर श्रीकंठ-कुमार धवलकीर्ति के साथ रह रहा था कि, विषय जानकर पुष्पोत्तर को— इस बात का अत्यन्त क्रोध आया कि उसके माँगने पर उसे कन्या न देकर कुलाचार के विपरीत उसे निर्लक्ष करके, उसकी बेइज्जती करके उसकी बहन को ले गया है। ऐसा सोचकर कि अपनी सेना के सामने यह भूलोक भी तुच्छ है, असंख्य सेना को साथ लेकर प्रलयकाल के यम के समान

अॆरॆदॊडॆ कन्यॆयं कुडदॆ मुन्नॆनगॆन्ननुजातॆयं कुला- ।
चरण मनेनुमं बगॆयदॆन्नमनेळिसिकॊंडु पोदनें- ।।
बॆरडरॊळं मनक्कॆ मुनिसिर्मॆडिदळ्ळिसॆ लंकॆगॆत्तिदं ।
धरॆ किरिदी वरूथिनिगॆनल् विलयांतकनंत खेचरं ।।११३।।

अंतु मेलॆत्तिबर्पुदुं धवळकीर्ति नयानुवर्ति मुन्नं साममनॊडर्चिमॆंदु निजमहत्तररं पुष्पोत्तरनल्लिगट्टुवुदुमवर् बंदु कंडुपायनपुरस्सरमितॆंदर्—

अनुरूपं कन्नॆगीतं कुल भुजबल विद्याबल ख्यात निन्नं- ।
गॆ निरालोचं कुडल्वेळ्पुदु युवतियनन्योन्य संप्रीतियिदा- ।।
यानुबंधं शगदिदिन्निवर्गॆ मदुवॆयं माळ्पुदॆंदट्टिदं नि- ।
म्मनुजन्मं निम्मनण्पं बयसि पदॆपिनिदॆम्म विद्याधरेंद्रं ।।११४।।

अॆनॆ मनदॆ कॊंडु निरूत्तरं पुष्पोत्तरनॊडंबट्टु मगुळॆपोपुटुं शुभदिन मुहूर्तदॊळ् पद्मोत्तरॆयं श्रीकंठंगॆ मदुवॆ माडि मत्तॊंदु दिनं श्रीकंठनं निनगॆ विजयार्ध महीधरदॊळहितरॊडगूडिर्पुदु नीतियल्तदरिननेक द्वीप मुख्यनप्प वानरद्वीपदॊळॆन्न समीपदॊळिर्पुदॆनॆ मनदॆ कॊंडु तद्द्वीपनिरीक्षणनिमित्तं बरूत्तुमॊंदॆडॆयॊळ् वानरंगळं कंडवं तरिसि कॊंडु किष्किंध गिरियमेलॆ पदिनाल्कु योजनद विस्तारद

उस खेचर ने, । ११३ —लंका पर चढ़ाई की तो सहनशील स्वभाव के धवलकीर्ति ने युद्ध से पहले सामोपाय से प्रयत्न करने के उद्देश्य से पुष्पोत्तर के पास अपने मन्त्रियों को भेजा तो वे वहाँ पहुँचकर यूँ बोले— "यह वर कन्या के अनुरूप है; कुल में, भुजबल और विद्या में प्रसिद्ध है। विचार किये बिना किसीको कन्या न देने की गलती तुम जैसों से नही होनी चाहिए। युवक-युवती में परस्पर प्रेम हो जाना जन्मांतरों का सम्बन्ध है। अतः विवाह कराने में ही भलाई है। ऐसा कहने के लिए आपके पास भेजा है।" ११४ —मन्त्रियों की बात सुनकर पुष्पोत्तर निरुत्तर हो, शुभ दिन के शुभमुहूर्त में पद्मोत्तरा का विवाह श्रीकंठकुमार के साथ करा दिया। कुछ दिनों के बाद पुष्पोत्तर ने श्रीकंठकुमार से कहा : "इस राज्य में अहितों के साथ तुम्हारा जीवन बिताना उचित नहीं है। अतः अनेक द्वीपों में प्रमुख वानर द्वीप में शासन करो।" उस द्वीप को देखने के लिए जाते हुए उसने मार्ग में एक जगह वानरों को देखा और उनके साथ चलकर, किष्किंधा पर्वत में पहुँचा। वहाँ उसने चौदह योजन विस्तृत नगर का निर्माणकर उसका नाम किष्किन्धा

पौळलं माडि किष्किंध पुरमेंदु पेसरनिट्टु आ पुरदोळ् पलकालं राज्यंगेय्युत्तुमिदोंदु दिवसं नंदीश्वरपूजेगच्युतेंद्रतोडने पोगुत्तुं मानुषोत्तर द्वीपदिनत्त मनुष्यर्गे सलविल्लप्पुदरिं निजविमानं पोगदिरे मगुळदु वंददुवे निर्वेगकारणमागे तन्न मगं वज्रकंठंगे राज्यमं कोट्टु तपंबट्टु—

नाकानोकह सुमन * श्रीकंठाभरणमागे गगन श्रीगा- ॥
श्रीकंठयोगि मुक्ति * श्रीकंठाभरणमादनवधिवोधं ॥११५॥

तत्तनयं—

परिपालिसिदं वानर * पुरमं चिरकालमहित कंठ ग्रहणा- ॥
तुर कर कृपाणनाहव * निरंकुशं वज्रकंठनुद्धत कंठं ॥११६॥

आतनोंदुदिवसं त्रिकालदर्शिमहर्षियरं कंडु पूजिसि पोडेवट्टु धर्मश्रवणानंतरं मदीयजनकंगच्युतेंद्रनोळतिप्रीति समनिसिद कारण मेनेंवुदुं मुनींद्ररितेंदु वेससिदर् वीतशोकपुरद परदनर्हद्दत्तनेंवनातन तनयर् धनदत्त वसुदत्तरेंवर् तम्म नंदे तपस्स्यनप्पुदुं स्त्री निमित्तं तम्मोळगे मुळिदु गुरूपदेशदिं मुळिसनुळिदु तपगेय्दण्णनच्युतेंद्रनादम-

---

रखा। वहाँ कुछ समय तक शासन करने के पश्चात् एक दिन अच्युतेंद्र के साथ नंदीश्वर की पूजा के लिए जा रहा था कि मनुष्योत्तर द्वीप से आगे उसका विमान गतिहीन होकर रुक जाने के कारण लौटा और वही उसके वैराग्य का कारण वना। अपने पुत्र वज्रकंठ को राज्य सौंपकर तपस्या करके— जिस तरह नागलोक का कल्पवृक्ष आकाश के सुहृदयियों का कंठाभरण वना हुआ है उसी तरह श्रीकंठयोगी मुक्तिश्री का कंठाभरण वनकर अवधिवोधी हुआ। ११५ —उसका पुत्र— वानरपुर का परिपालन कर, शत्रुओं के कंठों को अपने खड्ग से काटने के लिए आतुरित होकर, युद्ध में असीम साहसी कहलाया। ११६ —एक दिन वह त्रिकालदर्शी महर्षि से मिला और उनकी सेवा करके धर्म-श्रवण के पश्चात् यह पूछने पर कि उसके पिता को अच्युतेंद्र के प्रति अत्यन्त स्नेह होने का कारण क्या है, मुनिवर ने वताया कि वीतशोकपुर के व्यापारी अर्हद्दत्त के दो पुत्र हुए— धनदत्त और वसुदत्त। अपने पिता के तपस्या को जाने पर स्त्री निमित्त वे दोनों परस्पर शत्रु वन गये। लेकिन अन्त में गुरु के उपदेश के कारण द्वेष को तजकर तपस्या करके धनदत्त अच्युतेन्द्र के रूप में और वसुदत्त देवगति पाकर श्रीकण्ठ के रूप में अवतरित हुए। पूर्वजन्म का स्मरण हो आने पर श्रीकंठ और अच्युतेंद्र साथ मिलकर नन्दीश्वर की पूजा निमित्त

नुजनुममर गतिवडेदु नाकच्युतं श्रीकंठनागि तदच्युतेंद्र दर्शन जनित जातिस्मरं वंदनामकितयिनीडने पोगुत्तुं मनुष्यक्षेत्रदिंदत्तल् तनगे सलविल्लदोंडदुवे वैराग्यकारणमागे निनगरसुतनमनित्तु तपंबट्टनेंवुदुमदं केळ्दु तानुं निर्वेगपरायणन्तगि वज्रकंठं निजतनूजनप्पिद्रायुधंगरसुतनमनित्तु तपंगेय्दु सुगति प्राप्तनादंदिंबळियं—

अपरिमित भुजबलर् वा॰सुपूज्य जिन वृषभ समवसरणंबरमा ॥
कपिकुलदोळ् किष्किधा ॰ धिपरिंद्रायुधनिनादरित्तलनेकर् ॥११७॥

अल्लिबळियमा कुलदोळप्रतिहत प्रभनमरप्रभनेंबनादनत्त लंकेगे धवळकीर्तिय कुलदोळ् पलरुमविश्रांत विक्रांतरतिक्रांत-रप्पुमर्ल्लिबळियं त्रिकूटनेंबनोडेयनादनातज सुने गुणवतियनमर-प्रभंगे मदुवेमाडलेंदु किष्किधपुरक्कुय्वुदुमाके विवाहवेदिकेयोळ् पंचरत्नवर्णचूर्णदिं बरेद लतेगळोळगे वानरगळं कंडु बेर्चुवुदुममरप्रभनिवं बरेदरारेने गृहमत्तरनिवं निम्मपूर्वजनप्प श्रीकंठं कोंडाडिदनप्पुदरिं निम्मकुलदवरुत्सवंगळोळितें बरेवरेने मुनियं तोरेदंनादोडिवं मेट्टुवेडेयोळेके बरेविरेंदु पताके गळोळं मकुट-

---

जा रहे थे कि इस बात का अनुभव हुआ कि मनुष्यक्षेत्र से आगे उन्हें प्रवेश नहीं है। अतः राज्याधिकार तुझे सौंपकर तपस्या करने निकल पड़े। इसे सुनकर वज्रकंठ ने वैराग्य अपनाकर अपने पुत्र वज्रायुध को राज्य सौंपकर, तपस्या करके उत्तम गति पायी।— उस कपिकुल में वासुपूज्य, वृषभ आदि अनेक अपरिमित भुजबलशाली राजाओं ने, समवसरण तक उस किष्किधा में रहकर शासन करके यश पाया। ११७ —तत्पश्चात् उस कुल में अद्वितीय वीर अमरप्रभा नामक राजा हुआ। उधर लंका में धवलकीर्ति के कुल में अनेक वलशाली पैदा हुए। तत्पश्चात् लंका में त्रिकूट नामक राजा हुआ। उसकी पुत्री गुणवती को विवाह निमित्त किष्किधा ले जाने पर विवाह मंडप में पंचरत्न के रँग से लतापर चित्रित वानरों को देखकर वह डर गयी। अमरप्रभा के यह पूछने पर कि उन्हें किसने चित्रित किया है, मन्त्री ने वताया कि अमरप्रभा के पूर्वज श्रीकंठ द्वारा प्रशंसित होने के कारण उस कुल में उत्सव के समय ऐसा चित्रित करना रूढ़ि बन गयी है। इस विवरण को सुनकर अमरप्रभा का क्रोध शांत हुआ लेकिन फिर भी पूछा कि यह ऐसे स्थान पर जहाँ चलने वालों के पैर पड़ते हैं, क्यों चित्रित किया गया है? और उसने आज्ञा दी

गळोळं मणिकनक विरचितंगळं कीलिसि कोंडाडि वानरध्वजरुं वानरकुलवेंब रूढियं माडि—

अमर प्रभ खचरं त * न्नमगं कपिकेतुगित्तु सिरियं सन्या-
समनप्पुकेय्दु मुक्ति * प्रमदाप्रेमावलोकनक्कोळगादं ॥११८॥

आ तेरदिं तोरेदु पलरुमा कुलदोळंबरचरर् मुक्तरादिबरक्कें लंकेगे विद्युन्केशनेंबनधीशनादनातन महादेवि श्रीचंद्रेगे सुतं सुकेशनेंबनादनत्तला वानरध्वजकुलदोळ् महोदधियेंब नादनातंगं विद्युन्केशंगमति प्रीति समनिसुददा विद्युत्केशनोमें वनकेळियोळिर्पुदुमोंदु वानरं श्रीचंद्रेगंगभंगमं माडि विद्युन्केशनिंदेसुवेत्तु चारण ऋषियर चरणोपांतमं सार्दारा धनाविधियिं देहमं बिट्टु देवगतिवडेदवधियं प्रयोगिसि बंदु शरीरपूजेगेय्व समयदोळ् विद्युन्केशनुळिद कपिकुलक्कपायमनोडर्चे कंडु कडुमुळिदु पर्वताकारद वानरंगळनगुर्वु पर्वे विगुर्विसुवुदुं—

मरनं किळ्तु नंगंगळं नेगपि रौद्राकारदिं बर्प वा- ।
नररं कंडु विमुक्तकेशभर विद्युन्केश विद्याधरं ॥
त्वरित प्रस्खलित प्रयाण रभसं शुद्धांत कांताजनं ।
बेरसुत्कंपितनोडि दिव्यमुनिपादांभोजमं पोर्दिदं ॥११९॥

---

कि भविष्य में उन्हें ध्वजाओं, मुकुटों में चित्रित किया जाय और वानरध्वज, वानरकुल नामक दो अलग पक्ष बनाकर— अपने पुत्र कपिकेतु को राज्य सौंपकर, संन्यास स्वीकार कर, मुक्तिश्री के स्नेह के अवलोकन को प्राप्त हुआ। ११८ —इस तरह उस कुल के अनेक खेचर राजाओं के शासन के पश्चात् वैराग्य अपनाकर मुक्ति पाने के बाद लंका में विद्युनेश नामक राजा हुआ। उसकी रानी श्रीचंद्रा को सुकेश नामक पुत्र हुआ। उधर वानर ध्वजकुल के प्रसिद्ध महोदधि और विद्युनेश में घनिष्ट मित्रता हुई। एकबार विद्युनेश वनकेलि में लीन था कि एक कपि ने श्रीचंद्रा के शरीर में हाथ डालने के कारण विद्युनेश की प्रहारों से चारणऋषि के चरणों की सेवा करके, शरीर तजकर, देवगति पाकर कुछ समय के पश्चात् पुनः जन्म लेकर, शरीर पूजा करते समय यह देखकर कि विद्युनेश अन्य कपि-कुल पर अन्याय कर रहा है, कुपति होकर पर्वताकार के वानरों ने भयानक आवेश में उनका सामना किया।— वृक्षों को उखाड़कर, पर्वतों को उठाकर, रौद्राकार में आते हुए वानरों को देखकर विद्युनेश खेचर रनिवास की स्त्रियों के साथ भयभीत हुआ और डरके मारे दिव्यमुनी के पास

अन्नेगं बेंबळियनुळियदे मुट्टेवंदी मुट्टुगेट्ट दुरात्मनं विदारिसुवेनेंदा वानरचरामरंगे मुळिसनुळिवंनु धर्मोपदेशंगेय्दु विद्युन्केशनं नोडि नीमिर्वरनेकभवदोळोरोर्वरं वधियिसुत्तुं बंदेंतानुं मनुष्यायुष्य बंधर्म पडेदु श्रावास्तिपुरदोळ् नीं यशोदत्तनागि पुट्टि कर्वोपशमर्दि जिनदीक्षेयं कैकोंडुग्रोग्र तपंगेय्युतुं काशीविषयदोळ् धरणीभूषणमेंव पर्वतद मेग प्रतिमायोगदोळिर्पुदुमंदु बेडनागि पुट्टिटदी देवनुं मृगयानिमित्तं तोळलुत्तुं बंद निमित्तर्दि तिन्न बय्दु नुडिवुदुं नीनुं मानकषायर्दि कळिदु ज्योतिरमरगतिवडेदर्ल्लि बंदुविद्युन्केशनादे बेडनुं कळिदु कोडगनागि मुनिप्रसादर्दि महोदधिवेंसर देवनादनेंबुदुं—

देशकर्रि पूर्वभव ※ क्लेशंगळनरिदु कोट्टु तोरेदं विद्यु-।।
त्केशं निज तनयंगे सु-※ केशंगरसं दिवक्के संदं कडेयोळ् ।।१२०।।

मत्तित्त वानरद्वीपाधिपति चिरकालमरसुगेय्दु—

नवनलिन अवचरर्निद्रिय सौख्यमीये विरक्तिर्यि
दवनियनित्तु निजात्मजं प्रतिबिंदुग- ।।
व्यवहित सौख्यमनीवुदं जवनं परा-
भविसि भवोदधियं महोदधि दांटिदं ।।१२१।।

---

गया। ११९ —तब, उसका पीछा करते हुए आये हुए वनदेवता का धर्मोपदेश से क्रोध शांत करने के पश्चात्, विद्युनेश को देखकर मुनिवर बोले—तुम दोनों अनेक जन्मों में परस्पर एक दूसरे को मारते रहे और अन्त में मनुष्य जन्म पाकर श्रावस्तिपुर में तुम यशोदत्त के रूप में पैदा होकर, कर्मबंधन से मुक्त होकर, जिनदीक्षा पाकर, कठोर तपस्या करते हुए काशी के धरणीभूषण नामक पर्वत पर प्रतिमायोग में लीन थे कि वह देवता जो बहेलिया था शिकार निमित्त आकर तुम्हें ले जाकर बात करने पर तुम मन में हुई व्यथा से मरण पाकर, ज्योति देवता की गति पाकर तत्-पश्चात् विद्युतेश हुए। बहेलिया मरकर, कपि बनकर मुनिप्रसाद से महोदधि नामक देवता बना।— मुनिवर से जन्मांतर के कष्टों के बारे में जानकर अपने पुत्र सुकेश को राज्य सौंपकर दिव्यज्योति को प्राप्त हुआ। १२० —इधर वानरद्वीप के अधिपति ने कई सालों तक शासन करके— महोदधि ने इंद्रिय सुख से मुख मोड़कर, विरक्त होकर, अपने पुत्र को राज्य सौंपकर, मृत्यु को पराजितकर संसाररूपी महासागर को पार किया। १२१ —उसका पुत्र प्रतिबिंदु ने अपने बुढ़ापे को देखकर, ऐश्वर्य-सुख को तुच्छ समझकर

पदपत्यं तन्न मक्कळप्प किष्किधंगमंध्रकंगं जरापरिचयदिं सिरियनवज्ञेगेय्दु कोट्टु—

प्रतिविंदु जराविदुग* ळतकर्यवल कालपुरूषनि समनिसे सं- ॥
सृतियं निर्मूलिसि नि * वृतिलक्ष्मीवश्यतिलक विंदुवनांतं ॥१२२॥

मत्तित्त विजयार्धनगोपत्यकदादित्यनगरमनाळ्व—

मंदरमालि वियच्चर * नंदने कडुनीरे मीरे शक्रन शचियं ॥
कंदर्पन रतियं त * न्नंदं श्रीमाले मीरिदळ् शैशवमं ॥१२३॥

आ खचरकन्या स्वयंवरवके दक्षिणोत्तर श्रेणियं खचरकुमाररूं विद्याधर चक्रवर्तियप्पशनिवेग तनूभवं विजयसिंहनुं कपिकेतुगळप्प किष्किधांध्रकरूं लंकाधिपनप्प सुकेशनुं मोदलागे पलंवरंबरचराधिराजर् वंदु पंचरत्न खचित कांचन मंचदोळ् महाविभूतियिंदमिरे—

श्रीमाले माले सूडिद* ळा मन्मथरूपनप्प किष्किध विय- ॥
द्गामिगेंडरिदनदर्कु * द्दाम भुजं विजयसिंहनाहवसिंहं ॥१२४॥

नेरेद वियच्चररिदं * तिरे ताने कडंगि पोंगि मुंदरियदे का-
तरनीळ्दुकोळ्वेनेंदा* हरिणाक्षियनिरदे काळेगक्कोडरिसिदं ॥१२५॥

---

किष्किध और आंध्रक नामक अपने दो पुत्रों को अपना राज्य सौंप दिया। —वे (किष्किध और आंध्रक) अपने भुजवल से कालपुरुष के समान वनकर शासन करते रहे। प्रतिविंदु संसार के व्यामोह को तजकर मोहलक्ष्मी से जा मिला। १२२ —इधर विजयार्ध पर्वत के आदित्यनगर के खेचर शासक— मंदरमाली की कन्या श्रीमाला—इंद्र की पत्नी शची और मन्मथ की पत्नी रती से भी बढ़कर अपने शैशव को पारकर प्रवुद्धा हुई। १२३ —उसके स्वयंवर में दक्षिणोत्तर के खेचर राजकुमार, विद्याधर चक्रवर्ती अशनिवेग का पुत्र विजयसिंह, कपिध्वजी किष्किध, आंध्रक, लंकापति सुकेश आदि पधारकर पंचरत्न विभूषित स्वर्ण मंचों में विराजमान हुए थे।— पुष्पमाला लिए स्वयंवर मंडप में आयी हुई श्रीमाला ने कामदेव के समान सुन्दर, रूपवान किष्किध के गले में जयमाला पहनाई। उसे देखकर महान बलशाली विजयसिंह क्रुद्ध हुआ। १२४ उपस्थित समस्त पराक्रमी खेचरवीरों की परवाह किये विना हिम्मत से अकेला आगे वढ़कर श्रीमाला के अपहरण के उद्देश्य से युद्ध के लिए तैयार हुआ। १२५

आगळंध्रक सुकेशर् कीनाशरंतें देसेदेसेगे मसगि किष्किधनुमं श्रीमालेयुमं किष्किधपुरक्के कळिपि कडुकेय्दु कादुवागळ्—

अंध्रकनाकाशं नी ※ रंध्रमेनल् सुरिदु सरल सरियं जवनी- ।।
तंध्रुवमेंबिनमसरपु ※ रंध्रियरं विजयि विजयसिंहंगित्तं ।।१२६।।

अंतु काळेगमं गेल्दु सुकेशनुं तानुं किष्किधपुरमं पोक्कु समर सन्नद्धरागिर्पुदुमित्तलशनिवेगं सुतन सावं केळ्दु शोकवेगदिं क्रोध-वेगमत्यधिकमागे गगनवीधियोळ् बंदु किष्किधपुरमं मूवळसागे मुत्ते पोरमट्टु कादि यममुखमनंध्रकं पुगुवुदुं किष्किध सुकेशरति-चकितचित्तरागि पोगि पाताळ लंकेयं पोक्किर्पुदुमशनिवेगं सुकेशन राजधानियप्प लंकेयं निर्घातंगे कोट्टु निजराजधानिगे पोगि कतिपयदिनदोळोमें हर्म्याग्रभूमियोळिर्दु नगेद मुगिलं नोडुत्तुमिर्पुदुं—

घनं करगे कंडु कंडशनिवेग विद्याधरं-
घनोयपलद माळ्केयिं करगे तृष्णे साम्राज्यदोळ् ।।
मनस्वि निलवेळ्दु तन्न सुतनं सहस्रारनं
जितेंद्र मुनिरूपमं तळेदनस्त संतापमं ।।१२७।।

---

—तब आंध्रक और सुकेश प्रलयकाल के यम के समान कुपित होकर, श्रीमाला और किष्किध को किष्किधा भेजकर वीरता से विजयसिंह से लड़ने लगे— लड़ाई में आंध्रक ने बाणों की ऐसी वर्षा की मानो बादल मूसलाधार वर्षा बरसा रहे हों। साक्षात् यम-सा लड़कर विजयसिंह को देवतास्त्रियों को अर्पित कर विजयी हुआ। १२६ —इस तरह युद्ध में विजयी बनकर सुकेश के साथ किष्किधा में प्रवेशकर, पुनः युद्ध के लिए तैयार हुए थे कि इधर अशनिवेग ने पुत्र के मरण का समाचार सुनकर शोकाकुल हो, क्रोधावेश में आकाशमार्ग से आकर, किष्किधा को तीन घेरों में घेर लिया। आंध्रक को इसकी खबर मिलने पर युद्ध में उससे भिड़कर यमपुरी पहुँचा। इससे चकित किष्किध और सुकेश भयभीत होकर पाताल लंका भाग गये। अशनिवेश सुकेश की राजधानी लंका को हानि पहुँचाकर अपने राजमहल पहुँचा। कुछ दिनों के वाद ऊपर के मँजले में खड़ा होकर बादलों को निहार रहा था।— पिघलते हुए बादल को देखकर अशनिवेग बर्फ की भांति पिघला और वैराग्य धारणकर, अपने पुत्र सहस्रार को राज्य सौंपकर, जिनेंद्रमुनि के रूप में अपने दुःख से मुक्त हुआ। १२७ —इस तरह उसके मुनि बनने पर इधर किष्किध मधुपर्वत

अंतातं जातरूपधरनप्पुदुमित्त किंष्किधनुं मधुपर्वतद मेलें पुरमं माडि श्रीमालेयोळ् कूडि सुखमिर्पुदुं—

आ क्षोणीश्वर वल्लभे * ऋक्षज सूर्यज तनूजरं पडेदु सरो- ॥
जाक्षियननंतरं शुभ * लक्षणेयं सूर्यमालेयं सति पडेदळ् ॥१२८॥

आकेयं मेघपुरमनाळ्व मेरूसुतनप्प सिंहमर्दनंगे कोट्टोडातं कर्णपर्वनदोळ् कर्णकुंडलयेंब पुरमं माडि मनोरागदिनिर्पुदुमित्तल्—

गगनेचर कैरव कुल* मृगधरनेंनिसिद सुकेशनंगनेगादर् ॥
पगेयनगेयत्तलिद्रा *णिगे मालि सुमालि माल्यवंत सुतर्कळ् ॥१२९॥

अंतवर् नवयौवन प्राप्तरूं साधित सकल विद्यरूमवार्य वीर्यरूमप्पुदरिं मेच्चिद देसेयोळ् मेच्चिदंने विच्चतं क्रीडिसुत्तुमिरे सुकेशनवरं करेदु दक्षिण समुद्रक्के पोगदिरिमेंबुदुमवरदेकारणमेंने सुकेशनिंनेंदं तोयदवाहननिं तोडगि नम्मन्वयागतमप्प लंकापुरमनशनिवेगनेंळेदुकोंडु निर्घातंगे कोट्टोडवननेकविद्येगळिनार्ग दुष्प्रवेशमेंने कापंमाडि बलिष्टनागिर्दनातं तिम्मं कंडोडे कोल्गुमेंदु बारिसिदेंनेंबुदुमवरदर्के मनदोळे कनल्दु—

---

में नगरनिर्माण कर श्रीमाला के साथ सुख से रह रहा था।— श्रीमाला ने ऋक्षज, सूर्यज नामक पुत्रों को एवं सूर्यमाला नामक शुभ-लक्षण पूर्ण पुत्री को जन्म दिया। १२८ सूर्यमाला का विवाह मेघपुर के राजा मेरू के पुत्र सिंहमर्दन के साथ हुआ। वह कर्णपर्वत में कर्णकुंडल नामक नगर की स्थापना कर सुख से रह रहा था कि इधर-- खेचररूपी कुमुदपुष्प के लिए चंद्ररूपी सुकेश की पत्नी ने माली, सुमाली, माल्यवंत (माल्यगन) नामक पुत्रोंको जन्म दिया। १२९ यौवन प्राप्त वे समस्त विद्याओं में पारंगत होकर, शौर्यशाली वनकर अपनी इच्छित दिशा में क्रीड़ा कर रहे थे कि सुकेश ने उन्हें बुलाया और दक्षिण समुद्र में न जाने की सलाह दी। उनके द्वारा इसका कारण पूछने पर उसने बताया, तोयदवाहन से लेकर जो लंकानगर हमें मिलना चाहिए था उसे अशनिवेग ने हमसे छीनकर निर्घूत को दे दिया है। निर्घूत अनेक विद्याओं से लंकापुर को अन्यों के लिए दुर्गम-कर उसकी रक्षा कर रहा है। वह अगर तुम लोगों को देख लेगा तो मौत के घाट उतार देगा। अतः तुम लोगों को मैंने सजग कर दिया है। इसे सुनकर वे तीनों कुपित हुए। और कहा— कुल की इस पराजय की बात अब तक न कहकर आपने गलती की है। अव विषय जानने के बाद हम अगर चुप रहते हैं तो हमारे अभ्युदय के लिए बाधक है। ऐसा

इन्नेवरं कुल परिभव * मन्निम्मडि पेळदिर्दिरालिसि तडेदं- ॥
दुन्नति पिंगुगुमेंदु * न्पन्न क्रोधर् दवाग्नियंतुरिदेळदर् ॥१३०॥

अंतु कलुश वशगतरसंख्यात वल समेतरागि पाताळ लंकेयं पोरमट्टु मरून्मार्गदिं बंदशंकितर् लंकेयं मुत्तुवुदुं—

सैरगं बेरगं बगेयदे * पुरमं पोरमट्टु कादि मालिय बाहा- ॥
परिघ निशितास्त्र हतियिं* सुरलोक प्राप्तनादना निर्घातं ॥१३१॥

घातिसि रणमुखदोळ् नि* र्घातननवरीळ्दुकोंडु लंकापुरमं ॥
पाताळलंकेयिं पितृ * मातृगळं राज्यसुखदिंदिर्दर् ॥१३२॥

अंतु पगेयनगेयेत्ति कळेदु कुलपरिभवमं पिंगिसि—

उभय श्रेणिय खचर * प्रभुगळनदटलेदु कप्पमं कोंडु महा- ॥
विभवमनोळकोंडर् पु *ण्यभागिगळ् वाहुवीर्यमनिवार्यमेनल ॥१३३॥

अंतु केलवुकालं पोपुदुमवर तंदे सुकेशनधिराज युवराज पट्टमनवर्गे कट्टि किष्किंधबेरसु तपस्स्यनप्पुदुं मत्तित्तल रथनूपुरचक्रवाळपुरमनाळ्व सहस्रार खचरवल्लभं निजमहा-देविगेळवसिरोळिंद्रन विभूतियं नोळ्प बयके समनिसुवुदुं विद्येयिं तद्विभूतियं तोरि बयकेयं तीर्चे नवमासमप्पुदुं—

---

कहकर कल्पांतर की दावाग्नि की तरह भड़क उठे। १३० --इस तरह क्रोध से असंख्य सेना के साथ पाताललंका से निकलकर, आकाशमार्ग से आकर उन्होंने निर्भीत हो लंका को घेर लिया।— आगंतुक शत्रुपक्ष के शक्ति-सामर्थ्य को न जानकर निर्घूतपुर से बाहर निकलकर लड़ने लगा तो माली के तीक्ष्णबाणों के आघातों से वह सुरलोक पहुँचा। १३१ लंका की संपत्ति को वश में लेकर, पाताललंका से माता-पिता को बुलवाकर वे दोनों लंकापर शासन कर रहे थे। १३२ —इस तरह वैरी को समूल नाश करके वंशपर हुए अपमान से मुक्त होकर— खेचरों के दो पक्षों के राजाओं को युद्ध में हराकर, उनसे लगान लेकर वे अद्वितीय साहसी कहलाकर बड़े सुख से रह रहे थे। १३३ --बहुत समय के बाद उनके पिता सुकेश ने उन्हें अधिराज, युवराज अधिकार (पद) देकर, किष्किंध के साथ तपस्या कर रहा था कि इधर रथनूपुर चक्रवालपुर के शासक सहस्रार की गर्भवती पत्नी ने इंद्र को देखने की इच्छा व्यक्त की तो अपनी विद्या से उसकी इच्छा की पूर्ति की। उसे नौ महीने पूर्ण होने पर— पुत्र ने जन्म लिया। माता को इंद्र को देखने की इच्छा होकर पैदा होने

जनियिसॆ तनयं बांधव ॥ जनिमिंद्र विभूतियं तदंबिकॆ मुन्नं ॥
मनादॊळ् वयसिदुदरिंनि॥ द्रनॆंदु वित्तरिसॆ नामकरणोत्सवमं ॥१३४॥

आतननुत्कमदिं वळॆदु नव यौवन प्राप्तनागि साधित सकल विद्यनुभय श्रेणियं बाय्केळिसि सकल चक्रवर्ति पदमं पडॆदु तन्न विजयार्धनगमं ताकमॆंदु तन्न खचर कांतॆयर नूर्वशि रंभॆ सुकेशियरॆंब देवकांतॆयरॆंदु तन्न वारणमनैरावणमॆंदु तन्नश्वमनुच्चैश्य्खमॆंदु तन्ननुचरनं हरिणकेसरिवॆसर पडॆवळनॆंदु तन्न गायकरं तुंबुरू नारदरॆंदु तन्न मुख्य पुरूषरं लोकपालकरॆंदु तन्न सभॆयं सुधर्ममॆंदु तन्न सेनॆयं देवसेनॆयॆंदु तन्न सामान्यायुधमं कुळिशायुधमॆंदु तन्न विमानमं ऋतु विमानमदु तन्न पुरोहितरनखिन्याद्यष्टवसुगळॆंदु तन्न किन्नरपुरदवर्गळं किन्नररॆंदु तन्न गंधर्वपुरदवर्गळं गंधर्वरॆंदु तन्न यक्षपुरदवर्गळं यक्षरॆंदु तन्न मंत्रि मुख्यनं वृहस्पतियॆंदु तानिंद्र नल्लदॆयुं तन्ननिंद्रनागॆ बगॆदु नाल्वत्तॆण्मासिरमंतः पुरक्कधिपनागि पुराकृत पुण्यदिं सुखमननुभविसुत्तिरॆ—

मालिगॆ कप्पमीव खचरर् पिडिदिंद्रननीयदाज्ञॆयं ।
पालिसलॊल्लदॆळिसुवुदुं चररिंदरिदुग्र कोपमु- ॥

---

के कारण उस बालक का नाम इंद्र रखा । १३४ —वह बड़ा हुआ और समस्त विद्या सीखकर खेचरों के दोनों दलों के वीराधिवीरों को पराजित कर, चक्रवर्ती बनकर, अपने राज्य (विजयार्ध पर्वत) को स्वर्ग, अपनी रानियों को ऊर्वशी, रंभा जैसी देवतास्त्रियों, अपने हाथी को ऐरावत, अपने घोड़े को उच्चैःश्रवा (इंद्र का घोड़ा), अपने अनुचर को हरिकेसरी नामक धनुर्धारी, अपने गायकों को तुंबुर नारद, अपने मुख्य पुरुषों को लोकपालक, अपनी सभा को सुधर्म, अपनी सेना को देवसेना, अपने आयुध को वज्रायुध, अपने विमान को ऋतुविमान, अपने पुरोहितों को अश्विनी आदि अष्टवसु, अपने किन्नरपुर के लोगों को किन्नर, यक्षपुर के लोगों को यक्ष, अपने मुख्यमंत्री को बृहस्पति, अपने आपको स्वयं इन्द्र समझकर अड़तालीस हजार अंतःपुर का स्वामी बनकर पूर्वजन्म के पुण्य विशेष से सुखका अनुभव कर रहा था कि— माली को खेचर जो लगान देते थे उसे न देकर, उसके अधिकार को अस्वीकार कर, आज्ञा को न मानकर, निंदा करके इंद्रसे मिल गये । गुप्तचरों से इस विषय को जानकर माली आग बबूला हुआ । असंख्य सेना लेकर इंद्र को निर्मूल करने के उद्देश्य से उसने विजयार्ध पर्वत पर चढ़ाई कर दी । १३५ —उसके

न्योलिसें मेरॆदप्पिद बलंबॆरसिद्रननागळुंतॆ नि- ।
मूॆलिसलॆंदु कीरि नडॆदॆय्यिदना विजयार्धशैलमं ।।१३५।।

अंतु तन्नोडवुट्टिद सुमालिमाल्यवंतरूं किष्किंधन मक्कलप्प ऋक्षज सूर्यजरूं पॆशररिकॆय नायकरूं बॆरससंख्यात सेनासमन्वितरॆनॆत्ति बर्पुदनिंद्रं कॆळ्दु रयनूपुरचक्रवाळपुरदिंदिदिरॆत्ति बंदैरावणारूढं लोकपाल पुरस्सरं महायुद्धंगॆय्दुदं—

मालि मुळिसिंदमिंद्रंन * मेलॆ निशानास्त्र वर्षमं कळॆवुदुमा ।।
मालियनिंद्रं दिव्य श * रालियिनॆच्चंतकंगॆ बाणसु गॆय्दं ।।१३६।।

अदं कंडु सुमालि माल्यवंतरूं ऋक्षज सूर्यजरूं बॆररू मरिकॆय नायकरूं बिरितोडियोगि पाताळलंकॆयं पॊक्करागळपहार तूर्यमं पॊयिसि—

प्रथित प्रयुभुज सहायं
मथियिसि रिपुबल मनाजियॊळ् पूर्ण मनो- ।।
रथनिदिर्गॊळॆ पौरजनं-
रथनूपुरचक्रवाळपुरमं पॊक्कं ।।१३७।।

अंतु गॆल्लंगॊंड यक्षपुरमनाळ्व विश्वावसुगं रोहिणिगं पुट्टिद वैश्रवणंगॆ लोकपालवॆसर पट्टमं कट्टि लंकॆयं कॊट्टु यमधरनॆंब विद्याधरंगॆ लोकपालवॆसरनित्तु किष्किंधपुरमं कॊट्टु मत्तं तन्ननिंद्रनागि भाविसि सुखमिर्पुदुमित्तल्—

---

साथ सुमाली, माल्यवंत एवं किष्किंध के पुत्र ऋक्षज, सूर्यंज भी अन्य सामंत नायक युद्ध में आ मिले। इसकी खबर पाकर रथनूपुर चक्रवाल-पुर में ऐरावत पर चढ़कर, सेनानायकों को साथ लेकर आकर महायुद्ध में भिड़ने पर— माली ने क्रोध से इंद्र पर तीक्ष्णबाणों की वर्षा की तो इंद्र ने दिव्यबाणों से माली को मारकर यमपुरी भेज दिया। १३६ —इसे देखकर सुमाली, माल्यवंत एवं सूर्यज, ऋक्षज तथा अन्य नायक बिखरकर। भागकर पाताललंका पहुँचे। इधर इंद्र ने युद्धविराम की भेरी बजवायी।— अपने विजयी राजा के स्वागत के लिए रथनूपुर चक्रवालपुर की प्रजा मंगलवाद्यों के साथ आयी तो अपनी प्रशंसा सुनता हुआ इंद्र नगर में प्रविष्ट हुआ। १३७ —इस तरह जयवधु को सन्तुष्टकर, यक्षपुर के शासक विश्वावसु और उसकी पत्नी रोहिणी के पुत्र वैश्रवण को लोक-पालक की उपाधि से विभूषित कर, लंका का सिंहासन सौंपकर, यमधर

पाताळलंकेयोळ् सं-*प्रीति पोंदळ्दिरे सुमालि खेचरपतिगं ।।
प्रीति मतिगं जगद्वि-*ख्यातं रत्नश्रवं तनूभवनादं ।।१३८।।

आतनतिप्रख्यातनागि पुष्पोत्तरमेंब महागह्ननदोळ् विद्येगळं साधिसि सिद्ध परमेष्टिगळं स्तुतियिसुत्तिर्प समयदोळ् कौतुकमंगळ पुरनाळ्वं व्योमभानुवेंबं व्योमचरं निजतनूजेयप्प कैकसियेंब कन्यारत्नमं दिव्यमुनिमुख्यशदेशदिं तनगे तंदु कुडुवुदुमल्लियें विद्येयिं पुष्पोत्तरमेंब पोळलं माडिसि पितृमातृगळं बरिसि शुभ दिन मुहूर्तदोळाकेयं मदुर्वेनिंदु निरंतरोत्सवदिनिर्पुदुमोंदु दिवसमा कैकसि चतुर्थस्नानानंतरं निजमनोवल्लभन सूळ्गेवंदु—

हरियं हिमकरनं खर-
करनं बेळगप्प जीवदोळ् कनसिनोळा ।।
हरिणाक्षि कंडु गृहवन-
मराळ सारस खंगळिदेळ्चत्तळ् ।।१३९।।

अंतुप्पवडिसि तन्न कंड कनसुगळननुक्रमंदप्पदरिपुवुदुं—

भरतार्धक्कधिराजनप्प सुतनं पेत्तप्पे तन्वंगि के- ।
सरियं कंडुदरिं कलाकुशलनं तत्वज्ञनं पेत्तपै ।।
हरिणीलोचने निश्चयं कनसिनोळ् शीतांशुवं बाल भा- ।
स्करनं कंडुदरिंदमेंदरियै पेळ्दं तत्फलप्राप्तियं ।।१४०।।

---

नामक विद्याधर को किष्किंधपुर सौंपकर, अपने आपको स्वयं इन्द्र समझकर सुख से रह रहा था।— इधर पातालंका में खेचरपति सुमाली को अपनी रानी प्रीतिमती से जगद्विख्यात रत्नश्रव नामक पुत्र हुआ। १३८ —वह अतिप्रख्यात हो, पुष्पोत्तर नामक घने जंगल में विद्यार्जनकर, सिद्ध-परमेष्टियों की स्तुति कर रहा था कि कौतुक मंगलपुर के राजा व्योमभानु नामक खेचर ने दिव्यमुनि के आदेशानुसार अपनी पुत्री कैकसी का विवाह रत्नश्रव से करवाया। वह वहीं अपनी विद्या से पुष्पोत्तर नामक नगर का निर्माणकर, माता-पिता को बुलवाकर सन्तोष कर रहा था कि एक दिन कैकसी ने चतुर्थस्नान कर निद्रा कर रही थी कि-- प्रातः घड़ी में स्वप्न में सिंह, सूर्य, चंद्र को देखकर, राजगृह का मोर और हंसों की ध्वनि सुनकर जाग उठी। १३९ —उठकर अपने स्वप्न का क्रमानुसार विवरण सुनाने पर-- स्वप्नफल समझाते हुए रत्नश्रव ने पत्नी से कहा कि वह अर्ध भरतवर्ष का राजा बनने योग्य पुत्र को जन्म देगी। सिंह को देखने के कारण वह पुत्र कला-कुशल और सूर्यचंद्र को देखने के कारण तत्वज्ञ बनेगा। १४०

अंतु रत्नश्रवं शुभस्वप्न फलनिरूपणं माळ्पुदुमा नितंबिनि निश्वधि प्रमोदमं तळेंदु यथाक्रमदिननुदिनं गर्भं बळेयेवळेये—

अलसुवुदिल्लागुळिकेय-
पोलसिल्ल बळल्वुदिल्ल कृशतेय देसेयि-।
ल्ललघुपराक्रमि बसिरोळ्-
नेलासिद मेय्गलि तनूजनेंदरिपुववोल् ॥१४१॥

हूंकार पूर्वकं क-
ण्णं कैच्चनेगेय्दु देसेगळं नोळ्पळ् म- ॥
त्तं कूरसियोळ् निजमुख-
पंकजमं सुतन दपमं सूचिपवोल् ॥१४२॥

भरत त्रिखंड मंडल-
परिरक्षण दक्षनी तनूभवनेंबी ॥
परमोत्सवमं पेळ्वं-
तिरे पुरदोळ् कुसुमवृष्टि करेदुदु निच्चं ॥१४३॥

रणरसिकं जगद्विजयि खेचरकांतेय गर्भदर्भकं।
रणदोळनेक वैरिनृपरं तवे कोंदु तदीय मासदिं।
तणिपुगुमेम्मनेंदु परमोत्सवदिं परेगुट्टिट बिच्चतं।
कुणिदुवु भूतकोटि गगनेचर वल्लभ राजधानियोळ् ॥१४४॥

इंतिवर तोर्केयिं गर्भदर्भकनळ्केयुमदटुमखिल

—स्वप्न का फल निरूपण सुनकर कैकसी सन्तुष्ट हुई। उसका गर्भ यथाक्रम बढ़ा।— गर्भवतियों में सहज आलस्य, जंभाई, थकावट, क्षीणता कैकसी में दिखाई देने के कारण इस बात को संकेत दे रही थी कि गर्भ में बढ़ता हुआ पुत्र बड़ा ही बलशाली है। १४१ कभी-कभी हुंकारकर, लाल-लाल आँखों से समस्त दिशाओं को देखती है। कभी खड्ग में अपने मुख के प्रतिबिंब को, जन्म देनेवाले पुत्र के दर्प को सूचित करती-सी देखती है। १४२ —यह व्यक्त करता था कि उसके इस पुत्र में भरत-वर्ष आदि तीन उपद्वीपों की रक्षा करने की क्षमता निहित है, हर रोज पुष्पवृष्टि होती थी। १४३ उस राजधानी के करोड़ों भूत इस उत्साह से ढोलक बजाकर स्वेच्छा से नाचने लगे कि कैकसी के गर्भ में स्थित बालक रणरसिक जगद्विजयी बनकर, शत्रु राजाओं को मारकर। उनका मांस खिलाकर हमें तृप्त करेगा। १४४ —इस तरह बड़ी धूमधाम से गर्भ-स्थित बालक का विकास और शौर्य जनमन को स्पष्ट होनेपर, नवमाँ

जनप्रतीतमागॆ नवमासं नॆरॆयॆ कूसं पॆत्तु दशम दिनदॊळ् भीमनॆंब राक्षसं कॊट्ट नवमुख रत्न मुख रत्नभूषणद माणिक्कंगळॊळातन मुखं प्रतिबिंबिसॆ दशमुखनॆंदु पॆसरिट्टु मत्तं भानुकर्णनुं चंद्रनखियुं विभीषणनुमॆंब मक्कळननुक्रमदिं पॆत्तॊडवर् बळॆदु शैशवमनतिक्रमिसि प्रभु मंत्रोत्साह शक्तित्रयमॆ मूर्तिगॊंडंतॆ मूवरुमखिलशास्त्र पारावार परगरॊदुदॆवसमास्थायिका मध्यनायक रत्नगळॆंतिर्द समयदॊळ्—

श्रवणानंदमनुंटुमाडॆ मणिघंटा निस्वनं केतु प-
ल्लव हस्ताभिनयंगळं मणि विमान श्रेणिगळ् बीरॆ वै- ।।
श्रवणं कामन बिल्गळं कॆदरॆ भूषा पंच रत्नांशुगळ् ।।
दिविजेंद्रं खचरेंद्रनल्लनॆनॆ पोगुत्तिर्दनाकाश दॊळ् ।।१४५।।

अंतातं तृणीकृत त्रिभुवननागि पोगुतिर्पुदं दशग्रीवनुद्ग्रीवनागि पोगुत्तिर्पनीतनॆत्तणातनॆंबुदुं कैकसि दशमुखगिंतॆंदळीमनॆम्मक्कन मगं वैश्रवण नॆंबनुभय श्रेणिगरसनप्पिंद्रनॆंब विद्याधर चक्रवर्ति निम्म पिरिय मुत्तम्ममप्प मालियं कॊंदु नम्मन्वदिं बंद लंकॆयं कॊट्टॊडीतनदनाळुत्तिर्पनामुमीतंगॆ भीतरागिर्पॆवॆंदु दुःखगॆय्यॆ विभीषण बारिसि निम्म पगॆयं बगॆदंतॆ तीर्चि दशवदनंनिमगॆ संतोषमं माड-

---

महीना भरने पर कैकसी ने पुत्र को जन्म दिया। दसवाँ दिन, भीम नामक राक्षस द्वारा दिये गये नवमुख रत्नाभरण के माणिक्य में बालक का मुख प्रतिबिंबित होने के कारण उसका नाम दशमुख रखा गया। तत्पश्चात भानुकर्ण, चंद्रनखी, बिभीषण नामक बच्चों ने जन्म लिया। उन्होंने अपना शैशव बिताकर समस्त शास्त्रों में ऐसे पारंगत हुए मानो तीनों शक्तियाँ एक हुई हों। दरबार में एक दिन वे (तीनों) रत्नों के समान सुशोभित हो रहे थे। इतने में— रत्ननिर्मित मणिघंटिकाएँ कानों को आनन्द देने लगीं, रत्ननिर्मित विमान की ध्वजाएँ हस्ताभिनय करने लगीं और धारण किए हुए आभरणों का प्रकाश कामधनुष जगा रहा था कि वैश्रवण आकाशमार्ग से देवेन्द्र की भाँति प्रयाण करता हुआ दिखाई पड़ा। १४५
—तीनों लोकों को तृणवत् समझकर, विमानारूढ़ हो प्रयाण करनेवाले वैश्रवण को देखकर उसके संबंध में कैकसी से पूछने पर वह बोली—यह हमारी बहन का पुत्र वैश्रवण है। खेचर कुल के दोनों पक्षों के राजा इंद्र नामक विद्याधर द्वारा तुम लोगों के प्रपिता माली का वध कराकर वंश परंपरा में आये हुए हमारे लंकानगर को जीतकर इसे दिया है। यह वैश्रवण अब उस लंका का राजा है। इससे डरकर हम जी रहे हैं।

लार्कुमन्नगं नम्म कुलक्के तक्क विद्येगळं साधिसुवेवेंदु तायॖगे
बिन्निविसि शुभदिन मुहूर्तदोळ्—

पितृ मातृ पितामहर्गा* नतरागि पिशाच भूत कोटियिनत्य-।
द्भुतमनरण्य मनप्रति*हनशौर्यर् बंदु पोक्कश्चलित धैर्यर् ॥१४६॥

आ साहसिकर् तत्वा* भ्यासमनोंडरिसुव मुनियवोल् पूण्दन्य ॥
व्यासंगं किडे पल्यं * कासनदोळ् मूवरूं यथाक्रममिर्दर् ॥१४७॥

अंतु दशकोटि मंत्रदोळ् कूडिद षोडशाक्षर महाविद्येयं साधिसुत्तिर्पुदुं जंबूद्वीपाधिपतियप्पनादृततेंब देवं भौम विहारदिं बंदवरं कंडु विद्यासाधनेगे विघ्न हेतुगळप्पनेकविध विकुर्वणेयं विगुर्विसेयुमवर् मंदरदंतचलित धैर्यरागिर्दु विद्येगळं साधिसि सिद्धविद्यर् पंचपरमेष्टिगळं पूजिसिदिबळियं—

आविष्कृत नियमं त्रिदि
नावधियोळगण्य पुण्य निलयं विद्वि- ॥
ड्जीवाकर्षण पटुवं
रावणनुग्रासि रत्नमं साधिसिदं ॥१४८॥

अंतु चंद्रहासमं साधिसि विद्येयिं स्वयं प्रभवेंब पोळलं माडि निज परिजनंबेरसु बंधुजनमं बरिसि—

---

ऐसा कहकर कैकसी रोने लगी। विषय जानकर विभीषण ने माँ से कहा—आपके शत्रु का वध करके दशकंठ आपके मन को सन्तुष्ट करेगा। इसी उद्देश्य से हमारे कुल के लिए योग्य विद्या पायेंगे। ऐसा कहकर शुभ दिन के शुभ मुहूर्त में-- माता, पिता, प्रपिता को प्रणाम करके, पिशाची भूत वेतालों से भरे अद्भुत अरण्य में वे तीनों प्रविष्ट हुए। १४६ --वे साहसी तत्वाभ्यास करनेवाले मुनियों की तरह किसी भी सुख की ओर ध्यान न देकर 'पल्यंक' आसन में यथाक्रम रह रहे थे। १४७ —इस तरह वे दशकोटि मंत्रों से युक्त सोलह अक्षरों की महाविद्या प्राप्तकर रहे थे कि जंबू द्वीप का राजा अनादृत नामक देवता उनके अभ्यास में विभिन्न तरह की बाधाएँ उपस्थित करता रहा। लेकिन मंदार पर्वत-अचल उन्होंने समस्त विद्याओं को पाकर पंचपरमेष्टियों की आराधना की। तत्पश्चात— कठोर तपस्या के फलस्वरूप अगण्य पुण्य निलय रावण ने विरोधियों के प्राणों को आकर्षित करनेवाले उग्र चंद्रहास नामक खड्ग को प्राप्त किया। १४८ --उसके बाद अपनी विद्या से ही स्वयंप्रभा नामक नगर का निर्माण किया और अपने सगे संबंधियों को, परिजनों को भी बुलवा

पलवुं विद्येयोळं भुज *बलदोळमी दोरेयरारुमिल्लेनिसि सुहृ-
त्कुलमं पालिसुत्तसुहृ * त्कुलमं साधिसुव मनदळुकेयिनिदं ॥१४९॥

अंतिर्पुदुमित्त सुरसंगीतकपुर प्रधानं मयं तन्न मगळप्प मंडो-
दरियं नैमित्तिकादेशदिं विमानमनेरिसि कोंडु चरनिरूपितमप्प
स्वयंप्रभ नगरक्के वंदु दशवदनंगे महाविभूतियिं मदुवेयं माळ्पुदुम-
नंतरं मय मारीचादिगळं मन्निसि कळिपि वळियं तन्न
विद्येगळं विगुर्विसि नोडि हर्षदोळ् कूडि भौम विहारक्के पोगुत्तुं मेघ
श्रृंगवेंब नग नितंवनंबुज षंडदोळ् पद्मेयुं विद्युत्प्रभेयुमशोकलतेयु
मोदलादरुसासिर्वर कन्नेयर् नीराटमनाडुवुदं कंडु मनंगोंडाकेगळं
गांधर्वविवाहदिं स्वीकरिसलबगेवुदुं कन्नेयरिना वार्तेयनक्ररय्यनप्प
सुरसुंदरं केळ्दु कनकमालंबेरसु मेलेत्ति वर्पुदुं कादि नागपाशदिं
कट्टि कोललोल्लदे विट्टु कळेदुदर्के मेच्चि—

अनिबर् कन्नेयरुमना
जनपति परिणयन विभवदिंदीयें दशा- ॥
नननोसेदु मदुवेनिंदा-
त्म नगरमं वंदु पोक्क नत्युत्सवदिं ॥१५०॥

---

लिया।— समस्त भूमंडल में विद्यावल और भुजवल में अद्वितीय, असमान कहलाकर, कीर्तिमान हो, सद्रक्षा और सद्शासन की प्रवृत्ति से पूर्ण वह शासन कर रहा था। १४९ —ऐसे में सुरसंगीनपुर का मंत्री मय ज्योतिष के आदेशानुसार अपनी कन्या मन्दोदरी को विमान में विठाकर सेवकों के बताये हुए स्वयंप्रभा नगर में आया और वहाँ रावण से उसकी (मंदोदरी की) शादी करायी। उसके बाद रावण ने मय, मारीच आदि को सम्मान-सत्कार के साथ विदाकर दिया और अपनी अर्जित विद्याओं का स्मरण करके प्रसन्न होकर, विहार के लिए निकल पड़ा। वहाँ मेघश्रृंग नामक पर्वत शिखर के सरोवर में पद्मा, विद्युत्प्रभा, अशोकलता आदि छः हजार स्त्रियों को जलक्रीड़ा करते हुए देखकर गांधर्व विधि से विवाह करने की इच्छा हुई। इसे जानकर उन कन्याओं का पिता सुरसुंदर अत्यन्त कुपित हुआ और कनकमाला के साथ मिलकर रावण पर आक्रमण किया। लेकिन रावण ने उन दोनों को नागपाश में वांधकर, मारे बिना ही छोड़ दिया तो वे खुश हुए। और —सुरसुन्दर ने अपनी कन्याओं का विवाह रावण के साथ कर दिया तो रावण अत्यन्त धूमधाम से अपने नगर में प्रविष्ट हुआ। १५० —तत्पश्चात् कुंभपुर के महोदर की पुत्री विद्युद्वेग का

अंतु स्वयंप्रभ नगरक्कें वंदु कुंभपुरद महोदरंगं सुरूपेगं पुट्टिद विद्युद्वेगेयं भानुकर्णंगें मदुवें माळ्पुदु मातनाकेंगतिस्नेहितनागि कुंभपुरद मातुगळनागळुं मेंच्चि केळुत्तुमिदों डातंगें कुंभकर्णाभिधान-माय्तु मत्तं ज्योतिः प्रभ पुरसनाळ्व शुद्धकमलंगमानंदमालेगं पुट्टिद राजीवसरसेयेंब कन्येयं विभीषणगें मदुवेमाडि सुखदिनिरें—

मंडोदरि पडेदळ् मु ※ न्निदगियं बळिकें मेघवाहननं श- ।।
त्रुंदमरनमित बलरं ※ नंदनरं खेचरान्वयानंदनरं ।।१५१।।

अवराशा दंतिगें नि ※ ग्गवंगळादंतें तनगें नेरवागें महो- ।।
त्सवमनदें तळेदनों खच※रवल्लभं कळेयलेंदु कुल परिभवमं ।।१५२।।

लंकेयन न्वयागतमनेम्म पितामहनप्प मालियं- ।
मुं कडुकेय्दु कोंदेळेदुकोंडननिक्किदोंडेन्न बाहुवी- ।।
यं कडु नोंच्चिनक्कुमेंतुतु मनदुम्मळदिं कनल्दु वी- ।
तांकुशनेंत्तिदं मुळिदु लंकेगनून बलं दशाननं ।।१५३।।

अंतु महाबल सहितनागि लंकेगेत्तुवुदुं वैश्रवणनदं केळ्दु तानुविदिरेंत्ति बंदुमयबलामुं तागि कादुत्तुमिरें धनद दशवदननं मुट्टेवंदु नीं मदीय जननियनुजेय तनुजनप्पुदरिं निन्नोळेनगें काळेग-

---

विवाह भानुकुंभ के साथ कराया। वे दोनों अपार प्यार से कुंभपुर की ही बात करते रहते। इससे सन्तुष्ट होकर उसका नाम कुंभकर्ण रख दिया। इधर ज्योतिप्रभापुर के राजा शुद्धकमल और उसकी रानी आनंदमाला से उत्पन्न राजीवसरसा नामक कन्या के साथ विभीषण का विवाह हुआ। वे सुखमय जीवन बिता रहे थे।— मन्दोदरी ने पहले इंदगी को और तत्पश्चात मेघवाहन, शत्रुदम नामक बलशाली पुत्रों को जन्म देकर खेचरवंश को आनंद प्रदान किया। १५१ —वे पुत्र दिग्गजों की दाढ़-से रावण की सहायता करने लगे तो उसने (रावण ने) अपने वंश को प्राप्त पराजय को दूर करने का निश्चय किया। १५२ —अपने वंश के शासन में सम्मिलित लंका को, पितामह बाली को मारकर वश में करलेने वाले को मारने पर ही अपने भुजबल की सार्थकता है, ऐसा सोचकर आवेशपूर्ण क्रोध में अप्रतिम रावण ने लंकापर चढ़ाई कर दी। १५३ —उसके असंख्य सेनाबल को देखकर वैश्रवण ने स्वयं सामना किया और शत्रुसेना को हराते हुए रावण के पास आकर कहा—तुम मेरी माँ की छोटी बहन का पुत्र होने के कारण तुम्हारे साथ मुझे युद्ध करना नहीं चाहिए। अतः युद्ध तजकर चले जाओ। उसे सुनकर रावण मुस्कराया और

मुचितमल्तु तोलगि पोगेंवदुं दशवदनं नगुनक्कु कलहक्के वंदु नण्पुदोपोडवसरमल्तु केंदुगेय्येंदु कडकेय्दु निल्वुदुं—

मुनिसिदिसे वैश्रवणं
दनुजनदं कडिदु कळेदु निशितास्त्रदिना- ॥
तन तलेयुमनिर्वगिय-
ण्पिनमेच्चं मूर्छेवोगि वीळ्गर्पिनेगं ॥१५४॥

अंतु मूर्छेवोदनं वियंच्चरानुचरर् विमानदोळिट्टु विजयार्धनगवक्कुय्वुदुं दशाननं पुष्पक विमानमं कळेदुकोंडु जयपताकेयनेत्तिसि निजस्वयंप्रभपुरक्के पोपुदुमित्तल्—

सेनामुखदोळ् भंगम * नानेय्दिदनेंदु विश्रुतं वैश्रवणं ॥
मानधनं वैराग्या * धीनमनं जैनदीक्षेयं कैकोंडं ॥१५५॥

अंतु निश्शल्यनागि विनयंधर चारणर समीपदो तपंगेय्दुपवर्ग श्रीयनालिंगिसिदनित्त दक्षिणसमुद्र वेळा निवासिगळप्प इंद्रन सामंत- रेल्लरुमं वायकेळिसि मत्तमोमें हस्त प्रहस्त सुमालि माल्यवंत प्रमुख सहितं पुष्पक विमान रूढनागि महावलं वेरसु गगनमार्गदिं नडेदु—

वडगण देसेयं साधिस*लोडरिसि भूचर वियच्चरेश्वररं त ॥
न्नडिगेरगिसि दशकंठ*पडेदं देसेवण्गे कीर्तिमणिकंठिकेयं ॥१५६॥

---

वोला—युद्ध में प्यार जताने का समय नहीं है। और युद्ध के लिए तैयार हुआ।— वैश्रवण ने कुपित होकर रावण पर तीक्ष्ण वाणों से प्रहार किया तो उन्हें काटकर तीक्ष्ण वाणों से ऐसा मारा कि सर कट जाय। वह पृथ्वी पर गिरा और मूर्छित हुआ। १५४ —इस तरह मूर्छित उसे सेवक विमान में रखकर विजयार्धनगर ले गये। रावण पुष्पक विमान को खोकर, जयपताका को रोककर, स्वयं प्रभापुर गया। इधर— युद्ध में पराजित होने के कारण वैश्रवण दुःखी हुआ और वैराग्य से जिनदीक्षा ले ली। १५५ —इस तरह वैराग्य धारणकर विनयंधर चारणजी के चरणों में तपस्या कर मोक्षकांता का आलिंगन किया। इधर इंद्र आदि दक्षिण समुद्र तट के निवासियों को पराजित कर पुनः हस्त, प्रहस्त, सुमाली, माल्यवंत आदि प्रमुखों के साथ पुष्पक विमान में चढ़कर रावण महावल से मिलकर आकाशमार्ग में विचरण करते हुए,—यह निर्णयकर कि उत्तर .दिशा को पराजित करना है, भूतलवासियों, आकाशगामी

अंतु निखिल राजकमनदिर्पि कप्पंगोंडु कैलासनगद सम्मेद गिरिय नडुवण सुरदारु वनोपकंठदोळ् बीडं बिट्टिर्पुदुं—

देसे किवुडुवीळ्विनं तेरे
मसगिद मुन्नीर पोंचिदुळ्ळोळमं बे- ॥
र्चिसि कारमुगिल मोळगं
मुसुळिसि पोण्तित्तु बृंहितं काननदोळ् ॥१५७॥

आ निनदं किविगेय्तरे ※ दानवपति भद्रगजद वृंहितमेंदा ॥
काननमं पुगुतंदु म ※ दानेकपदोंदु पिरिय कडुपं कंडं ॥१५८॥

आ काडानेय कडुपिन नडुवे—
बेदरे मनं वनस्थलदोळोंदिभमिर्दुदु मूर्ध पिंडम- ।
ल्लिदु शिखरस्थलं निटिलवल्लिदु पासरे कर्णताळम- ॥
ल्लिदु चल पक्षसंहति मदप्लवमल्लिदु निर्झर प्लवं ।
मदगजवल्लिदिंद्रनोळिदिर्चिद नील नगेंद्रमेंबिनं ॥१५९॥

अंतिर्द सकल शुभलक्षणाकारमुमत्यायत करमुमिंद्रनीलच्छायमुं महाकायमुमप्प भद्रगज मं कंडु मनदे कोंडेमगे पट्टवर्धनमागलिदुवे तक्कुदेंदु मुन्नमिंद्रंगं पिडियलीमदतिवर्तियं दानव

खेचरों को अपने चरणों में झुकाते हुए, दिशारूपी युवती को रत्नमाला पहनाता-सा कीर्तिशाली बना। १५६ —समस्त राजाओं के तेजस् का अपहरणकर, उनसे लगान लेकर, कैलास पर्वत के सम्मेद शिखर के मध्य स्थित सुरदार उद्यान में डेरा डालकर रह रहे थे कि— दिशाओं को बहरा बनाता-सा, भयानक लहरों से भरे समुद्र के अन्त:करण को भयभीत करता-सा वर्षाऋतु के काले बादलों की घर्षणा से उत्पन्न घनगर्जना को तुच्छ करनेवाली भयंकर ध्वनि का हाथी की गर्जना सुनाई पड़ी। १५७ —वह ध्वनि कानों पर पड़ी तो रावण समझ गया कि यह किसी बलशाली हाथी की गर्जना है। कानन में बढ़नेवाले मदमाते हाथियों के झुन्ड को देखा। १५८ —उन जंगली हाथियों के समूह के बीच में— भयभीत मनका एक हाथी था। उसका कपाल पर्वतशिखर-सा, ललाट सपाट पत्थर-सा, कान गरुड़ के पंख-से, रसता हुआ मद जलपात के पानी-सा दिखाई दिया तो ऐसा प्रतीत हुआ कि यह मदगज नहीं है अपितु इंद्र के साथ भिड़नेवाला नीलाचल है। १५९ —इस तरह शुभ लक्षणों से युक्त, योग्य आकारके, लंबा सूंड और नीलवर्ण से सुशोभित उस हाथी को देखकर रावण ने सोचा कि वही हाथी उसके सिंहासन के योग्य है और

चक्रवर्ति विद्येयिनश्रमदोळे पिडिदा महागजमं त्रिजगद्भूषण नामधेयं माडि बीडिगॆ मगुळे वर्पुदुमा समयदोळ्—

नॆत्तर पनिगळ् मेय्योळ् * पत्तिरॆ भोरॆंदु वंदु गगनस्थलदिं ॥
मत्तोर्वं दूतं चल *चित्तं सर्वांग विनय विनमितनादं ॥१६०॥

आगि देवशाखावलियॆंबॆनां वानरध्वजानुचरनॆं सूर्यजनुं यक्षजनुं निन्नाज्ञॆयं नॆरॆंबडॆदु पाताळलंकॆयिंदॆत्ति पोगि निजान्वयागतमप्प किष्किंधपुरमं कोळलॆंदु परिदु मुत्तिकोळ्वुदुं पोरमट्टुकादि—

विजिगीषु वलिपर्निं ऋ—
क्षजनं सॆरॆविडियॆ कंडु काय्दडरिद सू- ॥
र्यजनं पुण्बडिसिदने
नजेय भुजवलनो समरदोळ् यमराज ॥१६१॥

आ समयदोळ् सूर्यजनं नम्मवर् मगुळॆयॆम्मनगरक्कॆ नॆगपिकॊंडु पोदरानुमी तॆरनं निम्मडिगरियल् बंदनॆंदु बिन्नविसॆ—

आ नुडिगेळ्दु सैरिसदॆ कालिडलागसवॆय्ददी महा ।
सेनॆगॆनल् जवंगिडिसला जवनं परियिट्टु मुत्तिदं- ॥
पो निमिषक्कॆ किष्किपुर गोपुरमं बिडॆ सुत्तिमुत्तॆ ना- ।
नानक निस्वनं दश दिशाननमं मुळिसि दशाननं ॥१६२॥

---

जिस हाथी को पकड़ने में पहले इंद्र भी असमर्थ रहा, रावण ने अपने विद्याबल से पकड़कर उसे त्रिजगभूषण नामांकितकर, अपने राजमहल पहुँचा ! इतने में— अचानक एक अनुयायी (सेवक) आकाशमार्ग से आकर उतरा। उसके शरीर में रक्त की बूंदें थीं और वह भयभीत था। १६० —उसने आकर रावण को नमस्कार किया और कहा—"प्रभो, मैं शाखावली नामक वानरध्वजी का अनुचर हूँ। आपकी आज्ञा पाकर सूर्यज और ऋक्षज ने पाताललंका से सेना समेत जाकर, अपने वंश परंपरा से आये हुए किष्किंधा राज्य को पाने के उद्देश्य से, उस पर चढ़ाई की। —उन बलशाली वीरों से लड़कर यमराज ने ऋक्षज को गिरफ्तार कर लिया और सूर्यज को घायल कर दिया। १६१ —उस समय हमारे लोग घायल सूर्यज को उठाकर हमारे नगर में ले गये और मैं आपको घटना की सूचना देने के लिए यहाँ चला आया"। —उसकी बात सुनकर अत्यन्त कुपित होकर अपनी अपार सेना के साथ दशानन ने यम को पराजित करने के लिए किष्किंधापुर को घेर लिया। उस विशाल सेना को पैर रखने के लिए किष्किंधा में जगह नहीं रही। रणोत्साह में बजायी जानेवाली भेरी की ध्वनि दशोदिशाओं में फैल गयी। १६२ —इसे देखकर साटोप नामक यम का सेनानायक ने

अंद कंडु मामसकंगांडु जवन नायकं साटोपनेंबनाटोपंगिडदे पोरमट्टु नेरेंदु निल्वुदुमवंगे भंगमं खरदूषणर् पडेवुदुमदं यमं कंडु समर सन्नद्धनागि पोरमट्टु तागि दशमुखन शिळी मुखक्के सुगिदु समरमुख परान्मुखनागि—

अति जंघालं भय कं ॐपित तनु निजपतियनिंद्रनं कंडु पदा- ।।
नतनेंदं दशमुखन ॐ प्रतिमं बवरदोळिदिर्चुववरारवनं ।।१६३।।
अँनें मुळिदिंद्रं दशवदॐ नन मेलेर्तप मसकदिंदेळ्वुदुमा- ।।
तन मंत्रिमुख्यरेंदर् ॐनिनगिदु पदनल्तु नेरेंदु कादुवुदवनोळ्।।१६४।।

अँदवर् नयमं नुडियें माण्दोडंबट्टु यमंगे सुरसंगीतक पुरमं कोट्टु विषयासक्त चित्तनप्पुदरिनंतः पुरमं पोक्कु मेय्मरेंदिर्दनित्त दशमुखं ऋक्षज सूर्यजर्गे किष्किधपुरमं कोट्टु निजान्वयागतमप्प लंकेयं माता पितृ पितामह सहितं पुष्पक विमानारूढनतिशय विभूतियं पोक्कु सुखदिंदिरे केलवु दिवसक्के—

निरूपम चरित्रे सूर्य ज ॐ नरसियेनिप्पिदुमाले पेत्तळ् लोको- ।
त्तररेनिप वालि सुग्री ॐ वरूमं श्रीप्रभेयुमं यथाक्रमदिंदं ।।१६५।।
अलघु भुजरेनिप खेचरॐकुलतिलकरनखिल शस्त्र विद्याविदरं ।
बलयुतरेनिप्प ऋक्षज ॐ कुलवधु नळ नीळरेंब सुतरं पडेदळ् ।।१६६।।

---

निडरता से रावण की सेना से भिड़ा तो खरदूषणों से पराजित हुआ। इसे देखकर इंद्र स्वयं बढ़ा तो रावण ने उसे अनायास पराजित किया। यम पराजित होकर, समरभूमि से विमुख होकर— भयभीत हो, काँपते शरीर से भागने की तैयारी में मजबूत पैरोंवाला वह अपने स्वामी इंद्र के पास जाकर बोला कि दशवदन के विरुद्ध कोई लड़ नहीं सकता। १६३ --इंद्र कुपित हुआ और क्रोधावेश में स्वयं रावण से लड़ने के लिए तैयार होकर निकला तो उसके समस्त मंत्रियों ने एक होकर कहा कि रावण के साथ लड़ना उचित नहीं। १६४ —इस तरह नीति की बात कहने पर उसे मानकर, यम को सुरसंगीतपुर देकर स्वयं विषय-सुख की लालसा से अन्तःपुर में प्रवेशकर सुख से रहने लगा। इधर रावण ने ऋक्षज और सूर्यज को किष्किधापुर का शासन सौंपकर, माता-पिता, प्रपिता आदि के साथ पुष्पक विमानारूढ़ होकर धूमधाम से वंश परंपरा की लंका में प्रविष्ट होकर सुख से रह रहा था। कुछ समय के बाद— सूर्यज की पत्नी परम पतिव्रता इंदुमाला नेलोकोत्तर वीर बाली, सुग्रीव नामक पुत्रों और श्रीप्रभा नामक कन्या को जन्म दिया। १६५ --और ऋक्षज की पत्नी ने अतुल

अंतु कॆलवुकालं पोपुदुं वालिसुग्रीवनविराज युवराज पदवियॊळ् निलिसि सूर्यजं पिहितास्रव भट्टारकर समक्षदॊळ् दीक्षॆयं कैकॊंडु मोक्षक्कॆ पोदनित्तल्—

परिणयन निमित्तं दश ※ शिरनत्तल् पोगॆ तॆरपुवादिर्ददटं ॥
खरनिरदुय्द्दं लंका ※ पुरदिंदं चंद्रनखियंबुजमुखियं ॥१६७॥

अंतु कळ्दुय्दु दशाननंगानतनल्लद चंद्रोदरवं यमोदरमं पुगिसि पाताळलंकॆयं स्वीकरिसि सुखदिनिरॆयित्त दशाननं मदुर्वॆनिंदु मगुळ्दु वंदु—

ऎनगिनिळ्कदॆन्ननुजॆयं पिडिदुय्दनवंगॆ तक्कुदं ।
जनियिपॆनॆंदु गर्जिसॆ दशानननातन कांतॆ निन्न मॆ- ॥
य्दुननुरक्तनाकॆगनुरूपनिदावुदु पॊल्लगॆय्दनी ।
मुनिविवेकमॆंदु नुडिदळ् मयनंदनॆ तद्दशास्यनं ॥१६८॥

अदल्लदॆयुं निनगॆ विधेयनल्लद चंद्रोदरनं कॊंदु निष्कंटकं माडिदनातनं मुळिदु नीं कॊंदु तिन्ननुजातॆगॆ वैधव्य दीक्षयं कुडुवुदु चदुरल्लॆंदु कलुषमं कळॆदळित्त चंद्रोदरन पत्नियु मंत्रवॆत्नियुमप्पनुराधॆ परिजनं-

---

साहसी, समस्त विद्या पारंगत नल-नील पुत्रों को जन्म दिया। १६६ —इस तरह कुछ समय बीतने पर वाली और सुग्रीव को क्रमश: राजा और युवराज के पद पर नियुक्तकर सूर्यज ने पिहिताश्रव भट्टारक के चरणों में दीक्षा ली और मोक्ष को प्राप्त हुआ। इधर— रावण विवाह निमित्त विचरण कर रहा था कि उसकी अनुपस्थिति में उसकी छोटी बहन चंद्रनखी को खरने लंका से अपहरण किया। १६७ —इस तरह अपहरणकर दशानन के शासन के अन्तर्गत न आनेवाले चंद्रोदर नामक राजा को मारकर पाताललंका को स्वीकारकर वहाँ सुख से रह रहा था कि रावण विवाह कर लौट आया।— रावण यह कहकर गरज पड़ा कि उससे डरे बिना उसकी छोटी बहन का अपहरण करनेवाले को उपयुक्त सजा देगा, मन्दोदरी ने समझाया कि खर रावण की छोटी बहन के योग्य वर है, चंद्रनखी ने भी उसे पसंद किया है। इसमें क्या दोष है, रावण का क्रोध विवेकपूर्ण नहीं है। १६८ —इसके अतिरिक्त चंद्रोदर जो रावण का आज्ञाकारी नहीं था, का वधकर उसके एक कांटे को रास्ते से दूरकर दिया है। अगर रावण क्रोधवश खर को मारेगा तो उसकी बहन विधवा हो जायेगी। यह रावण जैसे को शोभा नहीं देता। इस तरह विवेक की बात कहकर उसके मन के कलुष को दूर किया। इधर चंद्रोदर की

बेरसु पोगि नवमासं तीवे कूसुवेत्तीतं गर्भदोळिरे पगेवरिं सेदेवट्टे-नेंदातंगे विराधितनेंदु पेसरनिडुवुदुमातननुक्रमदिं बळेदु पगेयं साधि-सुवुपायमं बगेयुत्तिर्पि नमित्तल्—

मानधनं विवेकनिधि वालि जिनागम कोविदं पेरं- ।
गानतनागे दर्शनविशुद्धिगे दूषणमक्कुमंतरिं ॥
जैनपदक्के जैनमुनिगल्लदे कैमुगियेंदलेंदु ध-
र्मानुगनप्रमत्त चरित प्रियनादनिदेनुदात्तनो ॥१६९॥

अनंतवीर्यनं चरमदेह धारियुमवक्र विक्रमनुमप्प वालि नियमस्थनागि सुखदिनिर्पुदुमोंदु दिवसमातननुजेयं श्रीप्रभेयं बेडि दशमुखं मुख्य पुरुषर कय्योंळोलेयनट्टुवुदुमदं तिळिदु वालि-मंत्रशालेयं सुग्रीवंबेरसु पोक्कु मंत्रिमंडलमुमनाप्त परिजनमुमं बरिसि—

तगदेनगुन्मार्गिगे कू * सुगुडल् दशकंधरं मदांधं धर्मा- ॥
नुगनल्लननुजेयं कुडे * तगळिहदोळ् परदोळेनगे पातकमक्कुं ॥१७०॥
कुडे कूसनुद्धतंगां * पोडेवडुवनितक्कुमादोडेन्न चरित्रं ।
किडुगुं व्रतमं कैको * डेडेयोळ् बिट्टवने भिन्न भाजनमल्ते ॥१७१॥

पत्नी अनुराधा परिचारकों के साथ नगर छोड़कर दु:खी हुई। नौ महीने भरने पर उसने पुत्र को जन्म दिया। वैरियों द्वारा सताये जाने के कारण उस बालक का नाम विराधित रख दिया और उसके बड़े होने पर शत्रुओं को मारने के उपाय सोचती रही थी। इधर— मानधनी, विवेकी, जैनदर्शन के ज्ञाता बाली ने यह निश्चय कर लिया था कि जैन-मुनि या जिन के अतिरिक्त अन्यों को हाथ नहीं जोड़ेगा क्योंकि ऐसा करने से जिन के शुद्ध चारित्र्य पर कलंक लगता है। इस तरह धर्म मार्ग में निरत हो, विवेकी रहकर जनप्रिय हो, जी रहा था। १६९ —इस तरह उदात्त चरित हो, अद्वितीय विक्रमी बन, बाली जिनमुनि की भाँति तपस्या में लीन था कि एक दिन उसकी छोटी बहन श्रीप्रभा को रावण ने विवाह में माँगते हुए अपने अनुचरों के हाथों पत्र देकर भेजने पर बाली ने सुग्रीव के साथ अपने मंत्री मुख्यों को आमंत्रित कर कहा— "बुरे मार्ग पर चलनेवाले, दुर्व्यवहारी रावण को अपनी छोटी बहन देना मुझे पसंद नहीं है। वह मदांध है। मैं धर्मात्म के अतिरिक्त किसी और को बहन नहीं दूँगा। दूँ तो इह और पर दोनों लोकों में पाप का भाजन बनूँगा। १७० —उसे कदापि अपनी बहन नहीं दूँगा। दूँ तो उसे हाथ जोड़ना पड़ेगा। लेकिन मेरे नियम

अदरिंदातंगामी ॐ यदे कूसं काळेगक्कें मेय्दरे पल का- ॥
लद राक्षस वानर वं॰ शद नण्पेन्निदमळिदुदेंबुदु लोकं ॥१७२॥
अरसुतनंगेय्वळिपि-
धुरदोळ् मारांतरेल्लरं मळ्गिपुदुं ॥
दोरेकोळ्गुं पातकमा-
सिरियुं चिरमल्तु नीर बोब्बुळिकेयवोल् ॥१७३॥

अदरिं पापक्कं पळिगमेडेगुडद तपमनप्पुकेय्दोडेन्न कुलमुं चलमुं व्रतमुं किडदे नडेगुमेंदु तरिसंदु सुग्रीवंगे राज्यमं कोट्टु परिजनक्कें निश्शल्यनागि सद्दर्शनगगनचंद्ररेंब चारणर पक्कदोळ् तोरेंदु तपंबट्टु घोरवीरतपदिं ऋद्धिप्राप्तनादं—

सुग्रीवनुमित्तल् खच ॐ राग्रणि तन्ननुजेयं तयोपायं पा- ॥
णिग्रहण सहितमित्तु द॰ शग्रीवंगात्मपदवियोळ् सुखमिर्दं ॥१७४॥

अंतु दशवदनं श्रीप्रभेयं मदुवेनिंदु मत्तोमें नित्यालोकपुरमनाळ्व नित्यालोकनेंब विद्याधरंगं श्रीदेविगं पुट्टिद रत्नावळियं मदुवेनिंदु मगुळ्दु बर्प समयदोळ् कैलासनग नितंबस्थलदोळिर्दं महामुनिय मेले विमानं नडेयदे निल्वुदुं विस्मित मननिदेनेंदु निंदवलोकि-

के विरुद्ध बनकर मेरा व्रत विगड़ता है। आचरित व्रत को बिगाड़ना पाप है न? १७१ —उसे कन्या न देकर उससे युद्ध के लिए तैयार हो जाऊँ तो दुनिया कहेगी कि बहुत समय से राक्षस-वानरों के बीच जो स्नेह संबंध था, वह मेरे कारण समाप्त हुआ है। १७२ —शासन करने की इच्छा से युद्ध में भिड़नेवालों को हटाने से पाप लगता है। पाप से प्राप्त ऐश्वर्य नया सुख पानी के बुदबुदे के समान अशाश्वत होता है। १७३ —उससे पाप और कलंक को अवसर न देकर तपस्या के प्रति मन लगाऊँ तो मेरा कुलगौरव, निर्णय (धारणा) और व्रत भी भंग हुए बिना बच जाते हैं"। ऐसा सोचकर राज्य सौंपकर एक व्यामोह को त्यागकर सत्दर्शन गगनचंद्र नामक मुनि के चरणों में बैठकर घोर तपस्याकर मुक्ति को प्राप्त हुआ। —इधर सुग्रीव ने नम्रतापूर्वक अपनी छोटी बहन श्रीप्रभा की शादी रावण के साथ करायी और अपने राज्य में शासन करता हुआ सुख से रह रहा था। १७४ —श्रीप्रभा से विवाह कर लेने के पश्चात नित्यालोकपुर के नित्यालोक नामक विद्याधर की बेटी रत्नावली से विवाहकर लौटते समय कैलास पर्वत के शिखर पर तपस्या में लीन बाली के ऊपर से चलनेवाला पुष्पक विमान अचल हुआ। इससे चकित होकर अव-

नीविद्योयिं वालिदेवनप्पुदनरिदिन्नु मॆन्न मेलण मुनिसनुळियदॆ विमा-
नमं स्तंभिसिदॊडेनादुदी नगंबॆरसीगळ् किळ्तुय्दु समुद्रदॊळिक्कुवेनॆंदु
पुष्पकविमानदिनवनीतलक्कवतरिसि घनापघनमुमं बहुबाहु गळुमं
विकुर्विसि रसातलक्किळिदु धनदाचलदधस्थलमनॆय्दि—

सासिर विद्येगळ्वॆरसु तोळ्गळ तॆर्कॆगळिंदळ्कॆवॆ- ।
त्ता सुरवैरि बॆळ्मुगिलनॆत्तुव घोर समीरनतॆ कै- ।।
लासमनॆत्ते कावंबगॆयिं बहुरत्नमयंगळं जिना- ।
वासमनंदु वालिमुनिपुंगवनुंगुटदिंदमॊत्तिदं ।।१७५।।

अंतु शुभ परिणामिदं दशमुखनॊळप्प कलुपमिल्लदॆ कैलास
शिखरमं मॆल्लनॊत्ते पुय्यलिडुव सरमं केळ्दु—

परिजन सहितं मंडो * दरि बंदु मुनींद्र रक्षिसॆंदरगुवुदुं ।।
चरणांगुष्टमनॊय्यनॆ * करुणारस सहितनॆत्तिदं मुनिमहितं ।।१७६।।

आगळा पुय्यल्चुव रवमे कारणमागॆ दशमुखंगंदिदित्त रावण-
नॆंब पॆसराय्तनंतरमातं रसातलदिं पॊरमट्टु वालिभट्टारकरं पूजिसि
पॊडॆवट्टु तन्न पॊल्लमॆयं क्षमॆगॊंडु कळॆदु—

---

लोकिनी विद्या के द्वारा यह जान गया कि यह बाली मुनि की महिमा है। रावण समझ गया कि बाली का जो पूर्वक्रोध है उसीके कारण पुष्पक को निश्चल कर दिया है। यह सोचकर कि वह इस पर्वत को उखाड़कर समुद्र में फेंक देगा, रावण विमान से भूतल पर उतरा और अपनी बीसों मजबूत भुजाओं को रसातल में उतारकर— हजारों विद्याओं में परिणत रावण ने भुजाओं से कैलास पर्वत को उतनी ही आसानी से उठाया, मानों तूफान ने सफेद बादलों को उठा (उड़ा) लिया हो। इसे देखकर रत्नयुक्त उस पर्वत को बालीमुनि ने अपने पैर के अँगूठे से दबा दिया। १७५ —दशकंठ के प्रति किसी तरह का द्वेष के बिना रावण को किसी तरह की हानि न पहुँचाने के उद्देश्य से बालीमुनि ने पर्वत को धीरे से दबाया तो रावण चिल्लाने लगा। उसे सुनकर— मन्दोदरी परिवार के साथ वहाँ आयी और बालीमुनि के चरणोंपर पड़कर अपने पति की रक्षा करने का नम्र निवेदन किया तो मुनिवर ने अपने पैर के अंगूठे को शिथिल कर दिया। १७६ —आर्तनाद की ध्वनि के कारण ही तब से उसका नाम रावण पड़ा। रावण रसातल से रवाना होकर, बाली भट्टारक की आराधना कर, सिर नवाँकर, अपनी उद्दंडता के लिए क्षमा करने का निवेदनकर— पास के जिन-भवन में प्रवेशकर विपुल रत्नराशि

कैलद जिनेश्वरावसथमं बलगोंडोळपोक्कु देवनं ।
विलसित रत्नराशिगळिनर्चिसि बाजिसिदं लयत्रयं ।।
सुललिनमार्गे वस्तु गुण रूप जिनस्तवनांक मालेयं ।
पलतेरदिं रसंबडेये रावण हस्तदिनंदु रावणं ।।१७७।।

अंतु निर्भरभक्तियिं बाजिपागळ्—

आसन कंपमागे फणिपं फणिलोकनिनंदु बंदु कै- ।
लास नगक्के रावणत देवरोळादतिभक्ति हर्षमं ।।
मासरमुंटुमाडे तनगित्तनिदिर्चलोंडं समस्त दे- ।
वासुर मुख्यनायकर्गे जीव विमुक्तियनीव शक्तियं ।।१७८।।

अंतु फणींद्रनीयें दिव्यशक्तियं पडेदु पोदनित्तलपक्रुतियं गुरूगळोंडनालोचिसि—

प्रायश्चित्तंगोंड ※ श्रेयमनपहरिसि वालिमुनि शुक्लध्या- ।।
नायत्तनागि मुक्ति ※ श्री युवतिय निबिडकुचमनालिंगिसिदं ।।१७९।।

मत्तित्त रावणं नंद्यका सुवेलादि द्वीपंगळनाळ्व महाबल विज्ञानधररं बाय्केळिसि कुंभकर्ण विभीषणरूमिदगि मेघवाहनरूं खर मरीचि सुग्रीवांगद मर्कटध्वज प्रमुख निखिल विद्याधर परमेश्वररूं बळसि बरे विविधवाहन विचित्रातपत्र पाळिकेतनंबेरसुत्तराभिमुखमिंद्रनमेले निच्चवयणदिं बरूत्तुं रैवतनदी तीरदोळ् बीडं

---

से भगवान की अर्चना करके त्रैभुवन सन्तुष्ट होता-सा हस्त नामक वीणा की ध्वनि से ध्वनि मिलाकर रावण ने भगवान के वस्तु-गुण-रूप का वर्णन करता हुआ स्तुति की । १७७ —भक्तिपूर्ण मन से इस तरह स्तुति करते समय— पाताललोक में रहनेवाले महाशेष का आसन काँप उठा । उसने कैलास पर्वत पर आकर रावण की भक्ति से सन्तुष्ट होकर, उसे समस्त असुरों को जीवनदान देने की शक्ति प्रदान की । १७८ —महाशेष से दिव्य शक्ति पाकर नगर लौटा । इधर बालीमुनि ने— गुरु से विचार विनिमयकर, जीवन में किये गये पापों के प्रायश्चित कर, ध्यानमग्न हो मुक्तिश्री का आलिंगन किया । १७९ —रावण ने नंद्यक, सुवेल आदि द्वीपों के महाबलशाली विद्याधर राजाओं को पराजितकर, कुंभकर्ण, विभीषण, इंदगी, मेघवाहन, खर, मरीचि, सुग्रीव, अंगद आदि मर्कट ध्वजियों और विद्याधर चक्रवर्तियों ने रावण का अनुसरण किया । विविध वाहन, श्वेत छत्र, ध्वजाओं के साथ उत्तर की ओर चलकर इंद्र पर चढ़ाई करने के लिए

बिट्टातोरॆय सैकनस्थळदॊळ् रत्नमंटपमनॆत्तिसि सिंहासनद मेलॆ मणि-
मय जिनप्रतिमॆयं निलिसि पूजिसुव समयदॊळ्—

तीवि बरॆ भोंकना नदि
रावणनति संभ्रमाकुलं नॆगॆदु नभ- ।।
क्कावुदु कारणदिंदी
रैवतनदि बंदुदॆदुं विस्मितनादं ।।१८०।।

आगि कालमल्लद कालदॊळी तॊरॆबंद कारणमनारय्वुदॆंदु
दूतननट्टुवुदु मातनदॆल्लमनरिदु बंदु माहिष्मतीपुराधीश्वरं सहस्र-
बाहुवी तॊरॆयं जंत्रंगळिं कट्टि निजांतःपुरसहितं नीराटवाडि जंत्रंगळं
कळॆयॆ पॊनल् कविनंदुदॆदुं बिन्नविसॆ—

त्रिजगद्भूषण माद्य
द्गजयं मुळिदेरि रावणं नडॆदसुहृ- ।।
द्ध्वजिनियनोडिसि रिपु सा- ।
मजदॊडनॆ सहस्रबाहुवं सॆरॆगॆय्दं ।।१८१।।

अंतातनं सॆरॆगॆय्दु निज विजयशिबिरक्कॆ तर्पुदुमल्लिगातन
तदॆविरप्प शतबाहुगळॆंब जंघचारणर धर्मवात्सल्यदिं बर्पुदुं दशमुख-
निदिरॆळ्दु भक्ति भरदिं वदिसि मणिमयासनदॊळिरिसि कैगळं

---

आकर रैवत नदी के तटपर डेरा डालकर, रेतीले टीले पर रत्न मंडप का निर्माण किया और जिन की प्रतिमा को सिंहासन पर रखकर पूजा करते समय— पानी से भरी नदी के बहने के कारण प्रवाह ऊपर चढ़ने लगा तो आश्चर्य से उठ खड़ा हुआ और देखने लगा कि किस कारण रैवत नदी अचानक भर गयी। १८० —अकाल में अकारण इस नदी के चढ़ने का मूल कारण जानने के लिए दूत को भेजने पर वह सारा विषय जानकर लौटा और बताया कि महिष्मतीपुर के राजा सहस्रबाहु ने मंत्र से नदी के प्रवाह को रोककर अपने अन्तःपुर के स्त्री-समूह के साथ जलक्रीड़ा करने के पश्चात् मंत्र से रोके हुए पानी को एक ही बार छोड़ दिया है। यह वही प्रवाह है। —रावण ने अपने त्रिजगद्भूषण नामक हाथी पर चढ़कर क्रोध से सहस्रबाहु की सेना को भगाकर सहस्रबाहु को कैद कर लिया। १८१ —कैदकर अपने डेरेपर ले आया तो सहस्रबाहु के पिता शतबाहु नामक जंघचारणजी के आने पर रावण भक्तिभाव से उठकर सिर नवाँकर, रत्नासन में बिठाकर उनके आने का कारण पूछा। उनके यह निवेदन करने पर कि रावण द्वारा कैद

मुगिदु बेसनावुदेंवुदुं नीं सेरेगेय्द सम्यग्दृष्टियप्प सहस्रबाहुवं बिड्वुदेने महाप्रसादवेंदातनं बरिसुवुदुमातं बंदु दिव्य मुनिगे पोडे-वट्टु कुळ्ळिर्पुदुं करग्रहण पुरस्सरं विनय वचनंगळं नुडिदु निन्न राज्यदोळ् निल्वुदेने तां तपोराज्यमनल्लदे राज्यमनोल्लेनेंदु—

निजसुतनप्प सुबाहुगे—
निजराज्यमनित्तु दीक्षेयं कैकोंडं ॥
निज जनकरप्प शतबा-
हुजंघचारणर कैयोळा धरणीशं ॥१८२॥

अंतु दीक्षेयं कैकोंडु सहस्रबाहु मोक्षक्के पोपुदुमित्तल्—

खेचर विभुतां मुन्नं *भूचर भूभुजरनेय्दे साधिसि बळियं ॥
खेचररं साधिपेनें- *बी चित्तंबेत्तु विजययात्रेगे तळर्दं ॥१८३॥

अंतु निखिल राजकमनोत्ति कप्पंगोळुत्तुं धर्ममं प्रतिपालिसुत्तुं बरुत्तुमिरे राजपुरनाळ्व मरुत्तेंबरसं जीव वधेगेय्व जन्नमनोडर्चि पेररार्गं पोडेवडदे पलवुप्राणिगळं कोंदप्पनेंदु केळदल्लिगे बंदु याग-निमित्तं यूपस्तंभंगळोळ् कट्टिट वसुगळं गोळिडे कोंदु वेळ्वुदं कंडु कोंडंगळनोडेदु शालेगळं केडपि यूपस्तंभंगळं कडिदु संवर्तकमोदलागे

किया गया सहस्रबाहु छोड़ दिया जाय, रावण ने वैसा ही करने का वचन दिया और सहस्रबाहु को बुलवाया। उसके आकर मुनिके चरणों पर झुकने पर मुनि ने कहा कि वह अब अपने राज्य में जा सकता है। लेकिन सहस्रबाहु ने कहा कि उसके लिए तपस्या के अतिरिक्त और कोई राज्य नहीं है। और— अपने पुत्र सुबाहु को सिंहासन सौंपकर अपने पिता शतबाहु जंघचारणजी से जिन दीक्षा ली। १८२ —इस तरह दीक्षित होकर सहस्रबाहु ने मोक्ष पाया।— रावण पृथ्वी के समस्त राजाओं को पराजित करने के पश्चात् खेचरों को हराने का निश्चय कर विजय-यात्रा के लिए निकल पड़ा। १८३ —सामने आनेवाले शत्रु राजाओं को पराजितकर, उनसे लगान लेकर, धर्म की रक्षा करता हुआ आगे चला तो यह जानकर कि राजपुर के शासक मारुत ने प्राणीबलि देकर यज्ञ करने में लीन है और अन्यों के सम्मुख शीश न झुकाकर समस्त प्राणियों की बलि दे रहा है, वहाँ पहुँचा और यज्ञ के लिए बलिस्तंभों में बंधे हुए पशुओं के आर्तनाद के साथ यज्ञ में चढ़ाते हुए देखकर यज्ञकुंडों को फोड़कर, बलिस्तंभों को काटकर, संवर्तक आदि ऋत्विजों को पीटकर मौत के घाट उतार रहा था कि मरुत्त

सकल ऋत्विजरं बडिदु कौललिर्प समयदोळ् मरुत्तेंबरसनति संभ्रमदिं परितंदु रावणन कालमेलें बिद्दु क्षमेगोंडुं—

कदकप्रभेयं निर्जिन
कनकप्रभेयं मरून्नरेंद्र निजनं- ॥
दनेयं खचर कुलानं-
दननेनिप दशाननंगे नल्मेयिनित्तं ॥१८४॥

अंतु मदुवेंनिदु कनकप्रभेगे पुट्टिद तन्न मगळप्प स्वीकृतचित्तेयं मधुरेयनाळ्व हरिवंशन मगनप्प मधुविगे कोट्टु दशवदनं सहाबल सहितनागि पदिनेंटु वर्षक्के विनीतखंडमं बाय्केळिसि क्रमदिं कैलासपर्वतमनेय्दि वालिदेवर सामर्थ्यमं नेनेदु पोगळुत्तुमा नगद नितंब दोळ् बीडुविट्टिर्पुदुमित्तल्—

परिरक्षिसि देवेंद्रन *शरधि शरासन तनुत्रततियं नळकू-॥
बर दिक्पति दुर्धर भुज* परिघं दुर्लंघ्यपुरदोळनिबलनिर्दं ॥१८५॥

आतं रावणं मेलेत्तिबर्पदं नम्मरसंगरिपेंदट्टिद दूतन वचनदिनिंद्रनदनरिदु—

अेवं रावणनेत्तिबंदु बलिदिर्का कय्दुवं कादु वि- ।
द्यावष्टंभदिनेंदु मंदर महीभृन्मेखलानंदन- ॥

---

आकर रावण के चरणों में गिरा और क्षमायाचना की ।— तत्पश्चात् मरुत्त ने स्वर्णिम प्रकाश फैलानेवाली अपनी बेटी कनकप्रभा का खेचर कुल को आनंद प्रदान करानेवाले दशानन से विवाह करा दिया । १८४ —विवाह होकर कनकप्रभा से जन्मी स्वीकृतचित्ता नामक पुत्री का विवाह मधुरा के राजा हरिवंश के पुत्र मधु के साथ कराया और रावण अपनी सेना के साथ अठारह वर्षो में विनीतखंड को जीतकर कैलास पर्वत शिखर पर डेरा डाले हुआ था कि इधर— देवेंद्र का सहायक बनकर दुर्लंघ्यपुर पर शासन करनेवाले नलकूवर दिग्पति अपने भुजबल पराक्रम से शत्रुओं को पराजित कर धूमधाम से रह रहा था । १८५ —यह सूचना पाकर कि रावण आक्रमण करनेवाला है, उसने तुरन्त अपने दूत को इंद्र के पास भेजा । इंद्र यह समाचार सुनकर— चढ़ाई करके रावण क्या करेगा ? नलकूबर को दूतों द्वारा यह सूचितकर कि वह अपने विद्याबल से उसपर विजय पावे और रावण की शक्ति की अवहेलनाकर, हाथी पर सवार होकर इंद्र जिन पूजा के उत्साह से चल पड़ा । उसने रावण के अतुल

क्काविद्याधरचक्रवर्ति जिनपूजोत्साहदि पोदनु- ।
द्ग्रीवं दोर्वल गर्वदि वगेदनिल्लिद्रं दशग्रीवनं ॥१८६॥

मत्तित्त चरवचनदिंनिद्रन बेसससिदुदं नळकूवरं केळ्दोंदु योजनांतरदोळिर्दरं नुंगुवंतप्प वेताळ यंत्रंगळि दूरदेशदोळिर्दे ळ्वट्टि तिबंर्ते फूत्कार मुखरंगळप्प महोरगंगळिननिदूरदोळट्टि सुड्डुव केसुरिय प्राकारंगळि मत्तमेनितानुं तेरपद्रवहेतुगळप्प रौद्रमृगंगळि तुरूगि शतयोजनोत्सेधंबडेद वज्रसालमेंव कोटेयं विगुर्विसि पोळलगे दुर्लंघ्यपुरमेंव पेसरनन्वर्यंमाडि पोडर्पुगिडदिर्पुदु—

अदर तेरनरियदरियें ॐ दुदात्तवलनं प्रहस्तनं पेळ्वुदुमं ॥
तदनरिदु वंदवं दश ॐ वदनंगाद्यंतमदरगुर्व पेळ्दं ॥१८७॥

अंतु पेळ्दु नम्म पडेगल्लिय जंत्रंगळिदुपद्रवमागदंतु तोलगि बिट्टु वळिक्कदं कोळ्वतेरनंवगेवुदेंवुदुं दशवदननानुडियनवकर्णिसि कोटेयं कोळवुपायमने वगेयुत्तुमिर्पुदु मित्तल्—

नळकूवरन कुलांगने ॐ विळासवति रावणंगे पलकालं मु- ॥
न्नोळसिर्प कामकातरे ॐ केळ्दिगे तिळिवंतु तन्न तेरनं पेळ्दळ् ॥१८८॥

पराक्रम की अपने पराक्रम-गौरव के कारण परवाह नहीं की। १८६ —दूतों से इंद्र द्वारा भेजे गये समाचार को सुनकर, नलकूबर ने एक योजना बनाई। दूर रहनेवालों को निगलनेवाले 'वेताल' यंत्रों का निर्माणकर, फुंकार मात्र से ही नाश करनेवाले साँपों, बहुत दूर तक धकेलकर (भगाकर) जलानेवाली अग्निज्वालाओं के आकार में ही निर्माणकर, अनेक तरह के उपद्रव देनेवाले दुष्ट मृगों का निर्माणकर, शत योजन ऊँचाई तक निर्मित वज्र की कतारों के दुर्ग से घेरे दुर्लंघ्यपुर का निर्माणकर निडर रहने लगा। —रावण ने प्रहस्त से यह कहकर भेज दिया कि उस नगर के बारे में पूर्णतः नहीं जानता अतः उसके निर्माण का सारा विषय जानकर आ जावे। लौटकर उसने सारी बातें रावण को बतायीं। १८७ —ऐसा बताकर रावण को सलाह दी कि वहाँ ऐसा पहुँच जाना कि उसकी सैना को शत्रु के मंत्रों से खतरा न पहुँचे, भीतर पहुँचने के पश्चात् नगर को वश में करने का उपाय जान लेना चाहिए। रावण प्रहस्त की सलाह मानकर इस विचार में पड़ा था कि वह किस तरह अपने वश में कर सकता है कि इधर— नलकूबर की पत्नी बहुत समय से रावण के रूप से मोहित होकर कामातुर थी और अपने मनकी इच्छा अपनी सेविका से बताई। १८८

अंतु विद्याधरपरमेश्वरि चित्रमालॆगॆ निजाभिप्रायमं कलिसि रावणनल्लिगट्टुवुदुं—

नील पटच्छदॆ निशॆयॊळ् * लोलेक्षणॆ गगनमार्गदिं रावणनि- ।।
दॊलयमं विजयश्री * लीलॆयिना चित्रमालॆ बंदळवॊक्कळ् ।।१८९।।

अंतु पॊक्कु रावणन कॆलक्कॆ वंदु—

उपरंभॆयॆंबळॆम्मर * सि पोलिपॊडॆ रंभॆगग्गळं चॆल्विंदा- ।।
रूपमॆगॆ पॆररॆनिपळ् पी * नपयोधरॆ निन्न सार्कॆगट्टिदळॆन्नं ।।१९०।।

पलवुदिनं तिन्नॊळ् तॊ * ट्टॊलविदा चॆन्नॆ निन्ननवरतं पं- ।।
बलिसुत्तुं चित्तोद्भव * नलरंबुगळुर्चॆ नाडॆ पाडळिदिर्दळ् ।।१९१।।

अवॊगळ्गनतनु विद्या * देवतॆ निरतिशयमॆनिप रूपिं विद्या- ।
देवतॆ सामर्थ्यदिनॆनि * पा वधु बरॆ देव निनगॆ तीरदुदुंटॆ ।।१९२।।

ऎनॆ दशाननं पळियुं पापमुमप्प दुश्चरित्रमनेवॆनॆंदु मनदॊळॆ निश्चयिसि विभीषणनं बरिसि रहस्यदॊळदनरिपुवुदुमातं विद्याप्ताकारमं किडिसुवंतुटं प्रतिविद्यॆयनाकॆयं बरिसि पुसिदु नंबिसि कल्तुकॊळ्वुदॆनॆ रावणना दूदविगॆ निन्न नुडिगॊडंबट्टॆनाकॆयं तायॆंदु वक्रोक्तियिं नुडिवुदुमाक्षणदॊळॆ पोगि बेगं तर्पुदुमुपरंभॆगॆ पुसिनण्पुदोरि

—उपारंभा ने सखी चित्रमाला से अपने मन की सारी इच्छा बताकर रावण के पास भेज दिया। —वह रात के समय आकाशमार्ग से रावण के आश्रम में वैसी ही पहुँची जैसे विजयश्री प्रवेश करती है। १८९ —प्रवेश करके रावण के बगल में खड़ी होकर— "उपरंभा नामक मेरी रानी सौंदर्य में रंभा से भी बढ़कर है। उसके समान रूपवती और कोई नहीं है। उसने मुझे आपके पास भेजा है। १९० —बहुत दिनों से आपके प्रति जाग्रत अनुराग क्रमशः बढ़कर कामचक्रेश्वर के वाणों के आघातों से वह अपने आपको भूल गयी है। १९१ उसके रूप, गुण, विद्या का कहाँ तक वर्णन करूँ? वह अगर आपकी बन गयी तो आपकी बराबरी कौन कर सकता है"? १९२ —ऐसा कहने पर रावण ने निंदा और पाप लगनेवाले इस विषय की समस्या में पड़कर, विभीषण को बुलवाकर, एकांत में सारी बातें बताने पर उसने सलाह दी कि उपरंभा से नलकूबर की विद्या पर विजय पानेवाली प्रतिविद्या को जाना जाय। विभीषण की सलाह से सहमत होकर रावण ने चित्रमाला से वक्रोक्ति में कहा— "तेरी बात मुझे मंजूर है, तू ही मेरी माँ है। तुरन्त जाकर उपरंभा को

निनगमेनगं दुर्लंघ्यपुरदोळ् कूटमप्पंतु माडेने मनदे कोंडंतेगेय्वेनेंदु सालविद्याभेदिनियं—

प्रतिविद्येयनार्के कुल * क्षतियं पतिगप्प हानिमं बगेयद दु- ।
र्मति कोट्टळदेन्नरूमं * मतिगिड्डुवुदु चोद्यमल्तु मदनोन्मादं ॥१९३॥

अंतार्केय कैयोळा विद्येयं कोंडु कळिपि मरूदेवसं साल विद्येयं प्रतिविद्येयिं किडिसि दुर्लंघ्यपुरमं रावणं मुत्तुवुदुं—

सेरगं बेरगं बगेयदे * पुरमं पोरमट्टु कादुवागळ् नळकू- ॥
बरनं विभीषणं मद * करियं मृगवैरि पिडिव तेरदिं पिडिदं ॥१९४॥

आ समयदोळ्—

दनुजाधीश्वरन पुरा * तन पुण्यद फलदिनायुधागारदोळें ।
जनियिसिदुदो विद्विष्टा * वनिपाल प्रळयकालचक्रं चक्रं ॥१९५॥

अंतु सुदर्शनचक्रं पुट्टुवुदुं रावणं महोत्सवदिं चक्रपूजेयं माडि रहस्यदिंदार्केयं करेदु नीं विशुद्धकुलद कुशध्वजंगं मधुकांतेगं पुट्टिदुदरिं निजकुलाचारमं बगेदु शील परिपालनं माळ्पुदंनल्लदेयुं

---

बुला ला"। सूचना पाकर उपरंभा रावण के पास आयी तो उसने उपरंभा से दिखावटी प्यार किया। इससे खुश होकर— अपने कुल की हानि, पति को होनेवाली हानि की परवाह किये बिना उपरंभा ने रावण को सालविद्या-भेदिनी नामक प्रतिविद्या सिखाई। इस बात में कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि कामोन्माद किसी की भी बुद्धि को भ्रमित किये बिना नहीं छोड़ता। १९३ —इस तरह उपरंभा से प्रतिविद्या सीखकर उसे वापस भेजकर अगले दिन नल-कूबर की सालविद्या को प्रतिविद्या से नाश करके रावण ने दुर्लंघ्यपुर घेरा तो— उनके साहस और सेना की परवाह किये बिना नगर से बाहर निकलकर भिड़ा तो विभीषण ने नलकूबर को उसी तरह पकड़ा जिस तरह मदमाता हाथी को सिंहराज पकड़ता है। १९४ —उस समय— रावण के पूर्व पुण्य-सा, आयुध-शाला में शत्रु राजाओं के सीने को चीरने योग्य चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। १९५ —उस चक्र के उत्पन्न होने पर रावण ने महोत्सव के साथ चक्र-पूजा करके रहस्य से उपरंभा को एकांत में बुलाकर कहा—"तुम कुलवंद्य कुशध्वज-मधुकांता की बेटी होने के कारण, तुम्हें अपने कुल-धर्म को त्यागे बिना अपने शील की रक्षाकर लेनी चाहिए। मुझे विद्योपदेश देने के कारण तुम मेरे गुरू हो। और कुछ न चाहकर नलकूवर के साथ सुखमय जीवन बिताओ"। ऐसा कहकर

नीनेनगे विद्योपदेशंगेय्दुदरिं गुरुवादें पेरतेनुसं बगेयदे नळकूबरनोळ् कूडि सुखमिरेंदाकेय दुष्परिणाममं पत्तुविडिसि—

नळकूबरनुमना क्षण*दोळे बरिसि निजाग्रतनयनिंदगियिंद- ।।
ग्गळमनें मन्निसि भयमं * कळेदित्तं भृत्यपदवियं दशवदनं ।।१९६।।

अंतातंबेरसु—

विजयार्धनगक्केत्तिद-*नजेय दोश्यालि रावणं निज विजय ।।
ध्वजिनिगळब्धिगळेळुं*निज सीमा वज्रवेदियिं तळर्दुवेनल् ।।१९७।।

अंतु रावणं तन्न मेलेत्तिबंदु रजनगिरि नितंबदोळ् बीडं बिट्टनेंबुदनिंद्रं केळ्दु समरसन्नाह भेरियं पोयिसुवुदुं—

चतुरंबुराशियं घू- *र्णितमेनें दिग्वलयमं दिशा द्विरदन बृं ।।
हितमेनें नभमं घन ग-* र्जितमेनें पुदिदत्तु भूरिभेरिनिनदं ।।१९८।।

करिगळ वाजिराजिगळ तेर्गळ खेचररोड्डणक्कणं ।
धरें किरिदंबरं किरिदु केतनमालिकेगेंबिनं विय- ।।
च्चर धरणीश रत्नमकुटप्रभेयिं दशदिग्मुखंगळुं ।
भरितमेनिप्पिन नेरेदुदा ध्वनिगिंद्रन सुंद्रसैनिकं ।।१९९।।

अंतु नेरेदु रणभूमियोळिंद्रनं वलं वलिदोड्डि निल्वुदुं रावणन बलं रणरमसदिं बंदु तागुवुदुं—

---

उपरंभा के विषय-सुख के भ्रम को दूर करके— नलकूबर को भी बुलवाकर, उसे अपने पुत्र इंद्रजीत के समान मानकर, उसके भय को दूर करके उसे अपने सामन्त राजा के रूप में अधिकार के साथ मान दिया। १९६ —उसे साथ लेकर— विजयार्ध पर्वत की ऊँचाई पर पहुँचे हुए भुजवल पराक्रमी इस रावण की विजय पताकाएँ सप्त सागरों पर भी उड़ने लगीं। सागरों का अन्त ही मानो इसके राज्य की (शासन की) सीमा हो, रावण सुशोभित हुआ। १९७ —इन्द्र इस वात की सूचना पाकर कि रावण उसपर आक्रमण करने के उद्देश्य से आकर रजतगिरि में डेरा डाला है, वह युद्ध के लिए तैयार होकर समरभेरी वजवायी।— वह भेरी ध्वनि दिग्गजों की ध्वनि की भाँति चारों सागरों की लहरों की गर्जना के समान दशोदिशाओं में सुनाई पड़ी। १९८ हाथियों, घोड़ों के समूहों, रथों, खेचरों की सेना के विस्तार से पृथ्वी ही अपर्याप्त प्रतीत हुई, आकाश ही छोटा लगा। यक्षों और मानवों के मुकुटों की रत्नप्रभा दशोदिशाओं में व्याप्त कराती हुई इंद्र की सेना तैयार हुई। १९९ —इस तरह तैयार खड़ी इंद्र की सेना

इर्बलद चतुर्बलमुं * दोर्बलमं मॆरॆदु नॆरॆदु कादुव पददॊळ् ॥
मार्बलमं सुरसैनिक * मॆळ्बट्टिदुदळ्कि वळ्कि बॆंगुडुविनॆगं ॥२००॥

अंतु राक्षसबलमॆल्लमॊल्लनुलिदोडुवुदं कंडु मुख्यनायकरप्प वज्रवेगनुं हस्तनुं प्रहस्तनुं मारीचनुं उद्भटनुमुज्वळनुं वज्रनुं महाजलधरनुं संध्याभ्रनुं क्रूरनुमॆंदिवर् मॊदलागॆ महाबल पराक्रमर् तंतम्म बलमं पॆरगिक्कि दिविजबलमनॆल्लंगॆलॆ कादुवुदं कंडु महाबलियुं तटित्तुंगनुमद्रियुं संज्वलनुं पावकनु मॊदलागॆ—

सुरबलद नायकर् सं- *गरदॊळ् रावणन बलद नायकरं सं-॥
हरिसॆ कॆलरं कपिध्वज-*ररॆवर् कालाग्निरुद्रनंतुरिदॆळ्दर् ॥२०१॥

अल्लि महोग्रनंदनं प्रसन्नकीर्तियुं माल्यवंत तनूभवं श्रीमालियुमॆडॆवॊक्कु दिविजबलमं हत वितत कोलाहलमं माडि कादुवुदं कंडु दंडाग्रनुं शिखंडव्यालियुं शिखियुं केसरियुं कनकनुं मृगचिह्ननुमॆंबिद्रनळिमंदिर् मॊदलागॆ पलवर् कुमारर् मूदलिसि मुसुरि मुत्तुवुदुं—

श्रीमालि नृपकुमार
स्तोमद तलॆ परिदु परि बीळ्वॆनगं सं- ॥
ग्रामदॊळॆसाडिदनखि-
लामररागसदॊळॊडनॆ तलॆदूगुविनं ॥२०२॥

से रावण की सेना आकर भिड़ी तो— दोनों पक्षों की चतुरंग सेना ने अपना शौर्य दिखाकर लड़ते समय सुरसेना ने शत्रु पक्ष को हराकर पीठ दिखाने के लिए बाध्य किया। २०० —राक्षस सेना पराजित होकर भाग रही थी कि उसे देखकर राक्षस सेना के प्रमुख नायक हस्त, प्रहस्त, मारीच, उद्भट, उज्वल, वज्र, जलधर, संदयाभ्र, क्रूर आदि ने अपनी-अपनी सेना को पीछे धकेलकर, वीरता से लड़कर, सुरसेना पर विजय हासिल करते हुए देखकर मेघबली, तटित्तुंग संज्वल अग्नि आदि— सुर सेनाधिपतियों ने युद्ध में रावण के सेनाधिकारियों को मार दिया। इससे कुपित कपिध्वजी प्रलय रुद्र के समान क्रुद्ध हुए। २०१ —उनमें से महोग्रनंदन, प्रसन्नकीर्ति, श्रीमाली आदि ने शत्रुसेना में घुसकर रोकनेवालों को मारकर घायल करके उपद्रव मचाया। इस पराजय को देखकर दंडाग्र, शिखंडव्याली, शिखंडी, केसरी, कनक, मृगचिह्न आदि नाम के इंद्र के दामादों ने उनसे भिड़ते हुए घेरने पर— श्रीमाली ने बाण प्रयोग करके उन राजकुमारों के सिरों को उसी तरह काटकर गिरा दिया जैसे हवा के झोंके से फल गिर जाते हैं। उसकी वीरता देखकर आकाश के देवताओं के सिर हिल

अवरळिवुदनिंद्रतनू-
भवनीक्षिसि कलुष वशगतं तागि रणो- ॥
त्सवदिंदोळिसि मोनेयोळ्
जवनं श्रीमालियं जयंतं कोंदं ॥२०३॥

अंतु श्रीमालियं जयंतं कोंदु विजयपताकेयनेत्तिसुवुदुमिंद्रजित्कुमारनति कुपितन्तगि बंदु जयंतनोळ् पोणर्वुदनिंद्रं नोडि कडुवेगदिं—

मुळिदैरावण गंधसिंधुरमनागळ् नूंकिदं व्योम मं- ।
डळदोळ् बेल्गोडे चंद्रमंडलद चेल्वं बीरे दिक्पाल मं- ॥
डळि सुत्तबरे पाळिकेतन शतंगळ् मुंदे मुंदैसे मं- ।
राळ भेरीरवमुण्मिपोण्मे देसेयं तळ्पोय्ये शंख स्वनं ॥२०४॥

अंतिदगिय मोनेगैरावणमनणेदु नूंकुविद्रनं दनुजेंद्रन सारथि सन्मति कंडितेंदं—

निनगिंद्रं दोरे संगरक्के दोरे नीनिंद्रंगे मत्तोर्वरा- ।
तननेनांकेगोळल् समर्थरे कुमारं बालकं युद्धयो- ॥
ग्यने कैकोळ्वुदु देवरिंदगियिनेंदालोल शुंडाल के- ।
तनवं चोदिसिदं दशास्यश्यमं सूतं मनोवेगदिं ॥२०५॥

अंतु मुट्टेवंदु मूदलिसि तागुवुदुं—

---

गये। २०२ उनकी मृत्यु को देखकर इंद्र का पुत्र जयंत अत्यन्त कुपित हुआ और श्रीमाली से भिड़कर वीरता से लड़कर श्रीमाली को मार गिराया। २०३ —श्रीमाली को मारकर जयंत ने विजय-पताका फहराया तो इंद्रजीत क्रुद्ध हुआ और आकर जयंत से भिड़ने लगा। इसे देखकर इंद्र तुरन्त— कुपित होकर ऐरावण नामक हाथी पर चढ़कर आगे बढ़ा। उसके श्वेतछत्र ने आकाशमंडल की शोभा बढ़ाया। दिक्पालक उसे घेरकर खड़े हो गये। हवा में विजय पताकाएँ उड़ने लगीं। मंगलवाद्य, शंखध्वनि आदि दशोंदिशाओं में व्याप्त हुई। २०४ —इस तरह ऐरावत पर चढ़कर इंद्रजीत से लड़ने के लिए तैयार हुए इंद्र को देखकर रावण के सारथी सन्मति ने कहा— "युद्ध में तुम और इंद्र परस्पर समान हैं। तुम्हारे अलावा इंद्र को और कौन जीत सकता है? इंद्रजीत बालक है, युद्ध के योग्य नहीं है। अतः तुम ही इंद्रजीत को पीछे हटाकर युद्ध करो"। इतना कहकर गजध्वज से सुशोभित रावण के रथ को आगे बढ़ाया। २०५

शरसंधानद वेगं
परिकिसलरिदेनिसि दिविजपतियुं दशकं- ।।
धरनुं काय्दिसॆ पाय्दुदु
शरमयसाय्तखिल भुवनमॆनॆ शरनिकरं ।।२०६।।

अंतचिंत्य युद्धंकगॆय्दु दानवेंद्रनिंद्रं साधारणास्त्रदोळ् गॆल्वुदरिदॆंदु—

मुनिदु तमदंबिनिंदि-
द्रनिसुवुदुं बॆळगिनंबिनिं गॆल्दोडॆ कं- ।।
डनलास्त्रदिनिसॆ दिविजं
दनुजेंद्रं वारुणास्त्रदिं खंडिसिदं ।।२०७।।

अंतु खंडिसॆ मत्तं पल तॆरद दिव्यशरगळिंदिद्रनिसुवुदुं दशकंधरनवं प्रतिशरंगळिंदभिभविसॆ—

देवर् कावॊडमिवनं ※ सावॆय्दिपॆनॆंदु मनदॊळॊदविद मुळिसिं ।
रावणन वरूथक्कै ※ रावण वारणमनणॆदु नूंकिदनिंद्रं ।।२०८।।

अंतु नूंकुवुदुं—
निजनेत्राध्वदॊळागळागळदटं श्रीमालि सत्तेवमुं ।
निजवंश प्रभुवप्प मालियनिवं मुंकॊंदनॆंवेवमुं ।।

—इस तरह पास आकर रावण इंद्र से भिड़ा तो— इंद्र और रावण इस तरह बाण प्रयोग करने लगे कि उनके वेग का अंदाज लगाना भी कठिन हुआ। उस युद्धभूमि में सर्वत्र उन दोनों के ही बाण दिखाई पड़े। २०६ —इस तरह दूसरों के लिए कल्पनातीत युद्ध में भिड़ते-लड़ते हुए इंद्र ने सोचा कि रावण को सामान्य अस्त्र में पराजित करना असंभव है— रावण पर तमास्त्र का प्रयोग करने पर रावण ने उसे सूर्यस्त्र से काट दिया। इंद्र ने अग्न्यास्त्र का प्रयोग किया तो रावण ने वरुणास्त्र से खंडित कर दिया। २०७ —और अनेकानेक दिव्य बाणों के प्रयोग करने पर भी रावण ने उन सबको विरुद्ध शक्ति के बाणों से काट देने पर— आवेश में आकर इंद्र ने यह कहते हुए अपने ऐरावण को रावण के रथ के पास बढ़ाया कि अगर उसे (रावण को) भगवान भी बचाना चाहे तो (भी) मारकर ही रहेगा। २०८ —इस तरह आगे आने पर— रावण यह सोचकर अत्यन्त कुपित हुआ कि उसकी आँखों के सामने ही शत्रु (इंद्र) ने पराक्रमी श्रीमाली का वध किया और अपना वंशज माली भी उसीके हाथों मरा है। वह व्यथा

निजकोपाग्निगॆ कॊर्वनीयॆ दॊरॆकॊंडं द्रोहनॆंदेरिदं ।
त्रिजगद्भूषण दंतियं रिपुचमू विद्रावणं रावणं ॥२०९॥

अंतिर्वरूमोरॊर्वरानॆयं मुट्टॆ नूंकि महायुद्धंगॆय्वागळ् रावणं निजवारणदिंनिद्रनैरावणदमेलॆ पाय्दु मुंदणाधोरणनं चरण प्रहारदिं नॆलक्किक्कि मातंगद मेलॆ पाय्व सिंहदंतिंद्रनमेलॆ पाय्दवनं सॆलुदर सॆरॆंगिनॊळडसि कट्टि कॊल्व नल्लॆनंजदिरॆंदभयमनित्तु—

करियं हरि केसरियं * शरभं शरभमनदॊंदु भेरुंडनडु- ॥
तिरदुय्व तॆरदॆ निजसिं * धुरक्कॆ मगुळ्दुय्दनिंद्रनं दनुजेंद्रं ॥२१०॥

आ समयदॊळिंद्रन मगनप्प जयंतननिंद्रजित्कुमारं बाळ्दलॆ-दंदीयॆ रावणनभय घोषणॆयं माडिसि महाविभवदिं बंदु लंकॆयं पॊक्कु सुखदिनिरॆ—

परिजनमुमुपायनमुं * बॆरसु सहस्रारनात्मनतयन मोहं ॥
तरॆ तन्नं बंदं दश * शिरनल्लिगॆ मुंदुगाण्बने मोहांधं ॥२११॥

अंतु बंदु लंकापुरमं पुगुवुदुमुचित प्रतिपत्तियिं काणिसिकॊंडु सहस्रारनं निजजनकनिंदधिकवागॆ मन्निसि मणिमयासनदॊळिरिसि विनय विनमितं बॆसनाउदॆनॆ सहस्रारनितॆंदं—

---

और क्रोध मानो अग्निपर तेल का काम कर गये। इस तृप्ति से कि यह द्रोही (इंद्र) अपने हाथों में आ गया है, शत्रुओं के लिए काल समान रावण अपने त्रिजगद्भूषण नामक हाथी पर सवार हुआ। २०९ —दोनों परस्पर हाथियों को आगे बढ़ाकर महायुद्ध कर रहे थे कि रावण ने अपने हाथी को इंद्र के ऐरावण पर चढ़ाकर उसके महावत को लातों से गिराकर हाथी पर आक्रमण करनेवाले सिंह की भाँति इंद्र पर गिरकर अपने आँचल से उसे बाँधकर, 'तेरा वध नहीं करूँगा' कहकर भय रहित रहने का अभयदान देकर— ऐसा पकड़कर आया मानो हाथी को सिंहने, सिंह को शरभ ने और शरभ को भेरुंड ने पकड़ा हो। इस तरह आकर अपने हाथी पर सवार हुआ। २१० —उस समय इंद्र के पुत्र जयंत को इंद्रजीत ने पराजित कर कैद करके पिता (रावण) को सौंपने पर, रावण ने देवताओं को अभयदान देकर, अत्यन्त धूमधाम से लौटकर लंका में प्रवेश करके सुख से रह रहा था।— पुत्रमोह के कारण परिचारकों एवं भेंटों को साथ लेकर इंद्र का पिता सहस्रार रावण के पास आया। मोहांध व्यक्ति किसकी चिंता करते हैं? २११ —अपने पास आये हुए

निनगेंडरिदिंद्रनं गे-
ल्दु निन्न भुजबलद महिमेयं बीरिदे जी- ॥
येनिसातन सेरेयं बि-
ट्टु निन्न तक्कूमें बण्णिसल् बारदेनल् ॥२१२॥

अेने दशाननं महाप्रसादमंतेगेय्वेनेंदिंद्रनं बरिसि निष्कषायं निन्न राज्यदोळ् सुखमिरेंदु कळिपुवुदुं रावणंगे निःशल्यनागि तन्न पोळलगेवंदु इंदुवेंब तन्न पिरिय मगंगे राज्यमं कोट्टु तन्न मगनप्प जयंतनुं तन्न लोकपालरुं बेरसु दीक्षेगोंडु मोक्षक्के पोदनित्तलिंद्रनं गेल्दु वियच्चरेंद्रं वरुणन मेले नडेयलेंदु समस्त सामंतरं बरिसि हनुमरद्वीपक्के दूतननट्टुवुदुमातं बंदु प्रतिसूर्यनुमं पवनजयनुमं कंडु निजागमन वृत्तांतमनरिपुवुदुं पवनंजयनांजनेयनं बरिसि—

वरुणं बाय्केळनेंबी मुनिसनुविसे मेलेत्तलेंदीगळेम्मं ।
बरवेळ्दं दानवेंद्रं तडेवुदु पदनल्तोप्पुगोळ् राज्यरक्षा ॥
भरमं नीनेंबुदुं मारुतिमुकुळित हस्तांबुजं वीरलक्ष्मी ।
परिरंभोत्साहदिंदा बेसननतिवळं तंदेयं बेडिकोंडं ॥२१३॥

---

सहस्रार को उचित सन्मान देकर रावण ने सत्कार किया और अपने पिता से अधिक इज्जत देकर, रत्न सिंहासन पर विठाकर यह पूछने पर कि क्या सेवा की जाय— सहस्रार ने कहा—"तुमसे भिड़ने पर इंद्र को पराजित कर तुमने अपने भुजबल की श्रेष्ठता दिखाई है। अब उसे कैद से छोड़कर अपनी महानता दिखाओगे तो तुम्हारी बराबरी कोई नहीं कर सकता"। २१२ —रावण ने ऐसा ही करने को कहकर, इंद्र को बुलवाकर, यह कहकर भेज दिया कि उस पर (रावणपर) किसी तरह की शत्रुता न मानकर वह सुख से रहे। अपने राज्य में लौटकर इंद्र ने इंदु नामक अपने जेष्ठ पुत्र को सिंहासन सौंपकर अपने पुत्र जयंत और अन्य लोकपालकों के साथ दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त किया। इंद्र को जीत लेने के पश्चात वरुण को पराजित करने के उद्देश्य से रावण अपने सामंतों को बुलवाकर अपने दूत को हनुमद्वीप भेजा। वहाँ जाकर दूत ने प्रतिसूर्य, पवनंजय को विषय बताया तो पवनंजय ने अपने पुत्र आंजनेय को बुलवाकर— "वरुण शरणागत नहीं होगा, ऐसा सोचकर रावण ने सहायता के लिए हमें बुला भेजा है। न जाना उचित नहीं; तुम राज्य की देखभाल का भार स्वीकार करो"। ऐसा कहने पर हाथ जोड़कर आंजनेय ने पिता से आग्रह किया कि सहायता के लिए उसे ही भेज दिया जाय। २१३ —ऐसा आग्रहकर, स्वीकृति पाकर,

अंतु वेसनं बेडिकोंडु विमानारूढ़नसंख्यात बल समेतं समुद्र-मध्य द्वीपंगळुमं पोळलगळुमनभीक्षिसुत्तु बर्प समयदोळ् रावणं गगन मंडलदोळिर्दु हनुमन बरवं कंडु—

इदिर्वरे तानुमुत्सुकतेयिंदिदिर्वंदु मरूत्सुतं पद- ।
क्कोंदविद भक्तियिं मणिकिरीट मरीचियिनीये पाद्यमं ।।
पदेपिनळ्केयिं तेगेदु तळ्किसे दानव चक्रवर्तिगा- ।
दुदु रिपुचक्रमं तविपुदिन्नेनगावरिदेंब संतसं ।।२१४।।

अंतातनं काणिसिकोंडु-

आगसमुं देसेयु भू- भागमुमेडेनेरेयदी बलक्कॆने नडेदं ।।
मेगिल्लद बल्लाळ् रण रागरसं कदन कर्कशं दशवदनं ।।२१५।।

अंतु नडेदु पाताळपुंडरीकपुरमं मूवळसागे सुत्ति मुत्ते वरूण-नतिकुपितनागि पोरमडुवुदुमोडने—

औवने जवनेंबुदु पुसि
नूर्वर् जनियिसिदरेनिसि खचरकुमारर् ।।
दोर्वलदृप्तर् पुरमं
नूर्वर् संग्राम लंपटर् पोरमट्टर् ।।२१६।।

सिगद जंगुळियंतिर *सुंगोळे पोरमट्टु कादे वरुण कुमारर् ।।
बेंगोट्टुदु दशमुख चतु-*रंगबलं समरमुखदोळवर्गिदिरुंटे ।।२१७।।

---

विमान पर बैठकर असंख्य सेना के साथ समुद्र मध्य में स्थित द्वीपों एवं नगरोंका अवलोकन करता हुआ जा रहा था कि रावण गगनमंडल में रहकर हनुमान को देखकर— आगे आने पर हनुमान भी आगे बढ़कर उसके चरणों में भक्ति से झुका तो मानो मुकुट के रत्नप्रकाश से चरण पूजा हुई हो। रावण ने बड़े स्नेह से हनुमान को उठाकर, बाहों में भरकर, यह सोचकर सन्तुष्ट हुआ कि अब शत्रुओं को पराजित करना उसके लिए आसान है। २१४
—इसतरह से मिलकर— रावण ने शौर्यत्साह से यह सोचकर कि अपने सेनावल के लिए आकाश, अष्टदिशाएँ, भूमंडल इनमें से कोई भी बराबरी नहीं कर सकता, वरुण पर चढ़ाई करने के उद्देश्य से चल पड़ा। २१५
—चलकर, पाताल पुंडरीपुर को तीन घेरों में घेर लिया। वरुण इससे कुपित होकर युद्ध के लिए निकल पड़ा तो तुरन्त— सौ खेचरकुमार अपने बाहुबल-सामर्थ्य दिखाने के लिए नगर से युद्धभूमि की ओर ऐसे निकल पड़े मानो यह मानना गलत है कि यम अकेला है; वह तो सौ हैं। २१६

अंतु कादुत्तुमिरे हनुमनेंडेवोक्कु तन्न सेनेयिं रिपुसेनेयं सुत्तिमुत्ति—

वानरविद्येयं तळेदु वानर रूपुमनांतु विद्विष- ।
त्सेनेयोळानेयं कुदुरेयं रथमं पृथु गंडशैल सं ।।
तानदिनिट्टु मोदि तरुराजिगळि तवे कोंदनार् मरू- ।
त्सूनुगे कय्दुगेय्दु कडुकेय्दु वदुंकुवराजिरंगदोळ् ।।२१८।।

अंतु हनुमननुवरदोळांत वलमं कृतांतनंते तविसि राजीव पुंडरीक प्रमुख निजकुमारर् नूर्वरुमं पिडिदु कट्टुवुदं वरुणं कंडति कुपितनागि—

नेनेयदे कलुषवशं न-*च्चिनविद्येगळं कडंगि कादुव पददोळ् ।।
दनुजेंद्रं पिडिदं वरु-* णतनावं रावणंगे कूर्प तोर्प ।।२१९।।

अंतातनं पिडिदु कुंभकर्णगे सेरेयनोप्पिसि भुवनोन्मादमेंवु-द्यानवनदोळ वीडंविट्टोलगंगोट्टिर्दु वरुणनं वरिसि—

कलि सावं पिडिवडेवं*कलहदोळिदु भंगमल्तु नीं मुन्निनवोल् ।
नेलसिर्पुदु निजदो- * ळोलविंदें दोसेदु वरुणनं मन्निसिदं ।।२२०।।

---

—शत्रुओं के प्राण चूसने के लिए निकले हुए सिंह समूह के समान वरुण कुमार आगे वढ़े और लड़ने लगे तो रावण की चतुरंग सेना पीठ दिखाकर भागने लगी। २१७ —इतने में हनुमान ने सेना समेत रिपु सेना को चक्राकार में घेरा तो— वानर विद्या से वानर रूप धारणकर शत्रु सेना, हाथी, घोडा, रथों को टीलों, पर्वतों से टकराते हुए, पेड़ पौधों से मारते हुए सुशोभित हुआ। युद्ध में हनुमान से भिड़कर कौन जिन्दा रह सकता है ? २१८ —इस तरह हनुमान के सम्मुख आनेवाली सेना को यम-सा हराकर, वरुण के राजीव, पुंडरीक आदि सौ पुत्रों को पकड़कर वाँध दिया। इससे कुपित हो इंद्र— क्रोध के आवेश में अपनी अर्जित अनेक विद्याओं को स्मरण न कर, भूत-भविष्य का विचार किये विना रावण से लड़ने लगा तो रावण ने उसे कैद कर लिया। रावण से लड़ने की शक्ति किसमें है ? २१९ —उसे वंधी वनाकर कुंभकर्ण को सौंपकर, भुवनोन्माद नामक वन में अपना डेरा डाला और दरबार लगाकर वरुण को वुलवाकर— "युद्ध में वीर व्यक्ति का मरना या बंधित होना स्वाभाविक है। यह अपमान की वात नहीं है। तुम पूर्ववत् तुम्हारा राज्य चलाओ"—स्नेह से ऐसा कहकर सत्कार किया। २२० —सत्कार करके उसका हाथ पकड़

अंतु मन्निसि करग्रहणेगेय्दु कारुण्यमनरिपुवुदं वरुणं हनुमान सेरगिल्लद बल्लाळ्तनमं पोगळ्दु सत्यवतियेंब तन्न मगळं रावणंगे महाविभवदिनित्तु तन्न पोळलगेवोदनित्त रावणं लंकेगेवंदु चंद्रनखिय मगळप्पनंगपुष्पेयं श्रीशैलंगे परिणयतोत्सवदिनित्तु कर्णकुंडलपुर-मनातंगे राज्याभिषेकगेय्दु कुडुवुदु मल्लियें सहस्रांत:पुर पुरंध्रियर्गे वल्लभनागि सुग्रीवंगं सुतारेगं पुट्टिद पद्मरागेयं मदुवनिंदु सुखदि-निर्दनित्तल्–

भरत त्रिखंडमं दश शिरनाळ्दं चक्ररत्नमसिरत्नंगळ् ।।
दोरेकोंडुवखिळ विद्या धर वल्लभरेल्लरुं पदनतरादर् ।।२२१।।

आ क्रोधोद्धतनप्प रावणनोळावं कादुवं युद्धदोळ् ।
शक्रंगं त्रिजगद्विभूषण गजं कोंदिक्कलें सालदे ।।
चक्रकं परचक्रमुंटे सकलोर्वीचक्रदोळ् विद्विष- ।
च्यक्रं तोर्कुमे चंद्रहासदिदिरोळ् मारांतु विक्रांतमं ।।२२२।।

निखिल क्षत्रकुलं वियच्चर कुलं संग्राम केळी परा- ।
न्मुखवात्मप्रतिबिंबदंते बळिसंदाज्ञाविधेयं गुहा ।।
मुखदंतेंदुदनेन्नदंदु नवरक्तासक्त नवतंचरी
मुखदोळ् कूकुवुदांतरं दशमुखोन्खातासि धारा सुखं ।।२२३।।

---

कर, करुणा दर्शायी। वरुण ने हनुमान के अतुल साहस की प्रशंसा की और अपनी पुत्री सत्यावती का विवाह रावण के साथ किया और अपने राज्य को लौटा। इधर रावण लंका में आकर चंद्रनखी की बेटी अनंगपुष्पा का श्रीशैल नामधारी हनुमान से विवाहकर, कर्णकुंडल नामक नगर का सिंहासन सौंप दिया। वहाँ हनुमान सहस्र स्त्रियों का पति बनकर सुग्रीव और तारा की कन्या पद्मरागा से विवाह वनाकर सुख से रह रहा था। —इधर रावण अखंड भरतवर्ष का शासन करते हुए चक्ररत्न, खड्गरत्न का स्वामी वनकर समस्त विद्याधरों से चरण सेवा कराते हुए वैभव से राज्य-भार किया। २२१ युद्ध में क्रोधोन्मत्त रावण को कौन जीत सकता है ? इंद्र के लिए एक त्रिजगद्भूषण (हाथी) ही काफी है। आयुधशाला के चक्ररत्न की बराबरी संसार में और कोई चक्र कर सकता है ? चंद्रहास नामक खड्ग के सम्मुख कोई शत्रु राजा सीना ताने खड़ा रहता है ? २२२ क्षत्रियकुल और खेचरकुल भी युद्धभूमि में रावण की छाया के समान हुए। शत्रुओं ने उसकी हर आज्ञा को माना। जो आज्ञा का पालन नहीं करता उसे रावण का चंद्रहास खड्ग का धार पिशाचियों के मुँह

त्रिजगद्भूपण नाम सामजमनें मारांपुत्रे मिक्क सा- ।
मजमा यक्षसहस्र रक्षितमनुद्यच्चक्रमं चंद्रहा- ।।
सजयोग्रासियनांप कैदुवोळवे कैलासमं किळ्त त- ।
द्भुजमं भूचर खेचरर्कळ भुजंगळ् पिगदेनांपुवे ।।२२४।।
मदमं भद्रगजक्के राजवेसरं चंद्रंगे तीव्र प्रता- ।
पद पेंर्च्चं तपनंगे तेजदोदवं सप्तार्चिगत्युग्र ख- ।।
ड्गदगुर्व गहमक्केयुन्नतियनेळ्ं गोत्रभूभृत्कुल- ।
क्कदटं सैरिसुवं पेरंगे पेरतं लंकेश्वरं सैरिसं ।।२२५।।
कदन क्षोणियोळोडिदर् मडिदरेंबी वार्तेयं कंडरें- ।
दुदनेगोंडरिळेशरेंव नुडियं भूभागदोळ् केळला-
दुदु गेल्दर् सरिगादिदर् पगेवरेंबी वार्तेयं केळला
गदवं वर्तिसिदिवरिक्केने जगद्विद्रावणं रावणं ।।२२६।।
आयुधवेनितोळवदु दि- व्यायुधमवनळवदार कैयळवातं ।।
कायल् वदुकुवर् कय् गायदोडावंगमें निलल्वंद्पुदे ।।२२७।।
भीषण वलरसुहृद्वल शोपणदक्षर् नृपाल शरणागत सं- ।।
तोषकर कुंभकर्ण वि- भीपणरेंबर् दशास्यनोडवुट्टिदवर् ।।२२८।।

---

में ठूंस देता था। ऐसे में उसके समान कौन होगा? २२३ —त्रिजगद्भूषण (हाथी) के साथ सामान्य हाथी लड़ सकते थे? सहस्र यक्षों से रक्षित चक्ररत्न और जयश्री प्रदान करनेवाले, चंद्रहास का सामना करनेवाले कोई आयुध है? कैलास को उखाड़नेवाले; भुजवल सामर्थ्य से न डरनेवाला मनुष्य या खेचर भुजवल है। २२४ जैसे दूसरे लोग मान लेते हैं कि मद हाथी को, राजा नाम चंद्र को, प्रताप की अधिकता सूर्य को, तेजस् का आधिक्य अग्नि को, उग्र खड्ग की भयानकता दुर्घट जँगल को और उन्नति सात कुल पर्वतों को है, रावण थोड़े ही मानेगा? २२५ पृथ्वी के लोगों ने यही सुना कि युद्ध में रावण से भिड़नेवाले भूपालकों को भागते या मरते हुए देखा है। लेकिन कभी किसीने देखा या सुना नहीं कि रावण से लड़नेवालों की जीत हुई हो। ऐसे साहसी रावण का वर्णन कैसे किया जाय? २२६ —आयुध कितने नहीं हैं? कितने दिव्यायुध नहीं हैं? लेकिन रावण ही मारांतक बना हुआ है तो कोई भी आयुध क्या कर सकता है? वे ही जी सकते हैं जिसकी वह रक्षा करता है। ऐसे में उसे छेड़ना संभव है? २२७ महान शूर, शत्रुओं की सेना का शोषण करनेवालों में दक्ष, शरणागतों की रक्षा करने की क्षमता रखनेवाले कुंभकर्ण और विभीपण रावण के अनुज हैं। २२८ —यम, जो

कालमनासेगेय्वनिदिरिक्कुवनेम्मोळगावनेंदवर् ।
कालननेळिदं बगेवरी नेलनं विजिगीषु वृत्तियिं ॥
पालिसुवर् सुरासुर वियच्चर सेनेयोळार्गमाजियोळ् ।
सोलद मेघवाहननुमिंदगियुं दनुजेंद्र नंदनर् ॥२२९॥

अवन वियच्चर सेनेय पवणनदेवेळ्वे कय्दुगेय्यदोडमदं ॥
तवे कोल्वुदरिदु दनुजन बवरं कैसारेयल्तु गेल्लद बवरं ॥२३०॥

बलद भुजबलद विद्या बलद मनोबलद बल्पिनिं नृपरार्गं ॥
गेल्लरियं दशकंधर नलंघ्य विक्रांत तुंगनमरेंद्रंगं ॥२३१॥

अेंबुदुं लक्ष्मणं मुळिसुवेरसिद मुगुळ्नगे पसरिसे परिहास वचोविळासदिनिंतेंदं—

अदटं रावणनेंबुदं नुडिदु तोरल्वेळ्पुदे कादल- ।
ण्मदे कळदुय्दुदे पेळ्गुमंबिकेयनातं भीमनिक्ष्वाकु वं- ॥
शदरं गेल्गुमे रामरावणर बल्दं मेल्पुमं काणल-
प्पुदु थट्टोत्तिखिल्लि दिट्टिदोलेयिं तूंगि रणक्षोणियोळ् ॥२३२॥

नडेवुदिळेशनोळ् तोडरदन्नेगमातन गंडगर्वमि- ।
न्नडेगुमे रामनंबु नेरनं नडे कालनडेगेट्टु निल्कुमी- ॥

---

सदा यह सोचा करता है कि उसकी बराबरी कौन कर सकता है, का परिहास करते हुए अपने राज्य की रक्षा क्षत्रियोचित तरीके से करते हुए सुर, असुर, खेचर समूहों में से किसी से न हारनेवाले मेघवाहन और इंद्र-जीत रावण के सुपुत्र हैं। २२९ —उसकी खेचर सेना का कहाँ तक वर्णन किया जाय ? युद्ध करने के अतिरिक्त उसे हराना असाध्य है। उनसे युद्ध करना ही दु:साध्य है तो जीतने की वात कहाँ है ? २३० साहसी की, भुजवल की, विद्याबल की, मनोबल की शक्ति से किसी भी राजा को, रावण को जीतना असंभव है। वह अमरेंद्र से भी महान साहसी है। २३१ —यह बात जांबवत ने बताई तो क्रोधपूर्ण मुस्कराहट बिखेर-कर परिहासपूर्वक लक्ष्मण ने यूँ कहा— मुँह खोलकर यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि रावण शूर है। लड़ने से डरकर, चोरी से सीता माता का अपहरण करना ही उसकी वीरता का सबूत है न ? इक्ष्वाकुवंशियों को वह जीत सकता है ? राम रावण की वल-निर्बलता को सेना से लड़ते हुए युद्धभूमि में देख सकते हैं। २३२ —श्रीराम से लड़े बिना उसके साहस की थाह नहीं ली जा सकती। एक बार रामबाण लगने पर उसकी चाल का रुकना निश्चित है। भविष्य में होनेवाले युद्ध में आप लोग

तुडि तडमल्तु नीळेयॆ रणांगणदॊळ् नडॆ नोडुविर् मरू- ।
ळ्वडॆगूडॆ तांडवमनाडुव रावणनट्टॆयाटमं ॥२३३॥
दनुजेंद्रनल्प वीर्यं ※ मनुजेंद्रननंत वीर्यनण्णंगाव- ॥
ण्णनुमिदिरॆ करिगळं गॆ-※ल्दनितरॊळिभवैरि शरभमं गॆल्दपुदे ॥२३४॥
कळ्तलॆ पिरिदादॊडमें ※मार्तलॆयॆ दिनाधिपंगॆ पिरिदादॊडमे-॥
नार्तपुदॆ वैरि सैन्यम ※ डुर्तिरियलजेय बाहुबलनं बलनं ॥२३५॥
हित मित वाक्यनस्खलित धैर्यगुणं गुण रत्न रोहण ।
क्षितिधरनत्युदात्त महिमं शरणागत वज्रपंजरं ॥
नत नरपाल मौळि हरिनीळमणि प्रचय द्विरेफ चुं-
बित चरणारविंदनवदात यशं कविता मनोहरं ॥२३६॥

इदु परमजिनसमय कुमुदिनीशरच्चंद्र बालचंद्र मुनींद्र चरण-नख किरणचंद्रिका चकोर भारती कर्णपूर श्रीमदभिमवपंप विर-चितमप्प रामचंद्र चरित पुराणदॊळ् दशवदन वंशवर्णनं दशमाश्वासं ।

—दशमाश्वास समाप्त—

---

रण-पिशाचियों को रावण के शरीर के साथ खेलते हुए देखेंगे। २३३ —रावण अल्प बलशाली है। यह रामचंद्र अनन्त बलशाली है। संसार भर में इसका कोई सामना नहीं कर सकता। हाथियों को हराने मात्र से सिंह शरभ को भी पराजित नहीं कर सकता ! २३४ —अंधकार कितना भी भयंकर (गहरा, घोर) क्यों न हो, सूर्य के लिए तो तुच्छ ही है। शत्रुसेना कितनी भी बलवान क्यों न हो, श्रीराम से भिड़ना असंभव कार्य है। २३५ —हितमित वक्ता, अभाव रहित धैर्यशाली (साहसी) सद्गुणों का भंडार, उदात्त महिम, शरणागत रक्षक, वज्रपिजरा, समस्त राजाओं के मुकुट रत्नों के प्रकाश द्वारा चूमनेवाले चरणारविंदोवाले महामहिम है यह कविता मनोहरी श्रीराम। २३६ —यह अभिनव पंप, जो परमजिनसमय और कमलों को शरत्काल के चंद्र के समान माने जाने-वाले बालचंद्र मुनींद के पदनखों के चंद्र प्रकाश से पवित्र एवं सरस्वती के कर्णभूषण के समान है, के रामचंद्रचरितपुराण का यह दशवदन वंश-वर्णन दशमाश्वास है।

॥ दशमाश्वास समाप्त ॥

अेकादशाश्वासं

श्रीवधुगे पेरुरं ज * न्मावासं कीर्तिवधुगे केळीगृहमा ।
शावलयमेने समस्त क * ला विभवमनप्पुकेय्दनभिनवपंपं ।। १ ।।

अेंबुदुं जांबवत्प्रमुख प्रधानरिंतेंदरू—

अेमगधिराजनागि खचरोर्विगे वल्लभनागि खेचर ।
प्रमदेयरं मनंगोळिसि राज्यविलासमनप्पुकेय्दनं ।।
क्रमदोळे दंडमोंदुळियें भेदिसि तर्पुदु देवियं परा- ।
क्रमदेडेयल्तु पोल्लदु दुराग्रहमातनोळाग विग्रहं ।। २ ।।

अवरिवरेन्नदाव नृपनंदनरूं दनुजंगे भीतियिं ।
दवनतरप्परल्लदोसेदाळ्वेसदिं नडेवन्नरिल्लना- ।।
मवरनुपायदिं नमगे बेंबलमागिरे माडि कूडिकों- ।
डवनोडनेत्ति कादुवुदु काल विलंबनमागलागदे ।।३।।

अेंबुदुं रघुवीररनिंतेंदं—

आतंग नेरेयलारद * भीतर नेरमेवुदेनगे मोनेयोळ् दनुजं- ।।
गातंकमनोडरिसलनु* जात भुजोत्खात खड्गमिदे नेरमल्ते ।।४।।

असदनुशासनं रघुकुलक्के कुलव्रतमन्य कांतेगा- ।
टिसिद दुरात्मनं रणदोळम्णिदनप्पोडमोघ बाणदिं- ।।

---

आश्वास—११

जिसका हृदय लक्ष्मी का निवास स्थान और यशश्री का क्रीड़ांगण है वैसे अभिनवपंप श्रीराम ने समस्त कला वैभवों को प्राप्त किया। १ लक्ष्मण के यह कहने पर जांबव आदि प्रमुखों ने यूँ कहा—"हमें अधिराज बन, खेचर भूमि का स्वामी बनकर, खेचर स्त्रियों के साथ संभोग करते हुए राज्यभार करनेवाले रावण को दंडोपाय के बदले अन्य भेदोपायों से पराजित कर सीतामाता को लौटा लाना न्यायसंगत (उचित) होगा। क्योंकि उससे प्रत्यक्ष लड़ने का आग्रह उचित नहीं है। २ उन समस्त ऐसे राजकुमारों से जो भय से रावण को सिर झुकाते हैं या उसके शासन के अन्तर्गत नहीं आते, उपाय से उनसे सहायता पाकर, उससे लड़ने में विलंब नहीं होगा?"। ३ —ऐसा कहने पर रघुवीर राम यूँ बोले—"उन राजाओं की सहायता हमें क्यों चाहिए जो उसके वश में नहीं हैं? उससे लड़ने के लिए मुझे तो केवल अनुज लक्ष्मण का भुजवल ही पर्याप्त है। ४ रघुवंशियों के शासन को अस्वीकार कर, परस्त्री को चाहनेवाला

देसेवलिगेय्वेनळकि रणकेळिगे जानकियं दशास्यनो- ।
प्पिसिदोडे कावेनिल्लि निमगं नमगं पदनल्तु मंतणं ।। ५ ।।

ऎंबुदुं जांबूनदं तन्नोळितेंदं—

तृणपुरुषनागि कल्पिसि *रण रभसमनप्पुकेय्दपं बगेयदे रा- ।
वणनुमनिन्नुं मुन्नुं *गणनातीत प्रतापनी रघुरामं ।। ६ ।।

सेरगं पारदुदात्तराघवन मातं केळ्दु जांबूनदं ।
पिरिदुं विस्मयमुत्तु कादि रणदोळ् पौलस्त्यनं गेल्व दु- ।।
र्धर बाहाबलमं परीक्षिसुवेनेंबी चित्तदिं पेळला- ।
तुरनादं दनुजंगे दिव्यमुनिगळ् मुं पेळ्द वृत्तांतमं ।।७।।

अंतु बगेदु रघुवीरन मुखारविंदमं नोडि जांबूनदं मुकुलित करकमलनितेंदं देव मुन्नमोमे दशग्रीवननंतवीर्य केवलिगळ चरणोपांतदोळ धर्ममं केळ्दु तदनंतरमेनगे पेरर कैयोळ् मरणमक्कुमागदेंबुदं बेससिमेने निनगे सिद्धशैलमनेत्तिदन कैयोळ् मरणमक्कुमेने सिद्ध नगमनुद्धरिमुव महासत्वनावनुमिल्लदुदरिनेनगे मरणमिल्लेंदुं हर्षितचित्तनादनेंबुदुं लक्ष्मणदेव नितेंदं—

---

दुरात्म युद्धभूमि में मेरा सामना करेगा तो उसे अपने बाणों से मारकर दिशाओं को बलि चढ़ाऊँगा । मुझसे डरकर अगर जानकी को लौटा देगा तो उसकी रक्षा करूँगा । भेदोपाय हम लोगों के लिए योग्य नहीं है" । ५ —राम के इस वचन को सुनकर जांबव ने अपने आप कहा—इस बात में संदेह नहीं कि रावण को तृणवत् समझकर युद्ध के लिए तैयार होनेवाला राम वीरता में असाधारण प्रतापी है । ६ किसीकी सहायता के विना ही रावण जैसे महाबली से युद्ध चाहनेवाले राम के साहस के प्रति आश्चर्यचकित होना पड़ता है । यह परीक्षा करने के उद्देश्य से कि युद्धभूमि में लड़कर जीतने का साहस है या नहीं, जांबव ने राम को वह वृत्तांत सुनाने की आतुरता दिखाई जिसे मुनियों ने रावण को सुनाया था । ७ —इस तरह आतुरित होकर राम का मुखारविंद निहारकर, हाथ जोड़कर वह यूँ बोला : "प्रभो, एक बार रावण ने, अनंतवीर्य केवली के चरणों में बैठकर धर्म से संबंधित बात करते हुए, पूछा था कि उसकी मृत्यु किसके हाथों होगी । उत्तर में उनके यह कहने पर कि जो वीर सिद्धशैल को उठा पायेगा उसी वीर के हाथों उसकी (रावण की) मृत्यु होगी, रावण इस विचार से संतुष्ट हुआ था कि उस सिद्धशैल को उठाने योग्य कोई बलशाली नहीं है अतः अपना मरण ही नहीं है !" ऐसा कहने पर लक्ष्मण

कुलनगमं नेगपुव दो * र्व्लक्के निर्वाणशैलमे गहनमदं ।
चलियिसुवेनचल वचनं * पलालमन्वर्थनाममल्तेंबिनेगं ॥ ८ ॥

अेंबुदुमा मातं मनदेगोंडु जांबूनदनुं विमलबुद्धि सुग्रीव नळ नीलार्कमालिगळं रहस्यदिं रामलक्ष्मणरं विमानमनेरिसिकोंडु वियन्मार्गदोळे पोगि निर्वाणनगमनेय्दि बलवंदर्चिसे तदनंतरं सौमित्रि सिद्धगुणस्तवनं माडि—

पद घाताक्के घरित्रि बाय्बिडे भुजादंडंगळं सार्चि बि- ।
र्चिदिळासंधिगे मेय्वणर्चि नेलेयिंदक्षूण सत्वं तळ- ।
र्चि दशग्रीवन कंठकंदळद बेरं कीळ्ववोल् किळ्तिने- ।
त्तिदनोंट्टैसिदरिन्नरारेनलुपेंद्रं सिद्ध शैलेंद्रमं ॥९॥

आ कुन्कीलमनोंदे दक्षिणभुजं पोंत्तेत्ते बाहाबल- ।
क्केकच्छत्रमदाय्तु तत्समयदोळ् देवानक ध्वानमा- ॥
शा कुंभोदर वर्तियाय्तु सुमनोवर्ष नदद्भृंगमा- ।
ळाकीर्णं पोसताय्तु साहसधनं सौमित्रि सामान्यने ॥१०॥

अंतु सिद्धनगमनुद्धरिसुवुदुं—

गिरिनिर्झर प्रवाहं * सुरिदुदु भरत त्रिखंड राज्याभिषवं ।
दोरेकोंडप्पुदु दशकं * धर वर्धेयिंदेंदु मुंदे तोर्पतागळ् ॥११॥

---

बोला— "निर्वाणशैल शक्ति-परीक्षा के लिए उपयुक्त है। मैं अपनी शक्ति की परीक्षा में निर्वाणशैल को उठाकर दिखाऊँगा ही और यह साबित कर दूँगा कि सिद्धशैल को उठाने की शर्त गलत है।" ८ —इस बात को सुनकर जांबव, विमलबुद्धि, सुग्रीव, नल, नील, अर्कमाली आदि ने चुपचाप राम-लक्ष्मण को विमान में बिठाकर, आकाशमार्ग से होते हुए निर्वाण पर्वत पहुंचकर, उसकी प्रदक्षिणा लेकर, पूजा करके तत्पश्चात् लक्ष्मण ने सिद्धगुण-स्तवन किया— लक्ष्मण के पैरों के आघात से पृथ्वी फटती-सी लगी। पर्वत को अपनी बाहों में घेरकर, शरीर की सारी शक्ति लगाकर, रावण के कंठनाल को उखाड़ता-सा अतुल शक्तिशाली लक्ष्मण ने सिद्धशैल को उठा लिया। ९ उस कुल पर्वत को उठाकर बायीं भुजा में रख लिया। उसके बाहुबल से सारी पृथ्वी एकछत्र हुई। उस समय देवताओं का दुंदुभि बज उठा। दिग्गज भयभीत हुए। साहसधन लक्ष्मण का साहस असाधारण है। १० —इस तरह सिद्धशैल को उठाने पर— गिरिमूल से पानी का झरना ऐसा बहा मानो रावण के वक्षस्थल में स्थित त्रिखंड भरतवर्ष का राज्याभिषेक राम को होने जा रहा हो। ११

हरिय भुजदळवनीक्षिप
सुर समितिगॆ बॆळगिदंतॆ कैदीविगॆयं ।
गिरिगुहॆयिं फणमणि भा-
सुरंगळति भयदिनुद्धमॊगॆदुवु फणिगळ् ॥१२॥

पूमळॆयंतल्लॊक्कुवु * पूमरगळ पूगळचलमेखलॆयिंदा ।
पूमळॆय मॊळगिनंतॆ गु-* हा मुखदिंदुण्मिदत्तु सिंह निनादं ॥१३॥

आ समयदॊळ्—

सुर कुसुमवृष्टि सुर तू-
र्य रवं सुर जयजय स्वनां कैमिगॆ वा- ।
नर चिह्न प्रमुख विय-
च्चर पतिगळ् तम्म मनदॊळच्चरिवट्टर् ॥१४॥

अंतवरति विस्मयंबट्टु रामलक्ष्मणरं पूजिसि पॊडॆवट्टु भरत त्रिखंड मंडलमं वलगॊंडु वृषभादि तीर्थवंदनानंदमं मनदेगॊंडु मगुळॆ बंदारात्रियॊळ् किष्किंधपुरमं पॊक्कु विश्रमिसि मरुदेवसं—

अमरर् पूजिसिद मह * त्वमुमं लक्ष्मणन सिद्ध शैलेंद्रमन- ॥
श्रमदिंदॆत्तिद भुजवी * र्यमुमं पॊगळुत्तुमिर्पिन कॆलरॆंदर ॥१५॥

आ रावणनुं मुन्नं * ताराद्रियनॆत्तदिर्दने भुजबलदिं- ॥
दारधिकरॆंबुदं सम * रारंभदॊळल्लदरियलॆं बंदपुदे ॥१६॥

---

गिरिगुफा से भयानक पर्वतों ने अपने सिर की मणियों को चमकाते हुए ऊपर उठाया तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो हरि की भुजाओं को देखते रहनेवाले देवताओं को हस्तदीप प्रकाशित किया गया हो। १२ वहाँ की पुष्पलताओं ने ऐसे पुष्प बरसाये मानो पुष्पवर्षा की हो। वर्षाऋतु की प्रथम घनगर्जना-सी पर्वत गुफाओं से सिंहगर्जना सुनाई पड़ी। १३ —उस समय— सुरकुसुम वृष्टि, देव दुंदुभि की ध्वनि एवं देवताओं का जयजयकार सुनाई देने पर वानर-ध्वजियों एवं खेचरों ने आश्चर्य व्यक्त किया। १४ —इस तरह अत्यन्त विस्मित होकर, राम-लक्ष्मण की आराधना करके, भरतवर्ष की प्रदक्षिणा ली और वृषभतीर्थ आदि स्थानों में तीर्थस्थान करके प्रसन्न होकर लौटे। एक दिन रात को किष्किंधापुर में प्रविष्ट होकर, वहाँ विश्राम लेकर दूसरे दिन— देवाराधना की महत्ता और लक्ष्मण द्वारा अनायास सिद्धशैल को उठाने की कुशलता की प्रशंसा कर रहे थे कि कुछ लोगों ने कहा। १५ "उस रावण ने अपने भुजबल से तारापर्वत को नहीं उठाया था? ऐसे में युद्ध के अलावा यह कैसे जाना जा सकता है कि इनमें से

अंबुदं—

रावणनगमं विद्या * देवतेगळ बलदिनेत्तिदं भुजवलदिं- ।।
दावनुमेत्तिदनिल्ली *   भूवल्लभनंददिंदमेंदर्   केलबर् ।।१७।।
केलरीतं रावणनं * कलहदोळुरदिक्कि भरत मंडलमं दो- ।
र्वलदिंदमाळ्वनेंदर् *   केलरावं   रावणंगिदिर्चुवनेंदर् ।।१८।।

अंतवरोरोर्वरोंदोंदं नुडियुत्तुमोडने वरे सुग्रीवादिगळ् बंदु पोडेवट्टु कुळ्ळिर्पुदुं पद्मदेवनवर मुख पद्ममं नोडि—

अडेयरियदिन्नेवरेगं * तडेयदन्नेयमोंदे सालदे जानकियि- ।।
र्दडेयरिदु लंकेगेत्तदे* तडेये पराक्रमद पेर्मे पळिगेडेयक्कुं ।।१९।।

अने जांबवनितेंदं—

नयमं तमगरिपिदोड * न्नेयमं बिडदन्नरिल्ल रागादिगळें ।।
नियतंगळे कन्नडियं * प्रयत्नदिं वेळगे पत्तुविडदे कलुंबं ।।२०।।
अतिवर्तिगळ्कि दानव*पतिगरिपुवरिल्ल तक्कुदं परिजनदोळ् ।।
हितनंजदे पेळ्दु सुभा-*षितमं कैकोळिसुगुं विभीषणने वलं ।।२१।।

---

कौन श्रेष्ठ है ?" । १६ —ऐसा कहने पर— कुछ अन्य लोग बोले "रावण ने तारापर्वत को विद्यावल से उठाया था, अपने भुजबल से नहीं। इस लक्ष्मण के समान भुजबल से किसीने भी नहीं उठाया था" । १७ कुछ लोगों ने सोचा कि यह लक्ष्मण रावण को पराजित कर अखंड भूमंडल पर, अपने भुजबल से, शासन करेगा। अन्य कइयों ने यह भी कहा कि रावण का सामना कोई नहीं कर सकता। १८ —इस तरह अपना-अपना विचार व्यक्त करते हुए, वहाँ आये। सुग्रीव आदि ने आकर राम-लक्ष्मण के चरणों में नमन किया और वैठ गये तो राम ने उनका मुख देखकर कहा— "जानकी को अव तक वंधन में रख लेना उस रावण का अन्याय सावित करने के लिए पर्याप्त नहीं है ? लंका पर आक्रमण करके सीता को लौटा लाने का प्रयत्न न करके चुप रहेंगे तो हमें लोकनिंदा का पात्र वनना पड़ेगा" । १९ —इसे सुनकर जांबव यूँ वोला— "नीति की वात कहने पर अन्यायमार्ग को कौन नहीं छोड़ता ? क्रोध आदि भाव स्थायी नहीं हैं। दर्पण को मेहनत से खूब साफ करने से वह अपने मैल को त्यागकर पुन: नहीं चमकता है। २० अत्यन्त अभिमानी दानवपति रावण को विवेक की वात वतानेवाला कोई आप्त मित्र नही है। उसके दरवार में निडर होकर न्याय की वात करनेवाला केवल विभीषण है। २१ वह शुद्धाचारी

दनुजननुजं शुद्धाचारं विचारपरं परां- ।
गनेयनवनीनाथं तांगल्के तक्कुदे तक्कुदं ।।
नेनेंदु कळिपेंदोळ्पं पेळ्दण्णनं जडिदट्टुगुं ।
जनकसुतेयं मीरं दैत्यं विभीषणनेंदुदं ।।२२।।

अट्टलेवेळ्पुदोमेंगे विभीषणनल्लिगे नम्मनण्पिन- ।
ट्टिय मातनट्टिदोडे देवियनातन मातुगेळ्दु बि- ।।
ट्टट्टुगुर्मुकि सोकि दशकंठनुदंचित कंठमागि वि- ।
ट्टट्टदे बेट्टवेट्टनुसिदेट्टिदोडिर्दपुदल्ते काळेगं ।।२३।।

दूतननट्टुवुदेंतुं ॐ नीतियें निज कुशलवार्तेगेळदोडक्कुं ।
सीता देविगे मरणम ॐ दे तोदळतिदु:ख वेगदिंदागदुदें ।।२४।।

अेंबुदुमा नुडिगे महोदधियिनेंदं—

मारुत दिनकर करसं ॐ चारक्कमगम्यमेंबिनं विद्याप्रा
कारमनीगळोडर्चिद ॐ ना राक्षसपतिय पुरमनावं पुगुवं ।।२५।।

अदरिनीगळिल्लिदं विद्याधरदोळोर्वरूं लंकेगे पोगलुं पोगि कार्यमं तीर्चि बरलुं समर्थरिल्लवोर्वनत्तलिर्दपनजेय वलनांजनेयन- देंतेने—

---

है, विवेकी है, वह अगर गरजकर रावण से कह दे कि परस्त्री को इस तरह अपहरण कर ले आना न्यायोचित कार्य नहीं है, सीता को तुरंत लौटा दो, तो रावण विभीषण की सलाह का निराकरण नहीं कर सकता। २२ अत: मेरी तो सलाह है कि विवेकी विभीषण के पास हमारे किसी दूत को भेजकर सारी बाते बताना उचित होगा। विभीषण की वात सुनकर रावण सीता को छोड़ सकता है। अपनी धृष्ठटता के कारण अगर रावण ऐसा नहीं करेगा तो अवश्य युद्ध करेगे। २३ हमारे दूत को उसके पास भेजना न्यायसंगत है। हमारा कुशल-समाचार सीता जी तक नहीं पहुँचायेंगे तो वे विरहाग्नि में देहत्याग देंगी। असीम दु:ख के कारण कौन सी अनहोनी नहीं होती?"। २४ —यह सलाह सुनकर महोदधि बोला— "उस राक्षसपति रावण ने लंका के चारों ओर सूर्य-प्रकाश और वायु-संचार के लिए असाध्य विद्याप्राकार का निर्माण कर रखा है। ऐसे नगर में कौन प्रवेश कर सकता है?। २५ —अव यहाँ उपस्थित विद्याधरों में कोई भी यह क्षमता नहीं रखता कि लंका जाकर इस कार्य को सफल बनाकर लौट सके। उस ओर अजेय अंजनेय ही एकमात्र विद्याधर है जो इस कार्य को कर सकता है क्योंकि— रावण उसका आदर करता है,

दनुजं मन्निसुवं विभीषणनुमातंगोळिळदं लंकेयं ।
घन बाहाबलदिं विभेदिसि पुगल् सामर्थ्यमुंटंजना ॥
तनयंगातने देवियं बिडिसि तर्कु कादि तर्कु दशा- ।
ननर्नोट्टैसिदनप्पोडी केलसमातंगल्लदें साध्यमे ॥२६॥

अेंबुदुमा नुडिगे संतोषंबट्टु महोददधिगे मेच्चुगोट्टु सुग्रीवं गृहभूतियेंब दूतन्नं हनुमनल्लिगट्टुवुदुमातं गगनमार्गदिं पोगि हनुमरद्वीपमनेय्दि—

नभदिंदमिळिदवं रा-
ज भवनमं पोक्कु पवन सुत पाद नख ॥
प्रभे पसरिसि तनगे शिरो
विभूषण श्रीयनीये विनुतनादं ॥२७॥

आगि निजागमनवृत्तांतमर्ननितेंदु बिन्नविसिदं रामलक्ष्मणर् दंडकारण्यक्के वंदु शंभुकं साधिसिद सूर्यहासमं कोंडाननं कोंदुदके पुय्यलगेवंद खरदूषणरनवरसेनेवेरसु कोंदु मरेगेवंद विराधितनं पाताळलंकेयोळ् निलिसिदरेंबुदं सुग्रीवं केळ्दु--

इवरतिबलरिवरिंदे-* न्न विषादं किडुगुमेंब भरवशदिं कं- ॥
डवरं शरणार्थियेने- *न्नवसरमं तीर्चिमेंदु बिन्नविसुवुदुं ॥२८॥

---

विभीषण उसे प्रिय है। अपने विद्याबल और बाहुबल से लंका की अभेद्य दीवारों को भेदकर प्रवेश करने की क्षमता (बल) उसमें है। लंका से सीतादेवी को छुड़ाकर या रावण से भिड़कर उसे ले आने का साहसी वही है; और कोई नहीं। यह कार्य और किससे हो सकता है?"। २६ —इस सलाह को सुनकर सब खुश हुए। महोदधि की बात से संतुष्ट होकर सुग्रीव ने गृहभूति नामक दूत को हनुमान के पास भेजा। वह गगनमार्ग से होता हुआ हनुमद्वीप पहुँचा— आकाश से उतरकर, राज-भवन में प्रविष्ट होकर हनुमान के चरणों में ऐसा झुका कि उसके चरण-नखों की प्रभा उसका शिरोभूषण बनती-सी प्रतीत हुई। २७ —तत्पश्चात् अपने आने का कारण बताते हुए वह बोला: "राम-लक्ष्मण दंडकारण्य में आकर, शंभुक द्वारा प्राप्त सूर्यहास खड्ग को हासिल करके, उसका वध करने के कारण क्रुद्ध होकर बदला लेने के उद्देश्य से आये हुए खर-दूषण को उनकी सेना के साथ निर्मूलकर शरणागत विराधित को पाताल लंका में नियुक्त किया। इस बात की सूचना पाकर सुग्रीव— इस विश्वास से कि वे महान बलशाली है, उनसे अपना दुःख दूर हो सकता है, उनसे

शरणागत रक्षण त- ※ त्पररदनेगोंडु कादि साहस गतियं ।
शरहतियिनिक्कि चिंता※ ज्वरमं सुग्रीवनंगदिं पिंगिसिदर् ॥२९॥

अदल्लदेयुं—

उद्धरिसिदनश्रमदिं ※ सिद्ध शिलोच्चयमनोंदे करतलदिंद ।
र्घ्योद्धरण सहितममरर्※ बद्धांजलियप्पिनं सुमित्रापुत्रं ॥३०॥

अेंदु बिन्नविसिद दूतन मातं केळ्दु—

काळिदर् खर दूषणरें-※ बळलं मायावियप्प साहस गतिगा- ।
दळिवळियें बेगवेट्टं ※ मळेयिंदारिदवोलारिदं पवनसुतं ॥३१॥
अेनगमरिदप्प सुग्री- ※ वन पगेयं तीर्चि माडिदुपकारक्कें- ।
न्ननें रामलक्ष्मणर्गी ※ वेनेंदु निश्चयिसिदं प्रभंजन तनयं ॥३२॥

आगळातनंतःपुर सीमंतिनी ललामेयप्पनंगपुष्प सहोदर पितृ वियोगोद्वेगमुमनातन नयन पुत्रिकेगे पद्मराग मणिदर्पणमनिप्प पद्मरागे निज जनकनप्प सुग्रीवन संतोषदोळाद मनोरागमुमनप्पुकय्ये मरुदिवसं मंगळाभरण भूषितं मणिघंटा विराजमान विमानयनेरि किष्किंधपुराभिमुखनागि तळर्वुदुं—

---

मिला और अपना कष्ट कह सुनाया और उससे मुक्त करने का निवेदन किया। २८ शरणागतों की रक्षा करने में निरत उन्होंने सुग्रीव के आग्रह को स्वीकार कर, साहसगति से लड़कर उसे पराजित कर सुग्रीव के शरीर के चिंता-ज्वर को दूर किया। २९ —इसके अतिरिक्त— लक्ष्मण ने सिद्ध-शैल को अनायास एवं एक ही हाथ से उठाकर, अमरों से अंजलीवद्ध अर्घ्य अर्पित करवा लिया है"। ३० —दूत द्वारा निवेदित बात को सुनकर— यह सोचकर कि खर-दूषण मिटा दिये गये हैं और मायावी साहसगति की ऐसी स्थिति हुई है, हनुमान वैसा ही ठंडा पड़ गया जैसे अग्नि-पर्वत वर्षाजल से अपनी गरमी को त्यागता है। ३१ प्रभंजन-पुत्र हनुमान ने मन ही मन सोचा कि अपने से भी महान बलशाली सुग्रीव की शत्रुता मिटाकर जिन राम-लक्ष्मण ने जो महदुपकार किया है वैसों को अपना सर्वस्व समर्पित कर देगा। ३२ —समाचार पाकर उनकी पत्नी अनंगपुष्पा अपने पिता और भाई की मृत्यु से शोकाकुल हुई, लेकिन और एक पत्नी पद्मरागा अपने पिता को प्राप्त प्रसन्नता से सन्तुष्ट हुई। दूसरे दिन मंगलाचरणों से विभूषित हो रत्नघंटिकाओं से सुशोभित विमान में बैठकर हनुमान किष्किंधापुर की ओर रवाना हुआ। उसकी

पवनसुत सेनॆ नडॆदुदु ※ पवनपथं नॆरॆयदॆबिनं दॆसॆयॆल्लं ।
किवि शब्दंगिडॆ कहळा ※ रवदिं पटु पटह शंख भेरी रवदिं ।।३३।।

आ समयदॊळ् मरुत्सुतागमनोत्सवक्कॆ पुरदॊळष्टशोभॆयं माडि परिजन पुरजन पुरस्सरं सुग्रीवनिदिर्गॊण्डु यथोचित प्रतिपत्तियिं काणिसि कॊण्डु रघुतनूज राजमंदिर क्कॊडगॊंडुय्वुमं—

अतिवृत्तायत करनु ※ न्नत वंशं भद्रलक्षणोपेतं मा— ।
रुति रामन सभॆगैरा ※ वर्नमिंद्रन सभॆगॆ बर्थं तॆरदिं बंदं ।।३४।।

अंतु बंदुपायन पुरस्सरं राम लक्ष्मणर चरणकमलंगळ्गॆरगि नल नीळांगद विराधित प्रमुखरं प्रेमालिंगन क्षेम वचनदिं मन्निसि मणिमयासनदॊळ् कुल्लिर्पुदुं जांबवनिंतॆंदं—

किरणं तीक्ष्णकरगॆ तीक्ष्ण नखरं सिंगक्कॆ वज्रायुधं ।
पुरुहूतंगुरिगण् मृडंगॆ रदनं दिग्दंतिगादंदर्दिं ।।
नॆरवादं पवनात्मजं कदनकेळी कर्कशं रामदोहः ।
परिघक्कुंडिगॆ साध्यमादुदॆ वलं षट्खंड भूमंडलं ।।३५।।

ई बल्लाळ हनुमन बा ※ हा बलदिं नडॆदुदिन्नॆगं दशकंठं— ।
गा बिकमुना बीरमु ※ मा बिरूदुमवंगॆ नडॆयलिन्नरिदपुदे ।।३६।।

---

विशाल सेना भेरी-नगाड़ों की ध्वनि के साथ आगे बढ़ी तो सारा आकाश उसके लिए छोटा पड़ गया। ३३ —तब तक हनुमान के आगमनोत्सव निमित्त किष्किंधा में सारी तैयारी हो चुकी थी। सुग्रीव ने अपने परिजनों एवं पुरजनों के साथ हनुमान का स्वागत किया और उचित रीति से उसका सत्कार किया। तत्पश्चात् उसे उस राज-मंदिर में ले गया जहाँ राम-लक्ष्मण ठहरे हुए थे। —अत्यंत बलिष्ठ बाहु-वाले, उन्नत वंशोद्भवी एवं लक्ष्मण के समान बलशाली मारुती ने राम की सभा में उसी तरह प्रवेश किया जिस तरह ऐरावत इंद्रसभा में प्रवेश करता है। ३४ —इस तरह आकर, उपहार अर्पित करते हुए राम लक्ष्मण के चरणों में झुककर, स्नेह से नल, नील, अंगद, विराधित आदि का आलिंगन कर, कुशल वार्ता की बात करके, रत्नसिंहासन पर विराजमान हुआ तो जांबव ने यूँ कहा— "जिस तरह प्रखर प्रकाश सूर्य को और तीक्ष्ण नख सिंह को, वज्रायुध इंद्र को, ललाट का तीसरा नेत्र शिवजी को, और दाढ़ दिग्गजों को सहायक बनते हैं उसी तरह हनुमान राम का सहायक बनेगा। अगर यह हुआ तो षट्खंडों में राम अद्वितीय बन जायगा। ३५ इस बलशाली हनुमान के साहस से अब तक रावण का

ऎंबुदुमा समयदॊळ् सुग्रीवं पवमानसूनुगितॆंदं—

आनतनल्लदगॆ पदुळं निलविल्ल निजान्वयागत ।
स्थानदॊळानातंगॆ भयमिल्ल जगत्त्रयवांनॊडं जय ॥
श्रीनिलयर् सहायमनपेक्षिसरार्गम जेयरूद्धतर् ।
मानधनर् महामहिमर्रितिवरिर्वरॆ राम लक्ष्मणर् ॥३७॥

ई महानुभावरप्पॊडॆ मुन्नं सीता स्वयंवरदॊळ् देवताधिष्टि-
तंगळप्प वज्रावर्तं सागरावर्तमॆंब चापरत्नंगळुमं हलायुध गदायुधंगळुमं
नागविद्यॆगळ्वॆरसु कॊंडति प्रचंडरदल्लदॆयुं—

कारण पुरूषरिवरसा- ॐ धारण रणमल्लरिक्कि साहस गतियं ।
मारूति शर हतियिनसा- ॐ धारणमप्पॆन्न वन्नमं पिंगिसिदर् ॥३८॥

ऎंबुदुमदर्कॆ हृषित चित्तं मरूत्तनयं रामचंद्रंगॆ मुकुलितांजलियागि
देव भवज्जन्ममखिल जगदुपकारनिमित्तिमादुददुकारणदि—

ऎमगुचितं निजसेवा ॐ प्रमोदमधिराज पंचभूतंगळ्गं ।
निमगं प्रत्युपकार ॐ क्षमरार् देहिगळॊळंबिका स्तन्यक्कं ॥३९॥

ऎंदु बिन्नाविसॆ—

---

शौर्य और दुरभिमान काम कर रहा है। अब उस कीर्ति को वह कायम नहीं रख पायेगा"। ३६ —ऐसा कहने पर सुग्रीव हनुमान से यूं बोला:— "जो शरणागत नहीं होते उनके सुख-चैन से रहने का ठौर नहीं। वंश-परंपरा से आये हुए स्थान में रहनेवालों का विरोध त्रैलोक भी करे तो कोई डर नहीं। केवल राम-लक्ष्मण ही ऐसे अभिमान-धनी हैं जो जयश्री को साथ लेकर और किसी की भी सहायता की अपेक्षा नहीं करते। ३७ —इन महानुभावों ने सीता-स्वयंवर में देवताओं से प्रतिष्ठित वज्रावर्त, सागरावर्त एवं हलायुध, गदायुध, नाग विद्याओं को अपने वश में कर लिया था। इसके अतिरिक्त— हनुमान, ये कारण पुरुष हैं; असीम साहसी हैं। साहसगति को पराजित कर मेरे कष्टों का निवारण किया है"। ३८ —ऐसा कहने पर प्रसन्न होकर हनुमान ने राम को हाथ जोड़ा और कहा— "आपका जन्म लोकोपकार के लिए हुआ है। अतः— आपकी सेवा के माध्यम से मेरे इस पंचभूतात्मक शरीर को संतुष्ट कर देना चाहता हूँ। स्तनपान करानेवाली मां बदले में प्रत्युपकार के रूप में, संतान से कुछ माँगती है?"। ३९ —ऐसा निवेदन करने पर— उसकी गंभीर प्रकृति (स्वभाव) सौम्याकार, सहज नम्रतापूर्ण वचन और उसके गूढ़ार्थ से संतुष्ट

धीर प्रकृतिगे सौम्या- * कारवकनुगुणमेंनिप्प भय विनय वच- ।
स्सारतें मेंच्चि रघुकुल * वीरं कारूण्य दृष्टियिंदीक्षिसिदं ।।४०।।
अपरिमितमेंनिप कारू- * ण्य पयस्सागर समुद्भवंगळनित्तं ।
नृपरत्नं भटरत्नं- * गपूर्वमं रत्न कर्णकुंडल युगमं ।।४१।।

अंतु मेंच्चु गुडुवुदुमनंतरं महोदधिवेसर विद्याधरनिंतेंदं—
नीनिल्लदिनिबरूं लं- * कानगरिगें पोगि नुडिदु दशकंधरनोंळ् ।
जानकिय शुद्धियं पव * मानज तर्पेसकमिल्लदोसरिसिर्दरू ।।४२।।

अेंने मनदे कोंडु मारूति मेघरूतियिनुदात्तराघवंगें मुकुलित कर सरोजनागि—

नयदिं तंदपनेंतुमीयदोंडें बलिपं तंदपें देव दे- ।
वियनंतल्लदे नोडि बर्पुदेंने मायारूपदिं पोगि सु- ।।
द्वियनांतर्पवनल्लेंनानें कोंळनं पोक्कतेंवोल् माडि लं- ।
केयुमं दैत्यनुमं भयंगोंळिसि तर्पें जानकी शुद्धियं ।।४३।।

त्रिदशेंद्राराति दैत्यं धरेयनें रसगंदुय्यें केळ्दाद कायप्पिं ।
कदन क्रीडानुरक्तं मुररिपु पगेयं कोंदु भूकांतेयं स- ।।
म्मदर्दिं तंदंतें लंकेश्वरननमर विद्विष्टनं कोपदिंदो- ।
वदें कोंदां तदपें देवियनेंनगरिदे देव पेळेन्ननीगळ् ।।४४।।

---

होकर राम ने उसे करुणापूर्ण दृष्टि से देखा। ४० अपरिमित करुणा की अमृतबिन्दु बरसाकर, राम ने साहसी हनुमान को अपने अपूर्व रत्न कर्ण-कुंडल दे दिए। ४१ —तत्पश्चात् महोदधि नामक विद्याधर ने कहा—"हनुमान, तुम्हारे अलावा इन समस्त लोगों में कोई भी ऐसा नहीं है जो लंका जाकर, रावण को समझाकर, जानकी का समाचार लाने में समर्थ हो"। ४२ —तब, उस बात को सुनकर, अंजलीबद्ध हो मेघध्वनि-से स्वर में हनुमान ने उदात्त राघव से कहा— "नीति की बात कहकर सीता-देवी को लौटा लाऊँगा; रावण न माना तो बलात्कार से ले आऊँगा। अगर आप चाहें कि मैं माया रूप धारण कर सीता-माता को देख आऊँ तो वह काम मैं नहीं कर सकता। जिस तरह तालाब में उतरा हुआ हाथी सारे पानी को गंदा (मैला) बनाता है उसी तरह लंका और रावण को भय-विह्वल बनाकर सीतादेवी का समाचार ले आऊँगा। ४३ जिस तरह सुरवैरी दैत्य द्वारा पृथ्वी को रसातल ले जाने पर युद्धक्रीड़ा में अनुरक्त विष्णु उस राक्षस का वध करके, भूमाता को छुड़ा लाया था, उसी तरह लंकापति एवं अमर-वैरी रावण को मारकर सीतादेवी को लौटा लाता

अँदु पूण्दु नुडिदंजनासुनंगॆ रघुवीरनिंतॆंदं—

जनकजॆयं सुद्दियं त- ※ र्पं नियोगं निनगॆ मीनॆयॊळाटंदु दशा- ॥
स्यननिक्कि देवियं त- ※ र्पं नियोगं लक्ष्मणंगॆ पुदु पॆरर्गुंटे ॥४५॥

अँदु नियमिसि नुडिदु—

अरिपुवरिल्ल तन्न कॊलदॊळ् मरॆदप्पॊडमॆन्नगल्कॆगं- ।
डरियदवळ् भयाकुलनॆयिदसुवं विडुवंतुटप्प वॆ- ॥
सरनॊळकॊळ्गुमंतॆसगदंतिरॆ माळ्पुदु सीतॆ देहमं ।
तॊरॆद बळिक्कॆ रक्कसननिक्किकदॊडिक्किद लॆक्कमक्कुमे ॥४६॥

अँदु रघुवीरनणुवंगॆ जानकिय तन्न कुरूपिन विण्णांगळनरिपि—

जनकजॆय वदन सरसिज
मनलर्चल् विरह खेद तममं कळॆयल् ॥
हनुमन कैयॊळ् रघुनं-
दननित्तनुदंशुमाह्नि रविमंडलमं ॥४७॥

अंतित्तु तनगाकॆय चूडामणियं तर्पुदॆंदु बॆससॆ महाप्रसाद-मॆंदाक्षणदॊळॆ वलाच्युमर पदंगळं बीळ्कॊंडवि प्रवलवल समन्वितं विमानरूढं पवमानसूनु पवनपथक्कॆ नॆगॆदु पोगुत्तं महेंद्राचल मध्यदॊळनिशयमागिर्द पुरमं कंडु—

---

हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए"। ४४ —इस तरह प्रतिज्ञापूर्वक बोलनेवाले हनुमान से राम ने कहा— "जानकी का समाचार लाना तुम्हारा कार्य है; युद्ध में रावण को हराकर सीता को लौटा लाने का कार्य लक्ष्मण का है। ये कार्य दूसरे के नहीं हैं"। ४५ —ऐसा नियुक्त कर, राम ने पुनः कहा— "सीता, जो सदा मेरे बगल में रहा करती थी, को समझाने-सांत्वना देनेवाला कोई नहीं है; मुझसे अलग रहने का अनुभव उसे कभी नहीं रहा; तुम्हें उसे यह समझाना होगा कि भय के कारण जीने की आशा छोड़कर कभी प्राण त्याग (आत्महत्या) न करे। अगर वह जीवित न रही तो राक्षसों को मारकर क्या मिलनेवाला है?"। ४६ —इस तरह राम ने हनुमान को अपने और सीता के स्मरण के विषय बताकर—सीता के वदनारविंद को खिलानेवाली, विरह दुःख के अंधकार को नाश करने में योग्य तथा सूर्यप्रभा सदृश अपनी अंगूठी हनुमान को दे दी। ४७ —और सीता का चूड़ामणि ला देने का आदेश दिया। उसे प्रसाद मानकर हनुमान ने स्वीकार किया और राम-लक्ष्मण से विदाई लेकर प्रबल सेना के साथ विमानारूढ़ होकर आकाश-पथ से जाते हुए महेंद्र पर्वत के बीच में

ईक्षण सुखमयमिदु ज- * न्मक्षेत्रं गड महेंद्र पुरमेनगी तुं- ।
ग क्षोणीधर सानु स * मक्षद पल्मंक गुहेयोळेंम्मब्बे गडं ॥४८॥
अेन्नं षडेदळ् गड ता-* यन्नडपिदरमित गतिबळेंब तपस्सं- ।
पन्नर् चारण ऋषियर् *मुन्नरिपिदळेनगे जनानि परिविडियिदं ॥४९॥

आ महेंद्रपुरमनाळ्वनेंम्मा मुत्तम्मं मदीय मातेय गर्भ-
दोळानिर्पुदुमेन्न ताय्विरत्तेयुं मावनुं—

इल्लद दोषमनिट्टरि-
विल्लदे पोरमडिसि कळेये शरणिल्लदे त - ।
न्नल्लिगे बरे तानुं कृपे
यिल्लदे निर्बुद्धि पोर्दलीयदे कळेदं ॥५०॥

अेंदु कडुमुळिदु—

रणपटह रवं दिग्वा- * रण कर्णाभ्यर्णमं पळंचलेये समी- ।
रण तनमनप्रमित भी- * षण सैन्यं सुत्तिमुत्तिदं तत्पुरमं ॥५१॥

आगळा कळकळं श्रुतिपयमनेय्दे घनरवक्के गर्जिसि गुहेयिं
पोर मडुव मृगेंद्रनंते महेंद्रं पुरमं पोरमट्टु मरुवक्कमनिक्कुव
तक्कुमिक्कु बरे कंडगि काडुवल्लि मारुतिय वाहिनिगे महेंद्र-

---

विशेष रूप से दृष्टिगोचर होनेवाले नगर को देखकर— यह दृश्य दर्शकों के नेत्रों को सुख प्रदान करनेवाला है। इस महेंद्रपर्वत के शिखर में अपनी माँ अंजनीदेवी ने मुझे जन्म दिया। ४८ माँ ने मुझे बताया था कि अमितगति नामक चारण ऋषि ने उसे (माँ को) इस गुफा में छिपा रखा था। ४९ —मेरे प्रपितामह इस महेंद्रपुर के शासक है। जब मैं मेरी माँ के गर्भ में विकसित हो रहा था, तब उसके सास-ससुर ने— व्यर्थ ही दोषारोपण करके, विवेकहीन बनकर, माँ को नगर से बाहर कर देने पर, निराश्रित होकर वह इनके (प्रपिता के) पास आयी तो इसने भी उसे आश्रम एवं आदर न देकर निर्दयता से बाहर डाल दिया। ५० —उस घटना को स्मरणकर,कुपित होकर— युद्ध का भेरी-नाद दिग्गजों के कर्णपटलों पर आघात करने लगे तो हनुमान ने अपनी असंख्य सेना के साथ महेंद्रपुर को घेर लिया। ५१ —तब वह कोलाहाल आकाश-पथ में प्रतिध्वनित हुआ। घनगर्जना सुनकर गरजते हुए गुफा से बाहर निकलनेवाले सिंह की भाँति महेंद्रपुर से निकलकर विरोध पक्ष को पीटकर निर्नाम करने के उद्देश्य से साहस से लड़ने लगा। लेकिन हनुमान की सेना के साहस के सम्मुख महेंद्र की सेना का साहस उसी तरह गायब हो गया जिस तरह

वाहिनि बेसगेय वाहिनियंतोळसोर्वुदुमदं प्रसन्नकीर्ति कंडु कदन-केळिगतिवर्तियागि तागुवुदुं—

तेरच्चं मुरियेच्चं ※ कूरंबि विल्ल गोणेयुमं परियेच्चं ।
सारथियं कॆडॆयेच्चं ※ मारुतिय रणक्कॆ तक्कुगिडदवनावं ॥५२॥

अंतु विरयनागि मत्तं प्रसन्नकीर्ति मान गर्वदिं विमानारूढं रण-क्रीडॆगॊडरिसवुदुं श्रीशैळं तद्विमानमं छायाग्रहणं गॆय्यॆ नॆलक्कॆ वर्पुदुं प्रसन्नकीर्तियं पिडियॆ महेंद्रनुमदं कंडु कडुकॆय्दचिंत्ययुद्धं-गॆय्दॊडातनुमं पिडिदु निज विजयशिविरक्कुय्दुमन्निसि—

विनयदिनॆरगि मृगेंद्रा-※ सनमं कॊट्टम्म निम्म मॊम्मनॆ नानं- ।
जनॆगं प्रभंजनंगं ※ जनियिसिदॆं हनुमनॆंबॆनॆंदरिपुवुदुं ॥५३॥

अदं केळ्दानंदजल लुळित लोचननति प्रमोद पुळकमं तळॆदु महेंद्रनिंद्र पदवि दॊरॆकॊंडंतॆ संतुष्टचित्तनागि किरिदुं वेगमिर्दु निन्न पुरुषाकारमुं मनोहराकारमुमवार्य वीर्यमुमिन्नॆवरं श्रवण भूषणमागिर्दु-वीगळॆमगॆ प्रत्यक्षमादुवॆंदु पॊगळ्दु पलतॆरादिं परसिद मातामहंगॆ मारुति कैगळं मुगिदु—

---

गर्मी के दिनों मे पानी भाप्प बन जाता है। इसे देखकर प्रसन्नकीर्ति स्वयं युद्ध के लिए आगे बढ़ा। —अपने बाणों से रथ के चक्रों को तोड़कर, शत्रु के धनुष की प्रत्यंचा को तोड़कर, सारथी को धराशायी बनाकर हनुमान ने अप्रतिम साहस दिखाया। ५२ —रथ के टूटने से प्रसन्नकीर्ति अपमानित हुआ और विमानारूढ़ होकर युद्ध के लिए तैयार हुआ तो उसके विमान को श्रीशैल ने छायाग्रहण शक्ति से पकड़कर पृथ्वी पर गिरा दिया। हनुमान ने उसे गिरफ्तार कर लिया। इसे देखकर महेन्द्र भयानक (असाधारण) युद्ध के लिए तैयार हुआ। उसे भी हनुमान ने गिरफ्तार कर लिया और अपने शिविर में ले गया। वह उसका सत्कार कर— उसके चरणों में नमस्कार करके हनुमान ने बताया, "पितामह, मैं आपका पोता हूँ, मैं अंजना-प्रभंजन का पुत्र हूँ और मेरा नाम है हनुमान"। ५३ विषय जानकर रोमांचित होकर महेंद्र आनंदाश्रु बहाने लगा। उसे इतना हर्ष हुआ मानो वह इंद्रपद ही पा गया हो। वह बोला : "तुम्हारा पुरुषाकार, सौंदर्य और असाधरण साहस अब तक तो केवल मेरे कानों के आभूषण थे, अब वे मेरी आँखों के भूषण हुए"। ऐसी प्रशंसा करके अनेक तरह आशीष देनेवाले पितामह को हाथ जोड़कर मारुती बोला— "उम्र में छोटा होते हुए भी आपके विरुद्ध लड़कर मैंने अपनी अज्ञानता एवं धृष्टता का

किरुगूसु तनादोळाजिय ✻ नरियमेयिदानोर्डचिदें क्षमियिपुदें- ।
देरगिदनणुवं गुणमं ✻ मेरेवंगदु विनयमोंदे भूषणमल्ते ।।५४।।

अंतु विनय विनमितनागि निम्मडि नम्म कपिध्वज कुलक्के परमोपकारमं माडिद रघुवीरन बेसदिं लंकेगे पोदप्पेनां बर्पन्नं नीमुं किष्किध पुरक्केपोगि रामलक्ष्मणर सेवानुग्रहमं पडेदु सुग्रीवादिगळोळ् कूडि सुखमिर्पुदेंदु नियमिसि मारुति मारुतवेगदिं मारुत पथक्के नेगेदु तेंकमोगदे पयणंबोपुदुमित्त महेंद्रं प्रसन्नकीर्तिवेरसु हनुमर-द्वीपक्के पोगि हनुमनरमनेयं पुगुवुदुं—

अंजनेगळुंबमाय्तु मु- ✻ दं जननी जनक बंधुजन दर्शनदिं- ।
दंजनेयं कंडति ह- ✻ र्षं जनियिसिदत्तु मातृ पितृ बंधुगळोळ् ।।५५।।

अंतु परस्पर क्षेमकुशल भाषा पुरस्सरं—

अमर्दप्पे हर्ष पुळको- ✻ द्गमभवगादत्तु कडवरल्दुदेनल् चि- ।
त्रमे देहिगिष्ट संयो- ✻ गमनिष्टवियोगमेरडे सुख जनकंगळ् ।।५६।।

अंतु संतुष्टरागि महेंद्र प्रसन्नकीर्तिगळ् किष्किधपुरक्के पोगि बलनारायणरं कंडाळ्ननमं कैकोंडु कपिध्वजरोळ् कूडि सुखदिनिर्द-रित्तलाकाशमार्गदोळ् पोगुत्तुं—

---

परिचय दिया है। पितामह जी, मुझे क्षमा करें"। ऐसा कहकर उसने पुनः प्रणाम किया। गुण अभिव्यक्त करने में नम्रता आभूषण का काम करती है न ? । ५४ —फिर नम्र होकर मारुती बोला : "आपके कपिध्वज-कुल का उपकार करनेवाले श्रीराम के आदेशानुसार मैं लंका जा रहा हूँ। मेरे लौटने तक आप किष्किधा में रहनेवाले राम-लक्ष्मण से सेवानुग्रह पाकर सुग्रीव आदि के साथ सुख से रहें"। और वायुवेग से आकाश की ओर उड़-कर दक्षिण दिशा की ओर प्रयाण करने लगा। इधर महेंद्र प्रसन्नकीर्ति के साथ हनुमद्वीप जाकर हनुमान के प्रासाद में प्रविष्ट हुआ तो— अंजनीदेवी को माता-पिता बंधुजनों के दर्शन से अत्यंत आनंद हुआ। उन लोगों को भी अंजनादेवी से मिलकर असीम हर्ष हुआ। ५५ —परस्पर कुशल-समाचार की बातें करते हुए— आलिंगन करने पर अनिन्दातिशय के कारण रोमांचित होकर परस्पर आनंदाश्रु बहाने लगे। मनुष्य को प्रियों का मिलन और अप्रियों की बिछुड़न दोनों सुखदायी होते हैं न ? । ५६ —इस तरह संतुष्ट महेंद्र और प्रसन्नकीर्ति किष्किधापुर जाकर बल-नारायण (राम-लक्ष्मण) से मिलकर, उनकी सेवा करते हुए, कपिध्वजों से मिलकर सुख-संतोष से रह रहे थे। इधर आकाशमार्ग से

अधरित कनकाचलमं ※ विधु रवि मंडल विचुंवि कूटमनाशा ।
वधि विश्रुतमं भोंकनें ※ दधिमुख पर्वतमनांजनेयं कंडं ॥५७॥

प्रतिमा योग नियुक्तरेंटु दिवसं कैयेत्तेवेंदिर्दर- ।
प्रतिमर् चारणरा नगोपरिमदोळ् तत्पार्श्वदोळ् मूवर- ॥
प्रतिरूपान्वितेयर् सितांशुकेयरिर्दर् कन्नेयर्कळ् मधु- ।
व्रत माळायत वेणिगळ् जपियिसुत्तुं दिव्य मंत्रंगळं ॥५८॥

आ समयदोळ् लय समयद केसुरिय मसकमनप्पुकेय्दु—

चारण युगळमुमं क- ※ न्यारत्नंगळुमनळुर्दु सुडलोडरिपुदं ।
दारुण दावानलनं ※ मारुति जलवर्ष विद्येयिं मळ्गिसिदं ॥५९॥

आ महोपसर्गमं पिंगिसि—

यतिपतिगळ पादांभोजमं भक्तियिंदं ।
सततगति तनूजं पूजिसुत्तिर्दनागळ् ॥
कृत नियम नियुक्ताचारेयर् दिव्ययोगि ।
द्वितय चरण पूजानंतरं कन्नेयर्कळ् ॥६०॥

मारुतिय मुखारविंदमं नोडि महामहिम नीं बदेंमगमी महातपोधनर्गं समनिसिदुपसर्गमं तोलगिसि महोषकारमं माडिदेयेंदु संस्तवन पूर्वकं मुकुलितांजलिगळागिर्पुदुं—

---

जाते हुए— कनकाचल के ऊपर से उड़कर, उसके शिखरों की ऊँचाई से रविमंडल का चुंबन करता हुआ और अपनी कीर्ति को दिगंतों तक फैलाए दधिमुख पर्वत को अंजनेय ने देखा । ५७ वहाँ के पर्वतशिखरों में प्रतिमायोग में रहकर आठ-आठ दिनों तक हाथ उठाये बिना समाधिस्थ रहनेवाले चारणऋषि को देखा । उनके बगल में तीन अतुल रूपवती युवतियाँ व्रतनिष्ठा हो दिव्यमंत्रों का उच्चारण करती हुई बैठी थीं । ५८ —उस समय प्रलयकाल की एक अग्निज्वाला— चारण द्वयों और युवतियों को घेरकर जलाने लगी । जलवर्षा-विद्या से हनुमान ने उसे बुझा दिया । ५९ —उन यतियों को प्राप्त ऐसे संकट से बचाकर— मारुती उनके चरणकमलों की वंदना कर रहा था । व्रतनिष्ठ हो मंत्रोच्चारण में तीन युवतियों ने मुनिवरों को श्रद्धाभक्ति से प्रणाम करने के पश्चात् । ६० —हनुमान के मुखारविंद को देखकर कहा : "हे महामहिम, आपने आकर हमारे साथ-साथ इन तपोवनों पर आयी हुई विपत्ति को दूरकर महदुपकार किया है" । ऐसी कृतज्ञता व्यक्त करके हाथ जोड़कर खड़ी हुईं । तब— आश्चर्यचकित

ई रौद्राटवियोळिदे ※ कारणदिंदिर्दिरेंदु विस्मय चित्तं ।
मारुति बेसगोंडं क- ※ न्या रत्नंगळनपार कारुण्य रसं ।।६१।।

अंतु बेसगोळ्वुदुं—
अनवद्य चरितनेंदरि- ※ दनिबर कडेवुट्टिदाके हनुमंगस्म- ।
ज्जनकं दधिमुख नगरी ※ जनपति गंधर्वनेंबनंबर गमनं ।।६२।।

ऎंदेम्म पॆसर् चित्रलेखेयुं विद्युत्प्रभेयुं तरंगमालेयुमेंबुदेम्मं विजयार्धनग निवासिगळप्प विद्याधरर् मॊदलागॆ पलबर् बेडॆयुं कुडादिर्पुदुमंगार वेगनेंब विद्याधरनत्याग्रहंगॆय्दु बेडुवुदुमातनुदासीनंगॆय्दॊंदु जिनभवनक्के वोगि—

अनुरूपनप्प वरना- ※ वनप्पनस्मत्तनूजेयगॆंदष्टां- ।
गनिमित्तमनतरिव महा ※ मुनियं बेसगोंडनेम्म पितृवॊंदु दिनं ।।६३।।

अंतु बेसगोळ्वुदुमवर्िरतेंदु बेसर्सिदरुत्तर श्रेणिगॆ प्रधाननप्प साहसगतियं कॊंदातं निन्न मक्कळ्गॆ भर्तारमक्कुमॆंनॆ मनदेगॊंडु संतोषंबट्टॊसॆदिर्दनामुमी महाविपिनदॊळ् मनोवेगवेंब विद्येयं

---

हनुमान ने अपार करुणा व्यक्त करते हुए उन युवतियों से पूछा : "इस भयानक अरण्य में आप लोग क्यों रह रही हैं ?" । ६१ —इस प्रश्न के उत्तर में— उनमें से सबसे छोटी युवती ने, यह सोचकर कि यह पुण्यात्मा है, कहा : "दधिमुख नगर का गंधर्व नामक राजा हमारे पिताजी है । वे आकाशमार्ग में चलने में समर्थ हैं । ६२ —हमारे नाम हैं, चित्रलेखा, विद्युत्प्रभा और तरंगमाला । विजयार्ध पर्वत के निवासियों में से अनेक विद्याधर आदि ने हमसे विवाह करने की इच्छा व्यक्त की लेकिन पिताजी नहीं माने । अंगारवेग नामक विद्याधर ने अत्यंत आग्रह किया तो भी पिता जी कन्यादान के लिए तैयार नही हुए । उन्होंने अरुचि दिखायी । एक बार वे जिनभवन गये । —वहाँ अष्टांग निमित्त के ज्ञाता मुनियों से पूछा कि हमारे योग्य वर कौन होगा ? । ६३ —उत्तर में उन्होंने कहा : 'जो व्यक्ति उत्तर में प्रधान माने जानेवाले साहसगति का वध करेगा वही तुम्हारी कन्याओं का पति होगा' । इसे जानकर पिताजी को अत्यन्त हर्ष हुआ है । हम इस घोर कानन में मनोवेग नामक विद्या हासिल करने के उद्देश्य से बारह वर्षों से यहाँ हैं । उस विद्या को हासिल किये हमें छः वर्ष बीत गये हैं । अब जिस अंगारवेग ने हमसे विवाह करने का प्रस्ताव रखा था उसीने बदले की भावना से अग्निज्वाला से हमें हानि पहुँचाना चाहा था" । इस विषय को सुनकर— "अतिबलशाली साहसगति को मारनेवाला अप्रतिम

साधिसुत्तु द्वादश वर्षमिल्लिर्दु पेरगारु वर्षदिंदा विद्येयं साधिसिदेवेम्मं बेडि षडेयदंदिनंगारवेगनी महोपसर्गमं पेळे केळ्दु—

अतिबलननिक्कि साहस- ❋ गतियं किष्किंधपुरदोळिर्दपनत्यू- ।
र्जित तेजं राघवनें- ❋ दतवर्य वलनरिपि पवन तनयं पोदं ॥६४॥

इत्त गंधर्व निज तनूजेयर् सिद्धविद्येयरादुदनरिदु संतुष्ट चित्तनागि तम्मल्लिगें वर्पुदं कन्नेयर् कंडिदिगोंडु—

चलदलक तमाल दळं ❋ चलनाशोक प्रवाहदोळ् पुंजिसे को- ॥
मलेयर् विद्याधर कुल ❋ तिलकंगति भक्ति भरदिनानतरादर् ॥६५॥

अंतु विनतरागि—

सुतेयर् मारुति पेळ्दुदं तनगें पेळल् केळ्दु गंधर्वरा- ।
ज तनूजं निज सौनिकरंबेरसु किष्किंधक्के वंदित्तु त- ॥
त्सुतेयर्मूवरमं प्रशस्त दिनदोळ् रामंगें पूण्दाळ्तन-
क्कतिहर्षं सुखमिर्दतत्तलणुवं पोदं वियन्मार्गदोळ् ॥६६॥

अंतु पोगि लंकापुरद वहिः पुरदोळ् वीडं विट्टु मरुदिवसं पुरमं पुगुव समयदोळ्—

गेलवंतिर्कें म वायु पुवन वलक्कं कोंटे विद्यात्मकं ।
सलविल्लादुदलोकदंतदर मेलिर्दुग्र कालोरगा- ॥

---

साहसी श्रीराम अब किष्किंधा में है" इतना कहकर हनुमान वहाँ से रवाना हुआ। ६४ —इधर गंधर्व-कुमारियाँ विद्या प्राप्त करके अपने नगर लौटीं तो गंधर्व ने वड़ी धूमधाम से उनका स्वागत किया। —हवा के झोंकों से हिलती हुई केशराशियों से, अशोकवृक्ष के अंकुरों के समान सुशोभित कन्याओं ने विद्याधर-तिलक के सम्मुख श्रद्धाभक्ति से प्रणाम किया। ६५ —इस तरह प्रणाम करने के पश्चात्— मारुती ने उन्हें जो वात वताई थी उसे सुनाई तो गंधर्वराजा अपनी बेटियों एवं सेना के साथ किष्किंधा पहुँचकर एक दिन शुभ मुहूर्त में राम का अपनी कन्याओं का पाणिग्रहण कराकर सुख से रहने लगा। इधर हनुमान आकाशमार्ग में आगे बढ़कर। ६६ —लंकानगर के बाह्य प्रदेश में डेरा डाला और अगले दिन नगर प्रवेश करते समय— विद्याप्राकार से रक्षित दुर्ग ने उसे रोका। दुर्ग के ऊपर भयानक साँप, भूत एवं अद्भुत सत्व देखनेवालों को भयभीत करा देते थे। विभीषण शक्तियों से निर्मित, अजेय दुर्ग विकार दिखाई दे रहा था। ६७ —पृथुमति नामक मंत्री ने दुर्ग से संबंधित सारा रहस्य

वलि भूतावलि रौद्र सत्व निवहं लोकाद्भुतं नाडे नो- ।
डलगुर्वादुदु तद्विभीषण कृतं दुर्वार वैकुर्वणं ।।६७।।

आगळदर स्वरूपमेल्लमं पृथुमतिवेसर मंत्रि बिन्नविसे नेरेयेकेळ्दु कलुष वशगतनागि विमानदिनवनिगवतरिसि—

अंतगी प्राकार विभे- ॐ दनमावुदो गहनमेंदु कोपारुण लो- ।
चननिलसुतं तोट्टं ॐ तनुत्रमं वज्रमयमनप्रतिहतमं ।।६८।।

अंतु दिव्य वज्रकवचमं तोट्टु—

विधिपूर्वकमात्म गदा- ॐ युधमं दैविकमनेत्ति हनुमं वज्रा- ।
युधदिं दिविजेंद्रं कुल- ॐ कुधरंगळनळरे पोय्व तेरदिं पोय्दं ।।६९।।

अंतु पोय्दु विद्याप्राकारमनोडेवुदुं—

द्वार नियुक्तं रौद्रा- ॐ कारं वज्रमुखनेंब दनुजं सेरगं ।
पारदे तागिदोडवमं ॐ मारुति निमिषक्के तूंतिद यममुखदोळ् ।।७०।।

अदं तदात्मजेयप्प लंकासुदरि भोंकने कंडु कडुमुळिदु—

जनकननिक्किदुद्धतननिक्कुवेनेंदु कडंगि बंदु भों- ।
कने चरमांगनं पवन सूनुवनीक्षिसि कण्णसोलमा- ।।
दंनुविसे शोकमं मुळिसुमं मरेदेन्नुमनेन्न विद्येयु- ।
ळ्ळनितुमनीवेनेंदु पटदोळ् बरेदेच्चळवळ् पताकेयं ।।७१।।

---

हनुमान को बताया तो अत्यंत कुपित होकर वह विमान पृथ्वी पर उतरा। यह कहते हुए कि ऐसे प्राकारों को तोड़ना उसके लिए बायाँ हाथ का खेल है, उसने दिव्य वज्रकवच पहन लिये। ६८ —ऐसा पहनकर— विधिवत अपने गदायुध को उठाकर वज्रायुध के प्राकार पर उसी तरह प्रहार किया जिस तरह देवेंद्र ने पर्वतों पर प्रहार किया था। ६९ —उसके प्रहार के कारण विद्या से निर्मित प्राकार छिन्न-भिन्न हुए। —द्वार में रक्षा निमित्त तैनात वज्रमुख नामक दानव और किसीकी सहायता की अपेक्षा किये बिना ही मारुती से भिड़ने के लिए आगे बढ़ा। क्षण भर में मारुती ने उसे यमपुरी भेज दिया। ७० —इसे वज्रमुख की बेटी लंकासुन्दरी ने देखा और कुपित हुई। पिता का वध करनेवाले दुष्ट का काम तमाम करने के उद्देश्य से वह तुरन्त आगे बढ़ी लेकिन रूपवान मारुती को देखकर मोहित हुई, क्रोध एवं दुःख को भूलकर पताका में "मैं अपने आपको और मेरी समस्त विद्या को तुम्हें समर्पित करती हूँ", लिखकर बाण के नोक में रखकर उसकी ओर छोड़ा। ७१ —प्रयुक्त बाण को— रोककर, लिखे हुए

अंतिसुवुदुं—

बारिसि लेखार्थमनव-* धारिसि तानुं मरुळ्दु कन्नेय सौम्या- ।
कारक्कें रणाजिरदोळ् * वीरश्रीवेरसु मदुर्वेनिदं हनुमं ॥७२॥

अंतु निरतिशय रूप संपन्नेयं लंकेयेंब कन्नेयं मदुर्वेनिदु—

पवमान सुतं संभि-* न्न विद्येयिं माडि पोळलनागसदोळ् त- ॥
न्न वरूथिनियेल्लमनिरि-* सि वियच्चर पतिम केलकें पोगल्वगेदं॥७३॥

तन्प्रपंचमेल्लमं लंकासुंदरि तिळिदी वरविदेकारणमेने रामदेवन वेसदिं सीता-देविय सुद्दियं तरल्वंदेनेबुंदुमाकें हनुमर्गितेंदळ्—

निमगे पुगलीयदंतिरे * समकट्टिदनिंद्रवैरि विद्याप्राका- ।
रमनोडेदु नीनिदं व- * ज्रमुखनुमं कोंदे पुगुवे लंकापुरमं ॥७४॥

परम द्रोहने दशकं- * धरंगे नीं पगेवरोडने कूडिदे मुन्नं ॥
नेरेदु विभीषणनोळ् त- *न्निरूपित क्रमदे नेगळ्वुदल्लिबळियं ॥७५॥

ऎबुदुं—

अेगोंडाकेय पेळ्दुद * नागडे कतिपय वियच्चरर्वे॑रसु महा- ॥
भोगं पोक्कं पुरमन-* दे गहनमों पवनजंगे दुर्गममुंटे ॥७६॥

---

वाक्य का अर्थ समझकर उसके सौंदर्य के प्रति मोहित होकर, युद्धभूमि में ही हनुमान ने लंकासुन्दरी से विवाह कर लिया। ७२ —अतिशय रूपवती लंकासुन्दरी से शादी करके— अपने विद्याबल से आकाश में एक नगर का निर्माण करके अपनी समस्त सेना को वहाँ रहने का आदेश देकर लंकापति रावण के पास जाना चाहा। ७३ —इस विचार को जानकर लंकासुन्दरी ने हनुमान के आनेका कारण पूछा। हनुमान ने बताया कि वह श्रीराम द्वारा सीतादेवी की खबर लाने के लिए नियुक्त हुआ है। उत्तर सुनकर वह पुनः यूँ बोली— "रावण ने अपने विद्याबल से नगर के इस प्राकार को ऐसा निर्मित किया है कि कोई प्रवेश न कर सके। लेकिन आपने वज्रमुख को मारकर मुझे पराजित किया है। अतः आप अनायास लंका में प्रवेश कर पायेंगे। ७४ रावण यद्यपि द्रोही है तथापि आप उसके विरोधियों से मिले हुए हैं। अब विभीषण के साथ विचार-विमर्श करके उसके आदेशानुसार कदम उठाना उचित होगा"। ७५ —उसकी यह सलाह सुनकर— उसे मानकर, तुरन्त कुछ चुने हुए विद्याधरों के साथ, किसीकी सहायता लिये बिना ही, हनुमान ने उस दुर्गम नगर में प्रवेश किया। ७६

अंतु निःशंकेयिं लंकेयं पोक्कु विभीषणनं कंडु क्षेमकुशल वार्तानंतरं—

कुलमं सत्यद शौचदग्गळिकेयं चारित्रमं चागमं ।
चलमं दोर्बलमं कला विभवमं कोंडाडुवी रावणं ॥
नेलनेल्लं पळिवन्नमन्य वधुवं दुर्मोहदिं बाळ्तेगे- ।
य्यलदं बारिसदोय्कनिर्पुदुमुपेक्षा दोषमेनागदे ॥७७॥

ओणिसदे तन्न शौचगुणमं व्रतरक्षणमं परांगना ।
प्रणयमनप्पुकेय्ये शरणागत रक्षण दक्षनप्प द- ॥
क्षिणभरत त्रिखंड धरणीपति दानव चक्रवर्ति रा- ।
वणनिदनागदेन्नदोडे निन्न नेगळ्तेगे बन्नमागदे ॥७८॥

इन्नादोडमोप्पिपसि सति- * यन्निम्म कुलापवादं कळेवुदु नि- ॥
म्मन्नरूपेक्षिसे नेलनु- * ळ्ळन्नेवरं दशमुखंगे दुर्यशमक्कुं ॥७९॥

एंबे विभीषणनिंतेंदं—

दनुजेंद्रंगागदेंदानिदनरिपदुदासीनदिं मुन्नमेनि- ।
देने दृष्टादृष्टबाधाकरमिदुवे परप्रेयसी प्रेमवेंदि- ॥

---

—इस तरह निर्भयता से लंका में प्रवेश करके, विभीषण से मिलकर, कुशल-वार्ता के पश्चात् बोला— "कुल की महत्ता, सत्य और आचार-शुद्धि, चारित्र्य और त्याग-गुण, हठ और बाहुबल तथा कलावैभव के कारण प्रशंसा के पात्र यह रावण अब परस्त्री को चाहकर निंदा का पात्र हुआ है। विभीषण, अगर उसके इस कार्य को न रोककर चुप रहे तो क्या अन्याय न होगा ? । ७७ जब अपने शुद्ध चारित्र्य की परवाह न कर, अपने व्रत का पालन किये बिना, परांगना के प्रति व्यामोहित होकर, शरणागत रक्षकों में चतुर, भरत त्रिखंडभूमि का स्वामी राक्षस चक्रवर्ती गलत रास्ते में चल रहा हो, तो उसे न रोकना तुम्हारी कीर्ति के लिए कलंक माना नहीं जायेगा ? । ७८ अब भी समय है। सीता को राम के चरणों में सौंपकर, कुल पर आनेवाले कलंक को रोका जा सकता है। तुम जैसे लोग इसको निर्लक्ष्य कर दें तो जब तक यह पृथ्वी रहेगी तब तक रावण कलंक से मुक्त नहीं हो सकता" । ७९ —ऐसा कहने पर विभीषण यूँ बोला— "हनुमान, यह मत सोचो कि मैंने उसे, यह जानते हुए भी कि मेरा उपदेश काम नहीं करेगा, उपदेश की बात नहीं कही। अनेक बार यह कहकर समझाया कि परवनिता-मोह उसके लिए कलंक है और उसकी शान और और कीर्ति के लिए कलंक है। इस व्यामोह को त्याग दो। लेकिन मेरी बात उसे अच्छी नहीं लगती। मोह-व्यसन से पीड़ित को किसी का

तोनितानुं हेतु दृष्टांतमनडिगडिगां तोरेयुं पेळ्दुदं के- ।
ळनें रागोद्वेग वेगं समनिसे हितमं सूक्तमं केळ्वनावं ॥८०॥

पन्नोंदु दिवसमिंदि- ※ गन्नत्यागदोळे देवि कुलमं व्रतमं ।
तन्नुन्नतियं कादोंड- ※ मिन्नुं वैराग्यमादुदिल्लग्रजनोळ् ॥८१॥

प्रमद वनदोळगे सेरेयि- ※ ट्टु मत्तमट्टिट्टियट्टुनिर्दपनुचित ।
क्रममं कामुकररिवरे ※ सुमनोवाणंगे तक्कुगिडदवनावं ॥८२॥

अंदु विभीषणं नुडियें मरुत्सुतं केळ्दु करुणारस वाहिनी प्रवाहमेरेदुय्ये विभीषणन भवनमं पोरमट्टदृश्यनागि पोगि सीता-देवियिर्द बनमं पोक्कु मंडोदरिवेरसु पलंवरुमंबर चर नितंविनियर् बळसि दिनलक्ष्मियं वळसिद दीपमालेयंते कांतिगेट्टरे विरह विधुरेयागियुं लावण्यरस तरंगिणी तरंग लेखेयननुकरिसि तळिर्त-शोक तरु तळमनलंकरिसि—

पोगेगोंड चित्रलते दू- ※ ळिगोंड पुत्तळिगे मंजुगोंडब्जिनि का- ।
मंगिलोळकोंडेळवेरेयेने ※ मृगलोचने सीते नाडे पार्डळिदिर्दळ् ॥८३॥

श्रीवधु पद्मसद्मदिनगल्दळिदेकेयो पेळिमेके वा- ।
क्श्रीवधुवंचेयं तोरेदळेकेयो चंद्रिके चंद्रबिंबदिं ॥

---

उपदेश सूक्त लगता है ? । ८० ग्यारह दिनों से सीतादेवी ने निरशन व्रत से अपनी तथा अपने कुल की उन्नति की रक्षा की है । फिर भी मेरे बड़े भाई के हृदय में सीता के प्रति करुणा नहीं जगी । ८१ प्रवद वन में उसे बंधन में रखकर बारबार वहाँ जाता है और तंग करता है । कामदेव के बाणों के प्रहार से कौन मतिभ्रष्ट नहीं होता ?" । ८२ —विभीषण की इस बात को सुनकर हनुमान दुखी हुआ । वह विभीषण के घर से निकलकर अदृश्य हो, उस वन में घुसा जहाँ सीता रखी गयी थी । वहाँ मंदोदरी आदि स्त्रियों से घिरी सीता, जो घनलक्ष्मी को घेरी हुई दीप-माला की भाँति काँतिहीना हो विरह दुःख से मुरझाई हुई थी, को देखा जो अंकुरित अशोकवृक्ष के नीचे बैठी थी । —मृगलोचना सीता धुएँ से आवृत्त चित्र-सी, धूलधूसरित खिलौने की भाँति, हिम से आवृत्त कमल सदृश, काले मेघों से छिपे चंद्र-सी, कलाहीन थी । ८३ हनुमान को यह शक हुआ कि लक्ष्मीदेवी कमलगृह को त्यागकर वहाँ क्यों बैठी हुई है ? वाग्देवी सरस्वती ने हंसवाहन को क्यों त्यागा है ? चाँदनी चंद्र को छोड़कर पृथ्वी में क्यों उतर आयी है ? और उसने आश्चर्यचकित नेत्रों से मृगाक्षी सीता को देखा । ८४ इस तरह की अतुल रूपवती स्त्री

भूवलयक्कॆ बंदळॆनुतुं वगॆयॊळ् पॊरयॊण्मॆ संशयं ।
पावनि विस्मय स्तिमित लोचननीक्षिसिदं मृगाक्षियं ॥८४॥

निरुपम रूपॆयर् सतियरीदॊरॆयर् पॆररारुमिल्ल खे- ।
चरियर सुत्तिनॊळ् खचर वीरभटर्कळ कापिनॊळ् पॆरर् ॥
तरुणियरिर्पॆरार् त्रिभुवनांबिकॆ जानकि तप्पदप्पळि- ।
तिरॆ कडुनीरॆयल्लदॊडॆ राघवनंतिरॆ चित्तमीवने ॥८५॥

ऎंदु निश्चित मननागि—

जानकि पॊररागिरॆ पव-* मानसुतं काणदंतु पॆररारुमशो- ।
कानोकह किसलय सं- *तानमनाभरण किरणमॊदविसॆ बंदं ॥८६॥

अंतु सुकृतमॆ मूर्तिगॊंडंतॆ कॆलक्कॆ वंदु—

मुन्नरिदंतुटं प्रियन मुद्रिकॆयं तनगित्तु वायु पु- ।
त्रन्नतनागॆ कंडु मणिमुद्रिकॆगंदिदिर्वंद माळ्कॆयिं- ॥
दन्नयनांबु हर्षपुलकं पॊरपॊण्मॆ मनोविकासमं ।
कन्नडिसित्तु सीतॆयमुखांबुरुहं दरहास पेशलं ॥८७॥

कलश कुचं कदक्कदिसॆ सुर्कुसिरिं नडुगित्तु चित्तमु- ।
ळ्ळलर्दं मुखारविंद मकरंदमॆनल् बॆमगळ् कपोलदॊळ् ॥

---

और कोई नहीं है ! विद्याधर स्त्रियों से घिरी हुई, खेचरवीरों की रखवाली में रहनेवाली यह स्त्री कौन है ? इस तरह के सौंदर्य से परिपूर्ण इस सीता के अतिरिक्त राम का मन और किसी में रम सकता है ? । ८५ —इस निश्चय भाव से— क्षणभर के लिए जानकी के स्त्री-समूह से अलग होते ही, सबकी आँखें बचाकर राम द्वारा दी गयी अँगूठी सीता को देने के उद्देश्य से हनुमान आगे बढ़ा । ८६ —वह पास आया तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो पुण्य ही मूर्तिरूप धारण कर आया हो । —श्रीराम की मुद्रिका देकर उसने सीता के चरणों में प्रणाम किया । सीता को ऐसा प्रतीत (भ्रम) हुआ मानो श्रीराम ही उसके सम्मुख खड़े हैं और इस खुशी से उसकी आँखों में आनंदाश्रु बरसे और देहभर में रोमांच हुआ । इन भावों ने सीता के मन के विकास को प्रतिबिंवित किया । ८७ कलशकुच कंपित हुए; श्वास के वेग तीव्र हुए; मुख में सद्य विकसित कमल के मकरंद-सा पसीना आ गया; शरीरकांति कपोल में विजली-सी प्रतिबिंबित हुई; राम की अँगूठी सीता को कामदेव की अँगूठी-सी प्रतीत हुई । ८८ —हर्ष-रस की तरंगों में डूबती-तैरती-सी सीता के व्यवहार

नेलसिदुवंग कांति कुडिमिंचिन गोंचलनोप्पविट्टवोल् ।
जलजलिसित्तु जानकिगे मद्रिके कोट्टुदनंग मुद्रेयं ।।८८।।

अंतु हर्षरस तरंगितांतरंगेयाद जानकियं मंडोदरि मोदलागे केलदोळिर्द खचरकांतेयर् रावणनोळप्पनुबंधमनोडंबट्टु संतोषंबट्टळेंबुदुमळुंबमेने मुनिदु—

तनगे पतिव्रतमिल्लद ※ वनिते कुलस्त्रीये भिन्नभाजनमित- ।।
प्पनुचितमं हरिवंशद ※ वनितेयरोळ् नुडियलक्कुमे निम्मन्नर् ।।८९।।

ऎनगे परपुरुषरस्म-
ज्जनक सहोदर समानरेनगनुरागं ।।
जनियिसिदुदु रघुकुल तिल-
कन बेसदि बंद दूतनं काणलोडं ।।९०।।

ऎने मंडोदरि केळ्दु—

अर्णव लंघन क्षमरे मानवरार्गमभेद्यमप्पुदं ।
स्वर्णिलयंबरं निमिर्द वज्रद कोटेयनारो भेदिपर् ।।
निर्णयमार्गे राघवन सुद्दियनीकेगे पेळ्दुदागदे ।
कर्ण पिशाचमी विकलभाष निरन्नविकारमागदे ।।९१।।

ऎंदु पेंडवासद विलासिनियरोडने नुडियुत्तिर्पुदुमगण्य लावण्यवति वैदेहि पुण्य पुरुष नीनेन्नपार दुःखभारदिं नमेयलीयदे मदीय

को मंदोदरी आदि स्त्रियों ने देखा और इस कल्पना से कि वह रावण को चाहने लगी है, सीता के उपचार करने लगीं। इससे कुपित होकर सीता बोली— "जो स्त्री पतिव्रता नहीं, वह कुलस्त्री नहीं हो सकती; हरिवंश की स्त्री से अन्यों के प्रति मोहित होने के लिए कहना तुम जैसी को शोभा देता है ?। ८९ परपुरुष मेरे पिता और भाई के समान है। मेरे पतिदेव श्रीराम का आदेश पाकर मेरे कुशल समाचार पूछने के लिए आये हुए दूत के दर्शन ही मेरे संतोष का कारण है।" ९० —इसे सुनकर मंदोदरी अंतःपुर की स्त्रियों से कहने लगी— "समुद्र को लांघने की शक्ति किसी मानव में है ? स्वर्गलोक तक निर्मित विद्या-प्राकार अभेद्य है ! वज्र के दुर्ग को कौन तोड़ सकता है ? दूत के आने की खबर कर्णपिशाच रोग है। विरह और निरशन के कारण इसका मनोविकार हुआ है।" ९१ —उसी समय सीता हनुमान से कह रही थी, "तुमने मुझे दुःखभार से डूबने से बचाया है; शुभवार्ता लाने के कारण तुम मेरे भाई

शुभवीर्तयं तंद दूसरिंदेनगे नीं प्रभामंडलनिंदग्गळमप्प सहोदरनै निन्न कुलगोत्र नामंगळनेनगे तिळियै पेळेनलोडं—

सेरगक्कुं मेय्गेरेदा * निरलोंदु निजस्वरूपमं तोरुवुदुं ॥
मरुदात्मजनंतःपुर * पुरंध्रियर् सेडेदु सीतेयं मरेगोंडर् ॥९२॥

अनंतरं मरुत्तनूजं मुकुळित करसरोजनितेंदं—

पितृ पवनंजयं खचर वल्लभनंजने पेत्ततायं महा- ।
सति हनुमंतनें पेसरोळां विजयप्रमदा प्रियं जग- ॥
त्पति पति रामना सुचरितं बेसवेळ्दोडे निम्म सुद्दिग- ।
प्रतिम पतिव्रताचरण भूषणभूषिते बंदेनंबिके ॥९३॥

कमलिनियं कलहंसं * सुमनोमंजरियवळि वनांत स्थलियं ॥
समदेभं नेनेवंतनु- * पमे निम्मने नेनेदु दूरिपं रघुवीरं ॥९४॥

अेंदु बिन्नविसि मत्तं केलवुमविन्नाणंगलनितेंदं—

वारिजमुखि भूपं गं- * भीर वाहिनिय तीरदोळ् निम्म मुखां-
भोरुहदोळ् पडियिट्टं * भोरुहमं मेच्चलोल्दनिल्लोमें गडं ॥९५॥

भरतं पिंदने बंदं *दरण्यदोळ् राज्यभरमनोप्पिसिदोडे सं-॥
वरिसि पदिनाल्कु वर्ष* बरेमिर्पतागे राघवं नियमिसिदं ॥९६॥

---

प्रभामंडल से भी बढ़कर भाई हो। तुम कुल और नाम बताओ।" ऐसा कहते ही— हनुमान ने सोचा कि उसे अपना असली रूप दिखाना ही पड़ेगा। उसने वैसा किया तो उस रूप को देखकर अंतःपुर की स्त्रियाँ भयभीत होकर सीता के पीछे छिप गयीं। ९२ —हनुमान ने हाथ जोड़कर सीता से यूँ कहा— "खेचर वल्लभ पवनंजन मेरे पिता हैं; अंजनीदेवी माँ है; हनुमान मेरा नाम है। जगतपति श्रीराम ने आपके समाचार लाने का आदेश दिया। माँ, पतिव्रता-भूषणों से सजी हुई आपको देखने के लिए आया हूँ। ९३ श्रीराम आपको सदा उसी तरह स्मरण करते हैं जिस तरह कमल को हंस, पुष्पों को भ्रमर, कानन को मदमाता हाथी।" ९४ —ऐसा निवेदन कर, अन्य कुछ संकेत (चिह्न) बताकर— पुनः कहा, "माँ, एक बार श्रीराम नदी तट पर आपके मुखकमल में प्रतिबिंबित असली कमल को स्वीकार न कर सके। ९५ पहले एक बार जंगल में आकर भरत ने राज्य सौंपा तो श्रीराम ने उन्हें आज्ञा दी थी 'चौदह साल तक तुम्हें ही शासन करना चाहिए।' ९६ और एक बार पानी लाने के लिए गये हुए लक्ष्मण लौटे और पति का रूप धारण

सलिलाहरणार्थ पो- * गि लक्ष्मणं देवि गंडवरिरिंजिदिर्दा ॥
ललनेय करगदवळकै * यीळट्टिदं गडमदीमें शीतल जलमं ॥९७॥
क्रीडापूतं पोळलं * माडि घनागमदोळिरिसि यक्षं कोट्टं ॥
चूडामणियं कदन * क्रीडेगे नेनेदागळंते वंदपेनेंदं ॥९८॥

अेंवुदुमनुभूतार्य स्मरणेयिं मनद संशयं पिंगे मनंगोंडु मानिनि पवमान सूनुगितेंदळ्—

अेंतुदाटिदे महार्णवमं वं- * देंतु पोक्केपुरमं रघुवीरं- ॥
गेंतु निन्नोडने कूटमदाय्तें- * वंतुटं तिळिपु दोर्वलशाली ॥९९॥
ओडेदें वज्रद कोटेय * नेडेमडगदे वंदु वज्रमुखनांतिरियल् ॥
कडुकेय्दोडे कोंदे नि- * म्मडि पुरमं पोक्कु वंदु कंडें निम्मं ॥१००॥

अेंदु विन्नविसि मत्तमितेंदमंबिके दशमुखन तंगे चंद्रनखि निज तनूजनप्प शंभुकनं सौमित्रि कोंदु सूर्यहासासियं कोळ्वुदुमदं कंडळल्दु तन्नगंडनप्प खरंगे पुय्यलिडुवुदुमति कुपितनातनसंख्यात वल समेतनेत्तिवंदु लक्ष्मणनोळ् कादुत्तुमिरे दशाननुमवर ववरमं नोडलेंदु वरुतुं निम्मं कंडु विपरीत चित्तनागि कैदुगेय्यद कैतवदिं रघुवीरननगल्चि निम्मनुय्वुदुमा क्षणदोळ् लक्ष्मणनल्लिगे रामदेवर् बिजयंगेय्ये देव सीता देवियनगल्दु पोल्लदुगेय्दिदरिवंदिरं कोल्वुदर्कानें

की हुई आपके हाथों में पानी का पात्र थमा दिया। ९७ एक बार खेल-खेल में नगर का निर्माण कर यक्ष को दिया तो उसने चूड़ामणि देकर युद्ध में स्मरण करने-मात्र से उपस्थित होने का वचन दिया। ९८ —ऐसा कहने पर पूर्व घटित घटनाओं को सुनकर सीता के मन की शंका दूर हुई और हनूमान को बुलाकर वह यूँ बोली— "इस महासागर को किस तरह पार किया? किस प्रकार इस नगर में प्रवेश किया? यह विषय मुझे सविस्तार बताओ।" ९९ वह बोला: "वज्र के दुर्ग को मैंने तोड़ दिया। वज्रमुख मेरे सामने आया तो उसे यमपुर पहुँचा दिया। उसके बाद इस नगर में प्रवेश किया और आपके चरणारविंदों के दर्शन किये। १०० —माँ, दशमुख की छोटी बहन चंद्रनखी के पुत्र शंभुक को लक्ष्मण ने मारकर सूर्यहास खड्ग को हासिल किया। इसे देखकर अपने पति खर को उसने इस बात की शिकायत की तो अत्यन्त कुपित होकर खर अपनी असंख्य सेना के साथ आकर लक्ष्मण से लड़ रहा था कि रावण उनका युद्ध देखने के लिए आकर, आपको देखकर, चित्त चंचल होने के कारण, धोखे से श्रीराम को आपसे दूर (लक्ष्मण के पास) भेजकर, आपको

साल्वें मगुळे बिजयंगेय्यिमेने बेगं बंदु मुन्नमिर्दे डेयोळ् निम्मं काणदे काननदोळ् तोळल्दरसुत्तुमिर्पन्नेगं खरदूषणरं कोंदु लक्ष्मण-नेकाकियागिर्दण्णन कॆलक्के बंदु मदंबिकेयॆल्लिर्दळॆंदु बेसगोळ्वुदुमां निन्नल्लिगे बंद पिर्देयावनानुमोर्व मायावि कोंडुय्दनो क्रूर मृगंगळुय्दुवो ऎंदळल्दु नुडिवुदुं लक्ष्मणं विषण्ण चित्तनागिर्पुदुमा समयदोळ् शरणागतं विराधित वियच्चरं निम्म सुद्दिगे चेच्चर-मनुचररनट्टि रामलक्ष्मणं पाताळलंके गुय्दुबेसकेय्युत्तिर्द अन्नेगमत्त सुग्रीवं मयासुग्रीवन व्यतिकरदोळ् शरणागत शरण्यनप्प रामनं कंडु तन्न वृत्तांतमं बिन्नविसे निन्न पगेयं तीर्चिदपेनेंदु किष्किंध पुरक्के बंदु—

सुग्रीवन पगे माया- ※ सुग्रीवननुत्प्रचंडनं कीनाशं- ।
गग्र ग्रासंमाडि नृ- ※ पग्रामणि कळेदनेम्म कुल परिभवमं ॥१०१॥

अदरिनेम्म वानरध्वजरप्प विद्याधररल्लं प्रत्युपकार तत्पर-तेयिदाळ्तनक्के पूण्दु रत्नजटिय देसेयिं निम्म शुद्धियनरिदिंवळियं सुग्रीवनेन्नुमं बरिसिदोडानुमुदात्त राघवन चरण सेवेयोळ् निंदे-

चुरा लाया। इधर लक्ष्मण अपने पास आये हुए श्रीराम को देखकर 'भैया, आप अकेली सीता को छोड़कर आये यह बड़ी गलती थी। इस युद्ध के लिए मैं अकेला ही काफी हूँ, आप शीघ्र लौट जाइए।' श्रीराम लौटे तो जहाँ आपको रहना चाहिए था वहाँ आपको न पाकर जंगल में खोजने, भटकने लगे। उधर खरदूषण का संहारकर लक्ष्मण श्रीराम के पास आया और पूछा : 'सीता कहाँ' तो श्रीराम बोले 'मैं तुम्हारी सहायता के लिए आकर लौटा तो वह नहीं थी। पता नहीं मायावी ले गये या क्रूर मृगों ने खा लिया!' भाई के दुःख से लक्ष्मण विक्षुब्ध हुआ। तब शरणागत विराधित ने खोज-खबर लाने के लिए अपने दूतों को भेजा और स्वयं राम-लक्ष्मण को पाताल लंका ले जाकर सेवा करने लगा। इधर सुग्रीव ने मायासुग्रीव के उपद्रव के बारे में राम को बताया तो राम ने वचन दिया कि उसके शत्रु को मार देगा। इसी उद्देश्य से किष्किंधा नगर में आकर— सुग्रीव के शत्रु मायासुग्रीव को मारकर, हमारे कुल पर आई हुई विपत्ति और कलंक को दूर किया। १०१ —इस कारण हमारे समस्त वानरध्वजी विद्याधरों ने प्रत्युपकार करने के विचार से श्रीराम के सहायक बनने का निश्चय किया। हमें रत्नजटी से आपकी खबर मिली। उसके बाद सुग्रीव ने मुझे बुलवाया। मैं श्रीराम की सेवा में लग गया। समस्त विद्याधर राम की सेवा कर रहे हैं। किष्किंधा में

नीगळखिळ विद्यापरमेश्वररप्प विद्याधरर् पलंबरुमं माडिकोंडु रामलक्ष्मणर् किष्किंध पुरदोळिर्दट्टिदोडे रावणनोळ् नुडिदु निम्म सेरेयं बिडिसल बंदेनिदु मदीय वृत्तकमेने सीते संतोषंबट्टु—

मरुदात्मज निम्मन्नर्
धुरीणरेकांग विजयिगळ् बहु विद्या।
परमेश्वररेनिबरिळे-
श्वर पार्श्वदोळेंदु जनकसुते बेसगोंडळ् ॥१०२॥

ऎने मयन मंगळ् मंडोदरि सीतादेविगिंतेंदळ्—

नूतनरोळ् पुरातनरोळीतनोळार् दोरे नाक लोकदोळ्।
भूतलदोळ् रसातलदोळोर्वने दोर्बलशालि लोक वि- ॥
ख्यातनशेष विद्येगळोळातत कीर्ति मरुत्तनूजन-।
ञ्जातमुखी पवणबडियोडीतननीतने पोल्वनिन्नरार् ॥१०३॥

ईतन पराक्रमळुर्कॆयं पेळ्वोडे मुन्नमोर्मे दशमुखंगे रण-मुखदोळिदिर्चिद वरुणनं पराङ्मुखंमाडि गेल्दु कुडे वियच्चर पति मेच्चि तन्न तंगेयप्प चंद्रनखिय मगळननंगपुष्पेयनीतंगे महाविभूतियिं मदुवेयं माडि कोंडाडि तन्नोळोरन्नं माडि पोरेये पाळिगे तप्पि—

बरेवरे कर्वु कोंवि करमेळिदमप्पवोलीतनुं विय-।
च्चर पतियप्प रावणनिरल् करमेळिदरप्प भूमि गो-॥

रहनेवाले उन लोगों ने आपको बंधन से छुड़ाने के उद्देश्य से मुझे रावण के पास भेजा है। यह मेरा परिचय है।" यह सुनकर, संतुष्ट होकर सीता ने पूछा— "हनुमान, श्रीराम की सेवा में तुम्हारे समान महान वीर, धीर विद्या-विशारद कितने लोग होंगे?"। १०२ —इस प्रश्न को सुनकर मय की बेटी मंदोदरी सीता से बोली— "पुरातनों और नूतनों में इसके समान और कौन है? स्वर्ग में, पृथ्वी में और रसातल में यह अकेला बल-शाली, लोकविख्यात सकल-विद्या-प्रवीण है। इसकी तुलना केवल इसी से हो सकती है, और किससे होगी?। १०३ —इसकी वीरता की महत्ता के उदाहरण के तौरपर कहा जा सकता है कि रावण से लड़ने के लिए जब वरुण आया तब इसने उसे पराजित किया। इससे संतुष्ट होकर रावण ने इसे अपनी छोटी बहन की कन्या अनंगपुष्पा से विवाह करवा दिया और अपने समान मानकर मान दिया। लेकिन यह उस बात को भुलाकर— जिस तरह ईख बड़ी होने के बाद टेढ़ी हो जाती है, उसी तरह लंकेश्वर

चररॊळसेव्यरॊळ् तनगॆ किंकर भावमनप्पुकॆय्दनी ।
तरळतॆयॊंदुमिल्लदॊडॆ पोल्ववरार् पवमान सूनुवं ।।१०४।।

ऎने हनुमनॆंदनुदात्त राघवन गॆय्दुपकृतिगॆ प्रत्युपकारमंगॆय्दॆन्न पुरुषाकारमं मॆरॆयलॆंदु बंदॆनी पॊल्लमॆयनॆंतुं कळॆयलप्पुदु निमगॆ कुलमरियॆ नॆलं पळियॆ मानसिकॆयनॊक्कु षरत्तॆयं बगॆयदॆ परकलत्र-मनासॆगॆय्द पॊल्लमॆयं कळॆवंदमावुदॆनॆ कनल्दु मंडोदरि बॆट्ट वॆट्टनितॆंदळ्—

अनिल तनूभव सुग्री-॥ वनुमं निन्नुमनवंध्यकोपं दशकं- ।
ठनमोघं कॊल्लदॆ मा- ॥ ण्बनॆ पेळॆनॆ सीतॆ कलुषवश गतॆयादळ्।।१०५।।

अंतु मुळिदु—

दाटि कडलं जगत्त्रय ॥ कंटकनं कॊंदु रामलक्ष्मणरिर्प- ।।
त्तॆंटु दिवसदॊळॆ निनगण ॥ मुंटागिसुवर् विशेषमप्पॆदॆवळलं ।।१०६।।

ऎनॆ मंडोदरि लय समयद चंडिकॆयंतॆ मामसकंमसगि—

केसुरि सूसॆ तन्न मॊगदिं किडि बीळ्तरॆ तन्न कणगळिं- ।
दासुरमागॆ दाडॆगळॊडल् बळॆदंबरमं तरुंबॆ त- ।।

---

रावण की परवाह न करके, मानवों से मिलकर, उनकी सेवाकर रहा है। इस एक अवगुण को अगर छोड़ दिया जाय तो, इस पृथ्वी में इस पवनसुत की बराबरी कौन कर सकता है ?"। १०४ —मंदोदरी की बात सुनकर हनुमान ने कहा: "राम ने जो उपकार किया है, उसके बदले में प्रत्युपकार करके कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मैं आया हूँ। अगर यह पाप है तो इसका निवारण अवश्य किया जा सकता है। लेकिन आप लोगों को, भले ही, कुल का नाश हो जाय और उस पर कलंक ही क्यों न लगे, अपना अन्याय दिखाई नहीं देता! परायी स्त्री को चाहने से जो पाप लगा है, उसे धोने का, उससे मुक्त होने का उपाय क्या है ?" इसे सुनकर तिलमिलाती हुई मंदोदरी आग बरसाती-सी बोली— "हनुमान, त्रिलोकवल्लभ रावण तुम्हारा और सुग्रीव का वध किये बिना नहीं रहेगा।" इस बात से सीता कुपित हुई। १०५ —गुस्से में ही बोली— "राम-लक्ष्मण समुद्र पार करके, तीनों लोकों के लिए कंटकप्राय रावण को अट्ठाईस दिनों में मारकर तुझे दुःख देंगे।" १०६ —इससे मंदोदरी प्रलयकाल की चंडिका की भाँति कुपित हुई। —उसके मुँह से अग्नि-ज्वालाएं निलकने लगीं; आँखों से चिनगारियाँ उड़ने लगीं; उनका शरीर बड़ा होकर आकाश को छूने लगा। हाथ उठाकर वह सीता पर प्रहार

न्नासुकरं करं देसेगमर्विसे कैगळनेत्ति पोय्यले- ।
ळ्दासमयक्के तेक्क नेडेवोक्कनरिजयनंजना सुतं ॥१०७॥

अदर्कें नित्तरिसदाके सभेयिनेळ्दु रावणन केलक्के पोदलित्त पवमानसूनु बोनमं तरिसे सिद्धप्रतिज्ञेयागि—

सति सुचरित्रे पंच परमेष्ठिगळं स्तुतिगेय्दु भक्तियिं ।
यतिवरगेन्नमं मनदोळित्तु रघूद्वह पाद पंकज- ॥
द्वितयमनिट्टु हृत्सरसियोळ् जनकात्मजे देवता विनि-।
मित मणिकुट्टिम स्थलदोळिर्दमृतान्नमनुंडनंतरं ॥१०८॥

हनुमं कैमुगिदु जग- ॐ ज्जननि रघुप्रवरनल्लिगुय्वें निम्मं ।
जनकात्मजे बिजयंगे- ॐ य्येनलदु तक्कुमे यल्लदेंदितेंदळ् ॥१०९॥

धरणी वल्लभनाज्ञेमिल्लदेगेंतुं वर्पुदौचित्मय- ।
ल्तरसंगेन्निरवं निवेदिपुदु कालक्षेपमं माडि नी- ॥
निरे दैत्येद्रनपायमं निनगे माळ्कुं पोपुदेंदा तनू- ।
दरि वैदेहि मरुत्सुतंगे निज चूडारत्नमं नीडिदळ् ॥११०॥

अंतु चूडामणियनित्तु मत्तं कर्णरवेयेंब तोरेय तडियोळ् चारणयुगळक्काहार दानमं कोट्टु पंचाश्चर्यबेत्तुदु मोदलागे पलवविन्नाणंगळं पेळ्दु मन्यु गद्गद कंठेयुमश्रुजललुलित लोचनेयुमाद जानकिगे हनुमनितेंदं—

---

करने की सोच ही रही थी कि हनुमान उन दोनों के बीच खड़ा हो गया। १०७ —इसे बर्दाश्त करने में असमर्थ हो, सभा से उठकर वह रावण के पास गयी। इधर हनुमान ने भोजन मँगवाया तो सीता ने प्रतिज्ञा-बद्ध होकर— पंचपरमेष्ठियों की स्तुति करके, यतियों को भक्तिपूर्वक मन से अन्न समर्पित करके, राम के चरणकमलों को अपने हृदय-सरोवर में रखकर, पूजा करके देवनिर्मित रत्नपीठ पर रखे हुए अमृतान्न को स्वीकार किया। तत्पश्चात् । १०८ हाथ जोड़कर हनुमान के यह कहने पर कि सीता को राम के पास ले जाना चाहता है अतः वह तैयार हो जाय तो इस विचार को अनुचित ठहराकर बोली। १०९ "श्रीराम की आज्ञा के बिना मेरा आना उचित नहीं है; मैं यहाँ हूँ यह समाचार उन्हें पहुँचा दो। कालक्षेप (विलंब) करोगे तो दैत्य तुम्हें खतरा उत्पन्न कर सकता है।" और हनुमान को (राम को देने के लिए) चूड़ामणि दे दी। ११० —चूड़ामणि देने के बाद पुनः कर्णरवा नदी तट पर चारणद्वयों को आहार-दान करने के कारण उत्पन्न पंचाश्चर्य एवं अन्य तरह की पुरानी स्मृति की

ऍनगपायमनावनोंडर्च्युवं ※ मोनेयोळेन्नोंडनावनिदिर्च्युवं ।
जननि राघवनाज्ञेये कादुदी- ※ तननदल्लदोंडेल्लिय रावणं ॥१११॥

सीतेय वार्तेदर्पनितें सात्वुदु दैत्यन रक्तपानदिं ।
भूतगणंगळं तणिपि तंदपनाकेयनंतु नारदं- ॥
दातत कीर्ति सल्लदेने भूमुजनाज्ञेगे माण्देनल्लदं- ।
देतोंदळी त्रिकूट कुधरंबेरसंबिके निम्मनुय्र्यंने ॥११२॥

ऍंदु बिन्नविसि बीळ्कोंडु तन्नोळितेंदं—

बरवं पोगुमनारुमेत्तलिरिवर् बंदंते पोदंदु दो:- ।
परिघं दूषितमक्कुमिक्कि खलरं किळ्ती पुरोद्यानमं ॥
पुरसं सुट्टु दशास्यनेन्ननरिवंतां पोगि रामोंघ्रिता- ।
मरसक्कातनप्पेनेंब मनमं तंदं मरुन्नंदनं ॥११३॥

ऍंदु बगेमुत्तुमिर्पन्नेगमत्त मंडोदरि खचर वल्लभनल्लिगे पोगि—

देव रघुरामनं सु- ※ ग्रीवं कैकोंडु हनुमनं वरिसि दश -
ग्रीव बेसवेळे कंबु ※ ग्रीवेय जानकिय सुद्दिगातं बंदं ॥११४॥

---

बातें बताकर गद्गदकंठा होकर आँसू बहाने लगी तो हनुमान ने कहा— "मेरा अहित कौन कर सकता है ? युद्ध में मुझसे कौन भिड़ सकता है ? श्रीराम की आज्ञा ने ही इस रावण की रक्षा की है अन्यथा मेरे लिए यह रावण क्या है ? । १११ श्रीराम के यह कहने के कारण कि 'सीता का समाचार ला देना पर्याप्त है; रावण के रक्तपान से भूतों को तृप्त करके, सीता को मैं लाऊँगा; अगर लाने में असमर्थ रहा तो मेरी लोक-विख्यात कीर्ति का मूल्य क्या ?' इसीलिए मैंने अपने आपको रोका है ! अन्यथा जिस आप चित्रकूट पर्वत में रह रही हैं उसे उठाकर ले जाना मेरे लिए बच्चों का खेल है।" ११२ —ऐसा निवेदन कर हनुमान ने मन ही मन सोचा कि— उसके आने और चले जाने की बात कौन जानेगा ? अगर वह चुपचाप लौट जाता है तो उसके भुजवल के लिए लाँछन है, कलंक है। उस उद्यान और नगर को जलाकर, दुष्टों को मारकर ऐसा कार्य कर दिखाएगा कि रावण उसे जान जाय, उसकी याद रखे। उसने श्रीराम के चरणकमलों को मन ही मन प्रणाम किया। ११३ —इतने में मंदोदरी रावण के पास पहुँचकर बोली— "नाथ, सुग्रीव राम से मिलकर, हनुमान को बुलवाकर, नारीमणि सीता की खबर पाने के लिये भेजा है; वह आपके पास आया हुआ है। ११४ —आकर— प्रवद वन में सीता के पास

अंतु बंदु—

प्रमद वनदोळगे सीतेय
समीपदोळ् हनुमनिर्दनेंदरिपुवुदुं ॥
बेमर्वनि गंडस्थलदोळ्
समनिसे किसुगण्चि मसगिदं दशकंठं ॥११५॥

अंतु मुळिदु कदन कर्कशरप्प राक्षसरं पेसर्वेसरोळे करेदु—

प्रमदोद्यानदोळावनिर्दनवनं कोंदिक्किमेंदाहव- ।
क्षमरं पेळे दशाननं दनुजरुं सामान्यनेंदुद्धतर् ॥
समरक्रीडेगपेक्षेगेय्दु परितंदर् तंडदिं चंडवि- ।
क्रमनीतं हनुमंतनेंदरिदोडेनारुं मनंगेय्वरे ॥११६॥

अंतु देसेदेसेगे मसगि कवितर्पुदुं—

आ दनुज बलमना वन
पादपमं किळ्तु मोदि कोललोडरिसिदं
कादुव वनमं कोळ्व वि-
नोदंगळनेरडनोडने तीर्चुव बगेयिं ॥११७॥

असुगेय पेर्मरनं कि-
ळ्तसमबलं बीळेपोय्ये पवमान सुतं ॥
बिसुनेत्तर् केंदळिरेने
पसरिसे दानवरशोकवनमेने केंडेदर् ॥११८॥

---

खड़ा है। यह सुनकर रावण की गर्दन में पसीने की बूंदें दिखाई पड़ीं। फिर भी भय को छिपाते हुए, वह आग-बबूला हुआ। ११५ —तुरंत शूर वीर राक्षसों को उनके नाम से बुलाकर आज्ञा दी—"प्रमदोद्यान में (बाहर का) जो भी हो उसका काम तमाम कर दो।" आज्ञानुसार इस विचार से कि वहाँ रहनेवाला कोई सामान्य व्यक्ति होगा, जोश में युद्ध के लिए तैयार होकर झुंड के झुंड निकल पड़े। अगर उनको पता होता कि आगंतुक हनुमान है, युद्ध में जाने की हिम्मत किसकी होती? । ११६ —इस तरह विभिन्न दिशाओं से आकर (हनुमान को) घेरने पर— इस राक्षस सेना को वन के पेड़ों को उखाड़-उखाड़कर मारकर प्राणांत करने लगा। युद्ध करने और वन को तहस-नहस करने के दोनों उद्देश्य एक साथ हुए। ११७ अशोकवृक्ष को उखाड़कर अतुल शक्तिशाली मारुती ने राक्षसों को मारकर गिरा दिया तो उनका रक्त वृक्ष के लाल अँकुर के समान दिखाई पड़ा। ११८ नारियल और खजूर के पेड़ों को उखाड़कर राक्षसों

ताळ वनंगळुमं हि- ※ ताळ कुजंगळुमनीडने किळ्तिडेदनुजर् ।
ताळुंनट्टुं केडेदर् ※ ताळ कळेबररिदेनुदात्तनो हनुमं ॥११९॥

बर्केवलसुगळोळसुरर
तेर्केयनेळ्बिट्टि पोय्वुदुं कोळ्मिदुळ्ं ॥
बर्केय तोळेयुं सूसिदु
वाकंडुकेय्दनिलजंगे कूर्प तोर्पर् ॥१२०॥

तिलक तरुविं निशाचर
बलमं बिडे पोय्दु कोंदु रावणन यश-
स्तिलक मुमनवर पेंडिर
तिलकमुमं तोडेदनोडने पवमान सुतं ॥१२१॥

अंतु मेलेत्तिबंदसुर सेनेयेल्लमं पेळे पेसरिल्लदंतु पेसदे कोंदु—

अमितबलं किळ्तीडा- ※ डे मरुत्तनयं मरुन्नदी तीरवन ।
द्रुममेनिसिदुवंबरदोळ् ※ नमेरु मंदार पारिजात कुजंगळ् ॥१२२॥

सरल तमाल ताल कदली सहकार महीरुहंगळं ।
परशुवो मेघवह्निनयो दवाग्नियो घोर समीरनो वन ॥
द्विरदमो तन्न तोळ्वलमेनल् बनमं बयलागे किळ्तना ।
सुरगिरियं किळल्नेरेव मारुत सूनुगिदाव साहसं ॥१२३॥

---

को मारा तो वे वहीं गिरे हुए नारियल के पेड़ों के समान दिखाई पड़े। ११९ कटहलों से असुर-समूह को एक-एक कर समूल मारकर, उनके कच्चे भेजों को कटहल के रेशे के समान बाहर खींचकर हनुमान सुशोभित हुआ तो उसे रोकना किसके वश की बात है ? । १२० तिलक वृक्ष से निशाचरों को एक-एक मारकर रावण के यश-तिलक को और राक्षस-स्त्रियों के कुंकुम-तिलक को हनुमान ने मिटा दिया। १२१ —इस तरह सामने आयी हुई समस्त राक्षससेना निर्नाम हुई। —उसके हाथों मरकर गिरे हुए राक्षस, आकाश से उतरी हुई गंगा के तट के हरि-चंदन, मंदार, पारिजात के समान दिखाई पड़े। १२२ तमालवृक्ष, पुन्नाग-वृक्ष और कदलीवृक्षों को एक-एक कर अपने बाहुबल से इस तरह उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगा मानों कोई परशु हो, विद्युत हो या दावाग्नि हो या तूफान अथवा मदमाता हाथी। सुरगिरि को उखाड़कर फेंकने में समर्थ मारुती के लिए यह कौन सी बड़ी बात है ? । १२३ डर के मारे कोयल आम्रवृक्षों से उड़ गयीं। तोते सुपारी के पेड़ों से उड़ गये। मयूर-शिशुओं ने पुष्पताल को त्याग दिया। जो भ्रमर पुष्पों पर मंडरा रहे

कोगिलें बेँचि पारिदुवु चूत वनावळियिं शुकव्रजं ।
पूग वनंगळिं बेदरि पोदुवु बाल मराल संकुलं ॥
पूगॊळदिंदगल्दुवेँनसुं पेँर्पिगिदुवुन्मदाळि पु- ।
न्नाग वनंगळिं तविसे नंदनमं पवमान नंदनं ॥१२४॥

तनिगंपं केँदरुत्तुमिर्प पळिकिंदाकर्षणंमाडि भृ- ।
ग निकायंगळनंगजंगे विजय स्तंभं वनश्रीगे यौ- ॥
वनमेंबंते पॊगळ्तेयं तळेदुवं किळतं मरुन्नंदनं ।
घनसार द्रुममं दशाननन कीर्ति स्तंभमं कीळ्ववोल् ॥१२५॥

पुगलिल्ली वनदॊळ् मदीय पितृगेंतुं वैरमुर्वीज रा- ।
जिगळॊळ् गंधवहं मदीय जनकंगेंदन्वय द्वेषमं ॥
बगेयॊळ् ताळ्दिद माळ्केयिं पवनजं किळ्तं पुरोद्यानमं ।
पगेयेत्ताय्तेने वार्तेगल्लि तरु वल्ली गुल्ममॊंदिल्लेनल् ॥१२६॥

नेलनुळ्तंतेवोलागे किळ्तु वनमं मारांतरुर्वेळ्दसृ- ।
ग्जलदिं ताय्वेदेगूडे त्रित्ति पॆणनं बेरॊंदु शौर्यांकुरं ॥
तलेदोरित्तदु कॊंवि कीर्तिलतेयाय्ता वल्लियिंदंबर ।
स्थलमं मुद्रिसि रावणंगमळलं तंदं मरुन्नंदनं ॥१२७॥

---

थे वे पीछे हट गये। हनुमान के कारण नंदनवन मिट गया। १२४ हनुमान ने उस नंदनवन के वैभव को तहस-नहस कर दिया जो सुगंध व्याप्त करता हुआ संगमरमर शिला से आकर्षित करता हुआ, भ्रमर-समूह के बीच मनोज का विजयस्तंभ-सा प्रतीत हो रहा था; और वनश्री का यौवन भी जहाँ सुशोभित हो रहा था। या यूँ कहना चाहिए कि हनुमान ने मानो रावण के कीर्तिस्तंभ को ही उखाड़ दिया हो। १२५ यहाँ मेरे पिता (पवन) स्वच्छंद विचरण नहीं कर सकते। इस वन के पेड़-पौधे-लताएँ उनसे (पवन से) इस कारण द्वेष रखते हैं कि वे इस वन की सुगंध को सर्वत्र फैलाना चाहते हैं। यह सोचकर कि शायद यह द्वेष अपने कुल के विरुद्ध किया जा रहा है, हनुमान ने वन तहस-नहस होने की खबर अन्यों तक पहुँचाने के उद्देश्य से नंदनवन के समस्त पौधों को उखाड़ कर फेंक दिया—वन में एक पेड़ को भी नहीं छोड़ा। १२६ वन की जमीन ऐसे प्रतीत हुई मानो किसीने जोता हो। जो भी सामने आया उसके सीने का रुधिर उसके (जमीन के) लिए पानी वन गया। गिरे हुए शव बीज की तरह बोया जाकर शौर्य की भाँति अंकुरित होकर, बढ़कर कीर्तिरूपी लता के समान व्याप्त होकर, आकाश की ऊँचाई तक पहुँचकर, हनुमान ने रावण को दुःख दिया। १२७ जिस अशोकवृक्ष के नीचे सीता बैठी थी,

जानकियिर्दशोकेय समीपदोळिर्द फलप्रसून सं- ।
तान विराजमान कुजराजियनोवदे किळ्तनिल्ल रू- ॥
क्षानिलपातदिं तपन तापदिनंबिकेगग्गळं परि- ।
म्लानतेयक्कुमेंदुळिपिदं केलवं पवनंजयात्मजं ॥१२८॥

अंतु दशाननंगे यशोभंगमागे वनभंगमं माळ्पुदुं चरं निशाचरनोर्वनति त्वरितगतियिंदे बंदु—

वन पालरनिक्कियुमां-
त निशाचर बलमनिक्कियुं पवन सुतं ॥
बनमं किळ्तिक्कियुमा
रेनगिदिरांपन्नरेंदु कडुकेय्दिर्द ॥१२९॥

अेंदु बिन्नविसे—

चर वचनं किवियं सा-
र्तरे घननिनदक्के कोळर्द केसरिवोल् के- ॥
सरपीठदिनेळ्दं दश
सिरनेरडुं पुर्वुमुर्वि गंटिक्कुविनं ॥१३०॥

अंतु कडुमुळिदु मेले नडेयलोडरिसुव तंदेगे मार्कोंडु—

लोकाधिपति दशानन * नेकाकिमेले नडेदनेंबपवादं ॥
लोकक्के परियें निज बा- * हा कौक्षेयकद कूर्पु नेर्पडगिडुगुं ॥१३१॥

---

उसके आसपास के कुछ पेड़ों को हनुमान ने छोड़ा ताकि तरुलता-रहित वन में गर्म हवा के बहने से या सूर्य-किरणों के कारण सीता को कष्ट न हो। १२८ —इस तरह रावण के यशोभंग के साथ-साथ वनभंग भी हुआ। इतने में एक भाट त्वरितगति से आकर— "हनुमान ने वन-रक्षकों को मारकर, भिड़नेवाली समस्त राक्षस-सेना को मारकर, हमारे वन को तहस-नहस करके इस बात का अभिमान कर रहा है कि उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता!"। १२९ —रावण से ऐसा निवेदन करने पर, भाट की बात कानों में पड़ते ही घनगर्जना से क्रुद्ध सिंह की भाँति रावण भौंहें चढ़ाकर सिंहासन से उठ खड़ा हुआ। १३० —इस तरह क्रोधाग्नि बरसाने वाले पिता को समझाते (सांत्वना देते) हुए पुत्र इंद्रजित बोला— "लोकाधिपति रावण ने एकाकी हनुमान से युद्ध किया" यह कलंक आपके लिए उचित नहीं है। इससे आपके बाहुबल का यश, गौरव घटता है, कलंकित होता है। १३१ यह युद्ध इतना महत्वपूर्ण थोड़े ही है कि आपको

नींबरमुंटे देव कदनं पवमान तनूभवं रणा- ।
डंबरदिंदमंजदोडे कोंदपेनंजिदोडम्म निम्म पा- ॥
दांबुरुहक्के तंदव्रननोंप्पिसुवें वेससेन्ननेंदु शौ- ।
र्यांबुधि बेडिदं बेसनंनिदगि दानव चक्रवर्तियं ॥१३२॥

अंतु बेसनं बेडि पडेदु समर संरंभदिनिदिर्चि बर्पुदं मारुति कंडु पेरागिरिसिबंद निजवरूथिनियं वरिसि विजय रथारूढ़नागि लंकापुरमेल्लं तल्लळिपंतु कादि वेसर नायकरं पेसेळे कोल्वुदं कंडिदगि मुट्टेवर्पुदं तन्नोळितंदु—

कादुव कूर्पुदोर्प बेसनं रघुजं बेसवेळ्दनिल्ल मे- ।
लाद निशाचर प्रमुखरोळ् तलेमेट्टिरिवंदमावुदा- ॥
नी दनुजात्मजंगे पिडिपित्तु दशाननळ्कि बळ्के लं- ।
का दहनक्कोडर्चुवेनेनुत्तुमिदं बगेदं मरुत्सुतं ॥१३३॥

बगेयदे दानवाधिपन दोर्बलमं खचर प्रवीररं ।
बगेयदे नच्चि तन्नळवनिंदगिगां पिडिपीवेनेंबुदं ॥
बगेदनिदेनपार बलनो रणधीरनो सिद्धविद्यनो ।
बगववरारिदं हनुमनंतिरखंडित गंडगर्वदिं ॥१३४॥

---

युद्ध करना पड़े ? अगर मारुती निडर होकर युद्ध के लिए सम्मुख आ गया तो मैं उसे मार डालूँगा। अगर डरेगा तो उसे बंदी बनाकर आपके चरणों में डाल दूँगा। आप मुझे आज्ञा दीजिए।" १३२ —ऐसा कहकर, पिता से अनुमति पाकर, युद्ध के लिए तैयार हुआ। युद्धभूमि में सम्मुख खड़े इंद्रजित को देखकर हनुमान ने पीछे छोड़कर आयी हुई अपनी सेना को बुलवाकर, विजय नामक रथ में सवार होकर ऐसा युद्ध किया कि लंकानगर तड़प उठा और सेनानायकों के नाम ही मिटा दिये। इसे देखकर इंद्रजित पास आ रहा था कि मारुती ने मन ही मन इस तरह सोचा— राम ने मुझे लड़ने या वीरता दिखाने की अनुमति नहीं दी है। ऐसे में मैं सम्मुख आनेवाले सबसे कैसे युद्ध कर सकता हूँ ? इस इंद्रजित को धोखा देकर अग्नि को सारी लंका की आहुति दे देता हूँ। ऐसा निश्चय किया। १३३ लंकाधिपति के बाहुबल की परवाह किये बिना, उसके सहायक खेचर वीरों को निर्लक्ष्यकर, अपनी शक्ति का विश्वास कर, जब हनुमान ने निश्चय किया कि वह इंद्रजित का बंदी बनेगा तो इतना अधिक आश्चर्य हुआ मानो वह अपार बलशाली है, रणोत्साही है या सिद्ध विद्याप्रवीण है। १३४ —इस तरह निर्णयकर, अपनी समस्त

अँदुनिश्चयंगेय्दु तन्नबलमॆल्लमं बीडिगॆ कळिपि कदन केळिगगिद नंददिंनिदगिगॆ पिडिपीवुदुमातनातनं तंदु काणिसि दशवदनंगितॆंदनीतं नम्म विद्या निर्मितमप्प वज्रप्राकारमनॊडॆदु वज्रमुखनं कॊंदु सीतादेविय समीपक्कॆ वंदुबनभनितुमं किळ्तु मेलॆबंद खचर बलमॆल्लमं कॊंदनीतंगॆ तक्कुदं देवरॆ बल्लिरॆंदु बिन्नविसॆ—

किसु सॆरॆ परिदिरॆ कण्णॊळ्
नॊसलॊळ् पुर्वंडर्दु पॊडरॆ गंडस्थलदॊळ् ॥
पसरिसॆ बॆमर्वनिगळ् मुनि-
दसुरेंद्रं पवन सुतननंदितॆंदं ॥१३५॥

मसुळॆ निजान्ववाय महिमोन्नति नाळ्कडॆवोगॆ पाळियुं ।
पसुगॆयुमॆन्न मन्नणॆयनिंदगियॊळ् समकक्ष्यनागॆ र- ॥
क्षिसिदुदनेनुमं बगॆगॆ तारदॆ लज्जॆयनॊक्कु बिट्टु मा- ।
नसिकॆयनितु भूचरर्गॆ खेचर नीं चरनागि बर्पुदे ॥१३६॥

उपकृतियं नॆनॆयदॆ नी-
नपकृतियनॊर्ड्चिदै दुरात्मनॆ रिपु भू- ॥
मिपरॊळॊडगूडिदै द्रो-
ह पॆंपुगिडॆ दंडिसल्कॆवेळ्पुदॆ निन्नं ॥१३७॥

---

सेना को वापस भेजकर, युद्ध से डरा हुआ-सा इंद्रजित के बंधन में बंधित हुआ। उसे रावण के सम्मुख उपस्थित कर इंद्रजित ने निवेदन किया— 'हमारे विद्या-निर्मित वज्र-प्राकार को तोड़कर, वज्रमुख को मारकर, सीतादेवी के पास पहुँचकर, वन को तहस-नहस कर, सम्मुख गयी हुई खेचर सेना को मार डालनेवाले इसे उचित सजा आपही जानते हैं। —रावण की आँखों की नसें तन गयीं, भौंहें चढ़ गयीं, सीने में पसीने की बूंदें दिखाई पड़ीं। कुपित रावण ने हनुमान से यूँ कहा। १३५
"जन्मजात निजकुल की कीर्ति को कलंकित कर, गौरव पर लांछन लगा कर, मेरे किये हुए उपकार का स्मरण न कर, इस इन्द्रजित के साथ हुए युद्ध में उसके द्वारा तुझे रक्षा किये जाने की घटना को भूलकर, निर्लज्ज होकर, खेचर होते हुए भी तुझे मानव का दूत बनकर आना था ? । १३६
हे दुरात्म, उपकार के बदले प्रत्युपकार न करके, कृतघ्न बनकर अपकार करने के लिए आया है ? हमारे शत्रु पक्ष से मिलनेवाले तुझे, तेरे पाप के लिए, सजा देनी चाहिए"। १३७ —ऐसा कहते समय, बगल

अेने कॆलदॊळिर्द कॆलर् दानवर् पवमान सूनुवनिंतॆंदर् स्वामिद्रोहनागि सेनाभंगमंमाडि परबलमं पॊक्कु तक्कनुळिदु दोषक्कॆ पक्कादॆ पवनंजयंगॆ पुट्टिदॊडितु वट्टॆदप्पि गुणंगॆट्टु नॆगळ्वुदु दॊरॆकॊळ्ळदॆनॆ पवमान सूनु मुळिवरनिंतॆंदं—

तॊयद वाहननन्वय ※ दायति किडॆ पाळिदप्पि पळि पॊर्दॆ पर-।।
स्त्रीयनपेक्षिसिद खल ※ न्यायमनारय्दु नोडिकॊळ्ळि निम्मॊळ् ।।१३८।।

अरनं दशमुखनुळिदुद- ※ नरियुत्तुं सल्लदॆंदु वारिसदॊळ्पं ।।
मरॆदिर्पुदरि दोष- ※ क्कॆरॆवट्टॆनिसिर्द पापिगळ् नीमॆ वलं ।।१३९।।

सौमित्रिय कैयॊळ् रण- ※ भूमियॊळिर्दपुदु रावणंगं निमगं- ।।
पो मरणं बिदि बरॆदुद ※ नेमातेदॊरॆयरादॊडं तॊडॆदपरे ।।१४०।।

अॆंदु पलतॆरदिं नॆरनॆत्ति नुडियॆ दशमुखं मुळिदु पलवंगळपलीय दीतनं रामदूतनॆंदु गोसणॆगळॆदु परिभविसि पॊरमडिसि कळॆयिमॆनॆ—

सिडिल पॊडर्पा क्षणदॊळॆ
किडिवुदु काळ्किच्चु बनमननिलन बॆसदिं ।।
सुडुवुदु तॆगळॆनलॆं किडि
किडिवोदनॊ कोपतापदिं पवनसुतं ।।१४१।।

---

में खड़े कई दानव हनुमान से बोले : "स्वामी-द्रोही बनकर, सेना का नाश करके, शत्रुपक्ष से मिलकर, तुमने अपनी योग्यता खोयी है। पवनंजन का पुत्र होते हुए, पथभ्रष्ट होकर, दुर्गुणी बनकर जीना तुझे शोभा नहीं देता।" उत्तर में हनुमान ने उन दानव वीरों से यूँ कहा— "तोयदवाहन के वंश का गौरव कलंकित हुआ। कुल की महत्ता को भूलकर इस दुष्ट द्वारा वंश के लिए कलंकित माने जानेवाले परस्त्री-हरण कार्य को आप लोग स्मरण कर लीजिए। १३८ रावण ने धर्म को त्याग दिया है। इस बात को जानते हुए भी अपने आपको सुधारने का प्रयत्न न करके, अपने हित को ही भुलाये हुए इसके साथ रहनेवाले आप लोग भी पापी हैं। १३९ युद्धभूमि में इस दशकंठ का शरीर लक्ष्मण के हाथों प्रायश्चित पायेगा। विधि ने आप लोगों के लिए भी मरण ही लिखा है। इसे कौन रोक सकता है? । १४० —इसी तरह अनेक प्रकार से निंदा की तो रावण कुपित हुआ और आज्ञा दी "इसे बोलने मत दो। 'रामदूत' कहकर ढोल पिटवाकर इसका अपमान करके भेज दो।" —घनगर्जना से प्रस्फुटित होनेवाली चिनगारी की भाँति वायु के झोंके से मिली दावाग्नि भड़ककर सारे वन को जलाती-सी, रावण

उरिलिगं रसेयिद मंदोगेदुदो पेळेबिनं कण्ण के- ।
सुरिगळ् दळ्ळिसे कोपदिंदमुरिदेळ्दास्थानदल्लिर्द दु- ।।
र्धर विद्याधर वीररं जवन बायोळ् तूंकिदं तन्न नि- ।
ष्ठुर पादाहतियिं प्रभंजन सुतं हस्त प्रहारंगळिं ।।१४२।।
बिदिर्दीडाडि कॆलंबरंनिट्टॆल्वु नुर्गागॆ का- ।
य्दोदेदेळ्बट्टि कॆलंबरं कॆलबरं बिळ्तागॆ पोय्दणिम ना- ।।
गिदरं सीळ्दु कॆलंवरं कॆलबरं प्रोद्वृत्तरं दैत्यरं ।
तुदिगालं पिडिदॆत्ति पोय्दु नॆलदोळ् कोंदं मरुन्नंदनं ।।१४३।।

अंतुकोंदु कल्पांत कृतांतनंतॆ मामसकंमसगि पोडॆव सिडिलंतॆ सिडिल्दु सिंह लंघनदिंदंबरक्कॆ नॆगॆदु—

मनॆमनॆदप्पदॆ नॆगॆदुदु * तनिगिर्चॆनॆ दहन विद्येयिं सुट्टं पा- ।
वनि लंकेयनसुराधी * शन मनमुरिवन्नमाननं पोगेवन्नं ।।१४४।।
बहुधूम लेखे निर्मिदुवु * मिहिराध्वदोळांजनेयनोडरिसे लंका
दहनमनसुरेंद्र विना- * श हेतुगळ् धूमकेतुगळ् नॆगॆदुवेनल् ।।१४५।।

असुरेंद्रंगॆ कृतांतन
किसुगण्चिद कण्णकॆंपॆनल् केसुरि द-

की आज्ञा से हनुमान आग-बबूला हुआ । १४१ उसकी आँखों से अग्नि की चिनगारियाँ ऐसे बरसने लगीं मानों रसातल से अग्निलिंग ही उग आया हो । जहाँ बैठा था वहाँ से उठकर अपने पदाघात एवं मुक्कों से दरबार के महान पराक्रमी विद्याधर वीरों को यम के मुँह में ढकेल दिया । १४२ कुछ लोगों का प्राणांत कर, वहीं का वहीं फेंककर, कुछ लोगों को उनके मुख्य अंग टूटने जैसा लात मारकर, भगाकर, कुछ लोगों को पैरों से पकड़कर जमीन में पटककर, सामने जो भी आया उसे चीरकर हनुमान रणभयंकर प्रतीत हुआ । १४३ —प्रलयकाल के यम के समान, भयानक युद्ध करके घनगर्जना की भाँति गरजकर सिंह-सा आकाश की ओर उठकर— अपनी दहन-विद्या से हनुमान ने लंका को ऐसा जलाया कि एक घर भी साबित न रह पाये, रावणेश्वर के अभिमान और उसके नगर को जलाकर उठते हुए धुएं को देखा । १४४ धुएं के बादल आकाशपथ में ऐसे दिखाई पड़े मानो वे रावण के विनाश को आमंत्रित कर सूचना देनेवाले ध्वज हों, या अनिष्ट-सूचक धूमकेतु के समूह हों । १४५ जलती हुई अग्नि रावण को क्रोधपूर्ण अग्निदेव की आँखों से निकलती हुई चिनगारियों के समान दिखाई पड़ी । इतने में ज्वाला प्रज्वलित होकर, धूम्रमेघों ने

ळ्ळिसिदुदु बद्ध भ्रकुटिवौ-
लसदळमर्विसिदुदुर्वि धूम स्तोमं ॥१४६॥

अणुवन वह्निविद्ये सुडे लंकेयनल्लि छटच्छटेंब भी- ।
षण रवमुण्मे नीळ्दुरिय नालगेगळ् दशकंठ रक्तदिं ॥
तणिव दिनंगळादपुवु राम शरंगाळिनेंदु रागदिं
कुणिव कुकिल्व भैरविय रक्त जटा पटलंगळेंबिनं ॥१४७॥

पुरहनूडेमु त्रिपुरमं पलकालमुपोषित व्रता- ।
चरणदोळिर्दनीगळुपवासद पारणे वायु पुत्रनिं ॥
दोरेकोळे लंकेयं शिखि शिखावधियप्पिनमुंडु तेगुवं- ।
तिरे पोरदोण्मिदत्तु धगिलेंब धगद्धगिलेंब निस्वनं ॥१४८॥

करुमाडं मेरुवं पर्विदुदु चटुल दावाग्नियेंबंददिं निं- ।
दुरियुत्तिर्दत्तदं सुत्तिरिद धवळहारं सुधावार्धियं दु- ॥
स्तरदौर्व ज्वाळि जिह्वा परिकरमळुर्दत्तेंबिनं कण्गदें भी-
करमागिर्दत्तो लंकापुरमनुरिपे दिब्याग्नियिदांजनेयं ॥१४९॥

वासुगि नुंगलेंदु दशकंधरनं रसेयिं धरातल- ।
क्कासुरमागि तन्न रसना द्विसहस्रमगुर्वनीये भा- ॥
भासुर रत्न रंजित सहस्र फणं नेगेदंते सुत्तलुं ।
केसुरि माले निंदुरियें बेंदुदु रावण राजमंदिरं ॥१५०॥

---

सारे भूमंडल को घेर लिया। १४६- हनुमान की अग्निविद्या से लंका को जलाते समय भयानक छट्छटल ध्वनि बढ़ने लगी। ऊपर तक उठनेवाली अग्नि की लपटें ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानो दशकंठ का रक्त पीकर तृप्त होने के दिन वहुत निकट आने की कल्पना से नाचने गानेवाले भैरवी की जीभ हो। १४७ पहले त्रिपुर को अग्नि की आहुति देने से पहले शिवजी उपवास व्रत में थे। अब वह उपवास-पारणा से वायुपुत्र होने के कारण अग्नि, बेहद खाकर डकार लेता-सा धगधगिल ध्वनि पृथ्वी भर में फैलाने लगा। १४८ जलती अग्नि को देखकर ऐसा भ्रम होता था मानो दावाग्नि के कारण सुंदर राजभवन ही मेरुपर्वत तक फैल गया हो। अग्नि-ज्वालाएँ अमृतसमुद्र को पीने के लिए लालायित जीभों की तरह दिखाई दे रही थीं। अंजनेय के लंकादहन-कार्य ने इस तरह भयानक दृश्य प्रस्तुत किया। १४९ मानो रावण को निगलने के लिए रसातल से अपनी दो हजार जिह्वाओं को फैलाकर भयानक वासुकी आ गया हो, हजार फनों से रत्नप्रकाश प्रज्वलित हुआ हो, अग्निज्वालाएँ चारों तरफ

गृह दीर्घिकेयं धारा ❊ गृहमं बडबाग्नियंदर्दि रत्न शिला ॥
गृहमं सिडिलंतिरेंधव ❊ ल हारमं दाव शिखिवोलळुर्दुद दहनं ॥१५१॥

कनकद रजतद कांस्यद
मनें मुट्टुरिमुट्टे करगि कण्णिट्टुवु दै- ॥
त्यन सिंहासंदिगे रा-
मन वीरश्री कडंगि कण्णिट्टळेनल् ॥१५२॥

सुखि मदांबुविंदुरिय नालगे नण्णसमागे बेगदिं ।
परिदुवु निर्झरं सुखि जंगम नील नगंगळेंबिनं ॥
भरदोळ कंभमं मुरियें पाय्दु तोंडर्परिदाने सालेगे-
य्तरे युमजिह्वेयंतुरिय नालगे दानवनंकदानेगळ् ॥१५३॥

इदु कडेगालदंदिनडेवोत्तिद पावकनेंबिनं पोद- ।
ळ्दोदवि कृशानु सुत्ति सुडे मंदुरमं नेगेदुळ्ळ लेंकरं ॥
बेंदरिसि लायमं परिदु मुंडिगेयं मुरिदागळें बिसि- ।
ल्गुदुरेगळंदर्दि कुदुरेगळ् पलवु देसेबिह्नमादवो ॥१५४॥

ओन्न सुतनतिथि पूजेय ❊ नेन्नसखंगित्तमग्निनेंदनुकूलं ॥
तन्नोलविंदूडिदननि- ❊ लन्नयदिं बीसि बीसि लंकापुरमं ॥१५५॥

आ समयदोळग्निशिखा मुखक्के दूरमप्प बक्कबयल ताण-
दोळ् दोम्यालिसि निंदु बहुजनंगळुम्मळिसि तम्मोळितेर्—

---

फैलकर रावण के राजमंदिर को जलाने लगीं। १५० हनुमान की अग्नि-विद्या राजभवन के कुओं को, अंतःपुर को, राजमंदिर को दावानल-सा जलाती हुई सर्वत्र फैल गयी। १५१ सुवर्णगृह, चाँदी का गृह अग्नि-स्पर्श से पिघल गये। रावण का सिंहासन भी ऐसा पिघला मानो राम की विजयश्री ने उस पर दृष्टिपात किया हो। १५२ मानो बरसते हुए मदोदक से अग्निज्वाला शांत हुई हो; चलायमान नीलाचल पर्वत-से, अपनी भाग-दौड़ के वेग से सामने के खंभों को तोड़कर रावण के हाथी गजालय में आये तो वह (गजालय) यम की जीभ के समान दिखाई पड़ा। १५३ अग्निदेव, प्रलयकाल की अग्निज्वाला-से दृष्टिगोचर होनेवाली समस्त चीजों को जला रहा था कि अश्वालय से कूदकर, सेवकों को डराकर, बंधन तोड़कर, खूँटों को तोड़कर, मृगमरीचिका की भाँति निशा भ्रमित-सा दौड़ने लगे। १५४ वायु इस विचार से प्रसन्न हुआ कि उसके पुत्र ने मानो उसके (वायु के) मित्र अग्नि की, अत्यंत प्यार से अतिथि-पूजा की है। इससे अनुकूल होकर वायु ने प्यार से लंकादहन में सहयोग दिया। १५५ —उस

जनकजेगासेगेय्द सुकृत क्षयदिं जलवर्ष विद्ये प- ।
ळ्चनें पेरपिगें पुष्पक विमानमनेरि दशाननं वधू- ॥
जन सहितं कृशानुगें भयाकुलनप्पुदु चोद्यमल्तदें-
तेनें शुचियल्लदंगें बेसकेय्गुमें विद्येगळावुवादोडं ॥१५६॥

मानवदूतनेत्त जलराशियनळ्कदे पाय्दु बर्पुदे- ।
त्तानलळुंबमप्पसुर सेनेयनोंर्वने कोल्वुदेत्त लं- ॥
का नगरक्कें नंदन वनक्कें विनाशमनीवुदेत्तिदें ।
दानवराज दुर्विलसितोत्कट संकट वेगमागदे ॥१५७॥

प्रतिपक्षमुंटे लंका- ॥ पतिगणुवं रावणंगिदिर्चुवनें महा- ॥
सति सीतेय शोकानल ॥ हतियिं बेंदत्तु कूडे लंका नगरं ॥१५८॥

अेंदु पौरजनमुलियें लंकापुरमनुरिपि गगन तलक्कें नेगेदु मगुळ्दु निजसेनेयं कूडिकोंडु गंधवह नंदनं किष्किंधपुरक्क-भिमुखनागि—

मारुत मार्गमं पुदियें केतन पट्टिकेगळ् विमान घं- ।
टा रुतिगळ् जयानक घन ध्वनिगळ् देसेयं पळंचें भू- ॥
षा रुचिगळ दिनक्कें तनिगोर्वनेंोडर्चें जयांगना प्रियं ।
मारुति बंदना रघुतनूज मनोरथ सिद्धि बर्पवोल् ॥१५९॥

---

समय अग्निस्पर्श न होनेवाले स्थान पर (दूर) मैदान प्रदेश में खड़े होकर अनेक भयभीत और दुखी लोगों ने परस्पर यूँ कहा— "सीता को चाहकर, पुण्य-क्षय के कारण जल-विद्या को खोकर, अंतःपुर की स्त्रियों के साथ पुष्पक विमान में सवार होकर, अग्नि से रावण का भयभीत होना आश्चर्य-कारक नहीं है। जिसमें चारित्र्य शुद्धि न हो, इसके साथ कोई भी विद्या निभा सकती है ? । १५६ मानवदूत का समुद्र पारकर लंका पहुँचकर, लंकानगर और नंदनवन को नाशकर देना क्या सामान्य कार्य है ? रावण के दुष्कार्यो के कारण ही ये संकट भोगने पड़े है । १५७ लंकापति रावण का सामना करनेवाला प्रतिपक्ष कोई है? हनुमान रावण के बरावरी का वीर है ? सीतामाता की दुःखाग्नि ही लंका को जला रही है ।" १५८ —इसी तरह पुरजन अनेक प्रकार से बात कर रहे थे। लंका को जलाकर आकाश की ओर उड़कर पुनः अपनी सेना से मिलकर, मारुती किष्किंधा नगर की ओर रवाना हुआ— वायुमार्ग की विजय-ध्वजाएँ, विमान के घंटिका-नाद और जयघोप दशोदिशाओं में व्याप्त हुए। जिस तरह सूर्य-प्रकाश आभरणों की कांति को वढ़ाता है उसी तरह जयश्री का प्रियकर

अंतुबंदु गगन तलदिं नवनीतलवकवतरिसि किष्किंधपुर बहिः पुरदोळ् बीडंबिट्टु पुरमं पुरंध्रियर मनमुमनरमनेयुमं पोक्कु—

रामभुज प्रताप तपनोदय शैलमुपांत पर्वत ।
स्तोम समन्वितं बरुतुमिर्दपुदेंबिनेगं वियच्चर- ।।
ग्रामणि सूर्यवंश नरपाल शिरोमणियिर्द तत्सभा
भूमिगे बंदनाप्त खचरानुचरं पवनंजयात्मजं ।।१६०।।

मरकत कर्णकुंडल मरीचिगळिं देसेगळ् बसुर्पुवे-
त्तिरे मुकुटप्रभा पटलदिं गगनं किसुसंजे पविदं- ।।
त्तिरे कनकाद्रिगोळ् पोळेव तारेगळंददे तोरमुत्तिनै ।
सरमुरदोळ् तळत्तळिसे बंदनरिंजयनंजना सुतं ।।१६१।।

अंतु बरुत्तुमिरे—

वदन विकासदिं बरविनेळ्तरदिंदमे कार्यसिद्धिया- ।
दुदनरिदंजनासुत निरीक्षणदिं रघुजंगे हर्षमा- ।।
दुदु परिषज्जनक्के परमोत्सवमादुदु लक्ष्मणंगे कों- ।
विदुदु मनं मुदंबडेयरारभिवांछित कार्य सिद्धियिं ।।१६२।।

अंतु निजागमनमे सभाजनमं हर्षरस भाजनमं माडे-

---

हनुमान ऐसा था मानो श्रीराम की मनोरम-सिद्धि ही प्रत्यक्ष हुई हो । १५९ —आकाश से पृथ्वी पर उतरकर, किष्किंधा के बाह्य प्रदेश में सेना का डेरा डालकर, स्वयं नगर और नगर के स्त्री-समूह के हृदय में प्रवेश करता-सा राज-महल में प्रविष्ट हुआ तो— चारणवृन्द घोषणा कर रहा था कि श्रीराम के भुजप्रताप रूपी उदयाचल पर्वत में सूर्य उदय होने जा रहा है। इतने में खेचरश्रेष्ठ मारुती मानवश्रेष्ठ राम के दरबार के सभागृह के पास आप्त खेचर वीरों के साथ आया । १६० इसके मरकतमणि के कर्णकुंडल का प्रकाश मानो समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था। मुकुट की प्रभा से आकाश-संध्या के समान प्रकाशहीन हुआ तो सीने का मौक्तिक हार कनकाद्री में चमकते नक्षत्रों की तरह चकमका रहा था कि शत्रुओं के लिए कुठारप्राय हनुमान चला आया । १६१ — वह ऐसा चला आ रहा था कि उसके खिले मुख और चाल में ही कार्य-सफलता के लक्षणों को पाकर राम को प्रसन्नता हुई। वहाँ उपस्थित सबके सब हर्षित हुए। लक्ष्मण का मन मस्त हुआ। अपेक्षित कार्यसिद्धि पाकर किसे प्रसन्नता नहीं होती ? । १६२ —इस तरह हनुमान का आगमन हर्ष का कारण बनने पर— राम-लक्ष्मण का नयनप्रकाश हनुमान पर वरस

पुदिदिरे रामलक्ष्मणर कण्बोळेपुं बळसिदं तन्सभा- ।
सदर विलोचन प्रभेयुमात्म शरीरयनंजना सुतं ।।
विदलित नीरनीरज वनं नडेनंदपुदेंबिनं सभा ।
सदनमनेय्दिदं सलिल वीचिगळं गेलॆ भूषणांशुगळ् ।।१६३।।

अंतु बंदु राघवंगे विनय विनमितनागि लक्ष्मणंगे तुळिलेय्दु समुचित प्रदेशदोळिक्किदुत्तुंग मणिमयासनमनलंकरिसि—

मणिये विरहांधकारं
कुणिये जगत्पतिय नेत्र पुत्रिके मेय्योळ् ।
पेणेये पुलकाळि चूडा-
मणियं कोट्टं नृपंगे पवमान सुतं ।।१६४।।

अंतु कुडुवुदुं—

आ रत्नक्किदिर्वेय्येवोल् नृपतिगानंदाश्रुगळ् बंदुवा- ।
स्त्रीरत्नं पदेदप्पिदंते पुलकं चूडामणि स्पर्शदि ।।
धीरोदात्तन मेय्योळुण्मिदुवु सीता शुद्धियं केळ्व चे- ।
तोरागं रघुनंदनन श्रुतिगे तंदात्तागळौत्सुक्यमं ।।१६५।।

अनंतरं मरुन्नंदनं बिन्नपमनवधारिसुवुदेंदितेंदं—

घनसमय समागगमं
मनदोळ् नेनेयुत्तुमिर्प चादगेवोल् म- ।

---

रहा था और उन्हें घेरे हुए लोगों की दृष्टि उसे आदर से निहार रही थी। ऐसे में अंजनासुत ने सभा में प्रवेश किया तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो नीलकमल का वन ही चलकर आ रहा हो। और उसके आभरणों की कांति जल की तरंगों के समान दिखाई देती थी। १६३ —इस तरह प्रविष्ट होकर राम को प्रणाम और लक्ष्मण की सेवा करके, अपने लिए तैयार किए हुए ऊँचे आसन पर बैठ गया और— जुदाई रूपी अंधकार से सिर झुकाया-सा जगत्पति श्रीराम की आँखों की पुतली नाच उठने और शरीर में रोमांच की लहरें उठने लगी, तो राम के हाथ में चूड़ामणि दे दी। १६४ —ऐसा करने पर— चूड़ामणि का रत्न दृष्टि में पड़ते ही राम की आँखों से आनंदाश्रु बरस पड़े। चूड़ामणि के स्पर्श मात्र से उन्हें ऐसा महसूस हुआ मानो सीता ने ही कसकर आलिंगन किया हो। सीता की खबर सुनने की आतुरता बढ़ गयी। १६५ —तत्पश्चात् मारुती ने बताया— "भगवन् जिस तरह चातक पक्षी वर्षा-ऋतु की

ज्जननि निजागमनमें जी-
वनमागिरें देव जीवमं पिडिदिर्दळ् ।।१६६।।

देव पतिव्रता गुणदिनग्गळमावुदुमुंटे जानकी ।
देविगें रावणं मुळिदु माळ्पुपसर्गमवेन्नमादोडं ।।
बेवसमं मनक्के तरलारवें निम्मडि निम्म भक्तियिं ।
पाविन पल्ल नंजुकिडुवंतिरें मांत्रिकन मंत्र शक्तियिं ।।१६७।।

ॲंदु बिन्नविसि मत्तं कॆलवविन्नाणंगळनितॆंदं—

मुनिबृंदारकरप्प चारण युगक्काहारमं देवरी- ।
यें नदीतीरदोळाय्तु चोद्यमेनें पंचाश्चर्यमा योगि द- ।।
र्शनदिं दंडकना महागहनदोळ् पर्दागि पुट्टिदुं तो- ।
ट्टनें जातिस्मरनादनेंब कुरिपं मन्माते पेळदट्टिदळ् ।।१६८।।

ॲंबुदुं प्रभंजन सुतन प्रधान पुरुषं पृथुमतिवेसर मंत्रि दाशरथिगें कैगळं मुगिदु—

अमित बलं देवर् बॆस-
सें मनोवेगदोळें पोगि लंका प्राका- ।
रमनोडॆदं कोंदं ब-
ज्रमुखननार् वलिमुख ध्वजंगिदिरांपर् ।।१६९।।

---

प्रतीक्षा करता है उसी तरह माता सीतादेवी आपके आगमन की प्रतीक्षा करती हुई प्राण को रोके जी रही हैं। १६६ श्रीराम! जानकीदेवी के लिए पतिव्रता गुण से बढ़कर और क्या चाहिए? रावण द्वारा दी जानेवाली समस्त पीड़ाओं को आपके चरणारविंदों की भक्ति के बल से ही सह रही हैं। क्योंकि आपके नाम में सर्प-विष का निवारण करने की मंत्रशक्ति है।" १६७ —ऐसा निवेदन करने के पश्चात् सीता जी द्वारा बताए हुए आप्त विषयों को बताते हुए बोला— "आपके द्वारा एक बार चारणमुनियों को आहार दिए जाने पर नदी-तट पर घटी आश्चर्यकारक घटना के बारे में सीतामाता ने बताया है। उन योगियों के दर्शन मात्र से दंडक ने महारण्य में किस तरह गीध के रूप में जन्म लिया और तुरंत अपने पूर्वजन्म की बात जान गया, यह बात भी उन्होंने बतायी है।" १६८ —हनुमान की बात सुनकर उसका प्रधानमंत्री प्रथुमति ने हाथ जोड़कर श्रीराम से कहा— "इस बलशाली हनुमान ने आपके आज्ञानुसार मनोवेग से जाकर लंका की रक्षा करनेवाले विद्या-प्राकार को तोड़कर, वज्रमुख का काम तमाम किया। इस वानरध्वजी

बनमं किळ्तं पौल- ॐ स्त्य लंकापुरमनुरिपिदं निम्म बेसं-
तनगिल्लदसुरनं कों- ॐ ल्लने तारने देविदेवियं हनुमंतं ॥१७०॥

अंदु बिन्नविसे सुग्रीवादिगळ् हनुमत भुजबलक्किदाव गहनमीतंगसाध्यमावुदेंदु कोंडु कोनेये मरुन्नंदनंगे रघुनंदनंगे मत्तमिनेंदं—

आन्निम्म सुद्दियं पे-
ळ्वन्नं मज्जननि जीविताशेयनिळिके- ॥
य्दन्नं त्यागंगेय्दळ्
मुन्नादर् सतियरिन्नरारेंविनेगं ॥१७१॥

असुरन माळ्पपकृतियिं ॐ दसुवं बिडुवंतुटक्कुमंबिकेगे बळि-
क्कसुरेंद्रननिक्किदोड- ॐ ल्लिसाध्यमे तक्कुदल्तु कालक्षेपं ॥१७२॥

अंबुदुमंजनासुतन बिन्नपमे तनगे वीररस प्रवाहिनिगे सेतुवागे—

ई वाराशियनींटलेन्न बडवास्त्रं साल्वुदारांतोडं ।
जीवाकर्षण विद्येयं मेरेवुदेन्नी चापदंडं दश- ॥
ग्रीवंगण्णने साल्वनिं तडेवुदेतक्कें दु सौमित्रि सु- ।
ग्रीवंगेंदनुदंचित भ्रुकुटि गंडोद्गारि घर्मोदकं ॥१७३॥

---

का सामना कौन कर सकता है ? । १६९ लंका के नंदनवन को धूल में मिलाकर, अग्निदेव को लंका की आहुति दी । आपकी आज्ञा के अभाव में न रावण को मार सका और न सीतादेवी को आपके पास ला सका ।" १७० —ऐसा निवेदन करने पर राम ने संतुष्ट होकर सोचा कि हनुमान के भुजबल के सम्मुख यह कौन बड़ी बात है ? इसे कौन काम असाध्य है ? इतने में वायुपुत्र हनुमान ने श्रीराम से यूँ कहा— "मेरे द्वारा आपका समाचार पहुँचने तक सीतामाता ने अपने प्राण की आशा छोड़कर अन्नाहार का त्याग कर दिया था । ऐसी पतिव्रता और कौन है ? । १७१ असुर रावण के अन्याय से सीतामाता की जान को खतरे की संभावना है । उसके बाद रावण को मारकर कोई लाभ नहीं । अतः इस कार्य में विलंब नहीं करना चाहिए । १७२ —इसे सुनकर उसका आग्रह ही मानो राघव के लिए वीररसरूपी सागर के लिए सेतु बन गया और लक्ष्मण ने कहा— "इस समुद्र को पीने के लिए, भले ही कोई रोकना चाहे, मेरे बाण ही पर्याप्त हैं । जब मेरे बाणों को शत्रुओं के प्राणों को चूसने की विद्या मालूम है, जब भैया राम ही रावण की बराबरी कर सकते हैं तो विलंब किस बात का ?" इतना कहकर, सुग्रीव को देखकर लक्ष्मण ने

ऎंबुदुमा नुडिगॊंडंबट्टु सुग्रीवं रणरसोद्ग्रीवनागि--
तडॆवनितेकॆ नाळॆ नडॆवं रणकेळिगॆ बाडबास्त्रमं ।
तुडुवनितच्चिगं नमगदेवुदॊ लक्ष्मणदेव नम्म पॆ- ॥
वडॆ कडलं नभोगमन विद्यॆयॆ सेतुवॆनल्कॆ दांटि मा- ।
पडॆयनदिर्पुगुं रघुतनूजनॊळाजिगॆ बर्प गंडरार् ॥१७४॥

ऎनॆ सिंहनादं सिंहदंतॆ गर्जिसि—

ऒर्वनॆ पोगि किळ्तु बनमं पुरमं सुडॆ कंडु तम्म दो- ।
र्गर्वमनॊर्वरुं मॆरॆयलाररॆ मारुतियन्निरिल्लि सा- ॥
सिर्वरखर्वं दोर्वलयुतर् खचराधिपरिर्दपर् निशा ।
टर्वयलिंगॆ बंदपरॆ निंदपरे रणरंग भूमियॊळ् ॥१७५॥

ऎनॆ बालिर्दवन तनूभवं चंद्रमरीचि दशनमरीचि विद्युन्मरीचियं पळंचलॆविनमिंतॆंदं--

मारुति बुद्धिवेळ्दॊडमदं बगॆगॊळवॆ रामनंबुगळ् ।
कूरिदुवॆंबिदं बगॆगॆ तारनॆ संचित पूर्वकर्म दु-
ष्प्रेरणॆ नेरितं नडॆयळीगुमॆ दुर्मतियप्प रावणं-
गी रणकेळि मारणमनीयदॆ कम्मनॆ सैतॆ पोकुमे ॥१७६॥

भौंहें चढ़ा ली। १७३ —इस सलाह को स्वीकृति देकर सुग्रीव रणोत्साही हुआ।— "बिलंब न करें। कल ही सेना के साथ निकल पड़ेंगे। हमें अग्न्यास्त्र-प्रयोग की क्या जरूरत है? हमारा-सेना-समूह आकाशगामी विद्यारूपी सेतु द्वारा समुद्र पार करके, शत्रुसेना से लड़कर, विजय प्राप्त करेगा। रघुराम को युद्ध के लिए ललकारने का साहस किस वीर में है?"। १७४ —ऐसा कहकर, सिंह-सा गरजकर— "अकेला जाकर वन को उखाड़कर, नगर को जलाकर लौटे हुए मारुती को, सम्मुख आकर वहाँ के किसी वीर ने रोकने का साहस नहीं दिखाया। मारुती के समान यहाँ एक नहीं हजारों की संख्या में हैं। वे सब साहसी हैं; भुजबलशाली है, खेचर हैं। उन्हें देखकर राक्षस पास आने का साहस कर सकते हैं? आयेंगे भी तो रणभूमि में टिक थोड़े ही सकते हैं?"। १७५ —इस उद्गार को सुनकर वालीपुत्र ने अपनी हँसी के प्रकाश से चंद्रकांति और विद्युतप्रकाश को नीचा दिखाते हुए यूँ कहा— "हनुमान की नसीहत भरी बात को अनसुनी करके, श्रीराम के बाणों की तीक्ष्णता को न जानकर, पूर्वजन्मों के दुष्कर्मों से बंधित रावण सन्मार्ग पर कैसा चलेगा? यह युद्ध रावण के लिए, मृत्यु सिद्ध हुए बिना कैसे

अदेंतेने साधित सकलविद्यरप्प गगनगतियुं भूतपतियुं नागराजनुं अशनिवेगनुं महेंद्रनुं मृगेंद्रनुं भीकरकुंडलनुं प्रभामंडलनुं प्रसन्नकीर्तिं तटिद्वक्त्रनुं वज्रदंष्ट्रनुं विद्युन्मालियुं रवियुं क्रूरनुं अंगदनुं शूरनुं नळनुं नीलनुं सुषेणनुं मंदरनुं जांबवनुं समीरणनुं सिंहनादनुं वराहनुं विराधितनु हनुमंतनुं मत्तं पेररिकेय विद्याबल गर्वितरप्प विद्याधतरेल्लरुं रामलक्ष्मणर बेसननें पारुत्तुमिर्दर-वरोरोर्वरे मार्वलमं कोललुं गेललुं नेरेवरिन्नेमगे पेरतु मंतणक्कड-यिल्लेने केळ्देल्लरुमातन मातनें मनदेगोंडु विजय प्रयाण निश्चित मंत्ररागिर्पुदुमा समयदोळ्—

कुसिदुवु किरणंगळ् कडु * विसिल पोडर्पडुगे वंदनुक्रमदिं त- ।
ण्बिसिलाय्तनंतरं पों * बिसिलादुदु पादे पळ्केवेट्टमनर्कं ।।१७७।।

तपसिगे पिंगुववोला * तप योगं तिण्णमाद रागोदयदिं ।
तपनंगे पिंगिदत्ता * तपयोगं तिण्णवागे संध्यारागं ।।१७८।।

आवं गड वारुणियं * सेविसि नाण्गिडदनुळिदनंबरमं रा- ।
जीव सखं वारुणियं * सेविसलोंडमात्म तेजमस्तमिसुविनं।।१७९।।

दशवदनन परमायु- * देशेयंतस्तमिसे भानुमंडलमागळ् ।
दशवदनन पळियंतिरे * दश दिग्वदनमुमनुर्वि पर्वित्तुतमं ।।१८०।।

---

रहेगा ? । १७६ —क्योंकि समस्त विद्याओं में पारंगत गगनगति, भूत-पति, नागराज, अशनिवेग, इंद्र, मृगेंद्र, भीमकुंडल, प्रभामंडल, प्रसन्नकीर्ति, तटिद्वस्त्र, वज्रदंष्ट्र, विद्युन्माली, रवि, क्रूर, अंगद, नल, नील, सुषेण, मंदर, जांबव, वायु, सिंहनाद, वराह, विराधित, हनुमान आदि विद्याधर केवल राम-लक्ष्मण की आज्ञा की प्रतीक्षा में हैं। इनमें से हर एक रावण की सेना को पराजित करने, मारने में समर्थ है, तो सोचने, समय गंवाने की क्या जरूरत है ?" ऐसा कहने पर उसकी सलाह को सबने स्वीकार किया और विजय-प्रयाण के लिए तैयार हुए। उस समय— सूर्यकिरण की प्रखरता घटकर, धूप शांत होकर, मंद धूप में परिवर्तित होकर सूर्य अस्ताचल पहुँचा। १७७ तप में लीन मुनि का तपयोग घटा-सा धूप की प्रखरता घटने पर सूर्य छिपा तो संध्या हुई। १७८ मद्यपान करके कौन लज्जित नहीं होता ? सूर्य आकाश से उतरकर पश्चिम दिशारूपी स्त्री से मिलने पर उसका मन अस्तमित हुआ। १७९ मानो दशकंठ की आयु ही अस्तमित हुई हो, अंधकर आकाशमंडल को घेरने लगा तो ऐसा दिखाई पड़ा मानो रावण के यश पर लगा कलंक दशोदिशाओं में फैल गया हो। १८०

कुमदक्कें मंदहासं * समनिसिदुदु बिट्टु बंदु सरसिजमं वि-॥
श्रमिसें सिरि तन्नोळाश्च-* र्यमें जडरन्यापकर्षदिं रागिसरे ॥१८१॥

कोक मिथुनं वियोगो- * द्रेकं दोषानुषंगदिं समनिसें चिं- ॥
ताकुलितमादुदार्ग * व्याकुलतेयनुंटुमाळ्कुमिष्ट वियोगं ॥१८२॥

अंबिरिविडिद तमोदा * नांबुविनोळ् मुळिगिनिदनभमेंब मद-
स्तंबेरममागळ् सि- * ब्बं बोय्दवोलडरें तुरुगिदुवु तारगेगळ् ॥१८३॥

पेरतेगेव तमं तळ्तेमें * दुरुगलेनल् पूर्व दिग्वधू वदनं क- ॥
ण्देरेदवोलदें बेलर्तुदो*किरिदेडे तुहिनांशु बिंबमुदयिप पददोळ् ॥१८४॥

अनंतरं रोहिणीरमणनुदयाचल शिखंडमणि मंडननेनिसें—

जनकजेय वदनमं सित-* वनरुहमं चंद्राकांत मणिदर्पणमं ॥
नेनेयिसिदुदु रामंगम- * र नदिय कलहंसनं सुधाकर बिंबं ॥१८५॥

आ समयदोळुदात्त राघवननुचित सन्मान दानपुरस्सरमखिल विद्याधराधिराजरं बीडिगें बेससि निर्वतित संध्यासमयं शय्यागृहक्कें बिजयंगेय्दुदुकूल प्रच्छदाच्छादित विशाल हंसतूल तल्पतलदोळ् सुख प्रसुप्तनिरें—

---

नीलकमल को संतोष मिला। कुमुद को त्यागकर लक्ष्मी नीलकमल में विश्राम करने लगी। अन्यों को हानि पहुँचाने पर मूढ़ लोग संतुष्ट नहीं होंगे? । १८१ चक्रवाक पक्षी प्राप्त वियोग से चिंताकुल हुए। प्रियों के वियोग से किसे व्याकुलता नहीं होगी? । १८२ घनाकार में व्याप्त अंधकार में डूबे आकाश रूपी मदमाता हाथी पर उभरे दाग-से नक्षत्र उदित हुए। १८३ अंधकार की शक्ति घटने के कारण उसकी पलकें मुरझाने लगीं तो पूर्वदिशा रूपी स्त्री का मुख खिलकर आँखों का प्रकाश चमकता-सा चंद्रोदय का दर्शन हुआ। १८४ तत्पश्चात् रोहिणीरमण चंद्र उदयाचल में विराजमान हुआ तो, चंद्रबिंब को देखकर श्रीराम को सीता का मुख, श्वेत कमल, चंद्रकांत शिला एवं हंस का स्मरण हुआ। १८५ —राम ने उचित दान सम्मानों से विद्याधरों का सत्कार किया और उन्हें अपने-अपने निवास स्थान में भेजकर, स्वयं शय्यागृह जाकर वस्त्राच्छादित विशाल हंसतूल पलँग पर सो गया। फिर समय होने पर— लो, जिन-पूजा का समय हुआ, यह प्रभात का समय है, पलँग से उठकर दिग्विजय निमित्त निकलने से पहले आवश्यक मंगलकार्यों को पूरा करने के लिए आह्वान करता-सा राजालय सरोवर में खेलते हुए हंस, सरस, चक्रवाक पक्षी ऊँचे स्वर में आवाज करने लगे। १८६ —तत्पश्चात् कुछ ही क्षणों में— पूर्वदिशा में

जिनपूजावसरं प्रभात समयं दिग्जैत्रयात्रा विनो- ।
दनदिं राघव मुख्य मंगलमनितीर्चल्के शय्या निके- ।।
तनदिं नीनिरदेळ्वुदेंदु करेवंतादत्तु राजालया- ।
ब्जिनियोळ् पोण्मुव हंस सारस रथांगोत्तार कोलाहलं ।।१८६।।

मत्तमिनिसानुं बेगदिं—

कदन मदोद्धतं मुळिदु लक्ष्मणनादिडे वायुवेगदिं ।
त्रिदश विरोधियप्प दशकंठन वक्षमनुर्चि पोगिपो- ।।
ण्मिद रुधिरांबुविदरुणमाद सुदर्शन चक्रदंतदे- ।
नुदयिसिदत्तो सांध्य समयारुणितं दिननाथ मंडलं ।।१८७।।

अंतु नेसर् मूडुवुदुं—

बळभद्रं व्यवहार मंगलमनाज्यावेक्षणाद्युत्सवं- ।
गळनत्युत्सवदिंदोडर्चि जिनपूजोत्साहमं मुख्य मं- ।।
गळमं माळ्पनुरागमं बगेगे तंदं भारती कर्ण कुं- ।
डळनप्राक्तनप्रमत्त चरितं साहित्यविद्याधरं ।।१८८।।

इदु परम जिनसमय कुमुदिनी शरच्चंद्र बालचंद्र मुनींद्र चरणनखकिरण चंद्रिकाचकोर भारती कर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितमप्प रामचंद्र चरित पुराणदोळ् लंकादहन वर्णनं एकादशाश्वासं ।

—एकादशाश्वास समाप्त—

---

सूर्यमंडल ऐसा प्रकाशमान हुआ मानो युद्धोन्मत्त लक्ष्मण के क्रोध से, विरोधी रावण को मारने पर उसका हृदय फटकर फैले रक्त से सुदर्शन चक्र निर्मित हुआ हो। १८७ —इस तरह सूर्योदय होने पर— बलभद्र राम विजय-प्रयाण के आवश्यक व्यवहार कर्मो, मंगल कार्यों को पूरा करके, जिन-पूजा-निमित्त उत्साह से आगे बढ़कर उसे पूराकर, मुख्य कार्य की ओर विशेष उत्सुक हुआ। १८८ कवि अभिनव पंप, जो परम जिनसमय और कमलों को शरत्काल के चंद्र के समान माने जानेवाले बालचंद्र मुनींद्र के पदनखों के चाँदनी प्रकाश से पवित्र एवं सरस्वती के कर्णभूषण के समान हैं, के रामचंद्र चरित पुराण का यह लंकादहन वर्णन—ग्यारहवां आश्वास है।

।। ग्यारहवाँ आश्वास समाप्त ।।

द्वादशाश्वास

श्रीगे नेलेयेनिप निज श-※ य्यागृहदिं स्नपन रत्नमंडप वेदी- ।
भागक्के पदतळंगळ्- ※ रागमनोलगिसे बंदनभिनवपंपं ॥ १ ॥

अंतु बंदु—

स्नपन पवित्रं शुचिव- ※ स्त्र पूत गात्रं प्रधान मंत्र विधाना-
द्युपचरिताचमनं पं ※ च परम गुरूगर्घ्यमेत्तिदं रघुरामं ॥ २ ॥

तदनंतरं महाप्रवासिनी सलिल संमिश्र कर्पूर दळ बहुळ कांतिदंतुरित चंद्रकांत कलशंगळिं सुरभि मलयरूहपंक पिंजरित रजत शुक्तिकेगळिं सजल धवळ कलमाक्षित क्षीर गौर पांडुरित कर्केतन करंडकंगळिं नवीन प्रसून मधु विलीन मधुकर पटलकर्बुरित रत्नपटलिकेगळिं सुपक्व भक्षोपदंश प्रचुर चरु विचित्रवर्ण शबलित सुवर्ण पर्यणंगळिंदुन्मुख मयूख माणिक्यदीप किरणारूणित मरकतमणि पुत्रिकेगळिं बहुळ कालागरूधूम श्यामलित कलाधौत धूप घटंगळिं क्षीरादिवसन पावन रस विचित्रानेक शातकुंभ कुंभंगिळिं गंधसलिल संभृत विशाल हरिनील भृंगारंगळिं निज प्रभापटल पल्लवित शोण मणिकलशगळिं स्पटिकमणि किरणजाल जटिलित मध्यरंगदिं संगीतक रस तरंगित बाहन रागदिं स्थूल

---

आश्वास—९

अपने शय्यागृह, जो ऐश्वर्य का आश्रय स्थान है, से धोकर शुद्ध किए हुए रत्न के समान अपने चरणों की कांति फैलाते हुए श्रीराम ने मंडपवेदिका में प्रवेश किया। १ —आकर— स्नान करके शुचिर्भूत होकर शुद्ध (स्वच्छ) कपड़े पहनकर पवित्रमंत्रों का पठन करते रहनेवाले श्रीराम ने पंच परमेष्टियों को अर्घ्य चढ़ाया। २ —तत्पश्चात् पवित्र और सुगंध द्रव्यों से मिश्रित जल से भरी चंद्रकांत शिलाके कलशों से, श्रीगंध, चंदन, मोतियों से परिशुद्ध श्वेत अक्षतों से, रत्नकलशों में भरे दूध से, मृदुमधुर नये पक्वफलों से, थालियों में भरे भक्षों से, रत्नदीपों के प्रकाश से, मरकतरत्न के खिलौनों से, धूप चंदन के धूम्रसे, दूध आदि यज्ञ योग्य द्रव्यों से भरे घड़ों से, सुगंधमिश्रित इंद्रनील आभूषणों से, स्पटिक मणियों की किरणों से संगीत रस व्याप्त वातावरण में, मोतियों की रंगोली सजाकर, मनको आनंद प्रदान करनेवाले देवालय में प्रविष्ट होकर, दर्शन-

मुक्ताफल मुकुलित विविधरंगवल्लिर्यि मनंगोळिप देव पूजागृहमं
पोक्कु दर्शन स्तवनमुखर मुखं यथाविधियिनभिषवमं तीर्चि—

सिरिकंडद कोळ्केसरोळ्
बेरसिद कत्तुरिय सारवणें बें ळगिद क- ।
प्पुरवळिकिन सोंडर्गळ् सुं-
दरमेंनें जिनपतियनवनिपति पूजिसिदं ॥ ३ ॥

सुरहोंन्नेय वासंतिय
सुरगिय चंपकद कर्णिकारद पोंदा-
वरेंय विचकिलद नसु बिरि
दर्रोलिदर्चिसिदनवनिपति जिनपतियं ॥ ४ ॥

चारू चरू निचयर्दि घन- ॐ सरागरू धूमलेखेंयि मलयज का-
श्मीर रसर्दि जिनेंद्रन ॐ नाराधिसिदं नरेंद्र चूडारत्नं ॥ ५ ॥

बाळेंय माविन कम्मर ॐ दोळेंय तनिवण्गळिंदमर्चिसिदं भू- ।
पाळं निर्भर भक्तिय ॐ जाळकमेंनें मेय्योळोगेंद रोमांचंगळ् ॥ ६ ॥

चरू मणिपर्यणक्कें बिडिमुत्तिन सेसेंगें धूप भाजन- ।
क्करुण मणिप्रदीपिकेंगें दिव्यफलक्कें नमेरू पुष्पमं- ॥
जरिगें सुगंध शुक्तिकेंगें पुण्य नदी जलपूर्णरत्नभा- ।
सुर कलशक्कें मेरें पवणिल्लेंनें पूजिसिदं रघूद्वहं ॥ ७ ॥

---

स्तुति के साथ अभिषेक कर— श्रीगंध मिश्रित कस्तूरी लेपन से, कर्पूर प्रकाश से सुशोभित जिनपति की पूजा अवनिपति श्रीराम ने की। ३ श्वेतकमल, वासंती, सुरंगी, चंपा, सुवर्णकमल आदि विकसित पुष्पों से जगत्पति श्रीराम ने जिनपति की पूजा की। ४ नैवेद्य से, धूप, चंदन के धूम्र से, श्रीगंध की सुगंधि से नरेंद्र चूड़ामणि श्रीराम ने जिनपति की आराधना की। ५ कदली फलों से, आमों से, नारंगी आदि फलों से जिनपति की पूजा करते करते जाग्रत भक्ति से श्रीराम ने रोमांच का अनुभव किया। ६ श्रीराम ने रत्न-थाल में अर्पित नैवेद्य से, मुक्तिमणियों के अभिषेक के साथ, धूप आरती से, अरुणिम प्रकाश से, दिव्य फलों से, सुगंध के आवरणों से, पवित्र नदियों के शुद्ध पानी से, रत्न प्रकाशित कलश से जिनपति की ऐसी आराधना की जिसकी तुलना नहीं की जा सकती। ७ समस्त प्रकार के प्रकाशों से, हर प्रकार की विचित्रमणियों से, सुशोभित ध्वजाओं से, सब तरह के आभरणों से श्रीराम ने जिनपति की पूजा की। ८

ऎनितॊळवातप वारण
वॆनितॊळवु विचित्र पल्लवांचित मणिके-
तनवॆनित्वॊळवाभरणम-
वनितरॊळं रघुतनूभवं पूजिसिदं ॥ ८ ॥

अरगुव धूम लता शा-
खॆगळॊळ् काय्दुरूगलॆंदु बगॆ बॆदरूविनं ।
मगमगिसुव तनिगंपि-
गगलदॆ मॊगसिदुवु मधुकर प्रकरंगळ् ॥ ९ ॥

मरकत कलशंगळ् के-* सरि पीठमनुद्गतांशु लेखा दूर्वा-
कुरदिंदर्चिसॆ मुक्ता- * भरणमुमर्चिसिदुवंशु जल धारॆगळिं ॥ १० ॥

अंतर्चिसि रामचंद्रं जिनेंद्रमुखचंद्र निरीक्षण हर्ष पुळकित सर्वांगनानंदबाष्प सलिल विलुलित विलोचनं निटिलतट घटित कुट्मलितांजलिपुटं विनमित शिरस्सरोजं गंधसलिल शेषाक्षत कुसुम शेखरं जिन चरण चंदन तिलक विलसित वदनारविंदनुच्चरित पुनर्दर्शन वाक्य माणिक्य कंठाभरणं जिनचरणमं बीळ्कॊंडु जिन पूजागृह पुरोभागद चौपळिगॆयॊळुत्तुंग मणिमयासनासीनं सुरभि कुसुम दाम सुगंधानुलेपन दिव्य वसन दिव्याभरण भूषितनप्पुदुं—

पूत नमेरू सुत्तिदळिमंडळियिं रजताद्रि नील जी- ।
मूत कदंबदिं सुरगजं मदवट्टॆयिनार दिट्टिगं ॥

---

फैलती हुई धूम्र-लता, शाखाओं में महकती हुई सुगंधि को डरते-डरते भ्रमरों ने घेर लिया। ९ मरकतमणि के कलशों का प्रकाश और आभरणों की कांति ने अपने प्रकाश से जिन द्वारा विराजित सिंहपीठ को ऐसा चमका दिया मानो अपने प्रकाश से अभिषेक-अर्चना की हो। १० —इस तरह विभिन्न प्रकार से पूजा करके, श्रीराम के जिन के मुखारविंद को निहारने के कारण उत्पन्न आनंद से पुलकित हो आनंदाश्रु की पुष्पांजलि चढ़ाकर अपने शीश के जिन के चरणारविंदों में रखकर अक्षत चंदनों को सिरमें धारणकर, गंभीर वाक्यों के आशिर्वचनों को स्वीकारकर, उनसे (चरणों से) विदा लेकर जिन मंदिर के सम्मुख स्थित राजमहल के ऊंचे रत्न सिंहासन में बैठकर दिव्य पुष्पों, दिव्य आभरणों एवं दिव्य सुगंध द्रव्यों से सुशोभित हुआ। —खिले सुरंगी पुष्पों को घेरे हुए भ्रमर-समूह-से,

प्रीतियनुंटुमाळ्पवोलदेनेंसेदिर्देनों देहदीप्ति चं-।
द्रातपमं पळंचलेये नील परिच्छदर्दि हलायुधं ।। ११ ।।

ऎरगिसि पंचरत्न रूचियिं सुरचापद चेल्वनळ्करि-।
देरगिसि नोळ्प नोटकर लोचन पुत्रिकेयं पेरर्गे ता- ।।
नेरगद पेर्मेयं तळेदुदेंदोडे बण्णिपरार् जिनेश्वरं-।
गेरगि महत्त्वमं तळेद राघव रत्नहटत्किरीटमं ।। १२ ।।

मरकत मणिकुंडल र- * श्मिरेखेयिं गंड मंडलं सेवाळं ।
बोरेद धवळाब्ज दळदं- * तिरे कण्गेसेदं नरेंद्र चूडारत्नं ।। १३ ।।
घणमय्दं पडेदं तन-*गेणेवडेदं शेषनुर्वियं ताळ्दनेनल् ।
मणिमुद्र फणमणि क-*ण्बोणरं तणिपिदुदु भुजयुगं रघुसुतना ।। १४ ।।

तरुण मृणाल गर्भ रूचिवेत्त रघूद्वह देहवीप्ति मं-।
जरियनुपाश्रयंबडेदु निस्तुल मौक्तिक हारयष्टि पे- ।।
रूरदोळदें विराजिसिदुदो जनता नयनोत्पलोत्सवं ।
शरदद सांद्र चंद्ररूचियोळ् तलेदोरुव तारकाळिवोल् ।। १५ ।।

---

रजताद्रि नीलाचल को घेरे हुए मेघ-समूह-से, दर्शकों के मन में प्रीति जगानेवाले मदोन्मत्त हाथी-से, वलभद्र अपनी नील छाया युक्त देहदीप्ति के कारण ज्योत्स्ना के समान दिखाई पड़ा। ११ पांच प्रकार की रत्न दीप्तियों से वढ़कर, इन्द्रधनुप के सौंदर्य को वड़े प्यार से नीचा दिखाकर, दर्शकों की आँखों की पुतली को झुकवाकर लेकिन जिनेश्वर की कृपा से स्वयं किसी के सम्मुख न झुककर श्रीराम रह रहा था। ऐसे में रामकी महिमा का वर्णन करने में कौन समर्थ है ? १२ मरकतमणि के कुंडलों की प्रभा से नरेंद्र चूड़ामणि श्रीराम की भुजाएं श्वेत कमलदल के समान दिखाई पड़ीं। १३ पांच फणों को पाकर अपने आपको असमान (अद्वितीय) समझकर, जिस तरह महाशेष पृथ्वी को धारण करता है उसी तरह रामने मणि, अंगूठी आदि आभूपणों से दर्शकों की दृष्टि-पुतली को तृप्त किया है। १४ सद्य विकसित कमल के सौंदर्य-सदृश देहकांतिवाला श्रीराम पुष्पमंजरी धारणकर विशाल वक्षस्थल में मौकितक हार पहनकर दर्शकों के कमल-नयनों को आनंद प्रदान कर रहा था। श्रीराम के वक्षस्थल पर वे हार ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो शरत्काल की चांदनी में चमकते हुए नक्षत्र समूह हों। १५ —तत्पश्चात् वहाँ से निकल गया। —चलने लगा तो उसके दोनों बगल में खेचर स्त्रियाँ चमर डुला रही थीं, उस पर धरा हुआ श्वेत छत्र इन्द्र-मंडल को धिक्कार रहा था, चरणतल की

अनंतरमल्लि तळर्दु—

च्मररूहंगळं तनगेरळ्केरदोळ् नडॆतंदु खेचर।
प्रमदेयरिक्के बेळ्गोडे सुधाकरनं कोरचाडे माडे रा- ॥
गमनेळेवेण्गे केसडिय केंपु तनुप्रभे बीरॆ चंद्रिका।
भ्रमेयनिळादिपं नडेदनोलग सालेगदोंदु लीलेयिं ॥ १६ ॥

अंतु बंदु तन्मध्य स्फटिक घटित वेदिका शिखंड मंडतमेनिप्प सिंहपीठदोळमोघ बाणनप्पुदात्तराघवनुमधिराज पार्श्व मणिमयासनदोळ् सागरावर्त धनुर्ज्यालता ताडन जनित किण कळांकांकित प्रकोष्ठनप्प लक्ष्मणनुमत्रिपुत्रनं बळसिद नक्षत्र मंडलदंते विविध मणिमंडल मरीचि नभोमंडलमनावरिसे सेनाप्रधानर् समुचितासनदोळ् सुग्रीवांगद नळ नील जांबव हनुमत्प्रमुख निखिल खचर परिवृढरूमिर्पुदुमा समयदोळ पुरोहितनुच्चरित स्वस्तिशब्दं देव दिग्विजय प्रयाण लग्नमत्यासन्नमेंदु बिन्नविसे सेनाप्रधानं नळं विजय दुंदुभियं पोय्सुवुदुं—

लंकाधीश्वर काळेगं निनगे लेसल्तेंतेनल् वासुदे- ।
वं कोल्वं प्रतिवासुदेवननिदें संदेहमे सीतेयं ॥
नीं कोट्टट्टु बदुकलाटिसुवोडेंबंतष्टदिग्भित्तियं ।
धींकिट्टित्तु रघुप्रवीर विजय प्रस्थान भेरीरवं ॥ १७ ॥

---

लालिमा और देहप्रभा मिलकर स्त्रियों में चाँदनी का भ्रम फैला रही थीं कि श्रीराम राजगांभीर्य से राजदरबार में प्रविष्ट हुआ। १६ —इस तरह आकर वहाँ की चंद्रकांत शिलाके ऊपर स्थित सिंहपीठ पर, दायें-बायें से सामंत राजाओं से आवृत्त होकर, सागरावर्त धनुष का झंकार सुनाने में समर्थ लक्ष्मण के साथ, नक्षत्रों से घेरे चंद्र के समान विविधरत्नों के प्रकाश आकाश मंडल को घेरा सा बैठ गया। सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जांबव, हनुमान आदि सेनापति अपने-अपने उचित आसन पर बैठ गये तो पुरोहित द्वारा उच्चरित स्वस्तिवाचन मानो कहने लगे— 'प्रभो, दिग्विजय-प्रयाण का समय आ गया है।' इसे सुनकर सेना प्रधान नल ने विजयदुंदुभि बजवायी —विजयदुंदुभि की ध्वनि आठों दिशाओं में प्रतिध्वनित होकर मानो कह रही थी; 'हे लंकेश्वर तेरे किए युद्ध उचित नहीं है क्योंकि वासुदेव निश्चित ही प्रतिवासुदेव (रावण) को मारनेवाला है। सीता को लौटाकर जीते रहो।' १७ विजय-यात्रा का भेरीनाद ऐसा गुंजरित हुआ

कुलशैलंगळ पद्मिनीकुलद देवीसंकुलं वेंचें पे- ।
ळ्पळिसुत्तुं देसेयाने विचें किवियं मार्तंड सप्ताश्व मं- ।।
डळि शंकाकुळितं पेडंमगुळे शक्रालिगनंगेय्ये सं- ।
चलिसुत्तुं शचि घूर्णिसित्तु विजय प्रस्थान भेरीरवं ।। १८ ।।

बलभद्रन निर्मल की-* ति लता कंदळमेनिष्प पन्नेरडुं मं- ।
गल शंखंगळ दनिगळ्*कुलगिरि कुंजदोळोर्डचिदुवु मार्दनियं ।। १९ ।।
भोरेने पोय्वुदुमारूं * भेरिगळं कनक कोण हतियिंदं बं- ।
भारवमें नेगेदुदो रघु * वीर जयश्री कलापिनी मेघ रवं ।। २० ।।

आ शुभमुहूर्तदोळ्—

सुरवल्लरिगळ् मुगुळं
सुरितर्पुवु रजत शिखरि शिखरदोळेने खे- ।
चरियर् मुत्तिन सेसेय
नरसंगिविकदरपांग माला सहितं ।। २१ ।।

दधि तिलक परस्सरमखि-
ळ धराधीशंगे नीडिदळ् मत्तोवळ् ।
विधुवदने दर स्मितमं
मधुकर झंकार मुखरमं वासिगमं ।। २२ ।।

आगळखिळ जयजय ध्वनिवेरसु कुलवृद्ध कुलांगनाजनदाशी-
र्वादमोदवे सिंहविष्टरदिनेळ्दु—

---

कि कुल-पर्वतों में स्थित पद्मिनी कुल की स्त्रियां भयभीत हो जायें, स्वयं दिग्गज भयभीत होकर अपने कानों को बंद कर ले, सूर्यमंडल शंका से पीछे हट जाय और शची देवी कांपकर इंद्र से लिपट जाय। १८ बलभद्र की निर्मल कीर्ति-लता के अंकुर रूपी बारह मंगल शंखों की ध्वनि कुल-गिरियों के शिखरों में प्रतिध्वनित होकर गूंज उठी। १९ छः भेरियों से निकलकर गुंजरित होनेवाली घोर ध्वनि ऐसा प्रतीत हुई मानो रघुवीर की विजय-श्री का गुणगान करनेवाले मेघ समूह की ध्वनि हो। २० —उस शुभ मुहूर्त में— खेचर स्त्रियों ने अपनी नयनकांति-माला के साथ मोतियों का सिंचन किया तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो आकाश से पुष्पवृष्टि हो रही हो। २१ और एक चंद्रमुखी खेचरी ने समस्त संसार के राजा का दधितिलक युक्त सेहरा बांध दिया (पहनाया)। २२ —तब समस्त कुलवृद्धों एवं कुलवधुओं ने जयजयकार करके आशीर्वाद दिया तो

इरदीडनेळ्द वियच्चर॰परिवृढर किरीट रत्नरुचिगळ गगनो-
दरमं चित्रिसे तळर्द ॰ निरंकुशं लक्ष्मणान्वितं रघुरामं ॥ २३ ॥
मंडळिसिदत्तु निज रुचि ॰मंडलमागसदोळेंबिनं बेळ्गोंडे क-
ण्गोंडु परिभविसिदुदु शशि॰ मंडळमं बंदु कंड बेळ्दावरेयं ॥ २४ ॥

पदिनारुं चमरजमं
पदिनरूवर् खचर कन्येयर् पूगुडिवे- ।
रिद जंगम लतेगळेनल्
विदिर्दिक्किदरोडने मदननंबिक्कुविनं ॥ २५ ॥

अेसेदुदु मंगलानक घनध्वनि मंगल पाठक स्वनं ।
पसरिसिदत्तु पूर्णकलशं गुडिवंदनमाले मुंदे सं- ॥
धिसिदुवु गायनी मधुर मंगळ गीत रवं मनक्के सं- ।
तसदोदवं निमिर्चिदुदु राघवदिग्विजय प्रयाणदोळ् ॥ २६ ॥

कलशकुचं कदक्कदिसे कोमलेयर् शशिकांत कांत मं- ।
गळ कलशंगळं तळेदु मंगल दर्पण पल्लवानकं- ॥
गळनुडेनूल नूपुरद मेल्लुलि कैमिगे पुण्य देवता ।
कुळमेने गाडिवेत्तु नडेदर् मनुवंश जय प्रयाणदोळ् ॥ २७ ॥

दुगुलद गुडिगळ बेंबिडि-
दु गाळि तण्पिडिदु तीडे कैसन्नेगळिं ।

---

राम सिंहासन से उठा । —उसके साथ उठे हुए खेचर राजाओं के मुकुटों की रत्नप्रभा आकाशमंडल में प्रतिबिंवित होने लगी तो राम भाई लक्ष्मण के साथ निकला । २३ चंद्रमंडल को देखकर जिस तरह श्वेत कमल कांतिहीन हो जाता है उसी तरह श्रीराम के तेज-पुंज के सम्मुख आकाश-मंडल कलाहीन हुआ । २४ सोलह खेचर-कन्याएं सोलह चामर लेकर पुष्प ध्वज पर चढ़ी चलायमान लताके समान चामर डुलाने लगीं । २५ मंगलध्वनि और मंगलदायक उच्चस्वर सर्वत्र फैल गये तो पूर्ण कलशों एवं तोरण ध्वजाओं से परिपूर्ण श्रीराम का विजय-प्रयाण जनमन में अतिरेख आनंद उमड़ने लगा । २६ रघुवीर के विजय-प्रयाण से मोहित हो चंद्रकांता शिला के कलशों को उठाकर चलने के कारण हिलते-से कलश-कुचवाली वनिताओं को देखकर ऐसा लगता था मानो मंगलमय दर्पणों को लेकर अपने पायलों को गुंजरित करती हुई चलनेवाली देवतास्त्रियों का समूह हो । २७ राम की दुकूल-ध्वजाओं के साथ बहनेवाली ठंडी हवा मानो

पगेवर् बेंगुडिमेंबं
तोंगेदुवू मनुवंश मंडनं नडेवेडेयोळ् ।। २८ ।।
अेरडेनेय सूर्यहासद ※ परिजंकैकोंडु लक्ष्मणं बलगोलदोळ् ।
बरे बंदं निज पांडुर※मरीचि कण्गोळिसे रोहिणी रमणनवोल् ।। २९ ।।
अंगद भुजशिखरद र-※ त्नांगदमं नख मयूख मालिकोंयि चे-
ल्विंगे नेलेोमाडि नुडिदं ※ जंगम ताराद्रियेंविनं वलभद्रं ।। ३० ।।

अंतु राजभवनमं पोरमट्टु पुरोभागक्के वंदु—

मुनिजनद बंधु जनदभि-※जनदवलाजनद परकेगळ् किवियं ते-।
क्कने तीवे रथमनेरिद※निनवंशजनेरे विजयवधु निजभुजमं ।। ३१ ।।

आ समयदोळ् नळ नील सुषेण प्रसन्नकीर्ति प्रमुख मुख्य नायकरं सेनामुखक्के पेळ्दु सुग्रीवांगद जांववद्गनपति भूतगति प्रभृतिगळं पश्चिम प्रदेशदोळ् नियमिसि तटिद्वक्त्र वज्रदंष्ट्र विराधित महेंद्रर् मोदलागे पलबरूमं वलववकदोळ् नडेयिमेंदु पेळ्दु सौमित्रि सकल विद्याधर नायकर्वेरसु तानुं हनुमनुं दाशरथिय रथोभय-पार्श्वदोळं रथारूढ़र मेय्गापागे नडेवुदुं—

नडेगोंडत्तु मदेभ दानजल धारासारदिं मारुतं ।
नडेगेट्टिपिनमुत्पताकेगळिनाकाशापगा वीचि नू- ।।

---

'शत्रुओं, पीछे हट जाओ' कहकर राम की विजय का संकेत दे रही थी। २८ द्वितीय चद्रहास को आकार धारणकर लक्ष्मण दाहिने वगल में आ खड़ा हुआ तो अपने पांडुर वर्ण के कारण वह रोहिणीरमण चंद्रके समान दिखाई पड़ा। २९ अपने भुजशिखर की भुजकीर्ति की रत्नप्रभा और नखकांति के कारण समस्त सौंदर्य-भंडार वनकर वलभद्र चला तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो चलायमान सुरगिरि हो। ३० —इस तरह राजभवन से निकलकर नगर के अग्रभाग में आ गये। —मुनि समूह के, बंधुजनों के, अभिमानियों के और स्त्री समूह के आग्रह राम के कानों को भर दिये। राम रथ में ऐसा सवार हुए मानों वह विजयश्री की भुजा में सवार हुए हो। ३१ —उस समय नल, नील, सुषेण, प्रसन्नकीर्ति आदि प्रमुख नायकों को सेना के आगे रहने का आदेश देकर, सुग्रीव, अंगद, जांबव, गगनपति, भूतगति, आदि को पश्चिम भागमें और तटित्वक्त्र, वज्रदंष्ट्र, विराधित, महेंद्र आदि को बायें वगल में नियुक्तकर मंदर, समीर, सिंहनाद, वराह आदि को बायें बगल में चलने का आदेश देकर

मर्डिसुत्तिर्पिनमस्त्रशस्त्र पटल प्रद्योतदिंदं पगल् ।
कडुकोर्व पर्डेदिर्पिनं रघुतनूजाखर्व चातुर्वलं ॥ ३२ ॥

करि तुरग रथ पदातिय
परि संख्येयनरियेनल्लि केतन पट सं- ।
चरणक्के नभं भट सं-
चरणक्के धरित्रि नेरेयदेंबिनरिवें ॥ ३३ ॥

निजतेजं पोरगागे सैरिपने रामस्वामियेंबंते नी- ।
रजमित्र प्रभेयं पळंचलेंदु सीतादेवियं कोंडु पो- ॥
द जगत्कंटक तेजमिर्द देसेयं पूळवंतु पत्तुंदिशा ।
वज्रमं पूळ्दु पोंदळ्दु कोर्व्वडेदत्तुत्तान सेनारजं ॥ ३४ ॥

तेणरूत्तु तळेमट्टु ताळ्दि धरेयं सेनाभराक्रांतदिं ।
फणिराजं नडुनेत्ति पोत्ति किडिविट्टंतिर्दुदागळ् फणा- ॥
मणि चक्रं विषवह्नि धूमपटलं निश्वास निर्यत्समी- ।
रणनिं पूरिसिदंतिरिर्दुदु फणा चक्रांकितं स्वस्तिकं ॥ ३५ ॥

अंतसंख्यात सेना समुद्रं दक्षिणसमुद्राभिमुखमागि नडेदु—

---

लक्ष्मण समस्त विद्याधर नायकों के साथ स्वयं और हनुमान राम के रथ के दोनों पार्श्व में खड़े होकर, रथियों को अंग रक्षकों-सा बनाकर आगे बढ़ने लगा। —रघुराम की चतुरंग सेना के चलते समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो मदमाते हाथियों के मदजल की धारा से पवन संचार रोक दिया गया हो; ऊँचाई पर उड़नेवाली ध्वजाओं से आकाश नदी की लहरें सौगुना बढ़ गयी हो; अस्त्र शस्त्रों के प्रकाश से सूर्य का तेजस ही बढ़ गया हो। ३२ चतुरंग सेना का हिसाब लगाना असाध्य कार्य है। इतना ही कहा जा सकता है कि रथ की ध्वजाओं के उड़ान के लिए आकाश और पैदल सेना के चलने से पृथ्वी कम पड़ रही है। ३३ अपने तेज (प्रकाश) को फैलाना श्रीराम को सहन नहीं होगा ऐसा सोचकर चाँद सीता का हरण करनेवाले जगद्कंठक रावण के निवास स्थान का संकेत देता-सा चला तो दशोदिशाओं में राम की सेना के चलने से आकाश धूल से भर गया। ३४ भूभार को ढोने से पहले से ही शेषनाग चटपटा रहा था। अब श्रीराम की सेना के मार से उसके मध्य-फण में चिनगारी लगायी-सी पीड़ा होने लगी। सेना के पदाघात से व्याप्त धूल ऐसी दिखाई पड़ी मानो शेषनाग के मुंह से प्रस्फुटित होनेवाली विषज्वालाएं धुएं का रूप धारणकर फैल रही हों। ३५ —इस तरह असंख्य सेना

वेलांध नग नितंबद ※ वेलांध पुरोपकंठमं सार्दुदु भू- ।
पाल स्कंधावारं ※ वेलावन वीधियिल्लदंभोनिधिवोल् ॥ ३६ ॥

आगळा पुराधिपति चतुरंग सेनासमन्वितं समुद्रवेंसर विद्याधरं मुंदे नडॆव नळन पडॆगॆ रणानुरागदिनड्डंबंदु निल्वुदुं—

भ्रकुटि ललाटदॊळ् तनगॆ तोरद मुन्नमिदिर्चिदन्य सै- ।
निकमनदिर्पॆ तन्न पराक्रम गर्वदुर्वु कौ- ॥
तुममॆनॆ कट्टिदं खचर नायकनप्प समुद्रनं भया- ।
नक समुद्रं नळनराति बलार्णव बाडवानळं ॥ ३७ ॥

अतिगंभीरननर्घ्यं रत्नकटिकाधारं महावाहिनी ।
पति लक्ष्मीनिलयं निसर्गविभु मर्यादापरं लोक वि- ॥
श्रुत सीमांतनव निर्मिचिद समुद्रं युद्धदॊळ बंधन ।
स्थितनादं तलॆविल्लॊळॆंदॊडॆ नळं गंडं पॆरर् गंडरे ॥ ३८ ॥

अंतातनं तंदु तनगॊप्पिसुवुदुं समुद्रंगभयमं कॊट्टु मन्निसॆ मरू दॆवसमातं तन्न सुतॆयरं सत्यश्री कमलॆ गुणमालॆ रत्नमालॆयॆंब नाल्वरं लक्ष्मणंगॆ कॊट्टु वैवाहिक संबंधदिं भृत्य पदमनप्पुकॆय्दु पूर्वपदमं पडॆदु मरू दॆवसमल्लिदॆ मेलॆत्ति नडॆवागळ्—

अडिगॆरगि सुवेळाचल ※ दॊडॆयं खचरं सुवेलनॆंबं तन्नु- ॥
ळ्ळॊडमॆयनित्तिरिविट्टिगॆ※नडॆदं रघुजन मार्बलक्कॆ मार्बलमुंटे ॥ ३९ ॥

---

दक्षिण समुद्र की ओर बढ़ने लगी। —वेलांध पर्वत के समीप स्थित वेलांधपुर के बाह्य प्रदेश में पहुंची हुई राम की सेना असीम समुद्र-सी दिखाई पड़ी। ३६ —तब उस पुर का समुद्र नामक अधिपति अपनी सेना के साथ आकर नल के सेनापतित्व में आगे बढ़नेवाली राम सेना को रोककर युद्ध के लिए तैयार हुआ। —समुद्र की त्योरी चढ़ने से पहले ही नल ने भिड़नेवाली शत्रु सेना को पराजितकर अपनी सेना एवं अपने शौर्य का ऐसा प्रदर्शन किया कि दर्शकों को कौतुक प्रतीत हो। उसने समुद्र और उसके सेनानायकों को बंधी बनाया। ३७ समुद्र जो गंभीर, अनर्घ्य, रत्नराशियों का आधार, अनेक नदियों का स्वामी, लक्ष्मी का आश्रयदाता, निसर्ग का प्रभु है, को नल ने केवल धनुष से बंधी बनाया तो स्पष्ट है कि नलसे बढ़कर वीर कौन हो सकता है? ३८ —समुद्र को लाकर राम के चरणों में डाल देने पर उसने समुद्र को अभयदान देकर क्षमा कर दिया। दूसरे दिन सत्यश्री, कमला, गुणमाला और रत्नमाला नामक अपनी चार कन्याओं का विवाह लक्ष्मण के साथ करा दिया और स्वयं राम का

अंतंदिन दिवसं सुवेलाचलादोळिर्दु मरुदेवसं लंकाद्वीपद समीपमप्प हंसद्वीपमनेय्दिदर्पुदुमा द्वीपाधिपति नभश्चरनसंख्यात बल समेतनागि तागुवुदुं—

अनुवरदोळ हंसद्वी * पनाथनं द्वीपि रथननंजिसि दंडो- ।
पनतंमाडिद यमदं * डनिभसादारळवों नळन बाहादंडं ।। ४० ।।

अंताद्वीपदोळ् बीडंबिट्टु लक्ष्मीधरं प्रभामंडलंगे बळियनट्टि पेरवुंद्वीपांतरद विद्याधराधिराजरनाज्ञाविधेयरंमाडुत्तुमिर्पिन- मित्तल्—

अरुणमणि प्रभा पटलदिंदरुणातपमं तगुळ्दु बि- ।
त्तरिसुव सिंहपीठदोळदेनेंसेदिर्दनो राहुमंडलं ।।
तरुण दिनेश मंडलमनादरिसिर्दवोलिंद्रनील भा- ।
सुरतर देहदीप्ति पुदियल्के दिशाननमं दशाननं ।। ४१ ।।

उरदिंदगलाद लक्ष्मिय
तरलेक्षण माले हारलते दनुजने पे- ।
रूरदोळ् सोगयिसिदुदु का
रिरूळोळ् तलेदोर्प तरळ तारावळिवोल् ।। ४२ ।।

---

सामंत बनकर अपना पूर्वाधिकार पाया । राम की सेना पुनः आगे बढ़ी तो— सुवेलाचल के खचर राजा सुवेल ने राम के चरणों में गिरकर, अपनी समस्त वस्तुओं की भेंट चढ़ायी और स्वयं सेवावृत्ति निमित्त राम सेना के साथ हो लिया । ३९ —एक दिन सुवेलाचल में बिताकर अगले दिन लंकाद्वीप के समीप स्थित हंसद्वीप पहुँचकर डेरा डाला तो उस द्वीपके अधिपति नभश्चर अपनी अपरिमित सेना के साथ आकर युद्ध के लिए तैयार हुआ । —हंसद्वीप के राजा को यमके कालदंड सदृश नल ने अपने बाहु दंड से ऐसा भयभीत कराया जैसे बाघ हिरण को भयभीत कराता है । ४० —उस द्वीप में डेरा डालकर प्रभामंडल के पास समाचार भेजकर, कई द्वीपांतरके विद्याधरों को अपनी आज्ञा के अंतर्गत समेटकर श्रीराम रह रहा था कि इधर— रत्नसिंहासन पर प्रभात की अरुण प्रभा के पड़ने पर उसपर बैठा हुआ दशानन ऐसा सुशोभित दिखाई दे रहा था मानो नीलरत्नों की कांति को समस्त दिशाओं में फैलाता हुआ राहुमंडल वालसूर्य का आदर करता हो । ४१ वक्षस्थल से भी चौड़ी लक्ष्मीमाला और अन्य हार रावण के विशाल वक्षस्थल पर वैसे ही सुशोभित हो रही थीं जैसे काली रात में चमकनेवाला नक्षत्र समूह । ४२ उसकी

अंगद मणिभूषण किर-
णंगळ् जगदोळगणरसुगळ जयवधुवं ।
पिंगदे निलेकट्टुव पा-
शंगळिवेंने भुजदोळें मनंगोळिसिदुवो ।। ४३ ।।
अवतंस पारिजाता * सवमं सविदाडि पाडुवळिगळ निनदं ।
सविवडेयें सैरिसं चम*रविक्कुववलेयर पिडुगंकणदुलियं ।। ४४ ।।
तनुजरूमनुजरूमुचिता-
सनदोळ् मंत्रिगळुमिरे विलासदिनिर्द ।
दनुजाधीशं प्रत्यं-
त नगं वळसिर्द नीलकुत्कीलदवोल् ।। ४५ ।।
जनकसुते मनदोळिरे परि-
जनमिरे नियत प्रदेशदोळ् विरहोद्यी- ।
पनमं मरेयिसि दनुजें-
द्रनिद्रनिर्पतिरोलगंगोट्टिर्द ।। ४६ ।।

अंतिर्पुदुं—
चरनोर्व बंदु वसुं-*धरेयोळ् मेय्यिक्कि जयजय ध्वनि पोण्मु- ।
त्तिरे निंदु निटिल तटगत-* कर कुट्मलनागळसुर पतिगिंतेंदं ।। ४७ ।।
भुवनदोळिन्नेगं मरेदु कंडरियें दनुजेंद्र देव दा- ।
नव खचराधिनायकरोळाहवदोळ् निनगुकि सोंकि मी-।।

---

भुजाओं में भुजकीर्ति की रत्न किरणें उसी तरह शोभा दे रही थीं जैसे संसार भरके राजाओं की जयश्री को बांध देनेवाली रस्सी। ४३ कर्णाभरण के पारिजात की मधुरता का पानकर गुनगुनानेवाले भ्रमरों के निनाद्र कानों में इतने मधुर लग रहे थे कि चामर डुलानेवाली खचर स्त्रियों के कंकणों की झनकार को वह सहन न कर सका। ४४ उसके बच्चे, सहोदर, मंत्रीगण उचित आसनों पर बैठे तो उनके बीचमें रावण वैसा ही दिखाई दे रहा था जैसे समीप के पर्वतों से आवृत्त नीलाचल पर्वत। ४५ परिजन यथास्थान रह रहे थे और दनुजेंद्र सीता के स्मरण के उस विरह ताप को छिपाकर राजदरबार में उपस्थित था। ४६ —ऐसे में— एक गुप्तचर वहाँ आया; साष्टांग नमस्कार करने के पश्चात जयजयकार करके, हाथ जोड़कर असुरपति से वह यूं बोला। ४७ "पृथ्वी में आज तक आपसे बढ़कर या आपसे भिड़ने का साहस रखनेवाले किसी देवता, मानव, दानव, खेचर को मैं नहीं जानता था लेकिन अब

रूव तलेंदोरूवुद्दतरनीगळिदच्चरि कंडेनां महो- ।
त्सवदोळे बंदपर् मनुजराहव केळिगे रामलक्ष्मणर् ।। ४८ ।।

बलानारायणरं नेरंबडेदु निम्मोळ् कादुवुद्योगदिं ।
पलवुंद्वीपद खेचरर् नेरेंदु हंसद्वीपदोळ् बिट्टु मुं- ।।
कलहक्कल्लद नम्म नोल्लदवरेल्लरं तम्मोळोंदादरा ।
कलिगळ् दानव चक्रवर्ति निजदोर्दंडंबरं गंडरे ।। ४९ ।।

अेंदु बिन्नविसिद चरन वचनमनवधरिसि बीरसिरिय बेळ्वसदनद बेळगिनंते दंतकांति पसरिसे मंदस्मित मुखं विद्याधरवीर प्रमुखनप्प दशमुखनिंतेंदं—

तंदे सीतेयनां पराभवमनेन्नोळ् कादिनीगल् मनं ।
दंदेकाकिगळेत्ति बर्परवरोळ् संधानमं माडि मु- ।।
न्नेंदु कप्पमनित्तु बाळ्व खचरर् कैवारदिं कादिसल् ।
बंदप्पर् परहस्तदिं मोळनिडल् बर्पंते काळाहियं ।। ५० ।।

मृगराजं गर्जिपुदं ॐ नगदोळ् मार्दनिगळुण्मवंतोडनोडनि- ।
दगि मेघवाहनादिग-ॐ ळगुर्वु पर्वुविनमसुरनेंदुदनेंदर् ।। ५१ ।।

अंतवर् नर्म सचिवरंतिच्छेयं प्रतिपालिसि नुडिवुदुमदं केळ्दु

---

उसी आश्चर्य को देख आया हूँ। मानव राम लक्ष्मण आपसे युद्ध करने आये हुए हैं। ४८ वलभद्र नारायण की सहायता पाकर, अनेक द्वीपों के खेचर मिलकर आपसे लड़ने आये हैं और हंसद्वीप में डेरा डाले हुए हैं। जिनका हमसे नही बनता था, एक हो गये हैं। क्या वे वीर दानव चक्रवर्ती की शक्ति से टक्कर लेने का साहस रखते हैं?"। ४९ —गुप्तचर के इस निवेदन को सुनकर, दंतकांति को विजयवधु के आभरणों के प्रकाश-सा फैलाकर, मंदमंद मुस्कराता हुआ दशमुख यूँ वोला— "सीता को मैं ले आया। मुझसे उस पराजय का बदला लेने के उद्देश्य से आये हुए राम-लक्ष्मण से दोस्ती करके, लगान देकर जीनेवाले खेचर अपनी सहायता से उन्हें विजयी बनाने आये हैं। यह तो ऐसा ही हुआ न जैसे कृष्णसर्प को अन्यों के हाथो नचाना!"। ५० इसे सुनकर "मृगराज सिंह की गर्जना पर्वत शिखरों में प्रतिध्वनित नहीं होगी। इंदगी, मेघवाहन आदि के शौर्याधिक्य के रहते हुए हमें भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं" ऐसा कहकर अन्यों ने रावण के विचार का अनुमोदन किया। ५१ —इस तरह सब प्रमुख रावण के विचार का समर्थन करने

नय विद्याविनय विभूपणनप्प विभीपणं विन्नपमनवधारिसु-
वुदेंदितेंदं—

इच्छा प्रतिपालनमं * तुच्छं नुडिगुं विवेकि पोल्लमेंगंडे ।
नाच्छादिक्षुगुमें कार्य प-* रिच्छेदमनुभय लोकहितं नुडिगुं ।। ५२ ।।

अशुचि लोभि शुचि लोभमिल्लदं-
विशद शौच गुणमोंदे कारणं ।
कुशलवृत्तिगेने भूभुजं गुणा-
तिशय सूरि शुचियागदिर्पने ।। ५३ ।।

बगे देसेबिद्दं परिवुदु * वगेयं वगेदंते परियलीयदे पिरियं ।
तेगेवुदु पळिपोर्ददव-* ट्टेगे निजदिदार वगेगळुं नेरिदुवे ।। ५४ ।।

अविरुद्धमिदेंबिनमनु* भविसुवुदिद्रिय सुखंगळं मरेदुं मी- ।
रवु तन्ननवेंबन्नेग * मवनीश्वरनप्पुकेय्वुदिद्रिय जयमं ।। ५५ ।।

जडधारे सोंके सिरिग-*न्नडिगे कलुंवेरूवंते सिरियोडेयंगें ।
पडेमातो पर कलत्रद * तोडर्पिनि कर्पुगोळ्ळदिर्पुदे तजं ।। ५६ ।।

---

लगे तो नम्र, विनयी, विद्वान विभीषण ने निवेदन किया कि उसकी विनती सुनी जाय —"अल्प (तुच्छ) व्यक्ति अन्यों की इच्छा की कदर करते हैं; विवेकी जन अन्याय को पहचानकर उससे होनेवाले परिणाम का अंदाज लगाकर लोकहित की सलाह देते हैं । ५२ गंदे लोगों और लोभियों में तथा निर्मल चित्तवालों और निर्लोभियों में अंतर केवल शुचित्व का महत्व है । राजा में गुणातिशय और शुद्ध मन का होना आवश्यक है । ५३ पागल (चंचल) मन सर्वत्र दौड़धूप करता है । उसे ऐसा भड़कने से रोककर अपने नियंत्रण में रखकर उचित मार्ग में चलाना चाहिए । ऐसा करने से ही मनुष्य अपकीर्ति से वचकर कीर्तिशाली वनता है । ५४ राजा को चाहिए कि कदम उठाने से पहले यह निश्चय करले कि उसके कदम धर्म विरोधी नहीं हैं और उसे इस बात की दृढ़ता होनी चाहिए कि इन्द्रिय सुख उसे सत्मार्ग से पथभ्रष्ट नहीं कर सकता—अर्थात इन्द्रिय-सुख पर राजा का नियंत्रण होना चाहिए । ५५ जलविंदु के स्पर्श से जिस तरह दर्पण जंग पकड़ता है उसी तरह परस्त्री की चिंता के स्पर्श से, चाहे वह कितना ही महान, (धनवान, वलवान) क्यों न हो, उस पर कलंक लगे बिना नहीं रह सकता । ५६ बुरे स्वभावों को न त्यागनेवाला राजा, कलंक को दूर न करनेवाला चांद, बडवाग्नि को शांत न करनेवाला समुद्र सचमुच वड़े आलसी हैं । ५७ विवाहित धर्म-

समनिसॆ दुश्चरितं बिड-॥द महीपालं कळंकमं कळॆयद चं- ।
द्रमनं बडवाग्नियनुप-॥शमिसद लवणांबुराशियं जडरक्कं ॥ ५७ ॥

कुल कांता संतोषं ॥ कुलवर्दन हेतु परवधू संतोषं ।
कुलनाश हेतुवॆंबिदु ॥ हलधर गोपाल बालक प्रख्यातं ॥ ५८ ॥

वधमुं बंधनमुं पराभवमुमंगच्छेदमुं पॊर्दुगुं ।
विधु विख्याति कलुंबुगॊळ्गुमपवादालोच्च नादं दिशा- ॥
वधियं दांटुगुमन्य जन्मदॊळमक्कुं दुर्गति क्लेशमॆं- ।
दधिराजर् कॆलरालिसर् मरॆदुमन्य प्रेयसीवार्तॆयं ॥ ५९ ॥

यमपाशं पगॆवंगॆ कल्पलतॆ कैयांतंगॆनल् चंड वि- ।
क्रममं चागद पॆमॆ्यं मॆरॆयदन्यस्त्री कचाकर्षण ॥
श्रम संभोग विळासमं मॆरॆव बाह्यासंगदिं पिंगदि- ।
र्कुमॆ वीरांगनॆ कड्डॆ तॊळ्विसुगॆयॊळ् मॆळ्पट्टु निल्वन्नळे ॥ ६० ॥

पूविनॊळं पोर्कुळि नम-॥ गेवुदी युद्धं प्रधान पुरुष क्षयमॆं- ।
बी वचनमं विचारिपु ॥ दीवुदु जानकियनुळिवुदसदाग्रहमं ॥ ६१ ॥

परिजनमुमाप्त जनमुं ॥ पुरमुं बांधवरूमगलदॊंदडॆयॊळ् सै- ।
तिरलक्कुं जानकियं ॥ परिहरिसिदॊडल्लदंदिरल् बंदपुदे ॥ ६२ ॥

---

पत्नी को संतोष प्रदान करना कुलाभिवृद्धि के लिए आवश्यक है। पर-स्त्रियों से संतोष पाने का प्रयास कुल-नाश के लिए कारण बनता है। यह बात राजा से लेकर हलधर, गोपालकों तक लागू होती है। ५८ परस्त्रियों को चाहने पर मरण, बंधन, पराजय, अंगभंग आदि भोगना पड़ता है; निर्मल कीर्तिपर कलंक लगता है; आपकीर्तिकी ध्वनि दिगंतों तक फैलती है; इस जन्म को पारकर अगले जन्म में भी दुर्गति और विपत्ति का पात्र बनता है। अतः राजाओं को चाहिए कि भूलकर भी इस तरह के दुर्गुणों के प्रति प्रवृत्त न हों। ५९ शत्रुको यमपाश बन-कर और शरणागत की इच्छापूर्ति कराने योग्य शौर्य और औदार्य दिखाना छोड़कर परस्त्री की केशराशि के प्रति आकर्षित होकर, संभोग चाहकर, बाह्य सुख के प्रति पराजित होनेवाले को न त्यागकर ऐसे भोगी राजाओं की भुजाओं में निवास करने के लिए जयवधु इतनी दुष्टा थोड़ी ही है ? । ६० हम जैसे शूरों को फूल से लड़ना शोभा देता है ? कम से कम इतना तो याद रहे कि युद्ध मुख्यतया पुरुषों के नाश के निमित्त है। जानकी को राम के चरणों में लौटाकर अपने दुराग्रह को त्याग दो। ६१ परिजन, बंधुजन, नगर, आप्तजन सबके सब एक साथ सुख-संतोष से

अँदु नुडियलॊडमिदगि विप तरु प्रसवदंतॆ दंतकांति पसरिसॆ विभीषण सुभाषित दूषणपर्रनितॆंदं—

वनितारत्नमयत्नसाध्यमॆनॆ कैसार्दत्तु सैपिददं ।
मनुंजगीवुदु मंत्रमीयदॊडपायं सार्गुमॆवीनयं ॥
मनदॊळ मच्चरिपंगॆ तोर्कुमुळिदंगॆं तोर्कुमे युद्ध सा- ।
ध्यनॆ विद्याधरसिद्ध किन्नर चमूविद्रावणं रावणं ॥ ६३ ॥

बगॆयं शंका तमं तळ्तिरॆ नळिसलवं काण्बुदॆं मॊग्गॆ नीर्गा- ।
दिगॆ मुन्नीरकोटॆ विद्यात्मकवसुरवलं कापिनाळ् तोळवलिप ॥
नॆगळ्दा ताराद्रियं चालिसिद दशमुखं मुख्यनॆंदंदु लंका ।
नगरक्कातंकमक्कुं मनुजवलदिनी कज्जमं नीनॆ काण्बै ॥ ६४ ॥

परचक्रं चक्रमं मीरुवुदॆ रिपुवलं चंद्रहासासियं भी- ।
करमं मारांपुदे मार्पडॆगॆ पडॆयलातंकमं नम्म विद्या- ॥
धर सैन्यं सालदे कॆम्मनॆ भयरसमं ताळ्दुवै लक्ष्मणं सं- ।
गरदॊळ पौलस्त्यनं गॆळ्पनॆ रणरसोत्कंठनं दुग्ध कंठं ॥ ६५ ॥

---

जीवन बिता सकते हैं । जानकी को नहीं लौटाओगे तो ऐसा सुयोग कभी नहीं आ सकता ।" ६२ —विभीषण के ऐसा कहने पर, विष भरे पेड़ से जन्मा-सा, अपनी दंतकांति को फैलाता हुआ, विभीषण के हितवाक्यों की आलोचना करना ही मुख्य उद्देश्य-सा इन्दगी यूँ बोला— "सीता जो संसार की स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ है, पुण्य-सा अनायास मिली है । उसे राम को लौटा देने अन्यथा खतरे का डर दिखाने के इस उपदेश से इसके (विभीषण के) मनमें निहित डर को अभिव्यक्त करता है । विद्याधर, सिद्ध, किन्नरों की छाती को कंपा देनेवाला रावण युद्ध में सामान्य है ? । ६३ जब भयरूपी अंधकार छाया हो तब वास्तविक स्थिति किसे मालूम होती है ? लंका को घेरे हुए कंदक, समुद्र, दुर्ग, विद्या प्राकार, राक्षस बल की रक्षा और ताराचल को हिलाने की शक्ति रखनेवाला प्रबल पराक्रमी रावण के रहते हुए भी 'मनुष्यों से लंकाको हानि पहुँचेगी' ऐसा कहनेवाले अविवेकी की बातों के महत्व को तुम (रावण) ही समझ सकते हो । ६४ अन्य बल (शत्रुबल) आकर चक्ररत्न से प्रबल बनेगा ? शत्रु पक्ष चंद्रहास का सामना कर सकता है ? शत्रुदल को पराजित करने के लिए हमारे विद्याधर बल पर्याप्त नहीं है ? व्यर्थ ही भयग्रस्त होना हमें शोभा देता है ? रिपु भयंकर रावण को लक्ष्मण पराजित कर सकता है ?" ६५ —ऐसा प्रश्न करने पर क्रुद्ध होकर विभीषण बोला—

अेंबुदुं विभीषणं मुळिसं मोगवक्के तंदितेंदं—

अयशक्कंजदे नीं तं-* देय राज्यक्कळिपि कलहमंबल्लिदरोळ् ।
बयसुवे गाविल रणभू* मियोळारूमनुळियलीगुमे रामशरं ।। ६६ ।।
तंदने सीतेयनळिवं * तंदं लंकापुरक्के तनगं नमगं ।
तंदं तविलं नम्मर- * सदेसेयं पुदियें दुर्यशः पटह रवं ।। ६७ ।।
वट्टंदेत्तुदु वेळ्ळिय * बेट्टं बिण्येंगेनिप्प कोटिक शिलेयं ।
बट्टाडिद बाहाबल * विट्टळवेंटनेय केशवंगिदिरूंटे ।। ६८ ।।

करवाळ् साधनमाय्तु साधिसदे सैपिं सूर्यहासं धनु- ।
श्शर जालं नेरमार्गे संहरिसिदं सेनान्वितं युद्धदोळ् ।।
खरनं दूषणनं प्रसिद्धरखिळ द्वीपाधिपर् खेचरर् ।
नेरेंदाळोळिगे वंदरार्गमधिकं सौमित्रि सामर्थ्यदोळ् ।। ६९ ।।

संधियनुंटुमाडुवुदु सीतेयनीवुदु रामलक्ष्मणर् ।
बांधवरप्पुदं बगेवुदेळिसुवंतवगारूमें सम- ।।
स्कंधरे युद्धदोळ् रणामनर्थकमेंतेने कादिदंदु नि- ।
ल्कुं धरे निल्विनं पळि जयापजयंगळोळं दशानना ।। ७० ।।

---

"अपकीर्ति से न डरकर तुम पिता का राज्य चाहकर बलवानों से युद्ध चाह रहे हो। अरे मूर्ख, युद्धभूमि में राम-बाण किसे बचने देंगे? ६६ रावण सीता को नहीं ले आया अपितु लंकानगर में सर्वनाश को ही ले आया है। स्वयं और साथ ही दूसरों के लिए भी पराजय ले आया है। इससे प्राप्त अपकीर्ति दशोदिशाओं में फैलेगी। ६७ आठवें केशव के भार से रजत पर्वत दबकर सपाट हुआ है। जिस आठवें केशव ने सिद्धशैल को उठाया है उसके बाहुबल की बराबरी कौन करेगा? ६८ सौमित्र जिसने खड्ग रूपी अपने हाथ से ही विजय प्राप्त किया; पुण्यबल से अनायास ही सूर्यहास को प्राप्त किया; असंख्य सेना के साथ आये हुए खरदूषण का अकेले ही संहार किया और शक्ति से खेचर द्वीप के समस्त अधिपतियों को अपने पक्ष में मिला लिया उसकी शक्ति से कौन भिड़ेगा? ६९ समझौता करके, सीता को लौटाने में ही औचित्य है। राम-लक्ष्मण के साथ होनेवाले बांधव्य का स्मरण करना ही सूक्त है। युद्ध में उनका सामना कौन कर सकता है? युद्ध अनर्थकारक सिद्ध होगा। युद्ध में हमारी विजय हो या पराजय, हम पर सदा-सदा के लिए कलंक लगनेवाला है। ७० राम की सेना समुद्र पार करने से पूर्व ही, रामबाण प्रलयकाल के यमके समान लंका-

मुं कोट्टट्टुवुदुत्तमं रिपुबलं वाराशियं दांटद- ।
न्नं कल्पांत कृतांतदूत सदृशंगळ् राम रौद्रेषुगळ् ।।
लंकाद्वार कवाटमं मुरियदन्नं लक्ष्मण ज्यालता- ।
टंकारं किविगेय्ददन्नमखिल प्रख्यातेयं सीतेयं ।। ७१ ।।

अंबुदमा नुडिगे कार्मुगिल मोळगिगे मसुगुव पंचानन दंते दशाननं देसेदेसेगे मसगि—

ओरेयिदमुर्चे मिंचं * करेयुत्तुमगुर्वु पर्वे विलयांबुददिं ।
पोरमट्ट सिडिल मसकम* नुरेविडिदत्तु चंद्रहास कृपाणं ।। ७२ ।।

आगळ् विभीषणं वज्रमय घन गदादंडमं कोंडदिरादिदिरोळिर्पुदुं कुलवृद्धरेडेवोक्कु नुडिवुदुं कोपमनुपसंहरिसिमंदस्मित मुखं दशमुखनितेंदं—

अेनगं बल्लाळ् गंड मानवनभिमतमं केळलादत्तवंगा- ।
ळ्तनमं पूण्देन्नोळं दायिगतनमनिवं तोर्के दोर्दंड कंडू ।।
यनमं चंडासि संघट्ट दिनोगेवुरियिं मळ्गिपें मूरु कण्णा-।
तनुमेन्नंमीरि मारांतोडे पडेयदे संत्रासमं चंद्रहासं ।। ७३ ।।

चपलं मेळद पंदे बेर्चेदिदिरोळ् माताडे कोपं पोद- ।
ळ्दपवादं परेवंतु गोत्र वधमक्कुं लंकेयिदीतनं ।।

---

नगर के द्वार को तोड़ने से पहले ही, लक्ष्मण के धनुष की टंकार हमारे कानों से ठकराने से पहले सीता को लौटा देने में ही भलाई है।" ७१ —ऐसा कहने पर रावण आग बबूला हुआ और घनगर्जना की भयानक ध्वनि से क्रुद्ध सिंह की भांति गरजकर— म्यान से चंद्रहास बाहर खींचा तो उसकी कांति प्रलयकाल के बादल की घर्षण से उत्पन्न बिजली की चमक को धिक्कार रही थी। ७२ —तब विभीषण निडर होकर अपने वज्रमय गदादंड को (चंद्रहास के) सम्मुख रखा। कुलवृद्धों ने बीच बचाव किया और विवेक की बातें की तो रावण का क्रोध उतर गया और उसने मंदस्मित मुखी होकर यूँ कहा— "राम जैसे सामान्य मानव के बारे में पूछने पर भाई ही बता रहा है कि वह (शत्रु) मुझसे बलशाली है और इस तरह का (विपरीत) उपदेश दे रहा है। युद्धभूमि में मुझसे भिड़नेवाले राम को मैं अपने खड्ग के आघात से पराजित करूंगा। राम ही क्या त्रिनेत्रवाले शिवजी को भी मेरा चंद्रहास पराजितकर देगा। ७३ यह तो पूर्वापर से अनभिज्ञ डरपोक है। अब मेरे सम्मुख इस तरह बात करेगा तो मेरे हाथों अनुजका वध होगा-। इसलिए

विपरीतात्मननीगळितें कळेयिं शंकाकुल बातें या- ।
दपने संगर केळिगिदों डुपदेशगेय्दपं भीतियं ।। ७४ ।।

ऎनलॊडमशनिवेग चपलावेग संहारक विद्युत्प्रमुख सामंत सहितं मूवत्तक्षौहिणी बलंबेरसु—

उरिकॊळलिर्दं सानु वनदिं मद सिंधुर यूथ नाथनो- ।
सरिसुव माळ्केयिं दशरथात्मजरिं किडलिर्द लंकॆयिं- ।।
दिरदें विभीषणं तॊलगिर्दं खचरान्वय राजलक्ष्मियं ।
धरियिसलिर्दं पुण्यनिधियं सुकृतं तॊलगिक्कदिर्कु मे ।। ७५ ।।

दनुजेंद्रगें मृगेंद्रपीठमें मिगिल् सामर्थ्यदिं लक्ष्मियिं ।
तनगारुं मिगिलिल्लदं बगेदने सद्वृत्तमं बिट्टॊड- ।।
ण्णनुमं बिट्टु विभीषणं तॊलगिदं पोतक्कुदुद्वृत्तन- ।
प्पन संसर्गदिनप्प संपदमुमं सद्वृत्तरेगेय्वरो ।। ७६ ।।

अंतु विभीषणं लंकाद्वीवमं पॊरमट्टु हंसद्वीपसमीपक्कॆ वंदु निज महत्तरनं मुंदट्टुवुदुमातं पोगि प्रतीहार पुरस्सरं राजभवनमं पॊक्कु दूरावनत मस्तकं सर्वांग प्रणतनागि निटिल तट घटित कर किसलयद मेलें दंतकांति पसरिसॆ देव बिन्नपमनवधारिसुवुदेंदितेंदं—

---

विपरीत सलाह देनेवाले इस विभीषण को तुरंत लंका से बाहर निकाला जाय । जो डरता है वह युद्ध क्या करेगा ? डर के मारे ही यह उपदेश दे रहा है ।" ७४ —ऐसा कहने पर अशनिवेग, चपलावेग, विद्युत्प्रमुख नामक सामंतों एवं तीस अक्षौहिणी सेना के साथ मिलकर— लंका, जो दशरथ के पुत्रों के हाथों नामावशेष होने जा रहा था, को विभीषण ने उसी तरह त्याग दिया जिस तरह वन में आग लगने का सकेत पाकर मदमाता गजराज (तुरंत) त्याग देता है । खेचरवंश की राज्यलक्ष्मी का पालन करनेवाली पुण्यनिधि को पुण्य वहाँ रहने कैसे देगा ? । ७५ विभीषण ने इस विचार से लंका को त्याग दिया कि रावण समझ रहा है कि उसकी शक्ति ही श्रेष्ठ है, उसका ऐश्वर्य अद्वितीय है, और जिस सिंहासन पर बैठा है वही सर्वश्रेष्ठ है । ७६ —इस तरह लंकाद्वीप से निकलकर विभीषण हंसद्वीप के पास आया और अपने मंत्री को राम के पास भेजा । मंत्री ने राजभवन में प्रविष्ट होकर, दूर खड़ा होकर सिर झुकाकर साष्टांग नमस्कार किया । राम के मंदमुस्कान की कांति प्रस्फुटित होने पर अपने निवेदन को ध्यान से सुनने का आग्रह करते हुए यूँ बोला— "अहंकार से मदमाता रावण हित-वचन कहनेवाले अपने अनुज की अन-

मदमदिरा प्रमत्तहृदयं हितमं तनगोल्दु पेळ्वे के- ।
ळदे विपरीतमं बगेदु बग्गिसे रावणनी दुरात्मनोळ् ॥
पुदुवेमगेबुदेंदु वरूतिर्देपनल्ते शरण्बुगल् भव- ।
त्पद नख वज्र पंजरमनाजि विभीषणना विभीषणं ॥ ७७ ॥

ऎंदु मत्तं दशमुखन मुखरतेयुमनुद्वृत्ततेयुमं नेरेये विन्नविसि माण्बुदुमतिक्रांत प्रमुख मंत्रिमुख्यरेंदरिवगेडवुट्टिदरागियुमति- स्नेहितरप्पर् पुसि जगळमं पोणर्चि नमगुपायदिनपायमं वगेदु बंदप्परिदं देवरवधारिसुबुदेंते—

दनुजरपायमं बगेवरेंतेनगा दशकंठनुं रण- ।
क्केनगिदिरागलळ्कि जनकात्मजेयं कपट प्रपंचमं ॥
जनियिसिकोंडु पोदनेने कॆम्मने बेचुवुदे शरण्गेवं- ।
दनोळभय प्रदानमनोडर्चुवुदेवुदिदर्के मंतणं ॥ ७८ ॥

ऎरेदर्गीयदे मारां * तरनिक्कदे मरेगेवंदरं कायदे बा- ।
ळवरमगन बाहुदंडं* निरर्थकं व्यर्थभवन पार्थिव जन्मं ॥ ७९ ॥

ऎंबुदुमंजनासुतं जनप्रवाददोळमिवर विप्रतिपत्तियं केळ्देव- दल्लदेयुं विभीषणं गुणाधिकनेंबुदु जगत्प्रसिद्धमातनेनगस्मज्जननि

सुनी करके, वंधु-वैरी ठहराकर, अपमान करके अपने राज्य लंका से बाहर निकाल दिया है। वह विभीषण आपका शरणागत होकर आपके वज्रपिंजरे के आश्रय की अपेक्षा से यहां आ रहा है।" ७७ —ऐसा कहकर रावण की धृष्टता एवं अहंभाव का सविस्तार वर्णन करके चुप हुआ तो अतिक्रांत आदि मंत्री-प्रमुखों ने निवेदन किया कि वह (विभीषण) भाई-भाई के दिखावा-झगड़े का बहाना वनाकर हममें विश्वास जगाकर, हमें उपाय से ठगने आया होगा अतः बहुत सोच समझकर कदम उठाना चाहिए। इसे सुनकर श्रीराम बोला— "यह सच है कि राक्षस धोखा-देही होते हैं। उस रावण ने मेरी शक्ति से डरकर धोखे से सीता का अपहरण किया लेकिन उस दुर्घटना को स्मरण करके अब जो शरण में आये हुए को अभयदान देकर रक्षा न करना धर्म नहीं है। इसका निवारण क्या है? । ७८ मांगन को न देकर, शत्रुओं से न लड़कर, शरणागतों की रक्षा न करके जीनेवाले राजा का भुजबल व्यर्थ है, उसका क्षात्र जन्म निरर्थक है।" ७९ —राम के वचन को सुनकर हनुमान बोला— "लोगों से उसके बारे में हम सुन चुके हैं। इसके अतिरिक्त विभीषण के गुण संसार भर में प्रख्यात है ही। उसी ने लंका में सीता

सीतादेवियिर्देडेयं पेळ्देन्नं मन्त्रिसि कळिपिदनेनें रघुकुलांबरद्युमणि विभीषण महत्तरनं तुष्टिदान पुरस्सरं निम्माळ्दनं तंदु काणिसेंदु विसर्जिसुवुदुमातं विभीषणनं कंडु रामदेवर कारुण्यमुमं महामहिमेयुमं विन्नपंगेय्वुदुं—

पलतेरद परेय दनि तेरे-
युलिपेने पोक्कत्तु कटकमं नोळ्पर क-।
ण्णलसे विभीषण वाहिनि-
जलनिधियं बंदु पुगुव कुलवाहिनिवोल् ॥ ८० ॥

आ समयदोळ्—

इदिरट्टि दिव्य वसनां-*गदादि भूषणमनवनिपति सुग्रीवां-।
गद मुख्यरनिदिरट्टिद*नुदात्त राघवन पदेपनावं पडेवं ॥ ८१ ॥

अनंतरं कतिपय परिजन परिवृत्तं प्रधान पुरुष परस्सरं राज मंदिरमं पोक्कु—

मणिमय भूषण प्रभे मनक्कनुरागमनुंटुमाडे रो-।
हणगिरि वार्धियं मरेवुगल् नडेतंदपुदेंबिनं विभी-॥
षणनवनीशनिर्देडेगे बंदु पदानतनागे भाळदोळ्।
पेणेदु नखांशु कट्टिदवोलिर्द्दुदु खेचर राज्यपट्टमं ॥ ८२ ॥

---

माता के गुप्त निवास स्थान का पता बताया था।" इसे सुनकर राम ने मंत्री को आदेश दिया कि विभीषण गौरव-सत्कार के साथ लिवा लाया जाय। मंत्री के विभीषण से मिलकर श्रीराम की असीम करुणा एवं महिमा का वर्णन करने पर— अनेक प्रकार के भेरीनाद समुद्र-गर्जन-से गूंज उठे और दर्शकों की दृष्टि को थकाती हुई, विभीषण की सेना राम सेना से मिल गयी। ८० —तब— रामने सुग्रीव, अंगद आदि प्रमुखों को विभीषण के स्वागतार्थ भेजा और तोहफे के रूप में दिव्य भुजकीर्ति आदि आभूषणों से विभीषण का सत्कार किया। इस तरह राम का आश्रय कौन पाता है? ८१ —तत्पश्चात् कतिपय परिजनों के साथ राज-मंदिर में प्रविष्ट हुआ। —उसके रत्नाभरणों के प्रकाश ने मन को संतुष्ट किया। रोहण पर्वत समुद्र के आश्रम निमित्त आया-सा विभीषण श्रीराम के पास आया और चरणों में सिर नवाया तो श्रीराम के पदनखों की कांति विभीषण के माथे पर प्रतिबिंबित हुई तो ऐसा लगा मानो खेचर राज्य का उसे सिंहासन मिल गया हो। ८२ —तब— आदर से राम

आगळ्—

तेगेदादरदिं तळ्कै-※से गगन चरनमृत रसदोळोलाड्डववोल् ।
सोगयिसिदं चंद्रिकेयं※ नगुव नरेंद्रन तनुप्रभा चंद्रिकेयिं ॥ ८३ ॥

गुणमं कडेगणिसिद रा-
वणनोळ् पुदुवाळ्द दोष हरणक्के विभी- ।
षणनमर नदियोळघम-
र्षणमिर्देवोलिर्दनधिपनंगप्रभेयिं ॥ ८४ ॥

जननाथन सम्मनदिं ※ मनदोळ् मेय्वेर्च्चे संतसं बलगेलदोळ् ।
तनगागळेरलिक्किद ※ कनकासनदोळ् विभीषणं कुळ्ळिर्दं ॥ ८५ ॥

रावणनिंदादेर्देवर ※ लावगमोसरिसे नृपन दयेयिं खचरं ।
दावानलनिं बेंदु सु-※ धावर्षदिनारिदचलमिर्पतिर्दं ॥ ८६ ॥

अनंतरं रामचंद्रं विभीषणननुचित संभाषण सुधारसदिं तणिपि बीडिंगे बेससुवुदुमन्नेगमित्तलप्रतिमप्रभं प्रभामंडलं सहस्रा क्षोणीबलंबेरसु बंदु कूडुवुदुं मरुदिवसमल्लि तळर्दु रघुवीरं समुद्र-तीरमनेय्दिवर्पुदुं—

शरनिधि तेजमं जसमुमं तलेयोळ् निले पूण्डु नाळ्दिदं- ।
तिरे तुरुगिर्दे विद्रुम लतावळि शंखद वळ्ळवळ्ळि बं- ॥

---

द्वारा उसका आलिंगन किये जाने पर अमृतपान किया हुआ-सा विभीषण ने आनंदानुभव किया। चांदनी को पाकर रामकी हंसती हुई देहकांति-सा विभीषण का शरीर सुशोभित हुआ। ८३ नीति का अवहेलन करनेवाले रावण के साथ रहने के दोष परिहार निमित्त विभीषण राम की देहप्रभा में उसी तरह समाया जिस तरह पाप निवारण साधन गंगा में समा जाता है। ८४ राम के सत्कार से विभीषण का शरीर ही भार बन गया। दाहिनी ओर उसके लिए तैयार किए गये कनकासन में वह विराजमान हुआ। ८५ रावण के कारण जो मनोवेदना हुई थी, वह रामकी दया के कारण मिट गयी। दावानल से तप्त पर्वत पर अमृतवृष्टि होने पर जिस तरह संतोष होता है उसी तरह विभीषण राम से मिलकर संतुष्ट हुआ। ८६ —तत्पश्चात् रामचंद्र ने विभीषण को यथोचित वातों से तृप्त करके उसे अपने डेरे में भेज दिया। इधर अप्रतिमवीर प्रभामंडल हजार अक्षौहिणी सेना सहित आकर राम से मिला। दूसरे दिन वे सब वहाँ से निकलकर समुद्र तट की ओर आये।—

धुरमेनिसिर्दुवा रघुतनूभवनेळ्तरे सेसेयिक्किदं- ।
तिरे तेरेगैयोळुच्चळिसि सूसिदुवब्धिय तोरमुत्तुगळ् ।। ८७ ।।
वारिधि रघुजंगेत्तिद * नीराजन दीपकलिके पोळेदपुदेंबं ।
तोरोंदेडेयोळ् पोळेदुवु*राराजिप पद्मराग रुचि मंजरिगळ् ।। ८८ ।।
नेलेयिल्लदेयुं नेलनं * बलवंदुं वेलेगोंडुं मेय्यिक्कियुमा ।
जलनिधि तरंग भंगा-* कुलितं नेनेयिसिदुदन्य राजन्यकमं ।। ८९ ।।
सुळिगळ् नीर्दिगुरियवोल्
सुळिदुवु तेरे तेरेयट्टिदुवु बेट्टद बें ।
बळियं बेट्टट्टुववोल्-
तळे तळ्तवोलिर्दुवोगेद मणि किरणंगळ् ।। ९० ।।

आ महासमुद्रमं बलाच्युतर् नोडि मेच्चुत्तुमिर्पुदुमा समयदोळ्—

जलधिय मेलेबंद जलराशियो पेळिमेनिप्प पर्मेयं ।
तळेदु बलं नभोगमन विद्येये सेतुवेनल् नलं द्विष- ।।
द्बळ विलयानलं नडेयिसल् नभदोळ् नडेदत्तिभेंद्र सं- ।
कुळ मकरं हयप्रकर वीचि वरूय कुळीर संकुलं ।। ९१ ।।

---

वहाँ समुद्र मानो अपना तेजस और कीर्ति को सिरपर लिए खड़ा था और विद्रुमलताएं, आंखों की प्रभावलियों और मोतीरत्नों से वह (समुद्र) अपने हाथ-रूपी लहरों से मानो श्रीराम का अभिषेक करता हो। ८७ एक जगह सुशोभित पद्मराग रत्न का प्रकाश ऐसा चमक रहा था मानो समुद्र श्रीराम की आरती उतार रहा हो। ८८ समुद्र मानो अपनी अस्थिरता, अपनी भूप्रदक्षिणा प्रवृत्ति और स्वयं पृथ्वी की सीमा बनने के कारण और अपनी टूटती हुई लहरों का स्मरण कर दुखी था। ८९ समुद्र की भंवरें पानी में घूमते हुए भौरों की भांति चक्कर काट रही थीं। लहर-लहर का उसी तरह अनुसरण कर रही थी जिस तरह पर्वत-पर्वत का पीछा करता है। ९० —वैसे समुद्र को बलदेव अच्युत देखकर प्रशंसा कर रहे थे। उस समय— समुद्र पर गिरी जलराशि की महानता (आधिक्य) से बलदेव की नभोगमन विद्या ही सेतु बन गयी। शत्रुसेना के लिए प्रलयाग्नि सदृश नल ने सेना को आकाश मार्ग से चला तो गज, अश्व, रथ और पैदल सेना समूह भी आगे बढ़े। ९१ आयुधों की चमक, खेचरों के मुकुटों की रत्नप्रभा, भूषणों की कांति, विमानों की बहु-रत्नछाया को आकाशमंडल में प्रतिबिंबित कराती हुई राम की असंख्य सेना

हेतिव्रात मरीचि खेचर किरीटानर्घ्य रत्नांशु भू- ।
षा तेजः पटलं विमान वहुरत्नच्छायें तळ्पोय्विनं ॥
ज्योतिर्मंडलमेकें तेंकनडेयुत्तिर्दप्पुदेंबंतें सं- ।
ख्यातीतं नडेदत्तु राघव महासैन्यं नभोभागदोळ् ॥ ९२ ॥

पावनि जांबवांगद सुषेण विभीषण चंद्ररश्मि सु- ।
ग्रीव वियच्चर प्रमुखरेरिद रत्नविमान मालें शो- ॥
भावहमागि सुत्ति वरें तन्न विमानमनंबरं बय- ।
ल्दावरेंदाणदंतिरेसेंदं रघुजं कलहंस लीलेयिं ॥ ९३ ॥

पोंगेयुत्तु वडबाग्नि रावणयशो दुग्धाब्धियं पीर्वं दं- ।
दुर्गदिं बंदपुदक्कुमेंब वगेयं सौमित्रि पीतांबरां- ॥
शुगळुं तन्न तनुप्रभा पटलमुं माळ्पंतु बंदं विमा- ।
नगभस्ति स्तवकं पळंचलेविनं ज्वाला सहस्रंगळं ॥ ९४ ॥

गणनेंगळुंबमी नृपरूपार्जित पुण्यमेनल्कें राम ल- ।
क्ष्मणर विमानमं वळसि खेचर राज विमान संचयं ॥
मणिमयमंबरस्थलमुमिट्टेडेयेंविनमंबुराशियं ।
क्षणदोळें दाटि पोंदिदुदु मेलेयदोंदु वनांतरालमं ॥ ९५ ॥

बेट्टमनोट्टि बट्टे नडेवच्चिगमेंबुदो वार्धियं मुगि- ।
ल्वट्टेयें वट्टेयागे नडेवच्चरिवेंत्तु वियच्चराधिपर् ॥

---

आकाश मार्ग से चलने लगी तो भ्रम हुआ कि ज्योतिर्मंडल दक्षिणाभिमुख होकर क्यों चल रहा है ? ९२ हनुमान, जांबव, अंगद, सुषेण, विभीषण, सुग्रीव आदि खचर वीरों के रत्न-विमानों की पंक्ति राम के विमान को घेरकर चल रही थी कि वह (विमान) सरोवर से सुशोभित कमलों के बीच सुशोभित राजहंस की भांति दृष्टिगोचर हुआ। ९३ लक्ष्मण द्वारा पहने हुए पीतांबर की प्रभा एवं उसकी देहकांति विमान के प्रकाश में प्रतिबिंबित होनेवाली सहस्र अग्निज्वालाएं ऐसा प्रतीत हुई मानो धुवां उगलती हुई वडवाग्नि रावण के यशरूपी क्षीरसागर को सोखने आ रही हो। ९४ इन राजाओं के अर्जित असीम पुण्य के समान, खेचरों के मणिमय विमान राम-लक्ष्मण के विमानों को घेरकर, अंबर स्थान में एकत्र होकर, क्षणार्ध में समुद्र पारकर समुद्र तट के एक वन प्रदेश में पहुँचे। ९५ पर्वतों को मिला-जोड़कर उस पर चलने के कष्ट से बचने के उद्देश्य से आकाश मार्ग से ही समुद्र पार करते हुए देखकर आश्चर्य प्रकट करते हुए समुद्र पारकर समुद्र पर पहुँचे (उतरे) तो मानो सारा आकाश ही खाली

तोट्टनें दांटि वारिधियना तडिगॆय्वुवुदुं नभक्कॆ तूं- ।
तिट्टवोलागॆ दळ्ळिसिदुदा पडॆयोळ् पोरपोण्मुवुळ्ळोंड ।। ९६ ।।

अंतु समुद्रमं दांटि लंकाभिमुखरागि पयणंबोगि विंशति योजन विस्तारमुं त्रिंशद्योजनायाममुमप्प रणभूमियं कैकोंडिर्पुदुं—

अवरवगॆ तक्कमणिमय
भवनमनधिराज राजगृहमं कडॆप- ।
ट्टवगॆळिगागिरॆ संभि-
न्नविद्यॆयिं स्थपति माडि कॊट्टं बीडं ।। ९७ ।।

गृह दीर्घिकेयं धारा- * गृहमं गृहवनमनुपवनंगळनार्ग ।
स्पृहणीयमागॆ पलवं * बहुविद्या गृहमहत्तरर् समॆदित्तर् ।। ९८ ।।

अंतु बीडंबिट्ट रामलक्ष्मणर राजभवनमं वळसि सुग्रीव प्रभामंडल प्रमुख निखिल खचर परिबृढरूमखिल सेनॆयुमनुस्वप भवनंगळॊळॆडॆयरिदु बीडंबिट्टिर्पुदुं—

दिविज नदी तरंग धवलं निज निर्मलकीर्ति वल्लि भू- ।
भुवनमनावगं पुदिविनं विबुधावळिगप्पिनं महो- ।।
त्सवमधिराज पूज्यनभिरामतॆयं तळॆदं सरस्वती ।
श्रवण विभूषण प्रथित वाग्विभवं कवितामनोहरं ।। ९९ ।।

---

हुआ । ९६ —समुद्र पारकर, लंकाकी ओर चलकर बीस योजन (एक योजन लगभग आठ कोस की दूरी) लंबी और तीस योजन चौड़ी युद्ध भूमि को निश्चित कर लिया (वश में कर लिया) । —बढ़ाई ने अपनी विद्या से हर एक के लिए यथायोग्य रत्नमय घर और राजगृहों का निर्माण किया । ९७ अनेक विद्याओं को जाननेवाले विद्याधरों ने दर्शकों की आखों को आनंद प्रदान करनेवाले भवनों के सामने कुओं, स्नानगृहों, उपवनों, बगीचों का निर्माण किया । ९८ —इस तरह डेरा डाले हुए राम लक्ष्मण के राजभवन को घेरकर सुग्रीव प्रभामंडल आदि खेचर प्रमुख एवं उनकी सेना यथायोग्य अपने-अपने घरों में रह रहे थे कि— पवित्र गंगा नदी की लहर की तरह अपनी धवलकीर्ति को संसार भर में फैलाता-सा, समस्त देवताओं का महोत्सव करता-सा, सामंतराजाओं में पूज्य भावना जगाता हुआ, सरस्वती के कर्णाभूषणप्राय बनता हुआ श्रीराम वाग्विलास से सुशोभित हुआ । ९९ —अभिनव पंप, जो परम जिन समय और कमलों को शरत्काल के चंद्र के समान माने जानेवाले बाल चंद्र मुनींद्र के पद

इदु परमजिनसमयकुमुदिनी शरच्चंद्र बालचंद्र मुनींद्र चरणनख किरण चंद्रिका चकोर भारती कर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितमप्प रामचंद्रचरितपुराणदोळ् लंकादिग्विजय प्रयाणवर्णनं द्वादशाश्वासं ।

॥ द्वादशाश्वास समाप्त ॥

नखों के चांदनी-प्रकाश से पवित्र एवं सरस्वती के कर्णाभूषण के समान है, के रामचन्द्र चरितपुराण का यह लंकादिग्विजय प्रयाण वर्णन—बारहवां अश्वास है ।

॥ बारहवां आश्वास समाप्त ॥

त्रयोदशाश्वासं

श्री सुकृतक्कात्म वच-
श्श्री सूनृत संपदक्के तोडवेंने जसवा- ।
शा सुदतिगें साहित्य क-
ला सुभगं पेंपुवेत्तनभिनवपंपं ॥१॥

आ समयदोळ्—

जनिता कोलाहलं काहळ वहुविध वाद्यस्वनं शंख भेरी ।
ध्वनि हेषाबृंहितंगळ् विलय जलनिधि ध्वानमेंवन्नेगं भों- ॥
कनें कर्णाभ्यर्णमं सतिरें मुनिदसुरं पोय्से पोण्मित्तु चंडा ।
शनिघोषं लोकमं मूवळसुवळसें सन्नाहभेरी निनादं ॥२॥

आश्वास—१३

पुण्य और मंगलदायक वचन-सम्पत्ति को आश्रय स्थान कहलाता-सा अपनी कीर्ति को दिगंतों में व्याप्त कराता हुआ सौभाग्यवान अभिनव पंप प्रसिद्ध हुआ । १ —उस समय— तुतूरियों का कोलाहल, अनेक प्रकार के वाद्यों के निनाद, शंख-भेरी की ध्वनियां, हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट आदि प्रलयकाल की गर्जना-सी कर्णपटल तक पहुंचने पर, क्रुद्ध रावण ने भयानक घनगर्जना-सी सिद्ध-भेरी बजवायी तो उसकी आवाज ने विश्व को तीन वार घेर लिया । २ सामान्य मानव मुझसे

अॅनगॆ रणरभसर्दिं गड॰ मनुजं मेलॆत्ति बंदर्नि दो:कंडू ।
यनमं कळल्चलॆडॆया ॰ य्तॆनुत्तुमुत्तरळ ताम्रलोचननादं ॥३॥

आगळा भेरीरवमंबरनावरिसुवुदुमत्त भास्करपुरद पयोधरपुरद कांचनपुरद कंपनपुरद व्योमपुरद व्योमवल्लभपुरद गंधर्वपुरद शशिमंदिरपुरद, शिवमंदिरपुरद शिवपुरद लक्ष्मीपुरद महाशैल-पुरद चक्रपुरद सीमंतपुरद मलयपुरद श्रीगुहापुरद अश्वपुरद चंद्रपुरद किरिंजयपुरद शशिस्थापनापुरद मार्तंडपुरद सहस्थापन-पुरद जयपुरद परीक्षापुरद विश्वपुरद श्रीचंद्रपुरद गजपुरद गोपुरद महिषीपुरद रत्नपुरद विद्याधरर् मॊदलागॆ पलवुंपुरद विद्याधर राजरॆल्लं तंतम्म समग्र सामग्री सहितरागि बंदु कूडुवुदुमवरं सन्मान दानपुरस्सरं संतोषंबडिसि चतुस्त्रिंशत्सह-स्त्राक्षौहिणी बलंबॆरसु दशग्रीवं रणरसोद्ग्रीवनागिर्दना त्रिखंड मंडलाधि पतियॊळ्—

रणरभसर्दिदमावं- ॰ पॊणर्व मूवत्तुनालकु सासिरदक्षौ- ।
हिणिगॊडॆयनाद नॊळ् रा-॰वणनॊळ् विद्विष्ट सैन्य विद्रावणनॊळ् ॥४॥

मत्तित्तरामलक्ष्मणर् सहस्राक्षौहिणीबलक्कधिपरप्प सुग्रीव प्रभामंडल समन्वितर् संग्रामोत्सुक चित्तरागि पॆरऴमतिबलरप्प

---

भिड़ने को तैयार हुआ है; मेरी भुजाओं की खुजली निकालने का यह सुसंदर्भ है, ऐसा सोचकर रावण ने अपनी आँखों से क्रोधाग्नि की चिनगारियाँ बरसायीं। ३ —उसके द्वारा बजवायी गयी सिद्ध-भेरी की ध्वनि आकाश में फैल गयी। उधर भास्करपुर, पयोधरपुर, कांचनपुर, कंपनपुर, व्योमपुर, व्योमवल्लभपुर, गंधर्वपुर, शशिमंदिरपुर, शिवमंदिरपुर, शिवपुर, महाशैलपुर, चक्रपुर, सीमंतपुर, लक्ष्मीपुर, मलयपुर, श्रीगुहापुर, अश्वपुर, चंद्रपुर, किरिंजयपुर, शशिस्थापनापुर, मार्तंड्पुर, सहस्थापनापुर, जयपुर, परीक्षापुर, विश्वपुर, श्रीचंद्रपुर, गजपुर, गोपुर, महिषीपुर और रत्नपुर के विद्याधर राजाओं ने अपने-अपने युद्धोपकरणों के साथ आकर रावण से मिले। आदर गौरव से उनका स्वागत करके, चौंतीस अक्षौहिणी सेना के साथ रणकेलि निमित्त आसक्त था। उसके समान त्रिखंडमंडलाधिपति वीरता से लड़ने के लिए तैयार चौंतीस अक्षौहिणी सेना के साथ, शत्रुओं से भिड़ने के लिए लालायित यमस्वरूपी दशकंठ से युद्ध करने में कौन समर्थ होगा? । ४ —इधर रामलक्ष्मण एक हजार अक्षौहिणी सेना के अधिपति सुग्रीव और प्रभामंडल के साथ

विद्याधररु् बंदु कूडुवुदुमवरनोळकोळुत्तुमिर्दरु् तदक्षौहिणी प्रमाण-मेंतेने पत्तियेंदुं सेनेयेंदुं सेनामुखमेंदुं गुल्ममेंदुं वाहिनियेंदुं पृथनेयेंदुं चमुवेंदुमानीकिनियेंदुमितेंटु तेरदिं पडेगे पेसरक्कुमल्लि—

ओंदानेय कालगापिनो- ※ ळोंदु रथं मूरु तुरगमय्दुं काला- ।
ळोंदागि बंदु मोनेयोळ् ※ निंदंदडु पत्तियेंब पेसरं पडेगुं ॥५॥

त्रिगुणं पिरिदक्कुं प- ※ त्तिगे सेनेयदक्कुनंते सेनामुखमुं ।
त्रिगुणं पिरिदक्कुमदं ※ त्रिगुणिसिदोडे गुल्ममेंब पेसरं पडेगुं ॥६॥

त्रिगुणि से गुल्म मनदु ने※ ट्टगे वाहिनियक्कुमंते तद्वाहिनियं ।
त्रिगुणिपुदुं पृतनेयदं ※ त्रिगुणिसे पेरतेनो चमुवेनल् पेसर्वडेगुं ॥७॥

ई नेगळद चमूत्रितयम- ※ दानीकिनियक्कुमदु पदिर्मडिसलोडं ।
तानक्षौहिणियक्कुं ※ जैनोक्तमनन्यरेत्तलरिवर् मूर्खर् ॥८॥

इंतेनिसिदक्षौहिणियोळगणानेगळुमिर्पत्तोंदु सासिरदेंटुनूरेळ्पत्तक्कुं रथंगळुमनिते अक्कुं कुदुरेयरुवत्तय्दु सासिरदरुनूरपत्तक्कुं कालाळुमोंदु लक्कमुमोंभत्तु सासिरद मूनूरय्वत्तक्कुं—

ओंदक्षौहिणिगिनित- ※ क्कुं दल् चतुरंग संख्येयेने पडेयेरडुं ।
निंदिरिवोडे नेलनेडेगिरि※ देंदरिदा पडेय पवणनरिववनाव ॥९॥

---

मिलकर युद्ध के लिए तैयार होकर अपने पास आये हुए अति बलशाली विद्याधरों से मिल गये। अक्षौहिणी सेना पत्ति, सेना, सेनामुख, गुल्म, वाहिनी, पृथने, चमु, आनीकिनी इन आठ भागों में बंटी होती है। इसमें, जिसमें एक हाथी के नेतृत्व में एक रथ, तीन घोड़े और पांच पैदल सैनिक हों उसका नाम पत्ति है। ५ ऐसे तीन समूह हों तो वह सेना कहलाती है। सेना के तीन गुन मिलने पर वह सेनामुख बनता है। सेनामुख के तीन गुन हो तो वह गुल्म नाम पाता है। ६ गुल्म के तीन गुन मिलने पर वाहिनी बनती है। वाहिनी के तीन गुन पृथने और पृथने के तीन गुन चमु कहलाते हैं। ७ तीन चमु मिलकर आनीकिनी कहलाती है। दस आनीकिनी मिलाकर अक्षौहिणी होती है। यह जैनों का हिसाब है। इसे अन्य नहीं जानते। ८ —इस तरहकी अक्षौहिणी सेना में २१८७० हाथी, उतने ही रथ, ६५६१० घोड़े, १०९३५० पैदल सैनिकों को रहना चाहिए। इस तरह की अक्षौहिणी सेनाएं दोनों तरफ से युद्धके लिए तैयार खड़ी थी कि उसे पृथ्वी की जगह काफी नहीं हो रही थी। उस आश्चर्य का सही विवरण (वर्णन) कौन दे सकता है? । ९ गणितज्ञ के अतिरिक्त

गणिदिगनिनितनितक्षौ- ※ हिणियेंदेंणिसल् समर्थनक्कॆम रथ वा-।
रण वाह पदातिगळ्※गणियिसलार्तपनें राम रावण बलमं ॥ १० ॥

भगणद लॆक्कमं मळॆय नीर्वनियं परमाणुसंख्येयं ।
गगनद सीमॆयं जळधि वीचिगळं दॆसॆयंतमं पव- ॥
ण्बुगिसलॆरळ्बलंगळ मदद्विप वाह वरूथ किंकरा- ।
दिगळ पवण्गळं पवणिसल् बगदर्पनें गांपनागने ॥ ११ ॥

अिततित प्रबलसप्पुभय बलमुमायुधंगळनर्चिसुव विजयवारण वाजिगळं पूजिसुव वीर संन्यसनमिर्प सुभटालापमनालिसुव रवळि घोषिसुव दंदुगदिनंदिनिरुळं कळॆयॆ नेसर् मूडुवुदु मिदगि बॆससि- दंददॊळ्—

आरॆमगिदिर्चुवर् सम- ※ रारंभक्कामॆ मुख्य नायकरॆवॆनु- ।
त्तारि मुन्नं सॆरगं ※ पारदॆ हस्तप्रहस्तरुरदॊड्डिदर् ॥ १२ ॥
मारीचं मॊदलागॆ म ※ हारथरॊडनेरि सिंहरथमं रथिगळ् ।
नीरद गर्जनमं रण- ※ भेरीरवमिळिपॆ लंकॆयं पॊरमट्टर् ॥ १३ ॥
पुलिय रथदॊळ् पलर् मॆ-※य्गॊलिगळ् वज्रोदरादि वीर प्रमुखर् ।
कलहक्कॆ नडॆयॆ नडॆदर् ※ पलंबरंबर चरर् तुरंगम दरदॊळ् ॥ १४ ॥

---

राम-रावण की उस अक्षौहिणी सेना का विवरण देने में या विवरण जानने में कौन समर्थ होगा ? । १० नक्षत्रों की संख्या, वर्षा के पानी की बूंदों, परमाणुओं की संख्या, आकाश की ऊँचाई, समुद्र की लहरों, दिशाओं की सीमा और गज, अश्व, रथ और पैदल सेनाओं से युक्त राम-रावण की सेनाओं का विवरण जानने की इच्छा रखनेवाला मूर्ख नहीं है ? । ११ —इस तरह प्रबल उभय सेनाएं आयुध की धार तीक्ष्ण करती हुई, विजय निमित्त हाथी-घोड़ों को तैयार करती हुई, वीर दीक्षा लेती हुई, वीरालापों को बुलन्द करती हुई, विचित्र ध्वनियों के साथ रात बिताई। सूर्योदय होने पर इंदगी के आज्ञानुसार, हस्त प्रहस्त आदि यह कहते हुए सबसे पहले तैयार हो गये कि युद्ध में हमसे कौन टकरा सकता है ? युद्धारंभ में हम ही सेनानायक हैं । १२ मारीच आदि महारथियों के साथ रथिक सिंहरथ पर सवार होकर, काले बादलों की गर्जना को नीचा दिखानेवाली रण-भेरी की आवाज के साथ लंका से रवाना हुए । १३ वज्रादर आदि प्रमुख वीर व्याघ्ररथों में सवार होकर आगे बढ़े । कुछ आकाशगामी वीर अश्व सेना में मिलकर युद्ध के लिए तैयार हुए । १४ इन्द्रजीत हाथी घोड़ों में सवार सात करोड़ विद्याधरवीरों को अपनी अंगरक्षा निमित्त

करितुरगारूढर् सं- *गरक्कॆ तनगंगरक्कॆयॆनिसिद विद्या-।
धर तनयरॆळुकोटियु * मरॆवरॆ रणभूमिगिंद्रजितु पॊरमट्टं ॥ १५ ॥
इंदगिय कॆलदॊळहितर*निदगिदुगिवंतु माळ्पॆवॆमगळ्कदरा-।
रॆंदवं तूगुत्तुं * वंदर् जितशत्रु मेघवाहन वीरर् ॥ १६ ॥
शात त्रिशूल रुचि ती-* व्रातपमं वॆरॆ वीरॆ रिपुबल विलयो-।
त्पातमॆनॆ कुंभकर्णं * ज्योतिष्प्रभ मणिविमानदॊळ् पॊरमट्टं ॥ १७ ॥

अंतु निज विजयसॆनॆ संग्रामदॊळॊड्डि निल्वुदुं—
पिडिदुग्रास्त्रमनेरि पुष्पकमनाशा चक्रमं चक्रमं-।
नडॆ नोडुत्तुमपार सैन्य सहितं पूर्णॆंदुवं पोलॆ बॆ-॥
ळगॊडॆ भेरीरवमेक शंख निनदं तळ्पॊय्यॆ दिक्चक्रमं।
नडॆदं दानव चक्रवर्ति समरप्रारंभ संरंभदिं ॥ १८ ॥

अंतु नडॆवॆडॆयॊळ्—
ऒडॆयॆ सुरालयं कॆडॆयॆ पर्वत संकुलमुर्वरा तळं।
नडुगॆ दिशाननं पॊगॆयॆ भूमिरुहं प्रतिकूल वायुविं॥
दुडियॆ खगाळि दुस्स्वरदिनूळॆ रणाग्रह दुर्नयक्कणं।
सॆडॆयदॆ संगरावनिगॆ मानधनं नडॆदं दशाननं ॥ १९ ॥

---

नियुक्तकर युद्धभूमि की ओर रवाना हुआ। १५ उसके अगल-बगल में बाण लेकर जितशत्रु और मेघवाहन इस अभिमान से चलने लगे कि आज शत्रुओं को निर्नाम कर देंगे और उनका सामना भी कौन कर सकता है ?। १६ तीक्ष्ण त्रिशूल की चमक से तीव्र धूप की गरमी पैदा करता हुआ, शत्रुबल के लिए काल स्वरूपी कुंभकर्ण रत्न-विमान से रवाना हुआ। १७ —इस तरह रावण की सेना राम-सेना के सम्मुख खड़ी हुई तो, शंख निनाद और भेरीरव दिगंतों में फैल गये और उग्रशर लिये, पुष्पक विमान पर सवार होकर दिक्चक्र और चक्ररत्न को देखते हुए, अपार सेना से आवृत्त पूर्णचंद्र-सा शोभायमान, दानव चक्रवर्ती युद्ध प्रारंभ की धूमधाम का अवलोकन करता हुआ आगे बढ़ा। १८ —ऐसा चला तो— स्वर्ग लोक फट गया। पूर्वत समूह ढह गये। भूतल कांप उठा। दिग्मुखों से धुंवा उठा। पृथ्वी के पेड़ पौधे तूफान के आघात से टूटकर गिर गये। पक्षी समूह अपस्वरमें विलाप करने लगे। अपने अन्याय के प्रति तनिक भी पश्चताप किये विना युद्धातुर होकर मानधनी दशकंठ चल पड़ा। १९ चलते हुए, देखते हुए, सुने-देखे हुए उत्पात और अपशकुनों पर

समरार्थि पोंण्मुवुत्पा * तमनपशकुनंगळं दशास्यं वीर ।
प्रमुखं बगेयदे बंदं * समरावनिगर्थि दोषमं बगेदपने ।। २० ।।

अंतु बंदोड्डि निल्वुदुं—

दनुजेंद्रनोड्डु कर्गने * कनियुत्तिरे नोडे कंडु वानरचिह्नर् ।
मुनिसनुविसे कादुव त-* क्किनोळाहवभूमिगेक्केयि नडेतंदर् ।। २१ ।।

पलतेरद परेय दनिगळ्* नेलवेर्चुव कडल तेरेय तार्मुट्टिन ब- ।
ल्लुलियेने कलह क्षोणिगे
पलबर् सुभटर् कपिध्वजर् कवितंदर् ।। २२ ।।

पलतेरद वाहनगळं * नलंघ्य विक्रमरेनिप्प विद्याधर वी- ।
र ललामरेरि संग्रा-* म लोलुपर् समर भूमिगंदेल्तंदर् ।। २३ ।।

नल नीलर् समरोर्विगे
विलयाग्निगळंते मुंते नडेदर् विद्या- ।
बलद भुजबलद सोणसि
कलिगळ् हस्तप्रहस्तरोळ् तळ्तिरियल् ।। २४ ।।

अंगदकुमारनाहव * रंगदोळानिंद्रजित्कुमारंगीवें ।
भंगमनेंदु पराक्रम * तुंगं कडुकेय्दु कदनकेळिगे बंदं ।। २५ ।।

अमित चतुरंग सेना* समन्वितर् प्लवगकेतुगळ् मारुत मा- ।
र्गमनेळसि बळसि नडेदर्*समर क्षोणिगे सुषेणनुं जांबवनुं ।। २६ ।।

---

तिल भर भी ध्यान न देकर युद्धभूमि में आया । मोहित व्यक्ति कभी दोष की परवाह करता है ? । २० —आकर, सम्मुख खड़ा हुआ तो— उसकी सेना को सामने आते हुए देखकर शत्रु पक्ष के वानरध्वजियों का क्रोध भड़क उठा और वे विजय की आतुरता से युद्धभूमि की ओर एक साथ चल पड़े । २१ विभिन्न प्रकार के चर्मवाद्यों की ध्वनि भरे समुद्र की लहरों के घोष के समान प्रतीत हो रही थी कि सुभट कपिध्वजियों ने युद्धभूमि को घेर लिया । २२ अनेक तरह के वाहनों में सवार, असमान पराक्रमशाली विद्याधर युद्धभूमि के प्रति आसक्त होकर रणभूमि में पहुंच गये। २३ बलशाली नल, नील भी प्रलयाग्नि की भांति युद्धभूमि में पहुंच गये और भिड़ने के लिए वीर हस्त-प्रहस्त के सम्मुख हुए । २४ इस युद्ध में इंद्रजीत को पराजित करने के पूर्णविश्वास से अंगद कुमार आगे आया । २५ विपुल सेना से युक्त सुषेण, जांबव आदि कपिध्वजी आकाशमार्ग से होते हुए युद्धभूमि में पहुंचे । २६ —इसी तरह जांबव, अंगद, सुषेण आदि

अंतु निज नामांकित विजय वैजयंतिगळंवरमनळ्ळिरियें जांबवांगद सुषेण प्रमुख निखिल वलीमुख ध्वजप्रधानर् रण-रसिकरागि नडेदर् मत्तं प्रभामंडलनुं महेंद्रनुं चंद्राभनुं महाबलनुं समुन्नतवलनुं सर्वप्रियनुं दुर्बुद्धियुं शरभनुं प्रीतिकरनुं अनुंदरनुं दृढ़-रथनुं कुमुदावर्तनुं सूर्यज्योतियुं विजयाश्रयनुं विमलसागरनुं सन्माननुं रतिवर्धननुमेंब पेसर नायकरुत्साहकरागि नडेदर् मत्तं—

ओरोर्वर चतुरंगम ॐ नारेणिसल् नेरेवरेने रणानक रुति दि- ।
ग्वारणमनेय्दे खेचर ॐ वीररगुर्वुवे संगरोर्विगे वंदर् ॥ २७ ॥

जवदोळ् दोरेयेनिसुव खच-
र वीर भटरेरि पुलिय रथमं समरो- ।
त्सवदि नडेदर् दशवद ॐन वरूथिनियं जवंगे वाणसुगेय्यल् ॥ २८ ॥

प्रस्तारं दोर्बलमं ॐ दुस्तरमं वीरलेंदु रणभूमिगे ते ।
जस्तरणि नडेदनहित त- ॐ मस्तोममनळुरे मंडलाग्र मयूखं ॥ २९ ॥

मत्तं विपक्षवल कुधरकुलिश प्रहारनेनिसिद प्रस्तारनुं कदन-केळी कृतांतनेनिसिद हिमवंतनुं रिपुमनोभंगमनेनिसिद भंगनुं प्रचंड प्रतापनेनिसिद प्रियरूपानुमादियागे गगनचर गजरोहकरंकुशद मसेगळ् गगन तलमनावरिसे रणक्षोणिगे नडेदर् मत्तं यम समकक्ष-

---

स्वप्रख्यात प्रमुख विजयातुर वीर भी रण कुतूहली होकर चले आये। उनके साथ प्रभामंडल, महेंद्र, चंद्रभानु, महावल, सर्वप्रिय, समुन्नवल, दुर्वुद्धि, शरभ, प्रीतिकर, अनुंदर, दृढ़रथ, कुमुदावर्त, सूर्य ज्योति, विजयाश्रय, विमलसागर, सन्मान, रतिवर्धन आदि प्रमुख नायक भी आयुध लिये चले आ रहे थे। हर एक की चतुरंग सेना को गिनने में कौन समर्थ है ? रणभेरी का निनाद दिग्गजों के कर्ण पटलों को वंद कराते हुए खेचर वीर युद्धभूमि में आये। २७ युद्ध में प्रतिपक्षियों के समकक्ष वीर वाघों के जोते हुए रथों में सवार होकर, युद्धोत्साह से रावण की सेना को यमपुरी भेजने के लिए चले आ रहे थे। २८ जिस तरह अंधकार को भगाने के लिए तेजपुंज सूर्य आता है उसी तरह शत्रुको अपना भुजवल दिखाने के लिए प्रस्तर युद्धभूमि में चला आया। २९ पर्वत रूपी प्रतिपक्ष के लिए वज्रप्राय प्रस्तर, युद्ध में यम सदृश हिमवंत, वैरियों का मनोभंग करने में प्रवीण भंग, प्रचंड प्रतापी माना जानेवाला प्रियरूप आदि विद्याधर हाथियों पर सवार होकर अंकुश के प्रकाश को आकाश तक फैलाते हुए रणभूमि में आये। इनके अति-

रैनिप दुष्प्रेक्षनुं रिपुघटा विघटन मृगेंद्रनप्प पूर्णचंद्रनुं प्रथन रथ पयोधियप्प सुवीधियुं रिपुहृदय विदारण रणानक स्ववनेंनिप्प निस्वननुं निर्जितानेक विग्रहनेंनिप्प प्रियविग्रहनुं मोदलागे सिंह रथमनेरि संगरांगणक्के नडेदर् मत्तं विद्युत्कर्ण कालक्षितिधर तरळ संग्राम प्रमुखरखिल घोळायिलर् मनोजवजात्यश्वंगळनेरि कदन क्षोणिगे नडेदर् मत्तं—

अनुवर बूविगे बलवा- * हननुं रवि हनुमनुं प्रचंडारियुमु- ।
ग्रनुमादियागे खेचर- * रनेक वाहनमनेरि नडेदरनेकर् ।। ३० ।।

अंतु संग्राम भूमिगे वंदु रघुवीर बलद सेनानायकरप्प नळ नीलर पेळ्देडेयोळोड्डि निल्वुदुं—

अप्रतिम प्रतापनिधि भूषणरत्न हटत्किरीट र- ।
त्नप्रमे बीरे बेरे कुडुमिंचिनगोंचलनुग्र युद्ध के- ।।
ळीप्रियनप्रमेय बलनुद्गत मुद्गर हस्तनेरि र- ।
त्नप्रभमं विमानमनगुर्विसिदं नभदोळ् विभीषणं ।। ३१ ।।

मत्तमातन समक्षदोळ् निजाक्षौहिणिगागसवेडेनेरेयदेनिसि—

बल नारायणरं निरीक्षिसि दशग्रीवं रण क्षोणियोळ् ।
तलेयं तूगि पोडर्पुदोर्पेनेनुतं बंदोड्डि ताराभ्र मं ।।

---

रिक्त यमतुल्य माना जानेवाला दुष्प्रेक्ष, शत्रु के हाथियों को चीरने में सिंह-तुल्य प्रवीण पूर्णचंद्र, रिपुबल के लिए काल माना जानेवाला सुवीधि, शत्रुहृदय को भेदने में चतुर निस्वन, युद्धप्रिय, प्रियविग्रह, आदि सिंहरथ पर सवार होकर रणभूमि में आये। साथ ही विद्युत्प्राण, कालक्षितिधर, तरल आदि अश्वारोही रणांगण की ओर चल पड़े। और, अलग-अलग वाहनों पर सवार होकर बलवाहन, रवि, हनुमान, प्रचंडारी, उग्र आदि खेचर चल पड़े। ३० —इस तरह आकर राम सेना के नायक नल नील के आदेशानुसार यथास्थान सम्मुख होकर खड़े हुए। अप्रतिम प्रतापी विभीषण अपने भूषणों की प्रभा को बिजली की भाँति फैलाते हुए युद्धोत्सुक होकर, हाथ में गदा लिये, रत्नकांति से सुशोभित विमान पर सवार होकर आकाश में भयानक प्रतीत हुआ। ३१ —उसके समक्ष उसकी अक्षौहिणी सेना के लिए आकाश-पथ अपर्याप्त लगने लगा। बल नारायण को निहारते हुए, युद्धभूमि में जाते हुओं को देखकर, प्रशंसा में सिर हिलाते हुए अपने शौर्य का प्रदर्शन करने के विचार से आकर घेरा तो उसकी वेशभूषाओं

डलमं मूवळसागॆ मुत्तॆ विलसद्भूषा प्रभामंडलं ।
बल वाराशिय मध्यदॊळ् वरुणनंतिर्द प्रभामंडलं ॥ ३२ ॥

मत्तं तत्समीपदॊळसंख्यात वाहिनी सहितनागि निज किरीट रत्नप्रभॆ नभमनावरिसॆ—

सुग्रीवं कडुकॆय्दु द- ※ श ग्रीवनॊळिरियलानॆ साल्वॆनॆनुत्तुं ।
विग्रह कांक्षॆयिनिर्दनु※ दग्रबलं रत्नमय विमानारूढं ॥ ३३ ॥

मत्तं विरोधिबल संवर्त समयनॆनिप युद्धावर्तनुं रणक्रीडानुकृत कृतांतनॆनिप वसंतनुं रिपुकुल कुमुदवन रदनियॆनिप कुमुदनुंकीर्ति चंदनरस चर्चित दिगंगनॆनिसिद महार्चितनुं विद्विष्टकुल काळोरग-नॆनिप्पुरगनुं मॊदलागॆ पलबरुं खचर परिवृढरंबरमनावरिसि विविधायुध हस्तर ज्योतिरमर नायकरंतिर्पुदुमा विद्याधराधिराज मध्यदॊळ्—

चामरमनिक्कॆ खेचर
कामिनियर् मणिविमानदॊळ् मणिमय घं-।
टा मधुर ध्वनियॊळ् क-
ल्पामररिर्पंतॆ रामलक्ष्मणरिर्दर् ॥ ३४ ॥

अंतुभय बलमुं नॆलनुमागसमुमॆडॆनॆरॆयदंतु समुचित व्यूह प्रतिव्यूह स्थापनॆगळं यथाविधियिं प्रयोगिसि तंतम्म मॊनॆय नायकर

---

की प्रभा ने सारे आकाश मंडल को घेर लिया तो सेना-समुद्र के बीच में खड़े होकर प्रतिपक्षी प्रभामंडल ने देखा। ३२ —उसके पास ही असंख्य सेना खड़ी थी। उसके मुकुटों की कांति आकाश में व्याप्त हुई तो, यह सोचकर कि वह अकेला ही दशकंठ से भिड़ सकता है, सुग्रीव विपुल पराक्रम और रणोत्साह से रत्नमय विमानपर सवार हुआ। ३३ —काल-स्वरूपी युद्धावर्त, रणक्रीडोत्सुक वसंत, शत्रुकुलांतक कुमुद, कीर्ति सुगंध को दिगंतों में फैलानेवाला महार्चित, रिपुबल के लिए कालसर्प सदृश उरग आदि अनेक खेचरवीर आकाशमार्ग में व्याप्त होकर विभिन्न आयुधों को धारणकर देवता नायकों की भाँति शोभा दे रहे थे कि उनके बीच, खेचर स्त्रियां चमर डुला रही थीं कि राम-लक्ष्मण मणिमय विमान में बैठकर, लघु घंटिकाओं की मधुर ध्वनि के साथ कल्पांतर देवताओं की तरह शोभायमान थे : रह रहे थे। ३४ इस तरह दोनों पक्षों की सेनाएँ अवनी-अंबर की व्याप्ति को अपर्याप्त पाती-सी, यथोचित व्यूह प्रतिव्यूहों की

विरुदिन बीरवद्देळेय पदिर परेय कहळेय कळकळं किविशब्दंगिडे दिवमनेय्दे मिळिर्दु मिळ्ळिसुव पेसरकुरूपिन पळयिगेगळु संदणिसि मुंदे निंद पलवुंसिदंगळु कण्बीलक्कें बरेंकनल्दोनल्दु कदनकेळी कुतूहलरागिर्पुदुमित्त नळ नीलरुमत्त हस्त प्रहस्तरुमोडर्ने कडेगालद नंजिन प्रलय प्रभंजनं बीसुवंते कै वीसुवुदुं—

इळे मोळगित्तो भानुरथमुर्विगे बिळ्दुदो शेषकंठ कं-।
दळ कठिनास्थि नुळ्गिदुदो गोत्रनगं पिळिगित्तो सागरं।।
तळर्दुदो मेरेयिंदमुळिदंदिनितद्भुतमाद नादम- ।
ग्गळिसदेनल् विघूर्णिसिदुदिर्बलदोळ् समरानक स्वनं ।। ३५ ।।

करियोळ् करि हयदोळ् हय
मुरुरथदोळ् रथसुमाळ्गळोडनाळ्गळ् का- ।
य्दुरवणिसि तागे तागिदु-
वेरडोड्डुं नेलदोळागसं तागुववोल् ।। ३६ ।।

धरे कंपंगोळ्विनं पेर्वडेगळेरडुमोरोंदरोळ् तागे तूर्य- ।
स्वरमुं कोदंड टंकारमुमिभ रद संघट्ट निर्घोषमुं जो-।।
दर बाणाध्दर घोर ध्वनियुमसि खणत्कारमुं पर्वि रोदों-।
तरमं संवर्तकाल क्षुभित जलनिधि ध्वानदंतादुदेत्तं ।। ३७ ।।

---

रचनाकर, प्रयोगकर, अपने सेनानायकों के वीरघोष को तुतूरी की ध्वनि के माध्यम से सुना रही थीं। वह ध्वनि कानों में कलकल निर्माणकर आकाश में उड़नेवाली ध्वजाओं को स्पर्शकर प्रतिस्पर्धियों में क्रोध भड़काने पर वे युद्ध के लिए लालायित हो रहे थे कि इधर नल और नील, उधर हस्त और प्रहस्त प्रलयकाल के तूफान की तरह हाथ हिला रहे थे। रणभेरी ऐसी बज उठी मानो सारी पृथ्वी ही गूंज उठी हो; सूर्य का रथ ही पृथ्वी में गिर पड़ा हो; महाशेष की गर्दन की हड्डियां टूट गयीं हों; कुलपर्वत फट गया हो, सागर ही अपनी सीमा को लांघ गया हो और ऐसा लगा कि भविष्य में कभी ऐसी अद्भुत ध्वनि सुनने को नहीं मिलेगी। ३५ हाथी से हाथी, घोड़े से घोड़ा, रथ से रथ, पैदल सेना से पैदल सेना भिड़कर दोनों सेनाएँ ऐसे लड़ीं मानो आकाश भूमि से भिड़ गया हो। ३६ दोनों महासेनाएं परस्पर भिड़ गयीं तो पृथ्वी कांपने लगी। भेरी और तुतूरियों की आवाज, धनुष्यों का टंकार, हाथियों के दंत संघर्ष, योद्धाओं के बाण संघर्ष, खड्गों की खनखनाहट, प्रलयकाल के समुद्र घोष के समान सर्वत्र सुनाई पड़ी। ३७ खड्ग से खड्ग के टकराने पर उनसे चिनगारियाँ फूट

करवाळोळ् करवाळ् पळंचे किडिगळ् पेराने पेरानेयोळ् ।
भरदिदं मोगमिक्के दंत शकलंगळ् तेर्गळोळ् तेर्गळु- ॥
ब्बरमेसाडे तुरंग केतन चयंगळ् कोंतदोळ् कोंतमा- ।
सुरमप्पंतेडरोत्ते तोरवेणगळ् बीळ्तंदुग्राजियोळ् ॥ ३८ ॥

अंतुभय चतुरंग सेने भरंगेय्दु तागि थट्टोत्तिरिव समयदोळ्-
रणगळ्तले कैमिगे बि-
ल्लणि कडुकेय्दुभय बलदोळंबिक्कुवुदुं ।
कणे कणेयनोरसे कदनां
गणदोळ्किडि केदरुदत्तु केंडद मळेयं ॥ ३९ ॥

बाणांधकारमुद्गत*शोणित संध्याभ्रमस्तमित रवि किरण ।
श्रेणि धनुर्बल समर* क्षोणि चमू कालरात्रि पडेदुदगुर्वं ॥ ४० ॥

मार्मलेदु बिल्ल बित्तिग
रोमोदलिसे कणेगळुर्चि पोदुवु नेरनं ।
धर्मगुण च्युतरन्यर
मर्म विभेदिगळेनिप्पुदोदच्चरिये ॥ ४१ ॥

ऒडेगिडे गगनं पवनं
नेडेगिडे बिल्वडेगळिसुव कणेगळ् नेरनं ।

---

पड़ीं। हाथियों से हाथी भिड़ गये तो उनके दांत बिजली-से चमक गये। रथ से रथ टकराये गये। घोड़े एक दूसरे पर चढ़ गये। हिंसात्मक आयुध आयुध से टकराये तो युद्धभूमि में लाशें गिरने लगीं। ३८ —इस तरह दोनों पक्षों की सेनाएं आपस में भिड़ रही थीं। उतने में, रणभूमि में अंधेरा छा गया। धनुर्धारियों के हाथों से छोड़े गये बाण परस्पर टकराने के कारण फूटी चिनगारियां अग्निवर्षा करने लगीं। ३९ बाणों से निर्मित अंधकार और बहनेवाली रक्त धारा संध्या के बादलों और डूबती हुई सूर्यकिरणों की याद दिलाने लगी। धीरे-धीरे दोनों सेनाओं ने निर्जन रात की भयानकता का निर्माण किया। ४० धनुर्धारी योद्धाओं ने सम्मुख होकर जल्दीबाजी में बाण छोड़े तो वे निशाना चूक गये। धर्मच्युत व्यक्तियों के निशाने चूकने में आश्चर्य क्या है? । ४१ धनुर्धारियों की बाणवर्षा से आकाश में रिक्त स्थान ही न बचा। बाणाघात के कारण गिरनेवाले शवों के ढेरों से वायु-संचार में बाधा पड़ी। सुभट (वीर) यमपुरी पहुंच गये। ४२ चमगादड़ अपने काले रंग से जैसे जंगल के

बिडेनट्टु सुभटरसुवं
नडेयिसिदुवु यमपुरक्कें यमदूतरवोल् ।। ४२ ।।

रविकिरणंगळस्तमिसे कळ्तले कैमिगे सुत्ति मुत्तिदि- ।
द्विवरमनागसं पोळेव पोंगरियिं कविलागे भोरेनल् ।।
पवन जवंगळिर्वलद बिल्वडे पोक्किसे बाण संकुलं ।
कविदुवु तोळेविडु कविवंतेलेयिक्किद काननंगळं ।। ४३ ।।

नडेगिडे गाळि पूळे गगनस्थळि तेक्कने तीवे दिग्मुखं ।
नडुविरुळंते कळ्तलिसे पट्टपगल् रणमं निरीक्षिसल् ।।
पडेयदे देवरुं दिविजकांतेयरुं बेरगागे पूणेवों- ।
क्कोंडनाडनादे रळ्पडेय बिल्वडे बीरिदुदस्त्रविद्येयं ।। ४४ ।।

देसेयं नुंगि दिनेशनं नोणेदु रोदोभागमं पीर्दु सं- ।
दिसि मंदैसि धनुर्बलंगळिसे बाणश्रेणि सेनांगदोळ् ।।
बिसुनेत्तर पोरपोण्मे सोर्तरे करुळ् कण्णालिगळ् सूसेखं- ।
डिसे कैगळ् कडिखंडमागे कणकाल्गळ् नट्टुवग्राजियोळ् ।।४५।।

तुडुवंबं बिडुवंबं * नडुवंबं काण्बुदार्गमरिदेंबिनेगं ।
कडुविल्लर् कडुकेय्दिसे*कडुवेगदे परिदुवरुण जलद पोनलगळ् ।। ४६ ।।

सेरगं पारदे पूणेवोक्कु पोरमुय्वं तागे कैवेगम- ।
च्चरियं पुट्टिटसे तीवि तोट्टिटसुवुदुं नेर्दिक्के सर्वागमं ।।

---

पेड़ों के पत्तों को छिपाते हैं वैसे ही धनुर्धारियों के धनुष से वायुवेग से छूटने वाले बाण सूर्यकिरणों को छिपाकर दिगंतों एवं आकाश में अंधकार फैला देते थे। ४३ दोनों पक्षों के धनुर्धारियों ने अपनी अस्त्र विद्या दिखायी तो हवा रुक गयी। आकाश दिखायी नहीं दिया। दिन में ही सर्वत्र अंधकार छा गया। रणावलोकन करनेवाले देवतागण और देवता स्त्री समूह आश्चर्यचकित हुए। ४४ धनुर्धारियों के वाण-कौशलने दिशाओं को निगल लिया; सूर्य को छिपा दिया; प्रतिपक्षियों ने परस्पर गरम रक्त का सिंचन किया; अंतडियाँ और आंखों की पुतलियां वाहर निकल गयीं; हाथ पैरों को काटकर गिरा दिया। ४५ इतने वेग से धनुर्धारी काम कर रहे थे कि वाण चढ़ाने, छोड़ने, और शत्रुओं के सीने में धंस देनेवाली क्रिया को देखना असाध्य था: ऐसे वाण प्रयोग से उन वीरों ने रक्त की नदी वहा दी। ४६ सहायता की अपेक्षा किये विना छोड़े गये बाण शत्रुओं के कंधे पर लगने पर हाथ इतने वेग से चलते कि वाण प्रयोग

शरजालं विसुनेत्तरूण्मे नीरेनेत्तर् सूसे कनेत्तरं ।
बिरिविट्टर्विसे कूडे बिल्वंडे पडल्वट्टिट्टत्तु संग्रामदोळ् ।। ४७ ।।

ओवदे बिल्लविट्तिगरडुर्तिसे रौद्रशराळि रोमरो- ।
मावळिदप्पदुर्चे बिसुनेत्तर सुट्टुरे पर्वि वह्नि जि- ।।
ह्वावळियंदमागे तीवलिक्किद पेर्वळु वेगेगिच्चिनोळ् ।
वेववोलिर्दुविर्वलद बिल्लणिगळ् रणरंग भूमियोळ् ।। ४८ ।।

स्तनित धनुर्गण ध्वनि शतह्रद शस्त्रमरीचि नाडे क- ।
र्गने कनिवोड्डु कारमुगिलंतिरे भोरने कोंडुमागळं ।।
बिनमळे रक्तवारि वेदेगूडिसे सालिडे पेर्वेणं रणा ।
वनितलमिर्दुदंकुरितमादवोलोक्क करुळ्विणिल्गळि ।। ४९ ।।

सततं सत्पथवर्तिगळ् भृजुगळत्युत्कृष्ट वंशंगळ- ।
न्वित सद्धर्म गुणंगळस्त्रततिगळ् निस्त्रिंश धानुष्क सं- ।।
गतियिदं पर मर्मभेदिगळेनल् तीक्ष्णंगळुं मांस लो- ।
हितवक्त्रंगळुमादुवेन्नरुमनें दुस्संगमेगेय्यदो ।। ५० ।।

आसुरमार्गे कैय कणेगळ् तवुवन्नेगमेच्चु बिट्टु बा- ।
णासनमं करुत्तिरिदु कट्टिदद गेणुडिवन्नमन्यर ।।

---

में आश्चर्यकारक वेग आ गया । हर वाण शत्रु पक्ष के वाण जाल को काटकर प्रतिस्पर्धी के सर्वांग को घेरकर, गरम और फेनिलरक्त बहाकर, काला रक्त-सा प्रवाहित होने लगा । फिर भी धनुर्धारी युद्ध करते रहे । ४७ धनुर्विद्या कोविदों द्वारा छोड़े गये रुद्रबाण-समूह शत्रुओं के रोमकूप में धंसकर, गरम रक्त प्रवाहितकर, तूफान जगाकर, दावानल फैलाकर अग्नि ज्वालाओं को प्रज्वलित करने लगे। दोनों सेनाएं दावानल पर बलि चढ़े हुए कानन के समान युद्धभूमि में दिखाई पड़ीं । ४८ धनुष टंकार की ध्वनि, तीक्ष्ण बाणों की चमक और असंख्य सेना समूह काले मेघ सदृश दिखाई दे रहे थे और युद्धिभूमि में खड़ी सेनाएं ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानो कतार में बोयी गयी फसल (के पौधे) हो और उस पर बाण-वर्षा के रक्त-जल बरस रहा हो । ४९ सदा धर्मानुयायी, ऋजुस्वभावी, श्रेष्ठवंशी, सद्गुणी माने-जानेवालो शस्त्रास्त्रों से दुष्ट व्यक्ति और दुर्जनों के मर्मभेदन में समर्थ कहलाकर उसे कार्य रूप में सच साबित करते हुए रणभूमि में मांस, रक्त, मुख दृष्टिगोचर हुए । दुष्ट साहस से क्या नहीं हो सकता ? । ५० तीक्ष्ण बाणों से भरे तर्कस के रिक्त होने तक (बाण) प्रयोगकर धनुष की प्रत्यंचा टूटता-सा भिड़नेवालों ने भयानक दृश्य उपस्थित किया । वहाँ धनुर्बाण

ट्टासुरमार्गे कूर्गणेगळिदिर्से मुंदडियिट्टु वीर सं- ।
न्यासदोळप्सरोगणमनल्लि केलर् बसदाग माडिदर् ।। ५१ ।।

नोसलोळ् नट्टंबं कि
ळ्तु सुभटनुच्चळिसे पुण्णबायिं नेत्तर् ।
नोसलुरिगण्णुरियेनें न-
र्तिसुव मरुळ्वडेय वडुवें मृडनवोलिर्दं ।। ५२ ।।

अंतु बिल्वडे पडल्वडे—

जवनेर्दें बिचुव तेरदिं * तवुतर्पुदुमुभय बल धनुर्धर सैन्यं ।
जवनेमें वोरिगळ् ता- * गुवंते तागिदरडुर्तु कडितलेकारर् ।। ५३ ।।

केंबलगेय पोळेपिं सं- * ध्यांबुदमं पडेदु जडिदु कडितलेदूगु- ।
त्तुं बिडदे सिडिल बळगमि-* देंबिनेगं तागिदत्तु भार्गव सैन्यं ।। ५४ ।

आगळिर्वलद कडितलेकाररलगलगिनोळ् पळंचे तागि निर्घातवुप्परं ताळवट्टमवितमुळितमेंब पलवुंतेरदिरिव बिन्नणदोळ् नेरेदु ताळुंतट्टुं पोय्यें कडिखंडवाद मेय्युं कुणिल्वारुव मुडमुं मुंडवोद कय्युं कंडुवोद तोडेयुं पिसुळ्द किळ्वोडेयुं कणेवोद कणकालुं दोणेवोद मेगालुं परिदु पाय्व पंदलेगळुं देसेदेसेगे तिण्णमार्गे सूसुव कण्णालिगळुं मुरिद मूलेगळुं परिद पोकुंळ्गळुं सोर्वकरुळ्गळुं आर्वं मरुळ्गळुं

ऐसे चमकने लगे कि अन्य दर्शक ऐसे अचंभे में आ गये मानो शस्त्र संन्यास लेना चाहते हों। ५१ माथे पर धंसे बाण को खींच निकालने पर वीरों के घाव के छेद से रक्त प्रवाहित हुआ तो वे ऐसा लगा मानो पिशाचियों के बीच ललाट स्थित तृतीय नेत्र से अग्नि बरसाकर नृत्य करनेवाले शिवजी हों। ५२ —इस तरह धनुर्धारी सेना इधर-उधर बिखर गयी। दोनों पक्षों की धनुर्धारी सेनाएँ इस तरह इधर बिखर गयीं तो उभय पक्षों के खड्गधारी ऐसा लड़ने लगे मानो यम के भैंस परस्पर टकरा रहे हों और यम की छाती फटने लगी हो। ५३ वीरों द्वारा धारण किये हुए खड्ग परस्पर टकराते समय वे ऐसा चमकने लगे मानो संध्या की लालिमा को धारण किये हुए बादल हों। ५४ —दोनों पक्षों के खड्गधारियों के ढाल और म्यान परस्पर टकराये। सर्वत्र विभिन्न प्रकार से प्रहार करनेपर, कटे हुए शरीर, कूदते हुए सिर, कटे हुए हाथ, टूटे हुए जांघ, खून से सने पेट के निचले भाग, बाण से चीरे हुए पैर, छेदों से भरे पैरों के ऊपरी भाग, कटकर उड़ते हुए सिर, दिशा-दिशाओं में घूमती हुई आंखों की पुतलियाँ, टूटी हुई

कॆत्तुव तनिगंडमं कुणिव मरुळ्तंडमुं नॆत्तर तॊरॆयुं नॆणद पळ्ळंगळुं पॆणद बणंबॆगळु कोळ्मिदुळ कोळ्कॆसरुमगुर्वुवडॆयॆ—

परिद तलॆ रागदिं बॊ-
ळ्बिरिदाविनमट्टॆ कट्टिदलगिदं त- ।
ळ्तिरिवुदुमॊडनॊडनॆ बय-
ल्दॊरॆवरिदुवु रौद्ररसमुमद्भुत रसानं ॥ ५५ ॥

तलॆगरॆयदणिम सत्तर * तलॆगळनट्टॆयॊळमर्चिकॊंड्ड्वॆडॆयॊळ् ।
तलॆ तडवरलतरियरॆ*तलॆयं तलॆविडिदु विडदॆ तलॆवत्तिदरो ॥ ५६ ॥

अंतु पेरणॆ पॆणमयमागॆ मॆरॆदप्पिद पूर्वापर पारावारवीचिय निचयमॆनिसि—

सॆरगं बॆरगं वगॆयदॆ
पॊरॆदाळ्दन जोळवाळि निलॆ गोळाय्लर् ।
परियिपुदुमॊंदॆ नॆणॊळ्
परिवंतिरॆ परिदुवुभय वलद हयंगळ् ॥ ५७ ॥

आहव कर्कशरखा- * रोहकरॊट्टैसि कीरि विट्टक्कुवुदुं ।
लोह खुरंगळ् परिदुवु* वाहिनिम तरंगमॆनॆ तुरंग चयंगळ् ॥ ५८ ॥

---

हड्डियाँ, फटी नाभियाँ, लटकती हुई अंतडियाँ और इन सबको खानेवाले पिशाच, भूतगण रक्तधारा, चरबी के तालाब, शवों के ढेर, वेजों का कीचड़ आदि भयानक दिखाई दे रहे थे। कटे हुए सर चिल्ला रहे थे। लगे हुए वाणों से शरीर पुनः छिद्रित हो रहे थे। ऐसे में रौद्ररस और अद्भुतरस एक साथ जाग रहे थे। ५५ युद्ध में मरे हुओं के सिर एवं धड़ को ले जानेवालों के नृत्य की धूमधाम का वर्णन कैसे किया जाय ? । ५६ —इस तरह शवों से लदी युद्धभूमि का नृत्य बढ़ने लगा और उपस्थित सेना असीम समुद्र की तरंगों के समान दृष्टिगोचर हो रही थी। किसी की वीरता या वल की अपेक्षा किये विना नायक का ऋण चुकानेवाले अश्वारोही सैनिक युद्धभूमि में वढ़ रहे थे कि उनके सुन्दर व्यवस्थित घोड़ों की पंक्ति ऐसे प्रतीत हुई मानो एक धागे में पिरोये गये फूल हों। ५७ युद्ध में अश्वारोहियों ने एक साथ वीरालाप किया तो टापों पर लगे हुए लोहे के नालों से सुशोभित घोड़े नदी की तरंगों के समान आगे बढ़ने लगे। ५८ घोड़ों पर ओढ़े गये पंचवर्ण के रेशमी वस्त्र में कामदेव के धनुष का निर्माणकर अश्वारोही अपने द्वारा धारण किये हुए वज्रकवच की

कट्टिद पंचवण्णिगॆय पट्टॆय तॊंगळॊळिंद्रचापमं ।
पुट्टिसि तॊट्ट वज्रकवचच्छवियॊळ् चपला कलापमं ।।
पुट्टिसि तागि तळ्तरिदु लोहित वृष्टियनासवारिगळ्।
पुट्टिसॆ मॆरॆदप्पि कवितंदुदु रौद्ररसं रणोर्वियॊळ् ।। ५९ ।।

ऒदविद लोहवक्करॆय वाहकरिक्किद सीसकंगळॆ- ।
त्तिद करवाळ वज्रकवचंगळ कांति दिगंतराळमं ।।
पुदिविनॆगं मनःपवन वेगदॆ नोळ्पर कण्गळॊळ् बिसि-।
लगुदुरॆगळंददिं कुदुरॆगळ् पॊळॆदुळ्किदुविर्वलंगळॊळ् ।। ६० ।।

अंतु परिदु तागुवुदुं—
जवनरवावु कॊंडुवॆनॆ कर्कडॆ कॊंडुवु चक्रमॆय्दॆवं- ।
दुवु लयकाल चक्रमॆनॆ नाळिय कोल् जवनाळिवॆंबिनं ।।
कविदुवु तोमरं जवन डामरवादुवु जानुदघ्नमा- ।
दुवु तरवारियिंदिरियॆ लोहितवारिगळासवारिगळ् ।। ६१ ।।

पायिसि पॊय्यॆ गोळयिलरॊर्वरनॊर्वरगुर्वु पर्वॆ का- ।
ळायस शुक्तियिं समॆद सीसकादिं बहु राहु मंडल ।।
प्रायमॆनिप्प दानवर पंदलॆगळ् रविमडलंबरं- ।
पायॆ बिसिल् पॊडर्पुगिडॆ पाळिसिदत्तुपराग लीलॆयं ।। ६२ ।।

बाळुडि पारिबीळॆ पगलुळ्कदवॊल् रुधिरं दिगंतमं ।
मॆळिसि कॊर्वि कल्पदवसानद संजॆमुगिल्गळंदमं ।।

---

प्रभा में बिजली की चमक निर्माण करके, विपक्षियों से भिड़कर, भेदकर, रक्त प्रवाह बहाकर, युद्धभूमि में रौद्ररस का दृश्य प्रस्तुत किया । ५९ लोहे के तीरों से, सवारों के शिरस्त्राणों से, उनके उठाये हुए खड्गों के वज्रकवचों से प्रस्फुटित होनेवाली चमक दिगंतों में फैलकर, मनोवेग जगाकर, दर्शकों की दृष्टि में मृगजल की भ्रांति पैदाकर देती थी । ६० —इस तरह आगे बढ़कर भिड़ने पर, आयुध परस्पर भिड़ गये । चक्र प्रलयकाल के चक्र के समान कंठनाल को काटने लगे । यम की गर्जना की भांति बाणों ने घेर लिया । खड्गों से प्रहार किया तो रक्त प्रवाह ही बहने लगे । ६१ अश्वारोही घोड़ों को भगाकर शत्रुओं पर प्रहार करने लगे तो उनका शौर्य भयानक दिखाई पड़ा । मोती के सीपों से निर्मित लोहे के शिरस्त्राण सिरों के साथ आकाश तक उड़कर पृथ्वी पर गिरे तो उनके प्रकाशपुंज ने सूर्यप्रकाश को फीका कर दिया । ६२ खड्ग के टुकड़े उड़कर ऐसे गिर रहे थे मानो

पाळिसॆ सूसि कोळ्मिदुळ तंडमिळावळयक्कॆ विळ्द ता-।
राळिगळंतगुर्विसॆ भयंकरमाय्तु तुरंग संगरं ।। ६३ ।।
ताळ्दुंबरमुत्क- * ल्लोळमसृक्सिंधु काळ्पुरंबरिविनॆगं ।
ताळ्ं तट्टुंबोय्दर्* गोळयिलर् सुभटरट्टॆगळ् तॆंकुविनं ।। ६४ ।।
आहव दोहळं तमगॆ कैमिगॆ वाळरॆबोय्गॆ बॆंचदु- ।
त्साहमनप्पु कॆय्दिदरिदु पोगदॆ मण्मळियागॆ वाजियुं ।।
वाहकरुं मरुळ्वडॆयुमागडॆ तम्मोडनाडॆ रागदिं ।
वाहकरट्टॆयुं तुरगदट्टॆयुमाडिदुवानि रंगदोळ् ।। ६५ ।।
नॆरॆदु निशाटरॆल्वुळियॆ तिंद गजंगळॆ नावॆयागॆ पुल् ।
मरुळ कुटुंबमं पॆणद कैगळॆ पुट्टुगळागॆ रागदिं ।।
तॆरॆयनडंगॆ पोय्दु मुगिलुद्दमॆनल् परियुत्तुमिर्प नॆ- ।
त्तर तोरॆयं मरुळ्तोळसि पायिसुतिर्दुवु युद्धभूमियोळ् ।। ६६ ।।
अंतुभय बलद वाहक व्यूहमोमोंदलोळॆ मण्मळियागॆ—
क्षितिचक्रं निजभारदिं तॆणरिदत्तॆंबन्नॆगं चक्र ची- ।
त्कृतवा कल्पघनाघन स्तनितमॆंबन्नं धनुर्दंड टं ।।
कृतमुद्याममयाट्टहास रसमॆंबन्नं हयानीक हे- ।
षितमत्यद्भुतमागॆ तागिदुवु तेर् तेरोळ् रणक्षोणियोळ् ।। ६७ ।।

---

अभी-अभी उल्कापात हुआ हो। दिगंत तक रक्त की चींटे उड़ीं तो ऐसा प्रतीत हुई मानो कल्पकाल की संध्या के बादल हों। पृथ्वीपर गिरनेवाले बेजे नक्षत्रों के समान भयानक दृश्य उपस्थित कर रहे थे। ६३ घुड़सवार इस वेग से आगे बढ़ रहे थे मानो जंगल का कोई पागल प्रवाह हो; प्रति-स्पर्धियों से ऐसा लड़ रहे थे कि घायलों की रक्त धारा नारियल वृक्ष की ऊंचाई तक उड़े। ६४ युद्ध की इच्छा घटने पर भी, खड्ग म्यान में प्रविष्ट होने पर भी, उत्साह और निडरता से विरोधियों को चीरकर, पलायन किये विना युद्धभूमि में वीरगति पाकर, धूल धूसरित हो जाने पर घुड़सवारों के शरीर पिशाचों के साथ नृत्य कर रहे थे। ६५ मरे हुए राक्षसों एवं हाथियों की हड्डियों से, जिनमें कोई मांस बचा नहीं था, नांव बनाकर, शवों के हाथों को ही पथवार (डांडा) बनाकर, बादलों की ऊंचाई में पहुँचकर बहनेवाले रक्त प्रवाह में भूत-पिशाच युद्धभूमि में इधर उधर नावों को खे रहे थे। ६६ —इस तरह दोनों पक्षों द्वारा निर्मित व्यूह टूटकर नष्ट हुए तो, रथों के चक्र के भार से मानो पृथ्वी कराह उठी। रथ चक्रों की चीत्कार ध्वनि, धनुष का टंकार, वीरों का अट्टहास,

रथिगळ् रथगळेंनिसे सा-
रथिगळ् सारथिगळोडनें तळ्तिरियें मरु- ।
त्पथदोळ् मिळ्ळिळसे पळयिगे
रथं रथंगळोळिदिर्चि तागिदुवागळ् ।। ६८ ।।

कदनदोळार्दु सार्दिसे महारथरच्चु सिडिल्दुदीसु सू- ।
सिदुदरगील् कळल्दुदु मडं कडिवोदुवु पापे रूपुगे- ।।
ट्टुदु नोगनोरेवोय्तु तरगं पडलिट्टुदु वैजयंति बि- ।
ळ्दुदु रथ चोदकर् मडिदरागळपार शर प्रहारदिं ।। ६९ ।।

सारथि मडिदोडमळ्कदे* तेरं जोडिसुतुमांत रथियोळ् सेरगं ।
पारदे तळ्तिरियुत्तुं *सारथियुं रथियुमागे कादिदररेबर् ।। ७० ।।

तप्पदे रणमुखदोळ् मुं-*तप्पदटरनिसे महारथर् जवनाळं ।
तप्प कणे रोमरोमं*दप्पदे नांटिदुवु सीटिदुवु विधिलिपियं ।। ७१ ।।

कृत शस्त्रविद्यरप्रति
हत भुजबलरुभय बलद रथिगळ् गतजी- ।
वितरादर् संग्रामदो
ळतिरथ समरथ महारथार्धरथर्कळ् ।। ७२ ।।

---

विभिन्न रसों का निर्माण करते हुए युद्धभूमिमें शत्रुओं के रथ परस्पर भिड़ गये । ६७ रथिकों को रथिकों ने मारा; सारथियों को सारथियों ने मारा; आकाशमार्ग में ध्वजाएं सुशोभित होकर चमककर वहाँ भी रथ रथ से भिड़ गये । ६८ विशेष साहस से रथों पर वाण मारने पर महारथियों के रथ के चिह्न भी मिट गये (दृढ़ता कांप उठी); रथ के अग्रभाग की लकड़ी टूट गयी; चक्र की कील उड़ गयी; रथके पिछले भाग टूट गये; जूए शिथिल पड़ गये; घोड़े दिशाभ्रमित हुए; ध्वजाएँ गिर पड़ीं; सारथी मर गये । ६९ सारथी के मरने पर भी विचलित न होकर, स्वयं रथ हांकते हुए प्रतिपक्ष की दया की अपेक्षा किये बिना उन्हें बाणों से घेरते हुए, अनेक तो स्वयं सारथी और रथिक दोनों बनकर लड़े । ७० युद्ध के अग्रभाग में आगे बढ़नेवाले वीरों पर बाण प्रहार करने पर उनके रोम-रोममें धंस गये और विधि रेखा को मिटा दिया । ७१ शस्त्रविद्या प्रवीण, विरोधियों से न डरनेवाले उभयपक्षों के बलशाली वीर एवं अतिरथी, महारथी, समरथी, तथा अर्धरथी सभी ने युद्ध में मृत्यु का आलिंगन किया । ७२ सेना समूह की हालत वैसी ही हुई जैसे तूफान के आघातों से टकराता हुआ मेघसमूह । इस हालत में तीक्ष्ण अंकुशों का प्रयोग करते हुए महावतों ने हाथियों को

तेरॊड्डु गाळिगॊड्डिद * नीरददॊड्डिनवॊलागॆ कूरंकुशमं ।
चारिसुतुमानॆगळना * घोरणरा रणदॊळणॆदु नूंकिदरागळ् ।। ७३ ।।

मॊगवडमं निषाधि कळॆदंकुशदिणॆदार्दु नूंकॆगा- ।
ळिगॆ गरिमूडिदंतॆ परिदानॆगळानॆगळॊळ् कडंगि का- ।।
र्मुगिलवॊलट्टि मुट्टि कर्डुपि विडॆ पोर्दुवु कोड कॊळॊळ- ।
ल्लुगुतरॆ कोळ्मिदुळ्वॆरसि मस्तक पिंडद मौक्तिकोत्करं ।। ७४ ।।

नडुगॆ धरातलं कदळिका परिघप्रतिघातदिं मुगिल् ।
पडलिदॆ कोपमुं जवमुमेळ्गॆयुमासुरमप्पिनं मद ।।
बिडुतिरॆ कीरि तागिदुवॆरळपडॆयानॆगळानॆयॊळ् सिडिल् ।
सिडिलॊळॆ तागिदंतॆ किडि बीळ्तरॆ तागॆ रदं रदंगळॊळ् ।। ७५ ।।

उगुवॆंटुमदधारॆ बल्सरिगळं दंतांशुगळ् बळ्ळिमि- ।
चुगळं विच्चनॆबिट्टु दिट्टसिडिलं कीळ्माडॆ वंदॆय्दि का-।।
मुगिलॊड्डुं मुगिलॊड्डु तागुववॊलैतंदानॆयॊड्डानॆयॊ- ।
ड्डुगळॊळ् तागिदुवदभुत स्तनितमॆंवन्नं बृहद्बृंहितं ।। ७६ ।।

अंतु दंतिघटॆ दंतिघटॆयॊळांतु मॊगमिक्कॆयुं जोदर् जोदरॊळॆ-साडॆयुं मध्यम निषादिगळ् मध्यम निषादिगळॊळसि मुसल कणाय कंपन मुसुंडि बिंडिवाळ वज्रमुष्टि मुद्गर चक्र परशु तोमर

---

युद्धभूमि में उतार दिया। ७३ महावतों ने मुख का परदा उठाकर, अंकुश से भेदते हुए हाथियों को उतार दिया। हाथी-हाथी से बड़े उत्साह और साहस से ऐसे भिड़े जैसे काले बादलों का पीछा काले बादल कर रहे हों और उन हाथियों ने अपनी दाढ़ों से भेदना शुरू किया तो मस्तक टूटकर मोती बरस पड़े। ७४ खड्गों के आघात से पृथ्वी हिल उठी। ध्वजाएं कांप उठीं। आकाश का बादल छंट गया। क्रोध, आवेगा एवं पराक्रम का आधिक्य होने पर हाथियों का मद बढ़ गया। वे चिंघाड़ते हुए परस्पर ऐसे भिड़े मानो घनगर्जनाएँ आपस में टकरा रही हों। ऐसा टकराने पर दंत-घर्षणा से अग्निकण (चिनगारियाँ) बरस पड़े। ७५ बहती हुई मद-धारा की वर्षा करते हुए, दाढ़ों की घर्षणा से उत्पन्न करते हुए, मेघ गर्जना को नीचा दिखानेवाली दृष्टि लेकर आकर काले मेघसमूह से भिड़नेवाले काले मेघ समूह के समान हाथियों ने अपनी चिंघाड़ों से सारे संसार को हिला दिया। ७६ —इस तरह गज-सेना गज-सेना से लड़ रही थी कि उधर वीर से वीर भिड़ रहे थे। महावत

पाशांकुशादि शस्त्रास्त्रंगळोळेच्चुमिट्टुमिरिदुं पोय्दु मतिभयंकराकार
मागे कादुवागळ्—

केतन दंडाहत जी
मूत घटा पटलदिं रदाहत मदव-।
न्मातंग कुंभदिं रण
भूतलदोळ् बिळ्दुवोडने मौक्तिक मणिगळ्॥ ७७ ॥

करिघटेयिकेलंबिडिदु कत्तिगेयं जडियुत्तुमंगर-।
क्कर पडे तागे मार्पडेय कत्तिगेयोळ् जवनेमे वोरियं-॥
तिरे तलेमट्टु तळ्तिरिदु मेय्वसदिं जवनुंडु कारिदं-।
तिरे कडिखंडमागे करमासुरमादुदु संगरांगणं॥ ७८ ॥

काल्गापिन बल्लणियोळ्
बल्गेय्तदिनिरिदु मडियॆ नेत्तर तोरेगळ्-।
गल्गलाने परियॆ करुळ पी-
णॆल्गळे तॆप्पंगळागे तेंकिदररेबर्॥ ७९ ॥

मणियेरिगे दिशागजं पेळरे कोडेरिगे मारानेगळ्।
रणदोळ् बेंगुडे चोदरेच्च पलवुं नाराचदेरिगे ब-॥
ल्लणिगळ् बेंगुडे केतन प्रचयदळ्ळेरिगे नोळपप्सरो-।
गणमुं देवरुमळ्के वारण रणं कण्गेनगुर्वादुदो॥ ८० ॥

---

महावतों से भिड़ गये। मूसल, त्रिशूल, गदा, चक्र, परशु, पाश, अंकुश आदि शस्त्रास्त्र लड़-भिड़कर मार-पीटकर भयानक रूप से युद्धकर रहे थे कि, ध्वजदंड के आघातों से और दाढ़ों के आघातों से उड़ी हुई मदगजों की दाढ़ मेघमंडल से गिरी हुई मौक्तिक-मणियों के समान दिखायी पड़ी। ७७ गजसेना के दोनों बगल में चलनेवाली खड्गधारी अंगरक्षक सेना ने प्रतिस्पर्धियों का सामना किया तो ऐसा दिखाई पड़ा मानो आयुध लिये और अपने वाहन (भैंसा) पर सवार होकर जीव-राशियों को ले जाने वाले यमधर्म द्वारा रणभूमिमें खाने के पश्चात छोड़ी गयी उच्छिष्टराशि हो। ७८ पैदल सेनाएँ परस्पर भिड़कर मरने लगीं तो कलकल करती हुई रक्तधारा बहने लगी और मृत सैनिकों की अंतडियों के गुच्छे उस धारा में बहने लगे। ७९ सिर में लगे घावों से दिग्गज भयभीत हुए; दाढ़ों के प्रहार के कारण लगे घावों से मदगज रणभूमि त्यागकर पीछे भागने लगे; योद्धाओं के छोड़े गये बाणों के घावों से शत्रुपक्ष पीछे हट गया; ध्वज-दंडों के उड़ने के कारण हुए छोटे घावों को देखकर अप्सराएँ और देवतागण

अगदॊळगं मॊगंवुगुववोल् मददानॆगळानॆयॊळ् मॊगं- ।
बुगुतरॆ दंतदंड हतियिं बिसुनॆत्तर धारॆगळ् भुगि- ॥
ल्भुगिलॆनॆ पाय्दु पॊण्मिदुवु कोळ्मिदुळॊक्कुवु वल्गरुळ्गळि- ।
बगियॆनॆ दोणिविळ्दुरमळ्दरिविळ्दुदु कुंभ मंडलमं ॥ ८१ ॥

इभमिदिरागि तन्नॊडनॆ तळ्तिरिदाजियॊळण्मि सत्तनं ।
सुभटननागसक्कॆ पिडिदॆत्ति भयंकरमागॆ मार्वल- ॥
क्कभिमुखमागि कीरि परिदत्तु सुरप्रमदाजनक्कॆ दुं- ।
र्लभनॆनिसिर्द वल्लभननापददॊळ् पदॆदीव माळ्कॆयिं ॥ ८२ ॥

करिगळ हरिगळ रथिगळ
नरर कबंधंगळॊडनॆ भूर्तगणंगळ् ।
नॆरॆदाडिदुवद्भुनमा-
सुरमच्चरि रौद्रवागॆ रण मंडलदॊळ् ॥ ८३ ॥

अंतु मारांतु क़ादु खचर चातुर्दंतमंतकन पुरमनॆय्दॆ—
वलमळि दॊडळवुगळिदा-
वलिमुख वलवासॆगॆय्यॆ नळनीळर् तो- ।
ळ्वलमं पॊगळिसिदर् दो-
र्वलमं हस्तप्रहस्तरिवलर्दिदं ॥ ८४ ॥

अंतु वानर वलमॆल्लमॊल्लनुलिदोडि नळनीळर मरॆयं पुगुवुदुं—

---

भयभीत हुए। ऐसे में हाथियों का युद्ध भयानक दृष्टिगोचर हुआ। ८० हाथी हाथी के मुख पर मुख रखकर भिड़ गये तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पर्वत ने पर्वत से मुख लगा लिया हो। इस तरह लड़ते समय उनकी दाढ़ों की मारसे गरम रक्त की धाराएं वहकर, बेजा वहकर, अंतडियां लटकने लगीं तो दृश्य भयानक दिखाई पड़ा। ८१ अपने सम्मुख लड़कर मरे हुए सैनिकों को हाथी ने सूंड से ऊपर उठाकर शत्रुपक्ष की सेना की ओर मुँह करके ऊपर खड़े होकर देखनेवालले अप्सरा समूह की ओर वैसे ही फेंक दिया जैसे दुर्लभ व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान की हो। ८२ हाथी, घोड़े और रथिकों के शवों के साथ भूत-पिशाचों ने अद्भुत और भयानक नृत्य किये। ८३ —इस तरह लड़कर खेचरों की चतुरंग-सेना यमपुरी पहुँची तो, सेना के मिट जाने पर साहस खोये हुए वानरध्वजियों को देखकर दोनों पक्षों के वीरोंने हस्त प्रहस्त के वाहुवल की प्रशंसा की। ८४ —समस्त वानर

इळे नडुगुविनं रथमं ※ नळन वरूथक्के सेतुवरियिसि कोपा-।
नळनुद्दमुरियॆ हस्तं ※ कॊळदंतकनंतॆ कलुष वश गतनादं ।। ८५ ।।

आगि नळ निरीक्षणदिनजन्यजन्मजनित क्रोधमत्यद्भुतमार्गे—
वस्तारि धनुर्ज्या निन-
द स्तनितं पौण्मॆ नळनमेला क्षणदॊळ् ।
दुस्तरतेजं करॆदं
हस्तद मळॆयॆनिसि हस्तनंबिन मळॆयं ।। ८६ ।।

आगळवन शरवर्षमं नळं बडवानळनंतॆ तविसि—
पौरसुय्वंतापन्नं ※ पॆरॆयंबं तीवि तॊट्टु हस्तन तलॆयं ।
परियॆच्चं संगरदॊळ् ※ मरुवक्कं नळन कणॆगॆ मणियदुदुंटे ।। ८७ ।।

अंतु हस्तनस्तमिसुवुदुं प्रहस्तनति कुपितनागि निज वरूथमं नळन वरूथक्कदिरदिदिरं परियिसुवुदुमा समयदॊळ् नीलमेघनंतॆ गर्जिसि नळनं पॆरगिक्कि निल्वुदुं—

अंतु पॆरगिक्कि नळनं ※ नीं तरिसंदांतॆ बल्पुगिडदण्मण्मॆं- ।
दंतकनॆ मसगि मेलॆ- ※ ळ्दंतॆवॊलिर्दं प्रहस्तनप्रतिमबलं ।। ८८ ।।

अंतु नॆरॆदु निंदु—

---

सेना पीछे भागकर नल नीलके शरणागत हुई, तब, हस्त ने पृथ्वी को कंपाता-सा अपने रथ को नल के रथ से सीधा टकराया। ऐसे में उसका भीषण क्रोध आग की भांति प्रज्वलित हो रहा था। ८५ नल को देखते ही पूर्व जन्म की क्रोधाग्नि भड़ककर अत्यंत भयानक हुई। पुरानी शत्रुता से भय-भीत हस्त ने अपने धनुष को ठंकारकर हस्त-कौशल से बड़े वेग से नल पर बाणों की ऐसी वर्षा की मानो बरसात का पानी बरस रहा हो। ८६ —उसके बाणों की वर्षा को वडवाग्नि की भांति शांत करके नलने— हस्त पर क्रूर बाणों का प्रयोग ऐसा किया कि उसका सिर कटकर गिर जाय। प्रतिपक्ष में नलके बाणों का सामना कौन कर सकता है ? । ८७ —हस्तके अस्त होने पर, प्रहस्त कुपित हुआ और अपने रथ को नलके रथके सम्मुख खड़ाकर दिया। उस समय नील नीलमेघ-सा गरजकर नलके आगे आकर स्वयं प्रहस्तके सम्मुख खड़ा हुआ। तब— "नल को पीछे ढकेलकर युद्ध में मुझसे भिड़नेवाले तेरे साहस की परीक्षा करूंगा, खड़ा रह" ऐसा कहकर प्रलयकाल के यमके समान अप्रतिम साहसी प्रहस्त नीलके सम्मुख आ खड़ा हुआ। ८८ —इस तरह तैयार होकर— चक्र फेंकने पर तेज से

पारुंबळेयिदिडे जव- ॐ मारदे कडुवेगदिदवेय्तर्पुदुम- ।
य्दारु कडिवोगलेच्चं ॐ मारांपुदु मोग्गे नळनुमं नीलनुमं ॥ ८९ ॥

अंतवन नच्चिन कैदुवं कडिखंडमागेच्चु—

मोनेयंबं दोर्णेयिदमुर्चि तिरुवायोळ् सार्चि बेगं प्रह- ।
स्तन वक्षस्थलमं करुत्तिसुवुदुं कालाहिवोल् कोंडु तो ॥
ट्टने बेन्नि पोरमट्टु पोगे सरलि मुंपोदुदायुः प्रभं ।
जनमेंदंदिदिरांपरार् विजयलक्ष्मीलोलनं नीलनं ॥ ९० ॥

अंतु हस्तप्रहस्तरस्तमिसे—

कावें नळनीळर् कोले ॐ साव दशाननन बलमनिंदिगेंबं- ।
तावृत सांध्य द्युति रा-ॐ जीव सखं पश्चिमाब्धियोळ् मेय्गरेदं ॥ ९१ ॥

अंतु नेसर् पडुवुदुमुभय बलमपहार तूर्यमं पोयिसि तंतम्म बीडिगे पोगि समर परिश्रममनारिसुत्तोलगंगोट्टिर्पुदुमा समयदोळ्—

नळ नीळर् भुजवीर्यमं मेरेदुदं हस्तप्रहस्तर् द्विष- ।
द्बळमल्लाडुविनं करुत्तिरिदु देवस्त्रीयरुत्संग मं- ॥
गळपीठस्थितरादुदं नेरेदु चातुर्दतमुं कादि म- ।
ण्मळियादंदमुमं तगुळ्दु पोगळुत्तिर्दर् कैलर् खेचरर् ॥ ९२ ॥

---

आनेवाले उस चक्रको नीलने बीचमें ही पाँच-छः टुकड़े कर दिये। नल नील का सामना करना सामान्य बात है? ८९ —इस तरह उसके प्रिय आयुध को तोड़कर— तरकस से तीक्ष्ण बाण निकालकर, धनुष पर चढ़ाकर प्रहस्तके सीनेपर निशाना लगाकर मारनेपर वह (बाण) कृष्णसर्प के समान धंसकर पीठ से बाहर निकलने से पहले उसकी देह चेतना समाप्त हुई। विजयलक्ष्मी-पति नील से लड़कर कौन जीत सकता है? ९० —इस तरह हस्त प्रहस्त दोनों मारे गये तो— पश्चिम में उतरकर सूर्य समुद्र में (शायद इसलिए) डूब गया कि नल नीलके हाथों नाश होनेवाली रावण सेना को कम से कम उस दिन के लिए बचा सके। ९१ —सूर्यास्त होनेपर उभय सेना ने युद्धविराम की भेरी बजायी और-अपने अपने डेरेमें जाकर युद्ध की थकावट मिटा रही थी। उस समय— कुछ खेचर वीर किस तरह नल नील ने अपना साहस दिखाया या, हस्त प्रहस्त किस तरह अपने शत्रु पक्ष को विचलित करके वीरगति को प्राप्त होकर देवतास्त्रियों की पीठ रूपी गोद में बैठ गये और किस तरह चतुरंग सेना अपनी वीरता एवं कुशलता दिखाती हुई युद्ध भूमिमें गिरी आदि की प्रशंसाकर रहे थे। ९२

अदल्लदेयुं—

कॆलर्गनुलेपमं कॆलर्गॆ भूषणमं कॆलर्गायुधंगळं ।
कॆलर्गॆ तनुत्रमं कॆलर्गॆ वाजिगळं कॆलर्गुन्मदेभमं ॥
कॆलर्गॆ वरूथमं तडॆयदट्टुव दंदुगदिदमंदु का- ।
णलॆ बॆळगार्दुदिर्वलद नायकर्गॆ कदनानुरागदिं ॥ ९३ ॥

अनंतरं—

कदन रसास्वादन लो-※ भदिनॆरडुं पडॆयुमॊडनॆ पार्दिर्दपुवॆ- ।
न्नुदयमनार्गॆ तडॆदि-※ र्पुदु पदनल्तॆंदु दिनपनुदयंगॆय्दं ॥ ९४ ॥

जवनिकॆयं निशाचर कबंधमनाडिसलंधकारमं ।
रवि कळॆदिक्कॆ तन्न कर पल्लवदिंदुषॆ पिंगॆ पण्णि बं- ॥
दुवु करि कीरिबंदुवु हयं रणभूमिगॆ तेर् तॆरळ्दु बं- ।
दुवु तरिसंदु बंदुवु कडंगि धनुर्बलमिर्वलंगळॊळ् ॥ ९५ ॥

अंतु बंदु कॆवीसुवुदुं—

अंतुभय बलद चातु-※ र्दंतं पॆसॆळॆ कादि दॆसॆवलिगुडलॆं- ।
दंतकनडुवुळ् गियन-※ ट्टुंतिरॆ कडिखंडमाय्तु रणमंडलदॊळ् ॥ ९६ ॥

आ समयदॊळ् संग्राम रस रसिकरागि—

मारीच सिंहकटिवाळ् ※चारण शुक मकर विघ्न शरपंजर गं- ।
भीर मदनांकुशर् सम-※ रारंभदॊळिर्दरूरदॆ वज्रप्रमुखर् ॥ ९७ ॥

---

—इसके अतिरिक्त— कुछ लोगों को औषधि लेपन, कुछ लोगों को आभूषण, कइयों को आयुध, कइयों को कवच, और कुछ लोगों को घोड़े, अन्यों को मदगज, कुछ लोगों को रथ देते-देते सुबह हुई तो दोनों पक्षों के वीरों में युद्धोत्साह दुगुना हुआ। ९३ —तत्पश्चात— यह सोचकर कि युद्धोत्साह से दोनों सेनाएं उसके उदय की आस लगाये खड़ी हैं, अतः अब देर करना उचित नहीं है, सूर्य उदित हुआ। ९४ सूर्यने अपनी किरणों से रात के परदे को हटाया। उषाकाल बीत गया। तब हाथी, घोड़े, रथ, आदि रणभूमि की ओर निकल आये; साथ ही चतुरंग सेना भी साहस दिखाने के उत्साह से घुस आयी। ९५ —आकर हाथ हिलाने पर— दोनों पक्षों की चतुरंग सेनाओं ने परस्पर भिड़कर दिक्बलि चढ़ाने के उद्देश्य से ऐसा युद्ध किया मानो यमराज रसोईघरमें खिचड़ी तैयार करता हो। ९६ —उस समय युद्ध-रसका आस्वादन करनेवाले रसिक बनकर— मारीच,

अंतिर्द पौलस्त्यन पदिवर् सामंतरोळं प्रभामंडलन सामंतर् संतापनुं प्रथितनुं नंदननुं उद्धतनुं महोदधियुं उद्धामकीर्तियुं विघटनुं उद्दामनुं गजनुं दुरितास्त्रनुमेंब पदिवरुमोवोर्वरं गरिसन्नेगेय्दु कादुवल्लि—

संतापनं विरोधिगें ※ संतापमनुट्टुमाळ्प वल्लाळं क- ।
ल्पांत कृतांतनवोल् कों- ※ दं तल्लळिपंतु मार्वलं मारीचं ॥ ९८ ॥

रावणसेनें बाजिसें भयानकमं रघुराम सेनेयोळ् ।
तीवें भयानकं गगनमंडलमं निज चाप टंकृतं ॥
मूवळसागें मुत्तें मकरं वडवामुखदन्नमप्प वा- ।
णावळियिं महोदधियं जीवनमं तवुवन्नमींटिदं ॥ ९९ ।

उद्दामन पंदलें परि- ※ दुद्दंपारुविनमिसुवुदुं गंभीरं ।
बद्दवणद पळेगळ् किवि ※ सद्दंगिडे पोय्दुविद्रवेरिय पडेयोळ् ॥१००॥
सिंहकटि रिपुमदद्विप ※ सिंहं प्रथितननजेय वाहावलनं ।
संहरिसिदं दशास्यन ※ सिंहासंदियनसंचलं माडुववोल् ॥१०१॥

अंतु निजवरूथिनिय नाल्वरुं महासामंतरंतक जठराग्नि-गाहुतियप्पुदुं घृताहुतिवडेद हुतवहनंतुळिद सामंतरतिकुपितरागि

---

सिंहकटि, चारण, शुक, मकर, विघ्न, शर, पंजर, वज्रप्रमुख, मदनांकुर आदि युद्ध प्रारंभमें साहस से सम्मुख खड़े थे । ९७ —इस तरह के रावण के दस सामंतों के साथ प्रभामंडल के संताप, प्रथित नंदन, उद्धत, महोदधि, उद्धामकीर्ति, विघट, उद्दाम, गज, दुरितास्त्र नामक दस सामन्त लड़ने लगे तो— विरोधियों को सन्ताप प्रदान करनेवाले वलशाली सन्ताप को प्रलय-काल के यमस्वरूपी मारीचने मार दिया । ९८ रावणकी सेनाने विजय दुंदुभि वजायी । उस दुंदुभि ने राम सेना को तड़पा दिया । अपने धनुष-टंकार से राम सेना को तीन घेरों में घेरता-सा मकर ने अपनी वाणावली से महोदधि के प्राण का अपहरण कर दिया । ९९ गंभीरने उद्दामका सिर काट दिया तो वह (सिर) दूर जा रहा था कि इंद्रवैरी की सेना में जयजयकार हुआ । १०० —वैरीरूपी हाथियों के लिए सिंहरूपी सिंहकटि ने प्रख्यात और अजेय प्रथित का संहार कर मानो रावण के सिंहासनको स्थिर वना दिया । १०१ —इस तरह अपनी सेना के चार महा सामन्तों को यमपुरी प्रविष्ट होते देखकर अन्य सामंत ऐसे ही क्रुद्ध हुए जैसे जलती आग में घी पड़ गया हो । कुपित होकर रावण की सेना को घेरकर प्रलयकाल के भैरव की भाँति वड़े वेग से लड़ने लगे तो— दोनों रथ एक

रावणन वरूथिनियंगरिसन्नेगेय्दु लयसमयद भैरवन भीकराकार-
मनप्पुकेय्दु कडुकेय्दु कादुवल्लि—

ऎरडुं तेरोंदनोंदेय्तरे नडुगे नेलं नेमि संघट्टदिंदं- ।
बरदोळ् मत्तेभ सिंह ध्वजमभिनयमं बीरे कोदंड टंका- ।।
र रवं केगणमें सार्तदिसे दशमुख सामंतनं विघ्ननं तो- ।
मर्रदिदुद्दामनिट्टं बिड कडुनरनं नट्टु तूगाडुवन्नं ।।१०२।।

इडे वज्रि वज्र हतियिं * केडेद कुलाचलद माळकेयिदं विघ्नं ।
केडेदं तोमर हतियिं * दोडनुण्मे जयानक स्वनं कपिबलदोळ् ।।१०३।।

दनुजेंद्रन सेनेय व- * ज्रन दोर्दंडेगळं कुठारायुधदिं ।
मनुजेंद्रन सेनेय विघ * टनाजियोळ् पोडुगारनंतिरे तरिदं ।।१०४।।

आ रणरंगदोळुन्मद * वारणमजगरमनिक्कुवंतवयवदिं ।
चारणनं कोंदिक्किद * नारळवुद्धतनवार्य बाहावीर्यं ।।१०५।।

ऎडेवलिगुडलेंदंतक * नडुवुळ्गियनट्ट तेरदे तारुंतट्टुं ।
गेडेदिरे रणदोळ् मत्तं * कडिखंडमदाय्तु नोडे रणमंडलदोळ् ।।१०६।।

शुकनं दुरितास्त्रं कि- * शुक विटपियनळुर्व दाव पावकनंतं- ।
तक होमकुंडदोळ् नूं * के कंडु कालाग्नियंते रावणनुरिदं ।।१०७।।

---

दूसरे से टकराये और पृथ्वी कांप उठी। चक्रोंकी पट्टिये ने एक दूसरे से टकराकर गजसिंहों की गर्जना को प्रतिध्वनित किया। धनुषों के ठंकार बढ़कर, दशमुख के सामंत विघ्न को उद्दाम ने बाण मारा तो उसके लगने से वह डोलायमान हुआ। १०२ —उद्दामके बाणाघात से विघ्न उसी तरह धराशायी हुआ जिस तरह देवेंद्र के वज्राघात से कुलपर्वत ढह गये थे। इसे देखकर कपि सेना में जयभेरी बज उठी। १०३ रावण सेनाके वज्रके गदा और अन्य आयुधों को राम सेना के विघट ने युद्धमें काट तोड़ दिया। १०४ उस युद्धमें अद्भुत एकाकी वीर उद्धात ने चारण को उसी तरह मारा जिस तरह मदगज अजगर को टुकड़ा-टुकड़ा कर देता है। १०५ —युद्ध भयानक होने पर दोनों पक्षों के सैनिक गिरकर ऐसे मरे मानो दिक्बलि देने के लिए यमराज ने खिचड़ी बिखेरा हो। १०६ —किंशुक वृक्षको दावाग्नि जिस तरह जला देती है उसी तरह दुरितास्त्र ने शत्रुको यमके होमकुंडमें ढकेल दिया तो रावण प्रलयाग्नि के समान क्रुद्ध हुआ। १०७ नंदन ने अपने हाथ के खड्ग से शर पंजर को युद्धभूमिमें कटने तक मारा तो कपिसेना में जयभेरी सुनायी पड़ी। १०८ जिस तरह

शरपंजरनं यमकुं-※ जरक्के कडिकोंबुमाडि कडिखंडमेनल् ।
करवाळि नंदनना-※ जिरंगदोळ् पोय्ये पोय्दुवुत्सव पटहं ॥१०८॥

गजरिपु नखर प्रकरदे
गजमं सीळ्दोट्टुवंते मदनांकुशना- ।
त्मजयासियिंदे कोंदं
गजनं रावणन सेनेसुगिदुगिविनेगं ॥१०९॥

अंतेरळ्बलमुमोट्टजेगिडदे तळ्तिरिदु पाळियनसकळियदरिये—
चंडपराक्रमर् दनुजनायकरं रणरागदिं प्रभा- ।
मंडल मुख्यनायकरुमोर्वरोळोर्वरिरिदिर्चुवंदमं ॥
कंडु कृपाळु माणिसुवेनिंदिन युद्धमनेंब माळ्केयिं ।
चंड मरीचि पश्चिम पयोधियोय्यने मेय्यनिक्किदं ॥११०॥

अंतु नेसर् पडुवुदुं—
अपहार तूर्यमं पोय्सि- ※ सि पडेगळेरडुं रणोर्वियिंदं तंत- ।
म्म पुरक्के वोदुवानक※ विपुल रवं गगन विवरमं तीवुविनं ॥१११॥

अंतु बीडिगे पोगि संग्राम संरंभदोळुभयबलमु मिर्पिनं—
मत्कुलन विजयनाट्य च-※मत्कृतियं नोडि कण्गळं तणिपुवेनें- ।
बुत्कंठतेयिंदुदय कु-※ भृत्कूटमनेरिदंतिरिननुदयिसिदं ॥११२॥

---

गजरिपु सिंह अपने तीक्ष्ण नखों से हाथी को चीर देता है, उसी तरह मदनांकुश ने अपने खड्गसे गज को मार गिराया तो रावण सेना में वाद्य स्वर गूंज उठे। १०९ —इस तरह दोनों पक्षोंने साहस से लड़कर बारी-बारी से विजय ध्वज फहरायी। दानव सेनाके पराक्रमी नायकों, एवं कपि सेनाके प्रभामंडल आदि मुख्य नायकों को परस्पर सम्मुख होकर लड़ते देखकर उस दिनके युद्ध को रोकने के विचारसे सूर्यभगवान पश्चिम दिशा की ओर झुक गये। ११० —इस तरह सूर्यास्त होने पर— युद्ध-विराम की तुतूरी बजवाकर दोनों पक्षों के सैनिक युद्धभूमिसे अपने-अपने शिविर की ओर जा रहे थे कि उनकी तुतूरीध्वनि आकाश में गूंज उठी। १११ —इस तरह शिविर पहुँचकर उस दिन की जय अपजयके बारे में चर्चा कर रहे थे कि— सूर्य इस उत्साह से कि निजवंशज रामकी विजयश्री की नाट्य चमत्कृति देखकर आँखों को तृप्त करेगा, उदयाचल पर्वत में उदित हुआ। ११२ —इस तरह सूर्योदय होनेपर पूर्वक्रमानुसार दोनों पक्षों की सेनाएं युद्धभूमिमें युद्धनिमित्त तैयार हुई। कुंभ, निकुंभ,

अंतु दिनपोदयमप्पुदुं पूर्वक्रमदोळुभय वाहिनियुं रणभूमिगे बंदोड्डिनिल्वुदुं दशानन सेनापतिगळप्पकुंभ निकुंभ शंभु स्वयंभु चंड प्रचंड कुंडल हलाहल पुष्पचूल धूमराक्षस संध्याक्ष बिंदुमालि भीम भीषण धवळकीर्ति विक्रम विद्युज्जिह्व सौम्यानन शार्दूल प्रमुखरनेकरोड्डि निल्वुदुं—

मनुवंश ललामन रा- ※ मन मुंदे पौडर्पुदोर्प सैपेमगद- ।
त्तेनुतुं खेचर वल्लभ- ※ रनेकरोदविद रणानुरागदिनिर्दर् ॥११३॥

अंतुदात्त राघवनोळ् मित्रभावदिं कूडिद विद्याधररप्प चंद्राभ चंद्रमालि रतिवर्धन सिंहरथ मेघवाहन भीमरव कुमुदावर्त सुषेण जयमित्र मानार्ह महेंद्र मेंघपर्वत सर्वप्रिय तरंग तरल चपलावेग विद्युत्कर्ण जयविजयरेंब रणप्रणयिगळ् तमतमगे समकक्षरप्प विद्याधर प्रतिनायकरोरोर्वरोळगुर्वुमद्भुतममागे कादुवल्लि—

उडिव रथंगळिं मडिव वाजिगळिं कडिखंडमप्पेर- ।
ळ्पडेय पदातियिं केडेव वारणदिं कुणिवट्टेगार्व बो- ॥
ब्बिडुव मरुळ्गळिं परिव लोहितदिं परिदंबरक्के धिं ।
किडुव शिरंगळिंदति भयंकरमादुदु संगरांगणं ॥११४॥

---

शंभु, स्वयंभु, चंड, प्रचंड, कुंडल, हलाहल, पुष्पचूल, धूमराक्षस, संध्याक्ष, बिंदुमालि, भीम, भीषण, धवलकीर्ति, विक्रम, विद्युज्जिह्व, सौम्यानन, शार्दूल आदि रावण के प्रमुख सेनाधिपति सम्मुख आ खड़े हुए— इसे देखकर अनेक खेचर राजाओं को इस बात की खुशी हुई कि मनुवंश श्रेष्ठ रामके सम्मुख उन्हें अपना शौर्य दिखाने का पुण्य (सुसंदर्भ) मिल रहा है। इस विचार से वे युद्ध कुतूहली हो खड़े हुए। ११३ —राघवसे मित्र भाव से रहनेवाले चंद्राभ, चंद्रमाली, रतिवर्धन, सिंहरथ, मेघवाहन, भीमरव, कुमुदावर्त, सुषेण, जयमित्र, मानार्ह, महेन्द्र, मेघपर्वत, सर्वप्रिय, तरंग, तरल, चपलावेग, विद्युत्कर्ण, जय, विजय आदि विद्याधर युद्धोत्साही प्रतिपक्षके अपने समकक्षके विद्याधर नायकों से अद्भुत ढंगसे लड़ते समय— टूटकर गिरनेवाले रथोंसे, मरते हुए घोड़ों से, कट-कटकर गिरनेवाले दोनों पक्षोंके सैनिकों से, गिरते हुए हाथियोंसे, शवों को देखकर नाचनेवाले पिशाचों से, बहते हुए रक्तसे, आकाश तक उड़नेवाले कटे सिरों से उस दिन की युद्धभूमि भयानक हुई। ११४ इस तरह कई दिनों तक उभयपक्षों के महाबली वीर शौर्य से लड़कर मनोबल, भुजबल और विद्याबलका आधिक्य प्रदर्शनकर मृत्युवश हुए। ११५ —रोज इस तरह वे वीरता से लड़ते

पलवुं दिनमिर्तेरडुं॥बलद महाबल पराक्रमर् कादि मनो- ।
बलदभुजबलद विद्या-॥बलदळवं नेरेये मेरेदु मण्मळियादर ॥११५॥

अंतवरनुदिनमनुवरदोळण्मि कादुत्तुमिर्दोंदु दिवसं—

दाव दहनक्के वन्य मृ-॥गावलि बेंगुडुव माळ्केयिं बेंगुडे सु- ।
ग्रीवन पडे सेडेद दश-॥ग्रीवन पेर्वडेगगुर्वुवडेदुदु समरं ॥११६॥

आ समयदोळ् निजवरूथिनियं पेरगिक्कि—

त्रिपताकं निटिल तटदोळ्
कपिध्वजं गगन तलदोळविसे किष्किं- ।
धपुराधिपनुरदिरियल्
विपक्षमं रथमनेरिदं सुग्रीवं ॥११७॥

अंतु रथारूढनागि कादल कडंगि बर्पुदुं—

बारिसि सुग्रीवननु-॥ग्रारानि बलक्के लयमनोडरिप बगेयिं ।
मारुति करिर्यि पूडिद॥तेरं जवनेरूवंतिरेरिदनागळ् ॥११८॥

मिळिर्दु मिळ्ळिसे वानर केतनं ।
प्रलयकालद मारिय मूरियं ॥
तळेदु मारुति येरिद तेरदें ।
तळर्दुदो धरे कंपिसुवन्नेगं ॥११९॥

अंतु तळर्दु पवमान तनूभवं मनः पवन वेगदिं कुंभकर्णन तनूभवरप्प मालि जंबुमालिगळ बलमनळरे तागुवुदुं—

---

रहे। एक दिन— सुग्रीव की सेना रावण सेनाकी मार खाकर ऐसा भाग रही थी जैसे कि दावाग्नि से डरकर वन्य प्राणी भयभीत हो भागा करते हैं। ११६ —इसे देखकर अपनी सेना को पीछे रखकर— त्रिपताकाधारी वानरध्वजी, किष्किधा का अधिपति सुग्रीव, विरोधीपक्ष को पराजित करने के लिए रणारूढ़ हुआ। ११७ —रथपर सवार होकर आ रहा था कि— सुग्रीव को रोककर, उग्र शत्रु सेना के लिए काल स्वरूपी हनुमान बड़ी वीरता से रथारूढ़ हुआ जैसे हाथी जोते हुए रथपर यम सवार होता है। ११८ वानर सेना चली तो प्रलयकाल के मृत्यु देवता के साहस-सा दिखाई पड़ी। हनुमान रथपर सवार होकर निकला तो पृथ्वी कांपने लगी। ११९ —इस तरह रथारूढ़ होकर पवनसुत मनोवेग से कुंभकर्ण के पुत्र माली जंबुमाली की सेना से भिड़ गया तो— बाण की ठंकार से

ज्या रावक्कगिदळ्कि बळके दिगिभं कोदंडदोळ् पूडिर्का- ।
डारुत्तुं निशितास्त्रदिंदिसे हनूमंतं द्विषत्सेनेयोळ् ।।
पेराळुं तुरगंगळुं रथमुमुन्मत्तेभमुं बिल्दुवार् ।
वीराग्रेसरनप्प मारुतिय दिव्यास्त्रक्के मैय्सार्चुवर् ।।१२०।।

पवमान प्रियनंदनं चरमदेहं देहमं कैदुमु- ।
र्चवु विद्यापरमेश्वरं गज रथारूढं महाध्वनि का- ।।
दुवरारातननंतवीर्यनिदिरोळ् मारांपुदुं कोंदना ।
हवदोळ् मालिय जंबुमालिय महासामंत संदोहमं ।।१२१।।

जवनेर्दे बिर्चिदुर्देने दा-
नवसेनेगे विलय समयमी समयदे सं- ।
भविसिदुर्देने तवे कोंदं
पवमान सुतंगे संगरक्किकदिरुंटे ।।१२२।।

अंतु जयजयारावदोडने जयजायारमणनप्प मारूति निज निशित शरासारदिं तन्न सेना कृशानु ज्वाला कलापमनदिर्पे विलय समय ज्वालेयंते मालि तिणमुरिदु निजवरूथमं मारूतिय रथक्के सैतुवरियिसे—

बिसिलेसकंगिडे कळ्तले
पसरिसे मारूतिय तेर गज मस्तकदिं ।

---

डरकर दिग्गजों ने पीठ झुका लिया; कोदंड पर तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर शत्रुसेना पर छोड़ा तो पैदल सेना, घोड़े, रथ और मदगज पृथ्वीपर गिर पड़े। वीराग्रसर हनुमान के दिव्यास्त्र के सम्मुख कौन टिक सकता है? । १२० वायु का प्रियपुत्र वज्रदेही है; उसके शरीर पर बाण आघात नहीं कर सकते। विद्यामें वह परमेश्वर है। हाथी जोते हुए रथपर सवार वह महा धनुर्धारी है। इस तरह के अनंत वीर के सम्मुख खड़े होकर कौन लड़ सकता है? उसने उस युद्धमें माली जंबुमाली के सामंत समूह को ही निर्मूल कर दिया। १२१ उसने शत्रुसेना को ऐसा मारा मानो यमकी छाती फट गयी और दानव सेना ने अनुभव किया कि उनका अंतकाल आ गया है। युद्ध में उसका प्रतिस्पर्धी कौन है? १२२ —इस तरह जयघोष के साथ, विजयश्री का पति मारूती के क्रूर बाणों से अपनी (माली की) अग्नि ज्वालारूपी सेना को निर्मूल करते देखा तो (माली) प्रलयकाल-सा कुपित होकर अपने रथ को मारूती के रथके सामने खड़ा करके— ऐसा अंधकार फैलाकर कि सूर्य प्रकाश ही दिखाई न दे,

पोसमुत्तुगळुगे कैमिगे
विसुनेत्तर् मालि करेदनवित मळेयं ॥१२३॥

अंतु मारुतिय रथमं मिसुकलीयदिसुवुदुं—
स्यंदन बंधनमं मा- * ळ्पं दलिवं नमगमेंदु मारुति मुळिदं-।
बिदं खंडिसि पेर- * तोंदंविदवन तलेयुमं परियेच्चं ॥१२४॥

अंतु मालिय तले परिदु नेलक्के वीळ्वुदुं—
निजाग्रजन सावु वेवसमनग्गळं माळ्पुदुं ।
गजारि घन गर्जनक्के कडुकेय्दु मेल्वाय्ववो ॥
लजेयवल जंबुमालि गदेगोंडु मेल्वाय्वुदुं ।
भुजासियोळे कोंदनंदवनुमं मरुन्नंदनं ॥१२५॥

अंतु जांवुमालियं कोंदु मुंदेधवळ छत्र चामर पाळि ध्वज शंख काहळ प्रमुख राज्यचिह्नंगळ्वेरसु हस्त्यश्व रथपदाति वलदिं विद्याधराधिराजरिं परिवृतनागिर्द दशमुखनं वलिमुख ध्वजं कंडु—
दोरेवेत्त समरमीगळ् * दोरेकोंडत्तेंदु तन्न रथमं लंके-।
श्वरनिदोंड्डुणदत्तल् * परियिसिदनिदें प्रतापियो पवनसुतं ॥१२६॥

---

हनुमान के रथके हाथियों के मस्तक से नये मोती गिराकर, रक्त वहाकर वाणों की वर्षा की। १२३ —इस तरह हनुमान के रथ को हिलने न देकर वाण छोड़े तो— हनुमान ने सोचा कि यह तो अपना ही रथ चला रहा है। फिर एक वाण से माली के वाणों को काटकर दूसरे वाण से उसके शीश को काट दिया। १२४ —माली का सिर पृथ्वी पर गिरा तो— सहोदर (अग्रज) की मृत्यु से अत्यन्त दुखी होते हुए भी, जिस तरह घनगर्जना से गजवैरी क्रुद्ध होता है उसी तरह अजेय वलशाली जंवुमाली गदाधारण कर हनुमान के सम्मुख हुआ तो हनुमान ने खड्ग से ही उसका काम तमाम किया। १२५ —इस तरह जंवुमाली को मारकर, श्वेतछत्र, चामर, ध्वज, शंख तुतूरी आदि राजचिह्नों के साथ विद्याधरों से आवृत्त राक्षसराजा रावण को वानरध्वजी देखकर, और— यह सोचकर कि अव समकक्ष के वीर के साथ लड़ने का मौका मिला है, अपने रथको लंकेश्वर के रथके सामने ले गया। पवनसुत कैसा प्रताप-शाली, वीर है? १२६ —इस तरह रथ बढ़ाकर राक्षससेना को तितर-वितर करता-सा आगे आनेवाले वानरध्वजी को देखकर रावण कुपित होकर युद्ध निमित्त आ रहा था कि मयके पुत्र महोदर और वज्रोदर ने

अंतु परिरियिसॆ रक्कसवडॆ तक्कुगॆट्टु तल्लळिसुवंतॊट्टैसि कादुतुं बर्प वलिमुख ध्वजनं दशमुखं कंडु कडुमुळिदु कादल् बगॆयॆ मय तनूजरप्प महोदर वज्रोदरर् दशासन स्यदनक्कडुंबंदु काळॆगमं कैकॊंडु महोदरनंगदनॊळं वज्रोदरं हनुमंतनॊळं सामान्यास्त्रदॊळं दिव्यास्त्रदॊळं पिरिदुपॊळ्तु कादॆ—

अंगदन कणॆ महोदर- ※ नंगद लोहितमनींटॆ पिंगॆ दश प्रा-।
णांगळुमें पडॆदनॊ दिवि- ※ जांगनेयर पीवर स्तनालिंगनमं ॥१२७॥

अंतु महोदरनं यमोदरमनंगदं पुगिसॆ तानुमतिकुपितनागि—

तिरुवायॊळ् तॊट्टु दिव्यास्त्रमनिसॆ हनुमं सायकं नांटॆ वज्रो-।
दर वक्षोभागमं बॆंगलगुबळॆयॆ कर्नॆत्तरिमॆय्यॊळं पा-।।
य्तरॆ जीवंबिट्टु बायं नयन युगळमं बिट्टु कर्वॆट्टु वीळ्वं-।
तिरॆ बिळ्दं भूमियॊळ् रावणभुज विजयश्रीयुमल्लाडुवन्नं।१२८॥

अंतु वज्रोदरं सुरसुंदरी विमानोदरमनलंकरिसॆ—

दव दहनं काननमं ※ तविपंतिरॆ बाडवानलं वारिधियं ।
तविपंतिरॆ पवनसुतं ※ तविसिदनगणितमॆनिप्प दानव बलमं ॥१२९॥

अणुवन कूर्गणॆगळ् नडॆ※ पॆणमयमादत्तु मेरॆ पवणिल्लद रा-।
वणवडॆ पर्विद मर्वा-※क्षणदॊळॆ किडुवतॆ चंडकर कर हतियिं ॥१३०॥

---

उसे रोका और स्वयं आगे बढ़कर महोदर अंगद से और वज्रोदर हनुमान से भिड़ गये और दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने लगे ।— अंगद के बाणने महोदर के शरीरके रक्त को चूस लिया । उसके दसो प्राण उड़ गये तो उसने देवस्त्रियों का आलिगन पाया । १२७ —इस तरह महोदर यमके उदर में पहुँचा कि उधर हनुमान भी क्रुद्ध होकर— प्रत्यंचा पर दिव्यास्त्र चढ़ाकर, छोड़ा तो वह वज्रोदर के सीने को चीर गया । देह के दोनों पक्षों से काला रक्त बह निकला । प्राण उड़ गये । मुंह और आँखों को खुला रखकर ही नीलाचल पर्वत ही गिरा-सा, रावण की भुजश्री काँपती-सी वज्रोदर पृथ्वी पर गिर पड़ा । १२८ —वज्रोदर द्वारा इस तरह सुरसुंदरियों की गोद को अलंकृत करनेपर— हनुमान राक्षस सेनाकी संख्या को वैसे ही समाप्त करता जा रहा था जैसे दावाग्नि जंगल को जलाकर निर्नाम कर देती है या बड़वाग्नि समुद्र के पानी को समाप्त करती है । १२९ —सूर्य किरणों के प्रकाश के कारण अदृश्य होनेवाली अंधकारके समान हनुमान के तीक्ष्णबाण लगने से रावण की सेना युद्धभूमि

दिव्यायुधंगळं गेले * दिव्यायुधमसुरवडेयननिल तनूजं ।
सव्यापसव्यमेच्चु र- * णव्यसनि पिशाचवडेगे वाणसुगेय्दं ।।१३१।।

आ समयदोळ्—

मालिगे जंबुमालिगे मरुत्तनयं कंडे युद्धदोळ् कृतां-।
तालयमं निजात्मजर साविनोळुत्कटमागे शोकमु-।।
न्मीलिसे कोपवा प्रळय भैरवतंतिरे कुंभकर्णना-।
भीलमनेत्ति पोन्तु नडेदं कदनक्किदिर त्रिशूलमं ।।१३२।।

अंतु कडगि बर्प कुंभकर्णनं कंडु मारुतियं पेरगिक्कि रघुवीरन बलद महासामंतर् चंडनु शशिमंडलनु वलियु तोदलागे पलरूमड्डं बंदु तन्न बलमनळरे कादुत्तुमिरे कुंभकर्णनति कुपितनागि बेगं प्रक्षोभण विद्या शरदि कपिध्वजर ध्वजिनिमेय्यरियदोरगुवंतु माळ्पुदुं निद्राप्रभोधिनियेंब दिव्यवाणदि सुग्रीवं हनुमंमोदलागे मिक्क नायकर निद्रामुद्रेयं कळेवुदु मनिवरुं रक्कसवडे वेंगुडे कादुत्तुमिरे कंडु कडुमळिदु—

चळियिसलमराचलमं * तुळुंकलंभोनिधानमं दिनकृन्मं-।
डळमनिळेगिळिपलेंदा- * जि ळंपटं देसेगे मसगिदं धनुर्जेद्रं ।।१३३।।

---

में लाश बन गयी । १३० दिव्यास्त्रों को विरोधास्त्रों से राक्षसों ने काट दिया तो हनुमान ने एक साथ दायें बायें हाथों से वाण प्रयोग करके भूत गणों के आहार के रूपमें राक्षसों की वलि चढ़ायी । १३१ —उस समय— युद्ध में माली जंबुमाली को यमपुरी पहुँचाकर, पुत्रशोक से हनुमानपर क्रुद्ध कुंभकर्ण आँखों से चिनगारी बरसाता हुआ प्रलय भैरव की भाँति भयंकर त्रिशूल धारणकर उसकी (हनुमान की) ओर बढ़ा । १३२ —कुपित होकर आनेवाले कुंभकर्ण को देखकर राम सेना के प्रचंडवीर कहलानेवाले चंड, शशिमण्डल, वलि आदि हनुमान को पीछे करके राक्षस सेना को भयभीत कराते हुए लड़ने लगे । इसे देख कुंभकर्ण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और तुरंत प्रक्षोभण विद्यावाण से कपिध्वज सेना को अचानक अनजाने ही निद्रादेवी के वश में कर दिया तो सुग्रीवने निद्राप्रभोधिनी वाण से हनुमान आदि कपिवीरों को निद्रावस्था से जगाया । नींद से उठे हुए कपिवीर लड़कर शत्रुओं को भगाने लगे । उस दृश्य को देखकर क्रोधावेश में— आकाशमंडल को ही भू पर उतारने का साहस रखनेवाला पराक्रमी रावण युद्ध के लिए तैयार हुआ तो, अमराचल कांप उठा, समुद्रमें तूफान उठा । १३३ —इस तरह सुग्रीव की गर्दन काटने के लिए, हनुमान

अंतु दशग्रीवं सुग्रीवन कंठकंदळमं चंडपरशुविं खंडिसलुं पवमान तनूभवन प्राणपवमाननं बाहु राहुगाहारमिक्कलुं प्रभामंडलन मंडलाग्रमं चंद्रहास प्रभामंडलर्दिं हृत प्रभामंडलंमाडलुं नळन कोपानलनं खड्गधारा जलर्दिं नदिसलुं नीलन नील लोहितर्दिं भूतगणमं तणिपलुमुत्कंठनागि निजवरूथमं रिपुवरुथनिगें षरियिसलोडरिसुवुदुमा समयदोळ् मंडोदरी जठरजाह्नवी विकसितारविंदं तंदेय मुखारविंदमं नोडि निटिल तटघटित मुकुलितांजलि पुटं--

त्रिपताकें निन्न निटिलदो-*ळपांगदोळ् कॅंपु समनिपन्नेवरं सै-।
रिपुदे वलमेनगें बनं * नृपेंद्र बन्नक्कें बेरें कोडेरडोळवे ।।१३४।।

नींबरेगं कपिध्वजरसाध्यरें निन्नोळिदिर्चुवन्नना-।
वं बेसर्सेन्ननंजिदोडवंदिर बाळ्दलेंदंदपें रणा-।।
डंवरदिंदमंजदोडें पंदलेंदंदपेनेंदु पूण्दु शौ-।
यांबुधि बेडिदं बेसर्ननिंदगि दानव चक्रवर्तियं ।।१३५।।

अंतु तंदेयं बेसनं बेडिकोंडु—

गिरिगळें परमाणुगळेनें * सरोज भवनी करींद्रमं माडिदनें।
दिरददर कायबलमं * निरूपिसल नागराजनुं नेरेंदपने ।।१३६।।

---

की प्राणवायु को सोखने के लिए, चंद्रहास खड्ग से प्रभामण्डल का सिर काटने के लिए, अपनी खड्गधार के पानी से नलकी क्रोधज्वाला को शांत करने के लिए, नील के रक्त से भूतगणों को तृप्त करने के लिए उत्कंठित होकर रावण अपने रथको रिपुसेना की ओर वढ़ाया। उतने में मंदोदरी के गंगारूपी उदरसे खिला हुआ कमलरूपी इंदगी ने पिता के मुखकमल को देखकर, शीश नवाकर, हाथ जोड़कर कहा— आपकी भौंहोंमें सिकुड़न पडने और आँखों में क्रोध की लालिमा चढ़ने तक मेरा चुप रहना विनय नहीं होगा। क्या आपपर आयी हुई विपत्ति के दो सींग हैं? १३४ इन कपिध्वजियों में ऐसा कोई पराक्रमी है जो आपको युद्ध के लिए तैयार कर सके? आपका सामना कौन कर सकता है? वे डर गये तो सप्राण लाकर आपके चरणों में डाल दूंगा, डरे बिना युद्ध के लिए तैयार हुए तो उनके शीश ला दूंगा। ऐसी प्रतिज्ञा करके इंदगी ने दानव चक्रवर्ती से अनुमति का निवेदन किया। १३५ —ऐसा आग्रह करके— हाथी इतना वड़ा था कि ब्रह्माने इसका निर्माण मानो पर्वत को रजकण समझकर किया था। उसके देहबल का वर्णन करना तो महाशेष के लिए भी

ऒंबिनमगुर्वुवेत्तुदं त्रैलोक्यकंटकमॆंबानेरि प्रलयप्रक्षोभमादंते मुळिदु बरॆ वानरबलं दोर्वलमनुळिदु पॆळरॆ सुग्रीवनुं प्रभामंडल-नुमिदिर्चल् नॆरॆदु निल्वुदुमवर्रनिंद्रजित्कुमारतितॆंदं—

कपि वंशक्कॆ निसर्गं ॐ चपलतॆखचरेंद्रनप्प दशकंठन पा-।
दपयोज सेवॆयं बि- ॐ ट्टु पशुवॆ नीं भूचरंगॆ किंकरनादॆ ।।१३७।।

निन्नंबनरियदाजियॊ ॐ ळॆन्नॊडनॆ पॊणर्कॆगॆंदु वंदपॆ मुळिदां ।
निन्नं कॊल्वॆडॆयॊळ् का-ॐ वन्नर् कॆकॊंडु भूमि गोचररॊळरे ।।१३८।।

ऎनॆ मुळिदु—

काळॆगमनुरिदु पॆंडि- ॐ र्गाळॆगमं माळ्पॆ गंडुवानुळ्ळॊडॆ कू- ।
र्वाळ मसॆदोर्पुदॆनगॆं- ॐ देळिसिदं दनुजतनुजनं सुग्रीवं ।।१३९।।

अंतवरिर्वरुमोरॊर्वरं मूदलिसि कादुतिर्दरन्नॆगमित्तल्—

जनकात्मजनॊळ् दशमुख ॐ तनूभवं मेघवाहनं विल्वॊय्दं-।
बिन मळॆयं लयसमयद ॐ घनाघनं करॆव माळ्कॆयिदं करॆदं ।।१४०।।

अवनॆच्चंबुगळं चं ॐ डविक्रमं मंडलाग्रदिं खंडिसिदं-।
बवरदॊळिदिरांयवरा- ॐ रवार्यं भुजवीर्यनं प्रभामंडलनं ।।१४१।।

---

असाध्य कार्य है। १३६ —जिस हाथी के प्रति लोगों की ऐसी धारणा थी उस त्रैलोककंटक नामक हाथी पर सवार होकर, प्रलयकाल के क्षोभ की भाँति कुपित होकर आ रहा था। इसे देखकर वानरसेना अपने बाहुबल को भूलकर भयभीत हुई तो सुग्रीव और प्रभामण्डल ने सामना किया तो इंद्रजित ने उनसे यूं कहा— कपिवंश के लिए चपलता सहज है। इसी कारण खचरेंद्र रावण की चरणसेवा त्यागकर सामान्य मनुष्यके सेवक बन गये। १३७ अपने पराक्रमकी सीमा-क्षमता को न जानकर मुझसे युद्ध करने आये हो। मेरे कुपित होकर तुम लोगों को मारते समय मेरा हाथ रोककर तुम्हें बचानेवाला इस पृथ्वी में कौन है ? १३८ —ऐसा कहने पर सुग्रीव आग बबूला होकर— युद्ध न करके स्त्रियों की तरह वाग्युद्ध में लगा है। तुझमें पुरुषत्व हो तो बाण प्रयोग कर ऐसा कहकर छेड़ दिया। १३९ —इस तरह वे दोनों परस्पर छेड़-भड़काकर लड़ रहे थे कि इधर— रावणका पुत्र मेघवाहन प्रभामण्डल से लड़ता हुआ प्रलय-काल के घनघनाते हुए काले बादलों की तरह बाणवर्षा की। १४० मेघवाहन द्वारा छोड़े गये बाणों को बीच मार्ग में ही काटकर प्रभामण्डल ने प्रतिबाण छोड़े। युद्धभूमि में उससे कौन टकरा सकता है ? १४१

अंतु निज निशान शर संघानमं खंडिसे मेघवाहननग्निबाणदिंदिसु-
वुदुमदं प्रभामंडलं वरुणास्त्रदि कडियें कडुमुळिदु--

तिरुविनोळिट्टु कूर्गणेगळं धनुवं पौरमुय्वनेय्दुवं-।
तिरें तेगेदस्त्रविद्येगिवनोळ्दोरेयारेनें मेघवाहनं ।।
तुरगमनेच्चु सारथियानंच्चु पताकेमनेच्चु बिल्लनें-।
च्चु रथमनेच्चु पर्चुपरिमाडिदना जनकात्मजातनं ।।१४२।।

अंतु विरथनं माडी--

दनुज सुतं पन्नगशर * दिनिसुवुदुं जनकसुतननदु पेणेदहिबं-।
धनदिं पौडर्पुगुंदिसे * तनुवं मरेदिळेगे बिळ्दु मूर्छेगे संदं ।।१४३।।

अंतति प्रचंड बलं प्रभामंडलं मूर्छितनप्पुदुमित्तलिंद्रजित्कुमारं
सुग्रीवनं विरथनं माडि पन्नगास्त्रदिंदिसुवुदुं—

कालडियिं कौरल्वरेगमिदगियेच्च फणींद्र सायकं ।
कीलिसिदंतेवोल् बिगियें सत्तुवुदुं बसमुत्तु मुच्चें क-।।
ण्णालिगळिच्चेगेट्टु कपिकेतननागळे मुच्चेवोगे श-।
क्रालयमं पळंचिदुदु दानवसैन्य जयानक स्वनं ।।१४४।।

मत्तित्तलोंदु मोनेयोळ्—

---

—इस तरह अपने तीक्ष्ण बाणों को काट देनेपर मेघवाहन ने अग्निबाण छोड़े। उस बाण को प्रभामण्डलने वरुणास्त्र से काटा। मेघवाहन कुपित होकर— प्रत्यंचापर निशान बाण चढ़ाकर, उसे कान तक खींचकर, शस्त्र विद्यामें असमान साबित करता-सा सारे संसार को आश्चर्य-चकित कराता हुआ मेघवाहन ने घोड़े को, सारथीको, पताकाको गिराकर, धनुष और रथको तोड़कर, भ्रमित कर दिया। १४२ —प्रभामण्डल को विरथ करके— रावण पुत्र (मेघवाहन) के सर्पास्त्र का प्रयोग करने पर जनकपुत्र (प्रभामण्डल) को (सर्पास्त्रने) बांध दिया। वह निर्बल हो, मूर्छित होने के कारण धरती पर गिर पड़ा। १४३ —प्रचंड प्रभामण्डल मूर्छित हुआ तो उधर इंद्रजितने सुग्रीवका रथ तोड़कर, उसपर सर्पास्त्र छोड़ा तो— उस सर्पास्त्रने सुग्रीवको एड़ी से गर्दन तक कस दिया। सुग्रीवकी शक्ति ह्रास होने लगी; आँखों की पुतलियाँ थर्राईं। कपिवीर सुग्रीव मूर्छित हुआ। तब दानव-सेना का जयघोष देवलोक तक फैल गया। १४४ —इधर और एक तरफ के युद्धमें— मायायुद्ध और आयुधयुद्ध में अधिक बलशाली हनुमान, कुंभकर्ण परस्पर ऐसे लड़े कि उभयपक्षों के सैनिक

माया युद्धदोळं दि * व्यायुध युद्धदोळमधिक बलरुभय बलं-।
जीयेंबिनेगं कादिद * रायति निले कुभकर्णनुं मारुतियुं ।।१४५।।

रणकर्कशनसुर कुला-*ग्रणि विरथंमाडि वीरनं खचर कुला-।
ग्रणियनवयवदोळणुवन*नणुवं पिडिवंते कुंभकर्ण पिडिदं ।।१४६।।

अमित पराक्रम प्रथितरप्प कपिध्वजरुं वियच्चर ।
प्रमुखरुमेय्दिदर् नेरेदु रावण सेनेयोळण्मि कादि भं-।।
गमनिदु तक्कुदन्यखशर् दशकंधरनं दशास्य सै-।
न्यमनुरदिक्कि गेल्वेडेगे लक्ष्मणनेंबुदो रामनेंबुदो ।।१४७।।

अंतिदगि मेघवाहन कुभकर्णरिं सुग्रीव प्रभामंडल हनुमत्प्रमुख मुख्य नायकर्कळुं नागपाशविद्येयिं कट्टुवडेदु पट्टिर्पुदुं—

अवरघवट्टिखं तिळि-*दु विभीषणनळिपि राम लक्ष्मीधरर्गे-।
न्न वरूथनियं कोंड * न्नेवरं नीमिर्पुदवरनीगळे तर्पें ।।१४८।।

एंदु बिन्नपंगेय्दु विभीषणं रण रसिकनागि पोपुदुमंगदं तानुमोडने संग्राम संरंभमनुप्पुकेय्दु कुंभकर्णनं मट्टेवंदु—

संगरदोळ् कुडुवें दो- * र्भंगमनावंगमेंदु कलुषानलनिं- ।
दंग दनंगीकरिसिद * नंगारमनुगुळ्वि कार सिडिल पोडर्प ।।१४९।।

---

खुश हो गये । १४५ रण-कर्कश और असुरकुल श्रेष्ठ कुंभकर्णने हनुमान के रथको चकनाचूर कर अपने खाली हाथ से ही उसे बंधित किया । १४६ साहसी एवं प्रख्यात कीर्तिशाली कपिध्वजी एवं खचरपति रावणसेना से लड़कर पराजय को स्वीकार कर लिया । सामान्यों से अब लड़ जाना असाध्यकार्य है । अब इस सेना से लड़कर कौन जीत सकेगा--राम या लक्ष्मण ? । १४७ —इस तरह इंद्रजित मेघवाहन और कुंभकर्ण से सुग्रीव, प्रभामण्डल, हनुमान आदि प्रमुख सेनापति नागपाश विद्या से बंधित हुए— उनके पराजित होने की खबर पाकर विभीषण ने राम-लक्ष्मण से कहा कि इस पराजय से भयभीत होकर विचलित नहीं होना चाहिए; जो बंधी बन गये हैं उन्हें अभी लाऊँगा, तब तक मेरी सेना के साथ रहे । १४८ —ऐसा निवेदनकर, युद्धातुर होकर, अंगद तुरंत युद्धके लिए तैयार होकर आगे बढ़कर कुंभकर्ण के सम्मुख पहुंचकर— इस आवेश से कि युद्धमें वह किसी को भी पराजित करने में समर्थ है, वर्षाऋतु के मेघोंकी घर्षणा से उत्पन्न होनेवाली घनगर्जना के समान गरज उठा । १४९ —अंगद इस तरह यम-सा साधारण एवं दिव्यास्त्रों से लड़कर— कुंभकर्ण के हाथ से

अंतु मामसकंगोंडु कृतांतनंते साधारणास्त्रदोळं दिव्यास्त्रदोळं कादि—

शरभं पिडिद मृगाधी- * श्वरनं भेरुंडनेरेदुकोळ्वंते निशा-।
चर करदिनंगदं सं- * गर रंगदोळेळेदुकोंडननिलात्मजनं ॥१५०॥

गेलें कादि कुंभकर्णन * नलंघ्यबलनंगदं जयश्री निलयं।
जलद पथक्कोगेदा क्षण-*दोळे मारुतिवेरसु रघुजनल्लिगे बंदं॥१५१॥

इत्तला विभीषणनिदगि मेघवाहनरोळाहळवक्कोडर्चुवुदुम-वरेम्म किरियम्मनोळ् कादुवुदु तक्कुदल्तु पिंगे भंगमिल्लेंदु केदु गेय्यदुपेक्षेगेय्दु तोलगि पोगे मूर्च्छेवोगि विभीषणं पन्नगशरवेष्टित-रागिर्द सुग्रीव प्रभामंडलरं कंडेनुंगेय्यलरियदे संभ्रम चित्तनागि नोडुत्तुमिरे—

अनुचितमेनगे रघुकुल * हातियनीक्षिसुवुदेंदु कडुवेगदिनु-।
त्तानपदं पोपंतिरे *भानु बिसिल् मसुळे पोक्कनपरार्णवमं॥१५२॥

अंतु नेसर्पडुवुदुं दशास्यनपहार तूर्यमं पोयिसि बीडिंगे पोपुदुमित्तल्—

सौमित्रि मुकुलितांजलि * रामांगितेंदनिवर्गे पन्नगशर मू-।
र्छा मुद्राच्छेदनदिं * क्षेममनोडरिसुवुपायमादुदु बेसंसि ॥१५३॥

---

हनुमान को उसी तरह छीन लिया जिस तरह शरभ (प्राणी विशेष) के हाथके सिंहराज को भेरुंड पक्षी (पक्षी विशेष) छीन लेता है। १५० उससे लड़कर, पराजितकर जयश्री को हासिलकर आकाश में उड़कर क्षणार्ध में मारूती को साथ लेकर श्रीराम के पास पहुँचा। १५१ —इधर विभीषण इंद्रजित और मेघवाहन के सम्मुख हुआ तो उन्होंने यह सोचकर कि अपने चाचा से युद्ध करना उचित नहीं है, पीछे हट जाने पर, पास जाकर मूर्छित सुग्रीव और प्रभामण्डल को देखकर यह न समझकर कि क्या किया जाय, असमंजस में भ्रमित-सा देख रहा था। इतने में— मानो रघुवीरों को प्राप्त पराजय को देखना अनुचित समझकर सूर्य पश्चिम समुद्रमें प्रविष्ट हुआ और धूप अदृश्य हुई। १५२ —सूर्यास्त होने पर रावण युद्ध-विराम की भेरी बजवाकर, शिविर की ओर चला। इधर, लक्ष्मणने हाथ जोड़कर रामसे कृपया सर्पास्त्र से बंधित एवं मूर्छित सुग्रीव और प्रभामण्डल को जगाने का उपाय बताने का आग्रह किया। १५३ —अपने दंतपंक्तियों की कांति फैलाते हुए और श्रोताओं में रोमांच जगाता हुआ रामने कहा—

अँनँ दाशरथि दशनकांति निर्विषीकरण मणि मयूखदंतॆ निर्मिविनॆगर्मितॆंदं--

इवरुपद्रवमं क्षणमात्नदिं ॐ तविसुगुं नॆनॆमुंबरमित्तनं ।
दिविजनं पॆरतॆनॆनॆ लक्ष्मणं ॐ सविनयं नॆनॆदं वरमित्तनं ॥१५४॥

नॆनॆवुदु मासन कंपं ॐ जनियिसिदत्तागळा महालोचननॆं- ।
ब निलिपगॆनॆ रघुवी-ॐ रन लक्ष्मीधरन सॆपु साधारणमे ॥१५५॥

तनगासन कंपं तॊ-ॐ ट्टनॆ पुट्टॆ रणप्रपंचदॊळ् रघुवीरं ।
नॆनॆदपनॆंदु महालो-ॐ चननॊमॊदलरिदनवधि लोचर्नदिदं ॥१५६॥

अंतदं गरुडाधिनप्प महालोचननरिदु बहु विद्या परिवार-मनुळ्ळ सिंहवाहिनियुं गरुडवाहिनियुमॆंबॆरडु विद्यॆगळुमं दिव्यास्त्रंग-ळुमनुय्दु कुडॆंदु निजानुचरनप्प चिंतावेगनॆंब देवंगॆ बॆससुवुदु मातं सिंहवाहिनियं श्रीरामंगॆ गरुडवाहिनियं लक्ष्मीधरंगॆ सद्भावदिनीवुदुं--

मन्निसि चिंतावेगम-ॐ होन्नतनं जैन पूजॆगॆय्दतिहर्षो- ।
त्पन्न पुलकावली सं ॐ छन्नं शरीरर् बलाच्युतर् वगॆगॊंडर् ॥१५७॥

प्रणत जगज्जनं त्रिभुवन प्रभु काव्यकला विलासिनी ।
प्रणयि परार्थ कल्पतरू नम्म मनोरथ सिद्धि देश भू-॥

---

इन्हें प्राप्त मूर्छावस्था से क्षणमात्र में जगाने का उपाय है पहले जिस देवता ने हमें वरदान का अनुग्रह किया था, उसे स्मरण करना। इसे सुनकर लक्ष्मण ने विनम्रभाव से उस देवता (महालोचन) का स्मरण किया। १५४ इस तरह स्मरण करते ही महालोचन का आसन कांप उठा। देवता के आसन को कंपा देनेवाले राम लक्ष्मण का पुण्य प्रभाव सामान्य हो सकता है? १५५ अवधिज्ञान विद्या से वह जान गया कि आसन डोलने का कारण है युद्धभूमि में राम द्वारा उसका स्मरण किया जाना। १५६ —ऐसा समझकर उस गरुडाधिपति ने बहुविद्याओं के ज्ञाता चिंतावेग नामक अपने सेवक को बुलाकर कहा, सिंहवाहिनी एवं गरुडवाहिनी नामक दो विद्याओं के साथ दिव्यास्त्रों को ले जाकर श्रीराम को दे दो। चिंतावेग तुरन्त युद्धभूमि पहुँचकर, नम्र होकर, श्रीराम को सिंहवाहिनी और लक्ष्मीधर (लक्ष्मण) को गरुडवाहिनी सौंप दी। उस (आगंतुक) का सत्कारकर, जिन पूजा कराकर, उससे प्राप्त संतोष से रोमांचित होकर बलदेव अच्युत सुशोभित हुए। १५७ जग के लोगों द्वारा पूज्य, स्तुत्य, त्रैलोक का प्रभु, काव्यकलाविलासी, याचकों का

षण कुलभूषण व्रति पदांबुज सेवेयिनादुदेंदु स-।
दगुण मणिभूषणं पुलकमं कविता मनोहरं ।।१५८।।

इदु परमजिन समय कुमुदिनी शरच्चंद्र बालचंद्र मुनींद्र चरण नखकिरण चंद्रिका चकोरभारती कर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितमप्प रामचंद्रचरित पुराणदोळ् बलाच्युत पुण्य प्रभावोदय वर्णनं त्रयोदयाश्वासं ।

।। त्रयोदशाश्वासं समाप्तं ।।

कल्पतरु, हमारे मनोरथ को पूर्ण करनेवाले, देश और कुल के भूषण इन महाव्रतियों की चरण सेवा से हम कृतार्थ हुए ऐसा सोचकर सद्गुणभूषण कविता-मनोहर राम-लक्ष्मण पुलकित हुए। १५८

—कवि अभिनव पंप, जो परमजिन समय और कमलों को शरत्काल के चंद्रके समान माने जानेवाले बालचंद्र मुनींद्र के चरणनखों के चंद्रप्रकाशसे पवित्र एवं सरस्वती के कर्णाभूषण के समान है, के रामचंद्रचरितपुराण का तेरहवां आश्वास बलाच्युत पुण्यप्रभाव वर्णन है— ।

।। तेरहवाँ आश्वास समाप्त ।।

## चतुर्दशाश्वासं

श्रीरमणनिष्टसिद्धिगे ❋ चारण मुनिपाद कल्पपादपमे वलं ।
कारणमादुदेनुत्तुं ❋ चारित्र पवित्रनोसेदनभिनवपंपं ।। १ ।।
आलघु महिम प्रभावं ❋ नेलेवेचिदुदेमगे योगनिष्ठा पर नि-।
श्चलरेनिप देशभूषण ❋ कुलभूषण दिव्ययोगि दर्शनदिंदं ।। २ ।।

अेंदवरं निर्भर भक्तियिं स्तुतिगेय्ये हर्षभर विनम्रनागि वर्ष वरुण कृषानु बाणंमोदलागे पलवुं दिव्यबाणंगळुमं धवळछत्र चामरं-

## आश्वास—१४

श्रीराम की इष्टसिद्धि के लिए मानो चारणमुनि के चरणारविंद ही कारण हो, चारित्र्यशुद्ध (श्रीराम) सुशोभित हुआ। १ देशभूषण मुनिवर, जो योगनिष्ट, निश्चल, अमित, महामहिम है, के दिव्यदर्शन से महिमाप्रभाव बढ़ गया। २ —इस तरह श्रद्धापूर्ण-भक्ति से उनकी स्तुति करने पर वे

गळुमं सिंहगरुडध्वजंगळुमनभेद्य कवचंगळुमननर्घ्य रत्नभूषणंगळुमं रामलक्ष्मणर्गे कोट्टु चिंतावेगं मनः पवनवेर्गादं निज निवासक्के पोपुदुमित्तल्—

जिन धर्मद सामर्थ्यदि-॥निनितु महामहिमॆ राम लक्ष्मीधररोळ्।
जनियिसॆ विस्मयमादुदु॥हनुमंत प्रमुख निखिल विद्याधररोळ्॥ ३ ॥

अनंतरमा गरुडवाहिनिय तनुप्रभॆ तममनभिभविसॆ तत्पक्षपात जातवात धार्तदि नागपाश विद्यॆ सडिल्दुपोगॆ सुग्रीव प्रभामंडल- रपगत मूर्छाप्रपंचर् प्रसन्नमनर् सिंहगरुड वाहनारूढरागिर्द राम लक्ष्मणरल्लिगॆ बंदवर पुण्यप्रभावक्के संतोषंबट्टु निमगी महामहि- मॆयाद वृत्तांतमं बॆससिमॆनॆ श्रीरामदेवरॆल्लमं नॆरॆयॆ बॆससुत्तुं बीडिगॆ बिजयंगॆय्दंदिनिरुळा महोत्सव व्यापारदोळिर्पुदुं—

इंदिननुवरदोळपजय- ॥ मं दनुजगुंटुमाळ्कुमिन वंशजनें- ।
दंदधिक रागमं तळॆ- ॥ दंददिनिनुदयशिखरि शेखरनादं ॥ ४ ॥

अंतु नेसर् मूडुवुदुं दशवदननॆंदिनंददि रणभूमिगॆ वंदोड्डि निल्वुदुमित्त रामलक्ष्मणर् निर्वतित नित्यनियमर् देवनित्त दिव्य कवचमं तॊट्टु दिव्याभरणभूषितरागिर्पुदुं—

---

संतुष्ट चित्त होकर अग्नि, वरुण आदि दिव्यबाणों, श्वेत छत्र चामरों, सिंह गरुडध्वजों, अभेद्य कवचों, रत्नाभरणों को उन्हें (राम-लक्ष्मणको) प्रदान कर अपने निवास स्थान की ओर रवाना हुए। इधर— जिनधर्म के सामर्थ्य से राम-लक्ष्मण को इतनी महामहिमाएं उपलब्ध होनेपर हनुमान आदि विद्याधरों को आश्चर्य हुआ। ३ —तत्पश्चात उस गरुड़वाहिनी की देहकांति ने अंधकार को भगाने के निमित्त अपने पंखों को हिलाया तो उससे उत्पन्न वायुवेग से नागपाश विद्या शिथिल हुई और सुग्रीव तथा प्रभामण्डल जाग उठे एवं सिंह गरुड़वाहनों में विराजमान राम-लक्ष्मण के पास आकर उनके पुण्यप्रभाव के प्रति संतुष्ट होकर उनसे (राम-लक्ष्मण से) यह निवेदन करने पर कि कृपया इस महामहिमा प्राप्ति का वृत्तांत सुनावे, श्रीरामने सविस्तार कारण बताया। उसके बाद वे सब शिविर लौटकर आनंद से रात बिता रहे थे कि— उदयगिरि शिखर में सूर्य इस उत्साहसे चढ़ आया मानो वह आजके युद्धमें श्रीराम के हाथों रावण को अवश्य अपजय (हार) दिलायेगा। ४ —सूर्योदय होने पर, दशकंठ नियमित रूपसे युद्धभूमि में आकर खड़ा हुआ तो राम-लक्ष्मण अपनी नित्य विधियों

दनुसुतं किळें तन्नना मुळिसि मृडाद्रियें सिंहवा- ।
हिनिय रूपिनोंळावहक्के सहायमाग्तु रघूद्वहं- ।।
गेनिसि कायबलं कनत्कनकोपलाक्षि बृहद्गुहा- ।
ननमगुर्विसें तुंगशृंगमें कोरेंदाडेंगळादवोल् ।। ५ ।।

विळय घनाघनंगळेंनें पक्ष युगं नडेतर्प रोहणा- ।
चळमेंनें पंचवर्ण विलसत्तनु बिच्चनें बिट्ट दिट्टिगळ् ।।
पोळेंवुदितार्क बिंबमेंनें चंचू मरीचि शतहृदप्रभो- ।
ज्ज्वळमेंनें भीकरं गरुडवाहिनि विद्येय विक्रियाक्रमं ।। ६ ।।

अंतगुर्वागें विगुर्विसिद सिंह गरुड वाहनंगळनेरि सिंह गरुड-ध्वजगनेंत्तिसि देव निर्मितंगळप्प सितातपत्रंगळं पिडियिसि सुग्रीव प्रभामंडल मरुत्सुत विभीषण प्रमुख निखिल विद्याधरर् बळसि बरें संग्रामभूमिगें बंददिनंददिनोंड्डि निल्वुदुं—

ऒरडोंड्डुं तागि भयं-*करमेंनें कादिदुवु परिद तलें नेंत्तर सु-।
ट्टुरेंकंडदिडें कोळ्मिदु-*ळ राशि नेंणदुर्वु पर्वें समरावनियोंळ्।। ७ ।।

से निपटकर, देवता द्वारा अनुग्रहीत दिव्य कवचों को पहनकर, दिव्य आभरणों को धारणकर— कैलास पर्वतने ही इस क्रोध से कि रावणने उसे उठाने का प्रयास किया (नीचा दिखाया है) था, सिंहवाहिनी का रूप धारणकर युद्धमें श्रीराम की सहायता की । इस कारण उसका देहबल कनकाचल से भी अधिक हुआ । उसकी आँखें कनकाचल के बड़े-बड़े गुफा-मुख के समान थीं । क्रूर वक्रदाढ़ उसके ऊँचे शिखर के समान थीं । ५ गरुड़वाहिनी के पंख प्रलयकाल के घनाघन बादलों के समान थे । वह चलता हुआ रोहणाचल-सा, पंचवर्ण के शरीर से सुशोभित, खुली आँखों से उदय होनेवाले सूर्य के समान था । उसकी चोंच की कांति भीखर बिजली-सी चमकी तो वह विद्या शोभायमान हुई । ६ —इस तरह भयानक दिखाई देनेवाले सिंह गरुड़वाहिनियों पर सवार होकर, सिंह गरुड़ध्वजाओं से, देवनिर्मित श्वेता (त) पत्रोंको पकड़वाकर, सुग्रीव, प्रभामण्डल, हनुमान, विभीषण आदि प्रमुख विद्याधरों से आवृत्त होकर रणभूमिमें पहुँचकर, नियमित रूपसे युद्धके लिए तैयार हुए तो— दोनों सेनाएँ आपसमें भिड़ीं और भयनाक लड़ाई हुई । कटे हुए शीश, रुधिर की धारा, अंतड़ियों की मालाएँ, बेजों की राशियाँ युद्धभूमि में सर्वत्र बिखर गयी थीं । ७ उभय सेनाओं के गजसमूह, योद्धाओंके समूह, महावतों का समूह, अश्वों, रथिकों, रथों के नाश होने पर रणभूमि

वारण घटॆयुं चोदरु ❋ मारोहकरुं तुरंग दळमुं रथियुं ।
तॆरूमॊडनळियॆ पोल्त-❋ त्तीरॊड्डुं पवन हत घनाघनदॊड्डं ।। ८ ।।

पलवु गजंगळुं पलवु वाजिगळुं पलवुं रथंगळुं ।
पलरुमुदग्र वीरभटरुं पलवु तॆरदायुधंगळिं ।।
पलवु विधंगळिं पलवु मॊड्डुणदिं पलरुं पॊगळ्विनं ।
तॊलगदॆ तागि तळ्तिरियॆ नाडॆयुमद्भुतमादुदाहवं ।। ९ ।।

आ महावदॊळ्—

वानर सेनॆ दानवर सेनॆयनळ्कुरॆ कादॆ कंडु पं- ।
चाननदंतॆ गर्जिसि दशाननंनॆय्तरॆ बॆचि पोगॆ दी- ।।
नाननवा कपिध्वजिनि बेगमदं पॆरगिक्कि तागिदं ।
दानव राजनं जवन मुंबिवनॆंबिनॆगं विभीषणं ।। १० ।।

अंतु तागुवुदं कड्मुळिदु रावणं विभीषणनिर्गितॆंदं—

ऎन्नॊदुनॆ पुट्टि खचर कु-
लोन्नति कीळ्ट्टु तक्कुगिडॆ किंकर भा- ।
वं निनगॆ समनिसित्तु कॆ-
लन्नगुविनमॆलवॊ नीच भू गोचररॊळ् ।। ११ ।।

अक्षूणमप्प सिरियं ❋ दक्षिण भरतत्रिखंड धरॆयं युव रा-।
ज क्षत्र चामर मनुरि ❋ दक्षम दॊरॆगॆट्टु मानवंगाळादॆ ।। १२ ।।

---

का वह दृश्य प्रलयकाल के मेघसमूह का स्मरण दिलाता था । ८ कई हाथी, अनेक घोड़े, अनेक रथ, कई वीर विविध प्रकार के आयुधों से विभिन्न प्रकार की युद्ध कुशलता से, अनेकों द्वारा प्रशंसित होकर लड़ने लगे तो वह युद्ध अद्भुत प्रतीत हुआ । ९ —उस युद्ध में— कपिसेना को राक्षससेना से निडर होकर लड़ते देखकर रावण क्रुद्ध केसरी-सा गरजकर युद्ध के लिए आगे बढ़ा तो वानर भयभीत हो पलायन करने लगे । उसे देखकर स्वयं विभीषण रावण के सम्मुख आकर युद्धोन्मुख हुआ । १० —सामने आ खड़े विभीषण को देखकर, अत्यन्त कुपित होकर रावण ने यूं कहा— मेरे सहोदर के रूपमें जन्म लेकर, खेचर कुल की उन्नति को रोकने की योग्यता गंवाकर परायों का सेवक बनकर, हास्यास्पद अपमानका पात्र बन गया न !! ११ अक्षय धन-दौलत को, दक्षिण भरतखंड के युवराज के सिंहासन को निर्लक्ष्यकर, सामान्य मानव का दास बन गया ? १२ —ऐसी (व्यंग्य बातों से) चुटकी

अँदु मूदलिसि—

तनगधिकमागे मनदोळ् * मुनिसु विभीषणननॆंद नसुरेंद्रनदें ।
तनुजनोडनां तॊडर्चुवे-* ननुवरमं गोत्र वध महापातकमं ।। १३ ।।

अदरिनॆन्न मुंतणि तॊलगि पोगॆंद दशमुखन दुरुक्तिगे विभीषणं कोपाग्रहावेशमनप्पुकॆय्दु हितमनरिपिदोडॆन्नं पॊरमडिसि कळॆदंदे निन्न सुधर्मिकॆयुं तक्कूर्मॆयुं परिपट्टु पोदुदिन्नादोडं त्रिभुवन स्तवनीयमप्प नम्म तोयदवाहनान्वयक्के बन्नमप्पंतु परप्रेयसिगळिपं तंद निर्बुद्धिकॆयनुळिदु निनगं निन्न वंशक्कमकाल मृत्युवं तारदे रामस्वामिगे जगन्मातॆयं सीतादेवियनॊप्पिसि निन्न साम्राज्यपदवियोळ् पडुळंनिळ्वुदॆने मुळिदु तिरुवायॊळंबं तॊट्टु मुट्टेवरे—

त्रि पताका भीषण तर*लपनं तॆगॆदिसे विभीषणं रावण की- ।
र्ति पताका दंडंबेर- * सु पताका दंडमुडिदु कॆडॆदत्तागळ् ।। १४ ।।

अंतु विभीषणनेसाडॆ तानुमॊडनॆ—

सोदरन धनुर्गुणमं * छेदिसिदं रोषि रावणं मदमदिरां- ।
न्मादवशं धर्म गुण * च्छेदनमं माळ्पुदॆंबुदॊदच्चरिये ।। १५ ।।

अंतु दशाननं निज शरासनमं खंडिसे—

---

ली तो— सुनकर विभीषण क्रोधके मारे आग बबूला हुआ। रावणने कहा—अनुज से लड़कर, गोत्रवध के पाप का पात्र कैसे बनूँ? १३ —मेरे सामने से हट जा। ऐसा कहने पर रावण की इस व्यंग्योक्ति से कुपित होकर विभीषण ने कहा—मैंने हित की बात कही तो उसे न सुनकर मुझे राज्य से बाहर निकाल दिया। तुम्हारी धर्मबुद्धि एवं भ्रातृप्रेम भी समाप्त हो चुके हैं। कम से कम अब प्रसिद्ध तोयदवाहन वंश पर कलंक लानेवाली (अन्य की पत्नी को चाहने की) दुर्बुद्धि को त्यागकर, तुम्हारी और तुम्हारे वंश की मृत्यु (नाश) न चाहकर, भगवान श्रीराम के चरणों में जगन्माता सीतादेवी को सौंपकर, अपने राज्यमें (पूर्ववत्) सुख से रहो। इस बात को सुनकर रावण क्रोध से धनुषपर बाण चढ़ाकर पास आया तो— विभीषण ने तीक्ष्ण बाण निकालकर बाण प्रयोग किया तो रावण की कीर्ति-पताका ध्वजदंड के साथ टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। १४ —विभीषण के बाण प्रयोग करते ही रावणने भी तुरन्त— अनुज के धनुषको तोड़ दिया। मदरूपी मदिरापान करनेवाले धर्म को तोड़े तो आश्चर्य क्या है? १५ —रावणने धनुर्बाणों को तोड़ दिया तो—

दशवदन शरासनमं ॐ निशात शरदिं विभीषणं खंडिसिदं ।
दशवदननुं विभीषण- ॐ न शरासनमं विशात शरदिं कडिदं ॥ १६ ॥

अंतु कलुषवश गतरागि—

पितृवुं पितृव्यनुं का- ॐ दें तन्नोळिदगिगें पक्षवादुदु लंका- ।
पतियोडतें तक्कुदोमेर-ॐ दतिगुडु मत्तोंदु मरननें पत्तुगुमे ॥ १७ ॥

अंतु इंद्रजित्कुमारमारनेंदेत्रोक्कु विभीषणनोळ् कादलोडरिसें लक्ष्मणं निज वरुथमनातन वरूथक्कडुंनूंकि—

इत्तित्त मगुळ् मगुळें- ॐ दत्तल् रामानुजन्मनिदगियोळ् का- ।
दुत्तुमिरें राघवं सुभ ॐ टोत्तमनोळ् कुंभकर्णनोळ् बिल्वोय्दं ॥ १८ ॥

आ समयदोळसमय विलय समय समुत्पादन समर्थनप्प कृतांतनंतें हनुमंतं कुंभकर्णनोळ् किष्किधं केतुविनोळ् प्रभामंडलं मेघवाहननोळ् विराधितं मयनोळूर्जितं दृढ़ रथनोळ् पेररुमरिकेय कपिध्वजबलनायकरनेकर् राक्षसबलद नायकरोळ् बिल्वोय्दु वहु-कबंध नर्तन प्रबंधमगुर्वुमद्भुतमुमागें महायुद्धंगेय्युत्तुमिर्पिनमित्तल्—

इंदगि साधारण शर ॐ संदोहदिनेच्चु कादलणमारदें श- ।
त्रुंदमनोळ् लक्ष्मणनोळ्ॐ तंदं दिव्यास्त्रगर्भ शरदिगें कैयं ॥ १९ ॥

---

विभीषण ने रावण के शरासन (धनुष) को तीक्ष्णवाणों से काट दिया। रावणने भी विभीषण के शरासन को काट दिया। १६ —दोनों भाई कोपावेश में लड़ रहे थे कि— इंदगी ने पिता और चाचा को लड़ते हुए देखा और मनमें सोचने लगा कि क्या एक पेड़की छाल दूसरे पेड़ में चिपक सकती है ? १७ —ऐसा सोचकर वह विभीषण से लड़ने के लिए तैयार हो गया। तब लक्ष्मणने अपने रथ को उसके सम्मुख ले जाकर— 'इधर मुड़ो' कहकर चिल्लाते हुए उसे अपनी ओर आकर्षित कर लड़ने लगा। उधर सुभटों में श्रेष्ठ श्रीराम कुंभकर्ण से लड़ रहा था। १८ —उस समय प्रलयकाल के यम को पराजित करने में समर्थ हनुमान कुंभकर्ण से, किष्किध केतु से, प्रभामण्डल मेघवाहन से, विराधित मयसे, ऊर्जित दृढ़रथ से, अन्य अनेक साहसी कपि सेनानायक राक्षस सेनानायकों से अपनी हस्त-कुशलता (युद्ध कौशल) का परिचय देते हुए भयंकर रूप से लड़ रहे थे। इधर— इंद्रजित सामान्यवाणों से यमतुल्य शत्रु लक्ष्मणसे लड़कर, पराजित करनेमें असमर्थ होकर, दिव्यास्त्रों के तरकस में हाथ डाला। १९ —इस तरह इंद्रजित दिव्यास्त्रों को धनुषपर चढ़ाकर

अंतु दिव्य बाणमं बाणासनदोळ् पूडिकोंडुपेंद्रननिंद्रजित्कुमार-
निसुवुदुं—

गगनाभोगदोळिर्दु नोळ्प सुरसंदोहं महोत्साहदिं ।
पोगळल्वन्नं तमदंबनर्कशरदिंदाशीविषोग्रास्त्रमं ॥
खरराजास्त्र निपातदिं किडिसि दिव्यास्त्रंगळिं नेल्दनि-।
दगियं संहृति काल सांध्य जलदारक्तेक्षणं लक्ष्मणं ॥ २० ॥

त्रिदशेंद्र विजयियं दश-*वदननाहवदोळिक्कलिर्द महावी-।
र्यद कणिगे लक्ष्मणंगा-*वुदु गहनमो गेल्वुदुळिद रणबालकरं॥ २१ ॥

अंतु गेल्दिददगियं विरथंमाडि नेलक्किक्कि नाशपाशदोळ्
कट्टि विराधितन कैयोळ् बीडिगे कळिपुवुदुमित्तल्—

पेररळवे रामनोळ् त-*ळितरियलिवं रावणंगे शौर्यदोळं ने- ।
र्गिरियनेने कुंभकर्ण * मेरेदं कोदंड बाहुदंडद नेरवं ॥ २२ ॥

अंतु कदन कर्कशनागि कादुत्तुमिरे राघवनबननेळिदंबगेंदु
दिव्य बाण तूणीरक्के कैयनुय्वुदुं—

सामान्यास्त्रंगळिं भंगमनोडरिसिदं कुंभकर्णंगेनल् सं-।
ग्रामावष्टंभ संरंभदिनतुलबलं मीरि मारांपनावं ॥
रामं दिव्यास्त्रमं तोट्टोडे कुलनगमल्लाडुगुं दिक्करींद्र ।
स्तोमं बाय्विट्टु पिम्मेट्टुगुमिळेगिळिगुं व्योमदिं भानु बिंबं॥२३॥

---

उपेंद्र लक्ष्मणपर प्रयोग करनेपर— आकाश में रहकर अत्यन्त उत्साहसे देखनेवाले देवताओंसे प्रशंसित होता हुआ लक्ष्मणने शत्रुके तमोबाण को सूर्यशर से, सर्प बाण को गरुडास्त्र से खंडितकर प्रलयकाल की संध्याके वर्ण के समान की (लाल) दृष्टिसे सुशोभित लक्ष्मण विजयी हुआ । २० देवेंद्र को पराजित करनेवाले रावणको युद्धभूमि में भिड़नेपर पराजित करने का शौर्य रखनेवाले लक्ष्मण के लिए ऐसे सामान्यों (रण बालकों) पर विजय पाना कौनसी बड़ी बात है ? । २१ इंदगी को पराजित कर, उसे विरथी बनाकर, धराशायी बना देने के बाद, नागपाश से बाँधकर विराधित द्वारा शिविर में भिजवा दिया । इधर— रामसे कौन लड़ सकता है ? शौर्यमें रावण की बराबरी करनेवाला कुंभकर्ण हाथमें कोदंड धारणकर युद्धभूमिमें सुशोभित हुआ । २२ —घोरयुद्ध चलते समय राघवने उसे निकृष्ट समझकर, दिव्य बाणों के तरकस की ओर हाथ ले गया (बढ़ाया)— । सामान्य बाणोंसे ही कुंभकर्ण को

अंतवत शस्त्रास्त्रमं तनुज कोदंड पताका दंडगळं खंडिसुवुदु—
मिक्क महारथं विरथनादनधोक्षजनंते नाग पा- ।
शक्कोळगादनीश्वर किरीटमेनल् रथदिं नेलक्के पा- ॥
ल्दक्कट बोम्मनंतिरे रजोमयनादनिदिर्चि रामनोळ् ।
तक्किन कुंभकर्णनेने मिक्कुवरांतु बर्दकुवनरार् ॥ २४ ॥

अंतु बंधनक्के वंद कुंभकर्णनं प्रभामंडलंगोप्पिसुवुदुं प्रभामंडलं मेघवाहननं नागपाशदोळ् कट्टि कुंभकर्णबेरसु बीडिगे पोदनित्तल् पिरिदुंबोळ्तु भरंगेय्दु कादुत्तुमिर्द विभीषणनं रावणं नोडि कोलल्वेडि—

शूलायुधदिंदिडे लय * कालोरगदंते बर्पुदुं जय लक्ष्मी- ।
लोलं लक्ष्मीधरन- * स्त्रालिगळि खंडखंडमागिरे कडिदं ॥ २५ ॥

अंतु कडिदु विभीषणनं पेरगिक्कि लक्ष्मणनेडेगोदु रावणनोळ् तागुवुदुं—

नीं कादे विभीषणनं-* मुं कोलल्लेंदिट्टशूलमं खंडिसि नि- ।
न्नं कावनावनिन्नेनु * तुं कोंडं दिव्यशक्तियं दशकंठं ॥ २६ ॥

---

पराजित करनेमें समर्थ राम दिव्यास्त्रों का प्रयोग करें तो उन्हें सहने में कौन समर्थ है ? दिव्यास्त्रों को धारण करते ही कुल-पर्वत कांप उठते हैं, दिग्गज मुंह खोल देते हैं, सूर्यबिंव ही आकाशमण्डल से नीचे उतर पड़ता है। २३ —इस तरह कुंभकर्ण के शस्त्रास्त्रों, धनुषवाणों, और ध्वजों को खण्डित करने पर— शौर्यशाली कुंभकर्ण विष्णु के समान विरथी हुआ; ईश्वर के मुकुट के समान नागपाश में बंध गया; रथसे जमीनपर गिरकर ब्रह्म-सा धूल-धूसरित हुआ। राम से भिड़कर अगर कुंभकर्ण की यह दशा होती है तो अन्य जीवित रह सकते हैं ? २४ —इस तरह बंधी बने हुए कुंभकर्ण को प्रभामण्डल के सुपुर्द करनेपर, उसने मेघवाहन को भी नागपाश में जकड़कर कुंभकर्ण के साथ शिविरमें ले गया। इधर दीर्घ समयसे घोर युद्ध करनेवाले विभीषण को देखकर उसे मार डालने के उद्देश्य से रावणने— शूलायुध फेंका तो वह लयकालके काला सर्प-सा आ रहा था। लक्ष्मणने उसे बाण समूह से टुकड़े-टुकड़े कर दिये। २५ —काटकर, विभीषण को पीछे हटाकर, स्वयं आगे वढ़कर रावणसे भिड़कर, विभीषण को मार डालने के उद्देश्यसे प्रयुक्त शूल को काटकर तुमने उसकी रक्षा की है। अब तेरा रक्षक कौन है ? ऐसा कहते हुए रावणने दिव्य-शक्ति को उठा लिया। २६ —उसे लेकर, मन्त्र रटकर पूरीशक्ति के

अंतु कोंडभिमंत्रिसि सर्वशक्तियिंदिट्टुवुदुं—

कुळिकन दाडेयो जवन दाडेयो मेण् विलयाग्निजिह्वेयो ।
जळधियनींटुवौर्व दहनाचियो पेळेने रौद्ररूपमं ॥
तळेदु कपिध्वजर् नडुगुवंतु दशाननिट्ट शक्ति नि- ।
श्चळमेने नट्टुदद्रप्रतिम शक्ति जनार्दनवीरवक्षमं ॥ २७ ॥

अंतु दिव्यशक्ति निश्शक्तियप्पंतु नट्टु निले—

समर विजयांगना सं * गम जनित श्रमदोळाद निद्रेवोल्क- ।
ण्णेमे मुच्चि मुच्चेवोदं * कमलाक्षं दनुज दिव्य शस्त्राहतियिं ॥ २८ ॥

अनुवरदोळ् सम बलनी- * तने दोर्बल दृप्तनेंब बगेदारदे बि- ।
ळ्दननिरियलोल्दनिल्ला * वनो रावणनंतु पाळियं पाळिसुवं ॥ २९ ॥

अंतु मूर्छितनप्पुदुं दानव सेनेयोळ् घूर्णिसुव जयानकरवं श्रवण विवरमं सार्तरे तद्वृत्तांतमं तिळिदु—

अनुजने मूर्छेवोदळले कोपमनग्गळमुंटुमाडे की- ।
ळ्वेनो कुल शैलमं कुडिवेनो कडलं वसुधातलक्के त- ॥
र्पेनो राशि सूर्य मंडलमनेत्तुवेनो नेलनं वियत्तल- ।
क्केनगिदिरावनेंदोदरि रावणनोळ् पोणर्द रघूद्वहं ॥ ३० ॥

---

साथ प्रयोग किया तो— रावण द्वारा प्रयुक्त शक्तिने ऐसा रौद्र रूप धारण किया मानो सर्पदंश हो, या यम की दाढ़ हो या प्रलयाग्नि की जिह्वा हो या फिर समुद्रको सोख लेनेवाली बड़वाग्नि हो, कपि सेना को कंपाती हुई वह लक्ष्मण के वक्षस्थल पर धंसी। २७ —इस प्रहार से लक्ष्मण निश्शक्त (दुर्बल) हुआ— और वह ऐसा मूर्छित हुआ मानो विजयश्री को वश कर लेने के कार्य से उत्पन्न श्रमके कारण प्राप्त निद्रा-सी पलकें मूँदकर सो रहा हो। २८ रावणने यह सोचकर कि युद्धमें मेरा समकक्ष है, यह महापराक्रमी है, मूर्छितावस्थामें इस पर वार करना उचित नहीं है, औदार्य दिखाकर वह चुप रहा। समरधर्म का पालन करने में उसके समान और कौन है ? २९ —लक्ष्मण के मूर्छित होते ही राक्षस सेना में जो जयघोष हुआ, वह दिगंतों तक व्याप्त हो गया। इस समाचार को सुनकर— अनुजके मूर्छित होने के कारण क्रोध दुगुना हुआ तो राम रावण से अतिशय शौर्य से ऐसा लड़ा मानो वह कुलपर्वतों को उखाड़ रहा हो, समुद्र को पी रहा हो, सूर्य-चंद्रमण्डलों को भूपर उतार लाता हो, पृथ्वी को आकाश में उठा रहा हो। ३० अपने सम्मुख आनेवाले अप्रतिम

तिरुविल्लंबु पताकें वज्रकवचं सूतं वरूथं हयो- ।
त्करमेंबितिवनागळेंच्चु कडिखंडंमाडि दिव्यास्त्रदिं ॥
विरथंमाडिदनेळु सूळवरेंगमावं राम बाणक्कें नि- ।
त्तरिपं तन्ननें संतविटनसुरं मुं तागलेनार्तने ॥ ३१ ॥

अंतु रावणं पलवुसूळ् विरथनागियुमविच्छिन्न कवचनुमव्रणकायनुमप्पुदुं—

भेदिपुदु कुलाद्रियनें- ॐ न्नी दिव्य शरंगळिवन देहमनिनिसुं ।
भेदिसिदुविल्ल विस्मयॐ मादपुदल्पायुवल्लनक्कुं दनुजं ॥ ३२ ॥

एँदु बगेयुतिर्पिनं—

इनवंशोद्भवनप्प लक्ष्मणन मूर्छावेगमं पिंगिसल् ।
मनुवंशंगेंडेमाळ्पेंनिदिनिरुळोळ् लक्ष्मीधरं गेल्गुमी- ॥
दनुजाधीश्वरनिट्ट शक्तिय पोंडपं तक्कुदल्लिर्पुदि- ।
न्नेनगेंबंतें दिनाधिनाथनपरांभोराशियं पोंदिदं ॥ ३३ ॥

अंतु नेसर् पडुवुदुमेंरडुंपडेंगळपहार तूर्यमं पोयिसि तंतम्म बीडिगें पोपुदुमा समयदोळ्—

मनदोळ् हर्ष विषादवादुवु दशास्यंगोर्वनं वैरियं ।
मोनेयोळ् साधिसिदें महाबळननेंबुत्साहदिंदारमनं- ॥

---

धनुर्बाणों, ध्वजों, वज्रकवचों, सारथियों, रथों, घोड़ों आदि को रामने अपने दिव्यास्त्रों से खंडितकर दिया, रावण को सात बार विरथ कर दिया। रावण अपने आपको इस बात की तसल्ली देकर चुप रह रहा था कि रामवाण के सम्मुख ठहर पाने की शक्ति औरों में नहीं है। ३१ —कई बार विरथ रावण, जिसका कवच टुकड़ा-टुकड़ा होकर शरीर भरमें घाव लगे थे, को देखकर— रामको इस बात का आश्चर्य हुआ कि मेरे ये बाण तो कुलपर्वतों को भी भेदने की शक्ति रखते हैं, लेकिन रावण के शरीर को भेद न सके! राम समझ गया कि यह अल्पायु नहीं है। ३२ —राम इस तरह सोच रहा था कि उधर—सूर्य इस आशय से पश्चिम समुद्रमें प्रविष्ट हुआ मानो सूर्यवंश के लक्ष्मण को मूर्छितावस्था से जगाने के लिए श्रीराम को रातभर का समय दे रहा हो; तत्पश्चात दनुज की शक्तिपर लक्ष्मण विजय प्राप्त कर लेगा। ३३ —सूर्य के डूबने पर उभय सेनाएँ युद्ध-विराम की भेरी बजाकर अपने-अपने डेरे पर गयीं। उस समय— रावण ने मन ही मन एक साथ हर्ष और त्रिषाद का अनुभव किया। एक

दनर्प्पिदगि मेघवाहनरुमं मत्सोदरं कुंभक- ।
र्णनुमं बाळ्दलेगोंडरेंदसदळं मेय्वेंचिदुब्बेगदिं ।। ३४ ।।

अंतु बगे बेदरे रावणं लंकेगे पोदनित्त दाशरथि मूर्छितनागिर्द लक्ष्मणनं कंडु तानुं मूर्छेवोगि नीडरिंदेंळ्चत्तु मत्तमति विह्वल चित्तनागि तम्मननेय्देवर्पुदुं जांबवसुषेण प्रमुखमंत्रिगळेंदर् देव दिव्य शस्त्र दोळाद वेदने करस्पर्शनदिनधिकमक्कुं मुट्टबेडेंदु बारिसि नीमेके विह्वलरप्पिर् सौमित्रियप्पोंडेंटनेय केशवनातन कैयोळ रावणंगपायमक्कुमल्लदीतंगपायमप्पुदल्तु दिव्यशस्त्रप्रहरण भरमन-पहरिसुव भेषज प्रयोगमनोडरिसुकमेंदु शोकोद्रेकमनुपशमिसुवुदु-मनंतरं—

सौमित्रिय सुत्तण रण-※ भूमियनिबागे समरि कपिकेतु कुल-।
ग्रामणि सुग्रीवं वि- ※ द्यामयमं सप्तगुप्तियिं निर्मिसिदं ।। ३५ ।।

अंतु निर्मिसिद विद्याप्राकारंगळ बहिरंतः प्रदेशंगळोळ् पलबर् विद्याधररं कापुवेळ्वुदुं—

चलियिसेनेंदादिय बा-※गिल कापितोळसम सैन्यनेंटनेय कुला-।
चलमेंबिनं प्रभामं-※डलनिर्दं मंडलाग्रमं जडियुत्तुं ।। ३६ ।।

---

ओर इस बात का हर्ष था कि एक शत्रु को पराजित किया; दूसरी ओर इस बात का विषाद हो रहा था कि पुत्र इंदगी, मेघवाहन और भाई कुंभकर्ण की पराजय हुई । इस विषाद से रावण उद्विग्न हुआ । ३४ —इस तरह दुखी, घबराया हुआ रावण लंका लौटा । इधर, मूर्छित लक्ष्मण को देखकर राम भी क्षणभर के लिए मूर्छित होकर फिर होशमें आकर, विह्वल चित्त हो, अनुजके पास गया । इसे देखकर, जांबव, सुषेण आदि मंत्रियों ने यह कहकर राम को रोका कि हे भगवन, कर स्पर्श की वेदना शस्त्राघात-वेदना से बढ़कर है, अतः आप लक्ष्मण को न छुवे और समझाया कि आप चिंता क्यों कर रहे हैं ? लक्ष्मण तो अष्टम केशव है, उसे रावण के हाथों किसी तरह की हानि हो ही नहीं सकती । केवल दिव्य शस्त्रों के आघात के घाव के लिए औषधि लानी है । इस तरह शोकावेग को शांत करने के पश्चात— जहां लक्ष्मण गिरा था उस स्थान के आसपास के प्रदेश को कपिश्रेष्ठ सुग्रीव ने अपने विद्याबल से सात दीवारों का निर्माण कर घेर लिया । ३५ —इस तरह निर्मित दीवारोंके भीतर-बाहर कई विद्याधरों को तैनात किया— प्रथम द्वार पर असम (अद्वितीय) बल के साथ प्रभामण्डल अष्टम कुलपर्वत-सा खड़ा

ऎरडनॆय बागिलॊळ् सं- ※ गरक्कॆ तानंगरक्कॆ रघुजंगॆवं- ।
तॆरडनॆय दंडधरनं- ※ तिरिर्दनुरदंगदं गदादंडधरं ॥ ३७ ॥

मूरनॆय नॊसल कण्णं ※ तोरुवॆनानसुर सेनॆगॆबंतागळ् ।
मूरनॆय बागिलॊळ् कै-※ मीरदॆ शूलायुधं विभीषणनिर्दं ॥ ३८ ॥

समदं चारधरं त- ※ न्नमित बलंबॆरसु मारुतगं पुगलि- ।
दु मरीचिगमणमरिर्दनॆ※ कुमदं नाल्कनॆय बागिलॊळ् नॆरॆदिर्द ॥ ३९ ॥

परचक्रविलय केतुवॊ-※ लिरॆ कॊंतं तन्न हस्तदॊळ् तन्न बलं ।
बॆरसु सुषेणं खेचर ※ परिवृढनय्दनॆय बागिलॊळ् बंदिर्दं ॥ ४० ॥

अपरिमित सैनिकं पिडि- ※ दु पिंडिवाळमनखर्वं वाहागर्वं ।
क्षपित रिपुसैन्यनिर्दं ※ कपिकुलनारनॆय बागिलॊळ् सुग्रीवं ॥ ४१ ॥

ऎन्ननतिक्रमिसल् नॆरॆ※ वन्नं पॆरनावनिरुळ काळॆगदॊळॆनु- ।
त्तुन्नीलं रणलोलं ※ तन्न बलंबॆरसु कडॆयबागिलॊळिर्दं ॥ ४२ ॥

अंतवरसंख्यात बलसमेतरागिर्पुदुमा प्राकारदॊळगण मणि-मंटपद पूर्व द्वारदॊळ् शरभनुं पश्चिमद्वारदॊळ् चंद्रमरीचियुं उत्तर-द्वारदॊळ् जांबवनुं दक्षिणद्वारदॊळ् महेंद्रनुं अपारवीरभट सेना समन्वितरागि लक्ष्मणनं कैकॊंडिर्पुदुमित्त रावणं निजांतरंगदॊळ्—

---

था। ३६ द्वितीय द्वारपर युद्धमें स्वयं को रघुराम का अंगरक्षक समझने-वाला वीर अंगद गदाधारी बन, द्वितीय यमसदृश खड़ा था। ३७ तृतीय द्वारपर शूलायुधधारी विभीषण ऐसा खड़ा था मानो समस्त असुर सेना को नाश करने के लिए अपना तृतीय नेत्र खोलना चाहता हो। ३८ समर चतुर, धनुर्धारी कुमुद अपरिमित सेना के साथ चतुर्थ द्वारपर ऐसा खड़ा है कि वायु और प्रकाश को भी भीतर जाना असाध्यकर दिया है। ३९ पंचम द्वारपर शत्रु सेना के लिए यमसदृश सुषेण बर्छी, बल्ला हिंसात्मक आयुध लिये अपनी सेना के साथ खड़ा था। ४० विविध आयुधों को धारणकर, असंख्य सेना के साथ यथायोग्य सूचना देता हुआ रिपुकुल-यम सुग्रीव छठे द्वार पर खड़ा था। ४१ अंतिम द्वारपर रणोत्साही नील यह कहता हुआ खड़ा था कि रात के युद्धमें उससे भिड़कर जीतने में कोई समर्थ नहीं है। ४२ —इस तरह वे सब अपनी असंख्य सेनाके साथ रक्षा कर रहे थे कि उन दीवारों के भीतर के मण्डप के पूर्व द्वार पर शरभ, पश्चिम द्वार पर चन्द्र-मारीचि, उत्तर द्वार पर जांबव और दक्षिण द्वार पर महेंद्र अपने अपार वीर योद्धाओं के साथ लक्ष्मण की रखवाली कर रहे

सायदे माणं लक्ष्मण * नीयिरुळोळे सायें सेरेगळं कोल्लदे कै ।
गायरवरेंमगें पिरिदुम-* पायं समनिसिदुदेंदु चिंतिसुतिर्दं ।। ४३ ।।

अंतिर्पुदुमित्त सीतादेवि शक्तिप्रहाररदिं लक्ष्मीधरं मूर्छितनागिर्दनेंबुदं केळ्दु शोकानल दंदह्यमान मानसेयागि—

ई दिव्यायुध हतियिं-*दादत्तु विपत्ति निनगें लक्ष्मीधर धा-।
त्री दयितनप्पें नीनें * बादेशमदेत्त पोय्तु मनुकुल तिलका ।। ४४ ।।

सावं रावणनेंदर् * केवलिगळ् सिद्धशिलेयनुद्धरिसिद शौ- ।
र्यावष्टंभनिनदु पुसि* सावादुदे निनगें वैरि शस्त्राहतियिं ।। ४५ ।।

ऎंदु पलतेरदिं प्रळापंगेय्दु सीतेयं विनीतें खचरकांतें संतैसिनिमगिनितु दुःखमेवुदु निम्म मैदुनं वासुदेवनप्पुदरिं प्रतिवासुदेवनिं सावनेय्दुवनल्लनेंदळलनारिसुतिर्पिनमित्तल्—

गगनचरं लक्ष्मीधर * नगण्यपुण्य प्रभावदिं मत्तोर्वं ।
गगन तळं निज भूषां-* शुगळिं प्रज्वलिसुवंतु बेगं बंदं ।। ४६ ।।

अंतु बंदु बीडं पुगुवल्लि कापिनवरडुंबर्पुदुमातं रथनूपुरचक्रवालपुरदिं काळेगद सुद्धियं जनकनारय्यलट्टिदोडे बंदेनेंदवरनुमतदिं

---

थे। इधर रावण मन ही मन— सोच रहा था कि आज रात लक्ष्मण अवश्य मरेगा। अगर ऐसा हुआ तो, जो (इंदगी, कुंभकर्ण, मेघवाहन आदि) बंधी बनाये गये हैं, उन्हें तुरन्त मार डाले बिना (कपिवीर) नहीं रहेंगे। इससे हमपर भारी खतरा आनेवाला है। ४३ —इधर दिव्य शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण के मूर्छित होने की खबर पाकर सीतादेवी अत्यंत व्याकुल-चित्त हो, सोच रही थी— शक्तिके आघात से तुमपर (प्राणघातक) विपत्ति आ गयी ! हे मनुकुल तिलक लक्ष्मण, पृथ्वीनाथ बनने का तुम्हारा वह आदेश (भविष्यवाणी) कहाँ गया ? ४४ केवलियों ने भविष्यवाणी की थी कि सिद्धशिला को उठानेवाले वीर के हाथों रावण की मृत्यु होगी। वह वाणी रावण के आयुध (शक्ति) के आघात के कारण तुम्हारे लिए असत्य साबित हुई। ४५ —इस तरह अनेक प्रकार से विलाप करती हुई सीता को खेचरिन विनीता सांत्वना दे रही थी। उसने यह कहकर सीता के दुःख का निवारण किया कि उसे चिंता नहीं करनी चाहिए। उसका देवर लक्ष्मण वासुदेव होने के कारण प्रतिवासुदेव रावण के हाथों कभी नहीं मर सकता। इधर— एक आकाशगामी पुरुष अपने आभरणों की कांति से गगनमण्डल को प्रकाशित करता हुआ, मानो लक्ष्मणके पुण्य प्रभाव ही हो, वहाँ आया। ४६ —आकर शिविर में प्रवेशकर रहा

प्रभामंडलनं बंदु कंडु तन्नवंदबरवनरिपि सौमित्रिय मूर्छाद्रपंचमनवर दॆसॆयिनरिदादिव्यशक्तियिदादपायमनपहरिसुवुपाथमनां वल्लॆमॆंबुदं प्रभामंडलं प्रमोदमुदित हृदयनातनं रामस्वामियल्लिगुय्वुदुमातं साष्टांग प्रणतनागि देवभवत्प्रसाददिं लक्ष्मीधरंगॆ सर्वक्षेममक्कुमा-दॆसॆगुम्मळिसदॆन्नबिन्नपमनवधरिसुवुदॆंदितॆंदं—

निरुपम देवनीत पुरवॆम्म पुरं पुर वल्लभं कला ।
परिणतनॆन्न तंदॆ शशिमंडलनानतिचंद्रनॆंब खे- ॥
चरनॆनदॊमॆ वायुपथदॊळ् परमोत्सवदिं विहारिसु- ।
त्तिरॆ पगॆवं सहस्रविजयं कडुकॆय्दिदिरागि तागिदं ॥ ४७ ॥

अंतु तागॆ पिरिदु पॊळ्तिवॆरुं भरंगॆय्दु कादुतिर्दु—

अवनिट्ट शक्तियिदां ॐ जवमळिदु नभो विभागदिं साकेत- ।
क्कवतरिसि महेंद्रोद्या-ॐन वनद तण्बुळिल ताणदॊळ् बिळ्दिर्दॆ ॥ ४८ ॥

भरतनुमन्न पुण्यवशदिंदिरदल्लिगॆ बंदु मूर्छॆवो- ।
गिरॆ कृपॆयिंदमॆन्ननवलोकिसि दिव्य सुगंधतोयमं ॥
तरिसि मदंगदॊळ् तळियॆ शक्तियशक्ति पॊडर्पुगॆट्टु चॆ- ।
च्चरमदु पिंगॆ मुच्चिचॆदिळिदॆं मरवट्टवनेळ्व माळ्कॆयिं ॥ ४९ ॥

---

था कि द्वारपालकोंने उसे रोका। उसने बताया कि रथनूपुर, चक्रवालपुर से युद्ध की खबर लेने के निमित्त वह जनक राजा द्वारा भेजा गया है। द्वारपालकों की अनुमति पाकर वह प्रभामण्डल से मिला। लक्ष्मण पर दिव्य अस्त्रों का आघात और उसके मूर्छित होने का विषय जानकर, उसके यह बताने पर कि वह उस मूर्छावस्था से मुक्त होने का उपाय जानता है, प्रभामण्डल को अमितानंद हुआ। वह आगंतुक को श्रीराम के पास ले गया। वहां उसने श्रीराम के चरणों में साष्टांग नमस्कार करके कहा, हे भगवान, आपके अनुग्रह से लक्ष्मण ठीक हो जायगा। उसके लिए चिंता न करें, कृपया मेरा निवेदन स्वीकार हो। आगे उसने यूं कहा-- यह देवपुरुष है, हमारे राज्य का है, कला परिणत राजा है। शशिमण्डल मेरे पिता हैं। अतिचंद्र मेरा नाम है। एक बार मैं बड़े उत्साह से वायुमण्डलमें विचरण कर रहा था कि मेरा शत्रु सहस्रविजय मुझे रोककर भिड़ गया। ४७ --हम परस्पर लड़ रहे थे कि-- उसके प्रयुक्त शक्तिके आघात से शक्तिविहीन होकर मैं आकाश से नीचे साकेतपुर के महेंद्रोद्यानके मरण टीले पर जा गिरा। ४८ मेरा साक्षात पुण्य-सा भरत वहां आये और मुझ मूर्छित को कृपादृष्टि से देखकर दिव्य गुलाब-

अंतु मूर्छेयिंदेळ्चत्तु कतिपय परिजनंबेरसिर्दु भरतनं कंडकारण बंधुवप्प निन्न दूसरिंदेनगॆ पुनर्जन्ममादुदी गंधसलिलक्किनितु सामर्थ्यमाद कारणमं पेळ्वुदॆनॆ भरतनितॆंदनॆम्म पुरक्कॆ मारिगुत्तं मॊदलागॆ पॆरवुमागंतुक पीडॆगळप्पुदुमानवर्कॆनुंगॆय्यलरियदुम्मळिसुतिर्पुदुं आ व्यतिकरनॆम्म मावं द्रोणमेघंकेळ्दु बंदा गंधोदकमं तळिदु—

पुरमं देशमुमं व्या- ॐ धि रहितमप्पंतु माळ्पुदुं पिरिदप्प- ।
च्चरितन्नचित्तदॊळ्पॆ-ॐ च्चिरॆ भरदिं द्रोणमेघनं बॆसगॊंडॆं ।। ५० ।।

अंतु बॆसगॊळ्वुदुं द्रोणमेघनितॆंदं—

पलवुं व्याधिगळिं म- ॐ त्कुलवधु नमॆयुत्तुमिर्दु बसिरागदॊडं ।
तॊलगॆ रुजॆ हृदय शल्यं ॐ ललनारत्नमनदॊंदु कूसं पॆत्तळ् ।। ५१ ।।

आ कूसिगदुकारणदिं विशल्यसौंदरियॆंब पॆसरादुदाकॆयमज्जन जलदिंदॆम्म नाडुंबीडुं व्याधिरहितमादुदॆंबिदं द्रोणमेघं पेळ्दनॆंदु भरतं पेळ्वुदुं—

---

जल मंगवाकर मुझपर सिंचन किया तो शक्ति की शक्ति घट गयी और मेरी दुर्बलता मिटकर मैं जाग उठा। ४९ —इस तरह मूर्छावस्था से जागकर, परिजनों से आक्रान्त भरत को देखकर यह कहने पर कि आप जैसे बंधु के कारण मुझे पुनर्जन्म मिला है; कृपया इस सुगंधित जल की इस शक्ति (सामर्थ्य) का कारण बतावें तो भरत ने बताया—हमारे नगर में देवी आदि अनेक महारोग फैलते थे। मैं उन्हें रोकने में असमर्थ होने के कारण दुखी था। उसे सुनकर मेरे मामा द्रोणमेघ वहां आये और अपने पास जो गंधोदक था उसे सिंचित कर— नगर और देश को बीमारी से बचाया। इससे चकित होकर मैंने (भरतने) उनसे (द्रोणमेघसे) पूछा। ५० —इस पर द्रोणमेघ ने यूं कहा— अनेक तरह की बीमारियों को सहती हुई मेरी पत्नी गर्भवती हुई। समस्त रोग तुरंत अदृश्य हो गये। हमारे दुःखों का भी निवारण हुआ। मेरी पत्नी ने एक कन्या को जन्म दिया। ५१ —इस कारण से उस बच्ची का नाम विशल्यसौंदरी रखा गया। उस बच्ची के स्नान किये हुए पानी से हमारा देश रोगरहित हो गया। भरत ने द्रोणमेघ द्वारा बतायी हुई यह बात मुझे (अतिचंद्र को) बतायी तो— मेरा कुतूहल बढ़ गया। मैंने (पुनः) भरत से निवेदन किया कि कृपया बतावें कि उस बच्ची को ऐसी अद्भुत शक्ति कहां से और कैसे उपलब्ध हुई ? इस निवेदन को सुनकर। ५२ उसनें यूं कहा—इस

ऒनगधिकमागॆ कौतुक-*मिनितितिशयमाकॆगाद कारणमं पे- ।
ळॆनगॆंदु मत्तॆयुं भर-*तननां वॆसगॊंडॆनपरिमित सुचरितनं ।। ५२ ।।

वॆसगॊळ्वुदुं भरतनिनॆंदनी पूर्वविदेहद पुंडरीकिणीपुरमनाळ्वं त्रिभुवनानंद चक्रवर्तियॆंबनातन मगळनंगशरॆयॆंबळ् तिरुवि बर्दुंकिदनंगनलविनंतॆ केळीवनदॊळगॆ सुळियुतिर्पुदुमा समयदॊळ् पुष्कलावती-विषयद विजयार्धगिरिय प्रतिष्ठापुरमनाळ्वं पुनर्वसुवॆंब विद्याधर-नाकॆयं कंडु मदनशर शलाकाकीलित हृदयनागि विमानदॊळिट्टु नभक्कॆ नॆगॆदु पोपुदुं त्रिभुवनानंदचक्रवर्ति कोपवश वर्तियागि पलरुं विद्याधर प्रमुखरनातन मेलॆत्तवेळ्वुदुमवरॊळ् पुनर्वसु कादि बसवळिदनंगशरॆयं पर्णलघुविद्यॆयि नॆलक्किळिपुवंतु माडि पोपुदुं—

आ विद्यॆ गगन तळदिं-* दावधुवं मॆल्लनिळिपि रौद्रमृगंग- ।
ळ्गावासमॆनिपदॊंदु म-*हा विषमाटवियॊळिरिसि पोदत्तागळ्।। ५३ ।।

आकॆयुमा कांतार न-* दी कूलदॊळिर्दु नॆनॆदु पितृ मातृगळं ।
शोकाकुलॆ दुष्कर्म वि-* पाकमिदॆंदंतरंगदॊळ् चिंतिसिदळ् ।। ५४ ।।

धरणीश्वर सुतॆयागियु-*मरण्यदॊळ् बिळ्दु साव दुष्कर्म फलं ।
दॊरॆकॊंडत्तॆनगिदनप *हरिपॊडॆपॆरते जिनेंद्र चरणमॆ शरणं ।। ५५ ।।

---

पूर्वविदेह के पुंडरीकिणीपुर के शासक त्रिभुवनानंद चक्रवर्ती की कन्या का नाम अनंगशरा है। वह मन्मथ के पुष्पबाण के सदृश उपवन में आकर टहल रही थी। उस समय पुष्कलावती देश के विजयार्धगिरि के प्रतिष्टापुर के शासक पुनर्वसु नामक विद्याधर ने उसे देखा और कामबाण के आघात से भ्रमित हो, उसे (अनंगशरा को) उठाकर अपने विमानपर विठाकर आकाश में लपका। इससे त्रिभुवनानंद कुपित हुआ और उसका पीछा करने के लिए अनेक विद्याधरों को भेजा। उनसे लड़कर पुनर्वसु दुर्वल हुआ। पर्णलघुविद्या के आधार से अनंगशरा को पृथ्वी में उतारकर स्वयं वहाँ से फरार हो गया— उस विद्याने अनंगशरा को धीरे से उतारकर घोर कानन में छोड़ दिया जो क्रूर मृगों का आवास स्थान था। ५३ अनंगशरा कानन के नदीतट पर रहकर अपने मातापिता को स्मरण करती हुई मन ही मन अपनी किस्मत के लिए चिंता करती थी। ५४ राजकुमारी बनकर भी जंगल में मरने की दुस्थिति शायद मेरे पूर्वकर्मों के फलस्वरूप प्राप्त हुई है। इसका निवारण जिनेंद्र के चरणों में ही हो सकता है। ५५ ऐसा निश्चय करके तपस्या करने बैठ गयी और अनेक

अँदु तरिसंदु तपदोळ् * निंदुमहा नोंपियनितुमं पलकालं ।
संदिसि नोंतु तनूदरि * पिंदिक्किदळब्दमं सहस्रत्रयमं ॥ ५६ ॥

अंतु तनु तारे तपंगेय्दनशन दीक्षेयोळिर्दोंदु देवसं—

नुंगे जरदजगरं त-
न्वंगि तपस्विनि समाधि समनिसे मनदोळ् ।
पिंगदे नेलसिरे पंच प-
दंगळ् नालगेयोळरिवे मेय्यागिर्दळ् ॥ ५७ ॥

अंतिर्दु शरीरभारमनिळिपि सनत्कुमार कल्पदोळ् पुट्टि सुरलोक सुखमननुभविसि बंदीगळी द्रोणमेघंगे सर्वौषधि प्राप्तेयप्प सुतेयादळा पुनर्वसुवुं मगुळ्दु बंदु मुन्नं तन्निरिसि पोद पेरडवियोळनंगशरेयं काणदे तनगदुवे निर्वेग कारणमागे तपंबट्टु—

तनुवं तपियिसितपदोळ्
मुनियदे मुनियिसदे नडेदु मुनिपति संन्या- ।
सनदिं समाधि समनिसे
सनत्कुमारदोळपार सुखदोळ् तणिदं ॥ ५८ ॥

निरतिशय सुख सुधासा-* गरदोळ् मनवारे मूडि मुळ्कूडुत्तुं ।
परमायुवं पुनर्वसु * चरामरं तीर्चि बंदु लक्ष्मणनादं ॥ ५९ ॥

---

कठिन व्रतों का पालन करती हुई तीन हज़ार वर्ष बिताया । ५६ —इससे उसका शरीर क्षीण हुआ । वह उपवास-दीक्षा का पालनकर रही थी कि एक दिन— उसे एक अजगरने निगल लिया । अजगरके पेटमें भी वह समाधिस्थ रहकर पंचपरमेष्टी जी का स्मरण करती रही मानो ज्ञान ही शरीर धारणकर लिया हो । ५७ —इस तरह रहकर, अपना शरीर-भार उतारकर, सनत्कुमार कल्पमें जन्म लेकर, देवलोक के सुख का उपभोग करके, पुनः द्रोणमेघ की कन्या के रूपमें जन्म लिया । पुनर्वसु लौटकर, पर्णलघुविद्या से कानन में उतारी हुई अनंगशरा को पाकर दुखी हुआ । यही उसके वैराग्य का कारण बना । वह तपस्या में लीन होकर— शरीर तपाकर, क्रोध किये बिना, अन्यों को भी क्रोध न दिलाकर, मुनिवत् संन्यास स्वीकार कर, समाधिस्थ हो सनत्कुमारकल्प में अपार सुख का उपभोग किया । ५८ इस तरह के सुखामृत सागर में डूबते तैरते हुए अपनी आयु समाप्त कर पुनर्वसु इस जन्ममें लक्ष्मण के रूपमें जन्मा है । ५९ —अतिचंद्रके रामसे यह कहने पर कि ज्ञानी सर्वभूतहित

अँदु मन: पर्यय ज्ञानिगळप्प सर्वभूतहित भट्टारकर् तनगेंपेळ्-दुंदनेंनगें भरतं पेळ्दनेंदतिचंद्र वियच्चर बिन्नविसें रामचंद्रं मेंच्चि मेंच्चुगोट्टु हनुमदंगद प्रभामंडलरना गंधोदकमं भरतनं वेडि तन्निमेंदट्टुवुदुमवर् मनोवेगदिं दिव्य विमानंगळनेरि वियन्मार्गदिं पोगि साकेतमं पोक्कु भरतनं कंडु—

किरिदरोळें रणद वार्तेय-
नरिपि दशाननन शक्ति नेरगोळें तनुवं ।
मरेंदिर्दं लक्ष्मणनें-
दरिपिदरंगद मरुत्तनूज प्रमुखर् ।। ६० ।।

प्रशमिसुगुं लक्ष्मीधर-* न शक्तियिदाद बाधें तडेयदें नीमी ।
निशेंयोळें तंदेंमगीवुदु* विशल्यसौंदरिय मिंद गंधोदकमं ।। ६१ ।।

अदल्लदंदु नेसर् मूडुवुदं लक्ष्मणं गतप्राणनक्कुमेंनें भरत शत्रुघ्नर् केळ्दु रावणनमेलें नडेयलोडरिसि—

बिससनदोळ् दशमुखनं*देसेंवलिगुडलेंदु भरत शत्रुघ्नर् सा- ।
हस धन राजि क्रीडा* वसथर् सन्नाहभेरियं पोयिसुवुदुं ।। ६२ ।।

अदं प्रभामंडलं बारिसि रघुवीरन बेंसनिल्लदेंमग निम्मनु-ग्वुदुचितमल्तु निमगें लंकें दूरमप्पुदरिं वेगं बरल्बारदेंनें भरत-

---

भट्टारक द्वारा भरतको सुनाई गयी कहानी को भरतने ही उसे (अतिचंद्र को) सुनाया है, खुश होकर रामने उसे कपड़े, आभूषण आदि देकर बिदा किया। तत्पश्चात हनुमान, अंगद और प्रभामण्डल को बुलाकर भरतके वहां से वह गधोदक ले आने के लिए भेज दिया। वे दिव्य विमानोंमें सवार होकर, मनोवेग गति से, आकाश मार्ग से होते हुए, साकेतपुर पहुँच कर, भरतसे मिले— युद्ध की सारी बातें संक्षेपमें बतायीं। दशकंठ के शक्तिप्रयोग के आघात से लक्ष्मण के मूर्छित होने की खबर सुनकर। ६० —बताया कि यह मूर्छावस्था विशल्यसौंदरी के स्नान किये हुए गंधोदक से उपशमन हो सकता है। अत: आज रात को ही हमें ला देना होगा। ६१ —अन्यथा आजकी रात बीतते ही लक्ष्मण मर जायगा। इसे सुनकर भरत शत्रुघ्न क्रुद्ध हुए और रावण से लड़ने के लिए रवाना होने को तैयार होकर— यह ऐलान करके कि रावण को मारकर दिशाबलि चढ़ा देंगे, सैन्यको तैयार हो जाने के लिए भेरी बजवायी। ६२ —प्रभामण्डल ने ऐसा करने से रोका और कहा कि राम की आज्ञा के बिना आप लोगों

निन्नेमगे कज्जमावुदेने गंधोदकमं तरिसि कोट्टोडदनुय्दु लक्ष्मणन शस्त्रपीडेयं कळेवमेने भरतनितेंदं—

सुरभिजलदिंदमेना * तरुणिय नोडगोंडु पोपुदाकेगे लक्ष्मी- ।
धरने वरनेंबुदं शुभ * चरित्तर् मुन्नेनगे दिव्यमुनिपर् पेळ्दर् ।। ६३ ।।
अंतुं श्रीरत्नक्का- * तं तक्क मिक्करनधिकारिगळेंद- ।
त्यंत हितरं प्रधानर * नंतवरोडगूडि कूसनेरेदट्टुवुदुं ।। ६४ ।।
मन्निसि भरतन मातं * तन्न तनूभवे विशल्यसौंदरिवेरसि- ।
तन्नूर्वर् कन्नेयरं * चेन्नेयरं द्रोणमेघनत्युत्सवदिं ।। ६५ ।।

आ कन्यारत्नंगळं प्रभामंडलं विमानारूढेयर्माडि नक्षत्रवीधियिं क्षणमात्रदोळे रणभूमियनेय्दि विमानंगळिनवनीतलक्कवतरिसि बर्पल्लि विशल्यसौंदरि लक्ष्मणननेनितेनितु सारे वोकुमनितनितु शक्ति शक्तिगेट्टु—

गगनाभोगमनावगं बेळगुतुं ज्वाला सहस्रंग्ळिं- ।
दुगुळुत्तुं किडियं जनार्दनन वक्षोभागमं बिट्टु मे- ।।
गोगेवागळ् पवनात्मजं पिडियॆ दिव्यस्त्रीय रूपागि कै ।
मुगिदेन्न बिडिमेंदु तल्लळिसि शंकातंकमं ताळ्दिदळ् ।। ६६ ।।

---

को लंका नहीं ले जा सकते । लंका बहुत दूर रहने के कारण आप लोग तुरन्त वहां पहुँच भी नहीं सकते । इसे सुनकर भरतने पूछा कि वह उनकी मदद किस तरह कर सकता है, तो प्रभामण्डल ने कहा कि अगर गंधोदक ला देगा तो उसे ले जाकर लक्ष्मण पर सिंचनकर मूर्छावस्थासे जगा देंगे । इसे सुनकर भरत ने यूं कहा—गंधोदक के साथ आप लोग उस विशल्यसौंदरी को ले जाइये । शुभचरित नामक मुनिवर ने पहले ही बता दिया था कि लक्ष्मण ही उसका वर होगा । ६३ क्योंकि लक्ष्मण ही स्त्रीरत्नों का अधिकारी है, अन्य नहीं । ऐसा कहकर, विशल्यसौंदरी से निवेदन करने के लिए अपने परिवार के लोगों को भेजा । ६४ भरत का निवेदन सुनकर द्रोणमेघ ने अत्यन्त उत्साह से विशल्यसौंदरी और सौ कन्याओं को भी भेज दिया । ६५ —प्रभामण्डल ने उन कन्याओं को भी विमान में बिठाकर आकाशमार्ग से होते हुए क्षणार्ध में युद्धभूमिमें उतरा । चलते समय विशल्यसौंदरी ने जितनी बार अवलोकन किया, शक्ति की शक्ति उतनी ही घटती गयी — लक्ष्मण के वक्षस्थल को त्यागने के पश्चात अपनी सहस्र ज्वालाओं से आकाशमण्डल को जगमगाती हुई, चिनगारियां बरसाती हुई (शक्ति) जा रही थी कि हनुमान ने उसे रोक

अंतु नडनडुगुत्तुमां विजेयेयेंब प्रज्ञप्तिविद्येयिं किरियळें वालि-भट्टारकर् कारणमागे रावणं कैलासमनेत्ति बळिक्कं वीणेयं बाजिसि जिन गुणस्तवनंगळं हर्षचित्तदिं पाडुत्तुमिरे धरणींद्रंगासन-कंपमागे बंदु—

करमोसेदु नोडि दशकं-* धरनं हर्ष प्रकर्षदिंदेन्नं खे- ।
चरपतिगे कोट्टनां दश-* शिरन बेसबिडिदु तागिदें लक्ष्मणनं ।। ६७ ।।

नानुमी सर्वौषधर्धिप्राप्तेयप्प विशल्यसौंदरियिंदल्लदे पोपेन-ल्लेनेन्नं पोगलीयिमेने विद्याधरर्गेल्लं चोद्यमागे विद्यादेवतेयनणुवं बिट्टु कळेवुदुमित्तल्—

चलदलक चयं रघुकुल * तिलकन चरणारविंदमं मधुकर मं।
डलियंते मुसुके वनिता * तिलकं नडेतंदु विनियवनितेयादळ् ।। ६८ ।।

तदनंतरं—

दनुजेंद्रन विजय श्री * वनितेयें लक्ष्मणन पुण्य देवतेयो पे- ।
ळेने कैलदोळ् बंदिर्दळ् * तनुरुचि मूवळसुवळसे परिषज्जनमं ।। ६९ ।।

आगळा कन्यारत्नद करस्पर्शनदिं पवित्र सुरभि सलिल सेचनदिं—

---

लिया। तब उस शक्ति ने दिव्य स्त्री का रूप धारणकर हाथ जोड़कर छोड़ देने का निवेदन किया। ६६ —कांपते हुए उसने बताया—मैं विजया हूँ, प्रज्ञाप्ति विद्या की छोटी बहन हूँ। वालिभट्टारक के कारण जब रावण ने कैलास उठाने के पश्चात वीणा बजाकर जिनपति का गुणगान करने के कारण द्रोणमेघका आसन कांप उठा— वह रावण के पास पहुँचा और मुझे रावण के हाथों सौप दिया। रावण के आदेशानुसार मैंने लक्ष्मण को आघात पहुँचाया। ६७ —मैं इस सर्व औषधियों की ज्ञाता विशल्यसौंदरी के अतिरिक्त और किसी से छुड़ाई नहीं जा सकती थी। मुझे जाने दीजिये। विषय जानकर उपस्थित विद्याधारी को आश्चर्य हुआ। विद्यादेवता को हनुमान ने छोड़ दिया। इधर— विशल्यसौंदरी जिसकी हिलती केशराशि श्रीराम के चरणारविंद का सेवन करते हुए भ्रमर समूह सदृश सुशोभित हो रही थी, ने आकर राम को प्रणाम किया। ६८ —तत्पश्चात— मानो स्वयं रावणेश्वर की विजयश्री हो या लक्ष्मण का पुण्य देवता हो, उसने अपनी देहकांति से आसपास उपस्थित लोगों को प्रकाशमान बना दिया। ६९ —उसके करस्पर्शित पवित्र गंधोदक

पत्तुविडे मूर्छे मुनिस-
च्चौत्तिदवोल् मनदिनगलदिरे कण् कंपं ।
बित्तरिसे मसगि रावण-
नेत्तणनेनुतुं जनार्दनं कुळ्ळिर्द ॥ ७० ॥

अंतिर्पुदुं--

अलर्वंतिरिनोदयदोळ् ※ जलज वनं राघवंगमखिल जनक्कं ।
नेलेवेर्चिदुदनुरागं ※ जलरुह नाभंगे पिंगे मूर्छावेगं ॥ ७१ ॥

आशीर्निनादवाशा ※ देशमनेय्दिददुदु मंगलानक रवमा- ।
काशमनडर्दुदु मूर्छा ※ क्लेशं लक्ष्मीधरंगे पेर्रापंगलोडं ॥ ७२ ॥

नारायणनं मणिमय ※ नीराजन दीपमाले बळसिदुवागळ् ।
मेरुवनोल्लदे पलवुं ※ तारावळि बळसुवंते नीलाचलमं ॥ ७३ ॥

आ समयदोळ् लक्ष्मणन समक्षदोळिर्द विशल्यसौंदरि--

अपहरिसि शक्ति बाधेय-※तुपकारमनुंटुमाडि लक्ष्मणनोळ् पी- ।
न पयोधरे कडुगाडियो- ※ ळपकारमनतनु बाधेयं पुट्टिसिदळ् ॥ ७४ ॥

आगळा कन्यारत्नंबेरसु तम्म तंदनूर्वकन्नेयरुमं मरुन्नंदनादिगळ् विवाहविधियिं कैकोळ्वुदेने रावण विजयानंतरं सकल भुवनरंबिकेयं सीतादेवियं तंदु राम स्वामिगोप्पिसिदोडेल्लदे मदुवेनिल्लेनेने तम्म पोद वृत्तांतमुमं विशल्यसौंदरियं तंद तेरनुमं तिळिपि

---

का सिंचन किया तो— होशमें आकर लक्ष्मण, जिसके चेहरे पर क्रोध मानो मुद्रित था और आँखें लाल हो गयी थीं, 'रावण कहां' चिल्लाता हुआ उठ बैठा। ७० —ऐसे में— सूर्योदय होने पर जिस तरह कमल खिलते हैं उसी तरह लक्ष्मण होशमें आकर उठ बैठा तो राम और अन्य परिजन हर्षित हुए। ७१ आशीर्वाद की ध्वनि दिगंतों में गूंज उठी; मंगलमय भेरी-ध्वनि आकाशमण्डल में भर गयी। लक्ष्मण मूर्छाक्लेश से मुक्त हुआ। ७२ तब, जिस तरह नीलाचल को आकाशमण्डल घेर लेता है उसी तरह दीपमालाओं ने लक्ष्मण को घेर लिया। ७३ —उस समय, लक्ष्मण के सम्मुख खड़ी विशल्यसौंदरी— शक्ति पीड़ा का निवारण करनेके साथ-साथ लक्ष्मणमें काम पीड़ा जगाने में सफल हुई। ७४ —तब यह कहनेपर कि विशल्यसौंदरी एवं अन्य सौ कन्याओं से हनुमान आदि विवाह-विधि के साथ स्वीकार करें, लक्ष्मणने कहा जब तक रावण को पराजितकर सीता माता को रामके चरणों में नहीं सौंपता तब तक मैं

निम्म पुण्यप्रभावक्किदाव गहनमेंदोंडंबडिसे शुभ मुहूर्तदोळ् लक्ष्मणननिबरुमं मदुवेनिल्वुदुमित्तल्—

चरनरिपे तमगे दशकं-*धरन मृगांकादि मंत्रिमुख्यर् लक्ष्मी-।
धर पुण्यशक्तियं दश * शिरंगदं पेळलेंदु बेगं बंदर् ॥ ७५ ॥

अंतुबंदु समुचितासनदोळ् कुळ्ळिर्दु मुकुळितांजलिगळागि—

इरुळोळे विशल्यसौंदरि * बरे शक्ति पोंडर्पुगेट्टु पोदुदु तत्सुं-
दरिवेरसु नूर्वरं नृप * तरुणियरं देव मदुवेनिदनुपेंद्रं ॥ ७६ ॥

ऍंदु बिन्नविसे—

सीतेयनोप्पिसुवुदु रघु-* जातनोळोंडरिपुदु संधियं संग्रामं-।
पो तक्कुदल्तु नमगव-* रेतेरदोळमधिकरवरनार् गेल्दपरो ॥ ७७ ॥
ऍत्तानुं गेल्दोडमा- * पत्तं पिडिवेत्त कुंभकर्णादिगळोळ्-।
मत्तेनोडरिसुवर् दनु-*जोत्तंस बळिक्के गेल्दोडं फलमुंटे ॥ ७८ ॥

ऍने घनाघन निनदमनालिसिद पंचाननदंते दशाननं कनल्दु—

इंद्रनुमं गेल्देन्ननु * पेंद्रं गेल्दपने गेल्दोडं जीवनमा।
चंद्रार्कमे विशद यश-*श्चंद्रिकेगे कळंकमागदंतिरे नेगळ्वें ॥ ७९ ॥

---

विवाह नहीं करूँगा। तब उन्होंने अपने द्वारा विशल्यसौंदरी को ले आनेका कारण आमूलाग्र बताकर यह कहनेपर कि आप जैसे शक्तिशाली के लिए रावण को पराजित करना कौन बड़ी-बात है, लक्ष्मण ने उससे विवाह कर लिया। इधर— यह जानकारी मिलने पर कि शक्ति के आघात से मूर्छित लक्ष्मण होश में आया है, रावण के मंत्रीगण तीव्रगति से (रावण के पास) आये। ७५ —आकर हाथ जोड़कर, बताया कि— रातको विशल्यसौंदरी के आते ही शक्ति का प्रभाव घट गया और विशल्यसौंदरी एवं अन्य एक सौ कन्याओं से उपेंद्र लक्ष्मण ने विवाहकर लिया है। ७६ —ऐसा निवेदन किया— सीता को लौटाकर रामसे समझौता कर लेना उचित है। युद्ध हमारे लायक नहीं है। हमारी अपेक्षा वे अधिक बलशाली हैं। उन्हे कौन जीत सकता है? ७७ अगर जीत भी गये तो विपत्ति को प्राप्त कुंभकर्ण आदि से न जाने वे कैसा पेश आयेंगे। इस तरह विजयी बनना भी निष्फल होगा। ७८ —ऐसा कहने पर मेघगर्जना सुनकर जिस तरह सिंह क्रुद्ध होता है उसी तरह कुपित होकर रावण बोला— मुझे, जिसने इंद्रको पराजित किया है, उपेंद्र लक्ष्मण पराजित करेगा? पराजित करेगा तो भी क्या यह जीवन

अदरिं निम्म मंतणक्कवसरमल्तुसिरदिरिवेंदु मंत्रिगळं जडियॆ रावणन कट्टायक्कॆ मयं विस्मयंबट्टु देव नम्म सेरॆगपायमागदंतु कादि गॆल्वुदॆनॆ—

मयनॆंदुदनेगॊंडं -* नय निपुणर् पेळ्दॊडं दुराग्रहदिं सं- ।
धियमातं कैकॊळ्ळनॆ* भयमरियं कदनमद वशं दशवदनं ॥ ८० ॥

अंतातन नुडिगॊंडंबट्टनंतरं रामलक्ष्मणर पुण्य प्रभावक्कॆ विस्मयंबट्टु सिंह गरुड वाहनंगळं पडॆदु सुग्रीव प्रभामंडलमरुन्नंदनादिगळ्गॆ पन्नगशर प्रहारदिं समनिसिदासन्नमृत्युवनपहरिसि—

अवयवदिंदमॆन्न तनुजानुजरं पिडिदुय्दरॆन्न कॆ- ।
दुवनुरगेंद्रनॊळ् पडॆद शक्तियनश्रमदिंदॆ गॆल्दरा- ॥
नवरनशल्यरॆंदुरिदॆ काडिदॆनप्पॊडॆ कार्यं हानि सं- ।
भविसुगुमॆंदु तन्न मनदॊळ् परिभाविसिदं दशाननं ॥ ८१ ॥

अंतु मनदॊळ् मंतणमिर्दु कार्य निश्चयंगॆय्दु—

साधारणरिवरॆनिप वि-
रोधिगळमनुरदॆ नॆगळ्वुदनुचितमदरिं ।

---

सूर्य चंद्र के रहने तक शाश्वत है ? मैं ऐसा काम करूँगा कि मेरी कीर्ति में किसी तरह की कमी न आ पाये । ७९ —इसलिए यह सन्दर्भ तुम लोगों से सलाह लेने का नहीं है । चुप रहिए । मंत्रीगण को ऐसा डांटा तो उसके शौर्य के प्रति आश्चर्यचकित होकर मय ने निवेदन किया—प्रभो, युद्ध में ऐसा विजय प्राप्त करें कि बंधी बनाये गये हमारे वीरों को किसी तरह की हानि न पहुंचे । मय की सलाह मानकर भी अन्यों के समझौते की बात को ठुकराकर वह दुराग्रह से युद्ध के लिए तैयार हुआ । उसके दिमाग में युद्धमद ही भरा हुआ था । ८० —रावण ने मय की बातें मान लीं । तत्पश्चात राम-लक्ष्मण के पुण्य प्रभाव से विस्मित होकर, सिंह गरुडवाहनों को पाकर, सुग्रीव, हनुमान, प्रभामण्डल को सर्पास्त्र से प्राप्त विपत्ति से मुक्त कर दिया— रावण ने मन ही मन सोचा कि इन्होंने मेरे अनुज एवं पुत्रों को बंधी बनाया, महाशेष से प्राप्त मेरी शक्ति एवं बाण पर अनायास विजय प्राप्त कर ली है । ऐसों को दुर्बल मानकर लड़ूं तो मेरी कार्यसिद्धि नहीं होगी । ८१ —इसी तरह मन ही मन सोचते हुए उसने योग्य निष्कर्ष पर पहुंचकर— यह निश्चय किया कि सामान्य-से प्रतीत होनेवाले इनसे लड़कर जीतना

साधिसि बहुरूपिणियं
साधिसुत्तें पगेयनेंब बगेयं बगेदं ।। ८२ ।।

अंतु बगेदु लंकानगरदोळं नाडोळं हिंसे बेडेंदु गोसणेगळेदु जिनपूजेयं प्रतिदिनं माळ्पंतु नियमिसि मंडोदरिगं पोळलगमेनितु- पसर्गमनार् माळ्पोडं नम्म पडेयोळ् माकोळ्ळदंतु माळ्पुदेंदु पेळ्दु—

अरमनेयोळगण जिन मं-* दिरक्के नडेतंदु मंगलद्रव्य पुर- ।
स्सरदोळगे पोक्कु शांती-*श्वरंगे पदेपोदवे माडि सवनोत्सवमं।। ८३ ।।

तदनंतरं दिव्यार्चनेगळिदर्चिसि पद्मासन स्थितं स्फटिकाक्ष मालेयं पिडिदु दिव्यमंत्रंगळं जपिसुत्तिर्दनन्नेगं फाल्गुन नंदीश्वरमादु- दागळुभयबलमुमभयघोषणेयं घोषिसि काळेगमनुळिदिर्पुदु—

अरिदु विभीषणनसुरन * तेरनं चर वचनदिददं रघुवीरं- ।
गरिपुव बगेयिं बंदं * पेरनीतेरदिदे कूडे तिळिदवनावं ।। ८४ ।।

अंतु बंदु विभीषणनिंतेंदं—

भुजबलमं पवणबडिपोडप्रतिमं तविलिल्ल दानव ।
ध्वजिनिगे चंद्रहासमनिदिर्चुव चक्रमनांके गोळ्व भू- ।।

असाध्य कार्य है । अतः बहुरूपिणी विद्या की साधना करके उसके जरिये उन्हें पराजित किया जाय । ८२ ---ऐसा निश्चय करके, लंका और उसके आस-पास के प्रदेशों में हिंसा न करने का ऐलान कराकर, हर रोज जिन पूजा का आदेश देकर, मंदोदरी या राजमहल के और किसी को भी तंग करने पर सेना द्वारा उनपर हिंसात्मक कदम उठाने की आज्ञा देकर-- अपने राजप्रासाद के भीतर स्थित जिनमंदिर में, मंगल द्रव्यों के साथ प्रविष्ट होकर ऐसी पूजा की कि शांतीश्वर संतुष्ट हो जाय । ८३ --तत्पश्चात विद्यार्चनाओं से अर्चना करके, पद्मासन पर बैठकर, स्फटिक जयमाला लेकर मंत्रोच्चारण कर रहा था । तब उभय सेनाओं ने परस्पर अभयदान का ऐलानकर, युद्धविराम अपनाया-- विभीषण अपने गुप्तचरों से रावण की गुप्त कपट योजना को जानकर राम को इस बात की सूचना देने के लिए आ रहा था--यह कार्य अन्य कैसे कर सकते हैं ? । ८४ --आकर विभीषण ने यूं कहा-- रावण के भुजबल का सामना कोई नहीं कर सकता; राक्षससेना अविजेय है । मानव, देवता, खेचरों में कोई ऐसा पराक्रमी नहीं है जो चंद्रहास का सामना कर सके । ऐसा अजेय रावण अब फिर बहुरूपिणी विद्या की आराधना कर रहा

भुजसुर खेचर प्रमुखरिल्लेने राघवदेव दुर्जयं ।
निजदोळे मत्ते साधिसिदपं बहुरूपिणियं दशाननं ।। ८५ ।।

रावण नोर्वनुमं धर-*णीवल्लभ गेल्वुदरिदु साधिसि विद्या-।
देवतेयनवं पडेवं * रावण कोटिय निदिर्चुववरार् बळियं ।। ८६ ।।

अदरिं विद्यासाधनेवुगद मुन्नं रावणंगुपसर्गं मनोडर्चि लंकापुरमं कैकोळ्ळलिदवसरमेने रघूवीरनिंतेंदं—

वनितेगे कैदुवं बिसुटवंगिदिरागदवंगे भूभुजं ।
मुनिवुदु पाळियल्तु नियम स्थितनागि दशानन जिनें-।।
द्रन मरेवोक्कु साधिसिदपं गड विद्येयनेंतो बाधेयं ।
जनियिपुदातनोळ् बिसुडतक्कुदनितुसिरल्कॆ तक्कुदे ।। ८७ ।।

अेने विभीषणंगदादिगळी महासत्वनप्प रघुवीरननाचारमनेंतु मोल्वनल्लनदुकारणदिनधिराजनरियदंतु विद्यासाधनेगे विघ्नं माल्पमेंदु नंदीश्वरमं कळिपि विभीषणंबेरसु—

मकरध्वज मुख्यर् खच -* र कुमारर् गगन मार्गदिं बंदु बला- ।
धिकरसम सैनिकर् मस-* गि कपिध्वजरुरदे लंकेयं पुगुतंदर् ।। ८८ ।।

---

है। ८५ एक रावण से ही निपटना असाध्य कार्य हो रहा है तो बहुरूपिणी विद्या की साधना करके करोड़ों रावणों का निर्माण करेगा तब उनका सामना कौन कर पायेगा ? ८६ —इसलिए उस बहुरूपिणी विद्या को वश कर लेने से पहले ही विघ्नबाधाएँ उपस्थितकर लंका को अपने वश में कर लेने का यही सुअवसर है। इसे सुनकर श्रीराम ने यूं कहा— स्त्रियों, निरस्त्रों और युद्धमें सम्मुख न आनेवालों पर कुपित होना राजा के लिए न्यायसंगत नहीं है। तपस्या में लीन हो, जिनेंद्र की शरण जाकर, विद्यासाधना में लगे रावण को कैसे बाधा पहुँचायी जाय ? विभीषण, इस तरह का अन्याय करने की सलाह देना तुम्हारे लिए योग्य बात है ? ८७ —ऐसा कहने पर, विभीषण, अंगद आदि ने सोचा कि यह राम तो अनाचार को स्वीकार नहीं करेगा, अतः रामको किसी तरह की सूचना दिये बिना ही शत्रु की विद्या साधना में विघ्न डालना चाहिए। इसी विचार से, विघ्न पहुँचानेवाले नंदीश्वर को आगे भेजकर विभीषण को साथ लेकर— मकरध्वज आदि खेचर कुमार आकाशमार्ग से होते हुए अपनी शौर्योत्तनि के साथ लंका में प्रविष्ट हुए। ८८ राजमहलों को तोड़ते हुए, उद्यानों का विध्वंस करते हुए, सरोवर, तालाबों को नुकसान

ऒडॆयुत्तुं माडंगळ * नुडियुत्तुं नंदनंगळं नीर्नॆलनं ।
किडिसुत्तु लंकॆगवर् * पडॆदर् निश्शंकरळविगळिदॆदॆवळलं ॥ ८९ ॥

अंतु वानर ध्वज सेनॆ लंकॆयं कदडि कलंकॆ मयं मुळिदु काळॆगक्कॊडरिसॆ बंदु मंडोदरि तंदॆयं बारिसुवुदुमातं शुभपरिणामदिं निजभवनमं पॊक्किरॆ वानरसेनॆयरमनॆयं पॊक्कु—

मुनिदॆळॆदु तंदु निजकुल * वनितॆयरं बिडदॆ मोदियुं हाहाक्रं- ।
दनमं पुट्टिसॆ केळ्दुं * दनुजं जपियिसुतुमिर्दनव्ययमनं ॥ ९० ॥

अंतिर्पुदुमा जिन भवननदॊळ् वसियिसुव देवतॆगळॆल्लमिवरल्लदुदं नॆगळ्दप्परॆंदगुर्वागॆ बेताळ रूपगळं बिगुर्विसि परितंदु माकॊंडु मर्कटध्वज बलक्कॆ भंगमं पडॆयॆ पॆरवुं जिनावास निवासिगळप्प देवतॆगळा वलमं पॆरगिक्कि मुन्निन देवतॆगळनोडिसुवुदुमवु परितंदु निज स्वामिगळप्प पुर्णभद्रनॆंब यक्षाधिपंगॆ पेळ्वुदुं—

मुनिपतिगळ तॆरदिंदन-* शनमं कैकॊंडु कैदुवं बिसुटु दशा- ।
ननिरियुं कादुवुद- * कॊंनल्दवं माणिभद्रनल्लिगॆ पोदं ॥ ९१ ॥

अंतु पोगि तत्स्वरूपमं पेळ्दु तानुमातनुमतिकुपितरागि बंदु देवतॆगळं तूळ्दि—

---

पहुँचाते हुए लंका प्रवेश कर, वहां के लोगों के हृदय का दु.ख वढ़ाया । ८९ —वानर सेना इस तरह लंकानगर का विध्वंस कर रही थी कि मय क्रुद्ध होकर युद्ध के लिए तैयार हो गया । लेकिन मंदोदरी ने उसे रोका । आदेश मानकर मय अपने राजमहल में प्रविष्ट हुआ तो कपिसेना वहाँ पहुँचकर— वहाँ उपस्थित स्त्रियोंको पकड़ खींचा । उनका हाहाकार, आक्रंदन रावण के कर्णछिद्र को भेद रहे थे । फिर भी वह तपस्यामें लीन था । ९० —ऐसे में उस जिनमन्दिर में निवास करनेवाले देवताओं ने इस विचार से कि ये लोग अन्याय कर रहे हैं, भयभीत हुए और अपने भैरव रूपधारणकर कपिसेना के विरुद्ध लड़ने लगे । लेकिन पराजित हुए, भाग खड़े हुए । तत्पश्चात उन्होंने जाकर अपने स्वामी पूर्णभद्र यक्षाधिपति से कहा तो— धनुर्बाणों को त्यागकर ऋषियों की तरह निरशन व्रत का पालन करते हुए रावण को देखकर पूर्णभद्र कपिसेना से लड़ने से डरकर मणिभद्र के पास गया । ९१ —वहाँ पहुँचकर यहां की स्थिति का सविस्तार विवरण देकर दोनों मिलकर कोपावेश में लौटकर सम्मुख आनेवाले शत्रुओं को पराजित करते रहे । —कपिसेना की बात को

अभिभविसि कपि ध्वजिनिय-※नभयर्परितंदु रामलक्ष्मणरं कं-।
डु भयाकुल चित्तर् मा- ※ णिभद्रनुं पूर्णभद्रनुं स्तुतियिसिदर् ।। ९२ ।।

अंतु पोगळदु निम्म सामंतरुपशांतनागिर्द रावणन पोळल नळियें निम्म पुरुषाकारमळिगुमेंनें लक्ष्मणर्नितेंदं—

सीतादेवियनी रघु- ※ जातन कुलवधुवनळिपि कैतवर्दि तं- ।
दातंगें हितंगेय्वुदु- ※ पो तक्कुदों तगदों बगेंदु नोडि निम्मोळ् ।। ९३ ।।

निमगेम्म माडिदपका- ※ रमावुदक्रमदिनेम्ममेलें बरल्क- ।
क्कुमें पेळिमेंद लक्ष्मण- ※ न मातु किविगेय्दे चित्तविर्त्तितेंदर् ।। ९४ ।।

लंकापुर प्रासादंगळ्गं चैत्यालयंगळ्गं नियमस्थनागिर्द दशाननंगमीगळळिवं माडदे विद्यासाधनेगें विघ्नंमाडिमेंदु राम लक्ष्मणरं परसि—

जक्कर् पूजिसि पोद ब-※ ळिक्कंगदनेरि बारिसुत्तंकुशर्दि- ।
दिक्करियनधः करिसुव※तक्किन किष्किधमेंब निज वारणमं ।। ९५ ।।

अंतु वारणारूढं पुर गोपुरमं पोक्कु—

लंकेय चेल्वं नोडु- ※ त्तुं किष्किधाराजनरमनेयं पो- ।
क्कं कण्गें तोडवेनिप्पुद- ※ नंकुशदाभरणदंशु तळ्किसे नभमं ।। ९६ ।।

---

अनसुनी करके आगे बढ़कर राम-लक्ष्मण को देखकर भयभीत होकर दोनों ने उनकी (राम-लक्ष्मण की) स्तुति की । ९२ —स्तुति करके, यह कहने पर कि अगर आपके सामंतों ने तपस्यों में लीन रावण के नगरको नाश करेंगे तो आपके पुरुषाकार कलंकित होगा; लक्ष्मण ने यूं कहा— आप अपने आपमें सोचिये कि इस रघुनाथ की पटरानी सीतादेवी के धोखे से अपहरण करनेवाले रावण का अहित चाहना उचित है या अनुचित ? ९३ हमने आप लोगों का क्या विगाड़ा है ? इस तरह आपका हम पर अचानक आक्रमण न्यायोचित है ? लक्ष्मण की बात को ध्यान से सुनने के बाद उन्होंने यूं कहा— । ९४ —लंकानगर के राजमहलों, वहाँ के जिनालयों एवं तपलीन रावण को किसी तरह की हानि पहुँचाए बिना केवल विद्या साधना में वाधा डालिये । ऐसा कहकर राम-लक्ष्मण को आशीष देकर वे चले गये— यक्षों के चले जानेके पश्चात अंगद किष्किधा नामक अपने हाथी पर सवार होकर उसे अंकुश से भेदता हुआ आगे बढ़ा तो दिग्गजों ने सर झुका लिया । ९५ —हाथी पर सवार वह नगर के गोपुर में प्रविष्ट होकर— लंकाके सौंदर्य को निहारता हुआ, किंकिण्धा का अधिराज

अंतरमनेयं पोक्कु सौंदरनुमिद्रनुं मोदलागे पलंबरंबरचर कुमारकेळं बलसहितरागि पोरगिरिसि शांतिजिनभवनमं बलगोंडो-ळगं पोक्कु दर्शनस्तुतिगेय्दु नील नगदंते निश्चलनागिर्द रावणनं-नोडि--

अंगदनेंदं राम श- * रंगळ कोळ्गगिदु सुगिदु दशवदन मनो- ।
भंगमनोळकोंडेके ज-* पंगेय्दपे नेनेय निन्न दुर्विलसितमं ॥ ९७ ॥

दुरभिप्रायने खेचरान्वयद शुद्धाचारमं बिट्टु का- ।
पुरुषं कातरनेंदु सत्पुरुषरेल्लं दूषिसुत्तिपिनं ॥
परदार प्रियनाद पातकने युद्धक्कळ्कि शुद्धात्मनं- ।
तिरे शांतीशन मुंदे मेय्गरेदिदेनं जानिसुत्तिर्दपै ॥ ९८ ॥

बलवळियॆ निन्न बाहा-* बलमं पेरगिक्कि विद्येयं साधिसि नीं- ।
गेललेनार्तपै निन्नं * कोलल्के जनियिसिद राम लक्ष्मीधररं ॥ ९९ ॥

किच्चेळ्द बळिकॆ नंदिस*लच्चिगर्दि बाविदोड्डुवंतिरे कण्णं ।
मुच्चि जपियिसुवे राघव-* नेच्चर्बि कायलार्पुवे देवतेगळ् ॥१००॥

अंदु पलतेरदिं नेरनेत्ति नुडियुत्तुमुत्तरीय वसनांचलदिंमोदु-त्तुमातन कैय पळिकिनक्षमालेयं परिदीडाडुत्तुमिंतु बहुप्रकारदिं

रावणके राजमहल में प्रविष्ट हुआ। उसके अंकुश की चमक ने, आभरण की चमक से मिलकर आकाश भरको चमका दिया। ९६ —राजमहल प्रवेश करते समय वाह्य द्वारपर सौंदर, इंद्र आदि खेचर कुमारों को सेना सहित तैयार करके, शांतिजिन भवन में प्रविष्ट होकर दर्शन स्तुति करके, वहाँ नीलाचल-सा निश्चल रावण को देखकर, वह कहने लगा— रामवाणों से डरकर, आशाभंग होने के कारण अब तपस्या क्यों कर रहा है ? अपने दुर्भाग्य को स्मरण कर। ९७ दुराग्रह से खेचरवंश के शुद्धाचार को त्यागकर ऐसा दुष्कार्य किया कि सत्पुरुष 'रावण दुष्ट है, कामुक' कहने लगे। अरे पापी, परस्त्री को चाहकर, अब युद्ध से डरकर, शुद्धात्म-सा शांतीश्वर के सम्मुख छिपकर किसका ध्यान लगाए बैठा है ? । ९८ सेना नाश हुई; तू अपने भुजवल को छिपाकर विद्यावल से विजय प्राप्त करना चाहता है ? तुझे मारने के लिए राम-लक्ष्मण ने जन्म लिया है। ९९ आग लगने के पश्चात उसे बुझाने के लिए कुआं खोदनेवाले की भांति आंखें मूंदे तप करने पर यह विद्या रामके बाणों से रक्षा कर सकती है ? १०० —यूं ही अनेक प्रकार भला वुरा कहते हुए, उत्तरीय के आंचल से मारते हुए, उसके हाथ की स्फटिक माला छीनकर, तोड़कर अनेक प्रकार से

परिभविसि मत्तमातन पेंडिर भूषणंगळं कळेदु बिसुडुत्तुमल्लदुदं नुडियुत्तुं—

युवतिरोरोर्वर् तले * नविरं तलेनविरोळडसि कट्टुत्तुं मो-।
दुवुदुं द्विगुणिदुदु हा- * रवं प्रतिध्वानदिं जिनेंद्रालयदोळ् ॥१०१॥

अळियोळे जानकियं तं-* दळिगंडने निन्न पेंडिरं नीं नोळ्पं-।
तेळेदुय्द पेनण्मुवोडुळि- * दळि जपमं दनुज तोर्पुदेन्नोळ् कूर्पं ॥१०२॥

एंदु माणदे मत्तं—

रोदनमुण्मि पोण्मे कुटिलालकमं पिडिदीळ्दु तंदु मं-।
डोदरियं मदीय पितृगुक्केव चामरमिक्कलुय्दपें ॥
कादुकोळल्लु पोडर्पु निनगुळ्ळोडे चेतरिसेंदु दुःख सं-।
पादनमं तदंगनेयरोळ् पडेदं रणतुंगनंगदं ॥१०३॥

अंतातं परिभविसुवुदुं मंडोदरि मोदलागे पलरुमंतःपुर कांते-यरितेंदर्—

साधिसि विद्येयं पडेवुदें निज पार्श्वदोळेम्मनिंतिवं ।
बाधिसलेंतु नीं मिडुकदिर्दपे मूर्छेगे संदरंते वि- ॥
द्याधर चक्रर्वीत शरणागेमगेंदु शरीर ताप त- ।
प्ताधरमल्तुदुच्च रर्वदिदवरोध वधू कदंबकं ॥१०४॥

---

उपद्रव मचाकर उसकी पत्नियों के आभूषणों को छीन झपटकर फेंकता हुआ, अनुचित बातें सुनाता हुआ— दो युवतियों की केशराशि पकड़कर आपसमें बांधकर उन्हें पीट रहा था कि उनका हाहाकार जिनेंद्रभवन में व्याप्त हुआ। १०१ धोखे से जानकीदेवी का अपहरण करनेवाले हे कायर, यह ले तेरे सम्मुख ही घसीटकर ले जाता हूँ। तुझमें पुरुषत्व हो तो जप तजकर मुझे रोककर लड़। १०२ —ऐसा कहता हुआ— महिला रोदन ध्वनि को अधिक कराता हुआ, केशराशि पकड़कर मंदोदरी को घसीटता हुआ रण विक्रमी अंगद गरजकर बोलाः इसे मेरे बुजुर्गों को चामर झलने ले जा रहा हूँ। हिम्मत हो तो आ। १०३ —इस तरह उपद्रव देने लगा तो मंदोदरी आदि अंतःपुर की औरतें यूँ बोलीं— विद्या पाकर भी क्या मिलेगा ? आपके बगलमें ही यह हम पर हाथ उठा रहा है, सता रहा है, और आप मूर्छित-से अचल हैं! हे विद्याधर चक्रवर्ती हमारी रक्षा कीजिये। ऐसा कहकर ऊँचे स्वरसे रोने चिल्लाने लगीं। १०४ —इस तरह जोर-जोर से प्रलाप कराते हुए अंगद उन्हें अनेक तरह से पीड़ा पहुँचाने

अंतति प्रळापमप्पंतवर्गळलनेंदें वळलनंगदं पडेवुदुं रावणं ध्रुवमंडलदंतें चलियिसदें चित्तनिरोधंगेय्दु दिव्यमंत्रदिं विद्येयं साधिसुवुदुं—

पॊसगार सिडिल मसकम
नसकळिदु कृतांत जिह्वें पॊडकरिसुववोल् ।
बॆससु बॆससॆंदु करम-
विसि सन्निदवाय्तु विद्यॆ रावणनिदिरॊळ् ॥१०५॥

अंतु सन्निहितॆयागि चक्रधरनप्प लक्ष्मीधरनुं चरम देहधारियप्प राम स्वामियुमुळियलुळिदरनुळियलीयॆनॆनॆ रावणनुळिदवरळिवेंनगेवुदॆंदु विद्यादेवतॆगॆ पॊडवट्टु शांति जिनभवनम मूरुसूळ् वलगॊंडु बर्पन्नेगमंगदादिगळ् पॊरमट्टु पोगि तम्म बीडं पुगुवुदुं—

इत्त दशानन निज वधूजनमं कॊरचाडि काडि दु- ।
द्वृत्त विरोधि खेचररनिक्कुव बल्मुळिसिदॆ बंदु पॊ- ॥
य्वॆत्तिभ वैरियंतॊदरि कॆंगरि मूडिद भृंग मालॆ नी- ।
ळ्दत्तॆनॆ नोडिदं मय तनूजॆय वाडिद वक्त्रपद्ममं ॥१०६॥

अंताकॆवेरसु समस्तांत:पुरमुमं नोडि निमगिनितु भंगमं माडिदंगदादिगळं भूभंगमात्रदॊळॆ सॆळॆगॆय्दु तंदु निम्म मुंदॆ बहुप्रकारदिं

लगा तो भी रावण ध्रुवमंडल-सा अडिग चित्तका निरोधकर दिव्यमंत्रों को रटकर विद्या प्राप्तिमें लगा था। इतने में— वर्षा ऋतु की नयी घनगर्जना-सी यमकी जिह्वा-सी वह विद्या 'क्या आज्ञा है, क्या आज्ञा है ?' कहती हुई रावण के सम्मुख प्रत्यक्ष हुई। १०५ —इसके यह कहने पर कि चक्रधारी लक्ष्मण और रामके अतिरिक्त अन्य सभी शत्रुओं का नाश कर सकती हूँ, रावण बोला अन्यों के नाश करने से मेरा क्या लाभ हुआ ? विद्या देवता को प्रणाम किया और शांति जिनमंदिर की तीन बार प्रदक्षिणा की। अंगद आदि वहां से लौटकर अपने डेरे में प्रविष्ट हुए— इधर रावण ने अपने अंत:पुर के स्त्री-समूह को उपद्रव पहुँचाए हुए उद्दंड खेचरों को नाश करने के लिए क्रोधसे मदगज का सामना करने वाले सिंह-सा गरजता हुआ, मुरझे मुख की मंदोदरी के मुखकमल को निहारा। १०६ —उसके साथ रहती हुई अंत:पुर के समस्त स्त्रीसमूह को देखकर, उन्हें इस बात की सांत्वना देकर कि पीड़ा पहुँचाए हुए अंगद आदि को क्षणार्ध में लाकर उनके सामने ही सजा देगा, रावण ने शांति जिन-मंदिर में

परिभविसुवेनेंदु : संतयिसि शांति जिनभवनदोळ् महापूजेयं माडिसि निर्वर्तिक नित्य नियमनमृताहारमनारोगिसि तदनंतरं बहुरूपिणी विद्या प्रभावमं परीक्षिसि प्रमोद मुदित हृदयनागि--

समधिकरार् जगत्रयदोळिन्नेनगेन्नोळिदिर्चुवन्नरार् ।
समरदोळेंदु तन्न भुजदंडमनीक्षिसि जानकी मुखा- ॥
ब्जमनवलोकिसल् करमे कातरनागि वियच्चराधिपं ।
प्रवदवनक्के बंदनरलंबुगळिल्लद कामनेंबिनं ॥१०७॥

अंतु भोंकने वर्प रावणन गंडगाडियं केलदोळिर्द खचर कांते-यर् सीतादेविगे तोर्पुदुं—

रावणन रूपु सीता * देविगे तृणकल्पमाय्तु पतिभक्तियोळा-।
रीवनितेय तेरदिं स-*द्भावमनोळकोंड पुण्यवतियर् सतियर्॥१०८॥

अेनं केळ्दपेनो रघु * सूनुव लक्ष्मणन पोल्ल वार्तेयनिन्नें- ।
दा नळिनाननें बर्प द-* शाननं कंडु ताळ्दिदळ् तल्लळमं ॥१०९॥

अंतु तल्लळिसुतिर्द मानिनियनेय्दि वदुं दशानननितेंदं बहु रूपिणी विद्ये साधितमादुदिन्नेनगसाध्यमप्प मरुवक्कमिल्ल निन्न नच्चिन रामन दैसेयं बिट्टेनगोंडंबट्टु साम्राज्य सुखमननुभविसेने सीते विह्वलीभूत चित्तेयागि—

---

महापूजा कराई, प्रसाद के रूपमें अमृताहार स्वीकार किया। तत्पश्चात बहुरूपिणी विद्या के प्रभाव की परीक्षा लेकर अत्यन्त आनंदित होकर— इस बात के अभिमान से कि अब त्रैलोक में उससे बड़ा अधिकारी कौन है ? और युद्धमें भी उससे कौन भिड़ सकता है ?, वह जानकी के मुखाव-लोकन निमित्त लालायित हो, पागल हो, तुरंत प्रमदवनमें, पुष्पबाण रहित कामचक्रेश्वर-सा आया। १०७ —आते हुए रावण के प्रतापटोप को सीता के बगल में बैठी हुई खेचर-स्त्रियों ने सीता को दिखाया तो— सीता को लगा कि रावण का रूप तृणवत् है। पतिभक्ति परायण सीता के समान पुण्यात्मा स्त्री और कौन हो सकती है ? १०८ आते हुए रावण को देखकर सीता के मन में इस बात की खलबली मच गयी कि न जाने राम-लक्ष्मण के बारे में कौन-सी बुरी खबर सुननी पड़ेगी ? १०९ —इस तरह छटपटाती हुई सीता के पास आकर रावण के यह कहने पर कि उसने बहुरूपिणी विद्या को प्राप्त कर लिया है, और उसके लिए अब कोई भी काम असाध्य नहीं है, कोई भी जीत ही नहीं सकता अतः सीता अब रामकी आशा छोड़कर उसे (रावण को) अपनाकर, साम्राज्य सुख का उपभोग करे।

करुणिसुवोडेनगे दशकं ※ धर धुरदोळ् रघुतनूजनायुः प्राणं ।
बरेगं वारदिरेनुतं ※धरित्रियोळ् मेय्यनोक्कु मूर्छेगे संदळ्॥११०॥
जानकि मूर्छितेयागे द-※ शाननननुकंपे पुट्टे करुणिसि तन्नं ।
ताने पळिदुळिदु कर्मा-※ धीन समुत्पन्न धुरघ दुष्परिणतियं ॥१११॥
कदडिद सलिलं तिळिवं※ ददे तन्नि ताने निळिद दशवदनंगा- ।
दुदु वैराग्यं सीतेयो ※ ळुदात्तनोळ् पुट्टदल्ते नीलीरागं ॥११२॥
पत्तुविडिदिर्दने रवि ※ पत्तिद संध्यानुरागमं मनदळिपि- ।
दत्तानुं पोल्लेनिपुद ※ नुत्तमनाचरिसि पत्तुविडिदिर्दपने ॥११३॥

अंतु मनदोळोगेद कारुण्य रसमे सीतेयोळादनुरक्ततेयं कचि कळेवुदुं स्वभाव परिणतियोळ् निंदु स्वकीयप्त पुरुष परिज्ञ-नक्किकनेंदं—

गुण परिपालनार्थमेनगं वगेदोरिदळिल्ल दिव्य भू- ।
षण वसनांगरागमुमनोल्लदे खेचर राज्यलक्ष्मियं- ॥
तृण समनागे भाविसिदळी सतियुं मोदलागि पौरुष ।
प्रणयियेनितपेक्षिसुवेने गुणहानियनेन्न पापदि ॥११४॥

---

इसे सुनकर सीता विह्वल होकर— यह कहती हुई कि हे रावण, अगर तुममें मेरे प्रति तनिक भी करुणा हो तो राम के जीते जी मेरे पास न आने की कृपा करो, वह दुःखाधिक्य के कारण मूर्छित हुई। ११० मूर्छित सीता को देखकर रावण में उसके प्रति दया उत्पन्न हुई। अपने आपको कोसता हुआ, कर्म के वश में होकर किये गये समस्त दुष्कृत्यों को मन ही मन सोच रहा था। १११ मैला पानी जिस तरह अपने आप शुद्ध होता है उसी तरह रावण का मन अपने आप निर्मल हुआ और वैराग्य उत्पन्न हुआ। उदात्त व्यक्ति में शुद्ध-भावना के अलावा दुर्भावना उत्पन्न हो सकती है? ११२ संसार को प्रकाशित करनेवाला सूर्य भी संध्या होने पर संध्या-युवती को चाहकर उदयकाल में नहीं पछताता? उसी तरह सीता को चाहनेवाला रावण उत्तम हो अपनी अपेक्षा (कामवासना) के लिये पछताये विना रह सकता है? ११३ —इस तरह मनमें हुए परिवर्तन ने ही सीता के प्रति जो अनुराग था उसका निवारण कर दिया तो रावण ने अपने आप परिजनों को बुलाकर यूँ कहा— मुझ असाधारण के गुणों को स्मरण करके भी सीता ने मुझे नहीं चाहा। दिव्य आभूषण-अलंकारों के प्रलोभन के प्रति आकर्षित नहीं हुई। खेचर राज्यलक्ष्मी को तृणवत् समझनेवाली इस सीता को अब भी अपना वनाना चाहूँ तो मेरे गुण ही अवगुण (हानि) में

इवरं प्राणप्रियरं ※ नेवमिल्लदे कर्मवशमे नेवमेने कंद- ।
पं विमोहदिंदगळ्चिदें※ नविवेकियेनेन्न कुलद पेंपळिविनेगं ।।११५।।
राम ननगल्चि तंदा ※ नी मानिनिगिनितु दुःखमं पुट्टिसिदें ।
काम व्यामोहदिना- ※ शा मुखमं पुदिये दुर्यशः पटह रवं ।।११६।।

अेनगे विभीषणं हितनामदरदिंदमे पेळे केळदा- ।
तननविनीतनें गजरि गर्जिसि बय्दनजातनं विनी- ।।
तननरेयट्टि दुर्व्यसनियें कळिदें व्यसनाभिभूतना- ।
वनुमनुराग वेगदे हिताहित चिंतेयनेके माडुगुं ।।११७।।

जसदळिवं पराभवद पत्तुगेयं दोरेवेत्त तम्म मा- ।
नसिकेय केडुनुन्नतिय बन्नमनन्य भवानुबद्धम- ।।
प्प सुगतियं सुहृज्जनद बेवसमं जनतापवादमं ।
व्यसनिगळारुमेत्तलळिवर् विषयासव मत्त चेतसर् ।।११८।।

अेंदुद्वेगपरनागि दुडिदात्मगतदोळितेंदं—

इरदुळ्दीगळे कोट्टोडेन्न कडुपुं कट्टायमुं बीरमुं- ।
बिरुदं बीसरमक्कुमोसरिसिदंतागिर्कुमंतागदं- ।।
तिरे दोर्गर्वमनिर्वलं पोगळ्विनं सौमित्रियं रामनं ।
विरथर्माडि रणाग्रदोळ् पिडिदु तंदां कोट्टपें सीतेयं ।।११९।।

---

बदलकर पाप नहीं बनेगा ? ११४ परस्पर प्राणप्रिय राम और सीता को अकारण ही, मानो कर्म ही कारण बना हो, मैंने अपनी कामपीड़ा से अलग किया। इससे मेरे कुल की कीर्ति नाश हुई और मैं अविवेकी बन बैठा। ११५ राम ने अलग करके इसे काफी दुःख दिया है। काम-व्यामोह से किये गये मेरे कृत्यों ने मेरी अपकीर्ति को दिगंतों में व्याप्त किया है। ११६ विभीषण, जो मुझे हित-वचन कहता था, को अविधेय समझकर नगर से बाहर भगाया। दुर्व्यसनों से भूल मैंने हिताहित को परखे बिना ऐसा किया ? ११७ यश पर कलंक, पराजय की पीड़ा का अनुभवकर, अपने आपकी बरबादी करली। जन्मांतरों के पाप से प्राप्त इस अपवाद को स्त्री-व्यसन में रत मैं कैसे जानता ? ११८ —उद्वेग से ऐसा कहकर, अपने आप यूं बोला— तुरन्त सीता को ले जाकर, राम को सौंपूं तो मेरी वीरता, हठ, उपाधियां हास्यास्पद बन जायेंगी। ऐसा नहीं होना चाहिए। मेरे भुजबल-पराक्रम का प्रदर्शन ऐसा करना चाहिए कि दोनों पक्ष की सेनाएँ वाह-वाह करें और राम-लक्ष्मण को विरथ करके, व्याकुल सीता को सौंप दूं। ११९ ऐसा निश्चय करके अपने राजमहल में आकर अंगद,

अेंदु निश्चयिसि निजनिवासक्के वंदंगद प्रभामंडल सुग्रीव हनुमदादिगळ दुराचारक्के मुळिदवंदिरं रामनळियें कोल्वेनेंदु भरंगेय्दिर्दना समयदोळ्—

परिवेषं नाडे भयं- ॐ करमप्पुदनर्क विंवदोळ् नट्टिरुळोळ् ।
सुरचापं मूडुवुदं ॐ गिरिशिखरं विरिवुदं नेल मोळगुवुदं ॥१२०॥
पिडिगे मदमप्पुदं मद ॐ मुडुगुवुदं मदगजक्के गृह देवतेगळ् ।
गडणदिनळ्वुदनागस ॐ वेडेगेट्टिरे धूमकेतुगळ् मूडुवुदं ॥१२१॥

पगलुळ्कं बीळ्वुदं धारिणि नडुगुवुदं घोळ्ळेनल् दीप्तदोळ् व- ।
ळ्ळुगळ्ळुत्तिर्पुदं कैदुगळुडिवुदनादित्यनुं चंद्रनुं मे- ॥
गोगेदंतागिर्पुदं माडद मणिकलशं वीळ्वुदं कंडु तम्मोळ् ।
बगेदर् नैमित्तिकर् नाळिन कदनदोळक्कुं दशास्यंगपायं ॥१२२॥

अेंदु निश्चयिसि नुडियुत्तिर्दरागळसुरपति निजास्थान मंडप मध्यस्थित सिंहासनदोळिर्दु सेरेयोळिर्द तनुजानुजरं नेनेदु मुळिदु काळेगक्के नडेयलोडरिसि शस्त्रशालेयं पुगुवुदुमदं मंदोदरिकंडु मंत्रिगळं करेदी रणमं माण्बंतु माळ्पुदेंदु पेळ्वुदुमवरिंतेंदरामुं पलवुं पर्यायदिं पेळ्दोडं केळ्दनिल्लिल्लिगे तक्कुदं नुडिदु देविय-रेंतानुमोडंबडिसुवुदेने मंडोदरिरावण नल्लिगे वंदेरगि पोडेवट्टु—

---

प्रभामंडल, हनुमान आदि के दुर्व्यवहार से आगववूला होकर राम को मृतप्राय होने तक पीटने की (वात) सोच रहा था कि— सारा वातावरण भयानक हुआ। मध्य रात को आकाश में इन्द्रधनुष दिखायी पड़ा। गिरि शिखर टूटकर ढह गये। धरती ही गरजने लगी। १२० हथनी का मद चढ़ गया। मदगज का मद उतरा। गृहदेवता मिलकर रो रहे थे। आकाश में धूमकेतु दृष्टिगोचर हुआ। १२१ दिन में ही उल्कापात होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। पृथ्वी काँप उठी। दिन में ही शृगाल वोलने लगे। धनुष-वाण टूटकर गिर गये। सूर्य-चन्द्र अदृश हुए। मजले पर स्थित मणिकलश काँपकर गिर पड़ा। इसे देखकर नैमित्तिकों ने भविष्यवाणी की कि कल के युद्ध में रावण की पराजय होगी। १२२ —नैमित्तिकों की भविष्यवाणी सुनकर, सभा के वीच वैठा हुआ रावण वन्धी वनाये गये भाइयों और वेटों का स्मरण कर क्रोध से युद्धभूमि में जाने के लिए उद्यत होकर, शस्त्रशाला में प्रविष्ट हुआ। इसे देखकर मन्दोदरी ने मन्त्रियों से कहा कि इस युद्ध को रोकने का प्रयत्न करें। उन्होंने कहा कि हमारे लाख कोशिश करने पर भी वह नहीं मानता अव आप ही प्रयत्न

आनी जानकियं रघुप्रियतनूजंगित्तु तपें भव- ।
त्सूनु भ्रातृगळं रण व्यसनदिं सावेय्दुगुं बंधु सं- ।
तानं काळेगमं बिसुळ्पुदेने रोषावेशदिं रावणं ।
नीनिल्लि तोलगेंदु चप्परिसिदं मंडोदरी देवियं ॥१२३॥

अंतु चप्परिसेयुं माणदे मत्तित्तेंदळ्—

परवनितेगळिपि रण दु-*धरनेनिसिर्दशनिवेगनळिदुदनसुरे- ।
श्वर नीनेनरियदने * परिहरिसल्वेळ्पुददरिनसदाग्रहमं ॥१२४॥

अंतु मीतंगळेंटनेयर्धचक्रवर्तिगळ् निनगे शत्रुगळप्पुदरिं नीनिवर बवरमनुळिदु संधिगोंडंबट्टु विद्याधर राज्यसुखमननुभविसुवुदेने रावणनेंदनवंदिरेनगे काळेगदोळ् निल्व गंडरल्लरदके नीनंजदिरेंदु नुडिदु सन्नाह भेरियं पोयिसुवुदुं—

हितमं हितररिपिदोडं *मतिगेट्टिळिकेय्दनेंदु दशमुख कुलदे-।
वते पुय्यलिडुववोल् दि-* ग्वितततियनावरिसिदत्तु भेरिनादं ॥१२५॥

आ समयदोळ् सिंहासनारोहणक्किदुवे चरम समयमेंदरिपुवंते—

---

करें। ऐसा निवेदन करने पर मन्दोदरी रावण के पास गयी और प्रणाम करके बोली— मैं इस जानकीदेवी को ले जाकर रघुराम को सौंपकर मेरे बेटों और भाइयों को छुड़वा लाती हूँ। इस युद्ध से मेरे बन्धुजन और बेटे मृत्यु का आलिंगन करेंगे। इसलिए युद्ध रोका जाय। इसे सुनकर रावण अत्यन्त कुपित हुआ और धमकाकर बोला : तुम यहाँ से निकल जाओ। १२३ —इस तरह धमकाने पर भी चुप न रहकर वह बोली— परस्त्री को चाहने पर रणधीर अशनिवेग किस तरह निर्नाम हुआ इसे आप नहीं जानते ? आपके इस दुष्कार्य को तज देने में ही भला है। १२४ —इसके अलावा ये राम-लक्ष्मण आठवें बलाच्युत हैं। ये आपके शत्रु हैं। इसलिए इनसे लड़ने की बात छोड़कर समझौते के लिए तैयार होकर विद्याधर राज्यसुख का उपभोग करते रहिए। इसे सुनकर और मन्दोदरी को यह आश्वासन देकर कि राम-लक्ष्मण उससे लड़ने का साहस नहीं रखते इसलिए उसे (मन्दोदरी को) निश्चिंत रहना चाहिए, युद्धभेरी बजवायी— हितचिंतकों द्वारा हितवचन कहे जाने पर भी उसे स्वीकार न कर रावण ने युद्धभेरी बजवायी तो वह (भेरीध्वनि) दिगंतों में ऐसे गूँज उठी मानों रावण का कुलदेवता ही आर्तनाद कर रहा हो। १२५ —ऐसे में सिंहासनारोहन के लिए मानो अन्तिम अवसर की सूचना देता-सा— देह

तारगॆयं तमं सॆरॆगॆ तंदवॊलर्विसॆ देह दीप्तियॊळ् ।
हार मरीचि माणिकद पॆर्दॊडॆवि पॊरपॊण्मुवंशुगळ् ॥
दारुण कोप पावकनॆ तन्नॊडलं सुडुवंदमागॆ को- ।
पारुण नेत्रनॆळ्दनॊडनॆळ्विनॆगं खचरेंद्र मंडलं ॥१२६॥
अवयवशोभॆयं पडॆवुवल्लदॆ भूषणमॆन्न माळ्कॆयिं- ।
दवयवमागि वर्तिसुवुवें पॆरवेंदवनॆळिपंतॆवोल् ॥
नव मुखभूषणं दशमुख व्यवहारमनित्तु रावणं- ।
गविरल कांतियिं बॆळगिदत्तु समस्त दिशा मुखंगळं ॥१२७॥

अंतु सिंहासनदिनॆळ्दु—

चमरजमनिक्कॆ खचर ॐ प्रमदा जनमुत्तमांगदॊळ् वॆळगॊडॆ चं- ।
द्रमनं गॆलॆ नडॆदं वि- ॐ क्रमधवलं चंद्रहासमं जडियुत्तुं ॥१२८॥

आगळसम समर केळी कुतूहलर् खचर परिवृढर् मणिमकुट कांति पॊदळ्दु नीळ्दु मिगॆ पर्वि शक्रधनुवननुविसॆ कॆळर्दॆ केसरिगळंतॆ नडॆयॆयुं अपार चतुरंग सेनॆ चरण संचरणक्क नॆलं नॆरॆयदॆवंतॆ नडॆयॆयुं करि वृषभ सिंह गरुड हंसादि महाध्वजंगळॆडॆगिरिदु नडॆयॆयुं विविध रत्नखचित कनक दंड मंडित विचित्र राजचिह्नंगळ् मुंदॆ संदणिसि नडॆयॆयुं नडॆव समयदॊळॊडनॊडनॆ नॆलं मॊळगॆ मॊळगुव

---

में धारण किये गये विभिन्न आभरणों की चमक ऐसे प्रकाशित हुई मानो नक्षत्रों को अँधेरे ने घेर लिया हो। देह से उत्पन्न कोपाग्नि देह को ही जलाती-सी लाल आँखों वाला रावण ऐसा उठा मानो आकाश मण्डल उठ रहा हो। १२६ रावण ने सोचा कि उसका शरीर ही शोभा दे रहा है, धारण किये हुए आभूषणों से उत्पन्न शोभा की अपेक्षा थोड़े ही रखता है ? उसकी मुखकान्ति दशदिशाओं में शोभा देता-सा वह उठा। १२७ —इस तरह सिंहासन से उठकर— खेचर स्त्रियाँ दायें-बायें खड़ी चामर डुला रही थीं और सिर के ऊपर श्वेत छत्र सुशोभित हो रहा था कि रावण, पराक्रम ही जिसका भूषण है, चन्द्रहास लिये युद्ध के लिये निकल पड़ा। १२८ —तब असमान्य बलशाली खेचर वीरों ने उसे घेरकर इन्द्रधनुष के उदय की भ्रांति पैदाकर दी। क्रुद्ध केसरी की भाँति वे चले तो उसका अनुसरण करनेवाली अपार चतुरंग सेना के लिये मानो पृथ्वी का विस्तार ही अपर्याप्त प्रतीत हुआ। हाथी, वृषभ, सिंह, गरुड़, हंस चिह्नों की ध्वजवाली सेनाएं विविध रत्न जडित राजचिह्नों-से सजी थीं। पृथ्वी को प्रतिध्वनित करती हुई बजती हुई रणभेरियों को सेना के चलते समय

परॆय दनिगळॆंदुं आकस्मिकमुदयिप धराकंपमं सेना भरदिनाद धराकंपमॆंदु पसरिसुव दिग्दाहमनंबरचर किरीटमाणिक्य मयूख लेखॆगळॆंदुमविरळमार्गे कविदकावुळमं सेना रजोजाळमॆंदु पूजावाजि विलोचन विगळदश्रु बिंदुगळनानंदाश्रु बिंदुगळॆंदुमोरॆयिनुर्चुव कॆदुगळं इर्दिर्चि दरनिरियलुर्चिदुवॆंदु कण्बॊलदॊळ् सुळिव कालायस काल पुरुषनं कालॆगक्कॆ जवं नॆरॆबंदप्पनॆंदुमागसदॊळॊगॆव धूमकेतुगळं विजयकेतु-गळॆंदुं कण्णॊळुळ्कुवुल्कापातमं निजप्रतापानल स्फुलिंगंगळॆंदुमभूत पूर्वमप्पुत्पातगळनेनुमं बगॆयदॆ कोपमनॆ बगॆदु—

रदनंगळ् नाल्करिंदद्भुतमॆनिप सहस्र द्विप स्कंधदॊळ् पू-।
डिद विद्यादेवता निर्मित रथमनतिक्षोभदिंदेरि बंदं ।
कदन क्षोणी तलक्कुन्नमित बहु पताका पटच्छन्न मेघा-।
स्पदमं संग्राम भेरिरव बधिरित नाना दिशास्यं दशास्यं।। १२९।।

अंतु बंदु संग्राम भूमियॊळॊड्डि निल्वुदुं—

ई तोर्पुदचलमो जी- * मूतमो पेळॆंदु पॊळॆवुदं जांबवनं ।
कौतुकदिं बॆसगॊंडं * सीता रमण दशास्मनेरिदं रथमं ।।१३०।।

अंतु बॆसगॊळ्वुदुं देव रावणन बहुरूपिणी विद्या विनिर्मित वरूथमॆंबुदुं लक्ष्मणं केळ्दु सन्नाह भेरियं पॊयिसॆ—

---

उत्पन्न आकस्मिक भूकम्प समझकर, व्याप्त धूल को काले बादल समझकर, घोड़ों की आँखों से बहनेवाली अश्रुधारा को आनन्दाश्रु समझकर और यह समझकर कि म्यान से निकली तलवार शत्रुओं को चीरने में तैयार (समर्थ) है, आँखों के कोर में स्थित लोहा-रूपी कालपुरुष को युद्ध में भेज दिया है, आकाश में दिखाई देनेवाले धूमकेतु को विजयध्वज मानकर, आँखों को चकाचौंध कर देनेवाले उल्कापात को प्रतापाग्नि की चिनगारियाँ मानकर अपूर्व अपशकुनों की परवाह किये बिना अपना हठ साधकर— विद्या देवता द्वारा निर्मित एवं प्रदत्त रथ को चार दाढ़वाले हजार अद्भुत हाथियों के कन्धों पर रखकर, उसपर विराजमान होकर, रावण रणभूमि की ओर आ रहा था कि चमकती हुई अनेक पताकाएँ मानो मेघछाया निर्माणकर रही थी और रणभेरीध्वनि दिगंतों में गूँज रही थी । १२९ —इस तरह आकर रणभूमि में प्रतिपक्षियों से लड़ने के लिये तैयार हुआ तो— रावण के इस रथ को देखकर आश्चर्य-चकित होकर राम ने जाम्बवान से पूछा कि अब जो दिखाई दे रहा है वह पर्वत है या मेघसमूह । १३० —राम का यह प्रश्न सुनकर जाम्बवान ने कहा—भगवन, यह रावण द्वारा बहुरूपिणी

आराधिसि पडेदं गड * तेरं दोस्सारनल्लदंगेवुदों पेळ् ।
तेरेंदु सिंह रथमं * वीरश्री रमणनेरिदं रघुवीरं ॥१३१॥
विग्रह भूमियोळिंदु द-*शग्रीवननिक्कि विजय लक्ष्मियोळां पा ।
णि ग्रहणमनोडरिपेनें-*बाग्रहदिं कृष्णनेरिदं स्यंदनमं ॥१३२॥

अंतु सिंह गरुड वाहिनी रथंगळं रामलक्ष्मणरेरि विद्या-परमेश्वररप्प विद्याधरर्रिं परिवृतरागि चतुरंग बल समन्वितर् शुभ शकुनंगळनिदिर्गोळ्ळुत्तु संग्राम भूमिगे बंदोड्डि निल्वुदुं रावणं कंडु कैवीसुवुदुमुभय बलमुं तळ्तु कादुवल्लि वानर बलद नळनुं नीलनुं कुमुदनुं यूधनाथनुमेंब नायकरोट्टैसि तळ्तिरिदु दनुजबलमं तवे कोल्वुदं कंडु माकोंडु राक्षसबलद मुख्य नामकर् कुंभनुं विक्रमनुं मालियुं वीरनुं सूर्यरथनुं मोदलागे पलंबरेय्तंदु तम्म पडेगभयमप्पंतु कादुत्तुमिर्दरत्त मत्तोंदु मोनेयोळ् रावणनबलद भूतनुं संभूतनुं कुटिलनुं कालदंडनुं ऊर्मियुं तरंगनुं वानर बलदोळ् तले मुट्टु मलेदु कादुबल्लि—

वनगज यूधमं भरदिनट्टुव केसरियंते दैत्यरु- ।
ळ्ळनिबरुमं महारणदोळद्भुतभागे करुत्तु कादि पा- ॥
वनि बिरुतोडुवंते बेदरट्टुवुदं नडेनोडिकोंडु का- ।
य्पनुविसे मुट्टि मूदलिसि तागिदनाहव दुर्जयं मयं ॥१३३॥

---

विद्या से सिद्धि के रूप में प्राप्त रथ है । इसे सुनकर लक्ष्मण ने रणभेरी बजवायी— तपस्या करके रथ पाया ! जो साहसी नहीं है वह तपस्या के अलावा क्या कर सकता है ? —ऐसा कहकर राम सिंह रथ पर सवार हुआ । १३१ लक्ष्मण इस निर्णय के साथ सिंहवाहिनी रथ पर सवार हुआ कि आज रणभूमि में रावण को मारकर विजयलक्ष्मी के साथ पाणिग्रहण कर लूँगा । १३२ —इस तरह राम-लक्ष्मण सिंह गरुड़वाहिनी रथों पर सवार होकर, समस्त विद्याओं के ज्ञाता विद्याधरों से मिलकर, चतुरंग सेना के साथ, शुभ शकुनों का स्वागत करते हुए संग्राम भूमि में पहुँचकर शत्रुसेना के सम्मुख हुए तो रावण ने अपनी सेना को युद्ध सन्नद्ध होने का संकेत दिया । युद्ध प्रारम्भ हुआ । वानर सेना के नल, नील, कुमुद, यूधनाथ नामक नायकों ने एक साथ मिलकर राक्षस सेना को मारा । कुम्भ, विक्रम, माली, वीर, सूर्यरथ आदि राक्षस सेना के प्रमुख नायक अपनी सेना को अभयदान देकर लड़ रहे थे । दूसरी तरफ रावण सेना के भूत-समूह, कुटिल कालदण्ड, ऊर्मि, तरंग आदि शौर्योत्साह से लड़ रहे थे कि— जंगली हाथियों के समूह को भगाता हुआ सिंहराज-सा सामने आनेवाले राक्षसों को पराजित

अंतु तागि—

अयनय मयनति वेगदे ❋ मयनिसे दुर्जयनेनिप्प मारुतिगं वि-।
स्मयमग्गळमादुदु शर ❋ मयमादुदु नोडे कूडे दिगवनि वलयं ।।१३४।।

अंतु पुंखानुपुंखमिसुवुदुं—

अवनेच्च बाणजालम ❋ नवयवदिंदेच्चु तविपुदुं मारुति भै-।
रवनंददिं त्रिशूलदि ❋ नवनिट्टं दनुज सेने बोब्बिरिविनेगं ।।१३५।।

अंतिडुवुदुं—

शूळायुधमं निशित श- ❋ राळिगळिं पवनसूनु कडिदिक्कें मयं।
दोळायमान चित्तं ❋ काळेगद पोडर्पुगेट्टु मरवट्टिर्दं ।।१३६।।

अंद कंडु दशवदनं प्रज्वलितमेंब दिव्य रथमनट्टुवुदुमदनेरि मयं महायुद्धंगेय्दु विजयश्रीयनप्पुकेय्दु—

करमरिदु मयन बाहा ❋ परिघक्किदिरिडुवुदार्गमाहवदोळ् दु-।
र्धरनेनिसिदतुळ बलनं ❋ निरायुधंमाडिदं मरुन्नंदननं ।।१३७।।

अंतु हनुमनं निरायुधंमाळ्पुदुं प्रभामंडलं बंदेडेगोंडु तागुवुदुं—

धुरदोळ् मयनातनुमं ❋ विरथंमाळ्पुदुमदर्के सुग्रीवं चे-।
च्चरमोदवि बंदु तागिद❋ नराति बलमेल्लमोल्लनुलिदोडुविनं।।१३८।।

---

कर उन्हें भयभीत कराकर भगाता हुआ हनुमान लड़ा। यह देख, कुपित हो, सम्मुख आकर, छेड़ता हुआ दुर्जय मय उससे भिड़ा। १३३ —इस तरह भिड़कर— मय ने दायें-बायें हाथों से बाण प्रयोग किया तो उसके बाण युद्धभूमि के विस्तार को पारकर दिगंतों में पहुँच गये। इसे देखकर हनुमान आश्चर्य-चकित हुआ। १३४ —मय का बाणसमूह स्पर्धा करता हुआ आ रहा था कि— उन्हें अपने शरीरबल से ही मारूती भैरव-सा रोकता रहा। मय ने त्रिशूल से उसपर आक्रमण किया तो राक्षस सेना जयघोष कर उठी। १३५ —इस तरह (त्रिशूल) प्रहार किया तो— हनुमान ने त्रिशूलायुध को तीक्ष्ण बाणों से काट दिया। इसे देखकर मय भ्रमित-सा, आश्चर्य चकित होकर बुत-सा बन गया। १३६ —यह देख रावण ने प्रज्वलित नामक दिव्य रथ भेजा। मय उसपर सवार होकर भयानक युद्ध करके विजयश्री प्राप्त करने लगा— सबने यह कहकर प्रशंसा की कि मय के सम्मुख भिड़ना किसी के लिए भी असाध्य कार्य है। उसने युद्ध में असहाय शूर कहलानेवाले हनुमान को निरायुध कर दिया। १३७ —हनुमान निरायुध हुआ तो प्रभामण्डल सम्मुख आकर मय से भिड़ा— मय ने उसे भी बिरथ कर दिया। अब कुपित होकर सुग्रीव

अंतु तागुवुदुमातनुमं निरस्त्रंमाळ्पुदुमातनं पेरगिविक—
उरवणिसि विभीषणनति*भरदिं तागुवुदुमा महाबलन भुजा ।
परिधक्कें कुंदनिनिसं- *दोरेकोळिसिदनेंदोडें मयं दुर्जयनो ॥१३९॥

आगळा मयन मसकमं दाशरथि कंडु कडु मुळिदु—
इदु रक्कसरुसिरं पी- * र्पुदग्र काळाहियेंनिप बिल्लं रामं ।
पदुळं तंदंगुष्ठद * मोदलगें कोंप्पिगें नूंकिदं ज्यालतेयं ॥१४०॥

अंतु निज विजय धनुर्लतेयनेरिसि नीवि जेवोंडेवुदुं—
रावणन दिव्य रथद ग-
जावळि पेळ्पळिसें बेंचें रविय हयंगळ् ।
तीविदुदु गगनमं व
ज्रावर्त धनुर्लता घन ज्यारावं ॥१४१॥

अनंतरं संवर्त समयदतिवर्तियप्प दंडधरन पोडर्पनप्पुकेय्दु मार्पडेयं पडल्वडिसुत्तें बर्पुदात्तराघवन बळिविडिदु विभीषण प्रभामंडल मरुन्नंदन सुग्रीवादिगळुं मगुळ्दु कादल् मनंगेय्दु बरें पद्मदेवनवरं पिंतिक्कि मयनं मुट्टें वंदु महायुद्धंगेय्दु—
जनक सुतनं मरुन्नं * दननं सुग्रीवनं विभीषणनं गें- ।
ल्दनननंजिसि रामं जय*वनितेय कैविडिव तेरदें मयनं पिडिदं॥१४२॥

---

लड़ने लगा तो शत्रुसेना तितर-बितर होकर भागने लगी । १३८ —फिर भी मय ने सुग्रीव को भी अस्त्रहीन कर दिया । सुग्रीव को पीछे धकेलकर— विभीषण मय से भिड़ा । उसने विभीषण के भुजबल पराक्रम को भी फीका कर दिया तो मय के साहस का वर्णन कैसे करें ? १३९ —मय के इस साहस को देखकर राम कुपित हुआ और राक्षसों के श्वास को सोख लेने में समर्थ कृष्णसर्प (कालसर्प) नामक अपना धनुष उठाकर शिथिल डोरी को कसकर तैयार हुआ । १४० —इस तरह विजयपताका-सा धनुष चढ़ाकर बाण जोड़कर प्रयोग करने पर— रावण के दिव्य रथ के हाथी डर गये । सूर्यरथ में जोते गये घोड़े भ्रमित हुए । वज्रावर्त धनुष का टंकार सामान्य होता है ? १४१ —तत्पश्चात प्रलयकाल के यमराज के रौद्र को मात दिलाता हुआ, शत्रुबल को भ्रमित करता हुआ आगे बढ़नेवाले राम का अनुसरण करते हुए विभीषण, प्रभामण्डल, हनुमान, सुग्रीव पुनः लड़ने के लिए आगे बढ़े । तब राम ने उन्हें रुकने का संकेत करके स्वयं मय के सम्मुख आकर महायुद्ध करके— प्रभामण्डल, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण आदि को पराजित करनेवाले मय को डराकर उसी तरह

पिडियें रघूद्वहं मयननीक्षिसि राक्षस चक्रवर्ति का- ।
य्पोंडरिसें कीरि तन्न रथमं परिचोदिसवेळ्दु रामनोळ् ।।
तोंडरलोंर्डचि बर्पं पददोळ् मगुळित्तलोंनुत्तुमेय्दिदं ।
सिडिल पोंडर्पुमं जवन कूर्पुमनीळ्कुळिगोंडु लक्ष्मणं ।।१४३।।

अंतु रघुनंदनन स्यंदनमं पेरगिक्कि—
अेत्तानुं दोरेकोंडे राघवनमोघास्त्रक्के मारींप वि- ।
क्रांतं कामुक निन्नोळुंटे कदनक्कण्णंबरं गंडरार् ।।
मुंतागेन्नोळिदिर्चु कूर्मणेय कूर्पं तोर्पेनण्मेंदु क- ।
ल्पांतोग्रंतकनंतें गर्जिसिदनारक्तेक्षणं लक्ष्मणं ।।१४४।।

अंतु गजरि गर्जिसुवुदुं घन गर्जनेगेळ्द केसरियंतें कोळर्दु—
करिगळ् सासिरदोळ् पू-*डि रथं जंगम कुलाद्रि वर्पंते भयं- ।
करमागे बंदु दशकं * धरनासुरमागे तागिदं लक्ष्मणनं ।।१४५।।
आगळेरंकेय बेट्टं * बेगं वर्पंतें बंदु लक्ष्मणन रथं ।
तागिदुदु गरुड वाहिनि*सागरमुच्चळिसे पक्ष पवनाहतियिं ।।१४६।।

अंतवर् तम्म रथमननतिदूरदोळिरिसि—
इवु दृष्टि विषाहिय गर*ळ बह्नि जिह्वा विभासमेनें कण्गळ कें- ।
पवरोंर्वरोर्वरं प्रा- * ण वायुवं नुंगुवंतें नोडिदरागळ् ।।१४७।।

---

पकड़ लिया मानो विजयवधू का हाथ पकड़ा हो । १४२ राम ने मय को पकड़ा तो रावण कुपित होकर चिल्लाता हुआ अपने रथ को राम की तरफ मोड़ने की आज्ञा दी । उसका रथ आगे बढ़ रहा था कि घन-गर्जना-सा गरजता हुआ लक्ष्मण उसके सम्मुख हुआ । १४३ —राम के रथ को पीछे हटाकर— तुम जैसे कामुक में राम के दिव्यास्त्र का सामना करने की शक्ति है ? संसार भर में ऐसा कौन पुरुष है जो मेरे भैया से लड़ सके ? पहले मुझसे लड़ो । मेरे बाणों का मजा चखाता हूँ । ऐसा कहकर कल्पकाल के यम-सा आरक्त नेत्रवाले लक्ष्मण ने सिंहनाद किया । १४४ —इस तरह गरजा तो, मेघगर्जना सुनकर बिगड़ता सिंह-सा बिगड़कर— हजार हाथी जोते हुए रथ पर सवार होकर, गतिशील पर्वत-सा आकर भयानक आकार में रावण लक्ष्मण से भिड़ गया । १४५ तब पंखयुक्त पर्वत चला आया-सा लक्ष्मण का गरुड़वाहिनी रथ अपने पंखों से निर्मित हवा के प्रभाव से, मानो सागर ही ऊपर चढ़ आया हो, रावण के रथ की ओर बढ़ाया । १४६ —उन्होंने अपने रथों को दूर ही खड़ा करके— दृष्टिपात से ही विष बरसानेवाले सर्प-से परस्पर रक्तिम

अंतवरिर्वरुमोरोर्वरं जन्मांतर जनित कलुष वशगतरागि नीड्डु नोडे तदनंतरं लक्ष्मीधरं दशकंधरननितेंदं—

पल दिवसक्कॆत्तानु ※ कलहक्कोळगादॆ निन्न बाल्वासॆय पं- ।
बलनिन्नुळि रघुवीरन※चलनाजक्कॆरगि पडॆय मृत्युंजयमं ॥१४८॥

ऎनॆ दशमुखं मुनिर्दितेंदं—

त्रिजगदॊळुळ्ळरिकॆय भू※भुजरं भुज वलदिनॆन्न कालॆरगिसिदें ।
निज तनुगॆरगिसुवॆनधो-※क्षज निमिषार्धदॊळॆ पर्दुमं कागॆयुमं ॥१४९॥

ऎंदु बिडॆनुडिदु कैदुगॆय्येंदु मूदलिसि निजविजय चापंगळ-नॆरिसि नीवि जेवॊडॆवुदुं—

दिनकृन्मंडलमं पळंचि कुल भूभृत्कूटदॊळ् वेरॆ मा- ।
र्दनियं पुट्टिसि लोक पालर मनक्कातंकमं तंदु कू- ॥
डॆ नभोमंडलमं दिशा वलयमं तळ्पॊय्दु पॊण्मित्तुपें- ।
द्रन दैत्येंद्रन दिव्य चाप विपुल ज्याघात घोर स्वनं ॥१५०॥

अंतु समर सन्नद्धरागि—

अय्दुं स्थानदॊळं नि- ※ दय्दुं तॆरदेसिनोजॆवॆत्तप्रतिमर् ।
काय्दिसॆ दॆसॆ मसुळ्विनॆगं※पाय्दुवु पुंखानुपुंखमस्त्रावळिगळ् ॥१५१॥

---

नेत्रों से एकटक ऐसा देखा मानो एक-दूसरे की प्राणवायु को निगल रहे हों। १४७ —इस तरह जन्मान्तरों के द्वेष के कारण इस तरह दृष्टियुद्ध करते हुए-से देखने के पश्चात लक्ष्मण ने रावण से कहा— वहुत समय के बाद तुम मुझसे युद्ध के लिए तैयार हुए। अव दुनिया में जीने की आशा छोड़कर, राम के चरणारविंदों में शरणागत होकर मृत्यु पर विजय पाओ। १४८ —ऐसा कहने पर रावण कुपित होकर यूं वोला— त्रैलोक में साहिसी के नाम से प्रसिद्ध राजाओं को मैंने अपने भुजवल से अपने चरणों में झुकाया है। अव तुझे युद्ध में मारकर तेरे शरीर को कौओं गीधों को खिला दूंगा। १४९ —ऐसा कहकर युद्ध के लिए ललकारा और अपना धनुष उठाकर वाण छोड़े तो— उनके धनुषों के ठंकार सूर्यमण्डल में व्याप्त होकर, कुल पर्वतों के शिखरों में प्रतिध्वनित होकर, लोकपालकों के मन में भय जगाकर आकाश मण्डल एवं दिगंतों के कोने कोनों में व्याप्त होकर गूंज उठा। १५० —वे इस तरह युद्ध के लिए तैयार होकर— पाँच स्थानों में खड़े होकर, पाँच प्रकार के वाण प्रयोग करने में परिणत उन अप्रतिम वीरों ने ऐसे वाण समूह वरसाये मानो दिशाओं का प्रकाश फीका पड़ गया हो। १५१ रावण का गजरथ और लक्ष्मण

दनुजेंद्रन गज रथमुं * मनुजेंद्रन गरुड रथमुमेवे मिडुकदे नि- ।
ल्विनभवरेच्चंबुगळं * दनुवरदोळ् पडेदुवोडने शर पंजरमं ।।१५२।।
ओरोर्वरेच्च कणेगळ-*नोरोर्वर् कडिदु माणदिसे मार्मुगिलि-।
दोरंते पाय्व पुष्कर * धारा संदोहदंते पाय्दुवु कणेगळ् ।।१५३।।
पुरुषोत्तमनिसे दशकं- * धरनं कूर्गणेगळुर्चलारवे दशकं- ।
धरनिसे निशितास्यंगळ्*पुरुषोत्तम तनुवनुर्चलारवे धुरदोळ्-।।१५४।।
नेरेदुदु निन्न निषेकं * नेरगोळ्ळदे माणवेन्न बाणावळिगळ् ।
गरि सोंकदे पोगेनुतुं *गरि गरियं सोंकि परियॆ लक्ष्मणनेच्चं ।।१५५।।

समधिकरस्त्र शस्त्रबलदोळ् दृढ़कायदोळत्युदग्र वि- ।
क्रमदोळनंत वीर्यदोळनेक विध प्रधनंगळोळ् धनु- ।।
श्श्रमदोळपार पौरुषदोळादोडमें प्रति वासुदेवनोळ् ।
समनिसिदायुरंतमें जयप्रदमादुदु वासुदेवनोळ् ।।१५६।।

रावण लक्ष्मणरति रो- * षावेशदिनेच्चुमिट्टुमिरिदुं पोय्दुं ।
नोवं सावं बगेयदे * देवर्कळ नेरवि नोडे कादुतिर्दर् ।।१५७।।
साधारणास्त्रदिंदम- * साधारणमप्प युद्धमं माडियुमें ।
साधिसलणमारने ल- * क्ष्मीधरनं कदनकर्कशं दशवदनं ।।१५८।।

---

का गरुड़रथ मानो एक ही जगह खड़े होकर अपलक देख रहे थे। उनके द्वारा प्रयुक्त बाणों ने शर-पिंजरों का निर्माण किया। १५२ आपस में छोड़े गये बाणों को परस्पर काटकर बिना रुके पुनः बाण प्रयोग कर रहे थे कि ऐसे दृष्टिगोचर हुए जैसे बादलों से बरसती जलधारा हो। १५३ लक्ष्मण ने रावण पर क्रूर बाणों से प्रहार किया। वे (बाण) शरीर को भेदे बिना रह सकेंगे? रावण के प्रयुक्त बाण लक्ष्मण को आघात पहुँचाये बिना नीचे गिरेंगे? १५४ लक्ष्मण ने यह कहते हुए रावण पर बाण-वर्षा की कि तुम्हारी आयु अब समाप्त हो गयी है। मेरे बाण तेरी बलि लिए बिना नहीं रहेंगे। १५५ अस्त्र शस्त्र बल में वे दोनों समान अधिकारी हैं। दोनों दृढ़ कायावाले हैं, शौर्य में असमान हैं। विभिन्न प्रकार के युद्ध-कौशल में परिणत हैं, धनुर्धारियों में भी श्रेष्ठ हैं। लेकिन प्रतिवासुदेव रावण का जीवनांत वासुदेव के हाथों से ही बधा है—इसलिए यह युद्ध मिल आया है। १५६ रावण और लक्ष्मण अत्यन्त रोषावेश में आकर बाणों से परस्पर भेदते हुए, चीरते हुए, मारकर पीड़ा और मौत की परवाह किये बिना लड़ रहे थे कि देवता समूह ऊपर से उस दृश्य का अवलोकन कर रहा था। १५७ साधारण अस्त्र से असाधारण युद्ध किये जाने पर

अंतचिंत्य युद्धंगेय्दु लक्ष्मणनं गेललू नेरेयदे विद्यायुद्धमं पोणर्चि दिव्यास्त्रमनभिमंत्रिसिकोंडिसुवुदुं—

पोगे पोरपोण्मे सूसे किडिगळ् गरळानलनिं जगंगळं ।
बगेयदे नुंगलेंडु परितंदपुदंतकनाज्ञेयिदमिं ।।
पगेवडेगिल्ल जीवनमेनलू दशकंधरनेच्च रौद्र प- ।
न्नग शरमं गरुत्म शरदिं बिरुतोडिसिदं जनार्दनं ।।१५९।।
लय समयं जगक्के पेरतावुदो रावणनुग्र कोप व- ।
ह्निये विलयानलं मुळिसे कल्प विराममेनलू सहस्र जि- ।।
ह्वेयोळमजांडमं पुदिदु बर्प दुशास्यन वह्नि बाणमं ।
जय रमणीरमं तविसिदं हरि वारुण दिव्य बाण दिं ।।१६०।।
इसे तमदंबिनि दशमुखं तपनास्त्रदिनद्रि बाणदि- ।
दिसे दनुजाधिपं कुलिश सायकदिं तरु दिव्य बाणदिं- ।।
दिसे खचरं कुठार शरदिंदभिमंत्रिसि मेघ बाणदिं- ।
दिसे दशकंधरं पवन सायकदिं तरिदं गदायुद्धं ।।१६१।।
इवु मोदलागिरे निज दि
व्यविशिखमं मत्तमाजियोळ् पलवं दा- ।
नव रिपु भंजिसे निज दि-
व्यविशिकदिं देसेगे मसगिदं दशवदनं ।।१६२।।

---

भी रणकर्कश (रण भयंकर) रावण लक्ष्मण से लड़कर विजय पाने में समर्थ है ? १५८ —उन दोनों में असाधारण युद्ध हुआ । रावण लक्ष्मण को पराजित करने में असमर्थ होकर, अपने अर्जित विद्या प्रयोग से दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया— उन दिव्यास्त्रों से धुआँ फैल गया; अग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं; विषाग्नि मानो संसार को ही निगलने के लिए आगे बढ़ी । रावण द्वारा प्रयुक्त सर्पास्त्र देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो यमराज ने ही शत्रुसेना को समाप्त करने के आदेश देकर भेज दिया हो । लक्ष्मण ने उस सर्पास्त्र को गरुडास्त्र से काटकर भगा दिया । १५९ —इसके अलावा संसार के लिए प्रलयकाल और कौन-सा हो सकता है ? रावण का उग्र क्रोध ही मानो कल्पकाल की अग्नि की तरह प्रज्वलित होकर हजार जिह्वों से ब्रह्मांड भर में फैलते-से अग्निबाण को लक्ष्मण ने वरुणास्त्र से नाश कर दिया । १६० रावण ने तमोगुण बाण छोड़ा तो लक्ष्मण ने उसे सूर्यबाण से काट दिया । पर्वतास्त्र को वज्रास्त्र से खण्डित कर दिया । वृक्षबाण को परशुबाण से काटकर, मेघास्त्र को पवनास्त्र से पराजित कर लक्ष्मण सुशोभित हुआ । १६१

अंतु मुळिदु दिव्य बाणदिं लक्ष्मणनं गेललू नेरेयदे—
सिडिमिडिगोंडु तन्न कलषोग्र कृषानुवे तन्न देहमं ।
सुडे निललारवुम्मळिसि लक्ष्मण देवन दिव्य बाणदिं ॥
किडे निजदिव्य बाणदेसकं मसकंगिडदिंद्र विद्विषं ।
पडेदनपारमं तनुगळं बहुरूपिणियेंब विद्येयिं ॥१६३॥
आ विद्येय सामर्थ्यम- ※ नेवण्णिसुवें जनार्दनंगाक्षणदोळ् ।
रावण मयमाय्तखिल ध-※रा वलयं गगन वलयमाशा वलयं ॥१६४॥
रावणरनेकरुं यु- ※ द्धावष्टंभ प्रचंड दोर्दंडरगु- ।
र्वविरिसे सुत्ति मुत्ते ज ※ यावसयं लक्ष्मणं रणोत्सुकनादं ॥१६५॥
अंतु सौमित्रियं सुत्ति मुत्ति-
इट्टर् कॆलरिरिदर् कॆल-※ रोट्टजेयिं बंदु तागिदर् कॆलरंबं ।
तोट्टर् कॆलरळ्किरे बो-※ब्बिट्टर् कॆलराजि रंगदोळ् पौलस्त्यर्॥१६६॥
अंतगुर्वागे बिगुर्विसि कादुवल्लि—
अनितुं रावण कोटि कोटि तेरदिं दिव्यास्त्र शस्त्रंमळि ।
मुनिदेय्तंदिसे पोय्ये तळ्तिरिये तळ्तेसाडिदं कोटिगो- ॥
वने बिल्गोंडु पुनर्भवंगळवु कोटाकोटिगळ् पारि बी- ।
ळ्वेनगं पंदलेगळ् धनुर्धर धुरीणं दुर्धरं लक्ष्मणं ॥१६७॥

इनके अतिरिक्त रावण ने अन्य अनेक दिव्यबाणों का प्रयोग किया तो लक्ष्मण ने उन सबको निर्नाम कर दिया। इससे रावण आगबबूला हुआ। १६२ —कुपित होकर, दिव्यास्त्रों से लक्ष्मण को हराने में समर्थ न होकर— अपने आपमें छटपटाकर, उसकी क्रोधाग्नि उसी के शरीर को जला रही थी कि लक्ष्मण के बाणों के प्रहार से पीड़ित होकर, उसके बाणों की तीक्ष्णता का अनुभव कर क्रुद्ध होकर, इन्द्रद्वेषी रावण ने बहुरूपिणी विद्या से अर्जित विद्याबल से अपने ही रूप-आकार के असंख्य रावणों का निर्माण किया। १६३ उस विद्या के सामर्थ्य का वर्णन कैसे करे ? सामने उपस्थित जनार्दन को उस क्षण में भूमण्डल, आकाशमण्डल, दिग्मण्डल सबके सब रावणमय दिखाई पड़े। १६४ युद्ध करते हुए असंख्य रावणों के स्थैर्य का सामना करनेवाले प्रचण्ड बाहुबलों-सा भयंकराकार रावण लक्ष्मण के चारों तरफ चक्कर काटने लगा तो लक्ष्मण का युद्धोत्साह बढ़ गया। १६५ —इस तरह लक्ष्मण को चारों ओर से घेरकर— कुछ लोगों ने मारा; कइयों ने चीर दिया; कुछ लोग मिलकर शत्रुओं से टकराये; कुछ लोगों ने बाण प्रयोग किये। कई एक युद्धभूमि में भय से चिल्लाने लगे। १६६ —इस तरह युद्ध भयानक हुआ तो अहंकार से लड़ने लगे— करोड़ रावण

शरसंधानद वेगमं पोगळलावं साल्दपं कोटि दै- ।
त्यरनांतोर्वनें दीपमालिकॆगळं चंडानिलं नंदिपं- ।।
तिरॆ मेय्र्वेच्चिदुवं तुषार कणमं चंडांशु निर्मूलिपं- ।
तिरॆ निर्मूलिसिदं निशात शर संघातंगळिं लक्ष्मणं ।।१६८।।

रावण कोटिय तलॆ कें * दावरॆयं कॆदरिदंतॆ रण मंडलमं ।
तीवॆ तॆगॆदॆच्चु लक्ष्मण * देवनवोल् कोटि भवनॆनिप्पवनावं ।।१६९।।

समर क्षोणियनेय्दॆ रावण शिरंगळ् तीवि तळ्पॊय्दनु ।
क्रमदिं पुंजिसि रौद्रमादुवु सुमित्रापुत्र बाणासना- ।।
श्रमदोळ् विश्रमिसिर्प योगिनि जयश्रीविश्रुताकाश लि-।
गमनारक्त सरोज संततिगळिंदभ्मर्चनंगॆय्दवोल् ।।१७०।।

अंतगुर्वागॆ बिगुर्विसि कादुवल्लि रावणन तलॆगॆ नॆलनुमाकाशमुमॆडॆनॆरयदॆनॆ तरिदॊट्टॆ रावणं बहुरूपिणी विद्येयनुळिदु मुळिसनुळियदॆ चंद्रहासदिनिरियॆ लक्ष्मणं सूर्यहासदिनदकॆ भंगमनोडच्चॆ कॆच्चॆरिद कोपदिं मनंबॆच्चि—

करोड़ों प्रकार से दिव्य शस्त्रास्त्रों से कोपावेश में भिड़ गये तो करोड़ रावणों से अकेला लक्ष्मण लड़कर शत्रुओं को पराजित कर शीशों का गेंद खेला। नये रावणों के पैदा होने पर उन्हें मारकर धनुर्विद्या निपुण लक्ष्मण सुशोभित हुआ। १६७ लक्ष्मण के बाण प्रयोग करने की तीव्रगति की प्रशंसा करना किसके बस की बात है? करोड़ दैत्यों को अकेला ही उसी तरह नाश कर देता था जैसे दीपमालिका को तूफान बुझा देता है और बार-बार पैदा होनेवाले रावणों को अपने तीक्ष्ण बाणों से उसी तरह निर्मूल कर दिया जैसे हिम को सूर्य किरणें निर्नाम कर देती हैं। १६८ उस भयानक रणभूमि में करोड़ रावण के सिर बिखरे लालकमलों-से दिखाई पड़ रहे थे। लक्ष्मण के समान असंख्य रावणों को मारने का साहस और किसमें है? १६९ युद्धभूमि में गिरकर रुद्र गम्भीरता से शोभा देनेवाले रावण के सिर लक्ष्मण के बाण के आश्रय में विश्राम करनेवाली विजयश्री की पूजा के लिए तैयार किये गये कमलों के समान दिखाई पड़े। १७० —इस तरह धराशायी रावण के शिरों के लिए आकाश, पृथ्वी का विस्तार अपर्याप्त प्रतीत हुआ तो रावण बहुरूपिणी विद्या का उपशमन करके क्रोध त्यागे बिना चन्द्रहास से लक्ष्मण पर चढ़ आया। लक्ष्मण सूर्यहास के साथ हुआ। इससे कुपित होकर मनमें डरकर— दिव्यास्त्र को तरकस से निकालते ही आकाश भर में अन्धकार व्याप्त हुआ। उसे प्रत्यंचा से जोड़ते समय सूर्य का तेज (प्रकाश) ही अदृश हुआ। लक्ष्मण यह

दोर्णेयिदं तेगेयल्के मर्वु नममं पवित्तु दिव्यास्त्रमं ।
गोणेयक्कुय्यलोडं दिनाधिपन तेजं पिंगिपोदत्तु रा- ॥
वणनेसाडिदोडाय्तु रात्रिसमयं सम्मोहनास्त्रक्के ल- ।
क्ष्मण वीरं प्रतिकार मंत्र विकलं विभ्रांतनागिर्पिनं ॥१७१॥

अन्नेगमित्त चंद्रवर्धन वियच्चरेंद्रन मगळ्दिरेण्बर् कन्नेयर् मणिमय वितान विराजमान विमानारूढेयर् वियन्मार्गदिं बंदु लक्ष्मणनं नोडुत्तुमिरे देवाप्सरोगणिकेयराकेगळं नीमार्गेनिमित्त-मिल्लिगे बंदिरेंदु बेसगोळ्वुदुमरिर्तेदर् सीतास्वयंवरक्के मदीय जनकनोडगोंडु पोगि लक्ष्मणनं कंडु मनदे कोंडेम्मनीतंगे कोट्टनेंबु-दुमेमगीतने पुरुषनप्पुदरिनीतननुवरवेंतादपुदेंबुदं नोडल् बंदेवेने लक्ष्मणना मातं केळ्दाकेगळनळ्कर्तु नोळ्पुदुमवर् समयोचितम-नरिदु सम्मोहन शरशक्तियनी मंगदिं किडिसेंदुच्चरिसुवुदुमा मंत्रदिनभिमंत्रिसि—

शरधियनुर्चे पिंगिदुदु भोंकने कळ्तले दिव्य बाणमं-।
तरे तिरुविगे तीव्रकिरणं तलेदोरिदनार्दु पंकजो- ॥
दरनिसे रात्रि पिंगि पगलप्पुमादुदु संतसं सुरा- ।
सुरर्गवलोकिसल् पडेदेवेंदवरिर्वर दोर्वलंगळं ॥१७२॥

---

सोचकर भ्रमित हुआ कि इस बाण को छोड़ते ही सारा संसार अन्धकारमय हो जायगा। इस सम्मोहन शस्त्र का सामना करने का मन्त्र क्या है ? १७१ —तब इधर खेचरपति चन्द्रवर्धन की आठ कन्याएँ रत्नखचित विमान में विराजमान होकर आकाशमार्ग से लक्ष्मण को देख रही थीं। वहाँ के देवता अप्सरा स्त्रियों ने उनने पूछा कि वे कौन हैं, किस कारण से वहाँ आयी हैं ? उत्तर में उन्होंने बताया—सीता-स्वयंबर के समय हमारे पिताजी हमें वहाँ ले गये थे। वहाँ लक्ष्मण को देखकर हम मोहित हुईं। पिताजी ने निश्चय कर लिया कि हमारा विवाह लक्ष्मण से ही करा देंगे। यही हम लोगों का पति है। इसकी युद्ध कुशलता देखने के लिए हम यहाँ आयी हुई हैं। इस बात को (युद्धभूमि से ही) सुनकर लक्ष्मण संभ्रात हुआ। उसे प्राप्त विपत्ति को देखकर उनके यह कहने पर कि अमुक (विशिष्ट) मन्त्र से सम्मोहन शक्ति का निवारण किया जा सकता है, लक्ष्मण ने वैसा ही किया— दिव्यास्त्र के धनुष पर चढ़ते ही अन्धकार मिट गया; आकाशमण्डल में सूर्य दिखाई पड़ा। धनुष को त्यागकर बाण शत्रु पक्ष की ओर बढ़ा तो रात मिटकर दिन हुआ। सुरासुरों को इस बात की खुशी हुई कि इन दोनों के बाहुबल को देखने के लिए ही उन

अंतु सम्मोहनास्त्रं कूर्पुगिडे पोडर्पुगिडदे रावण विघ्नविनायकास्त्रदिंदिसुवुदुमदं लक्ष्मणं सिद्धार्थ विद्याशिलीमुखदिं पराण्मुखंमाळ्पुदुं—

ऎनितं कोंडाडवे नी-श्तन मसकमनीगळिते किडिसुवेनेंदा ।
दनुजेंद्रं रोष हुताश्शननेदेयोळ् तिण्णमुरियॆ किडिकिडिवोदं।। १७३।।

अंतति प्रबल कलुष वशगतनागि—

परचक्र क्षयकालचक्रमॆनिसिदात्मीय चक्रक्के खे- ।
चरचक्रेश्वरनुय्ये कैयनदु तेजश्चक्रदिं कोटि भा- ।।
स्करचक्र प्रमेयं पळचलेदु कैगेय्तंदु लोकैक भी- ।
करमाटंदुदु नीलमेघ निकट प्रस्फार दंभोळिवोल् ।।१७४।।

अंतु वीरपुरुष रत्ननैनिष रावणन कैगॆचक्ररत्नं बर्पुदुमदं लक्ष्मणं कोवर चक्रमं बगेवंते बगेदु—

भेदिपेनी दशाननन चक्रमनीतन कंठनाळमं ।
छेदिसि तोर्पेनॆन्न भुजवीर्यमनेंदु कडंगि विक्रमा ।।
सादित विश्वलोक विजयं कुलिशास्त्रद पिळ्कु नारियोळ् ।
कोदु कदंपनेय्दे धनुवं तॆगेदर्विसिदं जनार्दनं ।।१७५।।

---

लोगों का जन्म हुआ है । १७२ —इस तरह सम्मोहनास्त्र की शक्ति गँवा देने पर भी रावण हिम्मत न हारकर, विघ्नविनयकास्त्र को लक्ष्मण पर प्रयोग किया तो लक्ष्मण ने उसे सिद्धार्थ विद्या बाण से पराजित किया— इसके शक्ति-सामर्थ्य की कहाँ तक सराहना की जाय ! लेकिन इसे क्षण-भर में रोकने के विचार से रावण क्रोधाग्नि को प्रज्वलित करता हुआ, इतना बिगड़ा कि अग्निदेव भी भयभीत हो जाय । १७३ —इस तरह प्रबल क्रुद्ध होकर— खेचर चक्रेश्वर ने अपने आत्मीयचक्र, जो शत्रु राजाओं के लिए अन्तकाल सिद्ध होता है, को स्पर्श किया तो, कोटि सूर्य-प्रभा को दुगुना करता हुआ उसके हाथ में आकर, संसार को दुःख प्रदान करने की अपेक्षा से प्रलयकाल के नील मेघ की भीखरता-से शोभित हुआ । १७४ —वीर पुरुषों में रत्न माना जानेवाला रावण के हाथ में चक्ररत्न आते ही लक्ष्मण ने उसे कुंवारचक्र-सा समझकर— इस विचार से कि इस रावण के चक्ररत्न एवं कण्ठनाल को भेदकर मेरे भुजबल शौर्य दिखाता हूँ, कुपित हो, विश्वविजयी लक्ष्मण ने वज्रास्त्र के छोर को बाण की डोरी से जोड़कर कर्ण तक खींचा । १७५ चक्र को तोड़कर, धनुष को ठंकारता हुआ उग्रशर धारणकर धनुष पर बाण चढ़ाने की भंगिमा में खड़ा

कडिखंडमाडुवें चक्रमनेंडेयोळेनुत्तुं धनुर्धडमं जे- ।
वोडेगेय्दुग्रास्त्रमं संधिसि तिरुविनोळालीढदोळ् निंदु कोलुं ।।
कडेगण्णुं कैयुमिबागिरे तेगेनेरेदव्यग्रने काग्रचित्तं ।
बडेदिर्दं चंद्रचूडं त्रिपुरमनिसलेंदिर्दवोल् राम चंद्रं ।।१७६।।

दंडधरंबोलिर्दनभिवीक्षिसुतुं शत खंडमप्पिनं ।
खंडिसुवें वियच्चरननच्चिन चक्रमनेंदु धर्मवा- ।।
मंडलि गंड मंडलदिनल्लुगे लोहित लोचनं प्रभा- ।
मंडलनेत्ति चंड भुजदंड विमंडित मंडलाग्रमं ।।१७७।।

इडे दशवदनन चक्रद ※ पोडर्पनां किडिपेनेंदु शूलायुधमं ।
पिडिदेत्ति सूसे कण्गळ्※ किडियं भैरवनवोल् विभीषणनिर्दं ।।१७८।।

पुडिपुडिमाळ्पें चक्रम-※ नेंडेयोळे लक्ष्मणननेय्दलीयेनेनुत्तुं ।
पिडिदेत्ति गदेयनिर्दं ※कडेगालद पोडेव सिडिलवोल् सुग्रीवं ।।१७९।।

इरे वामहस्तदोळ् बिल् ※ तिरुवं गोलेगोत्ति चक्रमं चेल्लिसुवें ।
बरलीयेनेंदु लागल ※ शरंगळं पिडिदु पवननंदननिर्दं ।।१८०।।

विक्रम कर्कशनीतने ※ शक्रनेनल् पिंगदंगदं वज्रद रु- ।
क्चक्रं देसेयं दळ्ळिसे ※ चक्रमनाक्रमिसलेंदु तरिसंदिर्दं ।।१८१।।

अंतवर् सहस्र यक्षरक्षितमप्प सुदर्शन चक्रद बरवनभिवीक्षिसुत्तिर्पुदुमत्त दशमुखं लक्ष्मणगभिमुखनागि—

---

हुआ। उसके हाथ और दृष्टि की कोर ऐसी एकाग्रचित्त स्थिति में थीं मानो चन्द्रचूड़ शिवजी त्रिपुर का नाश करने के लिए खड़ा हो, राम बगल में खड़ा था। १७६ प्रलयकाल के यम-सा रावण को देखता हुआ इस उत्साह से कि उसके चक्र को तोड़ देगा, पराक्रमी प्रभामण्डल रक्तिम आँख किये हुए अपने भुजबल दण्ड को उठाया हुआ दिखायी दे रहा था। १७७ रावण के चक्र प्रयोग करते ही उसके प्रभाव को समाप्त कर देने के विचार से शूलायुध उठाकर, आँखों से चिनगारियाँ बरसाता हुआ प्रलयभैरव-सा विभीषण खड़ा था। १७८ लक्ष्मण के निकट आने से पहले ही चक्र को मध्यमार्ग में रोकने के विचार से गदा उठाये सुग्रीव प्रलयकाल की मेघ-गर्जना-सा खड़ा था। १७९ धनुष की डोरी को बाँयें हाथ से छोर की ओर सरकाते हुए चक्र को अपनी ओर आने से रोकने के विचार से हल-से बाणों को लिये हनुमान सुशोभित था। १८० पराक्रम कंठीरव और इन्द्र तुल्य माना जानेवाला अंगद रावण के चक्र की चमक दिगंतों में व्याप्त होते ही उसे पराजित करने की आतुरता से खड़ा था। १८१ —इस तरह

अळिगंडिनोळें कैदुव * नुळि शक्तियोळाद सावनेंतानुं मुं- ।
कळिदि सायदिरांतर * नुळिवंताडुगुमे चक्रधाराचक्रं ॥१८२॥

अेंदु मूदलिसि—

तिरिपे धराचक्रं को- * वरचक्रद तेरदे तिरिदुदेंटुंदेसे त- ।
ळ्तुरिदुवु चक्रद बिसुपि* सुर संकुलमगिदु तेगेदुदिदें डेयिदं ॥१८३॥

आगळदं कंडु—

कावरारो लक्ष्मणननक्कट सीतेय वेवसक्के का- ।
लावधियादुदिल्लेने सुरासुर मंडलमारे हर्षदिं ॥
रावण सैनिकं कपिबलं बिरुतोडुविनं त्रिलोक वि- ।
द्रावणनिट्टना खचर चक्रि सुदर्शन दिव्यचक्रदिं ॥१८४॥

अंतिसुवुदुमा चक्ररत्नं तन्ननाक्रमिसलिर्द हनुमांगदादिगळ दिव्यायुधंगळनोट्टयिसि लक्ष्मीधरनं मुट्टेवंदु मूरु सूळ् बलगोंडातन बलद मुय्पिन केलदोळिर्पुदुमदं लक्ष्मीधरनवलोकिसुत्तुमिरे रामस्वामिकंडु लक्ष्मणनिनगे चक्ररत्नं दोरेकोंडुददने कोंडिडेंदु बेससुवुदु-

हजार यक्षों से रक्षित सुदर्शनचक्र के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे कि उधर रावण लक्ष्मण के सम्मुख होकर बोला— अल्प पराक्रम से क्या लाभ ? आयुध को नीचे रख दो । पहले के शक्त्यायुध, जिससे पहले मृत्यु हुई थी, उसे इस चक्र से मत चाहो । यह किसी को जिंदा नहीं छोड़ेगा । १८२ —ऐसा छोड़कर— चक्र को घुमाया तो सारा भू-मण्डल कुंवारचक्र-सा घूम गया । चक्र की तीक्ष्ण गरमी से आठों दिशाएँ जलने लगीं । आकाश की देव संतति भय के मारे अपनी जगह छोड़कर भागने लगीं । १८३ —तब इसे देखकर— सुरासुर दुखी होकर यह कहने लगे कि लक्ष्मण की रक्षा कौन कर पायेगा ? हाय, सीता के चितानिवारण का समय अब भी नहीं आया है ? त्रैलोक को भयभीत कराता हुआ खेचर चक्रवर्ती रावण के सुदर्शन चक्र को शत्रुपक्ष की ओर फेंका तो रावण सेना में खुशी छा गयी लेकिन कपि सेना भयभीत हो भागने लगी । १८४ —फेंकने पर उसे (चक्र को) घेरने के लिए खड़े हनुमान अंगद आदि वीरों के आयुधों को दायें-बायें धकेलकर वह लक्ष्मण के पास आया और उसकी तीन प्रदक्षिणा लेकर उसके (लक्ष्मण के) दाहिने बगल में खड़ा हुआ । लक्ष्मण उसे देख ही रहा था कि राम ने भी देखा और कहा कि लक्ष्मण, यह चक्ररत्न तुम्हें प्राप्त हुआ है । इसे अब रावण पर प्रयोग करो । यह सुनकर लक्ष्मण ने दक्षिण भरतप्रदेश को अभयदान देनेवाले दाहिने हाथ

मदर्के लक्ष्मणं दक्षिणभरत धात्रिगमय हस्तमेनिप्प तन्न दक्षिण हस्तमं नीडे—

लंकाधीशन जयवधु ※ पंकज नामंगे कूर्तु रणमुखदेडेयोळ्-।
मुं कोट्टट्टिद रत्नद ※ कंकणमेंवंते कैगेवंदुदु चक्रं ॥१८५॥

आगळ् चक्रपाणि खचर चक्रवर्तियनिंतेंदं—

निन्न नच्चिन चक्रमुं बेसकेय्यलोल्लदे बिट्टु बं-।
देन्ननाश्रयिसित्तु केम्मने कादि सायदे लंकेयोळ्॥
निन्न पुत्र कळत्र मित्ररोळोंदि राज विभूतियोळ्।
मुन्निनंतिरु बेडि कोंडभय प्रदानमनण्णनोळ्॥१८६॥

असदाग्रहमं बिसुटो- ※ प्पिसु सीतादेवियं जगज्जननियन-।
र्चिसु रामस्वामिय चर-※ण सरोरुहमं किरीट मणि मंजरियिं॥१८७॥

अेने दशमुखं कोपशिखियिं नंदुव सोडरंतुद्दमुरिदु—

अेले पारुंवळे पोगे पोदुदे सुमित्रापुत्र मत्पौरुषं।
पलवं नीं गिळियंदर्दिं गळपदिर् कैलासमं तूगिदी॥
तोळेयोळ् दक्षिणबाहु दंडदोळिदिर्चल् गंडनारेंदु मे-।
य्गलि पाय्दं रथदिं नेलक्के जडियुत्तुं चंद्रहासासियं॥१८८॥

अंतु पोडर्पुगिडदति भरदिनिळियलनुगेय्दु बर्पुदं कंडु कोटिक शिलेयनेत्तिद महासत्वं सुदर्शन चक्रदिंदिडुवुदुं—

---

को आगे बढ़ाने पर— सुदर्शन चक्र उसके हाथ में वैसा ही आया मानो लक्ष्मण के प्रति मोहित होकर युद्धभूमि में स्थित लक्ष्मण के पास लंकाधीश की जयवधु के रत्नकंगन हों। १८५ —चक्रधारी लक्ष्मण ने खचर चक्रवर्ती से यूँ कहा— तेरे प्रिय चक्र ने तेरी आज्ञा का पालन न करके मेरा आश्रय लिया है। अब लड़कर क्यों मरना चाहता है? लंका में पत्नी, बच्चों, सम्बन्धियों के साथ पूर्ववत् सुख भोगता रह। मेरे भैया से अभयदान की भीख माँग। १८६ दुराग्रह छोड़कर, जगन्माता सीतादेवी को श्रीराम के चरणारविन्दों में सौंपकर उनकी पूजा कर। १८७ —ऐसा कहने पर रावण कोपज्वाला में बुझा दीप-सा लम्बा होकर— हे लक्ष्मण, क्या तू यह समझ रहा है कि चक्र के तेरा आश्रय लेने मात्र से मेरा पौरुष समाप्त हो गया है? पोपट की तरह मत रटा कर। कैलास पर्वत को उठाये हुए इस दाहिने हाथ का सामना करनेवाला पुरुष इस संसार में कौन है? ऐसा कहते रथ से नीचे कूदकर चन्द्रहास खड्ग को निकाल लिया। १८८ —इस तरह धैर्य न खोकर जोर से भेदने के लिए आगे बढ़नेवाले रावण

हृदयं सीतानिमित्तं मनसिजनिसे पंचेषुविं भिन्नमागि- ।
दुर्दरिं लक्ष्मीधरं कोपदिनिडे पेरतें चक्ररत्नक्कें पाडा- ।।
दुर्देनल् नट्टुर्चि बेन्नि पोरमडे विगतप्राणना दानवेंद्रं ।
त्रिदशेंद्रं वज्रदिंदिट्टोडे नडुगेनेलं विट्टु बीळ्वंतें विळदं।।१८९।।

अंतु चक्रहतियिं धरातलदोळ् बिळ्दु—

असुरननर्घ शोणमणि भूषण दीधितियोळ् किरीटदोळ् ।
मिसुगुव पद्मराग रुचियोळ् पोरपोण्मुव रक्तवारियोळ् ।।
मुसुकि रणावलोकन कुतूहलदिं नेरेदप्सरोगण- ।
क्कसुर कुलाधिदेवतें चितानलनिं सुडवंतें तोरिदं ।।१९०।।

असिरत्नं चक्ररत्नं बडेदनमित शस्त्राधिदैवंगळं सा- ।
धिसिदं कैलासमं चालिसिदनखिल दिक्पालकरं गेळ्दनंत-।।
प्पसुरेंद्रं तन्न शस्त्राननदोळे मरण प्राप्तनादं दलंद- ।
न्य सती संभोग केळी रतरुळिदवर्गळ् सावुदिन्नाव चोद्यं।।१९१।।

अंतु दशाननं यमाननमं पुगुवुदुं—

सुरिदुदु पुष्पवृष्टि सुर दुंदुभि घूर्णिसिदत्तुपेंद्रनं ।
परसिदुदळ्कर्रिं सुरगणं मिळिदर्त्तु जयध्वजं निशा- ।।

---

को देखकर सिद्धशैल को उठाए हुए सत्वातिशयी लक्ष्मण को सुदर्शन चक्र से प्रहार करने पर— मानो सीता निमित्त से कामदेव द्वारा प्रयुक्त पंचबाण लगने के कारण लक्ष्मण द्वारा फेंके गये चक्र का काम आसान बन गया हो, रावण के वक्षस्थल को भेदकर पीठ से बाहर निकला। रावण निष्प्राण होकर, देवेन्द्र के वज्र प्रहार से जिस तरह पर्वत टूटकर गिरते हैं, उसी तरह पृथ्वी पर गिरा। १८९ —इस तरह चक्राघात से धराशायी होकर— चमकते हुए मुकुट रत्नों की शोभा से, धारण किये हुए पद्मराग मणियों के आभूषण की कान्ति से, धाराकार बहते रक्त प्रवाह से आकाश से देखनेवाले अप्सराकुल को यह दृश्य ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो रणभूमि में प्रज्वलित अग्नि में राक्षस कुल देवता जल रहा हो। १९० खड्गरत्न और चक्ररत्न को प्राप्त करके समस्त शस्त्रास्त्रों के अधिदेवताओं की शक्ति उपलब्ध करके, कैलास पर्वत को हिलाकर, दिग्पालकों को पराजित कर, दिगंत विश्रान्त कीर्ति प्राप्त किया हुआ रावण अपने ही शस्त्रमुख से मृत्यु को प्राप्त हुआ तो परस्त्री व्यामोह से पीड़ितों की ऐसी दुरव्यवस्था होती है तो आश्चर्य क्या है? १९१ —दशकंठ यममुख में प्रविष्ट हुआ तो— ऊपर से पुष्पवृष्टि हुई; सुर दुंदुभी गूँज उठी; देवताओं

चर बलमोडिदत्तमय घोषमामुण्मिदुदब्धि घोषमं ।
परिभविसित्तु वानर पताकिनियोळ् विजयानक स्वनं ।।१९२।।

आगळवनीतळदोळ् बिळ्दिर्द रावणनं विभीषणं कंडु सहोदर स्नेहं कारणमागे मूर्छेवोगि शीतल क्रियेयिनेंतानुमेळ्चत्तु मत्तमति प्रलापंगेय्दु शोक विकलनागिर्दनित्त रावणंगे मरणमादुदनरिदु रंभेयुं चंद्राननेयुं चंद्रिकेयुं प्रवरेयुमूर्वशियुं मंडोदरियुं कमलेयुं कमलाननेयुं रुक्मिणियुं रत्नमालेयुं श्रीमतियुं श्रीमालेयुं श्रीकांतेयुं सध्यामालेयुं तटन्मालेयुं अनंगसौंदरियुमानंदेयुं वसुंधरेयुं प्रभावतियुं पद्मावतियुं भानुमतियुं धृतियुं मनोवेगेयुं रतिकांतेयुमेंदिवर् मोदलागे नाल्वत्तेण्सा-सिरमंतःपुर पुरंध्रियर् बेगं बंदातन कळेबरमं कंडु तळ्कैसि कोंडु मूर्छेवोगि नीडरिदेळ्चत्तु विषाद वह्निगा ज्याहुतिगळागि—

निन्नंतवुरद कांतेय- * रन्नोडर्दे नुडियदेंबुकेय्यदे पर्देपि ।
मन्निसदे मुळिद तेरदिं * निन्निर्दिरवाव कारणं खचरपती ।।१९३।।

करि हरि हंस मीन मकरादि महाध्वजवार मुंदे पेळ् ।
परिवुर्वो निन्नबेळ्गोडेय तण्णेळलोळ् निललारो योग्यरार्।
सुर नर किन्नरोरगरनाळ्वसकेय्सुवुदात्तरिन्नदार् ।
भरत वसुंधरा वलयमं परिरक्षिसुवर् दशानना ।।१९४।।

---

ने उपेन्द्र लक्ष्मण को आशीर्वाद दिये। जयध्वजाएँ लहरा उठीं; राक्षस सेना पलायन करने लगी; अभय घोषणा सुनायी पड़ी; वानरसेना के विजयघोष से समुद्रघोष सुनायी नहीं पड़ा। १९२ —भूमि में गिरे हुए रावण को देखकर भ्रातृवात्सल्य से विभीषण मूर्छित हुआ। उसे शैत्योपचार से जगाने पर भी वह भ्रान्त-सा विलाप करता रहा। इधर रावण के मरने की खबर पाकर, रंभा, चंद्रानना, चंद्रिका, प्रवरा, ऊर्वशी, मंदोदरी, कमला, कमलानना, रुक्मिणी, रत्नमाला, श्रीमती, श्रीमाला, श्रीकान्ता, संध्यामाला, तटन्माला, अनंगसौंदरी, आनंदा, वसुन्धरा, प्रभावति, पद्मावति, भानुमति, धृति, मनोवेगा, रतिकान्ता आदि अड़तालीस हजार पत्नियाँ आकर उसके शरीर से लिपटकर रोती हुई मूर्छित होकर पुनः होश में आकर विपदाग्नि में घी-सी आहुति बनकर— हे खेचरपति, आपने अन्तःपुर की पत्नियों से मिले बिना ही, उनसे बोले बिना, औदार्य दिखाये बिना, कुपित-से रहने का कारण क्या है? १९३ गज, अश्व, हंस, मीन, मकर अंकित महाध्वज अब किसके सम्मुख शोभा दे? आपके श्वेतछत्र की ठण्डी छाया में खड़े रहने की योग्यता किसमें है? सुर, नर, किन्नर, उरगों (नागों) पर शासन करने की उदात्तता और किसमें है? इस भरतवर्ष की

दुर्मति धात्रनिं निनगें दुस्थिति सार्दुदु निन्न पेंडिरि- ।
न्नार्मधु मासदोळ् निज विनोद वनंगळ पादपंगळोळ् ।।
पेमोर्लेयोत्तिनिं कुरवकक्कें विकासमनुंटुमाळ्पिरि- ।
न्नार्मधुबिंदु सेकदोळे केसरदोळ् पडेवर् विकासमं ।।१९५।।

दिवयं नीं पुगे खेचरेंद्र तरळापांग प्रभापातदिं- ।
दवरोधंगनेयर्कळा तिलकदोळ् पूगोंचलं माळ्पिरि- ।।
न्नवनीवल्लभ निन्न नंदनदशोकानोकहक्कारों प- ।
ल्लवमं पुट्टिसुवर् विलासवतियर् पाद प्रहारंगळिं ।।१९६।।

इं कडुकेय्दु दिक्पतिगळळ्कुविनं त्रिजगद्विभूषण- ।
क्कंकुशमिक्कि दिग्गजमनोडिसलुं विजयार्ध शैलदिं ।।
तेंकण धात्रियं तनगे कंकणदंतिरे कैगे माडलुं ।
लंकेयनाळलुं नेरेव खेचर वल्लभनार् दशानना ।।१९७।।

बाळियनंजिसि भुजबल※शालियनोडिसि सहस्रबाहुवनिन्नार् ।
बाळमसेयिं दशानन ※कोळाळ्माडुवरो नेलदोळुळ्ळरसुगळं।।१९८।।

दिविज भवनक्के हा दा-※नवेंद्र नीनतिथियादे तुडुववरिन्नार् ।
नव मुख भूषणमं स्वै- ※ र विहारदिनेरुवन्नरार् पुष्पकमं ।।१९९।।

---

रक्षा करनेवाला संरक्षक कौन है ? १९४ दुर्बुद्धि के कारण आपकी यह स्थिति हुई ? आपकी कौन-सी पत्नी अब वसन्त ऋतु में आपके साथ उद्यान-वनों में खेलती हुई अपने घनकुचों को वृक्षों से स्पर्श कराकर पुष्पों को खिला सकती है ? अब शहद सिंचनकर केसरपुष्पों को कौन विकसित करा सकती है ? १९५ खेचरेन्द्र, आप स्वर्ग प्रवेश करेंगे तो आपकी अवलोकन प्रभा वहाँ की युवतियों पर पड़ने पर वे नतदृष्टा होकर तिलक में पुष्प गुच्छा बना-बना देंगी। अब आपके नन्दनवन के अशोक वृक्ष को अपने चरण प्रहार से कौन अंकुरित करेगी ? १९६ इस तरह साहस से दिग्पालकों को डराता हुआ, त्रिजगद्भूषण गज को अंकुश में रखकर, दिग्गजों को भगाता हुआ, विजयार्थ शैल से दक्षिण के भूभाग को कंगन-सा अपने वश में रखकर लंका पर कौन शासन कर सकता है ? १९७ वाली को डराने, भुजबलशाली सहस्रबाहु को पराजित करनेवाला आप जैसा प्रख्यात राजा इस भूमण्डल में अब कौन रहा ? १९८ देवतागृह के आपके अतिथि बनने के बाद नये प्रकार के आभूषणों को पहनकर पुष्पक विमान पर सवार होकर विहार के लिए कौन निकल पड़ेगा ? १९९ उधर सुरासुरों के चिल्लाते रहने पर भी आपने कुबेरगिरि को एक कंकड़-सा अनायास उठाये हुए देखकर वे सब

अत्त सुरासुरर् नेरेदु बोंब्बिडे नीं किरिगुंडनेत्तुवं- ।
तेत्तिद बन्नमं बगेगे तंदु कुबेर गिरींद्रमीर्ष्ये मे-।।
य्वेत्तिरे निर्झरच्छलदिनोकुळियाडुविनं दशास्य दे- ।
वोत्तम कामिनीजनद तोळ्वलेयोळ् तोडरळ्के तक्कुदे ।।२००।।

ऐत्तुविनं महोत्सव पताकेगळुत्सव तूर्य निस्वनं ।
बित्तरिपन्नमंतकन बारिगे सोवतमादे देव दु- ।।
र्वृत्त विरोधि निर्दलन काळेगदोळ् पिडिपेत्त सत्त बे- ।
न्नित्त विरोधि भूभुजर खेचर राजर राजधानियोळ् ।।२०१।।

ऎंदतिप्रलापंगेय्युत्तुं रावणन चरणोपांतदोळ् मेय्यनीडाडि हाहा दशास्य कीर्तिवल्लरी वलयित दिशास्य हाहा विलास मकरध्वज खेचरकुल ध्वज हाहा त्रिलोक विजयस्तंभ जयश्री साल भंजिकारंजित भुजस्तंभ हाहा दुर्वार दर्प विध्वंस सरस्वती कर्णाव तंस हाहा रिपु नृपति कटक विटपि कुठार खचर कामिनी पयोधर मध्य राजित तरळ तारहार हाहा वनिता यौवनवन वसंत अनवरत चतुर्विध पुरुषार्थ चिंतित स्वांत निन्नंतःपुरद कांता जनद कदंपिनोळ् मृगमद पत्रलेखेयं बरेयलुं बाहुलतेयोळ् पिडुगंकणमनेरिसलुं घनस्तनमंडलदोळ् मलयरुह चर्चेयनोडर्चलुं नितंब बिंबदोळ्

---

जल उठे थे। उनके मत्सर के प्रवाह में जलक्रीड़ा करते, हुए कामिनी जन के वाहुबन्धनों में सुखानुभव करना अन्यों के लिए सम्भव है ? २००

आपके, यम को बलि चढ़ जाने से शत्रुओं ने उत्सव ध्वज फहराये, जयभेरी बजवायी। अब तक एकांगवीर कहलाने वाले आपसे लड़कर बन्धी बने हुए, मरे और भागे हुए खेचरों, मानवों की संख्या गिनना सम्भव है ? २०१

—इस तरह अत्यन्त दुःखी होकर रावण के चरणों के पास लोटती हुई बोली—दशवदन, कीर्तिलता को दिगंतों तक फैलाने में समर्थ महानुभाव, हाय हाय भोगविलास में तन्मय तुल्य, खेचर कुलध्वज, त्रैलोकों में विजयध्वज गड़नेवाले, जयवधुरूपी सुवर्ण खिलौनों को भुजवलरूपी स्तम्भों में प्रतिष्ठापित करनेवाले, हाय हाय दुष्टों के दर्द को मिटा देनेवाले, सरस्वती के कर्णाभरण, हाय हाय वैरीवीर सैन्यरूपी कानन के लिए परशुतुल्य, खेचर स्त्रियों के घनस्तनों के बीच विराजित नक्षत्रमाला, वनिताओं के यौवन के लिए वसन्त समान, सदा चार स्तर के पुरुषार्थ के बारे में सोचनेवाले, आपके अन्तःपुर की स्त्रियों के गालों में कस्तूरी लेपन करने, हाथ में कंगन धारण करने, स्तन मण्डल पर श्रीगन्ध लेपन करने, नितंब में तकिया रखने और चरणों में नूपुर धारण करने से अलसित होकर देवता स्त्रियों से रमने

नूल तोंगलनोडर्चुलुं पद पयोजदोळ् मणि नूपुरमानळवडिसालु
मति परिचयदि नेनसिदंते दिविज कांता संभोग लीलालसनागि—

दिगिमक्के कुलाद्रिगे प-॥ न्नग पतिगति भारमागे भूमारमने- ।
के गडं नीनोप्पिसि व॥ ज्रिगे तल्लळमागे दिवके दारियनिट्टै॥२०२॥

अेंदु बहुविधदिं पळविसुव पौलस्त्यन कुलस्त्रीयरं कंडु रामस्वामि कर्रुणिसि रावणंगी मरणमीतन दुर्व्यसनदिंदादुदल्लदेम्मिंदादुदल्तागदोडं संसार स्वरूपमितुटे वलमार जीवनमुं जव्वनमुं धन धान्यमुमिष्टसंयोगमुं क्षणदे नश्वरंगळदरिंदवर्गळलदलसदे सैरिसुवुदेंदवरुमं विभीषणनुमं संतयिसि—

बवरंगेय्दातंगा ॥ य्तवसानं तक्कुदल्तु पगेगोळ्वुदु मि- ।
क्कवरोळ् नमगेंदं रा-॥ घवंगे सच्चरितदेसकवोंदच्चरियें ॥२०३॥

अेंदु तानुं लक्ष्मणनुमानेयनेरि पलर् सामंतर् बळसिवरे मंडोदरिय समीपक्के बंदाकेय शोकमं संसार स्वरूपमं पेळ्दु पिंगिसिबळियं कर्पूरागरु गोशीर्ष चंदनादिगळिं रावणनं यथाविधियिं संस्करिसि तदनंतरमिदंगि मेघवाहन कुंभकर्णमय मारीचादिगळं बरिसि सेरेयं बिडिसि पलतेरदिनवर शोक मनुपशमियिसि—

---

के लिए— दिग्गजों को, कुल पर्वतों को, महाशेष को, भार प्रतीत होता-सा भूमि का अधिकार सौंपकर देवेन्द्र को दुःख देता-सा स्वर्ग क्यों गये ? २०२ —इस तरह अनेक प्रकार से विलाप करती हुई रावण की पत्नियों को देखकर राम ने कहा—रावण को अपने दुर्व्यवहार (दुर्व्यसन) के कारण इस तरह की मौत प्राप्त हुई, हम लोगों के कारण नहीं। संसार सुख किसी के लिए भी शाश्वत नहीं है। यौवन, धन, धान्य, इष्ट, संयोग आदि क्षणभंगुर है। इसके लिए आप लोगों को रोना नहीं चाहिए, सांत्वना से काम लेना चाहिए। ऐसा कहकर, विभीषण को भी सांत्वना की बात कहकर— राम ने सच्चरित की बात बताई—सम्मुख आकर लड़नेवाले का अवसान हुआ। अन्यों से बदला लेना हमारे लिए उचित नहीं है। यह आश्चर्य करने की बात नहीं है। २०३ —ऐसा कहकर राम और लक्ष्मण हाथी पर सवार होकर, अनेक सामन्तों से आवृत्त हो, मन्दोदरी के पास आकर संसार की क्षणभंगुरता के उपदेशों से उसके शोक को दूर करके, तत्पश्चात कपूर, धूप, चन्दन से रावण की अन्तिम क्रिया करवाकर इन्द्रजित, मेघवाहन, कुम्भकर्ण, मय, मारीच आदि को बुलवाकर, उन्हें बन्धन से मुक्त करवाकर उनके दुःख का उपशमन किया— अकेला रावण मरा,

रावणनोर्वनें कळिदं॰नीविनिबरुमळ्कारि विभीषणनोळ् स- ।
द्भावमनें मेरेदु खचर॰ श्रीविभवमनेंदिनंदर्दिदनुभविसिं ॥२०४॥

अेंबुदु कुंभकर्णादिगळ् रामलक्ष्मणर निष्कषायत्वमुमं संसार भीरुत्वमुमं धैर्यमुमं बाहुवीर्यमुमं मेच्चि पोगळ्दिन्नेमगे संसार सुखं सालगुमेंदु भोग निर्वेग पररागि नुडिदु रामलक्ष्मणवेरसु पद्मसरोवरदोळ् जलदान क्रियेयं निर्वर्तिसिदिंबळियं नेसर् पडुव समयदोळ्—

अनुपमररुसासिर्वर् ॰ मुनिगळ्वेरसप्रमेय मुनि नाथर् बं- ।
दिन पथदिं लंकेयनं-॰दन वन मध्यदोळे नियम नियमितरिर्दर्॥२०५॥

अंतिर्पुदुं—

प्रकटिसिदुदु शुक्ल ध्या-॰न कृषानु ज्वालेयिंदवर् सुडे मूल ।
प्रकृतिगळोळ् घातिगळं ॰ सकल पदार्थविभासि केवलबोधं ॥२०६॥

इत्त धातकीषंडदोळ् तीर्थंकर कुमार जन्मोत्सवमप्पुदुं चतुर्निकाय देवनिकायं भगवज्जन्माभिषवणमं तीर्चि लंकेय मेले बरुत्तुं कुसुमायुधोद्यानदोळ् सर्वज्ञत्वमं पेत्तिर्दप्रमेय भट्टारकरं कंडु बलगोंडु पोडेवट्टु पूजिसुव समयदोळ् भोंकनें पसरिसुव शंख पटहादि विविधवाद्य रवंगळं रामलक्ष्मणरुं वानरध्वजरुं केळदु जिनपूजोत्सव

---

अब तुम सब विभीषण के साथ प्रेम और सद्भाव से रहकर खेचर कुल के वैभव को पूर्ववत् बनाये रखो और उपभोग करो। २०४ —ऐसा कहने पर कुम्भकर्ण आदि ने राम-लक्ष्मण के मत्सर रहित भाव, संसार की निर्मोहता, साहस की सराहना की और यह सोचकर कि अब उन्हें संसार सुख नहीं चाहिए, वैराग्य परवश हो, राम-लक्ष्मण के साथ मिलकर पद्म सरोवर में जलदान क्रिया की। तत्पश्चात, संध्या हो रही थी कि— छः हजार अनुपम मुनियों के साथ अप्रमेय मुनिवर आकाश से लंका के नन्दनवन में उतरकर वहाँ तप में लीन थे। २०५ —ऐसा रह रहे थे कि— उनकी तपस्या से उठी अग्निज्वाला ने उनके समस्त पापों को भस्म करके उनमें केवल बोध जाग्रत कराया। २०६ —इधर धातकीखण्ड में तीर्थंकर कुमार जन्मोत्सव मनाया जा रहा था कि देवतासमूह उस उत्सव से निपटकर लंका के ऊपर से गुजर रहे थे कि नन्दनवन में सर्वज्ञत्व के ज्ञाता अप्रमेय भट्टारक के दर्शन लेकर, उनकी प्रदक्षिणा करके पूजा की। पूजा के समय विविध वाद्य ध्वनि सुनकर राम-लक्ष्मण, वानर-ध्वजियों ने उसे जिनपूजा का वाद्य-रव समझकर कुम्भकर्ण, इन्द्रजित, मेघवाहन आदि के साथ अप्रमेय

पटह रवंगळेंदरिदिंद्रजिन्मेघवाहन कुंभकर्णादिगळि परिवृतरागि भट्टारकरिदें‌डॆगॆ वोगि--

आ रघुवंशकेतु बलगोंडु ललाटदोळॊप्पे हस्त पं- ।
केरुह कुट्मलं विनमितं विविधार्चनॆयिंदघौघ सं- ।।
हारकरं भवांबुनिधि तारकरं नॆगळ्दप्रमेय भ- ।
ट्टारकरं रघुप्रवरनर्चिसिदं कविता मनोहरं ।।२०७।।

इदु परम जिन समय कुमुदिनीशरच्चंद्र बालचंद्र मुनींद्र चरणनख किरण चंद्रिका चकोर भारती कर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितनप्प रामचंद्र चरित पुराणदोळ् रघुवीर विजयवर्णनं ।

।। चतुर्दशाश्वासं समाप्तं ।।

---

भट्टारक के पास पहुँचकर— प्रदक्षिणा करके, हाथों को माथे पर रखकर श्रीराम के पापनाशक, भवांबुनिधि तारक, अप्रमेय भट्टारक की विविध प्रकार से अर्चना की । २०७ —कवि अभिनवपंप, जो परमजिन समय और कमलों को शरत्काल के चन्द्र के समान माने जानेवाले बालचन्द्र मुनीन्द्र के चरण नखों के चाँदनी प्रकाश से पवित्र एवं सरस्वती के कर्ण-भूषण के समान है, के रामचन्द्रचरित पुराण का यह चौदहवाँ आश्वास रघुवीर विजयवर्णन है ।

।। चौदहवाँ आश्वास समाप्त ।।

## पंचदशाश्वासं

श्रीरामा रमणं वा- ※ क्श्रीरामा वल्लभं यशश्री कांतं ।
वीरश्री पतिमुनि बृं - ※ दारक पद विनतनादनभिनव पंपं ।। १ ।।

अंतु निर्भर भक्तियिं वंदिसि संसार क्षय कारणमप्पधर्ममुमनाप्त गुणंगळुमं जीवादितत्वभेदंगळुमं भट्टारकर् बॆससॆ केळ्दुसंतुष्ट

## आश्वास—१५

अभिनव पंप, जो श्रीलक्ष्मीपति, वाक्श्री लक्ष्मीवल्लभ, यशोदेवी का पति एवं वीरश्री का पति है, ने मुनियों और देवताओं के चरणों में नमन किया । १ —इस तरह अनन्यभक्ति से वंदना करके भट्टारक द्वारा सविस्तार बताये हुए संसार-दुःख को निर्मल करनेवाले धर्म के योग्य

चित्तनादननंतरमिंद्रजिन्मेघवाहन कुंभकर्ण मयमारीचादिगळ् तंतम्म भवांतरमनवर् बेससे केळ्दालिलये दीक्षेगोंडर् मंडोदरियुं नाल्वत्तेण्छासिर विद्याधरियर्वेरसु शशिकांतार्यिका समक्षदोळ् दीक्षेगोंडु शुभध्यान तात्पर्यदिनिर्दळित्तल् पुनर्नमस्कारंगेय्दु मगुळ्दु सुग्रीवांगद प्रभामंडल मरुत्सुत विराधित प्रमुख विद्याधरपरिवृतर त्रिजगद्भूषण गजारूढरागि—

गुडियुं सिंदगळुं मुंदुरुवरियें दिनाधीश बिंबंबरं धि- ।
क्किडेशंघ ध्वानमाशा विवरमनितुमं तीवें भेरीखं बे- ॥
ळ्गोंडेयुं चित्रातपत्रंगळुमजनिसें चंडांशुवं मुट्टेवंदर् ।
कडुचेल्वं पेत्र लंकापुरदुपवनमं रामलक्ष्मीधरर्कळ् ॥ २ ॥

अंतु बंदु—

जक्कर कापिनोळ् नडेये मुंदे सुदर्शन चक्ररत्नामि- ।
र्वक्कदोळं वियच्चरकुलप्रभुगळ् बरे भूषणांशुगळ् ॥
तेक्कनेतीवुवंतुनभमं दनुजाधिप राजधानियं ।
पोक्करयोध्येयं पुगुववोलसमान बलर् बलाच्युतर् ॥ ३ ॥

अंतु पुरमं पोक्कु राजवीधियोळगने सीतादर्शनोत्सुकनागि

---

मनुष्यगुणों, जीवों में स्थित तत्वभेदों के बारे में सुनकर संतुष्ट-चित्त हुआ। तत्पश्चात इन्द्रजित, मेघवाहन, कुंभकर्ण, मय, मारीच आदियों को उनके जन्म सम्बन्धी बातें बताईं तो उन सबने वहीं विरक्त होकर दीक्षा ली। अड़तालीस हजार विद्याधरियों के साथ मंदोदरी ने भी भट्टारक से ही दीक्षा लेकर शुभध्यानमें लीन रही। भट्टारकको पुनः प्रणाम करके सुग्रीव, अंगद, प्रभामंडल, हनुमान, विराधित आदि प्रधानोंने त्रिजगद्भूषण हाथी पर सवार हुए— ध्वजाओं, ध्वजविशेषोंको सूर्यमण्डल तक फहराते हुए जयभेरी-निनादों को दिगंतों तक सुनाते हुए, सूर्यप्रकाश को नीचा दिखानेवाले, चित्रविचित्र छत्रियों के प्रकाश को फैलाते हुए, श्वेतछत्र की छायामें राम-लक्ष्मण लंका के उपवन में आये। २ —आकर— यक्षों की रखवाली में आगे बढ़ रहे थे; सुदर्शनचक्र आगे था; दोनो ओर से खेचर राजाओं ने घेरा था। उनके आभूषणका प्रकाश चारों दिशाओंमें फैलकर आकाश में व्याप्त हो रहा था। ऐसे में दनुजाधिप रावण की राजधानी लंका में अतुल-असमान बलशाली राम-लक्ष्मण इस प्रकार प्रविष्ट हुए मानों वे अयोध्यापुर में ही प्रविष्ट हो रहे हों। ३ —पुर प्रवेश करके राजमार्ग में ही सीता को देखने के लिए राम लालायित हुआ तो इस विषय को समझकर चामरग्राहिणियों ने निवेदन किया —भगवन, सीता माता इस ओर

वर्प रामस्वामियमनमनरिदु चामरग्राहिणियर् देवसीतादेवियरित्त-
ली पुष्पप्रकीर्णकमेंब नगद नंदनदोळिर्देरेंदु बिन्नविसुवुदुमादेसेगे
विजयवारणमनणेंदु नूंकि राघवं वर्प समयदोळ् सीतादेविय कॆल-
दोळिर्द खेचरियर् तन्न बरवनरिपुवन्नेगमेय्देवंदु—

बंबलनें बाडि मंजिरि- ※ दंबुज लतेयंतिरिर्द जानकियं नी- ।
लांबरनीक्षिसि विजय ※ स्तंभेरमदिं समुत्सुकं धरेगिळिदं ।। ४ ।।

अंतानेयिंदिळिदु वर्प वल्लभ विलोकन जनित संभ्रमदिना-
कंपनमनप्पुकेय्दु—

इदिर्वदु कैगळं मुगि- ※ दुदयिसे पुलकंगळुण्मे धर्म जलंगळ् ।
पदपद्मक्केरगिदळ् ※ कॆदरिद कुरुळोळि मरसे मरिदुंबिगळं ।। ५ ।।

आ समयदोळ्—

सतिय पतिव्रतागुण समृद्धिगे दर्शन शुद्धिगळ्करिं ।
स्तुतियिसि निर्जरर् करेदु पूमळेयं वसनांगरागदिं- ।।
दतिशय दिव्यभूषण गणंगळिनर्चिसे नोडि नाडे वि- ।
स्मितमनरागि जानकिगे कैमुगिदर् खचराधिनायकर् ।। ६ ।।

जानकिय शीलमं दिवि-※जानीकं मेच्चे पोगळ्दु पूजिसे रामं- ।
गानंद पुलकमादुवु ※ मानिनियर् महिमेगितु नोंतरूमोळरे ।। ७ ।।

---

स्थित पुष्प प्रकीर्ण पर्वत के उद्यान में रह रही है। अपने हाथी को उस ओर मोड़कर श्रीराम के आते समय सीता के बगल में रहनेवाली खेचर स्त्रियों द्वारा अपने आने की सूचना देने तक आगे चलकर— जानकी, जो प्रखर सूर्यकिरणों से मुरझी, वर्फ की ठंडी के आघात को प्राप्त कमललता सदृश थी, के नीलांबर को देखकर उत्सुकता से राम हाथी से नीचे उतरा। ४ —हाथी से उतरकर आते हुए पति को जब सीता ने देखा तो जाग्रत आनंदातिरेक से रोमांच हुआ। लेकिन उसे रोककर— सामने आकर हाथ जोड़ा तो देह पुलकित हो रही थी और पसीने की बूँदें बह रही थीं कि उसके चरण-कमलों में झुक गयी। उसके बिखरे बाल भ्रमरशिशुओं की तरह दिखाई पड़े। ५ —उस समय— देवसंतति ने सीता के पातिव्रत्य गुणों के आधिक्य की आचारशुद्धि की स्तुति (प्रशंसा) करके पुष्पवृष्टि की और समुचित वस्त्राभूषण प्रदान कर प्रणाम किया तो विस्मित होकर खेचरनायकों ने भी सीता को हाथ जोड़े। ६ दिविज समूह ने जानकी के शील की प्रशंसा करके पूजा की तो राम को आनन्द से रोमांच हुआ। इस तरह स्त्रियाँ व्रतनिरत रह पाती है? ७ —तत्पश्चात लक्ष्मण ने

अनंतरं लक्ष्मीधरं तनगेरगि पोडेवोट्टोडातनं परसि मन्निमित्तं करं सेदेवट्टिरेंदु मन्युमिक्कु शोकिसुत्तिर्पुदुं लक्ष्मणनुं रामनुं संतयिसिर्दिबरियं प्रभामंडलनं कंडु पोडेवट्टोडातनतिप्रीतियिं परसि सीतादेविगे सुग्रीव नलनीलांगद मरुत्सुत चंद्राभ सुषेण जांबवादि-गळं पेसर्वेसरोळे पेळ्दु तोरि संतोषमं माडे—

सतियुं तानुं मदांध द्विपमनोडनें बंदेरि विद्याधराधी- ।
श तनूजर् सुत्तलुं मंडळिसि नडेये बेरोंदु पूर्णेंदु बिंबा- ।।
कृतियिं श्वेतातपत्रं सोगयिसे देसेयं तीवें तूर्यप्रणादं ।
जित शक्रावासमं रावणमरमनेयं राघवं बंदु पोक्कं ।। ८ ।।

त्रिजगद्भूषण माद्य-* द्गजमं कालगोदु पोळेयिसुत्तंकुशमं ।
विजिगीबुलक्ष्मणं मद*गजदडकिलिदेनिसि पोक्कनोडनरमनेयं।। ९ ।।

अंतरमनेयं पोक्कल्लिय शांति जिन भवनमं रामलक्ष्मणर् सकल विद्याधर सहितं बलगोंडु जिनपतियं स्तुति शतंगळिं स्तुतियिसि दिव्यार्चनेगाळिंदर्चिसिदंबळिक्कं सहस्रांत:पुर प्रधानेयप्प विदग्धे वेसर तन्न महादेवियं विभीषणं रामस्वामियल्लिगट्टुवुदुमा महानुभावे बंदु रामलक्ष्मणर्गं सीतादेविगमेरगि पोडवेट्टम्मर मनेगेळ्तन्नि कालगर्चुवेनेंबवसरदोळ् विभीषणमं बंदुबिजयंगेय्यिमेंदु

---

प्रणाम किया तो उसे आशीर्वाद देकर इसलिए आँसू बहाने लगी कि उसके कारण ही (सबको) इतना कष्ट सहना पड़ा। राम-लक्ष्मण द्वारा सांत्वना देकर शांत करने के पश्चात प्रभामंडल को देखकर प्रणाम किया तो भाई ने उसे आशीष दिये और अपने साथी सुग्रीव, नल, नील, अंगद, जांबवान, चंद्राभ, सुषेण, हनुमान आदि का एक-एक कर परिचय कराकर खुश कर दिया। —तत्पश्चात् सीता के साथ मदगज पर सवार होकर, चारों ओर से विद्याधर नायकों द्वारा आवृत्त होकर आगे बढ़ते समय उसके सिर पर श्वेतछत्र दूसरे पूर्णचन्द्र-सा सुशोभित हो रहा था और दशोदिशाओं में जयघोष ध्वनि फैल रही थी कि देवेन्द्र पर विजय पानेवाले रावण के राज-महल में राघव प्रविष्ट हुआ। ८ लक्ष्मण त्रिजगद्भूषण हाथी पर सवार होकर अंकुश को चमकाता हुआ गजपर्वत-सा राजमहल में प्रविष्ट हुआ। ८ —इस तरह प्रविष्ट होकर उन दोनों ने वहाँ के शांति जिन मन्दिर की प्रदक्षिणा कर जिनपति की सौ स्तुतियों से स्तुति करके, दिव्य पूजाओं से पूजा करने के पश्चात् विभीषण ने अपनी पत्नी विदग्धा को राम के पास भेजने पर उसने (विदग्धा ने) आकर राम-लक्ष्मण-सीतादेवी के चरणों में

सिंहगरुडवाहनारूढरं महाविभूतिर्यि निजराजभवनक्कुय्दु सिंहासनदोळिरिसि मणिभाजनदोळर्घ्यपाद्यमं कोट्टु—

अवर्गे विभीषणनत्यु* त्सवदिं बिर्दिक्कि दिव्यमणिभूषणदि- ।
व्यविलेपनदिव्यांबर* निवहमनोलगिसि विनयमं प्रकटिसिदं ।। १० ।।

अंतु निरंतरोत्सवदिं कतिपय दिनं पोदिवरियनोंदु शुभदिन मुहूर्तदोळ्—

बेसकेय्दप्पुदु चक्ररत्नमखिलोर्वीचक्रमं नीमे पा- ।
लिसिमाळोळियोळिर्के राजकुलमेंदुत्साह तूर्य स्वनं ।।
देसेयं तीवे विभीषणमं बेरसु सुग्रीवादिगळ् राघवं- ।
गे सुमित्रातनयंगे राज्यसवन प्रोत्साहमं माडिदर् ।। ११ ।।

अंतु पूर्व जन्म संचित सुकृतदिं दिव्यायुध वस्तुवाहनंगळुमं दिव्य स्त्रीयरुमं स्वीकरिसि मुन्नें तम्म बर्प समयदोळ् मदुवेनिदरसियरं तरिसि शुभदिन मुहूर्तदोळ्—

अनतिशय रूप विद्या * विनय समन्वितेयरं महोत्सव पटह ।
ध्वनि पूर्णमे चंद्रवर्धन * तनुजेयरं पदेदु मदुवे निंदनुपेंद्रं ।। १२ ।।

---

प्रणाम करके निवेदन किया— आप सब कृपया हमारे घर पधारें और हमें आप लोगों के चरण धोने का भाग्य प्रदान करें। विभीषण ने भी वहाँ आकर कृपा करने का निवेदन करके सिंहगरुड वाहनारूढ़ उन महाविभूतियों को अपने राजमहल में ले जाकर, सिंहासन में बिठाकर रत्नथालियों में अर्घ्यपाद्य देकर— विभीषण ने बड़ी धूमधाम से दिव्यरत्नाभरणों, दिव्य सुगंधित द्रव्यों, दिव्यपीताम्बर आदि प्रदानकर अपनी नम्रता व्यक्त की और उनका उपचार किया। १० —इस तरह उत्सव, समारंभों के साथ कुछ दिन बिता रहे थे कि एक दिन शुभ मुहूर्त में— आठो दिशाओं में इस जयभेरी निनाद के फैलने पर कि आप ही चक्ररत्न एवं भूचक्र स्वामित्व को अपनाकर राजकुल का उद्धार करे, विभीषण से सम्मिलित सुग्रीव आदि नायकों के प्रोत्साहित करने से राम-लक्ष्मण राज्याभिषेक करवा लेने के लिए तैयार हुए। ११ —इस तरह जन्मांतरों के पुण्यविशेष से दिव्यायुधों, दिव्यवस्तुवाहनों एवं दिव्य स्त्रियों को स्वीकार कर, पहले, आते समय, विवाहित युवतियों को बुलवाकर शुभदिन, शुभ मुहूर्त में— उपेंद्र लक्ष्मण ने चन्द्रवर्धन की कन्याओं से जो अतिशय सुन्दरी, विद्या विनय समन्वित थी, से शादी कर ली। १२ —इस प्रकार राम-लक्ष्मण सुख से कुछ समय वहाँ रहे। इधर इन्द्रजित मेघवाहन

अंतु रामलक्ष्मणर् सुखदिनलिल कॆलवु कालमिर्दरित्तलिंद्रजितु मेघवाहनर् केवलज्ञानमं पडॆदु नर्मदॆय तडियॊळ् मुक्ति प्राप्तरादरदरिंदा पॊळॆगॆ पीतरवॆयॆंब पॆसराय्तु मारीचनुं कल्पगतनादं मयनुमंबर चारणत्वमुमंसर्वौषधर्धित्वमुमनवधिज्ञानमुमं पॆत्तु मलरहितनागि नॆगळ्दु जीवितावधियॊळीशानकल्पक्कॆ पोदं मत्तित्त लंकॆयॊळ् रामलक्ष्मणर् चक्रवर्तिगळागि सुखदिनिर्पुदुमित्तल्—

नॆनॆदपराजितॆ रघुरा * मननतिशोक प्रबंधदिंदिर्पुदुमा ।
वनिनॆयर मनॆगॆ बंदं * घनपथदिं भोंकनिळिदु नारदमुनिपं ॥ १३ ॥

अंतु बर्पुदनपराजितामहादेवि कंडिदिरॆळ्देरलिक्कि बळियमिच्छाकारंगॆय्वुदुं—

निमगिनितु शोकमेका-*य्तॆनगनितुमनरियॆ पेळिमॆनॆ नारद दि- ।
व्यमुनीश्वरननितुमना*कमलाननॆ नॆरॆयॆ तॆरॆयॆ बिन्नविसुवुदुं ॥ १४ ॥

अदं नारदनवधारिसि रामलक्ष्मणर क्षेमवार्तॆयं निमगिदॆ तंदपॆनॆंदपराजितामहादेविय मनोविषादमं कळॆदु—

नीरद पथक्कॆ भोंकनॆ*नारदनॊगॆय्दॆय्दि लंकॆयं तनुरुचि नी- ॥
हारमनादपिसॆ बल *नारायण देवरिर्दं सभॆयं पॊक्कं ॥ १५ ॥

अंतु पुगुवुदुं रामस्वामि नारदनप्पुदनरिदु बेगमिदिरॆळ्दु

---

ने केवलज्ञान हासिल कर नर्मदा नदी के तट पर मुक्ति पा ली तो उस नदी का नाम पीतरवा पड़ा। मारीच ने सद्गति पायी। मय आकाश चारणत्व सर्वऔषधियों के गुण-ज्ञान एवं अवधिज्ञान पाकर पापरहित होकर जीवनकाल में ही ईशानकल्प को प्राप्त हुआ। राम-लक्ष्मण लंका में चक्रवर्ती बनकर राज्य करते रहे। इधर— अयोध्या में राम को याद करके अपराजिता दुखी बनी हुई थी कि आकाशमार्ग से तीव्रगति में आकर नारदमुनी उसके द्वार पर उतरा। १३ —नारद को देखकर अपराजितादेवी उठकर आगे बढ़ी और आसन देकर उपचार किया— नारद के यह पूछने पर कि उसके इस तरह के शोक का कारण क्या है, अपराजिता ने सविस्तार बताया। १४ —उसे सुनकर नारद ने यह कहकर कि आज ही राम-लक्ष्मण का कुशल समाचार ले आयेगा, अपराजिता के दुःख का निवारण किया। और— तुरन्त आकाशमार्ग से उड़कर लंका पहुँचकर जहाँ बल नारायण दोनों विराजमान थे उस सभा में (नारद ने) प्रवेश किया। १५ —ऐसा प्रविष्ट होने पर राम ने यह जानकर कि आगन्तुक नारद है, तुरन्त स्वागत करके रत्नासन में बिठाकर

मणिमयासनदोळिरिसि कनकपात्रदोळर्घ्यमं कोट्टु नीवीरण निरीक्षणं माडदेत्तलिर्दिरेल्लि बदिरेंबुदुं नारदनिंतेंदनामीदेशदिं पोगि धातकी-षंडद पूर्वविदेहद सुरेंद्ररमण पुरदोळ् तीर्थंकरर् जनियिसिदोडवर्गे जन्माभिषेकमं सकलसुखरर् सुरगिरि मस्तकदोळ् माळ्पुदं नोडुत्त-मिर्दीगळयोध्येयं पोक्कु अपराजिता महादेवियरुमं सुमित्रादेवियरुमं कंडेवदर् निम्मनी समयदोळ् काणदिर्दोडे निश्चयं शरीर त्यागंगेय्वरेंदरिपुवुदुं—

आ मातु मुट्टे किवियं ※ रामंगं लक्ष्मणंगमुद्वेगं नि- ।
स्सीमं समनिसे तम्मं ※ तामे कृपाशून्यरेंदु निंदिसि कूंडर् ॥ १६ ॥

अंतु निज जननियरनगल्दु बहुकालमतिक्रांतमादुदेंदु कट्टुकडेंदु—

नम्मल्प विभवमं सुख ※ मम्मनदोळ् बगेदु बगेदेविल्लुळिदुदनें।
मम्मळिसि विभीषणनं ※ तम्मल्लिगे बरिसि रामलक्ष्मणरेंदर् ॥ १७ ॥

अवधिय वर्षंगळ् ती ※ र्दुवयोध्येगे पोगदंदु जननियरूं बां- ।
धवरूं खेदिसुवर् पो- ※ गवेळ्पुदेंदरिपि तम्म गमनोद्यममं ॥ १८ ॥

पवणिल्लद लंकेय जिन ※ भवनंगळोळेल्लमर्चना द्रव्यक्कं ।
पवणिल्लेने रामं जिन ※ सवनोत्सवदोळ् सुरेंद्रनं गेलेवंदं ॥ १९ ॥

---

सुवर्ण पात्र से अर्घ्य प्रदान कर यह पूछने पर कि आप इस युद्ध का दर्शक न बनकर कहाँ रहे, कहाँ से आये तो नारद ने बताया—इस देश के बाहर धातकीषंड के, पूर्व विदेह के सुरेन्द्ररमणपुर में जन्म लेनेवाले तीर्थंकर का समस्त देवता मिलकर सुरगिरि के शिखर में जन्माभिषेक कर रहे थे; मैं उसे देखने गया था। अब अयोध्या में प्रवेश करके अपराजितादेवी और सुमित्रादेवी से मिलकर आ रहा हूँ। इस समय अगर आप लोगों को नहीं देखेंगी तो वे शरीर त्याग देंगी— यह बात राम-लक्ष्मण के कानों में पड़ते ही अपने आपको दोषी ठहराकर अपनी निर्ममता की निंदा की। १६ —इस तरह माताओं से अलग होकर बहुत समय होने के कारण व्याकुल होकर—- इस बात के लिए दुःखी होकर कि हमने अपने आप वैभव और अल्पसुख की ओर ही ध्यान दिया, अन्यों की किसी भी आकांक्षा की परवाह नहीं की, राम-लक्ष्मण ने विभीषण को अपने पास बुलाकर उससे यूँ कहा। १७ हमारे वनवास की अवधि समाप्त हुई। अब अगर अयोध्या न जावें तो माताएँ एवं सारे सम्बन्धी दुखी होंगे। इस तरह अपने अयोध्या चलने की सूचना दी। १८

मंगळ परिकरमं खच- ॐरांगनेयर् पिडिदु मुंदे बरे मंगल वृ- ।
त्तंगळनोदुत्तुं बरे ॐमंगळ पाठक निकायमेरडुं केलदोळ् ॥ २० ॥
नानानक रूति सकल दि-ॐशाननमं तीवे राज चिह्न व्रजमु- ।
त्तानितमेसेदिरे दिव्य वि-ॐमानमनुत्सवदिनेरिदं पुष्पकमं ॥ २१ ॥
बलदोळ् लक्ष्मीधरनेड ॐगेलदोळ् जानकि बेडंगुवेत्तेसेदिरे सु- ।
त्तलुमिरे खचर विमाना-ॐवलि रामं मणिविमानदोळ् कण्गेसेदं॥ २२ ॥

अंतु रामलक्ष्मणर् साधित दक्षिणदिग्विजयर् प्रयाणभेरियं पोयिसि—

जंगम सरोवरंगळ ॐभंगियनदटलेव खचर परिवृढर विमा- ।
नंगळ्गेडे नेरेयदु गग-ॐ नांगणमेंबंतयोध्येगेभिमुखरादर् ॥ २३ ॥

अंतु तळर्दु जलधियं दांटि दंडकारण्यमनेय्दे वंदु—

चारणमुनि युगलक्का-ॐहारमनित्तेडेयनल्लि तम्मिर्द लता ।
गारद पुळिलडेयं सी-ॐता रमणिगे सुट्टि तोरिदं रघुवीरं ॥ २४ ॥
जलजाक्षिगे सीतेगे रघु ॐकुल तिलकं सुट्टि तोरिदं मुन्नं के- ।
वल लब्धि देशभूषण ॐकुलभूषण साधुगळ्गे समनिसिदेडेयं ॥ २५ ॥

---

लंका के असंख्य जिन भवनों में अर्चनाओं में राम ने ऐसी असंख्य वस्तुओं से जिन पूजा की कि इस कार्य से इंद्र को मात कर दिया। १९ खेचर स्त्रियाँ मंगलद्रव्य लिये आगे-आगे चल रही थीं, मंगलध्वनियाँ गुंजरित हो रही थीं और मंगलस्तुति पाठक-समूह दोनों बगल से चला जा रहा था। २० विभिन्न भेरी रव दिगंतों मे व्याप्त हुए। श्वेतछत्र आदि राजचिह्न आकाश तक लहरा रहे थे कि बड़ी धूमधाम से श्रीराम पुष्पक विमान में सवार हुआ। २१ दाहिनी ओर लक्ष्मण और बायीं ओर सीता सुशोभित हो रहे थे और चारों ओर से खेचर विमानों ने घेरा था कि राम रत्नजटित विमान में शोभायमान हुआ। २२ —इस तरह राम-लक्ष्मण दक्षिणपथ की विजय प्राप्त करके, प्रयाणभेरी बजवाकर— विमानाभिमुख हो बहनेवाले सरोवरों को देखते हुए, असंख्य खेचर विमानों के लिए आकाश-मंडल में स्थानाभाव होते देखकर, आश्चर्यचकित होते हुए अयोध्या की ओर बढ़े। २३ —इस तरह बढ़कर, सागर पारकर, दंड-कारण्य के पास पहुँचकर— राम ने अपनी उँगलियों के इशारे सीता को वे स्थान दिखाये जहाँ उन लोगों ने चारणमुनी को आहार प्रदान किया था और लतामंडप के बगल की रेती का टीला भी दिखाया जहाँ (मंडप में) वे रह रहे थे। २४ इनके अतिरिक्त संकेत से वह पवित्र स्थल भी दिखाया

अंतु पवन पथदोळ् मनःपवनवेगदिं बर्प समयदोळ्—

कनक प्राकारदोळं*वन मालेयोळं मनक्के वंदी पुरमा- ।
वनदेंदु रघूद्वहनं *जनकजे वेसगोंडळंदयोध्यापुरमं ॥ २६ ॥

अंतु बेसगोंळ्वुदुं श्रीरामदेवरिदेंम्मयोध्यापुरमेंदुपेळुत्तुं पुर वहिःपुरमनेय्दे बर्प समयदोळ् नानाविध विमानंगळनेरि बर्प विद्याधर परिवृढरिं परिव्रतनागि पुष्पक विमानमनेरिबर्प रामस्वामिय बरवनरिदु महाविभूतियिं प्रमोदमुदित हृदयरागि—

इभमं नीलाचल स-*न्निभमं शत्रुघ्नसहितमेरि विभूषा- ।
प्रभे नभमनडरे भरतं*शुभ रतनिदिगोंळलयोध्येयं पौरमट्टं ॥ २७ ॥

अंतु महाविभूतियिं बर्प भरत शत्रुघ्नरं रामस्वामिगें गेंटरोळे कंडु पुष्पक विमानदिनवनिगवतरिसे भरत शत्रुघ्नरूमानेयिंदिरिदु बंदु पाद प्रांतदोळ् सर्वांग प्रणतरागिर्पुदुं रामस्वामि तेगेंदप्पिकोंडुपरसिदिबळक्कें सीतादेविगं लक्ष्मीधरंगमनुक्रमदिं पोडेवट्टु परकेयं कैकोंडोरोर्वर कुशलवार्तेयं बेसगोंडु संतुष्ट चित्तरादनंतरं सुग्रीव प्रभामंडल मरुत्सुतादिगळिं परिव्रतरागि—

जहाँ रघुकुल तिलक से देशभूषण, कुलभूषण मुनिवरों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। २५ —विमान वायुमार्ग में मनोवेग से आ रहा था कि— सामने दिखाई देनेवाले अयोध्या के बारे में सीता ने राम से पूछा—सुवर्ण प्राकारों से, उपवनों की शोभा से, मन को आनन्द प्रदान करनेवाला यह नगर कौन-सा है? २६ —इस तरह प्रश्न करनेवाली सीता से राम ने कहा—यह हमारा अयोध्या है। इतने में नगर के बाह्य प्रदेश में पहुँचा हुआ उनका विमान और उसका अनुसरण करनेवाले खेचर विमानों को देखकर श्रीराम के आगमन का अनुमान करके आनन्दातिरेक हृदय से— राम के कुशलता-चिंतन में लीन भरत नीलाचल सदृश हाथी पर शत्रुघ्न के साथ सवार होकर धारण किये हुए आभूषणों की काँति आकाश तक फैल रही थी कि राम का स्वागत करने अयोध्या से रवाना हुआ। २७ —इस तरह धूमधाम से आते हुए भरत-शत्रुघ्न को अनतिदूर से देखकर राम पुष्पक विमान से जमीन पर उतरा। भरत-शत्रुघ्न भी हाथी से उतरकर आगे बढ़कर श्रीराम के चरणकमलों में साष्टांग प्रणाम किया तो राम ने उन्हें उठाकर आलिंगन किया और आशीर्वाद दिया। उसके बाद भरत-शत्रुघ्न ने सीता एवं लक्ष्मण को प्रणाम कर आशीष पाया और परस्पर कुशल समाचार पूछकर संतुष्ट हुए। तत्पश्चात् सुग्रीव, प्रभामंडल हनुमान से आवृत्त होकर— रत्नघंटिकाओं के किंकिणीस्वर सुनाई दे

मणिघंटा मणिकिंकिणी मणिवितान भ्राजियं नेत्र भू- ।
षणमं लीलेयिनेरि पुष्पकमनुद्यत्केतनानीक तो- ।।
रण मांगल्य समृद्धमं भरतशत्रुघ्नर्कळुं रामल- ।
क्ष्मणरुं पोक्करयोध्येयं पुदिविनं गंभीर बंमारवं ।। २८ ।।

अंतु पुरमं पोक्कपराजितामहादेवियुमं सुमित्रामहादेवियुमं कैकामहादेवियुमं सुप्रभामहादेवियुमं रामलक्ष्मणर् कंडेरगि पोडे-वट्टवरवराशीर्वाद पारिजात कर्णपूरदिनलंकरिसिदिंबळिक्कें सीतें पोडेवडे परसि तळकैसिकोंडोरोर्वर क्षेमकुशलवार्तेयं नुडिदिष्ट-संयोगदिं मनोरागमनप्पुकेय्दिर्पिनं—

बल नारायणरूँ भूक्ष्तलमं भरत त्रिखंडमं निज बाहा- ।
बलदिं रक्षिसि निजनि-क्ष्मल यशदिं भुवन भवनमं धवलिसिदर्।।२९।।

अंतवर् सुखदिनोलगंगोट्टिर्दोंदु शुभदिन मुहूर्तदोळ् रामस्वामि राक्षसद्वीप सहितमं लंकेयं विभीषणंगे देवानीकपुरमं रत्नजटिगे किष्किंध नगरमं सुग्रीवंगे श्रीपर्वतनगरमं हनुमंगे पाताळलंकेयं विराधितंगे रथनूपुरचक्रवालपुरमं प्रभामंडलंगे राज्याभिषेकंगेय्दु कोट्टु मत्तं पेररूपकारंगेय्द वर्गं प्रार्थिसे बंद विद्याधरर्गं नाडं

---

रहा था कि पुनः पुष्पक विमान पर सवार होकर, तोरणों से, ध्वज-पताकाओं से, मंगलद्रव्यों से सुसज्जित अयोध्यापुर में, भरत-शत्रुघ्न के साथ, राम-लक्ष्मण-सीता प्रविष्ट हुए। तब गंधर्वों का जयघोष निनाद सुनाई पड़ा। २८ —इस तरह नगर में प्रवेश करके अपराजिता, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रभा से राम-लक्ष्मण मिले, प्रणाम किया और उनके आशीष-रूपी पारिजात पुष्पों से अपने कानों को सजा लेने के पश्चात् सीता ने उन सबको प्रणाम किया। बहू को आशीर्वाद देकर, आलिंगन करके कुशल समाचार पूछ-जानकर संतुष्ट हुई— बालच्युत नारायण भूतल और भरत त्रिखड की रक्षा अपने भुजबल से करके, अपनी कीर्ति से समस्त लोकों को जगमगा दिया। २९ —यूँ ही राज्यभार कर रहे थे कि एक दिन राम ने विधिवत् राक्षसद्वीप सहित लंका विभीषण को, देवनीकपुर रत्नज़टी को, किष्किंधा नगर सुग्रीव को, श्रीपर्वत नगर हनुमान को, पाताललंका विराधित को और रतनूपुर चक्रवालपुर प्रभामंडल को देकर अपनी सहायता के लिए आये हुए खेचरों का जमीन-जायदादों से पुरस्कृत कर लक्ष्मण को त्रिखंडमंडल का अधिराज बनाकर, भरत से पूर्ववत् अयोध्या पर शासन करने को कहा तो— भरत ने राम को दोनों हाथ

बीडुमं कोट्टु लक्ष्मणनं त्रिखंड मंडलक्कधिराजनं माडि भरतन-योध्येयं मुन्निनंददिंदाळ्वुदेंदु बेससे—

भरतं निम्माज्ञेयं मीरदे वसुमतियं कादुकोंडिर्दे निन्ना- ।
नरसं कैकोळ्वनल्लें विषयसुखमनानोल्लेंनां मोक्ष्य लक्ष्मी ।।
परिरंभोत्कंठनें संसृतियं देसेगे बिळ्कुत्तेनेंदंदु वैरा- ।
ग्य रतं रामंगे कैयं मुगिदेरगिदनन्नं महासत्वनावं ।। ३० ।।

अंतु तपक्के तरिसंदु नुडियें श्रीरामदेवर् मुन्नेमगे भूचररें बेसकेय्दरीगळ् खेचररुं बेसकेय्वरिं केलवु कालं राज्यसुखमननुभविसि नामेल्लमोडनें तपंबडुवमेंनें निम्मडि नीमेनगें कारुण्यंगेय्वोडेन्नं पोगलीवुदेनगिं तपमे कार्यं नीमिदं मार्कोळ्ळदिरिमेंदु मरुमातिगे-डेयिल्लदंतति प्रतिज्ञेगेय्दु बिन्नविसि राजभवनमं पोरमट्टु पोगे संभ्रमदिं लक्ष्मीधरनुं कैकामहादेवियुं वैदेहियुं विशल्यासुंदरियुं पलरुमंतःपुर पुरंध्रियरुं बळियनें पोगि तपविघ्न हेतुगळप्प मातुगळं नुडियुत्तिर्पिन मत्तलय्नेंद क्रोधिनियेंब मददोळतिवर्तियागि—

त्रिजगद्भूषण वारणं मुरियें पाय्दालानमं त्वग्ज लो- ।
हजबंधंगळनेल्लमं परिविनं पोय्देत्ति मोत्तक्के का- ।।

---

जोड़कर कहा—आपकी आज्ञा का उल्लंघन न करके इस राज्य की रक्षा करता रहा। अब इस पर शासन नहीं करूँगा। मुझे विषयसुख (भोगविलास) की उलझन नहीं चाहिए; मैं मोक्ष लक्ष्मी से मिलने के लिए उत्कंठित हूँ; संसारसुख से डरता हूँ। ऐसा त्याग दिखानेवाला और कौन है ? ३० —इस तरह उसने तपस्या करने का निर्णय सुनाया तो राम ने कहा-- हम अब तक मानवों पर ही शासन कर रहे थे, अब खेचर भी हमारे शासन के अन्तर्गत आ गये हैं। अतः और कुछ समय राज्यसुख का उपभोग करके हम सब एक साथ तपस्या करेंगे। उत्तर में भरत बोला--अगर आपकी मुझ पर दया हो तो मुझे अभी जाने दीजिये। अब तप ही मेरा मार्ग (कर्तव्य) है; उससे विचलित करने का प्रयत्न न कराया जाय। इतना कहकर प्रत्युत्तर को अवसर न देकर, प्रतिज्ञा-पूर्वक हो निवेदन करके राजभवन से प्रस्थान किया। लक्ष्मीधर, कैकेयी, सीता, विद्यासुन्दरी और अन्तःपुर की अनेक स्त्रियों ने भरत का पीछा करके तपोविघ्न हेतु वचनों से उसे रोकने का प्रयत्न कर रहे थे कि पंचम-क्रोधिनी कहलानेवाले मदगज त्रिजगद्भूषण ने— लोहे की जंजीर को तोड़कर, बँधे हुए खंभों को उखाड़कर, सामने आनेवालों को मार डालता हुआ,

य्दु जवं कौल्ववौलेय्दे बंधु जवदिं गंधांधना भीम सा- ।
मजमुं विस्मयमप्पिनं भरतनं कंडाय्तु जाति स्मरं ॥ ३१ ॥

अंतु जातिस्मरनागि मदोद्रेकमं बिट्टु कैयनौळलेविट्टु पौडेवट्टिर्पुदुं भरतना गजमं वैदेहियुं विशल्यासौंदरियुं बेरसेरि महाविभवदिं राजभवनमं पौक्कु आनेयिंदिळिदेल्लरुमोडनारोगिसि सुखदिन्नोड्डोलगंगोट्टिरे—

निरुजं त्रिजगद्भूषण*करिकलळंगोळ्ळदेंदु साह्णद मह- ।
त्तररिये रामलक्ष्मी*धरर्कळा नुडिगे नाडे विस्मितरादर् ॥ ३२ ॥

आ समयदोळ् ऋषि निवेदकनतित्वरित गतियिं बंदु सर्वांग प्रणतनागि देव महेंद्रोद्यानवनक्के देशभूषणं भट्टारकर् बिजयंगेय्द-रेंदु बिन्नविसे सिंहासनदिनेळ्दा देसेगे कैगळं मुगिदु—

अवनीवल्लभरार् ध-* र्म वत्सलर् तन्न तेरदिनेंबन्नं रा- ।
घव देवनळ्किरिं ऋषि * निवेदकंगमर धेनुवीवंतित्तं ॥ ३३ ॥

अंतु मेच्चित्तु रामलक्ष्मणरुं भरतशत्रुघ्नरुं त्रिजगद्भूषण गजारूढरागि अपराजितामहादेवि मोदलागे नाल्वर् जननियरुं जानकि मोदलागे समस्तांतःपुरमुं सुग्रीवं मोदलागे सकल विद्याधर

---

यम सदृश दृष्टिगोचर होता हुआ आगे बढ़ रहा था कि भरत दिखाई पड़ा। उसे देखते ही हाथी को पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। ३१ जन्म-स्मरण हो आने के कारण मद से जागृत विकार को त्यागकर, सूँड फैलाकर दंडवत् प्रणाम किया तो भरत सीता और विशल्यासौंदरी के साथ हाथी पर सवार होकर धूमधाम से राजभवन में प्रवेश करके, हाथी से उतरकर, सबके साथ भोजन करके दरबार में रहा था कि— ज्योतिषियों के यह बताने पर कि त्रिजगद्भूषण हाथी अब भी आहार नहीं ले रहा है, राम-लक्ष्मण मन-ही-मन विस्मित हुए। ३२ —इतने में तीव्रगति से आकर निवेदकों ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—महेंद्रोद्यान में देशभूषण भट्टारक आये हुए हैं। इसे सुनकर सिंहासन से उठकर उस दिशा (महेंद्रोद्यान की दिशा) को हाथ जोड़कर—ऋषि के आगमन की सूचना देनेवाले सेवक को श्रीराम ने इतने उपहार दिये कि राम का धर्मवात्सल्य की तुलना और किस राजा से की जा सकती है? ३३ —इस तरह उपहार देकर राम-लक्ष्मण भरत-शत्रुघ्न त्रिजगद्भूषण हाथी पर सवार होकर अपराजितादेवी आदि चार माताओं के साथ सीता आदि अन्तःपुर के स्त्रीवर्ग के साथ सुग्रीव आदि विद्याधर भक्तिपूर्वक आकर, वाहनों से उतरकर अपने-अपने

वल्लभरुं वंदनामक्तियिं-दोडने बरे बंदु वाहनदिंळिदु गेंटरोळे राज-चिह्नंगळनिरिसि भट्टारकरं मुरुसूळ् बलगोंडु दिव्यार्चतंगळिंदर्चिसि सर्वांग प्रणतरागि निज नियत स्थानदोळ् कुळ्ळिर्दु धर्म श्रवणानंतरं नारायणनेंदनी त्रिजगद्भूषण द्विरदं चतुर्दिनमेकारणं कवळंगोळ्ळ-देंबुदं बेससिमेने—

अपवर्ग श्रीय कटा-※क्षपातवेंबंतु दंतरुचि निमिर्विनमी- ।
द्विपमन्यजन्ममं तिळि※दुपशममं तळेदु कवळमं कोळ्ळदेनल् ।। ३४ ।।

मुगिद कर किसलयंगळ्※ सोगयिसे मत्तं मुनींद्र वृंदारकरं ।
जगदधिपं गजद भवा-※ळिगळं विनमित शिरोधरं बेसगोंडं ।। ३५ ।।

अंतु बेसगोळ्वुदुं देशभूषण केवळिगळिंतेंदु बेससिदरी विनीतानगरदोळ सुप्रभंगमातनरसि प्रह्लादनिगं सूर्योदयनुं चंद्रोदय-नुमेंव तनूजरागि वृषभ स्वामिगळोडने पोगि तपस्यरागि सैरिस-लारदे परीषह भग्न मनरागि मरीचियोडने कूडि—

तापसरागि कुधर्म ※ व्यापारदोळेसगि घोर संसार महा- ।
कूपदोळगळ्दु पिरिद-※ प्पापत्तं पेत्तनेक भवमं बंदर् ।। ३६ ।।

अंतु बारद भवमं बंदेंतानुं कुरुजांगण विषयदगजपुरमनाळ्व

---

राजचिह्नों को उतारकर तीन बार भट्टारक की प्रदक्षिणा करके, दिव्यार्चनों से पूजकर, साष्टांग प्रणाम करके अपने-अपने स्थान पर बैठकर धर्मश्रवण करके श्रीराम ने यूं कहा—यह त्रिजगद्भूषण हाथी चार दिनों से आहार स्वीकार नहीं कर रहा है, इसका कारण क्या है ?— उत्तर में भट्टारक ने बताया—मोक्षश्री के कृपाकटाक्ष-सी दन्त-कान्ति फैलाकर यह हाथी अपने पूर्व जन्मवृत्तांत का स्मरण करके आहार स्वीकार करने से अस्वीकार कर रहा है। ३४ अंकुरित पल्लव सदृश सुशोभित अपने हाथों को जोड़कर अत्यन्त नम्र होकर श्रीराम ने मुनिवर से निवेदन किया कि हाथी के पूर्वजन्म के वृत्तांत सविस्तार बताने की कृपा करें। ३५ —देशभूषण भट्टारक यूं बोले : इस विनीत नगर के सुप्रभंग और उसकी पत्नी प्रह्लादिनी को सूर्योदय, चंद्रोदय नामक दो पुत्र हुए। वृषभस्वामीजी के साथ जाकर तप करके शीतोष्ण दुःख को सहकर, भग्न हृदयी बनकर मरीची के साथ भोग करके— तपस्वी बनकर हीन कृत्यों में लगे रहने के कारण संसारमोह के घोर कूप में गिरकर अनेक विपत्तियों को सहते हुए अनेकानेक जन्म लिये। ३६ —यूँ विभिन्न प्रकार के कष्टों को सहने के बाद चंद्रोदय ने कुरुजांगण देश के गज पर राजा हरिपति और उसकी पत्नी

हरिपतिगमातनरसि चंद्रादनेगं मुंपेळ्द चंद्रोदयं कुलंकरनेंब मगनागि राज्यदोळ् निदनापुरदोळ् सूर्योदयनुं विश्वावसुवेंब पार्वंगे मूढश्रुतियेंब पुत्रनागि कुलंकरनेंब नृपतिगे पुरोहितनागे कुलंकरनुं हिंसाहेतुगळप्प जनंगळनिरिसि तापस रूपधारिगळें गुरुगळेंब नंबुगेयं माडि नडेयिसुत्तिर्पिनं कुलंकरनरसि दुश्शीले श्रीमतियेंब पाण्बे मेच्चिदरोडने मेच्चिदंने विषयसुखमननुभविसलेंदु—

जातिय नीतिय सैपिन*मातडिगिडे पतियुमं पुरोहितनुमना ।
पातकि विषदिं कोंदळ्*कौतुकमे विवेक विकलरेनं माडर् ॥ ३७ ॥

अंतु सत्तु कुलंकरनुं मूढश्रुतियुमनुक्रमदिं मोलनुं मुंगुरियुमागि पुट्टि सत्तु बळियं मूढश्रुति शुंडालनागि कुलंकरं दर्दुरनागि पुट्टि तन्नना शुंडालं मेट्टे सत्तेसडियागि पुट्टे आ शुंडालं सत्तुकागेयागि सत्तु बिडालनादुदा बिडालं मुन्निनकुक्कुटनं तिदुदी तेरदिं कुलंकरं मूरु सूळ् पुट्टि तिने सत्तु कुलंकरं मीनादं मूढश्रुति सत्तु मोसळेयादं—

---

चंद्रानना का बेटा बनकर कुलंकर नाम से जन्म लिया। उसी नगर में सूर्योदय विश्वावसु नामक ब्राह्मण का पुत्र बनकर मूढश्रुति नाम से कुलंकर नामक राजा का पुरोहित बना हुआ था। उस कुलंकर ने दुष्टों को ही अपना साथी बनाकर, मुनीवेष, धारण करनेवालों को ही गुरु मानकर दूसरों को भी वैसा ही करने का उपदेश दे रहा था। उसकी पत्नी श्रीमती ने कुलटा बनकर, स्वेच्छाचारिणी बनकर स्वेच्छा विहार से सुखानुभव करने के उद्देश्य से,— जाति, नीति और पाप-पुण्यों की परवाह न करके, पति और पुरोहित को विष देकर मार डाला। अविवेकीजन क्या नहीं कर सकते ? ३७ —कुलंकर और मूढश्रुति मरकर क्रमशः खरगोश और नेवला के रूप में जन्मे। पुनः मरकर मूढश्रुति हाथी के रूप में और कुलंकर मेंडक के रूप में जन्मे। मेंडक हाथी के पैर के नीचे आने के कारण दबकर मर गया और केकड़ा बन गया। हाथी मरकर कौआ बना। कौअे ने केकड़े को खाया तो दूसरे जन्म में वह केकड़ा मुर्गा बना। कौआ मरकर बिल्ली बना। बिल्ली ने मुर्गे को खा लिया। इस तरह कुलंकर तीन बार कौआ बनकर पैदा हुआ तो मूढश्रुति तीन बार बिल्ली के रूप में जन्म लेकर पहले के मुर्गे को खा डाला तो फिर कुलंकर मछली बना। मूढश्रुति मरकर (बिल्ली से) मगर बन गया— मनुष्य की कर्म-प्रेरणा को कौन जान सकता है ? शत्रुता मित्र बनकर, मित्र कट्टर शत्रुता के रूप जन्म में लेकर विभिन्न प्रकार के दुःखों का पात्र

आरेत्तरिवर् कर्म * प्रेरणेयं पगेये कॊलेयनक्कुं कॊलेयुं ।
क्रूर रिपुवेनिसि वर्कुं * वारद भवमं विचित्रमी संसारं ॥ ३८ ॥

अंतु मीसलेयाद मूढ श्रुतियुमं मीनाद कुलंकरनुमं मींगुलि कॊलॆ सत्तु राजगृहदॊळ जलूकेयॆंब पर्वितिगं वह्वाशनॆंब पार्वंगं मूढश्रुति विनोदनॆंब मगनादना मीनागि सत्त कुलंकरनुमवर्गे रमणनॆंब नंदननागि बळॆदु देशांतरक्के पोगि वेदविदनागि मगुळ्दु बरुत्तु निजग्राममप्प राजगृहद पॊरवॊळलनेय्दे वर्प समयदॊळ् नेसर् पडुवुदुमंधकारमति प्रबलमागॆ बरलरियदे यक्षगृहदॊळ् वसियिसिर्पुदुं—

आ रमणनग्रजन म- * नोरमॆ समिताभिधानॆ पाण्बनवरवं- ।
पारुत्तडंगि यक्षा- * गारमनवळंधकारमं पॊक्किर्दळ् ॥ ३९ ॥

अंतिर्पुदुमाकॆयल्लिगॆ बरुत्तिर्दशोकदत्तनॆंब पाण्बनं तळारर् पिडिदु कॊल्वुदुं विनोदं तन्न पार्वतिय दुश्चरित्रमनरिवनप्पुदरिनाकॆय बळियनॆ बंदुळिदिर्दु यक्षागारदॊळिर्दाकॆयॊळ् नुडियुत्तिर्द तन्न तम्मनप्प रमणनं पाण्बनॆंदे बगॆदुकॊंदाकॆयं मनॆगॆ तंदाळुत्तिर्दु तानुमाकॆय कैयॊळ् सत्तु संसारदॊळ् तॊळल्दु महागहनदॊळिर्वरुं महिषंगळागि कादि सत्तुं मत्तं करडिगळागि पुट्टि वेगॆगिर्चल्वे सत्तु—

---

बनकर इस विचित्र संसार में छटपटाता रहता है । ३८ —इस तरह मगर बने मूढश्रुति को और मछली बने कुलंकर को मछुओं ने मार डाला तो मूढश्रुति राजभवन में वह्वाश नामक ब्राह्मण और उनकी पत्नी जलूका के बेटे के रूप में, विनोद नाम से जन्मा । और कुलंकर रमण नाम से जन्म लेकर देशांतर जाकर वेदाध्ययन करके लौटते समय अंधेरा होने के कारण घर का रास्ता भूलकर नगर के बाहर प्रदेश के यक्षगृह में ठहर गया— उसी यक्षगृह में उसके बड़े भाई विनोद की पत्नी सुमिता छिपकर अंधेरे में अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी । ३९ —ऐसे में वहाँ आते हुए उसके प्रियतम व्यभिचारी अशोकदत्त को नगर के गुप्तचरों ने पकड़कर मार डाला । अपनी पत्नी के दुश्चरित्र को जानकर विनोद ने पत्नी के पीछे-पीछे आकर अँधेरे में रहनेवाले अपने अनुज रमण को ही अपनी पत्नी का प्रेमी समझकर मार डाला और पत्नी के साथ घर लौटकर राज्य करता रहा । तत्पश्चात् पत्नी के हाथों ही मृत्यु पाकर पुनः महाकानन में दोनों भैंस बनकर जन्म लेकर भटक-भटककर पुनः रीछ के रूप में

गिरिदरिगळ वनदोळ् बे-*डर बसिरोळ् बंदु पापमं साल्वनितं ।
नेरेपि कडेगालदोळ् वन*चरर्कळंदोडने सत्तु पुल्लेगराळादर् ॥ ४० ॥

मत्सरमं जिन मतदोळ् *वत्सलतेयनुंटुमाडि कुमतदोळमवर् ।
कुत्सित योनिगळोळ् बी-*भत्सु शरीरंगळागि तिरितरुतिर्दर् ॥ ४१ ॥

अंतु पुल्लेगळागि पुट्टुवुदुमवं बेडनोर्व पिडिदु नडपुत्तुमिर्द-नन्नेगमत्त स्वयंभूतिरथनेंब महीनाथं विमल जिननाथरं वंदिसि बरुत्तमा पुल्लेगळं बेडनिं बेडिकोंडु निज राजभवनदोळगण जिना-लयदोळिरिसि नडपुत्तुमिर्पुदमल्लि रमणनप्प पुल्ले ऋषियर संभोगदिंदुपशम चित्तनागि सत्तु देवलोकक्के पोय्तुमत्तं विनोदनप्प पुल्ले सत्तु तिर्यग्गतियोळ् तिर्रने तिरिर्देनानुं कर्मोपशमदिमं कांपिल्य नगरदोळ् धनदत्तनेंब परदनागि पुट्टि मूवत्तेरडु कोटि धनक्काधिना-थनागिर्दना धनदत्तंगमातन कुलस्त्रीवारुणिगं रमणनप्प देवं दिवदिं बंदु भूषणनेंब मगनागे नैमित्तिकरीतनवश्यं जिनमुनिगळं कंडागळे तपंबडुवनेंने धनदत्तना मातं केळ्दु—

तनुज स्नेहदिनवनं * मुनिपतिगळ् काणदंतु माडद मेगं- ।
गनेवेरसु सुखदिनिरिसिद-*नेंने चित्रमे सहजमल्ते पुत्रस्नेहं ॥ ४२ ॥

---

जन्म लेकर दावाग्नि में गिरकर मर गये-- तत्पश्चात् वहाँ के पर्वत प्रान्त के वनवासी भीलों के गर्भ से जन्म लेकर असीम पाप कमाकर, मरकर हिरण बनकर पैदा हुए। ४० जैनमत के प्रति मत्सर दिखाकर, अन्य मतों के प्रति स्नेह दिखाकर, बुरे जन्मों में असह्य शरीर धारणकर अपने पापों के साथ भटक रहे थे। ४१ --यूँ हिरण रूप में जन्मे हुए उन दोनों को एक भील पकड़कर उन्हें चलाता हुआ जा रहा था कि इधर स्वयंभूतिरथ नामक राजा जिनेश्वर की पूजा से लौटते समय उन हिरणों को भील से माँगकर ले लिया और अपने राजमहल के जिनमंदिर मे रखकर पाला। हिरण के रूप में रहनेवाले रमण ने ऋषियों के सहवास (संगत) से अपने जन्मवृत्तांत को जानकर मरण पाकर देवलोक पहुँचा। इधर विनोद, जो हिरण था, भी मरा और अनेक जन्म बिताकर पापों से मुक्त होकर कांपिल्य नगर में धनदत्त नामक व्यापारी के घर में जन्म लेकर बत्तीस करोड़ रुपयों का मालिक बना। उसकी पत्नी वारुणी के गर्भ से रमण ने भूषण नामक बेटे के रूप मे जन्म लिया। उस बालक को देखकर ज्योतिषियों ने बताया कि जिनमुनियों के दर्शन होते ही यह तप के लिए निकल पड़ेगा। इस बात को सुनकर धनदत्त ने— पुत्र-स्नेह के कारण भूषण को ऐसा छिपाकर रखा ताकि मुनीगण न देख सकें। और

अंतु सुखदिनिर्दोंडु दिवसं भूषणं श्रीधर भट्टारकरं वंदिसलेंदु पोप देवर्कळनाकाशदोळ् कंडु जातिस्मरनागि भट्टारकरं वंदिसलेंदु माडदिंदिळिदु बरुत्तुं सर्पदष्टनागि सत्तु महेंद्रकल्पक्कें पोगि मगुळ्दु बंदु पुष्करद्वीपद चंद्रादित्य पुरमनाळ्व प्रकाशयशंगमुदितेगं जगद्-द्युतिवेसर सुतनागि राज्यंगेय्युत्तुं—

जिनगदित मार्गदिं जिन*मुनिगन्नमनित्तु देवकुरुभूतल सं- ।
जनितं तत्सुखदोळ् त-*ण्णनें तणिवीशान कल्पदोळ् जनियिसिदं ।।४३।।

किडद परमात्म सुखमं*कुडुव महामहिमेवडेद साधु पदंगळ् ।
किडुव सुरलोक सुखमं*कुडुवुददे गहनमेंनिसि कल्पजनादं ।। ४४ ।।

अंतीशानकल्पदोळनल्प सुखमननुभविसि बंदु जंबूद्वीपद पर विदेहद नंद्यावर्त पुरमनाळ्व चलनेंब चक्रवर्तिगमातन महादेवि बालहरिणिगमभिराममेंब मगनागि—

अरिदातं संसारद *तेरनं तोरेयल्कें बगेये बल्लाळ्तनदिं ।
तुरुगेमेगण्णोळ्वेंडिर्*सेरेविडिदर सुत्तिमुत्ति मूसासिर्वर् ।। ४५ ।।

अंतु तन्नं तम्मय्यनप्प चक्रवर्तिय बेसदिं वळसिकोंडिर्द कन्नेयरं पुण्गणेयागे बगेदु—

---

अपनी पत्नी के साथ सुख से रह रहा था। बच्चों पर (माता-पिता) का मोह विचित्र होता है न ! ४२ —इस तरह सुख से रह रहे थे कि एक दिन भूषण ने श्रीधर भट्टारक की पूजा निमित्त आकाशमार्ग से जानेवाले देवताओं को देखकर अपने जन्म का स्मरण हो आने के कारण भट्टारक को प्रणाम करने के लिए अटरी से उतर रहा था कि साँप के काटने से मरकर महेंद्र कल्प में जाकर पुनः लौटकर पुष्करद्वीप के चंद्रादित्यपुर के राजा प्रकाशयश एवं उसकी पत्नी उदिता को पुत्र जगद्द्युति (जगद्युति) के नाम से जन्म लेकर, बड़ा होकर राज्य करता हुआ-- जिन धर्म में कहे मुताबिक जिनमुनी को अन्नदान करके, उस कार्य से प्राप्त पुण्य से सुखानुभवकर, तृप्त होकर, ईशानकल्प में पैदा हुआ। ४३ उसने सोचा कि अक्षय परमात्म-सुख प्रदान करनेवाले महत्मान्वित साधुओं की सेवा करने की अपेक्षा क्षय होनेवाले सुरलोक का सुख ही श्रेष्ठ है। ४४ --ईशान-कल्प में अल्पसुख पाकर जम्बुद्वीप के उत्तर में स्थित विदेह के नंद्यावर्तपुर के राजा अचल चक्रवर्ती और उसकी रानी बालहरिणी का पुत्र अभिराम नाम से जन्म लिया-- उसने संसार को निस्सार समझकर उससे विरक्त होना चाहा तो तीन हजार सुन्दर युवतियों ने उसे घेरकर मोहित करना

जिनधर्मद पेर्मेये निले*मनदोळ् बालेयर्गे धर्ममं पेळुत्तुं ।
मनेयोळ् मुनियवोलिर्द*तनगळवडे ॠषि गुणंगळेनितोळवनितुं।। ४६ ।।

अंतु सम्यक्त्व शुद्धनागि संन्यसनंगेय्दु पंच नमस्कार परिणतं शरीर भारमनिळिपि ब्रह्मोत्तर कल्पदोळ देवनागि पुट्टुवुदुं—

इत्तल् मुं पेळ्दा धन-*दत्तं सत्तादजवंजवी जलधियोळा- ।
ळुत्तेळुत्तिर्द दु- *वृर्त्तंगे दुरंत दुःखमप्पुदु पिरिदे ।। ४७ ।।

अंतातं संसारदोळ् नोळल्दु बंदु पौदन पुरदोळग्निमुखनेंब परदंगमातन परदिति शकुनिगं मृदुमतिवेसर सुतनागि कितवनागे पोरमडिसि कळियॆ पोगि ॠषियरं सार्दु साक्षरिकनागि मगुळ्दु बंदु मातापितृगळोळ् कूडि संतोषदिनिर्दु वसंतेयुं रमणियुमेंबिर्वर् गणिके- यर्गासक्तनागि धनमं निधुवनक्के सलिसि विकलमतियाद मृदुमति स्तेयमे तनगे जीवनोपायमागे नेगळुत्तुमोंदु दिवसं शशांकपुरमनाळ्व नंदिवर्धननरमनेयं पोक्कु कळलेंदुळिदिर्द समयदोळ् नंदिवर्धनं शशांकमुख भट्टारकर् बेससे धर्ममं केळ्दु निर्वेगपरनागि मनेगे

प्रारम्भ किया । ४५ —अपने को मोहित करने के लिए अपने पिता की आज्ञा पाकर आयी हुई उन युवतियों को तृणवत् समझकर— जैनधर्म की महिमा ही मन में दृढ़ होने पर, युवतियों को धर्मबोध करता हुआ घर में ही मुनी के समान सदाचार सम्पन्न जीवन बिताने लगा । ४६ —इस तरह जिनधर्म शुद्धि होकर, संन्यास स्वीकार कर पंच नमस्कारों को विधिपूर्वक निभाते हुए शरीर भार त्यागकर, ब्रह्मोत्तर कल्प में देवता के रूप में जन्म लिया— इधर धनदत्त, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, संसार सागर में डूबता-तैरता बारम्बार जन्म लेकर छटपटाता रहा । दुष्ट का दुखी होना अस्वाभाविक है ? ४७ —संसार मे वहुत कष्ट उठाने के बाद पौदनपुर के अग्निमुख नामक व्यापारी और उसकी पत्नी शकुनी के पुत्र के रूप में मृदुगति नाम से जन्म लिया । जुआरी बनने के कारण वह अपने माता-पिता द्वारा त्यागा गया तो ॠषियों के संपर्क से विद्यार्जन करके पुनः माता-पिता के पास आकर सुख में रह रहा था । तत्पश्चात् वसंता और रमणी नामक वेश्याओं (गणिकाओं) के प्रति आसक्त होकर, ऐश्वर्य बर्बादी करके बुरी आदतों के वश होकर इस निश्चय पर पहुँचा कि अब चोरी ही जीवनोपाय का एकमात्र साधन है । उस वृत्ति में एक दिन शशांकपुर के राजा नंदिवर्धन के राजप्रासाद में घुसकर चोरी करने की तैयारी कर रहा था । उस समय नंदिवर्धन ने शशांकमुख भट्टारक से धर्मोपदेश सुनकर वैराग्य धारणकर घर लौटकर अपनी पत्नी से कहा :

वंदु तन्नरसिगां तपस्यनप्पें नितुब्बेगं वडदिरेंदु नुडिवुदं केळ्दु मृदुमतिवेसरन्वर्थमार्गे संसारभीरुवागि तत्तपोनिधिय सन्निधियोळ् तोरेंदु तपंगेय्युत्तुमिर्पुदुमित्तलालोकपुरद परिसरद पर्वतदमेले—

गुणनिधिगळ् नामदोळं
गुणनिधिगळ् गगनचारणर् शैल शिरो- ।
मणियेनॆ कैयेत्तदे मुनि-
गण पूज्यर् पूण्दु नाल्कु तिंगळनिर्दर् ।। ४८ ।।

अवरं पूजिसि पोदर्
दिवक्कॆ दिविजर्कळवरुमा पर्वतदिं ।
पवन पथातिथियादर्
दिवसावधि पिंगिपोगॆ परमातिथिगळ् ।। ४९ ।।

मत्तित्त मृदुमतिगळुग्रोग्र तपंगेय्दति क्षपित कायरालोक नगरक्कॆ चरिगेगॆ पोदोडा पोळलनाळ्वरसं मोदलागॆ पलवरुमा चारणरॆंगेत्ती ऋषियर् नाल्कुतिंगळ्वरं कैयिक्कि निंदरिवर तपद पेर्मॆगॆ देवर्कळ् पूजिसि पोदर् गडमेंदु पोगळ्दु तम्मं पूजिसिकोंडाडे मायेयिं पूजिसिद पूजेगॆ मुय्यांतु—

अळिपिल्लद जिन धर्मदो-ळ्ळिपिदाहार कांक्षेयिं मायेय बें ।
बळिसंदु तपंगेय्दोड-ल्ळिविनोळभिराममनिर्दे दिवमं पोक्कं ।। ५० ।।

---

मैं तपस्या करने जा रहा हूँ; तुम्हें दुखी नहीं होना चाहिये। इस बात को छिपकर सुननेवाली मृदुमति भी संसार व्यामोह को त्यागकर तपस्या में निरत हुई। इधर आलोकपुर के आसपास के पर्वत के ऊपर— नाम के अनुरूप गुणनिधि गगणचारणजी पर्वतशिखर सदृश अचल होकर चार महीने तपस्या करते रहे। ४८ उनकी पूजा वंदना करके देवता अपने घर लौटे तो जैसे-जैसे दिन बीतते गये वैसे-वैसे वे आकाश पथगामी हुए। ४९ —मृदुमति मुनी पुनः उग्र तपस्या करके अपने शरीर को दुर्बल बनाकर आलोक नगर पहुँचा तो वहाँ के राजा और अन्यों ने उसे ही गगनचारण समझकर, यह कहकर प्रशंसा करना शुरू किया कि इन्होंने पर्वत शिखर पर चार महीने तक निश्चल चित्त हो तपस्या की थी, देवताओं ने भी उसकी पूजा की इस अज्ञानता से कुपित होकर— अक्षय जिनधर्म को जानने की अपेक्षा से मैंने अभी-अभी आहार के प्रति आकर्षित होकर पुनः संसार के प्रति मोहित हुआ। जो शरीर ऐसी अवस्थाओं का वलि बना है वह (शरीर) व्यर्थ है। ऐसा सोचकर, देह त्यागकर उस देश में

अंतु पुगुवुदुं मृदुमतियनभिराम चरामरं कंडति स्नेहितनागि सुखदिनिर्दु—

दिवदिं परमायुष्यं ※तवे मायातपद फलदे मृदुमति चरना।
दिविजं कुंजरगिरि सा-※ नुवन निकुंजक्के वंदु कुंजरनादं ।। ५१ ।।

अनंतरमभिरामचरं ब्रह्मोत्तर कल्पदिं बंदु दशरथ महीनाथंगं कैकामहादेविगमी भरतनेंब मगनादनीमनं त्रिजगद्भूषणगजं कंडु जातिस्मरसंसारभीरुवादुदरिं व्रतगोंडु सुगतिवुगलिर्दुदेंदु—

आनेय भरतन भ्रव सं-※तानंगळनरिपे देशभूषण दिव्य।
ज्ञानिगळालिसि विस्मित※मानसरादर् बलाच्युत प्रमुखर्कळ् ।। ५२ ।।

आ समयदोळ्—

हस्तिय तन्न मुन्निन भवावळियेल्लमनेय्देपेळे लो-।
कस्तुत देशभूषण महामुनिपुंगवरा जवंजव ।।
त्रस्तमनं तपश्चरण लोभरतं भरतं भवाब्दियं।
दुस्तरमं समुत्तरिसलुत्सुक वृत्तियनुंटुमाडिदं ।। ५३ ।।

बारद भवमोंदिल्लेने ※ नारक निर्यण्मनुष्यगतियोळ् बंदें।
सारदे जिनचरणमुनि ※ न्नाराधिसि पडेवेनमृत सुख संपदमं ।। ५४ ।।

---

प्रविष्ट हुआ जहाँ अभिराम था। ५० —प्रवेश करके वहाँ अभिराम देखा एवं मृदुमति मित्र बनकर सुख से रह रहे थे कि— अनेक वर्ष बीत जाने के बाद तपस्या के फलस्वरूप कुंजरगिरि के शिखर में आकर मृदुमति हाथी बना। ५१ —तत्पश्चात् अभिरामदेव ब्रह्मोत्तरकल्प से आकर दशरथ और कैकेयीदेवी का पुत्र भरत के रूप में जन्मा। इसे देखकर त्रिजगद्भूषण हाथी अर्थात् उस मृदुमति को अपने पूर्वजन्म की याद हो आने के कारण यह सोचकर कि अब संसार मोह नहीं चाहिये, व्रतस्थ हो, मोक्षगति प्राप्त करनेवाला है। देशभूषण भट्टारकजी द्वारा बताये हुए त्रिजगद्भूषण हाथी और भरम के पूर्वजन्म वृत्तांत का विवरण सुनकर राम-लक्ष्मण आदि विस्मित हुए। ५२ —उस समय— अपने तथा त्रिजगद्भूषण हाथी के पूर्वजन्म के समस्त वृत्तान्त सुनकर संसार से निरंतर आयी हुई कठिनाइयों का सामना किये हुए भरत ने तपस्या करके भवसागर पार करने में उत्साह प्रवृत्त हुआ। ५३ ऐसी कोई कष्ट-परम्परा नहीं जिसका मैंने अनुभव न किया हो; मनुष्य और प्राणी जन्म पाये; जिनमुनी के चरणारविंदोंको न पाकर दुःस्थितियों को प्राप्त हुआ। अब उनकी आराधना करके अमृत तुल्य अक्षयसुख पाता है। ५४

ऎंदु तरिसंदु भरतं सहस्रत्रय राजपुत्रर् सहितं तपस्यनादं कैकेयुं मुन्नूर्वर् स्त्रीयर्वेरसु पोगि पृथुमति गंतियर पक्कदे सम्यक्त्व पूर्वकं तपंगोंडळा त्रिजगद्भूषण गजं सम्यक्त्व पूर्वकमणुव्रतमनल्लियॆ कैकोंडु पलवु नोंपिगळं नोंतु संन्यसनदिं मुडिपि ब्रह्मोत्तरकल्पगतमाय्तु भरतमुनिगळुं चतुरंगुल चारण ऋद्धिप्राप्तरागि विहारिसि केवल ज्ञान प्राप्तरागि मोक्षक्के पोदरित्तल् सिद्धार्थनुं रतिवर्धननुं मॊदलागॆ भरतनॊडनॆ तपं गॊंड मूसासिर्वरुं तंतमगॆ तक्क स्थानदॊळ् पुट्टि सुखदिनिर्पुदुमित्त कैकागणिनियरुमनशनदे तपदॊळ् नॆगळ्दु जीवितांत्यदॊळ् सौधर्मकल्पदॊळ् पुट्टिदर्—

परियालिसि धरॆयं खे-चर भूचर भूपराळ्वेसं गॆय्यॆ निरं ।
तर सुखदिनित्तलमरेश्वर विभवं बडॆदु रामलक्ष्मणरिर्दर् ।। ५५ ।।

अंतु सुखदिनिर्दॊंदु दिवसं राघवं शत्रुघ्नंगॆ साकेतपुरा र्धमनक्के पौदनपुरार्धमनक्के पुंडरीकिणीपुरमनक्के राजगृहदुश्मनक्के निन्न मॆच्चिदुदं बेडिकॊळ्ळॆंबुदुमिदावुदुमनॊल्लॆनुत्तर मधुरॆयं दयॆगॆय्यिमॆंदु बिन्नविसॆ रामदेवरॆंदरुत्तरमधुरॆयनाळ्व मधुविगमरेंद्रनित्त शूलायुधं मरुवक्कद मेलॆ बिट्टिक्किदॊडॆ ससिर्वरं कॊंदु मगुळॆ कैगॆवर्पुददल्लदॆयुमातन तनूभवं

---

—ऐसा निश्चय करके तीन हजार राजकुमारों के साथ भरत तपस्या करने लगा। कैकेयी भी तीन सौ नारियों के साथ पृथुमति, गंति के बगल में विधिवत् तप करने लगी। अब त्रिजगद्भूषण हाथी ने अणुव्रत को अपनाकर वहीं अनेक अन्य व्रतों को पूर्ण करके ब्रह्मोत्तर कल्प को प्राप्त हुआ। भरतमुनी चतुरंगुलचारण सिद्धि उपलब्ध करके केवलज्ञानी बनकर मोक्ष को प्राप्त हुए। इधर सिद्धार्थ, रविवर्धन आदि तीन हजार राजकुमार तपस्या से योग्य स्थान में जन्म लेकर सुख से रह रहे थे। कैकेयी आदि स्त्रियों ने निरशन हो तपस्या करके जीवन के अन्त में साधर्मकल्प में पैदा हुए— राम-लक्ष्मण खेचर भूचर राजाओं के राजा बनकर शासन करके निरन्तर देवेन्द्रतुल्य सुख-वैभव से अयोध्या में रह रहे थे। ५५ —एक दिन शत्रुघ्न से राम ने कहा : आधा अयोध्या आधा पौदनपुर, पुंडरीकिणीपुर या राजगृहपुर इनमें से किसी एक को तुम माँग लो। शत्रुघ्न ने निवेदन में कहा : उनमें से कोई भी नहीं चाहिए। उत्तर मधुरा देने की कृपा करें। इसे सुनकर राम ने कहा : उत्तर मधुरा के शासक मधु के पास देवेंद्र द्वारा दिए गये शूलायुध की शक्ति है। विरोधियों पर उसका प्रयोग करने पर हजारों को यमलोक पहुँचाकर पुनः उसके पास लौट जाता है। इसके अतिरिक्त उसका पुत्र लवणार्णव

लवणार्णवनेंबवं रावणनळियनवननारुं गेलल् बारदु नीना पोळलोळेंतिर्दपेयेने शत्रुघ्ननाग्रहदिनदने बेडिकोळ्वुदं लक्ष्मीधरं तन्न वज्रकवचमुमं सागरावर्त शरासनमुमनग्निमुख शिलीमुखमुमं कोट्टु कळिपुवुदं महाबल समेतनागि पुण्यभागेयेंब तोरेयनेय्दि तन्नदीतीरदोळ् बीडं बिट्टिर्पुदं गुप्तचरनोर्वनति त्वरितगतियिं बंदु दूरावनत मस्तकं—

मधु मधुरेयोळिरे शूला-%युधमा पुरवरद पूर्वनंदन वनदोळ्- ।
वधुवुं तानुं रतिसुख%मधुसेवा मत्तरत्त मेय्मरेदिर्दर् ।। ५६ ।।

अेंदु बिन्नविसे शत्रुघ्नं मनदे कोंडोंदु लक्ककुदुरेवेरसु दाळियिट्टु मधुविर्द बनमं मुत्ति पोरवोळलोळिदिर्चिदरं पेसेळेकोल्वुदं मधुकेळ्दु वनदिं पोरमट्टु युद्धंगेय्व समयदोळ् सेनापति कृतांतवक्त्रं मधु तनूभवनप्प लवणार्णवन जीवनमं बडवानलनंते तविसि कृतांत वक्त्रक्के सोवतंमाळ्पुदु मदं कंडु मधु मुळिदुबंदु शत्रुघ्न कादलेय्तपुर्दुं तन्न शूलायुधमत्तलिर्दुदुमं तन्न सुतं सत्तुदुमं वगेदु तन्नसावं निश्चयिसि कैदुविगे कैयनुय्यदे विरोधिबलदायुधक्के मेय्यनोप्पिसि तन्न सहस्र कुंतलमं पंचमुष्टियिं परिदुकोंडु बाह्याभ्यंतर परिग्रहंगळं

---

रावण का दामाद है। उसे कोई भी जीत नहीं सकता। तुम उस नगर में कैसे रुकोगे? फिर भी शत्रुघ्न आग्रहपूर्वक उसे ही माँगकर पा लिया तो लक्ष्मण ने शत्रुघ्न को अपना वज्रकवच, सागरावर्त धनुष और अग्निमुख बाण देकर भेज दिया। असंख्य सेना के साथ शत्रुघ्न पुण्यभागा नामक नदी के पास पहुँचकर वहाँ डेरा डाले था कि एक गुप्तचर ने आकर हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर निवेदन किया— मधु अपनी पत्नी के साथ उपवन में रतिक्रीड़ा के सुखानुभव में खो चुका है। उसका शूलायुध नंदनवन में है। ५६ इसे सुनकर शत्रुघ्न ने मन-ही-मन विचार करके एक लाख घोड़ों के साथ नगर पर आक्रमण किया; मधु के उपवन को तहश-नहशकर डाला; सामना करनेवालों को निर्मम होकर मार डाला। विषय जानकर मधु उपवन से निकलकर युद्ध कर रहा था कि शत्रुघ्न के सेनापति कृतांतवक्त्र ने मधु के पुत्र लवणार्णव के प्राण को बडवाग्नि की भाँति काटकर यममुख में बालिद्रव्य-सा ठूँस दिया। मधु क्रोध से आग-बबूला होकर आगे बढ़ा तो शत्रुघ्न सम्मुख हुआ। मधु यह जानकर कि उसका शूलायुध दूसरी जगह है, अपने पुत्र का वध हो चुका है और अपनी मौत भी निश्चित है, वाणों पर हाथ न लगाकर शत्रुओं के आयुधों को अपना शरीर सौंपकर, अपना सिर मुँडवाकर बाह्यान्तर व्यामोहों को

परित्यागंगेय्दु महाव्रतमनेरिसिकोंडु संन्यसनदिं प्राण परित्यागंगेय्दु सनत्कुमार कल्पक्के संदनित्तल्—

पगेयं साधिसि रिपु वनि-॥तेगित्तु वैधव्य दीक्षेयं शत्रुघ्नं ।
बगेद बगेकूडे जय ल-॥क्ष्मिगे वल्लभनागि मधुरेयोळ् सुखमिर्दं ।। ५७ ।।

इत्त विजयार्ध पर्वतद दक्षिण श्रेणिय रत्नपुरनाळ्व रत्नरथंगं चंद्राननेगं पुट्टिद कन्यारत्नमं मनोरमेयनार्गे कुडुवमेंदु नारदनं बेसगोळ्वुदुं त्रिखंडमंडलाधिपतियप्प लक्ष्मीधरंगे कुडुवुदेने रत्नरथनुमवन मक्कळप्प हरियुं मनोवेगनुं मोदलागेल्लरुं केळ्दु कलुष वशगतरागि—

कोळेय पगेयोडने पगेयं॥बळेयिपुदं बिट्टु कूसुगोट्टनुनयमं ।
बळेयिसुवुदेंदु नुडिदी-॥गळपं नम्मळवनरियलोडरिसि नुडिदं ।। ५८ ।।

अेंदु किडिनुडिदु पोरमडिसि कळेये कडुमुळिदु नारदं मनोरमेय रूपं पटदोळ् बरेदु लक्ष्मणंगे तोरि तन्नं परिभविसिदुदुमं पेळेकेळ्दु—

नेलनेडे नेरेयदु भूचर॥बलक्कें खेचरबलक्कें नभमेय्यददेनल् ।
बलभद्रयुतं लक्ष्मण॥नलंघ्यबलनेत्ति मुत्तिदं तत्पुरमं ।। ५९ ।।

---

तजकर महाव्रत का विरागि बनकर, प्राण त्यागकर सनत्कुमार कल्प को प्राप्त किया। इधर— शत्रु को प्रयत्न से मारकर उसकी पत्नी को वैधव्य-दीक्षा दिलाकर शत्रुघ्न अपने मन की आकांक्षा पाने में सफल होकर जय-लक्ष्मी वल्लभ बनकर मधुरा में सुख से रह रहा था। ५७ इधर विजयार्ध पर्वत के दक्षिण भाग में स्थित रत्नपुर के राजा रत्नरथ और उसकी पत्नी चंद्रानना से मनोरमा नामक कन्यारत्न थी। चंद्रानन ने नारद से पूछा कि मनोरमा का विवाह किससे किया जाय। उत्तर में नारद ने बताया कि त्रिखंड मंडलाधिपति लक्ष्मण के साथ विवाह कर देना उचित रहेगा। इसे सुनकर रत्नरथ और उसके पुत्र हरि एवं मनोवेग क्रुद्ध हुए और सोचा कि— शत्रु से बदला लेने की बात कहना छोड़कर कन्या देकर सम्बन्ध जोड़ने का उपाय बताकर यह दुष्ट हमारे मन को जानने का प्रयत्न करता होगा। ५८ इस विचार से नारद का अपमान करके बाहर धकेल दिया। इससे क्रुद्ध होकर नारद ने मनोरमा के मोहक रूप का चित्र बनाकर उसे लक्ष्मण को दिखाकर बताया कि इस प्रयास के लिए उसकी कैसी निंदा की गयी है। इसे सुनकर— लक्ष्मण ने राम के साथ मानवसेना और खेचरसेना को लेकर रत्नापुर

अंतु रत्नपुरमं मुत्तुवुदं रत्नरथं तन्नमक्कळ्वेरसु महायुद्धंगेय्दु विरथनागि बेन्नीये बेन्ननें परितंदु—

कडुगलितनदिंदेन्नं*बिडेनुडिदु पोडपनुळिदु बेळ्ळेरलेयवोल् ।
कडुगलिगळादिरेनुतुं*तोडेयं पोय्दार्दु नारदं नर्तिसिदं ।। ६० ।।

अंतु मुट्टिमूदलिसे पोगलेडेगेट्टु मगुळ्दु बंदु लक्ष्मणंगे पोडे-वट्टु मनोरमेयं कोट्टु रामंगे श्रीकांतेयं कोट्टाळ्वेसननप्पुकेय्वुदुमातं बेरसु दक्षिण श्रेणियेल्लमं बाय्केळिसि निखिल श्रीखंड वल्लभनागि वैशल्यासौंदरियुं रूपवतियुं वनमालेयुं कल्याणमालेयुं रतिमालेयुं जितपद्मेयुमभयमतियुं मनोरमेयुमेंबेण्बर् कन्नेयर्ग महादेविपट्टमं कट्टि—

इवरादियागे लक्ष्मण*नवार्य शौर्यं विवाह मांगल्य महो- ।
त्सवदिं पदिनेण्छासिर*मवरोध वधूजनक्के वल्लभनादं ।। ६१ ।।

आ महाबल पराक्रमनप्प राघवदेवनुं जनकसुतेयुं प्रभावतियुं रतियुं श्रीकांतेयुमेंब नाल्वर् महादेवियर् मोदलागेयण्छासिरमंतः

पर आक्रमण किया। चलते समय मानव-सेना के लिए पृथ्वी अपर्याप्त हुई और खेचर-सेना के लिए आकाश की व्याप्ति कम प्रतीत हुई। ५९ आक्रमण करने पर रत्नरथ ने अपने पुत्रों के साथ मिलकर घोर युद्ध करके विरथी होकर पीठ दिखाकर युद्ध भूमि से भागने लगा तो उसका पीछा करके— अपनी जाँघ ठोककर उसका अपमान करते हुए नारद ने कहा: अपने आपको महाबलशाली समझकर मेरी निंदा की थी और अब युद्ध में हारकर बुजदिल-सा भाग रहे हो? तुम्हारी कायरता की तुलना किससे की जाय? ६० ऐसा छेड़ने पर, उस पर ध्यान दिये बिना, रत्नरथ ने लौटकर लक्ष्मण को हाथ जोड़ा और लक्ष्मण से मनोरमा का एवं राम से श्रीकांता का विवाह करके उनके अधिकार के अन्तर्गत शामिल हुआ। उसके साथ मिलकर सारे दक्षिण भाग को पराजितकर समस्त त्रिखंड का अधिपति बनकर वैशल्यासौंदरी, रूपवति, वनमाला, कल्याणमाला, रतिमाला, जितपद्मा, अभयमति, मनोरमा नामक आठ कन्याओं को राजमहिषी आसन पर बिठाकर— अप्रतिम लक्ष्मण, इन सबसे बड़ी धूमधाम से विवाह करके, अठारह हजार वधुओं का पति हुआ। ६१ पराक्रमी राम भी जानकी प्रभावती, रति, श्रीकांता नामक चार रानियों एवं आठ हजार युवतियों का पति बना। रत्नरथ ने अपना भी राज्य दे दिया तो राम-लक्ष्मण अनेक वर्षों तक शासन करके सुखानुभव कर रहे थे। लक्ष्मण की

पुरक्कधिपनादर्नितु रामलक्ष्मणर् पलकालं राज्यसुखमननुभविसुत्तिरे लक्ष्मणन मनोवल्लभे विशल्यासौंदरिगे श्रीधरं रूपवतिगे पृथ्वी-तिलकं वनमालेगर्जुनं कल्याण मालेगे मंगलं रतिमालेगे श्रीकेळि जितपद्मेगे विमलप्रभं अभयमतिगे सत्यकीर्ति मनोरमेगे सुपार्श्व-नेंब मक्कळादरितर्ध चक्रवर्तिय मक्कळेण्वरुमनुदिन प्रवर्धमान मनोहराकारराागि बळेयुत्तुमिरे मत्तोंदु दिवसं—

जनकसुते नाल्कु नीर् मि-*दु नाडे बेळ्वसदनं विराजिसे कांची।
निनदं कैमिगे लक्ष्मी-*वनितेयवोल् सेज्जेवनेगे विजयंगेय्दळ् ।। ६२ ।।

अंतु सूळ्गेवंदु निशावसान समयदोळ्—

शरभ द्वितयं निज मुख * सरोजमं बंदु पुगुवुदं पुष्पकदिं ।
धरणिगे बीळ्तर्पुदना * हरिणेक्षणे सीते कंडळेरडं कनसं ।। ६३ ।।

अंतु कंड स्वप्नंगळं रामस्वामिगरिपुवुदुं—

अमित पराक्रमरिवरेनि-*प मक्कळं पडेवे शरभयुगदर्शनदिं ।
कमलानने मत्तिन कन-*सु मनोहरमल्तु खेदमं पुट्टिसुगुं ।। ६४ ।।

एंदु कनसिन फलमं पेळ्दवरुमेवयिसुत्तुमिरे केलवुदिवसक्के सीतेगे गर्भचिह्नंगळ् तोरिदुवा महानुभावेगे जिनपूजोत्सवमंमाळ्प

---

वैशल्यासौंदरी से श्रीधर और रूपवति से पृथ्वीतिलक, वनमाला से अर्जुन, कल्याणमाला से मंगल, रतिमाला से श्रीकेली, जितपद्मा से विमलप्रभा, अभयमति से सर्वकीर्ति और मनोरमा से सुपार्श्व नामक पुत्र हुए। लक्ष्मण के इन आठों पुत्रों के प्रवर्धमान होकर सुन्दर युवकों के रूप में सुशोभित होने पर एक दिन— सीतादेवी चतुर्थ दिन का स्नान करके श्वेतवर्ण के प्रसाधन में सुशोभित होकर पहने हुए कंगनों के कणकण निनाद सुनाती हुई शय्यागृह में प्रविष्ट हुई। ६२ शय्यागृह में निद्रा कर रही थी कि सुबह की बेला में— सीता ने स्वप्न देखे। एक में दो शरभ (प्राणी विशेष) सीता के मुख मे प्रविष्ट हुए। दूसरे में सीता पुष्पक विमान से पृथ्वी पर गिरी। ६३ इन स्वप्नों की बात उसने राम को बताई तो, राम ने समझाया— तुम बाहुबल सम्पन्न दो पुत्रों को जन्म दोगी। मुख में शरभों का प्रवेश करना शुभ लक्षण है लेकिन तत्पश्चात् का (दूसरा) स्वप्न शुभ नहीं है। उससे तुम दुःख का पात्र बनोगी। ६४ इस तरह राम ने स्वप्न-लक्षण बताया। इससे सीता-राम दोनों दुखी बने रहे। कुछ दिनों में सीता के गर्भ-लक्षण दृष्टिगोचर हुए। उसमें जिनपूजा करने की इच्छा जागी। महेंद्रोद्यान के जिनमंदिर में प्रतिदिन

बयकॆ समनिसॆ जिनमहामहमं महेंद्रोद्यानद जिनालयंगळॊळॆल्लमनुदिनं काडुत्तुमिरलॊंदु दिवसं—

कट्टिदुदं कळॆक्वरार् ॥ नॆट्टनॆ सत्पथदॊळॆसगॆयुं बेवसमॆ- ।
ळ्बट्टुवुदं सूचिपवोल् ॥ पुट्टिदुदा सतिगॆ दक्षिणाक्षि स्पंधं ॥ ६५ ॥

आगळा दुर्नयक्कॆ सीतॆ भयस्थॆथागि गृह महत्तरनं करॆदारॆनं बेडिदॊडवर्गदं कुडुवुदॆंदु पेळ्दु तानु मनुदिनं जिनाभिषेकमुमं जिन-पूजॆगळुमं माडुत्तुमिरलॊंदुदिवसं जनपद जनं बंदु बिन्नविसलण्मदिरॆ रामस्वामि निस्म बंद कार्यमनंजदॆ पेळिमॆंबुदुं प्रजॆगळनुमतदिं विजयनॆंब महत्तरनितॆंदं—

व्यसनि दुरात्मनप्प दनुजं करमॆड्डमॆनिप्प सीतॆगा- ।
टिसि पिडिदुय्दॊडा खल निवासदॊळिन्नॆगमिर्दळं विचा-॥
रिसदॊडगूडि मुन्निनवॊळिर्पुदु पाळियॆ लोक सीमॆयं ।
वसुधॆगधीशनेळिसुवुदुं प्रतिपालिपरारॊ धर्ममं ॥ ६६ ॥

ऎंबुदुं रामनदं केळ्दु—

जनमॆंदंतुटॆ भाविस ॥ दनयमनां नॆगळ्दॆनॆंदु पश्चात्तापं ।
तनगधिकमागॆ रघुनं-॥ दननुब्बरमॆनिसॆ तळॆदनंदुब्बॆगमं ॥ ६७ ॥

---

जिनपूजा कर रही थी कि एक दिन— विधि की लिखावट को कौन टाल सकता है ? सत्कार्य करने के बावजूद दुःख के आगमन की सूचना देती-सी सीता की बायीं आँख फड़कने लगीं । ६५ तब सीता उस अपशकुन से डरकर पुरोहित को बुलवाकर, याचकों को 'नाहीं' न कहने का आदेश देकर, रोज जिनाभिषेक जिनपूजा कर रही थी कि एक दिन ग्रामीण लोग राम के पास आये और हाथ जोड़कर आने का उद्देश्य निवेदन करने से भयभीत हो चुप रह गये । इसे देखकर राम ने उन्हें आज्ञा दी कि निःसंकोच वे अपने आने का उद्देश्य बतावें । तब उन ग्रामीणों की अनु-मति पाकर विजय नामक मुखिया ने यूँ कहा—कामुक और दुष्ट रावण ने सीता से मोहित होकर अपहरण किया । उस दुष्ट के साथ रहनेवाली सीता को ले आकर ऐसा जीवन करना मानो कुछ 'हुआ ही न हो' न्यायोचित नहीं है । अगर राजा ही लोक न्याय का उल्लंघन करे तो धर्म का पालन कौन करेगा ? । ६६ इसे सुनकर राम ने सोचा— लोग ठीक ही कह रहे हैं । लोकनीति पर ध्यान दिये बिना ही मैंने व्यवहार किया है । अपने व्यवहार के लिए पछताकर दुखी हुआ । ६७ उसने निश्चय किया कि अपनी कीर्ति और धर्म के बचाव एवं अपवाद निवारण के लिए

जसमुं धर्ममुमळिवं ※ देसगुवुदेळिकेयेंदु वैदेहियुमं ।
बिसुडल बगेदं मनुवं- ※ श समुद्भवरारुमुचितमं मीरुवरे ॥ ६८ ॥

अंतु रामस्वामि सीतादेविगतिस्नेहितनागियुं जनापवादक्के सेडेदु परिहरिसलोडरिसि लक्ष्मणनं बरिसि कट्टेकांतदोळा व्यतिकरमनरिपे सौमित्रि केळ्दु कडुमुळिदु निम्मडिगळविवेकिगळितर्थनाशादि वचन पंचकंगळं नुडियलागददनितेके नुडिविरेंदु मत्तमितेंदं—

सति सीतादेवि पति ※ व्रतादि गुण रत्नभूषणालंकृते त- ।
त्सति योळवगुणमनूर्जित※मतिगळ् निम्मन्नरुसिर्वुदनुचितमल्ते ॥ ६९॥

अेने लक्ष्मणंगे रामस्वामियिंतेंदं—

पुरुदेवं मोदलागिरे ※ दोरेवेत्तिक्ष्वाकु वंशदवनीशरोळां ।
बरमिल्ल दुश्चरित्रं ※ दोरेकोंडंदेन्न पौरुषं दोरेगिडदे ॥ ७० ॥

अदरिं नीनिदं माकोॅळ्ळदिरेंबुदुं लक्ष्मीधरनिंतेंदं—

सीते गुणंगिडे सकल ध-
रातलमोडनळिगुमल्लदंदा सतियं ।
प्रीतियिनर्चिसि दिविज
व्रातं करेगुमे नरेंद्र पूविन मळेयं ॥ ७१ ॥

---

सीता को त्यागना ही एकमात्र उपाय है। सूर्यवंश में जन्म लेनेवाले लोकरूढ़ि का उल्लंघन करेंगे? ६८ सीता को जी-जान से प्यार करते हुए भी, जनापवाद से डरकर, उसके निवारण के विचार से, लक्ष्मण को बुलवाकर, एकान्त में विषय बताने पर, लक्ष्मण कुपित होकर यूँ बोला—आप अविवेकियों की भाँति अर्थनाश आदि पंचपातक न करें। अब ऐसी बात क्यों कर रहे हैं? लक्ष्मण ने पुनः यूँ कहा— सीतादेवी पतिव्रता हैं, सद्गुणों से अलंकृत हैं। ऐसी स्त्री पर अवगुणों का आरोप लगाना आप जैसे विवेकी के लिए अनुचित नहीं है? ६९ ऐसा कहने पर लक्ष्मण से राम यूँ बोला— इस इक्ष्वाकुवंश में जन्म लेनेवाले पुरूदेव से लेकर मेरे शासनकाल तक कोई अपकीर्ति का पात्र नहीं बना। मैं अपकीर्ति का पात्र बनूँ तो मेरी कीर्ति के लिए कलंक नहीं है? ७० अतः तुम मेरे कार्य में बाधक मत बनो। ऐसा कहने पर लक्ष्मीधर यूँ बोला— जिस दिन सीता कलंकिनी बनेगी यह पृथ्वी ही नाश होगी। अगर यह बात न होती तो उस दिन देवता उसकी पूजा करके पुष्पवर्षा

अेंदेनितानुमं रामस्वामिगे नुडिदी पोल्लवातं परेपिदोवकलिगर नालगेयं किळ्तिक्कुवेनेंबुदुं लक्ष्मणन कैयं पिडिदिदनोंदं माकोंळ्ळदिरेंदु तन्नमेले सूरुळ्दु मार्नुडियदंतु माडिकृतांतवक्त्रनं करेंदु सीतेयनोंवंळने बेगमुय्दु भीमाटवियोळिक्कि बारेंदु पेळ्वुदुमा मातं लक्ष्मणं केळ्दु तल्लळिसि रामस्वामिय पादारविंदक्के विनतनागि मत्तमितेंदं—

जनक तनूजे नेट्टने महासति गर्भिणि पापभीरु का- ।
ननमति रौद्रमल्लि पळिगंजदे पातकमक्कुमेंबिदं ।।
नेनेयदे बाय्गे बंद तेरदिं पेररेंदोडे केळदु बेट्टबे- ।
ट्टने बिसुडेंदु निष्करुण वृत्तियिनितुसिरल्के तक्कुदे ।। ७२ ।।

अेंदळल्दु नुडिदट्टि कळियदेनगे क्षमियिसुवुदेने राघवनितेंदं—
पळियक्के पापमक्कॆम-*पळुगळिपुवेनेनगे कूर्पोंडुसिरदिरिन्नें-।
दळलदे सीतेय पंबल * नुळिदें लोकापवाद भीरुवो रामं ।। ७३ ।।

अंतु सौमित्रियनुब्बेगं बडदिरेंदु बारिसलोडं समेयिनेळ्दु पोपुदुमनंतरं कृतांतवक्त्रनं रामस्वामियेंदनयोध्यानगरद सम्मेद पर्वतद समीपदेडेय जिनालमंगळं वंदिसि निम्म बयकेयं तीर्चि

---

करते ? ७१ —इस तरह अनेक प्रकार से राम को समझाते हुए बोला— ऐसी देवीपर अपवाद लादनेवाले ग्रामीणों की जीभों को चीर दूंगा। राम ने उसका हाथ पकड़कर इस एक विषय पर बाधक न बनने की बात कहकर, कृतांतवक्त्र को बुलवाकर उसे आज्ञा दी— अकेली सीता को तुरन्त ले जाकर भीमाटवी में छोड़ आओ। इस बात को सुनकर लक्ष्मण गद्गद होकर राम के चरणारविन्दों में प्रणाम करके पुनः यूँ बोला— जनकात्मजा सीता अब गर्भवती है; अबला है। कानन अत्यन्त भयानक है। निंदा (अपवाद) से न डरकर पाप का कारण बनने की परवाह न करके, अन्यों की बेसिर पैर की बात में आकर पत्नी को तुरंत कानन में छोड़ आने की आज्ञा देना निर्मम कार्य नहीं है ? भैया, आपको यह शोभा देता है ? ७२ रो रोकर ऐसा कहकर निवेदन किया कि ऐसा करने से रोकनेवाले मुझे क्षमा करें। इसे सुनकर राम यूँ बोला— निन्दा हो या पाप लग जाय। लेकिन मैं अपवाद (कलंक) से डरता हूँ। अगर तुम्हें मुझसे स्नेह हो तो मत रोओ। सीता के प्यार को त्यागकर इस तरह लोकापवाद से डरनेवाला राम न जाने कैसा महामानव है ? ७३ लक्ष्मण को न रोने की सलाह (सांत्वना) देनेपर वह सभा से उठकर

बर्पं बन्निमेंदु सीतेयनोडगोंडु पोगि भीमाटवियोळ् निर्जंतुक प्रदेशदोळ् बिट्टु बर्पुदेने—

सेवेये कष्टं सीता ❀ देवियनीडडि बर्पुदडवियोळेने दो- ।
षाविलमनळ्कि राघव ❀ देवंगे कृतांतवक्त्रनदनेगोंडं ॥ ७४ ॥

अंतु बेसनं कैकोंडु सीतादेविय केलक्के वंदु—

रामं कलिसिद तेरदिं❀रामेगे पुसिनुडिदु रथमनेरिसि कोंडा ।
भीमाटवियं करि हरि❀ भीमाटनमं कृतांतमुखनेय्तंदं ॥ ७५ ॥

आ महागहनमं पोक्कु तन्मध्य निर्झर वारिधारा परीत गिरि दरी प्रदेशदोळ् महासतियं रथदिंदिळिपि मन्यु गद्गद कंठनागि कण्णीर्गळं नेगपुवुदुं कृतांतवक्त्रनं सीतादेवि कंडदेके शोकंगेय्दपे पेळेंदोडातनेंदनव्वा निम्म मेले लोकमेल्लमभियोगमनिट्टोडरसं निम्मनडवियोळ् बिसुट्टु बरवेळ्दोडिल्लिगे तंदेनेने सीतादेवि केळ्दु मूर्छेवोगि किरिदु बेगदिं चीतरिसि कृतांतवक्त्रंगिंतेंदळ् रामदेवर् सकल वसुधा तलमं न्यायदिं प्रतिपालिसुवुदु देव गुरु पूजेयं मरेयदिर्पुदु जनापवाद भयदिंदेन्नं बिसुट्टंते मिथ्यादृष्टिगळ

---

चला गया। तत्पश्चात कृतांतवक्त्र से राम ने कहा— सीता से यह कहकर कि अयोध्या नगर के सम्मेद पर्वत के बगल में स्थित जिनमंदिरों में जाकर जिनपूजा करके अपनी मनोकामनाओं को पूरा कर लीजिये, सीता को अपने साथ ले जाकर भीमाटवी (भीमकानन) के निर्जन प्रदेश में छोड़ आओ। ऐसा कहने पर (उसने सोचा),— सेवाकार्य कठिन काम है। सीतादेवी को जंगल में छोड़ आने की आज्ञा देनेवाले राम से डरते हुए भी कृतांतवक्त्र आज्ञा-पालन के लिए तैयार हुआ। ७४ आज्ञाबद्ध वह सीता के पास आकर,— राम के कहे अनुसार सीता से झूठ कहकर रथ पर बिठाकर भीमाटवी की ओर आगे बढ़ा। ७५ उस घोर कानन में प्रविष्ट होकर उसके बीच पर्वतशिखरों से प्रवाहित होनेवाले जलपातों से सुशोभित स्थान में सीता को रथ से उतारकर गद्गदित हो, आँसू बहाते हुए, सिर ऊपर उठाये हुए कृतांतवक्त्र को देखकर सीता ने उसके रोने का कारण पूछा तो उत्तर में उसने कहा— माँ, आप पर लोगों ने अपवाद लगाया है। इसलिए श्रीराम ने मुझे आज्ञा दी है कि आपको जंगल में छोड़ जाऊँ। उनकी बात का उल्लंघन करने में असमर्थ होकर आपको यहाँ ले आया हूँ। इसे सुनकर सीता मूर्छित हुई। लेकिन थोड़ी देर में होश में आकर यूँ बोली— भगवान श्रीराम से निवेदन

नुडियं केळ्दहत्परमेश्वर श्रीधर्ममं बिसुडदिर्पुदेनंगे दयेगेय्वरप्पो- ड़ेंदळेंबुदं मरेयदे पेळेंदु बाष्प जल लुलित लोचनें तलेयं बागि नेलनं बरेयुत्तुमिर्दळं कृतांतवक्त्रं नोडि—·

तरुणियंनंतर्वन्निय ❋ नरण्यदोळ् बिसुडवेळोंडी बेसनं का- ।
पुरुषनेनेगोंडें किं ❋ कर भावदिनप्रशस्तभावुदुमुंटे ॥ ७६ ॥

अेंदु तन्नं ताने निंदिसि कोंडु कण्णीर्गळं सिडियुत्तुं सीतादेविगे क्षमियिसुवुदेंदु पोडेवट्टु बीळ्कोंडयोध्र्येगे पोदनित्तल्—

गुणवति राघवनं ल-
क्ष्मणनं नेने नेनेंदु शोक पावकनेदेयोळ् ।
मणियदे दळ्ळिळसे कण्गळ
पोणरिं कण्वनिगळुण्मे देसेगेट्टिर्दळ् ॥ ७७ ॥

अंतिष्ट वियोग विकले दश दिशामुख दत्त दृष्टि पेररारुमं काणदे—

जिन मुनियं पेरदुं प्रा-❋णि निकायमनक्के नाडे नोयिसिदें मु-।
न्निन जन्मदोळंतल्लदो❋डेमगिनिविरिर्दोदवस्थे बरिदादपुदे ॥ ७८ ॥

---

करना कि वे समस्त पृथ्वी पर न्यायपूर्वक शासन करते हुए देव, गुरु और पूजा-पाठ को न भूलें; जिस तरह लोकापवाद के डर से उन्होंने मुझे त्याग दिया है, मेरे प्रति दया हो तो मिथ्यावादियों की बात सुनकर अर्हत्परमेश्वर के जिनधर्म का त्याग न करें। ऐसा कहकर आँखों में आँसू भरकर सिर झुका लिया। ऐसी सीता को देखकर कृतांतवक्त्र ने कहा— आप जैसी अबला और धर्मपत्नी को कानन में छोड़ आने को कहा तो उनकी बात को मुझ दुष्ट ने, विचार किये बिना, मान लिया। सेवक बनकर जीने से बढ़कर और कोई बदतर जीवन है? ७६ इस तरह अपने आपको दोषी ठहराकर, आँसू बहाकर सीता से क्षमायाचना करते हुए उसके चरणों में प्रणाम करके कृतांतवक्त्र अयोध्या लौट पड़ा। इधर,— गुणवती सीता के मन में, राम-लक्ष्मण का स्मरण करते-करते, शोकाग्नि प्रज्वलित हो रही थी और वह उस शोकाग्नि की चिनगारियों को प्रवाहित कराती-सी आँखों से धाराकार आँसू बहाती हुई दिशा-भ्रमित-सी रह रही थी। ७७ इस तरह इतने लोगों के वियोग से विचलित वह दशोदिशाओं को निहारा तो भी किसी को न पाकर, —जिन मुनी एवं प्राणियों को पूर्वजन्म में दुःख पहुँचाने के कारण मुझपर इस तरह की विपत्ति आयी होगी? ७८ ऐसा सोचकर, जिन धर्म-

अँदु जिनागम कुशलॅयप्पुदरिं तन्नं तानॆ निंदिसिकॊंडु संतयिसि—

अडवियॊळूरॊळावॆडॆयॊळादॊडमॆन्नरुमप्प कालदॊळ् ।
किडुवरॆ केडु मूडिदवरप्पॊडॆ निर्मल जैन धर्ममं ।।
पिडिदुपसर्गमं बगॆयदागमदिष्टदिनॆन्न जीवमं ।
बिडुवॆनमोघमॆंदु तॊरॆदळ् जनकात्मजॆ शोक वेगमं ।। ७९ ।।

अंतु विगत शोकवेगॆ महाऋषियर्कळ् महागहनदॊळ् तपं-गय्दपवर्गमं साधिसुवरदरिंदॆनगमी प्रदेशदॊळिळत्तु समनिसित्तु नोंतु पसिदुमंत्यदॊळ् संन्यसनदिं परत्नयं साधिसुवॆनॆंदु परमागम भावनॆ-यिदिर्पन्नॆगमा प्रस्तावदॊळ्—

जनक तनूजॆय सुकृतमॆ ※ मनुष्य रूपागि बर्प तॆरदिं नृपनं ।
दननॊर्वना महाका ※ ननक्कॆ बलसहितमानॆवॆंटॆगॆ बंदं ।। ८० ।।

अंतु बंदनति दूरदॊळ्—

वनदेवतॆयो लक्ष्मियॊ※वनितॆयॊ दिवदिंदमिरिद मेनकॆयो पे- ।
रेनुतुं जानकियं लो- ※ चन पथदॊळ् मुंदॆ वज्रजंघं कंडं ।। ८१ ।।

अंतु कंडॆय्दॆ वंदु विस्मय स्तिमित लोचननब्बा नीमार्गॆनि-मित्तमी काननदॊळिर्दिरॆबुदुमनवद्य चरितनॆंदरिर्दितॆदळां जनक तनूजॆयॆं प्रभामंडलननुजॆयॆं रामस्वामिय भार्यॆ सीतादेवियॆंबॆनॆन्नमेलॆ

---

सूक्ष्म की ज्ञाता होने के कारण, अपने आपको दोषी ठहराकर और फिर अपने आपको समझाकर,— जंगल में या नगर में मुझ जैसी कोई स्त्री इस तरह की विपत्ति का पात्र बनकर दुखी होती होगी ? कष्ट आने पर निर्मल जिनधर्म-सी कष्ट-परंपराओं का निवारण कर लेने के लिए जैनागम से अपने प्राण को त्याग दूँगी । यही समुचित है । ऐसा सोचकर दु:ख के आवेग को रोक लिया । ७९ तत्पश्चात यह सोचकर कि इस वन में महान् ऋषिजन अपने पर वीतनेवाले समस्त कष्टों के निवारण के लिए तपस्या करने आते हैं अत: (इस विचार से कि) तप के लिए भी यही योग्य स्थान है, तपस्या करती हुई, निराहार से सन्यसन से मोक्ष पाने के विचार से जिनचिंतन में रह रही थी कि,— मानो सीता के पुण्य ने ही मानवरूप धारणकर आया हो, उस घोर कानन में एक राजकुमार अपनी सेना के साथ शिकार निमित्त आ गया । ८० आकर, कुछ दूरी पर,— उस आगन्तुक ने इस आश्चर्य से देखा मानो उसके सम्मुख कोई वनदेवता या लक्ष्मी या युवती या स्वर्ग से उतरकर आयी हुई मेनका खड़ी हो । ८१ देखकर, पास जाकर, अपलक नेत्रों से

जनपद जनं पोल्लमप्प रावणनुय्दळं तंदु विचारिसदे महादेवी पट्टंगट्टुवुदावुचितमेंदिट्टळविट्टु नुडियें लोकापवादक्के रामस्वामि नाण्चि कृतांतवक्त्रनेंब पडेवळनं करेदु सम्मेदं मोदलाद तीर्थस्थानंगळ जिमालयंगळं वंदिसि बर्पमेंदु नंबे नुडिदोडगोंडुय्दु बिसुट्टु बर्पुदें-दोडातनेन्नं निरपराधेयं तंदिल्लि बिसुटु पोदनेंदु महादेवि कण्णीगळं नेगपे—

पवणिल्लद सीतेय शो-* क वह्नियं सूक्ति सलिलदिंदारिसिदं।
भव विभवद चपलतेयं * सविस्तरं तिळिपि वज्रजंघ नरेंद्रं ।। ८२ ।।

अनंतरमितेंदनां सोमवंशदरसं द्विरदवाहनंगं सुबंधु महादेविगं पुट्टिदें वज्रजंघनेंबें पुंडरीकिणी पुरमनाळ्वें जिनधर्मददेसेयिं नीमेनगें तंगेविरप्पिर् बिजयंगय्यिमेंदु सिविगेयनेरिसिकोंडु पोगि कांतारमं कळिदनुक्रमदिं पुंडरीकिणीपुरमनेय्दि निज राजभवनमं पोक्कु शीलवतिवेसर निजाग्रजेय माडक्कुय्दु रामदेवर भार्ये जनकतनूजे

---

देखते हुए पूछा-- माँ, आप कौन हैं ? किस कारण से इस जंगल में आयी हैं ! प्रश्न सुनकर, उसे सज्जन और पापभीरु समझकर सीता ने बताया-- मैं जनक की कन्या हूँ; प्रभामंडल की बहन और राम की पत्नी सीता हूँ। लोगों ने मुझपर यह कलंक लगाया है कि रावण द्वारा हरण की हुई मुझे विचार किये बिना ही राम द्वारा (मुझे) महारानी का आसन देना अनुचित था। अपवाद से डरकर कृतांतवक्त्र नामक सेनापति को आज्ञा दे दी कि सम्मेद आदि तीर्थ स्थानों को दिखाते हुए जिन मन्दिरों में पूजा करके लौटने का विश्वास दिलाकर ले आकर जंगल में छोड़ दे। वह निरपराधी मुझे यहाँ छोड़ गया। ऐसा कहकर सीता ने आँसू बहाये। सीता की दुःखाग्नि को आगंतुक वज्रजंघ ने अपने जलरूपी वचनों से शाँत करके संसार में अचानक आनेवाली विपत्तियों को सामान्य बताकर सांत्वना दी। ८२ तत्पश्चात् यूँ बोला-- मैं सोमवंश के राजा द्विरदवाहन और उनकी रानी सुबंधु का पुत्र हूँ। मुझे वज्रजंघ कहते हैं। पुंडरीकिणीपुर पर शासन कर रहा हूँ। जिनधर्म के कारण आप मेरी बहन हैं। कृपया मेरे साथ चलिये। ऐसा कहकर पालखी पर बिठाकर प्रस्थान किया। जंगल को पारकर पुंडरीकिणीपुर पहुँचकर अपने राजभवन में प्रविष्ट होकर, सीता को अपनी बड़ी बहन शीलवती के घर ले जाकर, उससे यह परिचय देकर कि यह भगवान राम की पत्नी सीता है, प्रभामंडल की बहन है, धर्म के कारण हमारी सहोदरी है। ऐसा कहकर सीता को शीलवती को सौंपकर सीता से यह कहकर कि प्रभामंडल से अधिक आत्मीयता से देखभाल करूँगा, वज्रजंघ अपने भवन

प्रभामंडलन तंगॆ सीतादेवि नमगं जिनधर्मद दॆसॆयिंदॊडवुट्टिदळॆंदु समर्पिसि सीतादेवियं निमगॆ प्रभामंडलनिंदग्गळमागॆ बॆसकॆय्वॆनॆंदु संतोषंबडॆ नुडिदु वज्रजंघं तन्न माडक्कॆ पॊदनित्तल्—

जिनमुनिगाहारमननु ॐ दिनमित्तु जिनेंद्र पूजॆयं माडुत्तुं ।
मनमॊसॆदु शीलवतियुं ॐ जनकजॆयुं कूडि दिवसमं नडॆयिसिदर् ।। ८३ ।।

इत्तला कृतांतवक्त्रं पोगि राघवनं कंडु सीतॆ कलिसिद मातॆल्लमं पेळॆ केळ्दु मूर्छॆवोगि नीडरिंदॆळ्चत्तु मत्तमति प्रलापंगॆय्यॆ लक्ष्मणं शोकविकल नागॆ कृतांतवक्त्रनवर शोकमनुपशमिसुवुदुं रामचंद्रं चंद्र कलशनॆंब सीता महत्तरनं करॆदु—

जिनपति पूजॆयं मुनिजनक्कॆ चतुर्विधमप्प दानमं ।
जनकतनूजॆ पेळ्द तॆरदिं नॆगळॆंदु पुरोहितंगॆ स- ।।
ज्जनमहितंगॆ पेळ्दनभिरामनशेष कलाकलाप को- ।
कनद भवं परार्यचरितं प्रथितं कवितामनोहरं ।। ८४ ।।

इदु परम जिनसमय कुमुदिनी शरच्चंद्र वालचंद्र मुनींद्र चरण नख किरण चंद्रिका चकोर भारती कर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितमप्प रामचंद्र चरितपुराणदॊळ् सीतापरित्याग वर्णनं पंचदशाश्वासं ।

।। पंचदशाश्वास समाप्तं ।।

---

लौटा । इधर प्रतिदिन जिनमुनी को आहार प्रदान करती हुई, जिनपूजा करती हुई शीलवती और सीता अन्योन्य स्नेह से दिन बिता रही थीं । ८३ उधर कृतांतवक्त्र जाकर राम से मिला और सीता द्वारा बताया हुआ सारा संदेश सुनाया । उसे सुनकर राम मूर्छित हुआ । कुछ देर के बाद होश में आकर अत्यन्त दुखी होकर विलाप करने लगा । भैया के दुःख से लक्ष्मण भी दुखी हुआ । कृतांतवक्त्र ने उन दोनों को समझाकर दुःख का उपशमन किया । राम ने सीता के चंद्रकलश नामक सेवक को बुलाकर,— राम, जो प्रख्यात कविता मनोहर, परहित निमित्त जीवन-यापन करनेवाला है, ने आदेश दिया कि सीता के निवेदन के अनुसार जिनपूजा और मुनिजनों को चार प्रकार के दान देने की बात पुरोहितों को बतायी जाय । ८४ यह कवि अभिनवपंप, परमजिन समय और कमलों को शरत्काल के चन्द्र के समान माने जानेवाले वालचन्द्र मुनीन्द्र के चरण-नखों के चांदनी प्रकाश से पवित्र एवं सरस्वती के कर्णभूषण के समान है, के रामचन्द्र-चरित-पुराण का सीता परित्याग वर्णन है ।

।। पन्द्रहवाँ आश्वास समाप्त ।।

षोडशाश्वासं

श्रीकांतं विशद यश- * श्श्रीकांतं चंद्रकलशनं नियमिसिदं ।
स्वीकृत सत्संगं दू- * रीकृत दोषानुषंगनभिनवपंप्रं ।। १ ।।

अंतु नियमिसुवुदुं पुरोहितं चंद्रकलशननुदिनमामार्गदिं नेंगळुत्तु मिर्पुदुमित्तल्—

आ सीतें पूर्णमेंनेनव * मासं श्रवण प्रसक्तनेंनें तुहिन करं ।
वासव निभरं श्रावण * मासद पुण्णिमेंय पगलोंळमळं पेंत्तळ् ।। २ ।।

अंतमळं पेंत्तु महाविभूतियिं जातोत्सवमं माडि शुभदिन मुहूर्तदोंळिर्वर् तनूभवर्ग लवनुं कुशनुमेंदु पेंसरनिट्टु शुक्लपक्षद चंद्रमनंतनुदिनोपचयमनप्पुकेंय्दु शैशवमनधः करिसिदिबळिक्कें—

अवरं सिद्धार्थ कलि- * सुवुदुं कल्तर् निरंकुशर् तम्मन्नर् ।
भुवनदोंळिल्लेंबिनेंगं * लवांकुशर् कलेंगळं चतुष्षष्टिगळं ।। ३ ।।

मत्तं शस्त्रास्त्रविद्येंगळेंल्लमं नेंरेंयें कल्तु नवयौवन प्राप्तरप्पुदुं वज्रजंघं शशिमालेंयेंब तन्न मगळ्वेंरसु मूवत्तिर्वर् कन्नेंयरं लवंगें कल्याणोत्सवदिं मदुवेंयं माडिदिबळियमं कुशंगें पृथ्वीपुरनाळ्व

---

आश्वास—१६

लक्ष्मीरमण एवं यशोकामिनी पति माना जानेवाला श्रीराम ने दोष परिहार निमित्त उचित धर्मकार्य संपन्न कराने के उद्देश्य से चन्द्रकलश को नियुक्त किया। १ चन्द्रकलश के आदेश और निर्देश के अनुसार पुरोहित हर रोज धर्मकार्य में निरत था कि इधर,— सीतादेवी के गर्भ को नौ महीने हुए और श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन श्रवण नक्षत्र में देवेन्द्र और चन्द्र के समान जुड़वा वच्चों को जन्म दिया। २ उन जुड़वे वच्चों के जातकर्मादि कार्य बड़ी धूमधाम से कराये गये। शुभ दिन के शुभ मुहूर्त में उनका नाम लव और कुश रखा गया। शुक्ल पक्ष के चन्द्र के समान शैशव विताने के बाद,— उन्हें सिद्धार्थ नामक गुरु से विद्या दिलायी गयी तो उन्होंने चौसठ विद्याओं का ऐसा अध्ययन किया कि वे संसारभर में असमान हुए। ३ इसके अतिरिक्त शस्त्रास्त्र विद्याओं को सीखकर यौवनावस्था को प्राप्त किया तो वज्रजंघ ने लव को अपनी कन्या शशिमाला और अन्य वत्तीस कन्याएँ देकर लव से विवाह करवाया। तत्पश्चात कुश के लिए पृथ्वीपुर के राजा पृथु और उसकी रानी की कन्या कनकमाला का हाथ माँगने के लिए अपने मंत्रियों को,

पृथुगमातनरसियप्पमृतमतिगं पुट्टिद कनकमालेयं बेडि पेर्गडेगळ-नट्टुवुदुमातनिंतेंदं—

अेन्न मगळं मदीय कु- ※ लोन्नति पेर्रपिगुवन्नवज्ञात कुलं- ।
गेन्ननेरेदाट्टिदं गड ※ तन्नळ्वं वज्रजंघनें नच्चिदनो ॥ ४ ॥

अेंदु बंद पेर्गडेगळं गर्जिसि विसर्जिसुवुदुमवर् बंदवन दुर्विनय वचनयं बिन्नविसे वज्रजंघनति कुपितनागि मेलेत्तिबर्पुदुं व्याघ्ररथनेंब पृथुविन परमबंधु मुळिदु पोणर्केगे बर्पुदुमवननवयवदोळे कादि पिडिदु कडुकेय्दु मीरि मेलेळ्तर्पुदुं पृथु केळ्दु तानुमिदिरेत्ति बर्पुदुं वज्रजंघनरिदु पुंडरीकिणीपुरक्के तन्न मगंगे बळियनट्टुवुदु-मातनोडने समस्त सामग्री सहितनागि—

कन्नेयनीयद पृथुवं ※ बन्नमनेय्दिसलोर्डचि मुनिसनुविसे तो- ।
र्पनम्म कूर्पनेंदु स- ※ मुन्नत वीर्यर् लवांकुशर् तरिसंदर् ॥ ५ ॥

अंतु तरिसंदु वज्रजंघनोळ् बंदुकूडुवुदुमदं पृथुकेळ्दु वंग मगधादि विषयदरसुमक्कळं कूडिकोंडसंख्यात बलसमेतनागि पोरमट्टोड्डि नेरेदु कादि लवांकुशर्गे सोल्तोडुवागळवररियद कुलदवर्गे बेन्नीवुदु

---

भेजा तो वह (पृथु) बोला— मैं अपनी कन्या किसी अज्ञात कुल के अनाथ को देकर अपने कुल पर कलंक लगवा लेने के लिए तैयार नहीं हूँ। वज्रजंघ अपने आपको क्या समझ बैठा है? ४ ऐसा कहकर गरजकर आये हुए मन्त्रियों का अपमान करके वापस भेजा। उन्होंने लौटकर पृथु की अभिमान भरी बातें बतायीं। इससे अत्यन्त कुपित होकर वज्रजंघ चढ़ाई करने के लिए अपनी सेना के साथ पृथ्वीपुर की ओर बढ़ रहा था कि पृथु का परम बन्धु व्याघ्ररथ भिड़ गया। उससे लड़कर उसे वन्दी बनाकर वज्रजंघ आगे बढ़ा। उसे सुनकर कुपित होकर पृथु स्वयं युद्ध के लिए तैयार हुआ। इसे जानकर पुंडरीकिणीपुर में गुप्तचरों को भेजकर वज्रजंघ ने अपने बेटे को सूचना दिलायी तो वह अपनी समस्त सेना के साथ (पृथ्वीपुर की ओर) निकल पड़ा,— अपनी कन्या देने से इनकार करनेवाले पृथु को युद्ध में पराजित करने के लिए तैयार होकर लव-कुश ने भी अपनी वीरता-कुशलता प्रदर्शित करने का निश्चय किया। ५ —इस तरह निर्णय करके वज्रजंघ से आ मिले तो खबर पाकर पृथु वंग, मगध आदि राज्यों के राजकुमारों के साथ अगणित सेना लिये युद्ध में उतरा। लेकिन युद्ध में लव-कुश से पराजित होकर भाग खड़ा हुआ। 'अज्ञात कुल के बच्चों से पराजित होकर

निमगे पसगेयल्तेंदु मूदलिसुत्तुं मुट्टेवर्पुदुं पृथु पोगलेडेगेट्टु कैमुगिदेन्न गेय्द दोषक्कं क्षमियिसुवुदेंदु विनतनागे लवांकुशर् क्षमियिसुवुदु मातनवरं तन्न पोळलुगुय्दु कुशंगे कनकमालेयं कुडुवुदुमापोळलोळोंदु दिवसमिर्दु मरुदेवसं वज्रजंघनं पुंडरीकिणीपुरक्कं कळिपि लवांकुशर् दिग्विजय प्रयाणभेरियं पोयिसि वंगमगध विषयंगळादियागे सकल विषयंगळं वाय्केळिसि गंगेयं दाटि कैलास नगदुत्तर दिग्भागमनेय्दि सिंधुवं मुट्टेवंदु पश्चिमसमुद्रतीरंबिडिदु नडेदु कप्पंगोंडु सिद्धदिग्वि-जयर् सकल राज समाजंबेरसि बरे मगुळ्दु बंदु महाविभूतियिं पुंडरीकिणीपुरमं पोक्कु सुखदिनिर्पुदुमित्तल्—

जानकियिर्दे डेयं हिं- ※ सानंदं तिळिदु नारदं बंदु नभो-।
यानदोळे वज्रजंघ म-※ हीनाथन पुंडरीकिणीपुरमं पोक्कं ॥ ६ ॥

अंतु पुरमं पोक्कु लवांकुशरं काण्बुदुमवरिच्छाकारंगेय्दु मणिमयासनमं कुडुवुदुं रामलक्ष्मणरंते महानुभावरागिमेंदु परसुवुदुं—

अवर कुलवावुदवरा- ※ ववनीवल्लभ तनूभवर् पौरुषमे-।
नवगेंदति कौतुकदिं ※ लवांकुशर् मायजोगियं बेसगोंडर् ॥ ७ ॥

---

भागना शोभा नहीं देता' कहकर उपहास करते हुए पीछा किया तो पृथु ने हाथ जोड़कर लव-कुश से अपनी गलती के लिए माफी माँगी। उन्होंने उसे माफ कर दिया तो उन्हें अपने राज्य में ले जाकर वहाँ कुश का विवाह अपनी कन्या कनकमाला से करा दिया। वे एक दिन वहाँ रहकर दूसरे दिन वज्रजंघ को पुंडरीकिणीपुर भेजकर स्वयं दिग्विजय भेरी बजवाकर वंग, मगध आदि देशों को पराजितकर, गंगा नदी को पार करके, कैलासनगर के उत्तर भाग में पहुँचकर पश्चिम दिशा के समुद्रतट से दक्षिण की ओर बढ़कर भिड़नेवाले राजाओं को पराजितकर, लगान लेकर, दिग्विजय को सफल बनाकर, बड़ी धूमधाम से पुंडरीकिणीपुर में प्रविष्ट होकर सुख से रह रहे थे कि इधर,— हिंसानन्द नारद सीता के निवासस्थान को पहचानकर आकाशमार्ग से आकर पुंडरीकिणीपुर में प्रविष्ट हुआ। ६ इस तरह आकर नगर में प्रविष्ट होकर लव-कुश से मिला। उन्होंने नारद को प्रणाम करके उचित आसन देकर सत्कार किया तो राम-लक्ष्मण-से महानुभाव बनकर अमर बनने का आशीर्वाद दिया,— आशिर्वचन सुनकर लव-कुश ने आश्चर्य से नारद से पूछा कि ये राम-लक्ष्मण कौन हैं? वे किस कुल के हैं? वे किस राज्य के राजा हैं? किसके बेटे हैं? किस तरह के पराक्रमी हैं? ७ प्रश्न सुनकर

अंतु बेसगोळ्वुदुं नारदनिंतेंदनवरिक्ष्वाकु वंशद दशरथमहीनाथन तनूभवर् जनकन मगळप्प सीतादेवि रामदेवर महादेवियागि सुख संकथा विनोददोळिरलोंदु दिवसं दशरथ महाराजं वैराग्य परनागि दीक्षेगोळलुद्योगंगेय्दु रामनं करेदु राज्यपट्टमं कट्टलेंदिर्पुदुमा समयदोळ् कैकामहादेवियदं केळ्दु बेगं बंदु देवरेनगे कारुण्यंगेय्द मेच्चं दयगेय्दुदेंदु बिन्नपंगेय्वुदुं तपोविघ्नमप्पुदु पोरगागे निन्नमेच्चिदुदं बेडिकोळ्ळेंबुदुं भरतंगे राज्यमं कुडुवुदेने विस्मयचित्तनागि दशरथनोंदुमं नुडियलरियदिर्पुदुं तंदेयनन्नियं पालिसलेंदु रामस्वामि भरतंगे राज्यमनित्तु दंडकारण्यदोळिरे रावणं सीतादेवियं कंडासक्तनागि तन्न कुलाचरणंगेट्टु कळ्दुकोंडु पोदनेंदा वृत्तांतमनाद्यंतमेय्दे पेळ्दु मत्तमिंतेंदं रामलक्ष्मणररिदु समस्त विद्याधर सहित सुग्रीव प्रभामंडल हनुमत्सहितरागेत्ति पोगि रावणनं कोंदु त्रिखंड मंडलाधिपति गळागि विभीषणंगे लंकेय राज्य पट्टंगट्टि दिग्विजयमं साधिसि मगुळ्दुबंदु अयोध्येयोळ् सुखदिं राज्यंगेय्युत्तुमिरलोंदु दिवसं रामंगे जनपद जनंगळ् नेरेदु बंदु सीतादेवियनोळकोंडिर-

---

नारद ने यूँ कहा— वे इक्ष्वाकुवंश के दशरथ के पुत्र हैं। राम, जनक की कन्या सीतादेवी से विवाह करके सुख से रह रहा था कि वैराग्य-परवश होकर दशरथ ने तपस्या का निर्णय किया और इसी उद्देश्य से राम को सिंहासन सौंपने की तैयारी कर रहा था कि (इस) विषय को जानकर कैकेयी वहाँ तुरन्त आयी और उसने आग्रह किया कि पूर्व में उसे दिये गये वचन को अब पूरा करें। दशरथ ने कहा— कोई ऐसा वरदान माँगो जो मेरी तपस्या में बाधक न बने। कैकेयी ने भरत को राज्य देने की बात कही तो दशरथ विस्मयचित्त एवं अवाक हो, कुछ न समझकर चुप था कि राम पिता के वचन-पालन निमित्त भरत को राज्य सौंपकर स्वयं सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में रह रहा था। सीता को देखकर रावण मोहित हुआ और अपने कुलाचार को भुलाकर सीता का अपहरण किया। इस तरह नारद ने तब तक की आद्यांत घटनाओं को सविस्तार कह सुनाया। तत्पश्चात राम-लक्ष्मण को पता लगने पर समस्त विद्याधरों के साथ सुग्रीव, प्रभामण्डल, हनुमान आदियों ने लंका पर आक्रमण करके, रावण को मारकर, विभीषण को त्रिखण्डमण्डल-का अधिपति बनाकर लंका का सिंहासन देकर, दिग्विजय करके पुनः लौटकर अयोध्या में सुख से शासन कर रहे थे। एक दिन ग्रामीणों के आकर यह कहने पर कि कलंकिनी सीता के साथ रहना कुल के लिए

लागदेंदपवादमं पोंदिसि नुडियें लक्ष्मीधरनं करेंदु कट्टेकांतदोळ् पेळे लक्ष्मीधरं सीतादेवि महासतियुं गुणवतियुमप्पुदरिंदीगळी नुडिनिमगुसिरल् तक्कुदल्लेंदु करं प्रार्थिसि देवरेनगे कारुण्यंगेय्वों-डिदोंदं क्षमियिसुवुदेंदोडेम्माज्ञेयं मीरदिरिन्नुमिदर्के नीनेनुमं नुडिय-दिरेंदु लक्ष्मणनं मार्नुडियदंतु माडि जनपदद पळिगेवयिसि नीवा परमेश्वरिय गर्भदोळिर्देंदु तोरेंदु कृतांतवक्त्रनेंब तन्न पडेवळनं करेदु पोगि अरण्यदोळीडाडि बायेंदु पेळ्वुदुमातं तंदीडाडि पोपुदुं वज्रजंघं कंडनुबंध स्नेहदिंदोडगोंडु बंदु सीतादेविगे बेसकेय्युत्तिर्पुदुं नीमुं पुट्टिदिरेंबुदनरिदु बंदेवावदुकारणदिनवर् निम्म तंदेविरप्पुदरिंदवर पराक्रम सौंदर्यमं पोलवरागिमेंदु परसिदेवेंबुदुमदं केळ्दु कदनकेळि निरंकुशनंकुशनिंतेंदं—

तक्कर मातं केळदे ॥ तक्कुमेंयनुळिदु तोरेंदु गुणवतियं पा-।
पक्कंजद जडमतियं ॥ तक्कुदे पोगळल्के रामनं निर्गुणनं ॥ ८ ॥

एंदयोध्यानगरविल्लिगेनितुटेंबुदं नारदं नूरय्वत्तु योजनमेंने केळ्दाक्षणदोळे समस्तबलंबेरसेत्ति नडेदु कतिपय दिनक्कयोध्ये-मनेय्दि हस्त्यश्व रथ पदाति बलमनोड्डि, लवांकुशर् सिंधुरारूढरागि

कलंकप्राय है, राम ने लक्ष्मण को एकान्त में बुलाकर सारी बातें बतायीं। लक्ष्मण ने बताया कि सीता गुणवती है, उसे कलंकिनी कहकर निन्दा करना आपको शोभा नहीं देता। उसने राम से निवेदन किया कि सीता को जंगल में छोड़ आने की आज्ञा मुझे न दें। लेकिन राम के यह आदेश देने पर कि इस विषय में बहस मत कर, लोकापवाद को निर्लक्ष्य करने से डरकर जब तुम दोनों सीता के गर्भ में पल रहे थे कि कृतांतवक्त्र नामक सेनापति को बुलाकर यह आज्ञा देने पर कि सीता को जंगल में छोड़ आओ। उसने ऐसा ही किया। वज्रजंघ ने सीता को वहाँ देखा और विषय जानकर धर्मबाँधव्य से यहाँ ले आकर देखभाल की। यह जानकर कि तुम दोनों ने जन्म लिया है, मैं तुम लोगों को देखने के लिए चला आया। राम तुम लोगों का पिता होने के कारण मैंने तुम लोगों को वैसा ही महान बनने का आशीर्वाद दिया। इसे सुनकर कुश ने कहा—योग्य व्यक्तियों की सलाह न मानकर, निर्मम होकर गुणवती पत्नी को त्यागकर, पाप और निन्दा से न डरनेवाले अविवेकी राम की इस तरह प्रशंसा करना उचित है? ८ तत्पश्चात् कुश के यह पूछने पर कि अयोध्या यहाँ से कितनी दूरी पर है, नारद ने बताया कि डेढ़ सौ योजन की दूरी पर है। तुरन्त चतुरंग सेना को तैयार करके लव-कुश समस्त

बहि:पुरदोळ् बीडं बिड्वुदुमित्त सिद्धार्थ क्षुल्लक नारदं प्रभामंडल-नल्लिगे पोगि लवांकुशर तेरननेल्लमनरिपुवुदुमातं व्याकुल चित्त-नागि जनक विदेहिगळ्वेरसु पुंडरीकिणीपुरक्के वर्पुदुं सीतादेवि कंडिदिरेळ्दु तंदेगं तायगमण्णंगमेरगि पोडमट्टु मन्युमिक्कु दुःखं-गेय्दिंबळियं प्रभामंडलं रामलक्ष्मणरदेसेयिं कूसुगळ्गे प्रमादमक्कु-मदरिंदयोध्येगे पोपं विजयंगेय्यिमेंदु सीतादेवियं लवांकुशररसियरं तन्न विमानमनेरिसिकोंडु नभोमार्गदिं बदुं लवांकुशरोळ् कूडुवुदु-मित्तल्—

परचक्रमेम्म बाहा * परिघक्किदिरेत्ति बंदुदेंदति कुपितर् ।
सेरगं पारदयोध्या-* पुर गोपुरमं बलाच्युतर् पोरमट्टर् ॥ ९ ॥

अंतु पोरमट्टु बंदु कैवीसुवुदुं—

कुलवाहिनियोळ् तागुव*कुलवाहिनियंते तागि कळेदुदु जयमं- ।
गेलेकादि रामलक्ष्मण *बलमं संग्रामदोळ् लवांकुशर बलं ॥ १० ॥

लवन बलक्के राघव बलं पेरपिगे कडंगि राघवं ।
लवनोळिदिर्चे राघवन केतनमं धनुवं वरूथमं ॥

---

सेना के साथ मिलकर, स्वयं हाथी पर सवार होकर कुछ ही दिनों में अयोध्या के निकट पहुँचकर नगर के बाहर डेरा डाला । इधर कलहप्रिय नारद प्रभामण्डल के पास पहुँचकर लव-कुश से सम्बन्धित सारी बातें बताने पर व्याकुलचित्त हो जनक विदेही के साथ पुंडरीकिणीपुर पहुँचा । उन्हें देखकर सीता उठकर माता-पिता और भाई को प्रणाम करके गद्गदित कंठा हो विलाप करने लगी । प्रभामण्डल ने यह सोचकर कि राम-लक्ष्मण से लव-कुश को हानि पहुँच सकती है, अतः हमें तुरन्त पहुँच जाना चाहिए, सीता, लव-कुश की पत्नियों और जनक विदेही को अपने विमान में बिठाकर आकाशमार्ग से आकर लव-कुश से मिला । इधर,—राम-लक्ष्मण यह जानकर कि शत्रु सेनाओं ने हमारे शासन के विरुद्ध अपनी सेना के साथ आक्रमण किया है, किसी की सहायता लिये बिना ही अपनी सेना के साथ युद्ध-सन्नद्ध हो अयोध्या से निकल पड़े । ९ इस तरह आकर, सम्मुख खड़ी शत्रुसेना को हाथ हिलाकर बुलाने पर,—महानदी से महानदी टकराती-सी दोनों सेनाएँ भिड़ गयीं । लव-कुश की सेना राम-लक्ष्मण की सेना को पराजित कर विजयी बनी । १० राम की सेना लव की सेना से लड़कर पीछे हटी । स्वयं राम लव के सम्मुख हुआ । लव ने राम के ध्वज, धनुष और रथ को दो-दो बार तोड़

लवनुडि यॆच्चॊडिमॆ विरथं रघुनंदननादनावना- ।
हवदॊळिदिर्चि जीविसुववं लवनं जवनं महीभुजं ॥ ११ ॥
आगळॆ मत्तमॊंदु रथमं रघुनंदननेरि मार्गण- ।
क्कागसमॆय्ददंतिसुवुदुं तरिदॊट्टिदनंतवं मनो- ॥
वेगदिनस्य संततिगळिं सुर संतति राघवंगॆ चा- ।
पागमदॊळ् लवं शतसहस्र गुणं मिगिलादनॆंबिनं ॥ १२ ॥

अंतु सामान्यास्त्रंगळं खंडिसॆ राघवं दिव्यास्त्रंगळॊळं कादि लवनं गॆलल् नॆरॆयदॆ विस्मित चित्तनागिर्पिनमित्तल्—

भखशदिदं कुशनॊळ् * निरंकुशं लक्ष्मणं पितृव्यं दशकं- ।
धरनॊळ् नॆरॆदंतिरॆ शर * परिणतियं नॆरॆयॆ मॆरॆदु कादुत्तिर्दं ॥ १३ ॥

अंतचित्य युद्धंगॆय्व समयदॊळ्—

परशुविनि लक्ष्मीधर * नुरगॆलननंत वीर्यनं कुशनिडॆ कण् ।
तिरुगॆ बरॆ मरॆदु मॆय्यं * परवशदिं केतुदंडमं नॆर्मिदं ॥ १४ ॥

अंतु मूर्छितनागि—

नीडरिनॆळ्चित्तु रण- * क्रीडासक्तं सरक्त लोचननिवनं ।
नाडाडिय कॆंदुगळिं * कूडदु गॆललॆंदु चक्रि चक्रमनिट्टं ॥ १५ ॥

---

दिये तो राम विरथी बना। शौर्यशाली लव से युद्ध करके जीतना यम के लिए भी संभव है? ११ राम ने तुरन्त और एक रथ पर सवार होकर लव की ओर बाण-जाल छोड़ा। लव ने उन सब को बीच में ही काट दिया। राम के समस्त बाणों को खंडन करके यह सिद्ध कर दिया कि धनुर्विद्या में वह राम से सौगुना अधिक योग्य है। १२ इस तरह लव ने सामान्य अस्त्रों को काट दिया तो राम ने दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया। फिर भी लव को पराजित करने में सफल न हुआ। इससे राम विस्मयचित्त हुआ। इधर,— लक्ष्मण अधिक पराक्रम से कुश से उसी तरह लड़ रहा था जिस तरह कुश का चाचा (लक्ष्मण) रावण से लड़ा था। सब को महसूस हुआ कि उस युद्ध में लक्ष्मण का शरकौशल अद्भुत था। १३ इस तरह असाधारण युद्ध चल रहा था कि,— कुश ने लक्ष्मीधर के वक्षस्थल पर परशु से आघात किया। लक्ष्मण की आँखों के सामने अंधकार छा गया और वह रथ के ध्वज-दण्ड का आधार लेता हुआ भी पृथ्वीपर गिर पड़ा। १४ इस तरह मूर्छित होकर,— लेकिन कुछ ही देर में होश में आकर युद्धक्रीड़ा में आसक्त लक्ष्मण, जिसकी आँखें रक्तिम बन गयी थीं, ने इस विचार से

इडे कडुपिंदं कुशनं * नडलोल्लदे चक्ररत्नमिदेंसेगमदे ।
नेडेयाडुतिर्दुदो सा- * वोडरिसदरनाव कैदुगळुमुर्चुगुमे ॥ १६ ॥

आगळंकुशं निरंकुशनेनिसि—

सव्यापसव्यमेच्चु पि- * तृव्यन कैविडिद विजयवधुवं कैकों- ।
डव्याज शौर्यनंकुश * नव्युत्पन्ननवोलितु मोरेदप्पुवने ॥ १७ ॥

अंतंकुशं गेले कादे लक्ष्मणं तन्न मनदोळ्. नम्म पुण्यप्रभावं तोलगिदुदीगळिवर् बलदेव वासुदेवरादरमगजय्यरेंदु सुरगतियं निश्चयिसि समर संरंभ मनुळिदिर्पुदुमत्त सिद्धार्थ क्षुल्लक नारदं नीरद पथदोळिर्दु बलदेव वासुदेवरेंब महिमे निमगल्लदे पेरगे सल्वुदे पेळिमेंदु नगुत्तुं इवर् सीतादेविय तनूजर् लवांकुशरेंवर् नम्म जननियं विचारिसदे पोरमडिसि कळेदिरेंदु मुळिदु निम्म-नीनेरदिं काणल् बदरेंदरिपुवुदुमति मुदित हृदयनागि—

धनुवं दिव्येषुगळं * तनुत्रमं कळेदु लक्ष्मणं दशरथ रा- ।
मननेय्दे बंदु कैमुगि- * दु नमन्मणिमयकिरीटनंदितेंदं ॥ १८ ॥

---

कि सामान्य बाणों से इसे पराजित करना असंभव है, चक्र को उठा लिया। १५ चक्र को बड़े वेग से फेंका तो वह कुश को स्पर्श किये बिना ही उससे अनतिदूर पर रुक गया। जिसे मृत्यु नहीं आती उसे कौन-सा आयुध आघात पहुँचा सकता है? १६ तब किसी के भी शौर्य की परवाह किये बिना कुश ने,— दायें बायें हाथों से बाण प्रयोग करके चाचा के वश में जो विजयश्री थी उसे अपने वश में करके अद्वितीय वीर (कुश) युद्धभूमि में सुशोभित हुआ। १७ इसे देखकर लक्ष्मण ने मन ही मन सोचा— हमारे पुण्य प्रभाव समाप्त हुए हैं। अब ये हमें पराजित कर स्वयं बलदेव वासुदेव बन गये हैं। अब देवगति पाने के अलावा और कोई उपाय नहीं है। उतने में कलहप्रिय (क्षुल्लक) नारद ने आकाशमार्ग में रहकर बताया— बलदेव वासुदेव बनने की महिमा आप लोगों के अलावा और किसे प्राप्त हो सकती है? ये दोनों सीतादेवी के पुत्र हैं; लव-कुश हैं। विचार किये बिना ही अपनी माता को जंगल में त्याग देने के कारण क्रुद्ध होकर आप लोगों को देखने के लिए इस तरह आये हैं। इस बात से लक्ष्मण अत्यन्त सन्तुष्ट होकर,— धनुष-बाणों को, कवच को त्यागकर श्रीराम के पास आकर, हाथ जोड़कर, रत्नमय मुकुट धारण किये हुए शीश को झुकाकर यूँ बोला—। १८ ये दोनों बालकरूप में, शौर्य में आपके समान हैं। ये अन्य (पराये)

ईतंलगळिर्वरं रू- ⁕ पतिशमदोळसम शौर्यदोळ् निम्मन्नर् ।
सीतादेविय सूनुग- ⁕ ळी तेरदिं काणलेंदु बदंर् निम्मं ॥ १९ ॥

अेंदु—

ननगे लवांकुशागमन वृत्तकमं निळिवंतु पेळे त- ।
न्ननुजनदर्के विस्मयमुसुत्सुक भावमुमादमप्पुदुं ॥
तनयरमागळंते षडेंदंतनुरागमनप्पुकोय्दु भों- ।
कन रथदिंदमंदिळिदु बंदनुपेंद्रयुतं रघूद्वहं ॥ २० ॥

आ समयदोळ्—

आनेय मेगणिंदिळिदु संभ्रमदिंदिर्वदु राघवं ।
गानतरागि मौळिमाणि दीप्ति जलंगळनीयें पाद्यमं ॥
सूनुगळळ्कर्रि तेगेदु तळ्किसिदं निजदेहकांति सं- ।
तान मरुत्प्रवाहिनियोळिर्वरुमंदवगाहमिर्पिनं ॥ २१ ॥

क्रमदिं लवांकुशर् वि- ⁕ क्रम धनरतिहर्ष भारदिंदेरगे निज- ।
क्रम युगळक्काशीर्वा- ⁕ द मुखर मुखनादना सुमित्रापुत्रं ॥ २२ ॥

अंतु राम लक्ष्मणर् तनूभवरंग परिष्वंग सुखानुभवदिं तणिदु लवांकुशर पुरुषाकारमं मनदे कोंडानंदभाष्प जयलुलित लोचनरुं रोमांच कंचुकित शरीररुमागिर्पिनमत्त सीतादेवि तनूभवर भुज-बलमुमं तंदेविरोळोंदिदुदुमं विमानारुढे कंडु संतोषंबट्टु वियन्मा-

---

नहीं हैं; सीतादेवी के पुत्र हैं। आपसे मिलने के लिए इस तरह आये हुए हैं। १९ ऐसा कहकर,— अपनी जानी हुई सारी बातें राम को बताने पर राम विस्मित एवं उत्सुक हो सद्य ही पुत्र प्राप्त-सा अनुराग दिखाकर, चढ़े हुए रथ से तुरन्त उतरकर अनुज लक्ष्मण के साथ आगे बढ़ा। २० उस समय,— लव-कुश ने अपने हाथी से उतरकर सम्मुख चलकर, श्रीराम के चरणकमलों में शीश नवाया तो उनके मुकुटों की कान्ति पादोपचार कर रही थी कि राम ने उन दोनों को अपने शरीर से ऐसा लिपटा लिया मानो अपनी देहकान्ति को संतानरूपी जलप्रवाह में अपने को डुबा रहा हो। २१ श्रम में शौर्यधन माने जानेवाले लव-कुश ने आनन्द के आवेश में चाचा को प्रणाम किया और लक्ष्मण ने युगलकिशोरों को आशीर्वाद दिये। २२ इस तरह राम-लक्ष्मण बालकों को सीने से लगा लेने के सुखानुभव से तृप्त होकर लव-कुश के देह-सौन्दर्य का अवलोकन कर, आनन्द विभोर होकर, रोमांच का अनुभव कर रहे थे। उधर सीतादेवी विमान में सवार होकर बेटों का पराक्रम प्रदर्शन

र्गदिं पुंडरीकिणीपुरक्कॆ पोदळित्त रामलक्ष्मण लवांकुशर् पुष्पक-विमानमनेरि सुग्रीव विराधित विभीषण हनुमदंगदादि वियच्चरर्रिं पॆररुमरिकॆय भूमि गोचर महीभुजरिं परिवृतरागि कैगॆय्दु साकेत-पुरमं पॊक्कु सुखदिनिर्पुदुमॊंदु दिवसं सुग्रीव सुषेण जांबव प्रमुख-रधिराजनल्लिगॆ बंदवसरंबडॆदु—

पर विषयदॊळिरिपुदॆ स-* च्चरित्रॆयं देव जानकीदेवियनिं ।
बरिसुवुदिदनेगॊळ्वुदु * करुणिपुदॆमगॆंदु विनयमं प्रकटिसिदर् ।। २३ ।।

अॆंदु विन्नविसॆ राघवनिंतॆंदं—

लोकापवाद भयदिं- * दाकॆयनां कळॆदॆनवगुणारोपणदिं ।
पो कळॆदॆनॆ सच्चरिदॊ- * ळाकॆगॆ समरारुमिल्लदुदनानरिवॆं ।। २४ ।।

अदरिन्नॆल्लरुमरियॆ दिव्यदिनपवादमं कळॆवंतुमाळ्पुदॆंबुदुमवर् महाप्रसादमॆंदु बीळ्कॊंडु पुंडरीकिणीपुरक्कॆ वदुं सीतादेवियं कंडु कॆमुगिदु रामदेवर् कारुण्यंगॆय्दु तॆरननरिपॆ वैदेहि विषय विरक्तॆ दिव्यदॊळ् शुद्धॆयागी तपंबडुवॆनॆंदु मनदॊळ् परिच्छेदिसि पुष्पकविमान-मनेरि गगनमार्गदिं बंदयोध्यॆयनॆय्दि नेसर् पडुवुदुं महेंद्रोद्यान-दॊळिरुळं कळिपि मरुदिवसं राघवनं कंडु—

---

और पिता-पुत्र मिलन का दृश्य देखकर संतुष्ट होकर पुंडरीकिणीपुर लौट पड़ी। दूसरी ओर राम-लक्ष्मण लव-कुश के साथ पुष्पक विमानपर सवार होकर सुग्रीव, विराधित, विभीषण, हनुमान, अंगद आदि खेचर एवं अन्य वीर क्षत्रियों को साथ लेकर अयोध्या में प्रविष्ट होकर सुख से रह रहे थे। एक दिन सुग्रीव, सुषेण, जाम्बव आदि प्रमुख राम के पास आये और जल्दीबाजी में निवेदन किया कि,— दूसरों की बातों में आकर सच्चरित्र को भुलाना नहीं चाहिए; अत: जानकी को बुला लिया जाय, हमारे इस आग्रह को स्वीकार करें। २३ ऐसा निवेदन करने पर राम ने यूँ कहा— लोकापवाद के डर से मैंने उसे त्याग दिया, न कि अवगुणों के कारण। मै जानता हूँ कि शुद्धचारित्र्य में उसके समान और कोई नहीं है। २४ इसलिए सबके सम्मुख दिव्य अग्नि स्पर्श से अपवाद का निवारण करके उसे लिवा लायेंगे। ऐसा कहने पर, वैसा ही करने के लिए, वे सब पुंडरीकिणीपुर आये और सीता से मिलकर, हाथ जोड़कर राम के विचार को कह सुनाया। सीता ने मन ही मन यह निश्चय करके कि विषय-सुख से विरक्त होकर तपस्या करूँगी, पुष्पक विमान पर सवार होकर आकाश-मार्ग से होते हुए अयोध्या पहुँचकर,

अविचारं कळेदेन्ननंतिनितु नोवं माडिदिर् देवरें- ।
दु विषादं मिगे नोंदु सीतें नुडिदळ् तानंतदं केळ्दु रा- ॥
घवदेवं जनतापवाद भयदिंदी खेदमं माडिदें ।
भुवन ख्यातमेनिप्प निन्न चरितं पेळार्गमज्ञातमे ॥ २५ ॥

अदरिं लोक प्रत्ययमप्पंतु माळ्पुदेने महाप्रसादमेंदु पिरिदप्पदोंदु कोंडमनगुळिसि चंदनदगरुविनिंधनंगळुमं सुगंध द्रव्यंगळुमनिक्कि किर्च तगुळ्चुवुदु मा समयदोळ् सकल भूषणभट्टारकर केवलज्ञानपूजेगे वर्प देवनिकायदोळ् देवेंद्रं सीतादेविय महोपसर्गमनरिदु मेघकेतननेंब देवनं नीनी महासतियुपसर्गमं पिंगिसि बर्पुदेंदु नियमिसि पोदनित्त मेघकेतननुरियुत्तिर्द कुंडदसमीपद वियन्मंडलदोळ् विमानारुढनवलोकिसुत्तिर्दना प्रस्तावदोळ् सीतादेवि तदग्निकुंडदेरियं मेट्टि--

नेरेद वियच्चरामर नर प्रमुखर्कळुमेय्दे केळे सु- ।
स्वरमिळिकेय्ये कोकिल कल स्वरमं नुडिदळ् वसुंधरा ॥
वरनेनिसिर्द राघवनोळल्लदे रावणनादियागे मि- ।
क्करोळळिपं मनक्के तरे मारणमक्केनगी कृषानुविं ॥ २६ ॥

---

सूर्यास्त होनेके कारण महेंद्रोद्यान में रात बिताकर दूसरे दिन राम से मिलकर,— दुखी होकर बोली— विचार किये बिना मुझे त्यागकर, मुझे घोर कानन में कष्ट का पात्र बनाया। इसे सुनकर राम ने कहा— लोकापवाद के डर से ही मैंने वैसा किया; जगत्प्रसिद्ध तेरे सच्चरित्र को कौन नहीं जानता? २५ अतः उसने कहा, ऐसा प्रायश्चित् करे जिसे सब लोग जान जायं, देख लें। सीता ने राम की आज्ञा को स्वीकार कर, एक गहरा अग्निकुंड खुदवाकर उसमें चन्दन अगरबत्ती आदि सुगन्ध वस्तु एवं सुगन्ध-द्रव्य डालकर अग्नि जलायी तो उस समय सकल भूषणभट्टारक की केवल ज्ञान-पूजा निमित्त जानेवाले देवताओं में से मेघकेतन नामक देवता को देवेन्द्र ने बुलाकर आज्ञा दी कि तुम सीतादेवी की अग्नि-परीक्षा में आनेवाली बाधाओं का निवारण कर आओ। मेघकेतन जलते हुए अग्निकुंड के ऊपर आकाशमण्डल में विमानारूढ़ होकर देख रहा था कि सीतादेवी अग्निकुंड की सीढ़ियाँ चढ़कर खड़ी होकर,— कोकिला-सी मधुर ध्वनि में, इतने जोर से बोली कि उपस्थित समस्त मानव, गंधर्व, खेचर, देवता सुन सके— भूपति राम के अतिरिक्त मैंने रावण आदि को चाहा हो तो दिखायी देनेवाली अग्नि ही मेरे लिए मरण बन जाय। २६ प्रतिज्ञापूर्वक ऐसा कहकर, पंचपरमेष्टियों को

अंदति प्रतिज्ञेगेय्दु पंचपरमेष्टिगळ्गे नमस्कारंगेय्दु धगद्ध-गिसि तिण्णमुरियुत्तिर्द कुंडदोळगे मेय्यनीडण्डे—

मरवट्टत्तु मरुद्गणं परिजनं बेच्चित्तु शोकाग्निर्यि- ।
दुरिदत्ताप्तजनं लवांकुशरोळादत्ताकुलं विह्वलं ॥
पिरिदादत्तु रघूद्वहंगे परितापं लक्ष्मणंगागळु- ।
व्वरमादत्तु लतांगि सीते पुगे तेजःपिंडमं कुंडमं ॥ २७ ॥

अंतु महासति नीरं पुगुवंते किच्चं पुगुवुदुं—

जळदेवते कोडुव तिळि-
गोळदोळगिर्पंते शीलवति सीते विनि- ।
श्चळमिरे मनदोळ् जिनपति
चळणं दळ्ळुरिय नडुवे कोडुत्तिर्दळ् ॥ २८ ॥

सतिय विशुद्धाचारं हुताशन प्रबल दाहिका शक्तियुमं ।
प्रतिबंधिसिदुदु चोद्यमे पतिव्रतागुणद महिमे साधारणमे ॥ २९ ॥

आगळाखंडलन बेसदिनिर्द देवनाकुंडमने पद्मषंडं माडियल्लि सहस्रदळ सुवर्ण तामरसमुमदर कर्णिकेय मेले सिंहासनमुमं विगुर्विसि तन्न देवियर्कळिना सरोवरदोळिर्द सीतादेवियनेत्ति तरिसि सिंहासनदोळिरिसि तानाकाशदोळिर्दु लोकक्केल्लमाश्चर्य-मागे पूविन मळेयं करेवुदुमदं कंडु—

---

प्रणाम करके धू-धू करके जलते हुए अग्निकुंड में कूद पड़ी,— तब देवतागण चित्रवत् निश्चल हुए; मानव डर गये; आप्तजन दुखाग्नि में झुलस गये, लव-कुश विह्वल हुए; राम को बुरा लगा; लक्ष्मण को परिताप हुआ। २७ उस महापतिव्रता ने प्रज्ज्वलित अग्निकुंड में, पानी में उतरी-सी प्रविष्ट हुई तो,— जिस तरह जलदेवता अत्यन्त शीतल पानी के तालाव में रहता है, उसी तरह शीलवती सीता निश्चल होकर अग्निकुंड में रहकर मन में जिनपति के चरणकमलों का स्मरण कर रही थी। २८ सीता के विशुद्धाचार ने अग्नि की प्रज्ज्वलित दहन शक्ति को शांत कर दिया। उसके चकित कर देनेवाले पतिव्रता गुण की महिमा संसार में सामान्य है। २९ तब देवेन्द्र का आज्ञावर्ती मेघकेतन ने उस अग्निकुंड में कमल समूह निर्माण किया और बीचोबीच हजार पंखुड़ियों का सुवर्णकमल की कर्णिका के ऊपर सिंहासन का निर्माणकर अपनी पत्नियों द्वारा सीतादेवी को उठवा लाकर बिठाया और स्वयं आकाश में रहकर ऐसी पुष्पवृष्टि करवायी कि सारा संसार आश्चर्यचकित

जनमेल्लमोंदे कोरलोळ्‌॥जनकात्मजेयं पतिव्रतागुण मणिमं-।
डनेयं पोगळ्दुदु सन्मा-॥र्ग निरतरं मेच्चि पोगळदिर्परुमोळरे।। ३० ।।
पोंजलगेयंते किच्चि-॥दं जानकि श्रद्धेयागे जननिय केलदोळ्‌ ।
संजात पुलक कलिका॥रंजित तनुगळ्‌ लवांकुशर्‌ कुळ्ळिर्दर्‌।। ३१ ।।

रामं रोमांचमं ताळ्दिदनणमोसेदं लक्ष्मणं बंधुवर्गं ।
प्रेमक्कावासमादत्तखिल परिजनं हर्षमं ताळ्दिदत्तु-।।
द्दामं पोण्मित्तु देवानक रुति कुलवृद्धर्कळेळ्दाडिदर्‌ दि-।
व्यामोदं गंधवाहं सुळिदुदु परसित्तळ्किरि राजलोकं।। ३२ ।।

आगळ्‌ रामस्वामि सीतादेविय समीपक्के बंदु—

क्षमियिसुवुदेनगे नीं मु-॥न्नमिर्द तेरदिं मदीय वल्लभेयागि-।
र्दमृतांशु वदने साम्रा-॥ज्य महिमेयोळ्‌ नेरेदु पडेय सुख संपदमं ।।३३।।

अेंदु नुडियॆ सीतादेवि रामस्वामिगितेंदळेन्न मुन्नुपार्जिसिद कर्ममेनगे पिरिदप्प दुःखमं माडिदोडा कर्मक्के मुळिवेनल्लदुळिद-वर्गदेके मुळिवें केडुळ्ळ संसारदोळप्पुदें केडिल्लद मोक्षसुखक्के कारणमप्प तपमं कैकोळ्वेनेंदु तन्न सहस्र कुंतलंगळं परिदु मुंदिक्-कुवुदुं—

---

हो जाय। उसे देखकर,— समस्त लोगों ने एक कंठ से सीता के पतिव्रता गुण की प्रशंसा की। सन्मार्ग में निरत लोगों के गुणों की प्रशंसा किये बिना रहना संभव है? ३० अग्नि-स्नान कर निकले हुए सुवर्ण की भाँति सीता अग्निकुंड में परिशुद्ध (विशुद्ध) हुई, इस अद्‌भुत को देखकर रोमांचित लव-कुश उसके पक्ष में बैठे थे। ३१ राम भी पुलकित होकर लक्ष्मण एवं प्रीतिविश्वास से सीता को निहारनेवाले अन्य बन्धुजनों के साथ, हर्षित हुआ। इस संतोष को व्यक्त करने के लिए देवदुंदुभी बज उठी। कुल की सधवाओं ने मन को आनन्द प्रदान करनेवाले सुगंध द्रव्यों का सिंचन किया। उसकी सुगंधि भूमण्डल में व्याप्त होकर आकाशमण्डल की ओर बढ़ी। ३२ तब राम सीता के पास आकर, बोला— सीता, तुम मुझे क्षमा कर दो; पूर्ववत्‌ मेरी पत्नी बनकर, साम्राज्ञी बनकर सुख-संपत्ति का उपभोग करो। ३३ ऐसा कहने पर सीता राम से यूँ बोली— मेरे पूर्वजन्म के कर्म ने मुझे इस जन्म में अतिशय एवं निरन्तर दुःख पहुँचाया है। जन्मान्तर के उस कर्म के प्रति मैं कुपित हूँ, अन्यों से कुपित क्यों होऊँ? इस संसार में होना भी क्या है? अतः दोषरहित मोक्षसुख के लिए कारणीभूत तपस्या को

सतिय परिच्छेदमें तन-* गतिदु:खमनुंटुमाडे मोह ग्रह पी-।
डितनागि राघवं मू- *छितनादं प्रिय वियोगमं सैरिपरार् ।। ३४ ।।

अंतु मूर्छितनागि शीतल क्रियेगळिनेंतानुमेळ्चत्तनन्नेगमित्त वैदेहि पृथुमति कंतियर पक्कदे तपंगोंडु महेंद्रोद्यानवनक्के पोगि सकल भूषण केवलि भट्टारकर सभेयोळिर्पुदुं—

मुच्चेदिळिदरसियोळ् बगे*बिच्चिरे शीलवति सीते पूण्दुदनेंतुं।
पुच्चळियळेन्नदळिपि * बेच्चरमा सभेगे राघवं वळिसंदं ।। ३५ ।।

अंतति व्यामोहदिं बंदु सकल लोकाधिपरिं परिव्रतरागिर्दं सकल भूषणकेवलिगळ सभेयनेय्दलोडं रामनमोहनीय कर्ममुपशमक्के सल्वुदुमानेयिंदिळिदु बंदु बलगोंडु पोरवट्टु कुळ्ळिर्दना सभेयोळ् पृथुमति गंतियर समक्षदोळ् दीक्षेगोंडिर्द सीतादेवियं कंडु—

त्रिदशर् पूजिसे मानवर् पोगळे शौचाचामरमं दिव्यदिं ।
विदितंमाडिदरार् महासतियरार् निम्मंदर्दि मोक्ष सं- ।।
पदमं माडुव दीक्षेगोंडरेनुतुं कैकोंडु लक्ष्मीधरं ।
मोदलागेल्लरुमळ्करिंदेरगि सीता संस्तवं माडिदर् ।। ३६ ।।

---

अपनाती हूँ। ऐसा कहकर सहस्रों संख्या की केशराशि को उखाड़कर राम के सम्मुख रख दिया,— सीता के इस तरह के वैराग्य ने ही राम को दु:ख पहुँचाया। इससे अतिशय मोहित राम मूर्छित हुआ। प्रियजनों के वियोग को कौन सह सकता है ? ३४ शैत्योपचार से मूर्छित राम जाग उठा। उतने में, इधर सीता पृथुमतिकंति के पक्ष में तप करके महेंद्रोद्यान में जाकर सकल भूषण केवली भट्टारक की सभा में रह रही थी,— होश में आने पर, पत्नी के निर्णय से मन ही मन हिचककर उसके निर्णय को वदलवा लेने की इच्छा से तुरन्त भट्टारक की सभा की ओर निकल पड़ा। ३५ इस तरह व्यामोह-वश होकर समस्त राजा महाराजाओं से आवृत्त सकल भूषण केवली की सभा को देखकर हाथी से उतरकर भट्टारक की प्रदक्षिणा लेकर, प्रणाम करके बैठ गया और पृथुमति-कंति के समक्ष दीक्षा ली हुई सीतादेवी को देखकर,— लक्ष्मण आदि ने सीता की स्तुति में कहा— देवताओं से पूजित, मानवों से प्रशंसित होकर पतिव्रता महिमा को अग्नि-परीक्षा से आपके समान किसने प्रज्ज्वलित किया है ? इसके अलावा संसार से विरक्त होकर मोक्ष पाने की आतुरता से आपके समान किसने दीक्षा ली है ? ३६

अंतु गुणस्तवनंगेय्दु दिविजसमेयोळिर्दु धर्ममं केळ्दिबळिक्कं विभीषणं सकलभूषण भट्टारकर्गे करकमलमं मुगिदु पूर्व जन्मदोळ् रामनावुदोंदु पुण्यमनुपार्जिसि सकल विद्येगळंकल्तु महाविभव सहितनादं मत्तं शौचाचार परायणनप्प विद्याधर वल्लभं रावणनाव पापंगेय्दनागि सीतादेविगे मरुळ्गोंडु पोदनार्गमसाध्यनुमभेद्यनुं जगद्विजयिमुमप्प रावणनं लक्ष्मणनावुदोंदु पुण्यंगेय्दनागि संग्रामदोळ् कोंदु भरत त्रिखंड मंडलाधिपतियादनदेल्लमं बेसंसिमेने—

मदनफणि निर्विषीकर-ण दिव्यमंत्र स्वनं जरामरणशिला- ।
विदळन टंकध्वनि पो-ण्मिदत्तु केवलिय मधुर गंभीर रवं ।। ३७ ।।

अी भरतद यक्षपुरद नयनदत्तनेंब परदंगमातन परदिति सुनंदेगं प्रथम जन्मदोळ् धनदत्तनेंब तनूजनागि जिनधर्ममं बिडदे नडेदु जीवितावधियोळ् सौधर्मकल्प गतनागि तदायुरवसानदोळ् श्रावस्तिपुरद परदं सम्यग्दृष्टि मेरुवेंबंगमातन परदिति धारिणिगं पद्मरुचिवेसर मगनागि जिनमार्गदोळ् नडेदु कडेयोळीशानकल्प-दोळ् पुट्टि तद्रायुरब्धियं नवेपीर्दल्लि बंदपर विदेहद विजयार्धनगद नंद्यावर्तपुरमनाळ्व नंदीश्वरनेंब विद्याधरंगमातनरसि कनकाभेगं

---

इस तरह स्तुति करके, सभा में रहकर, धर्मश्रवण के पश्चात विभीषण ने सकलभूषण भट्टारक को प्रणाम करके निवेदन किया— पूर्वजन्म में राम ने कोई एक पुण्य प्राप्त करके, समस्त विद्याओं को अर्जित करके महान यश प्राप्त किया। शुद्धाचार परिपूर्ण विद्याधरवल्लभ रावण किसी पाप-कार्य के कारण सीता को मोहित किया। किसी के लिए भी असाध्य, अभेद्य, विश्वविजयी रावण को जन्मान्तर के पुण्यफल से लक्ष्मण ने रावण को मारकर समस्त त्रिखण्डमण्डल का अधिपति बना, इनका सविस्तार विवरण बताने की कृपा करें। इस निवेदन को सुनकर,— सकलभूषण भट्टारक की गंभीर एवं मधुर ध्वनि कामरूपी सर्प का विप उतार देनेवाली मंत्रध्वनि के समान, वृद्धाप्य मृत्युरूपी शिला को भेदनेवाली बाणध्वनि के समान सुनाई पड़ी। ३७ इस भरतवर्ष के यक्षपुर के व्यापारी नयदत्त और उसकी पत्नी सुनंदा को प्रथम जन्म में धनदत्त नामक पुत्र हुआ। वह नियमितरूप से जिनधर्म का अनुसरण करता रहा और जीवित अवधि में सौधर्म कल्पगत होकर अवसान होनेपर श्रावस्तीपुर के व्यापारी सम्यग्दृष्टि मेरू और उसकी पत्नी धारिणी को पद्मरुचि नामक पुत्र हुआ और जिन जिनमार्गानुयायी बनकर, अंत में ईशानकल्प में जन्म लेकर आयुष्य बिताकर वहाँ से अपरविदेह के विजयार्ध पर्वत के नंद्यावर्तपुर

नयनानंदनेंब नंदननागि विद्याधरराज्य सुखमननुभविसिभोग निर्वेगदिं तपस्स्थनागि पलकालं तपंगेय्दु समाधियं मुडिपि माहेंद्र कल्पक्कें पोगि सुरलोक सुखमननुभविसि तदनंतरमल्लि बंदु पूर्वविदेहदक्षेमपुरमनाळ्व विमल वाहन महीभुजंगमातनंत:पुर प्रधानें पद्मावतिगं श्रीचंद्रनेंब कुमारनागि राज्यदोळ् निंदु बहुसहस्र संवत्सरं राज्यंगेय्दु समाधिगुप्तरेंबाचार्यर समक्षदोळ् दीक्षेगोंडु ग्रोग्रतपंगेय्दु ब्रह्मकल्पक्कें पोगि बंदीगळ् रामदेवनादनेंबुदुं—

बलभद्रराम जन्मावलियं तिळिवंतु पेळ्दु लक्ष्मणन भवा- ।
वलियनमृताब्धि वीचीकलकल स्वरं नेगळे भुवन गुरुवितेंदं ॥ ३८ ॥

मुन्नं पेळ्द यक्षपुरद नयदत्तनेंब परदंगें वसुदत्तनेंबमगनागि कालंगेय्दु मृणाळकुंडल पुरमनाळ्व विजयसेन महीनाथन मगं शंभुवेंबगें श्रीभूतियेंब पुरोहितनागि सन्मार्गदोळ् नडेदु निजस्वा-मियप्प शंभुविन कैयोळ् कन्यानिमित्तं सत्तु देवगतिवडेदल्लि बंदु प्रतिष्ठापुरदोळ् पुनर्वसुवेंसर विद्याधरनागि तपंगेय्दु देवगति-यनप्पुकेय्दल्लि बंदीगळ् लक्ष्मणनादनेंदु बेससि बळियं रावणन भवावळियनितेंदु बेससिदरा मृणाळ कुंडलपुरनाळ्व विजयसेनंगं

---

के विद्याधर राजा नंदीश्वर और उसकी रानी कनकप्रभा को नयनानंद नाम से पुत्र बनकर, विद्याधर राज्यसुख का उपभोग कर भोग से विरक्त होकर तपस्या करने का निश्चय करके बहुत सालों तक तपस्या करके समाधि समाप्त कर, महेंद्रकल्प में जाकर सुरलोक का सुखानुभव करने के पश्चात वहाँ से आकर पूर्वविदेह के क्षेमपुर के राजा विमलवाहन और उसकी रानी पद्मावती को श्रीचंद्र नामक राजकुमार के रूप में जन्म लेकर अनेक हजार वर्षो तक शासन करके समाधिगुप्त नामक आचार्य से दीक्षा लेकर, उग्र तपस्या करके ब्रह्मकल्प से लौटकर अब राम बना हुआ है। ऐसा कहने पर,— राम का जन्मवृत्तांत सुननेके बाद अमृत समुद्र की लहरों के कलकल स्वर-सा लक्ष्मण का जन्म-वृत्तांत सुनाते हुए यों बोले। ३८ पहले जिस यक्षपुर का उल्लेख हुआ है उस यक्षपुर के व्यापारी नयदत्त नाम से जन्म लेकर कालवश होकर मृणाल कुंडलपुरके राजा विजयसेन के पुत्र के रूप में जन्म लिया और शंभु का श्रीभूति नाम से पुरोहित बनकर सन्मार्ग में निरत होकर, यजमान शंभु के हाथों स्त्री के कारण मारा जाकर देवगति को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात प्रतिष्ठापुर में पुनर्वसु नामक विद्याधर के रूप में जन्म लेकर, तप करके, पुनः देवगति पाकर अब लक्ष्मण बना है। फिर रावण की जन्मकथा सुनाते हुए बोले— उस मृणाल कुंडलपुर के राजा विजयसेन और रानी रत्नमाला का पुत्र शंभु

रत्नमालेगं पुट्टिशंभुवेंब दारकनुं जिनधर्म निर्धारकनुमागि मद्य मधुमांस सेवनेगेय्दु नरकतिर्यगादि गतिगळोळ् पलकालं तिरितं-देंतानुं पापोपशममप्पुदुं कुशध्वजनेंब पार्वंगमातन पार्वितिगं भासकुंडलनेंब मगनागि चित्रसेनमुनि समीपदोळ् जातरूपधरनागि निष्ठेयिं नेगळुत्तुं वंदना निमित्तं सम्मेद गिरींद्रद जिनेंद्र भवनंगळ्गे पोगुत्तुं कनकनेंब विद्याधरन विभूतियं कंडु विस्मितनागि मदीय तपःफलद्रिंनेनगमी विभूति समनिसुवुदक्केंदु निधानपूर्वकं तपंगेय्दु कालप्राप्तनागि सनत्कुमार कल्पक्के पोगिबंदीगळ् त्रिखंडमंडलाधि-पतियप्प रावणनादं—

अंदरिपि दशास्यन भव ※ संदोहमनखिल भुवनवंद्यं सीता ।
सुंदरिय भवमनरिपल् ※ मंदर धैर्य मुनींद्रनंदितेंदं ।। ३९ ।।

ई भरतद यक्षपुरद सागरदत्तनेंब परदंगमातन परदिति रत्नप्रभेगं गुणवतियेंब मगळागि मिथ्याभावनेयिं कालंगेय्देनितानुं कालं तिर्यग्गतियोळ् तिरितंदु कडेयोळ् पिडियागि पुट्टि तोळलुत्तुं गंगेय तडियोळोर्मे तण्णीरुणल् पोगि केसरोळ् बिळ्दु पोरमडला-रदिर्द समयदोळ् नभोंगणदोळ् पोगुत्तुं तरंगतमनेंब विद्याधरं कंडु

---

नाम से जन्म लेकर जिनधर्म के पालक होने के बावजूद मदिरा-मांस सेवन के कारण नरक पाकर वहाँ बहुत छटपटाकर पापोपशमन होने पर कुशध्वज नामक ब्राह्मण को पुत्र भासकुंडल के नाम से जन्म लेकर चित्रसेन मुनि से निष्ठापूर्वक शिक्षा लेकर तपस्या की। एक दिन पूजा निमित्त सम्मदगिरि में स्थित जिनेंद्रभवन को जा रहा था कि कनक नामक विद्याधर की विभूति देखकर स्वयं भी तपस्या-फल से उस वैभव को प्राप्त करने की इच्छा से तपस्या करके देहावसान के बाद सनत्कुमार कल्प में गया और लौटकर अब त्रिखंड मंडलाधिपति रावण बना हुआ है। इस तरह रावण की जन्मकथा बताकर, जगद्वंद्या सीता का जन्मवृत्तांत बताते हुए, मंदर पर्वत-से निश्चल मुनीद्र ने यूँ कहा। ३९ इस भरतवर्ष के यक्षपुर में रहनेवाले सागरदत्त नामक व्यापारी और उसकी पत्नी रत्नप्रभा से गुणवती नामक कन्या हुई। मिथ्याभावना से कालगति पाकर बहुत समय तक तिर्यग्गति में छटपटाती रही। अन्ततः हथनी के रूप में जन्म लेकर भटकती हुई एक बार गंगा नदी में पानी पीने गयी और वहाँ के कीचड़ में पैर धँस जाने के कारण फँस गयी। इतने में तरंगतम नामक विद्याधर ने जो आकाशमार्ग से जा रहा था, देख लिया और उसके पास आकर पंच नमस्कार का पठन किया तो पापक्षय होकर,

समीपक्के बंदु पंचनमस्कारमं पेळ्वुदुमुपराम चित्तदिं सत्तु श्रीभूति-पुरोहितंगमातन भार्ये सरस्वतिगं वेदवतियेंब मगळागि तम्म मनेगे चर्यामार्गदिं बंद ऋषियरं दूषिसि नुडिये तंदे बारिसि जिनधर्म स्वरूपमं तिळिये पेळे केळ्दु जैनमार्गदिं नडेयुत्तुमिरलार्कोयि मूरनेय भवदोळ् रावणनागि पुट्टुव शंभु कंडु कण्सोल्तु बेडियट्टु-वुदुं श्रीभूति मिथ्यादृष्टि येंदु कूसुगुडलोल्लदिरे मुळिदातनं कोलिसि मगुळ्दुमा शंभुवार्कमं बेडुवुदुमोडंबडदे जनक शोक वेगदिनातंगे मरुमेय्योळादोडं विनाश हेतुवागि जनियिसुवेनक्कें दु निधानपूर्वकं तपंगेय्दु कळिदु ब्रह्मकल्पदोळ् पुट्टिबंद्दु चित्तोत्सवेयेंबळागि पुट्टि क्रमदिनीगळ् सीतेयादळेंदु बेससि प्रभामंडलन भवावळियनितेंदु बेससिदर् गुणवर्मनेंब परदनागि कुंडल मंडितनेंबरसनागि बळियं प्रभामंडलनादं वसुदत्त नादंदिन केळेयनप्प याज्ञवल्कि विभीषण-नागि पुट्टि मुन्निन केळेतनं कारणमागे लक्ष्मणनोळ् बंदु कूडिदं मुन्ने पेळ्द पद्मरुचिय कैयोळ् पंच नमस्कारमं केळ्द वृषभं राज-पुत्रनागि पुट्टि तपंगोंडु स्वर्गदोळ् पुट्टि बंदीगळ् सुग्रीवनागि मुन्नि-नुपकारं कारणमागे रामंगनुवशनागि बेसकेय्दनेंदिदेल्लमं सकल-

---

मरकर श्रीभूति पुरोहित और उसकी पत्नी सरस्वती के वेदवती नामक पुत्री बनी। अपने घर में चर्या-भिक्षा के लिए आये हुए मुनियों की निन्दा करने पर पिता ने उसे रोककर जिनधर्म स्वरूप को सविस्तार समझाया। तत्पश्चात वह जिनमार्ग का पालन करती रही। तीसरे जन्म में उसे रावण के रूप में जन्म लेनेवाले शंभु ने देखा और मोहित हुआ और उसके कन्यादान का आग्रह किया। लेकिन पिता ने देने से इनकार कर दिया। इससे कुपित होकर श्रीभूति को मारकर वेदवती से कहा कि वह स्वयं उससे विवाह कर ले। वेदवती ने उससे विवाह करने से इनकार करने के साथ पिता की मृत्यु के लिए कारण बननेवाले के लिए कम से कम दूसरे जन्म में विनाशकारिणी बनने के उद्देश्य से कठोर तपस्या करके ब्रह्मकल्प में पैदा होकर चित्तोत्सवा नाम पाकर अब सीता बनी हुई है। उसके पश्चात प्रभामण्डल की जन्म-परंपरा बताते हुए यूँ बोले— गुणधर्म नामक व्यापारी बनकर, कुंडलमंडित नाम का राजा बनने के पश्चात् यह प्रभामण्डल बना। पहला जो वसुदत्त था, उसका मित्र याज्ञवल्कि विभीषण रूप में जन्म लेकर, पूर्व मित्रता के कारण लक्ष्मण के साथ मिल गया। जिस पद्मरुचि की बात पहले कही गयी है, उसके मुँह से पंच नमस्कार सुनने के बाद वृषभ राजपुत्र के रूप में, जन्म लेकर

भूषण केवलिगळ् सविस्तरं रामंगे पेळ्दुमत्तमित्तेंदर् श्रीभूतियेंब पुरोहितनादंदु रावणनप्प शंभुविन कैयोळ् सत्तुदरिंदा मुळिसु कारणमागे लक्ष्मणं रावणनं कोंदं सीतेयुं वेदवतियादंदु मंडलाग्र पुरदोळ् ऋषियर मंडलियोळिर्द सुदर्शन ऋषियरुमनवर तंगेविरप्प सुदर्शनेयरेंब कंतियरुमं तम्मोळ् पोर्दिददरिसि पोल्लदं नुडिदु नेगळुत्तुमिरे वेदवतिय मोगदोळोंदु बाहु पुट्टि पोल्लरल्लदरं पोल्लरेंदु नुडिदोडी वाहादुदेंदेल्लर्गमाद्यंतं तिळियॆ पेळ्दु प्रायश्चित्तंगोंडो-ळ्ळित्तागि नडेदु कडेयोळ् देवलोकक्के पोगि बंदु तानुमीगळभियो-गक्के पक्कादळेंदु मत्तमितेंदर्—

जिनमुनियक्कॆ जैननेनिसिर्दवनक्केम पाप बुद्धियिं ।
तनगे जिनेंद्र धर्मदवरारुमनागदु दूषिसल्के कॆ- ।।
म्मनें मुनिवंगे मच्चरिसुवंगरिविल्लदवंगे दूषिपं- ।
गनितिनितेंदु लेक्कविडलेंगळ बर्पुदे कर्म बंधमं ।। ४० ।।

अेंदु पेळ्वुदुमनंतरं कृतांतवक्त्रनेंबातुनं रामस्वामियनोडं-बडिसि पलंबररसुमक्कळ्वेरसु सकलभूषण बोध निधिय सन्निधियोळ्—

---

तपस्या के कारण स्वर्ग में पैदा होकर, आकर सुग्रीव के रूप में, पूर्व उपकार के कारण, राम का अनुयायी बना। इस तरह राम को सारी बातें सविस्तार बताने के बाद सर्वभूषण केवली पुनः यूँ बोले— जब श्रीभूति पुरोहित था तब अबका रावण शंभु के हाथों मारे जाने के क्रोध के कारण लक्ष्मण ने रावण का वध किया। जब सीता वेदवती के रूप में थी तब मण्डलाग्रपुर में ऋषियों के बीच रहनेवाले सुदर्शन नाम के ऋषि को उसकी बहन सुदर्शना समझकर इस कांति को दुर्वचनों से गालियाँ दे रही थी कि उसके मुख में एक हाथ पैदा हुआ (निकला) और सब जान गये कि जो दुर्जन नहीं है उसे दुर्जन कहकर गालियाँ देने के कारण यह हाथ निकला। इस बात को समझकर योग्य प्रायश्चित् करके तत्पश्चात् सच्चरित मार्ग पर चलकर अवसान में देवलोक पहुँचकर, वहाँ से लौटकर अबलोकोपवाद का पात्र बनी है। वे पुनः यूँ बोले— चाहे जिनमुनि हो या जैन, वह पापबुद्धि से जैनधर्म की या धर्म का पालन करनेवालों (धर्मनिरतियों) की निन्दा न करें। क्रुद्ध होनेवालों, मत्सर करनेवालों, अज्ञानियों पर दोषारोपण करनेवालों को कितने जन्म और कर्म बंधनों में जकड़ा रहना पड़ता है, इसका हिसाब रखना संभव है? ४० इतना कहने के बाद कृतांतवक्त्र ने राम को सांत्वना दी और अनेक राजकुमारों के साथ सकलभूषण भट्टारक के चरणों में,— ज्ञानोदय होने पर भी सांसारिक

अरिदंदे तोरेयदंदे * तरदरिवेंदरिवे तनगे तोडवादुदेनल् ।
तोरेदा कृतांतवक्त्रं* तरिसंदु कृतांतवक्त्रमं मुद्रिसिदं ।। ४१ ।।

अंतु कृतांतवक्त्रं दीक्षेगोळ्वुदुं रामनिन्नुं केलदिवसमिर्दु दीक्षेगोळ्वमेंदु निश्चयिसि भट्टारकर्गे सर्वांग प्रणतनागि सीतांबिकेयरल्लिगे पोगि लक्ष्मणादिगळ्वेरसु निश्शल्यंगेय्दु दिव्य मुनिय सभामंडलमं पोरमट्टु—

दशदिग्मंडलमं पळंचलेये भेरीनिस्वनं राज लो- ।
क शिरोभूषण पंचरत्न रुचि लेखानीकदिं शक्र चा- ।।
प शतंगळ् नेलेवेर्चे लक्ष्मण समेतं रामदेवं लवां- ।
कुश वक्त्रांबुज दत्तदृष्टि पुरमं पोक्कं महोत्सवदिं ।। ४२ ।।

अंतयोध्यापुरमं पोक्कु सुखदिं केलवुकालमिर्पुदुमत्त सीतायिके पलवुकालं तपंगेय्दु मूवत्तारु दिवसं संन्यसनमं कैकोंडच्युत कल्पदोळ् स्वयंप्रभनेंब व्रतींद्रनागि पुट्टिदळ् मत्तमित्त कांचनपुरमनाळ्व कांचन रथंगं विद्युन्मालेगं पुट्टिद मंदाकिनियुं चंद्रवक्त्रेयुमेंबकन्नेयर् स्वयंवरक्के नेरेदरसुमक्कळोळोर्वरुमं मेच्चदे लवंगे मंदाकिनिमालेयं सूडिदळंकुशंगे चंद्रवक्त्रे मालेयं सूडिदळा सभेयोळिर्द लक्ष्मणनेण्बर्

---

मोह को न त्यागे वह ज्ञान ही कैसा, ऐसा सोचकर कृतांतवक्त्र ने ज्ञान को ही अपना आभूषण मानकर इहलोक के मोह को त्याग दिया। ४१ इस तरह उसके दीक्षा लेने पर राम ने भी यह निश्चय करके कि कुछ ही दिनों में दीक्षा लूँगा, भट्टारक को नमस्कार करके, जहाँ सीता और माताएँ बैठी थीं, वहाँ जाकर उनसे मिलकर, मन ही मन निश्चय करके लक्ष्मण के साथ वहाँ से रवाना होकर,— दशो दिशाओं में भेरी निनाद बज उठने पर, चंद्रलोक की शीशमणि तुल्य पंचरत्न प्रकाश से परिपूर्ण कामदेव का धनुप आकाश में उदय होने पर, राम लक्ष्मण और लव-कुश के साथ अयोध्या नगर में प्रविण्ट हुए। ४२ इस तरह अयोध्या प्रवेश करके कुछ समय सुख से रहे। उधर सीता ने भी कुछ समय तपस्या करके, छत्तीस दिन संन्यासिनी व्रत का पालन करके अच्युतकल्प में स्वयंप्रभ नामक यति के रूप में पैदा हुई। इधर कांचनपुर के कांचनरथ और विद्युन्माला की मन्दाकिनी और चंद्रवक्त्रा नामक कन्याओं द्वारा पड़ोसी राज्य के किसी भी राजकुमार को स्वयंवर के लिए स्वीकार न करके मन्दाकिनी ने लव को और चंद्रवक्त्रा ने कुश को पुष्पमालाएँ पहनायीं। उसे देखकर उस सभा में उपस्थित लक्ष्मण के आठ पुत्रों ने विरक्त होकर महावल भट्टारक से दीक्षा ली। कुछ समय तक विद्याधर

कुमाररु मदं कंडु निर्वेगपरायणरागि महाबल भट्टारकर पक्कदे दीक्षेयं कैकोंडरित्त विद्याधर राज्यसुखमनेनितानुं कालं प्रभामंडलननुभविसि कनमाडदेळनेय नेलेयोळिर्दल्लि सिडिल् पोडेये सत्तु देवकुरुविनोळ् पुट्टिदनित्त हनुमं कर्णकुंडलपुरदोळगरसुगेय्युत्तुं पलकालमिदों दु दिवसं कृष्णपक्षदिरुळ् मणिमाडदोळिर्दु गगन तळदिं बीळ्तर्पुल्कमं कंडु संसारिगळ धनमुं जीवनमुं जौवनमुमिंते क्षणदिंदध्रुवंगळेंदु वगेदु निर्वेग परनागि सुश्रुतनेंब तन्न मगंगे राज्यमं कोट्टु विद्युद्द्युति मोदलागेळनूरय्वदिंबर् विद्याधर वल्लभवेंरसु धर्माभरणरेंब चारणऋषियर समक्षदोळ् दीक्षेयं कोंडं हनुमनरसियरेल्लं सुमति गंतियर पक्कदोळ् तपस्स्येयरादर् हनुममुनि घातियुमनघातियुमं किडिसि निर्वाणप्राप्तनादं—

इत्त बलदेवनुं पुरु-*षोत्तमनुमनेक वत्सरं राज्य सुखा- ।
यत्तमनरु निरवधि सं-*पत्तिगे नेलेयेनिसि नाडे नलियुत्तिर्दर् ॥ ४३ ॥

अंतिर्पुदुमत्तलोमें सुर परिषन्मध्यवर्ति सौधमेंद्र धर्म निरूपण प्रवर्णितिंदं—

मनुजगति गतिगळोळ् पा-
वनमेंतेने मिक्क गतिगळ्पवर्ग श्री- ।
स्तनमंडल गाढालि-
गन सौख्यमनीयलारवप्पुदरिंदं ॥ ४४ ॥

---

सुख का उपभोग किया हुआ प्रभामण्डल एक दिन अपने राजमहल के सातवें मंजिल पर बिजली गिरने से मरकर देवकुल में पैदा हुआ। इधर हनुमान कर्णकुंडलापुर पर शासन कर रहा था। एक दिन कृष्णपक्ष की रात को मजले पर था कि आकाश में होनेवाले उल्कापातों को देखा और यह सोचकर कि संसारियों का धन, जीवन, यौवन भी इसी तरह क्षण-भंगुर है, वैराग्यरत होकर अपने पुत्र सुश्रुत को राज्य सौंपकर विद्युद्द्युति आदि साढ़े सात सौ विद्याधर वल्लभों के साथ धर्माभरण नामक चारणऋषि के समक्ष दीक्षा ली। उसकी रानियाँ सुमति-गति के पक्ष में तपस्या करने लगीं। हनुममुनि ने देहव्यामोह त्यागकर निर्वाण प्राप्त किया,— इधर राम-लक्ष्मण अनेक वर्षों तक राज्यसुखों का उपभोग और असीम सम्पत्ति-सुख का अनुभव करने में लीन रहे। ४३ ऐसे में एक दिन देवसभा में सुशोभित और धर्म-निरूपण में प्रख्यात सौधमेंद्र ने यूँ कहा— मानवजन्म अन्य जन्मों से श्रेष्ठ है क्योंकि अन्य जन्मों में संपत्ति से प्राप्त

अंबुदुमा सभेयोळिर्द सम्यग्दृष्टियप्प विभावसुवेंब देवं—

मळ रहितमप्प तपमं ❋ तळेदपवर्गक्के सल्व मानवगतियं ।
तळेवोडे दिविजायुष्यं ❋ गळियिप तेरनावुदेंदु संभ्रमिसुवुदुं ॥ ४५ ॥

अदंकंडागळ् मत्तोर्वं गीर्वाणनितेंदं—

मनुजगतिवडेवुदुत्तम ❋ मेनिसियुमा ब्रह्मकल्पदिं बंदुं रा- ।
मनदेके दीक्षेगोळ्ळं ❋ मनुष्यभवमोंदे दीक्षेगें कारणमे ॥ ४६ ॥

एने विभावसु वेंबं लक्ष्मणनोळाद स्नेहं कारणमागे तपमनु-
पेक्षिसिदं—

अंतुं पूर्वभव स्ने- ❋ हं तोरेयल्बर्पुदल्तु लक्ष्मणन वियो- ।
गं तनगादोडे रामं ❋ संतापमनति विषादमं कैकोळ्गुं ॥ ४७ ॥

लक्ष्मणनुमंते रामंगति स्नेहितनातनगल्दागळे सागुमेने निसर्ग-
रागिगळप्पुदरिं रामलक्ष्मणर स्नेहमं नोडलर्थिगळागि रत्नचूल-
नुममृतचूलनुमेंब देवरिर्वरुमयोध्यापुरक्के बंदु—

परलोक प्राप्तनादं दशरथ सुतनेंबंतु राजालयं शो- ।
करसांभोराशिमोळ् भोंकने मुळुगिदुदेंबंतु हस्तच्छटाज ॥
र्झर मध्यं पेंडवासं गगन विवरमं रोदनोन्नाददिंदं ।
भरितं माळ्पंतु वैकुर्वण परिणतियं बीरिदं रत्नचूलं ॥ ४८ ॥

---

होनेवाले सुख का उपभोग करना संभव नही होता । ४४ —इसे सुनकर उस सभा में उपस्थित सम्यग्ज्ञानी विभावसु नामक देवता ने प्रश्न किया कि,— पापनाशक तपस्या अपनाकर श्रेष्ठ मानव जन्म और देवताओं की आयु पाने का मार्ग कौन-सा है । ४५ विभावसु से और एक देवता ने यूँ कहा— यह जानते हुए भी कि मानवजन्म उत्तम है, ब्रह्मकल्प में आये हुए राम ने अब तक भी दीक्षा न लेने का कारण क्या है ? क्या मानव जन्म ही दीक्षा है । ४६ इस प्रश्न के उत्तर में विभासुर ने कहा— लक्ष्मण के प्रति राम का अधिक स्नेह ही राम द्वारा तपस्या की उपेक्षा का कारण है— जन्मान्तर का स्नेह किसी भी तरह त्यागा नहीं जा सकता । यदि राम-लक्ष्मण का वियोग हो जाय तो राम संताप एवं विषाद से विरक्त हो सकता है । ४७ इसी तरह लक्ष्मण भी राम के स्नेहानुरागी होने के कारण राम का वियोग होने पर ही वैराग्य धारण कर सकता है । इसे सुनकर इस तरह के विचित्र स्नेह को देखने के कुतूहल से उस सभा में उपस्थित रत्नचूल, अमृतचूल नाम के दो देवता अयोध्या में आकर,— अपनी वैकुर्वण विद्या के प्रभाव से दिखावट के लिए

बलदेवाकृतियं सरागनमरं निष्प्राणमं विक्रिया।
बलदिं निर्मिसे कंडु लक्ष्मणनदं निस्सीमशोकं भया-॥
कुलितं हा निनदानुगंक्षणदे जीवं पोगे बिळ्दं धरा-।
तलदोळ् हर्ष विषाद वेगदोदविं सावप्पुदाश्चर्यमे ॥ ४९ ॥

अंतु कालप्राप्तनप्पुदुं लक्ष्मणनंतःपुर पुरंध्रियर् कंडति प्रलापं गेय्वुदं रामं केळ्दु मूर्छितनागि नीडरिंदेळ्चत्तु गतप्राणनाद लक्ष्मणन कॆळक्के पोगि मगुळ्दुं मूर्छागतनागि मत्तमेळ्चत्तु पलतेरदिं प्रलापंगेय्दु—

हा तम्मने निन्नुमना ※ पातकि बिदिकोंडु पोदनेवेनेनुत्तुं।
सीतापति पूर्वभव ※ प्रीतियिनतिशोक वेग विह्वलनादं ॥ ५० ॥

अंतचिंत्य दुःखाभिभूतनागि शोकंगेय्युत्तुमिरे लवांकुशर् कंडदुवे निर्वेग कारणमागे बंदु रामस्वामिगे पोडेवट्टु बीळ्कोंडु महेंद्रोद्यानदमृतेश्वर भट्टारकर पक्कदे तपस्स्थरागिर्दरित्त रामन शोकमं विभीषणं बंदु संसारदनित्यतेयं पेळ्दुपशमिसलारदिरे सुग्रीवादिगळ् नेरेदु बंदु लक्ष्मणन शववं दहिसुवमेंबुदुं—

---

ऐसे अयोध्या का निर्माण किया जिसमें दाशरथी राम परलोक सिधार गया है, अयोध्या की प्रजा और राज-परिवार दुःखसागर में डूबा हुआ है, रनिवास में रोदन-ध्वनि व्याप्त हो गयी है। ४८ अपनी विद्या से राम की आकृति का निर्माण करके, प्राणवायु का अपहरण-सा किया। उसे देखकर लक्ष्मण असीम शोक से हा राम, हा राम कहते हुए हाहाकार के साथ विलाप करके निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। सुख-दुःखों के आवेश के आधिक्य से मरने में आश्चर्य क्या है? ४९ इस तरह कालवश हुआ तो लक्ष्मण के अंतःपुर की स्त्रियों को अत्यन्त प्रलाप के साथ शोक करते हुए सुनकर राम मूर्छित होकर फिर होश में आकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगा,— हे अनुज, पापी विधि तुम्हें ले ही गयी। ऐसा कहकर पूर्वजन्म के व्यामोह से आवृत्त हो, अत्यन्त चिंता से विचलित हुआ। ५० ऐसे अवचनीय शोक से विलाप कर रहा था। लव-कुश ने उसे देखा तो वही उन दोनों के विराग के लिए कारण बना। श्रीराम के चरणारविन्दों को प्रणाम करके वहाँ से निकलकर महेंद्रोद्यान के अमृतेश्वर भट्टारक के समक्ष तप में लग गये। इधर राम के दुःख को देखकर विभीषण के यह समझाने पर भी कि संसार को अनित्य है, न मानकर लक्ष्मण के शव के अंतिम संस्कार की तैयारी करनेवाले सुग्रीव को,— अनेक तरह से गालियाँ सुनाकर, मारने के लिए उद्युत हुआ

अवरं पलतेरदिं ब-* य्दु पोय्दु लक्ष्मणन पेणनना क्षणदोळ्ना-।
निवर समीपदोळिरलें-* तुवागदेंदेत्तिकोंडु राम पोदं ॥ ५१ ॥

मरुळादं वासुदेवं कळिदोडे बलदेवं पेणक्कित्तु वस्त्रा-।
भरण स्रक्चंदनालेपन परिकरमं पोत्तुकोंडिर्दपं त-॥
च्चरमांगं विश्वविद्याविदनेने विकलंमाळ्पुदाश्चर्यमे मि-।
क्करनज्ञानासवास्वादित जडरनेलें मोह मूर्छातिरेकं ॥ ५२ ॥

बगेगिडिसे मोहनीयं * नगधर शवधारियागे षण्मासमदें।
नेगळ्दुदो सले बलदेवन*पेगल पेणं कुंददेंब नाळ्नुडि जगदोळ् ॥ ५३ ॥

अंतु रामस्वामि राज्य रक्षणमं मरेदु लक्ष्मण वियोगदिं विकलनागिरे केलद नेलदरसुमक्कळ् पोडर्पुगेट्टु मट्टमिर्पुदुमित्त- लिंदगिय मगनप्प वज्रमालि सुंदरन मगनप्प चारुरत्नंबेरसु पलरुमं कूडिकोंडयोध्येगासन्नमागे बीडंबिट्टुदं रामं वचन परंपरेयिं केळ्दु लक्ष्मणनं बिट्टु पोगलारदति दुःखितनुं कलुषवशगतनुमागि निज वज्रावर्त चापमुमनग्निमुख शिलीमुखमुमं नोडुत्तमिरे देवगतिवडेद जटायुवुं कृतांतवक्त्रनुमासनकंपमागलवधिबोधदिं लक्ष्मणं मरण- प्राप्तनप्पुदुं रामं शोकाभिभूतनागिरे पगेवडेयिरियलेंदु बंदयोध्येयं

लेकिन यह सोचकर कि अब इस शव को इनके पास छोड़ना ही नहीं चाहिए, उठाकर ले गया। ५१ लक्ष्मण के मरने पर भी राम ने उसे वस्त्राभूषण पहनाकर चंदन लेपन की सामग्रियाँ ढोकर घूम रहा था। विश्व की समस्त विद्याओं का ज्ञान ही इस तरह विकल हुआ तो अज्ञान ही उसका भण्डार बना है। सामान्यों का मोह क्या नहीं करा सकता? ५२ जन्मांतर के मोह ने पर्वत धारण करनेवाले से छः महीने तक शव को ढोने में विवश किया। राम की इस हालत को देखकर कहावत चल पड़ी कि बलदेव के कंधे का शव कभी नहीं बिगड़ (खराब हो) सकता। ५३ इस तरह राम राज्य-रक्षा भुलाकर लक्ष्मण के वियोग दुःख से मतिभ्रांत हुआ। पास पड़ोस के राजा निर्वीर्य होकर चुप रहे। इधर इंदगी का पुत्र वज्रमाली ने सुन्दर के पुत्र चारुरत्न के साथ अयोध्या पर चढ़ाई करने के उद्देश्य से आकर डेरा डालने की बात कान कानों से सुनकर लक्ष्मण के शव को छोड़ देने में असमर्थ होकर, अत्यन्त दुःख से अपने वज्रावर्त धनुष और अग्निमुख बाण की ओर निहार रहा था। तब देवगति प्राप्त जटायु और कृतांतवक्त्र ने आसन कंपन का अनुभव करके अवधिज्ञान से लक्ष्मण की मृत्यु, राम का

बळसि बिट्टिर्दुदनरिदिर्वर् देवरुं वंदु मार्पडेमनोडिसुवुदुं वज्रमालियुं चारुरत्ननुं तमगदुवे निर्वेगकारणमागे पलबररसुमक्कळ्वेरसु रतिवेग भट्टारकर पक्कदे तपस्स्थरादरित्त कृतांतवक्त्र जटायु देवर्कळ् रामनल्लिगे बंदु—

अेनितानुं तेरदिं ध- * र्म निरूपणेगेय्दु मेंतुमनार्तर रा- ।
मन विकलतेगिडिसल् मु-*न्निन भवदनुबंधमं कळल्चुवरोळरे ।। ५४ ।।

अंतु धर्म वात्सल्यदिं रामन वैकल्यमं कळेयलेंदोदेडेयोळ् नयन पथदोळिर्दु—

कलनोदं तीवि नीरं पोसेदु सिकतदोळ् गाणमं पोय्दु मत्तं ।
शिलेयोळ् धान्यगळं बित्तियु मोणगिद भूजक्के नीर्वोय्वुदुं को-।।
टलेवट्टी निष्फलोद्योगमनोडरिपुदेनेंबुदुं देवरेंदर् ।
बलदेवंगण्णनीनी पेणननळिपिनिं पोत्तिरल् बर्पुदुंटे ।।५५।।

अेने मुनिदमांगल्य वचनमनेके नुडिदिरेंदा कृतांतवक्त्रनोळ् नुडियुत्तिर्पन्नेगं जटायुदेव नोंदु पेणनं पोत्तु मुंदण्गेवरे रामं कंडी

विलाप और शत्रु द्वारा अयोध्या को घेर लेने की तैयारी आदि को जानकर दोनों वहाँ आये और शत्रुसेना को भगा दिया। वही घटना वज्रमाली और चारुरत्न के लिए वैराग्य का कारण बनी और वे अनेक राजकुमारों के साथ रतिवेग भट्टारक से दीक्षा लेकर तपस्या में लीन हुए। कृतांतवक्त्र, जटायु और देवतागण राम के पास आये और,— अनेक तरह से धर्मनिरूपण की बात समझाने पर भी राम के दुःख का निवारण करने में असमर्थ हुए। पूर्वजन्म के व्यामोह को कौन छुड़ा सकता है ? ५४ धर्मोपदेश से राम के भ्रातृ-वात्सल्य को छुड़ाने में असमर्थ उन लोगों ने उसके समक्ष ही,— टूटे हुए एक घड़े पर पानी भरना प्रारम्भ कर दिया; रेत को कोल्हू में डालकर तेल निकालना शुरू किया; पत्थरों पर धान्य बोये; सूखे पेड़ पर पानी डालना शुरू किया। इन सारी हरकतों को देखकर दुःखी होकर राम ने उन लोगों से पूछा कि ऐसा निष्फल कार्य क्यों कर रहे हैं ! उत्तर में उन्होंने पूछा—महोदय, तुम इस शव को ढोते फिरोगे तो उसमें पुनः प्राण आ सकते है ? ५५ ऐसा पूछने पर उनसे कुपित होकर राम ने प्रश्न किया कि ऐसी अमंगल बात क्यों कर रहे हैं ? तब जटायु एक शव को ढोकर राम के सामने आया। उसे देखकर राम ने पूछा कि इस शव को ऐसा क्यों उठाये हुए हो ? जटायु ने उँगली उठाकर लक्ष्मण के शव की ओर संकेत करके प्रश्न किया कि तुम इस शव को क्यों उठाये हुए हो ?— इस तरह के अनेकानेक

मृगकमं निष्प्रयोजनमिंतेके पोत्तु तोळल्दपेयेने जटायुदेवं नीनी पेणनं पोत्तु तोळल्वुदेनिमित्तमेंदु तोरि नुडिवुदुं—

अंतानुं पलवु दृ- * ष्टांत मनेनितानुमुपमेयं तद्द्विविजर् ।
मुं तोरि तोरि चित्त * भ्रांतियुमं हळिय पळियुमं पिंगिसिदर् ।। ५६ ।।

अंतपगत मोहनाद रामंगे देवरिर्वरुं तम्म दिव्य स्वरूपमं तोरि मत्तमितेंदरेमगासन कंपमप्पुदुं निमगादुपसर्गमनरिदु बंदु निम्म मेलेत्तिबंद पगेवरनोडिसुवुदुमवरदुवे निर्वेग कारणमागे पलंबररसुमक्कळ्वेरसु तपंबेट्टरेंबुदुं—

मुगिल मरेपोद चंडां- * शुगे काळिकेपोद पोंगे पोगेपोद कृपा- ।
नुगे समनादं मोहं * बगेयिं पोरमट्टु पोगे दशरथरामं ।। ५७ ।।

अंत कलुष हृदयनागि—

अेन्नुमनानरियदे चिः- * बन्नक्कोळगादेनेंदु रघुकुल तिलकं ।
तन्नं तानरिदोडलं * तन्नि वेर्पडिसलादमुत्सुकनादं ।। ५८ ।।

अंतु वैराग्य परायणनागि विभीषण सुग्रीव नळ नीळ जांबव प्रसन्नकीर्ति विराधितादिगळुमं पेरवुं प्रधान पुरुषरेल्लरुमं बरवेळ्दट्टुवुदुमवर् बंदु सरयुवेंब तोरेय तडियोळ् लक्ष्मण शवमं यथाविधियिं संस्कारिसि बर्पुदुमागळंते रामस्वामि लवन पिरिय मगंगे

---

उदाहरण एवं तुलनाएं प्रस्तुत कर उन्होंने वलदेव (राम) की चित्तभ्रांति एवं व्यामोह को दूर किया। ५६ इस तरह मोह को त्यागे हुए राम को उन दोनों ने अपना दिव्य स्वरूप दिखाकर बताया कि हमारा आसन कांप उठने के कारण तुम्हारे इस व्यामोह का और शत्रुओं का निवारण करना पड़ा। यह भी बताया कि शत्रुओं की पराजय होने के कारण उन्होंने भी दीक्षा ली है,— बादलों के आवरण से मुक्त सूर्य-सा, कल्मष त्यागे हुए सुवर्ण-सा, धूम्रविहीन अग्नि-सा, मोह-त्यक्त राम उज्ज्वल-कांति से सुशोभित हुआ। ५७ इस तरह व्यामोह-मुक्त होकर,— इस विचार से कि मैं अपने आपको न पहचानकर व्यर्थ ही कष्ट भाजन बना, राम ने स्वयं को पहचानकर (लक्ष्मण के मृत) शरीर को अपने से अलग करने के प्रति उत्सुकता दिखाई। ५८ ऐसा वैराग्य धारण कर विभीषण, सुग्रीव, नल, नील, जांबव, प्रसन्नकीर्ति, विराधित आदि नायकों को बुलवाया। उन्होंने आकर सरयू नदी के तटपर लक्ष्मण के शव का यथाविधि संस्कार किया। राम लौटकर, लव के जेष्ठ पुत्र को सिंहासन सौंपकर, अनेक राजकुमारो के साथ सुव्रत नामक चारण के समक्ष

राज्यपट्टमं कट्टि पलंबररसुमक्कळ्वेरसु सुव्रतरेंब चारणर पक्कदे तपस्स्थनादं विभीषणनुं निज तनूभवनप्प सुभूषणंगे लंकेय राज्य-मनित्तु दीक्षेयं कोंडं सुग्रीवनुमंगदंगे राज्यमं कोट्टल्लिये दीक्षेयं कोंडं शत्रुघ्न नळ नीळ विराधित चंद्ररश्मि प्रमुखरुं राम नोडने सुव्रत-चारणर समक्षदोळ् दीक्षेयं कैकोंडरंतिनिबरंतःपुरद कांतेयरुं श्रीमत्यार्यिका समक्षदोळ् दीक्षेगोंडर् मत्तमा रामयति परमागम प्रणीत मार्गदिं—

मूल गुणोत्तर गुणदिं ❋ शीलमनळवडिसि समितियं गुप्तिगळं।
पालिसि पंचमहाव्रत ❋ लीलेयिनेसेदं प्रमादमिल्लेंबिनेगं ।। ५९ ।।

पिडिदु दशधर्ममं गे- ❋ ल्दोडतनुवं कुसुमबाणनं कविन बि- ।
ल्विडिदननदेके लोकं ❋ कडंगि बण्णिपुदो राघव व्रतिपतियुं ।। ६० ।।

मूल गुणंगळिंदे दशधर्ममनेरिसि कोंडमोघ बा- ।
णाळियनल्लि तोट्टु निललीयदे तूळ्दि परीषहंगळं ।।
मेळिसिदं जयांगनेयनेक विहारदोळा मुनीश्वरं ।
मेळिसे कीर्तिकीर्तिमुखदंते दिशा रदनी रंदगळं ।। ६१ ।।

केवल बोधोदयमें- ❋ बी विभवंबेत्तु सकलरूप व्यापा- ।
रावगम संपदं स- ❋ र्वावधि पुट्टित्तु राघव व्रतिपतियोळ् ।। ६२ ।।

---

तपस्या करने लगा। विभीषण ने अपने पुत्र सुभूषण को लंका राज्य प्रदान कर दीक्षा ली। सुग्रीव ने अंगद को सिंहासन सौंपकर दीक्षा ली। शत्रुघ्न, नल, नील, विराधित, चन्द्ररश्मि आदियों ने राम के साथ सुव्रत के चरणों में ही दीक्षा ली। अंतःपुर की अनेक स्त्रियों ने भी दीक्षा ली। तत्पश्चात् उस रामयति जैनागम मार्ग से,—अपने शील के मूल गुण के अनुसार समिति, गुप्ति को निभाकर पंच महाव्रतों का पालनकर, किये हुए कार्यों में कोई दोष न देखकर सुशोभित हुआ। ५९ सारे संसार में दशधर्म का पालन करके, देह पर विजय पाकर, मन्मथ को भी पराजित करनेवाले रामयति की प्रशंसा की। ६० मूल गुणों से दशधर्मों को अपनाकर, शीतोष्ण सुख-दुःख नामक शारीरिक द्वंद्वों पर विजय पाकर, मुक्त्यांगना के साथ विविध विहारों का अनुभव करके उस राम मुनीश्वर ने दिगंत व्याप्त कीर्ति पाई। ६१ केवल ज्ञान नामक वैभव धारणकर, सकल रूप धारण करने की विद्या को सार्वकालिक रूप में प्राप्त करनेवाले रामयति की तपस्या अमोघ बन गयी। ६२ इस तरह केवल ज्ञान प्राप्त करके अपने और लक्ष्मण के पूर्वजन्म वृत्तांत को, ग्यारह हजार

अंतु सर्वविधियं पडेदु लक्ष्मणन तम्म मुन्निम भवंगळुमं लक्ष्मणनिर्पत्तोंदुवर्ष कुंदे पन्निर्छासिर वर्षमं जीविसि वळियमधोलोक गतनादुदुमं स्नेहमं परीक्षासल्वंद देवं कारणमागे लक्ष्मणं सत्तनल्लदातंगे परमायु नेरेये सत्तनल्लेंवुदुमनरिदु रामभट्टारकरुग्रोग्र तपश्चरण निरतरागि द्वादश दिनंवरमाहार परित्याग प्रत्याख्यानमं कैकोंडु पारणेय दिनदोळ्--

नगराख्य विशेषं ※ वर्गेगिल्लेने कालनियमदिं वनदिं च- ।
ये्गे पोरमट्टं मुनि त-※ न्न गमनमं द्रुत विलंवितं पोर्देदेनल् ॥ ६३ ॥

अंतु बंदु नंदनस्थलियेंव पोळलं पुगुवुदुमा पुरद जनमवर तपः प्रभावमं दिव्य शरीरमं नोडि कौरवेगोंडु वळिसल्वुदुमदना पोळलनाळ्वरसं प्रतिनंदि कंडु रामभट्टारकरनिदिर्गोळ्ल् मणिभाडदिंदिळिदु वर्पन्नेगं मार्गमरियद जनंगळेम्म मनेगेळ्तन्निमेंवुदुं भट्टारकर्गे चर्याविघ्नमादोडाहारंगोंडंते संतुष्टचित्तरागि पोळलं पोरमट्टु पोपुदुमित्तल् प्रतिनंदि रामभट्टारकर्गे चर्याविघ्नमादुदर्के मनदोळ् चिंतिसुतिर्पिनमित्तल्--

अनशनमं पन्नेरडुं ※ दिनंवरं पूण्दु माण्दनिलिलन्नेंदुं ।
जनपदमं पुगेनेंदा ※ मुनिपति कांतारभिक्षेयं कैकोंडं ॥ ६४ ॥

---

नौ सौ उनासी (११,९७९) वर्ष जीवनयापन करने के वाद लक्ष्मण के कालवश होने की वात को, और इस वात को स्पष्ट समझाकर कि हमारे स्नेह को परखने के लिए आये हुए रत्नचूल देवता के कारण ही लक्ष्मण की मृत्यु हुई, आयु पूर्ण होने के कारण नहीं, राम भट्टारक कठोरतम तपस्या में लीन होकर वारह दिन उपवास व्रत के पारण के दिन,-- नगर और अरण्यों की विशेषताएँ उसके लिए अप्रधान है, केवल समय को ध्यान में रखकर, जिस तरह द्रुत विलंवित नामक दो (विधियाँ) आपस मे नहीं मिल सकती, मुनिचर्या के लिए निकल पड़ा। ६३ —आकर नंदनस्थलि नाम के नगर में प्रविष्ट हुआ तो तपः प्रभाव एवं दिव्य शरीर देखकर उस नगर के लोगों को आश्चर्य हुआ। राम भट्टारक को आते हुए देखा तो राजा प्रतिनंदी स्वागत के लिए अपनी अटारी से उतरकर आ रहा था कि लोगों ने राम भट्टारक को अपने घर आने का निवेदन किया। अपनी चर्या में वाधा पड़ने पर भी भट्टारक भोजनानुभव करके संतुष्ट होकर नगर से वाहर निकल गये। इधर प्रतिनंदी को इस वात का दुःख हुआ कि राम भट्टारक की चर्या में विघ्न पड़ा।-- राम ने वारह दिनों का उपवास करके यह प्रतिज्ञा करके कि अव कभी लोगों के वीच

ओंदु दिनमा महामुनि * बृंदारकनिर्द काननक्कॆळॆदुय्द- ।
त्तोंदु विषमाश्वमा प्रति-*नंदि नृपालकननुचित परिपालकनं ।। ६५ ।।

अंता सूकळा तुरंगममतिविषम गहनमं पुगुवुदुं प्रतिनंदि सूकळगुदुरेयिं नॆलक्के पाय्दु दिगवलोकनं गॆय्दु समीपदोळोंदु सरोवरमं कंडु पोक्कु मिंदु पोंदावरॆय पूगळि पीठिकॆयं समॆदु जिनप्रतिमॆयनल्लि निलिसियर्चिसुत्तिर्पन्नेगमातनंतःपुर प्रधानॆ प्रभावतियॆंबळा सूकळाश्वद पज्जॆविडिदु बंदु तन्नरसनं कंडा सरोवरदोळ् नीराटवाडि बोनमनल्लिगॆ तरिसुवुदुमा प्रस्तावदोळ् रामभट्टारकरिर्पत्तुनाल्कु दिवसद पारणॆगॆ कांतार भिक्षाचर्मॆगा मार्गदिं बर्पुदं प्रतिनंदि भोंकनॆ कंडु संभ्रमदिनॆळ्दु पोडॆवट्टु निलिसि पलतॆरदिनर्चिसि दिव्याहारमं कुडुवुदुं—

रैवृष्टि कुसुमवर्षं * देवरहोदान घोषणं हिम पवनं ।
देवानक रवमोदवे म-* हाविस्मय हेतुवाय्तु पंचाश्चर्यं ।। ६६ ।।

अंतु रामभट्टारकर् पूजाप्राप्तरागि दुर्धर तपोमार्गदोळ नडॆदु लक्ष्मणनॆत्तिद सिद्धशिलॆयनेरि प्रतिमायोगदिं कर्मक्षयंगॆय्वुदनवधिबोधदिं सीतेंद्रनरिदच्युत कल्पदिं बंदु—

---

नहीं जाऊँगा, अरण्यवास को अपना लिया। ६४ —एक दिन जिस वन में यह महामुनि रहता था, वहाँ एक अजीब घोड़ा राजा प्रतिनंदी को ले आया। ६५ वह नटखट घोड़ा गोंडारण्य प्रवेश कर रहा था कि उसकी पीठ से प्रतिनंदी नीचे कूदा और चारों ओर देखा, पास में एक सरोवर को देखकर, उसमें स्नान किया, उसमें खिले हुए कमलों का पीठ निर्माणकर, जिनप्रतिमा प्रतिष्ठापित करने के बाद पूजा करने लगा। इतने में उसकी पत्नी प्रभावती उस नटखट घोड़े के पदचिह्नों को पहचानती हुई वहाँ आयी और अपने पति को पाकर उस सरोवर में जलक्रीड़ा करके, वहीं आहार मंगवा लिया। उस समय रामभट्टारक चौबीस दिनों का उपवास पारायण निमित्त कांतार भिक्षा एवं चर्या के उद्देश्य से उस मार्ग से आ रहे थे कि प्रतिनंदी ने उन्हें देख लिया। हड़बड़ाकर उठा और प्रणाम करके अनेक तरह से अर्चना करके दिव्याहार प्रदान किया तो,—सुवर्ण वर्षा और पुष्पवृष्टि हुई; देवदुंदुभी बज उठी; ठंडी हवा बहने (चलने) लगी; अशरीरवाणी हुई। ऐसे पंचाश्चर्य विस्मय के कारण बने। ६६ रामभट्टारक ने उस पूजा को स्वीकारकर, कठिन तपोमार्ग में चलकर, लक्ष्मण द्वारा उठायी हुई सिद्धशिला पर चढ़कर प्रतिभायोग से कर्मक्षय करके अवधिज्ञान से अच्युतकल्प से आये,— इंद्र ने यह सोचकर

तानेंतानुं परम पदमं साधिपं मुंदे शुक्ल ।
ध्यानक्कीवें तविलनेंनुतुं रामयोगींद्रनिर्दा ॥
स्थानंबोक्कं मकुट रुचिरोदोंतमं तीवें तळ्पी- ।
य्देनं माडं विनय विकलं राजयोग प्रमत्तं ॥ ६७ ॥

अंतु पोक्कारुं ऋतुगळनल्लि विसुर्विसि ताने सीतेय रूपागि विद्याधर कन्येयर् बळसि बरे समीपक्कें बंदु निंदु नीमिन्नं गत वयश्शरीररल्लिरी मनोहराकारमनकारणं किडिसुदिरिमेन्नोळमी विद्याधरकन्येयरोळं कूडि सुखमननुभविसि वळिक्कें नीमुमानुमीकें-गळुमोडने तपंबडुवमेंदु तपोविघ्न हेतुगळंतोरि नुडियेयुं रामभट्टार-करेंतुमस्खलिन चित्तदिं शुक्ल ध्यान प्रविष्टरागि माघमासद शुक्लद द्वादशिय बेळगप्प जावदोळ्—

आवरिसिर्द घाति घन कांडपटं पेर्रपिगे दिव्य भा- ।
षा वधुविंगे राघव यतिप्रवरं वरनागे निर्मलं ॥
केवलबोधमेंब मणि दर्पणमुज्वलिसित्तु तोर्पिनं ।
जीवमजीवमेंवखिल वस्तुगळुं गुणपर्ययंगळुं ॥ ६८ ॥

अंतु रामस्वामिय केवलबोधोदयदोडने तमगासन कंपमप्पु-दुमवधि बोधदिंदरिदु—

---

कि वह (रामभट्टारक) किसी भी तरह परमपदवि पानेवाला है; आगे उसके द्वारा किये जानेवाले शुक्लध्यान में विघ्न डालना चाहिए। इसी उद्देश्य से उस तपोभूमि में पहुँचकर जहाँ राम योगींद्र तप कर रहा था, अपनी मुकुट-कांति को आकाश मंडल तक व्याप्त कराता हुआ, विनम्रता को भुलाकर मोहयोग से मत्त होकर सुशोभित हुआ। ६७ इस तरह मत्त होकर वहीं छः ऋतुओं का निर्माण करके, स्वयं सीता का रूप धारणकर, विद्याधर कन्याओं द्वारा आवृत्त होकर उन्हें यह समझाया कि अब उन्हें राम के साथ मनोहराकार में रहना है। और राम को यह समझाकर कि इस रूपराशि को अकारण न गंवाकर मेरे एवं उन विद्याधर कन्याओं के साथ सुख का उपभोग करने के पश्चात् हम सब मिलकर सामूहिक रूप में तपस्या करेंगे, राम की तपस्या में विघ्न डालना चाहा। लेकिन रामभट्टारक तनिक भी विचलित हुए बिना शुक्लध्यान में लीन होकर माघ मास के शुक्लपक्ष द्वादशी के प्रातः क्षण मे,— देह को आवृत्त सर्व मोहमाया पीछे हटी; रामयति मोक्षवधु का पति बना; निर्मल केवलज्ञान प्रकाशमय रत्नमणि-सा उज्ज्वल हुआ तो जीव अजीव अखिल वस्तुएं एवं गुणकर्म भी दिखाई पड़े। ६८ इस तरह रामस्वामी को

दुंदुभि नादमावरिसें दिक्तटमं चल केतनं विय- ।
न्नंदन शंकेयं पडेयें रत्न विमान वितानदंशु जा- ।।
लं दिविजेंद्र चापद विलासमनेळिसें कण्गेवंददें ।
बंदुदों रामकेवलिय केवल पूजेगें देव संकुलं ।। ६९ ।।
भवनावासदवर् पदिबरमरेंद्रर् व्यंतरावास सं- ।
भवरेंण्बर् शशि सूर्यरिर्वरुळिदर् पन्निर्वरिंद्रर् नभो- ।।
विवरं तम्म बलक्कें सालदेनें मूरुंलोकमोंदागि ब- ।
र्पवोलें बंदरों माळ्प कौतुकदिना कैवल्य मांगल्यमं ।। ७० ।।

अंतु बंद चतुर्निकाय देवनिकायदोंडनें सीतेंद्रमुं रामभट्टारकर्गें केवलज्ञानपूजेयं माडि पोंडेवट्टु लक्ष्मीधरंगें धर्ममं प्रतिबोधिसलेंदु शर्कराप्रभेयेंब नरकक्कें पोगि नोळ्पिनमलि तम्मोळोरोर्वररनेक विधदिं पीडिसुत्तिर्प नारकरुमं तीव्रवेदनेयिं नमेयुत्तुमिर्द रावणनुमं लक्ष्मणनुमनवरिर्वरं काडिसुत्तिर्द शंभुकनुमं कंडुकरुणदिनवर्गें धर्मश्रवणमं गेय्दोंडंबडिसि सम्यक्त्वमं मरेयदिरिमेंदु पेळ्दवर दुःखक्कें कर मुब्बेगंबट्टु तन्निर्पच्युत कल्पक्कें पोगि मत्तमोमें रामभट्टारकर समीपक्कें बंदु पूजिसि पोंडेवट्टु धर्मश्रवणानंतरं दशरथादिगळगतियं बेसगोळ्वुदुं—

---

केवल बोध होते ही अवधि ज्ञान से आसन कंपन होने की बात जानकर,— दुंदुभिनाद दिगंतों में व्याप्त हुई; चलायमान विमान की पताकाओं ने आकाश राजा का संतानरूपी भ्रम उत्पन्न कराया; उसकी रत्नप्रभा के सम्मुख इंद्रधनुष के वैभव को फीका कराता-सा रामकेवली की केवल पूजा में समस्त देवताकुल का आगमन हुआ। ६९ बारह देवेन्द्र, आठ पिशाच, चन्द्र-सूर्य के अतिरिक्त देवलोक के समस्त लोगों के साथ तीनों लोकों के लोग मिलकर, रामयति के मोक्ष समारंभ के लिए आते समय उनके कौतुक का वर्णन कैसे किया जाय ? ७० इस तरह आकर सीतेन्द्र ने देवसमूह सहित रामभट्टारक को केवलज्ञान पूजा की; प्रणाम किया; लक्ष्मण को धर्मबोध कराने के लिए शर्कराप्रभा नामक नरक में गया; वहाँ जाकर परस्पर पीड़ा देनेवाले नरकवासियों को और तीव्र वेदना से छटपटानेवाले रावण और लक्ष्मण को एवं उन दोनों को सतानेवाले शंभुक को देखा तो करुणावश उन्हें धर्मश्रवण सुनाकर, जिनधर्म को न भूलने का उपदेश देकर, वे जिस कष्ट का अनुभव कर रहे हैं उसके प्रति दुखी होकर, अपने अच्युतकल्प में जाकर, पुनः रामयति के पास आकर, पूजा करके, प्रणाम करके धर्मश्रवण के पश्चात्

हिमकर मंडलदिंदोस-
वेंमदेंनें निजभाषें बेंससिदर् केवलिगळ् ।
समनिसिदत्तुत्तम सं-
यम फलदिं दशरथंगें कल्पावासं ॥ ७१ ॥

मत्तमपराजितेंगं कैकेंगं सुमित्रेंगं सुप्रभेंगं जनकंगं कर्मोपशमदिं सुगति समनिसिदुदु लवांकुशरुमी भवदोंळें मुक्तरप्पर् प्रभामंडलं सुकौशलपुरक्कें पोगुत्तुमाकाशदोंळें नाल्कु तिंगळुपवासमिर्दं मूवर् महाऋषियरं कंडु धरामंडलक्कवतरिसि विधि पूर्वकमवर्णाहार दानमं कोंट्टु तन्नूर्गें पोगि तानुंतन्न सुंदरमालेयेंबरसियुं करुमाड-दोंळिर्दु सिडिल्पोंडेयें सत्तिवरुं मंदरद तेंकण कुरवदोंळ् मूरु पळितोपमायुष्यरागि पुट्टिदरेंदु पेळ्दु—

रावण लक्ष्मण भावि भ-*वावळियं राम दिव्य मुनिषंश्रुति सौ-।
ख्यावहमेंनें मृदुमधुरा-*रावं सीताच रामरंगितेंदं ॥ ७२ ॥

रावणनुं लक्ष्मणनुं निरयवासदिं पोंरमट्टु वदुं मंदरद पूर्व-दिग्भागद विजयावती पुरदोंळ् नंदनेंबोक्कलिगंगमातन कुलवधु रोहिणिगमर्हद्दासनुं ऋषिदासनुमेंबतनयरागि श्रावकव्रतंगळं कैकोंडु कोंडाडि नडेदनुक्रमदिं जीवितावसानदोंळ् देवलोकक्कें पोगि मगुळ्दु

---

दशरथ आदि का हाल पूछने पर,— केवली ने चंद्रमंडल से झरते हुए अमृत तुल्य अपनी मधुर भाषा में बताया कि उत्तम संयम के फलस्वरूप दशरथ को किस तरह कल्पावास उपलब्ध हुआ। ७१ और कर्मक्षय होकर अपराजिता, कैकेयी, सुमित्रा, सुप्रभा, जनक को सुगति प्राप्त होने, लव-कुश इसी जन्म में मुक्त होने की बात कहकर बताया कि प्रभामंडल आकाशमार्ग से सुकौशलपुर जाते-जाते चार महीनों से उपवास करनेवाले तीन महाऋषियों को देखकर, पृथ्वी पर उतरकर उन्हें विधिपूर्वक आहार-दान करके अपने राज्य में जाकर अपनी पत्नी सुंदरमाला के साथ राजमहल में रह रहा था कि बिजली के आघात से मरकर दोनों ने मंदर पर्वत के दक्षिण प्रदेश में तीन 'पलित' आयु के बनकर जन्म लिया। यह बताकर,— रावण और लक्ष्मण के अगले जन्मों की बात बताते हुए कर्णमधुरवाणी से रामभट्टारक ने सीतेंद्र से यूँ कहा—। ७२ रावण और लक्ष्मण नरकवास से निकलकर मंदर पर्वत के पूर्व भाग के विजयावतीपुर के नंद नामक किसान और उसकी पत्नी रोहिणी के यहाँ अर्हदास और ऋषिदास के नाम से पुत्र रूप में जन्म लिया। यतिव्रतों का आचरणकर

बंदु विजयपुरदोळ् पुट्टि ऋषियर्णाहारदानमनित्तु कालंगेय्दु हरिवर्षदोळ् पुट्टि देवलोकक्के पोगि बंदु मुन्नें पेळ्द विजयपुरनाळ्व कुमारकीर्तिगमातनरसि लक्ष्मीमतिगं जयकांतनुं जयप्रभनुमेंब मक्कळागि पुट्टि--

अंतवरति चिरकालं-
संतसदिं राज्यसुखमननुभविसि बळि ।
क्कं तपदोळेसगि कडेयोळ्-
लांतव कल्पदोळनल्प सुखदिंदिर्पर् ।। ७३ ।।

नीनुमच्युतकल्पदिं बंदु भरतक्षेत्रदोळ् सकल चक्रवर्तियागिर्पुदुं लांतव कल्पदिंदवर् बंदु निनगिंदुरथनुं मेघरथनुमेंब तनूभवरप्पखरोळग्र सुतनागि पुट्टिद दशग्रीवं संसार सुख विमुखनागि तपंगोंडु षोडश भावनेगळं भाविसि षोडश भविष्यतीर्थंकर नामकर्ममं कट्टि वैजयंती विमानदोळ् पुट्टि मगुळ्दु बंदु भरतक्षेत्रद रत्नपुरदोळ् तीर्थंकर कुमारनुं चक्रवर्तियुमागि पुट्टि—

सकलोर्वीतल चक्रवर्ति पदमं कैकोंडदं बिट्टु ती- ।
र्थंकरत्वं परेदिपुदुं गणधरं नीनप्पे तद्भावि ती- ।।
र्थंकरंगंदु बळिक्कें मुक्तिवडेवै नीनेंदु भट्टारकर् ।
सकलज्ञर् तिळिवंतु पेळे तळेदं सीतेंद्रनुत्साहमं ।। ७४ ।।

---

क्रमशः जीवन के अवसान समय में देवलोक पहुँचकर, पुनः विजयपुर में जन्म लेकर, ऋषियों को अन्नदान देकर कालवश हुए। तत्पश्चात् हरिवर्ष में जन्म लेकर, देवलोक जाकर, उपरोक्त विजयपुर के राजा कुमारकीर्ति और उसकी राज्ञी लक्ष्मीमति के यहाँ जयकांत और जयप्रभ नामक बच्चों के रूप में जन्म लेकर,— अनेक वर्षों तक सुख-संतोष से शासन करके, सुख का उपभोग करने के पश्चात् तपस्या करके अवसान में लांतवकल्प में अत्यन्त सुख से रह रहे थे। ७३ तुम अच्युतकल्प से आकर भरत क्षेत्र में चक्रवर्ती बनोगे। वे लांतवकल्प से आकर इंदुरथ, मेघरथ नाम से तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लेंगे। जेष्ठ पुत्र (रावण) संसार-विरक्त बनकर, तपस्या करके, षोडश भावनाओं से अगले सोलह तीर्थंकर कर्मों को निभाकर वैजयन्ती कल्प में जन्म लेकर पुनः भरतक्षेत्र के रत्नपुर में तीर्थंकर कुमार भी चक्रवर्ती बनकर पैदा होकर,— समस्त भूमंडल का चक्रवर्ती बनकर, -शासन करके, उसे त्यागकर तीर्थंकर पद पायेगा। तब तुम गणधर बनकर जन्म लेने के अतिरिक्त उस तीर्थंकर

मत्तंराम भट्टारकर् लक्ष्मणं मोक्षक्के पोपन्नेगमप्प भवंगळ-निंतेंदु बेससिदर् मेघरथं तपंबट्टु देवगतिवडेदल्लिं बंदु पृथ्वीपुरदोळ् सुव्रतकीर्तियेंबरसनागि मत्तं तपंबट्टु षोडश भावनेगळं भाविसि देवलोकक्के पोगि दिविज सुखमननुभविसि बंदु पुष्करवर द्वीपद पूर्वविदेहद पद्मपुरदोळ् चक्रवर्तियुं तीर्थंकर कुमारनुमागि पुट्टि राज्यसुखमनोल्लदे तपंबट्टु तीर्थंकर जिनेश्वरनागि मोक्षक्के पोपं नार्मिदिगेरडुवर्षक्के मोक्षक्के पोपेवेंदु तम्मुमं पेळे केळ्दु संतोषदंतनेय्दि—

जळ गंधाक्षत पारिजात सुमनोदामंगळिं रामके- ।
वळियं पूजिसि भक्तियिंदेरगि सीतेंद्रं विभूषांशु मं- ।।
डळियुं देहमरीचियुं पुदिये रोदोभागमं चेल्वनी- ।
ळ्कुळिगोंडच्युत कल्पमं विविध केळीतल्पमंमुट्टिदं- ।। ७५ ।।

अत्त रामभट्टारकर्—

तमगे पदिनारु बिल्लु- ※ द्दमेनल् पदिनेंटु सासिरं परमायु- ।
ष्यमेनल् वर्तिसि मुक्ति ※ प्रमदा संभोग लाभ रतरागिर्दर् ।। ७६ ।।

अंतु समय स्थितियं परिपालिसुतुमिर्दु—

---

से मुक्ति पाओगे—ऐसा हर बात समझाकर कहने पर सीतेंद्र उत्साही बना। ७४ तत्पश्चात् रामभट्टारक ने लक्ष्मण के मोक्ष पाने तक की कथा सुनाते हुए यूँ कहा—मेघरथ ने तप करके देवगति पाकर वहाँ से लौटकर पृथ्वीपुर में सुव्रतकीर्ति नामक राजा बनकर पुनः तप करके षोडश भावनाओं को पहचानकर देवगति पाकर सुख का उपभोग किया। वहाँ से पुष्कर वरद्वीप के पूर्व विदेह के पद्मपुर में चक्रवर्ती एवं तीर्थंकर कुमार बनकर पैदा होकर राज्यसुख न चाहकर तपस्या करके तीर्थंकर जिनेश्वर बनकर मोक्ष पायेगा। आज से दो वर्षों में मैं भी मोक्ष पाऊँगा। इस तरह अपनी बातें भी बतायीं तो सीतेंद्र संतुष्ट होकर,— गंधाक्षत, पारिजात आदि पुष्पों से रामकेवली की पूजा करके, उन्हें भक्ति से सीतेंद्र ने प्रणाम किया; उनके धारण किये हुए आभरणों की कांति एवं देहकांति आकाश तक व्याप्त हो रही थी कि वह विविध केलियों का आश्रम स्थान अच्युतकल्प में पहुँचा। ७५ उधर रामभट्टारक,— सोलह धनुष (नाप विशेष; धनुष=चार हाथ के बराबर की नाप) लंबा-सा, अठारह वर्ष आयु-सा निभाकर मुक्तिश्री में विलीन होने के लोभ में मन लगाये हुए थे। ७६ इस तरह समय-समय की स्थिति का पालन करते हुए,— पचीस साल तक देवता, मर्त्य, खेचर राजाओं से पूजित

सततं पूजिसे देवमर्त्य खचर क्षमापालकर् पंच वि- ।
शति संवत्सरमिंते पूजेवडेयुत्तुं भव्य सस्यक्के नि- ॥
र्वृति धर्मामृत वृष्टियं करेयुतुं निर्भाधबोधं यशो- ।
लतेयि मुद्रिसिदं जगत्‌त्रितयमं श्रीरामभट्टारकं ॥ ७७ ॥

नीडुत्तुं कुमतक्के तेजदळिवं विख्यातियं ताळ्दिदों- ।
ळ्नाडं कूडे तोळल्दु भव्यजनमं रत्नत्रयालंकृतं ॥
माडुत्तुं देसेवण्गे धर्मविजय श्री केकरालोकन ।
क्रीडामंडनमागे केवलि कुबेराद्रींद्रमं मुट्टिदं ॥ ७८ ॥

क्षितिभृन्मूर्धाभिषिक्तं वलसेनिसिद कैलास शैलेंद्रदोळ्क- ।
ल्पतरुस्तोमंगळिं मंडलिसिद कनकांभोजषंडंगळिं मं- ॥
डिदमादत्यंत शुद्धस्फटिकमणि शिलापट्टदोळ् रामचंद्रं- ।
प्रतिमायोग प्रयोगं गुणभवन मणिस्तंभमिर्पंतिरिदं ॥७९॥

अंतिर्दु सूक्ष्मशरीर योगदिं सूक्ष्मक्रिया प्रतिपातियेंब परम-शुक्लध्यानदोळ् नेलसि लघुकर्मं परिपातनशक्ति प्राप्तिनिमित्तं दंड कवाट प्रतर लोकपूरण क्रियेगळं प्रतिसमयं प्रयोगिसिनाल्कुमघातिकर्मस्थितिय कालमं सदृशंमाडि मूलशरीर प्रमाणदोळे निंदु वाक्‌मनःकाम योगमनडंगिसि सकल बद्धाश्रव निरोधदिनयोगि केवलिगुणस्थानमं पोर्दि समुच्छिन्न प्राणापान प्रचारं समुच्छिन्न क्रियावृत्ति ध्यान प्रवर्तना परनागि—

---

होकर कीले लगे हुए पेड़ पर धर्मामृत नामक वर्षा बरसाकर संसार भर में जीव राशियों को कष्ट न पहुँचाने का तत्वबोध करके संसार में श्रीराम भट्टारक यशोभागी हुए। ७७ दुर्मार्ग में बाधा पहुँचाकर, सत्मार्ग में ख्याति प्रदानकर, धर्मनिरत देशों का दौरा करके, भव्य लोगों को रत्नत्रयों से सजाकर, दिशावधू की दृष्टि को धर्मविजय का दृश्य दिखाकर, रामकेवली कुबेर पर्वत के शिखर पर पहुँचे। ७८ पर्वतों का चक्रवर्ती कैलास पर्वत में कल्पवृक्षों से आवृत्त कमलों के समूह में सुशोभित स्फटिक शिला के आसन पर प्रतिमायोग में रामचन्द्र रत्नस्तंभ-से रह रहे थे। ७९ इस तरह रहकर सूक्ष्मशरीर योग से सूक्ष्म किये हुए प्रतिपाति नामक श्रेष्ठ शुक्लध्यान में लीन होकर लघुकर्म को त्यागने की शक्ति पाने के लिए लोकपूर्ण-क्रियाओं का प्रयोग करके अघूति कर्म स्थिति के चारों कालों को समेटकर (पहचानकर) मूल शरीर के प्रमाण में खड़े होकर वाणी, मन, देह के योग को छिपाकर, अवयव निरोध

परिपूर्णमेनिसें गुणपरि ※ करं यथाख्यात चरितनागि जिनं मु- ।
क्तिरमाकच ग्रहस्तन ※ परिरंभारंभ केळिगुत्सुकनादं ।। ८० ।।

आगि तदुपांत समयदोळन्यतर वेदनीय देवगति तत्प्रयोग्यानुपूर्वौदारिक शरीर तद्बंधन संघात संस्थानांगोपांग संहनन वर्ण गंध रस स्पर्श प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगति गुरु लघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वास निश्वास प्रर्याप्ति प्रत्येक शरीर स्थिरास्थिर सुभग दुर्भग सुस्वर दुस्स्वरादेयानादेय यशस्कीर्त्ययशस्कीर्ति निर्माण नीचैर्गोत्रंगळेंबेळ्पत्तेरडुं प्रकृतिगळं दूरीकृतंमाडि--

प्रकृतिगळगळ्कॆयि शु-
क्तिकॆयिं पॊरमट्ट मौक्तिकं नीरद मा- ।
लिकॆयिं तॊलगिद शशि का-
लिकॆयिं वेर्पट्ट कनकमिर्पनिर्दं ।। ८१ ।।

अनंतरं चरम समयदॊळ् परिशिष्टान्यतर वेदनीय मनुष्यायुर्मनुष्यगति पंचेंद्रिय जात्यानुपूर्वीत्रसमाम वादरपर्याप्तक सुभगादेय यशस्कीर्ति तीर्थंकर नामोच्चैगोत्रंगळेंब पदिमूरुं प्रकृतिगळुमोमॆयिं निर्मूलमागॆ सकल संसारभार दुःखभार भंजननुं निरंजननुमागि--

---

से केवली का स्थान पाकर, पंच प्राणवायु क्रिया से ध्यान प्रवृत्त होकर,— परिपूर्ण गुणी कहलाकर, ख्यात चरित्र बनकर, जिन होकर, मोक्षलक्ष्मी की केशराशि पकड़कर, उसके साथ खेलने के लिए उत्सुक हुआ। ८० तत्पश्चात् दुःख पहुँचानेवाले देवगति एवं उससे भी पहले की शरीर-बाधाओं को त्यागकर रूप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, गुरु, लघु, उपघात, परघात, तपोद्योत, उच्छवास, निःश्वास स्थितियों को पारकर, स्थिरास्थिर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुश्वर नामक विशेषताओं से मुक्त होकर, यश, अपयश, कीर्ति, अपकीर्ति आदि बहत्तर प्रवृत्तियों को दूर करके,— इन्हें दूर करने के कारण सीप से निकले मोती की तरह, बादलों की ओट से बाहर निकले चंद्र की भाँति, कल्मष अलग किये हुए सोने की तरह राम रह रहा था। ८१ तत्पश्चात् अन्तिम घड़ी में वेदना का पात्र बननेवाली मानवगति, पंचेंद्रियों से उत्पन्न होनेवाली पीड़ाएँ, शुभगति, यश आदि तेरह प्रवृत्तियाँ एकाएक निर्मल होने पर, संसार-भार दुःख से निवृत्त होकर निरंजन हुआ तो,— सारा पाप नाश होकर आठों गुण प्रज्ज्वलित हुए तो दीप ज्वाला-सी ऊर्ध्वगति पाकर तीनों लोकों पर श्वेत छत्र-सा व्याप्त क्रोध-निलय पर खुशी से जाकर शाश्वत मुक्तिश्री को

किडॆ निश्शेषमघाति पज्जळिसॆ तन्नॆंटुगुणं कूडॆ नॆ- ।
थंडॆ दीपार्चिगळंतिरुर्ध्वगति मूरुंलोकदिं मेलॆ बॆ- ॥
ळ्गॊडॆयिपँतॆवोलिर्द सिद्ध निलयक्कानंददिं पोगि कै- ।
विडिदं शाश्वतमप्प मुक्तिवधुवं श्रीरामभट्टारकं ॥ ८२ ॥

अंतु रामभट्टारकं परमपद प्राप्तनप्पुदुं--

पूमळॆ कळॆदत्तखिल दि- ❋ शामुखमं देवदुंदुभि ध्वनि तीवि- ।
त्तामोद मत्त मधुकर- ❋ दामं तीडित्तु बंद मंद समीरं- ॥ ८३ ॥

इनितमर पटह पेटक-
मिनितमर विमान पटलमिनितमर पता- ।
किनियॆंदु नॆनॆयलरिदॆनॆ-
जिनपूजॆगॆ बंदरमर परिबृढरागळ् ॥ ८४ ॥

चित्रातपत्रदिं शत-
पत्र वनस्थलियनिळिपि नभदॊळॆ दॆसॆयं- ।
चित्रिसॆ किरीट किरणं-
द्वात्रिंशत्त्रिदश पतिगळंदॆळ्तंदर्- ॥ ८५ ॥

अंतु निर्वाण पूजॆगॆ निखिल गीर्वाणपतिगळॆळ्तपागळ्--

पळिकिन कॊडदॊळ् गंगा- ❋ जळंगळं नीवि तर्प सुर वनितॆ घनो ।
पळमं नाळ्दिद विद्यु- ❋ द्विळासमं निज विलासदिं मसुळिसिदळ् ॥ ८६ ॥

चंदन कर्दम शुक्तिकॆ- ❋ कॆंदळदॊळ् तळिरॊळॆसॆव पूगॊंचलॆनल् ।
बंदर् तारांतःपुर- ❋ सुंदरियर् परम चरम पूजोत्सवदॊळ् ॥ ८७ ॥

---

श्रीरामभट्टारक ने पकड़ लिया। ८२ इस तरह रामभट्टारक के परमपद पाने पर— पुष्पवृष्टि हुई; देवदुंदुभी-नाद दिगंतों तक सुनाई पड़ा; सुगंधमिश्रित मंदमारुत बहकर समस्तों के मन को आनंद सागर में डुबो दिया। ८३ इतने वाद्य-निनाद और उतने विमान ध्वजाओं का गिनना कठिन था। ऐसे में जिनपूजा निमित्त अगणित देवता आये। ८४ रंग बिरंगी छत्रियों को लेकर, उनमें कमलपुष्पों को लटकाकर अपनी मुकुटकांति को दिशाओं में प्रतिबिंबित कराते हुए बत्तीस देवता रामकेवली की पूजा के लिये आये। ८५ इस तरह निवार्णपूजा के लिये देवता आ रहे थे कि— स्फटिक घड़े से गंगाजल भरकर लाती हुई देवतास्त्रियाँ ऐसी दिखाई पड़ीं मानो भव्य पाषाण का रूप धारण की हुई बिजली अपनी शोभा की प्रदर्शनी कर रही हो। ८६ लाल मोती के सीप में घिसे चंदन-सी, बसंतऋतु के पुष्प गुच्छ-सी, नक्षत्रलोक

सितविकसिताब्जदोळ् ती-
वि तंदरॆळवॆळॆय कदिरनॆंदॆनिपसिता ।
क्षतमं दिग्देवतॆयर्-
सित लोचन रुचि दिगंतमं बळसुविनं ॥ ८८ ॥

ज्ञान कृषानुविदमुरिदळ्गिद कामनमोहनास्त्र सं- ।
ज्ञान शरासनावळियनॊप्पिसलीकॆगळी जिनेंद्रना ॥
स्थानिगॆ नंदरक्कुमॆनॆ रंजिसॆ कॆंदळदोळ् लतांत मा- ।
ला निकुरुंबमिक्षुलनॆ वंदुदु किन्नर कन्यका जनं ॥ ८९ ॥

करॆगण्मुव निज लाव- ※ ण्य रसं परिनाळमिक्किदत्तॆनॆ तंदळ् ।
सुरसुंदरि चंदन रस- ※ भरितायत केतकीदल द्रोणिगळं ॥ ९० ॥

तळॆदनिमिष वधुगळ् क-
ण्गॊळिसिदर्गनिषित कर्णिकार लता सं- ।
कुळमॆनॆ सुवर्णमय परि-
यळमं भक्षोपदंश चरु विलसितमं ॥ ९१ ॥

पॆडॆवरलावुदो रत्नद ※ सॊडरावुदो पॆळिमॆविनं संदॆगद- ।
च्चिडिदिरॆ नागांगनॆयर् ※ गडणदॆ कैलास शैलमं सार्तदर् ॥ ९२ ॥

ऒगॆदकुचं मॊगंगुडदॆ चॆल्विनॊळॆळिसॆ तत्समीपदोळ्- ।
पॊगॆमॊगवादवोल् तळॆद धूम घटंगळनुणिम पॊण्मॆ न- ॥
ळ्तगरुव धूमलेखॆ सुरसुंदरियर् नडॆतंदरदुं सु- ।
य्गॊगॆवळिमालॆ तम्म लुलितालकदोळ् तडवादुदविनं ॥ ९३ ॥

---

की सुंदरियाँ रामयति के चरणपूजोत्सव के लिये आयीं । ८७ दिशारूपी देवताओं का श्वेतप्रकाश सर्वत्र ऐसा फैल गया मानो खिले हुए श्वेतकमलों में बालचंद्र की किरणें भर लायी हों । ८८ किन्नर स्त्रियाँ यहाँ वैसे ही आयी मानो ज्ञानाग्नि से जलकर नाश हुए कामदेव के मोह-बाणों के तरकस के साथ जिनेंद्र को सौंपने के लिये लायी हुई पुष्पमाला हो । ८९ एक सुरसुंदरी चंदन रस से भरे केवड़ा पुष्प के दोने में ऐसा भर लायी मानो झरने से अमित लावण्य रस बह पड़ा हो । ९० खिले कमलों के समूह-सा देवता-स्त्रियाँ सुवर्ण थालियों में भक्ष्य, भोज्य भरकर सुशोभित हुईं । ९१ जिनकी वेणियाँ रत्नदीप के समान भी ऐसी नागकन्याएं झुंड के झुंड कैलास शिखर में चली आयीं । ९२ सुशोभित कुचों की शोभा समीप के धूम्रभरे घड़ों के समान थी; उन घड़ों से निकलते हुए धूम्र कुचों को स्पर्श करके विलास

विविध फलमादुवोरों- ❋ दे वल्लिगेने चेल्वुवेत्तुवमरीकर प- ।
ल्लवदोळ् नवीन कदली-❋ नवाम्र नारंग नालिकेर फलंगळ् ॥ ९४ ॥

निरतिशयमेनिप धर्मा- ❋ नुरागमी तोर्पदेंबिनं सुर वनिता ।
कर किसलयदोळ् कुंकुम-❋ परिपूर्ण सुवर्ण भाजनं रंजिसुगुं ॥ ९५ ॥

जवनं रामजिनं जवंगिडिसि गेल्लगोंड कैलास शै- ।
ल विशाल स्फटिकस्थली निकटमं द्वात्रिंशदिंद्रर्कळु ॥
त्सवदिंदर्चिसुवागळें करेंदुदो कर्णामृतासारमं ।
विविधातोद्य लयानुगं सुरसतीमंजीरिका शिंजितं ॥ ९६ ॥

पिरिदेनिसिर्द रामकथेयं किरिदागिरे देसिमार्गमें- ।
बेरडरोळं रसंबडेदु पंडित मंडलि मेच्चे नेर्पुवे- ॥
त्तिरलविरोधमार्गे कृतिवेळ्वोडे सत्कवि नागचंद्रनं- ।
तिरे पेररार् सरस्वति कुडल् पडेदर् वरमं कवीश्वरर् ॥ ९७ ॥

कृतविद्यर् समचित्तरागि पदेपिंदारय्ये कर्णाट सं- ।
स्कृत काव्यंगळोळर्थदिं रचनेयिं नेर्पट्टु विद्वच्चम- ॥
त्कृतियप्पंतिरे नागचंद्र विभुधं पेळ्दंददिंदाद्यर- ।
द्यतनं पेळ्दभिराम रामकथेयं सैपिंगडर्पागने ॥ ९८ ॥

---

से सुरसुंदरियां श्वास न लेनेवाले भ्रमरों को हटाती हुई, देर होने के डर से जल्दी-जल्दी आयीं। ९३ देवतास्त्रियाँ हाथ मे केले, आम, संत्र, नारियल आदि फल लेकर आयीं तो ऐसे लगीं मानों एक ही लता में विविधफल निकल आये हों। ९४ सुरसुंदरियों के पल्लव सदृश हाथों में कुंकुम से भरे सुवर्ण पात्र वैसे ही सुशोभित हुए मानो अतिशय धर्मानुराग यहां दृष्टिगोचर हो रहा हो। ९५ रामयति ने यम को पराजितकर, कैलासगिरि के शिखर में बत्तीस जन इंद्रों द्वारा हाथ से पूजा स्वीकार करते समय कैसी कर्णानंददायक, लयबद्धवीणा की मधुर ध्वनि सुनाई देगी। ९६ राम की भव्य कथा को संग्रह करके, देसी एवं मार्ग (काव्यशैली विशेष) पद्धति से विद्वानों को पसंद होने जैसा सरस बनाकर, स्पष्ट, विवाद को स्थान न देकर प्रस्तुत करने (कहने) की क्षमता सरस्वती देवी के वर प्रसाद पाये हुए सत्कवि नागचंद (पंप) के अतिरिक्त और किसमें होगी ? । ९७ विद्वज्जन, समचित्त हो सहृदय से अर्थ, रचना, कन्नड़, संस्कृत गीतियों को अपनाकर पूर्वजों द्वारा प्रस्तुत की (कही) हुई रामकथा को प्रस्तुनकर नागचंद्र पुण्य भाजन बना। ९८

इदु परमजिनसमय कुमुदिनी शरच्चंद्र बालचंद्र मुनींद्र चरण नखकिरण चंद्रिका चकोर भारती कर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितमप्प रामचंद्रचरित पुराणदोळ् परिनिर्वाण कल्यानोत्सव वर्णनं षोडशाश्वासं ।

॥ कृति समाप्त ॥

---

कवि अभिनवपंप जो परमजिन समय और कमलों को शरत्काल के चंद्र के समान माने जानेवाले बालचंद्र मुनींद्र के चरण नखों के चाँदनी प्रकाश से पवित्र एवं सरस्वती के कर्णभूषण के समान है, के रामचंद्र चरित पुराण का यह परिनिर्वाण कल्याणोत्सव वर्णन है। सोलहवाँ आश्वास समाप्त ।

॥ कृति समाप्त ॥

# विषयानुक्रमणिका

आश्वास—३, पृष्ठ ७५-११३

माँगने की इच्छा ९१; अपराजिता का ऋतुमति होना और उसका शारीरिक एवं श्रृंगार वर्णन ९२-९५; अपराजिता का स्वप्न ९५; उसका श्रृंगार ९६-९७; दशरथ द्वारा अपराजिता के स्वप्न का अर्थ समझाना ९८; गर्भवती अपराजिता का दशा-वर्णन ९९-१०२; पुत्र-जन्म १०२; नगर सजावट वर्णन १०२-१०४; पुत्र नामकरण (राम) १०४; बालक का मोहक रूप सौन्दर्य वर्णन १०४-१०६; अन्य रानियों का पुष्पमति होकर स्वप्न देखना और गर्भ धारण करना १०६; सुमित्रा से लक्ष्मण, कैकेयी से भरत और सुप्रभा से शत्रुघ्न का जन्म १०७; उनका शैशव और बाललीला वर्णन १०८-१०९; विद्यार्जन ११०-१११; राम, लक्ष्मण का रूप-सौन्दर्य वर्णन १११-११३।

आश्वास—४, पृष्ठ ११४-१४१

जनक की पटरानी विदेही का गर्भ धारण ११४; पूर्वजन्म की शत्रुता के कारण उस गर्भ पर कपिल नामक राक्षस की निगरानी ११५; पूर्वकथा ११६-१७; विदेही का दो बच्चों (एक लड़का, एक लड़की) को जन्म देना ११७; कपिल का लड़के को ले उड़ना और बच्चे के कानों में कर्ण-कुण्डल पहनाकर पर्णविद्या-बल से रथनूपुर चक्रवालपुर के राजा इन्दुगति की मृदुशय्या में गिरा देना ११७-१८; राजा का उसे अपना पुत्र घोषित करना और प्रभामण्डल नामकरण ११९; पुत्र को खोकर विदेही का विलाप; जनक, परिजनों को शोक ११९; ज्योतिषियों की भविष्यवाणी १२०; कन्या का नामकरण—सीता १२०; शैशव, यौवन वर्णन १२१; तरंगतम नामक किरात द्वारा मिथला पर आक्रमण १२२; जनक का युद्ध निमित्त तैयार होना, लेकिन मन्त्रियों के समझाने पर दशरथ के पास पत्र भेजना, स्वयं भी तैयार होना १२३; युद्ध में जाने के लिए राम का आग्रह १२४; राम-लक्ष्मण का किरातों से भयानक युद्ध १२५-२९; किरात की हार १३०; प्रत्युपकार की भावना से जनक का राम के साथ सीता का विवाह करने का निर्णय १३१; नारद का सीता को देखने का कुतूहल १३१; नारद को देखकर सीता का डरना, नारद का सीता को चाहना लेकिन सीता की सेविकाओं से अपमानित होना १३२; बदला लेने की भावना से सीता का सुन्दर चित्र बनाकर रथनूपुर चक्रवालपुर के बाह्य प्रदेश में लटकाना १३३; उसे देखकर प्रभामण्डल का काम पीड़ित होना १३४; इन्दुगति को नारद द्वारा सीता सम्बन्धी बातें बताना १३५; जनक से सीता को माँगने का विचार १३५; कुल पुरोहित चक्रधर के कहने पर उपाय से जनक को ही ले आने का निर्णय १३६; चपलवेग विद्याधर का मिथिला में उतरना १३६; जनक को अश्वप्रिय समझकर घोड़े का रूप धारण कर उत्पात मचाना १३७-३८; अन्ततः जनक के साईसों द्वारा

कृत्रिम घोड़ा वन्धित १३९; उत्तम लक्षण का अश्व समझकर उस पर जनक का सवार होना १४०; अश्व का जनक को ले उड़ना १४१; जनक का रथनापुर चक्रवालपुर में घोड़े की पीठ से कूदकर विधिलीला की चिन्ता करना १४१।

**आश्वास—५, पृष्ठ १४४-१७४**

जनक का जैनमन्दिर प्रवेशकर जिनेश्वर की महिमा-स्तुति १४४-४६; असली रूप में आकर सेवक द्वारा इन्दुगति को सारी वातें वताना १४६; सीता को माँगना १४७; जनक द्वारा अस्वीकार और राम की शक्ति की प्रशंसा करना १४८; इन्दुगति की चुनौती—प्रथम विद्याधर नमि-विनमि को नागराज द्वारा दिये गये वज्रावर्त, सागरावर्त धनुषों को उठाने में समर्थ हो तो सीता से विवाह करे अन्यथा प्रभामण्डल से ही हो १४९; नगर सजावट वर्णन और स्वयंवर की तैयारी १५३; सीता का सौन्दर्य वर्णन १५४-५६; सीता को देखकर राजकुमारों की दशा १५७-६०; कंचुकी द्वारा राम का वर्णन १६१; अद्भुत सागरावर्त, वज्रावर्त धनुष का वर्णन १६२; वीर राजकुमारों की दुर्दशा १६२-६५; दशरथ का संकेत पाकर राम द्वारा वज्रावर्त उठाना १६५; लक्ष्मण द्वारा सागरावर्त पर कावू पाना १६८; राजमहल और विवाहमण्डप का वर्णन १७०-७३; राम-सीता का पाणिग्रहण १७४।

**आश्वास—६, पृष्ठ १७८-२२४**

राम-लक्ष्मण की ख्याति से दुखी होकर भरत का तपस्या निर्णय १७८; कैकेयी का दशरथ से एकान्त में मिलकर कनक की वेटी कनकप्रभा से विवाह करा देने का आग्रह १७८; भरत-कनकप्रभा विवाह १७९; कामान्ध होकर प्रभामण्डल का राम-लक्ष्मण से लड़ने, सीता को लाने के लिए निकलना १८१; जाते समय विदग्धनगर, जिसमें कुण्डलमण्डित नाम से उसका पूर्वजन्म हुआ था, के दर्शन से मूर्छित होना १८१; प्रभामण्डल को पूर्व और वर्तमान जीवन की सारी वातें स्मरण होना और इन्दुगति को कह सुनाना १८२; इन्दुगति द्वारा राज्य-वैभव प्रभामण्डल को सौंपकर दीक्षा लेना १८३; सरयू नदी तट पर आये हुए मुनीश्वर से दशरथ की भेंट १८४; मुनीश्वर से प्रभामण्डल का अपने और इन्दुगति का सम्वन्ध (स्नेह) का कारण पूछने पर उनके पूर्व जन्मों की कहानी सुनाना १८६-८८; राज्य में आनन्द-लहरें १८८; पवनवेग खेचर से जनक के पास खबर पहुँचाना १९०; मिथिला में भी आनन्द-लहरें १९०; पुत्र (प्रभामण्डल) से मिलते ही जनक-विदेही की आतुरता १९१; अयोध्या पहुँचकर प्रभामण्डल से भेंट और हर्षोल्लास वर्णन १९१-९२; दशरथ का सर्वभूतहित भट्टारक

**आश्वास—७, पृष्ठ २२६-२६८**

आश्वास—११, पृष्ठ ४२५-४७३

भेदोपाय से रावण को पराजित करने की सलाह ४२५; राम को सलाह अस्वीकार ४२५; जांबव द्वारा रावण की मृत्यु की भविष्यवाणी ४२६; लक्ष्मण द्वारा सिद्धशैल उठाकर रावण की मृत्यु की पूर्व-सूचना देना ४२७; विभीषण के माध्यम से रावण को समझाने की सलाह ४३०; हनुमान को बुला लाने के लिए महादधि को भेजना ४३१; हनुमान का किष्किन्धा में आकर राम से मिलना ४३३; अपूर्वरत्न कर्णकुण्डल देकर हनुमान को सीता की खोज के लिए भेजना ४३५; महेन्द्र पर्वत पर स्थित महेन्द्रपुर को देखकर हनुमान को अपनी माँ द्वारा वताई हुई बातें याद आना जिसमें अमितगामी और प्रपिता महेन्द्र द्वारा (माँ का) अनादर हुआ था ४३७-३८; महेन्द्र, प्रसन्नकीर्ति का किष्किन्धा जाकर राम-लक्ष्मण के साथ मिलना ४३९; दधिमुख पर्वत की अद्‌भुत घटना ४४०; दधिमुख गन्धर्व की चित्रलेखा, विद्युत्प्रभा और तरंगमाला नामक कन्याओं से हनुमान का विवाह ४४२; लंकानगर के वाह्य प्रदेश में वज्रमुख दानव से युद्ध ४४३; और उसकी कन्या लंकासुन्दरी से विवाह ४४४; लंकासुन्दरी द्वारा दुर्गम लंका-प्रवेश का उपाय बताना ४४४; हनुमान-विभीषण मिलन ४४५; सीता के दर्शन ४४६; हनुमान द्वारा राम का कर्णकुण्डल देना ४४७; सीता की शंका ४४८; हनुमान का असली रूप दिखाना ४४९; आने का कारण बताना ४४९; सीता का सन्देह ४५०; घटनाओं का आधार देकर सन्देह-समाधान ४५०-५१; मन्दोदरी द्वारा हनुमान की प्रशंसा ४५२; मन्दोदरी और सीता के बीच कहासुनी ४५३; रावण को मन्दोदरी द्वारा हनुमान के आगमन की सूचना ४५५; प्रमदोद्यान में हनुमान-रावण सेना का टकराव ४५६-५८; जान-बूझकर हनुमान का बन्दी बनना ४५८; हनुमान को रावण का दुत्कार ४६१; रावण को हनुमान की चेतावनी ४६२; 'रामदूत' कहकर हनुमान का अपमान ४६२; दहनविद्या से हनुमान का लंका को जलाना ४६२-४६६; लौटकर सीता की चूड़ामणि राम को देना ४६८; और सीता-राम के जीवन का आप्त (गुप्त) विषय बताना ४६९; लंका पर आक्रमण की तैयारी ४७१-७३ ।

आश्वास—१२, पृष्ठ ४७६-४९८

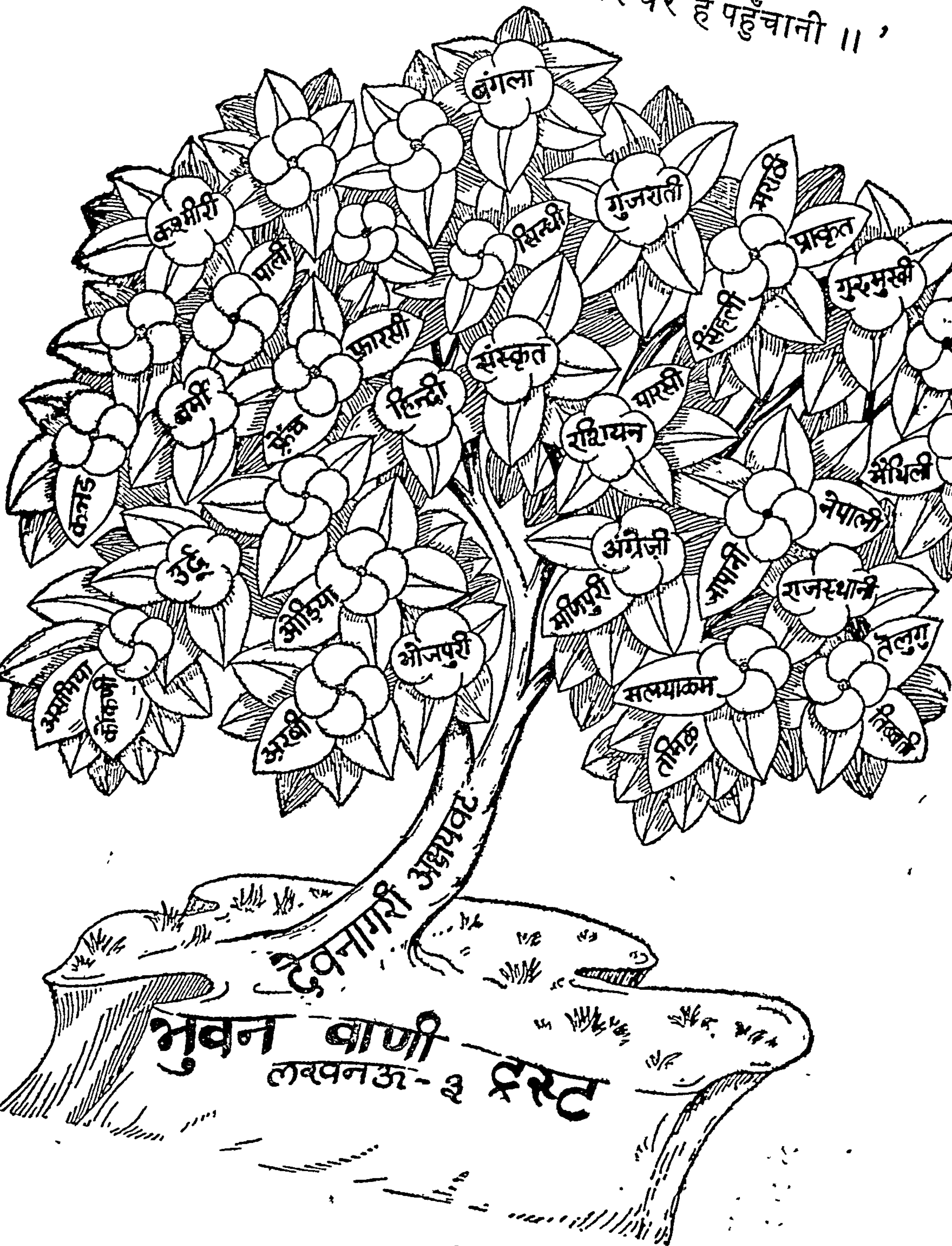
राम द्वारा जिनपति की पूजा-आराधना ४७६-७७; लंका जाने की तैयारी ४७८-८२; सेना वर्णन ४८३; वेलांधपुर के समुद्र नामक अधिपति का राम सेना से भिड़ना, नल द्वारा उसकी पराजय, राम का अभयदान, सत्यश्री, कमला, गुणमाला और रत्नमाला नामक उसकी कन्याओं से लक्ष्मण का विवाह ४८४; हंस द्वीप में राम का डेरा ४८६; गुप्तचर द्वारा रावण को लंका पर राम-सेना के आक्रमण की सूचना ४८७; जानकी

॥ विषयानुक्रमणिका समाप्त ॥

# अशुद्धियों की सूची (अनुवाद विभाग में)

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| २७ | ५ | नक कहकर | न कहकर |
| ३२ | ७ | हु पुष्पलताओं | हुई पुष्पलताओं |
| ५० | १५ | मुनिसुव्रत… | निकाल देना चाहिए |
| ५१ | १ | वर्णनातीत है] | दुहराया गया है, वास्तव में वह १३४ का अनुवाद है |
| ७६ | ७ | हो गये। जिस… | हो गये जिस… |
| १८४ | ७ | भववान | भगवन |
| १८७ | ९ | जंनल | जंगल |
| १८९ | ५ | हंस रहे। | हँस रहे हो। |
| १९८ | १४ | आशा-अग्नि | आशा, अग्नि |
| २६० | १ | कमक | नामक |
| २६० | ७ | अट्ट-लिकाओं | अट्टालिकाओं |
| २६८ | १३ | लिया कि मानो | लिया मानो |
| २६९ | ४ | कणसिक | कणिसक |
| २८८ | ९ | अनुदित ने भी | अनुदित भी |
| २९५ | ८ | लिवा लाये | लिवा लाया |
| ३४९ | ४ | आसांना | आसान |
| ३५१ | ९ | वह | वहाँ |
| ३९१ | ६ | बिखरकर।भागकर | बिखरकर, भागकर |
| ३९५ | १० | पर्वत | पर्वत-से |
| ३९६ | अन्तिम | विद्युद्वेग | विद्युद्वेगा |
| ३९७ | ६ | स्वयं प्रभापुर | स्वयंप्रभापुर |
| ४०१ | ९ | सुरसंगीतपुर | सुरसंगीतकपुर |
| ४०१ | १४ | नेलोकोत्तर | ने लोकोत्तर |
| ४१८ | १३ | "वरुण | वरुण |
| ४२० | ९ | इंद्र | वरुण |
| ४२९ | १५ | चमकता है | चमकता |
| ४७५ | प्रथम | आश्वास—९ | आश्वास—१२ |
| ५६३ | १५ | शौर्योत्तनि | शौर्योन्नति |
| ६१५ | | भरन | भरत |

'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥'




प्रतिष्ठाता— नन्दकुमार अव